श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता
भट्टोत्पलविवृतिसहिता

हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

बृहत्संहिता

(चर्तुथो भागः)

कुलपतेः प्रो. यदुनाथप्रसाददुबेमहोदयस्य पुरोवाचा विभूषिता

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्यनागेन्द्रपाण्डेयः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला
[२०]

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता
भट्टोत्पलविवृतिसहिता
हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

बृहत्संहिता

[चतुर्थो भागः]

कुलपतेः प्रो. यदुनाथप्रसाददुबेमहोदयस्य पुरोवाचा विभूषिता

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च
आचार्यनागेन्द्रपाण्डेयः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
वाराणसी

GAṄGĀNĀTHAJHĀ-GRANTHAMĀLĀ

[Vol . 20]

BṚHATSAṀHITĀ

OF

ŚRĪ VARĀHAMIHIRĀCĀRYA

[PART FOUR]

With the Commentary of

Bhaṭṭotpala

and

Hindi Commentary

BY

ĀCĀRYA NĀGENDRA PĀṆḌEYA

FOREWORD BY

PROF. YADUNATH PRASAD DUBEY

VICE - CHANCELLOR

EDITED BY

PROF. NĀGENDRA PĀṆḌEYA

Ex. Professor & Head, Jyotiṣa Department

Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya

Varanasi

VARANASI

2018

ISBN : 81-7270-076-8(Set)
ISBN : 978-93-87890-00-8 (Part IV)

Published by—
DR. PADMAKAR MISHRA
Director,
Institute of Academic, Research & Publication
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi- 221002

❒

Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi- 221002.

❒

First Edition : 500 Copies
Price : ₹ 891.00

❒

Printed by—
Ashirvad Printers
Meerapur Basahi, Varanasi .

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला

[२०]

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता

भट्टोत्पलविवृतिसहिता

हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

बृहत्संहिता

[चतुर्थो भागः]

कुलपतेः प्रो. यदुनाथप्रसाददुबेमहोदयस्य पुरोवाचा विभूषिता

हिन्दीव्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्यनागेन्द्रपाण्डेयः

आचार्योऽध्यक्षचरश्च, ज्यौतिषविभागस्य

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये,

वाराणसी

वाराणस्याम्

२०७४ तमे वैक्रमाब्दे १९३९ तमे शकाब्दे २०१८ तमे ख्रैस्ताब्दे

प्रकाशकः—
डॉ० पद्माकरमिश्रः
निदेशकः,
शिक्षण-शोध-प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी-२२१००२

ISBN : 81-7270-076-8(Set)
ISBN : 978-93-87890-00-8 (Part IV)

❑

प्राप्ति-स्थानम्—
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१००२

❑

प्रथमं संस्करणम् : ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् :८९१.०० रूप्यकाणि

❑

मुद्रकः—
आशीर्वाद प्रिण्टर्स
मीरापुर बसहीं, वाराणसी ।

पुरोवाक्

महीयस आनन्दस्यायं विषयो यत् सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयेन सविवृति-बृहत्संहितायाश्चतुर्थो भाग: **प्रो० नागेन्द्रपाण्डेयकृत** - हिन्दीव्याख्यासंवलित: प्रकाश्यतामानीत:। अस्य चतुर्थभागस्य प्रकाशनेन ग्रन्थोऽयं पूर्णतामधिगच्छति। ग्रन्थस्यास्य प्रथमभागस्य प्रकाशनं २००२ तमे खैस्ताब्दे द्वितीयभागस्य २००५ तमे खैस्ताब्दे एवं च तृतीयभागस्य २००८ तमे खैस्ताब्दे प्रकाशनमभवत्। अस्य चतुर्थभागस्य सम्पूर्ति: २०१८ तमे खैस्ताब्दे भवतीति महान् प्रमोदस्यावसर:। एवं भागचतुष्टयात्मकोऽयं ग्रन्थो विदुषां परितोषाय अन्वेषकाणां सुविज्ञपाठकानां च कृते सम्पूर्णरूपेण समुपस्थापितोऽस्ति।

साम्प्रतमध्ययनाध्यापने व्यवहारे च हिन्दी-भाषाया: प्राचुर्येण प्रचलनं दरीदृश्यते। अतो बृहत्संहिताया मूलश्लोकानां तथा च तेषामुपरि आचार्य-भटोत्पलस्य विवृतिटीकाया: सुस्पष्टबोधार्थं हिन्दीभाषायां सानुवाद-व्याख्याया: लेखनमपेक्षते स्म। सौभाग्यात् सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य ज्योतिषविभागीया: आचार्यप्रवरा: नागेन्द्रपाण्डेयमहोदया: वैदुष्यपूर्णेन स्वाध्यवसायेन च प्रस्तुतवन्त:। व्याख्यानेनानेन तेषां गम्भीराध्ययनस्य, लेखनपाटवस्य, ज्योतिषशास्त्रे सुचिन्तनस्य च फलं प्रस्फुटं प्रतिभाति। नूनमहं पाण्डेयप्रवराणां कृते साभिनन्दनं भूयांसं साधुवादं वितरामि।

चतुर्थभागेऽस्मिन् बृहत्संहिताया: ७८ अध्यायत: १०६ अध्यायपर्यन्तं २९ अध्यायेषु विषया: समुपस्थिता: सन्ति। अत्र मुख्यरूपेण शयनासनलक्षणाध्याये शयनीय -शय्याया: निर्माणे प्रयोज्यमानानां काष्ठानां शुभाशुभ-लक्षणानि विवेचितानि सन्ति।

एवमेव रत्नपरीक्षाध्याये मुक्तामणि-वज्र-पद्मराग-प्रवालादिरत्नानां शुभा-शुभत्वं निर्दिष्टमस्ति। कस्य रत्नस्य देशभेदेन कति भेदा भवन्ति, कथं च तेषां मूल्यनिर्धारणं कर्तव्यम्, कस्य फलस्य प्राप्तये कस्य धारणं कार्यम्, इत्यत्र सुस्पष्टनिर्देश: प्राप्यते।

शाकुनाध्याये पशुपक्षिमृगाणां चेष्टाभि: संसूचितानां शुभाशुभफलानां वर्णनं विद्यते। अयमध्यायो लोकोपयोगाय महत्त्वपूर्णोऽस्ति।

विवाहपटलाध्यायेऽत्र विवाहमुहूर्तकालिकग्रहनक्षत्राणां स्थितिवशेन स्वानुकूल-ग्रहस्थितिं निर्धारयितुं स्पष्टं निर्देशोऽस्ति।

ग्रहगोचराध्याय आचार्यवराहमिहिरस्य साहित्यिक-सामर्थ्यस्य परिचयं कारयति। अत्र प्रायः प्रमुखछन्दसां लक्षणानि तेषामुदाहरणानि च ग्रहगोचर-फलमाध्यमेन समुपस्थितानि सन्ति। अस्मिन्नध्याये ६२ छन्दसां सोदाहरणानि लक्षणानि विन्यस्तानि सन्ति। अत्र प्रमुखरूपेण आर्या-माला-स्रग्धरा-इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा-मालती-दण्डकादिछन्दसां लक्षणानि आचार्येण स्वकल्पना-व्याजेन हार्द्रैः सुललितपद्यैः सुगुम्फितानि। अनेनास्य छन्दोज्ञानस्य गाम्भीर्य्यं वैदुष्यं च सुस्पष्टं भवति।

रूपसत्राध्याये युवकानां युवतीनां च सौन्दर्याभिवृद्धये व्रतस्य विधानं वर्णितमस्ति।

चैत्रमासस्य कृष्णपक्षेऽष्टम्यां तिथौ मूलसंयुते चन्द्रे व्रतस्यास्य आरम्भो भवति। मन्यते यदनेन व्रतेन मानवः सुन्दरस्वरूपवान्, आकर्षकव्यक्तित्वसम्पन्नश्च सञ्जायते।

उपसंहाराध्याये दुर्जनानां कृतेऽपि कार्तज्ञभावं प्रस्तुतवानाचार्यः।यथा–

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति।

श्रावयितव्यं तस्माद् दुष्टजनस्य प्रयत्नेन।।

ग्रन्थस्यास्य विश्वविद्यालयस्य प्रकाशनसंस्थानेन बहुपरिश्रमेण प्रकाशनं सुसम्पादितम्। एतदर्थं शिक्षण-शोध-प्रकाशनसंस्थाननिदेशकः **डॉ० पद्माकरमिश्र-**महोदयस्तथा अन्ये च सहायकाः धन्यवादार्हाः सन्ति। मुद्रणालयस्य प्रबन्धकादीनामपि कृते अहं धन्यवादं करोमि।

वाराणस्याम्
माघ-शुक्ल-त्रयोदशी
वि.सं.२०७४

(प्रो. यदुनाथप्रसाददुबे)
कुलपतिः

भूमिका

भूतभावन विश्वेश्वर श्रीविश्वनाथ, जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गेश्वरों में प्रमुख स्थान पर विराजमान हैं, उनकी परम कृपा से ही त्रैलोक्यन्यारी मोक्षपुरी काशी में बृहत्संहिता के चतुर्थ भाग की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हो पा रही है। इसकी व्याख्या जो कुछ भी हो सकी है, वह माता अन्नपूर्णा सहित बाबाविश्वनाथ की ही प्रेरणा है, अन्यथा मुझमें ऐसा कुछ भी वैदुष्य अथवा वैशिष्ट्य नहीं है जिसके कारण मैं इस महनीय कार्य को पूर्ण करने में समर्थ होता।

ज्योतिषशास्त्र विविध वैज्ञानिक विषयों का सुघटित पुञ्ज है, जिसमें से अनेक अवान्तर विषयों का सृजन एवं पल्लवन सम्भव है, विशेषतया संहिता ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मानव जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं का सुभग चिन्तन इनमें समाहित हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति इस शास्त्र के अध्ययन से सुलभ हो जाती है। आचार्य वराहमिहिर ने कहा है–

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति। (अध्याय-२)

अर्थात् संहिताशास्त्र का तत्त्वज्ञानी दिव्य ज्ञान का चिन्तन करने में समर्थ होता है। पुनः आचार्य ने कहा है–

दुःस्वप्नदुर्विचिन्ततदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम्।।

(अ.-२, श्लोक-२१)

इसी क्रम में आचार्य भटोत्पल ने विवृति के अन्तर्गत इस श्लोक के माध्यम से कहा है–

श्रुत्वा तिथिं भग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम्।
आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च दुःस्वप्नघातं प्रियतां च लोके।।

(अ.-२, श्लोक-२१)

अर्थात् तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, आदि के चिन्तन से धर्म, अर्थ, यश और सौख्य का सहज लाभ हो जाता है। यह शास्त्र आरोग्य, आयुष्य, विजय और संतति का प्रदाता होने के साथ ही सभी अनिष्टों का शमन करते हुये लोक में प्रतिष्ठा प्रदान करता है।

उक्त कथन का अभिप्राय यह है कि मानव जीवनोपयोगी सभी प्रमुख विषय इस शास्त्र की सीमा में समाहित हुये हैं, और शास्त्रकारों ने धार्मिक सामाजिक एवं

व्यावहारिक सभी पक्षों का तर्कसम्मत वैज्ञानिक युक्तियों से परिपूर्ण विधियों का ज्योतिषशास्त्र में समावेश किया है। षडङ्गशास्त्रों के सभी शाखाओं का इसमें अन्तर्भाव हुआ है।

प्राचीन परम्परा से ज्योतिषशास्त्र की गणना "वेदांग" के अन्तर्गत की जाती है। वेदों में ग्रहों, नक्षत्रों के साथ ही काल-मान तथा गणित के विकसित स्वरूप को देखा जा सकता है। तैत्तरीय संहिता ४ : ४, १० : ३) और तैत्तरीय ब्राह्मण (३.१-२) में इसका स्वरूप स्पष्ट रूप में मिलता है। ऋग्वेद (११-३२, ८-३) में चन्द्रमा और उसके कालमान को स्पष्ट किया गया है। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र की शाकल्य संहिता में ज्योतिष के विषयों का पर्याप्त उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में (३०० ई. पू.) ग्रहचार का व्यापक वर्णन प्राप्त होता है।

उपर्युक्त संदर्भों से यह सुनिश्चित है कि मानव सभ्यता का आदि-संवाहक वैदिक विज्ञान ही रहा है। वैदिक काल से ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन तथा चिन्तन एवं अनुसन्धान प्रारम्भ हो चुका था। वैदिक काल में उद्भूत इन विषयों का यूनान, ग्रीक, तथा चीन आदि देशों में प्रचुरतापूर्वक प्रसार हुआ। इन देशों के विद्वानों ने अपनी-अपनी भाषाओं में उनका अध्ययन एवं लेखन कर विस्तारित किया। बृहत्संहिता के अन्तर्गत एक श्लोक आया है–

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः।।

(अ.-२, श्लोक-१४)

अर्थात् "म्लेच्छ, यवनों में यह ज्योतिष शास्त्र सम्यक् प्रकार से प्रतिष्ठित हुआ है, और उनका भी सम्मान ऋषियों के समतुल्य किया जाने लगा। यदि कोई विप्र इस विद्या में पारंगत हो जाता है तो फिर उसके लिये क्या कहना?" इस श्लोक के आधार पर अनेक विद्वानों ने ज्योतिष शास्त्र को यवनों से प्रभावित मान लिया। उनका यह भी कहना है कि यवन प्रदेश, यूनान-ग्रीक आदि से भारतीयों को ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त हुआ है परञ्च यह एक भ्रान्त धारणा है, जबकि वास्तव में इस श्लोक के माध्यम से आचार्य वराहमिहिर यह कहना चाहते हैं कि भारतीय ज्योतिष इतना श्रेष्ठ है कि इसका ज्ञान प्राप्त कर म्लेच्छ यवन भी समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं। यदि कोई भारतीय श्रेष्ठ द्विज इसका ज्ञान प्राप्त करता है तो उसकी श्रेष्ठता और पूज्यता स्वत: प्रमाणित है। कुछ विद्वानों में ज्योतिष शास्त्र में प्रयुक्त होरा, द्रेष्काण, पणफर, आपोक्लिम इत्यादि शब्दों के प्रयोग होने से सन्देह प्रकट किया है कि ज्योतिष शास्त्र यवन प्रदेशों से आयातित हुआ है। यह सन्देह भी मिथ्या है। वास्तव में किसी भी शब्द अथवा ज्ञान का प्रसार जब सुदूर क्षेत्रों में होता है तो वहाँ

के लोग अपनी भाषा में रूपान्तरित करके उसका अर्थबोध प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ– अरबी, फारसी एवं लैटिन के अनेक शब्द भारत में आकर भारतीय भाषाओं के साथ संपृक्त होकर परिवर्तित स्वरूप में प्रयुक्त होने लगे, यथा अंग्रेजी का "लैन्टर्न" शब्द हिन्दी में लालटेन बन गया है। होरा शब्द को स्वयं वराहमिहिर ने आद्यन्त वर्ण के लोप होने से अहोरात्र का परिवर्तित स्वरूप माना है।

अमेरिका के प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक विलियम बोनिनान (william Bonynun) ने कहा कि भारतीय ज्योतिष मानव इतिहास का प्राचीनतम विज्ञान है–"Hindu astrology is the oldest science in the history of Mankind" जार्डेल बैंक वेधशाला के निदेशक सर बर्नार्ड लॉवेल ने स्वीकार किया है कि भारत के प्राचीन विद्वानों के कथन में पूर्णतः सच्चाई है कि चन्द्रमा के साथ मानव मस्तिष्क की विक्षिप्तता का गहरा सम्बन्ध है। "Sir Bernard Lovell, Director of Jordel Bank observatory admits that there is truth in the ancient belief in the connection between the Moon and lunacy." अरब का विद्वान अल बरूनी (९७३ ई.) ने कहा है कि आचार्य वराहमिहिर विश्वमंडल की संरचना की वास्तविक स्थिति को बतलाने वाले प्रथम वैज्ञानिक हैं। इनका कथन पूर्णतः वैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। यथा– "Varahmihira has already revealed himself to us as the man who accurately knows the shape of world, on the whole his foot stands firmly on the basis of the truth, and he clearly speaks out the truth."–Al-Biruni. a Arabic scholar."

सूर्य मंडल पर जो विशाल तापीय ऊर्जा का सघनतम भण्डार है उसमें विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। खगोलशास्त्र की भाषा में इसे प्रचण्डतापी प्रवाह कहा जाता है। खगोलशास्त्रीय अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि सूर्य बिंब में विविध प्रकार के धब्बे दिखाई पड़ते हैं, इस आधुनिकतम वैज्ञानिक तथ्य का वराहमिहिर एवं पूर्ववर्ती ऋषियों को सम्यक्‌तया ज्ञान था। बृ.सं. के आदित्यचाराध्याय (३ : ७) में स्पष्ट कहा गया है कि ३३ प्रकार के केतु-जिनको तामस एवं कीलक कहा गया है, सूर्यबिम्ब में दिखलाई पड़ते हैं। इनके वर्ण, स्थान एवं आकृति के अनुसार भूमण्डल पर विपरीत प्रभाव उत्पन्न होते हैं। आजकल इस तथ्य को आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं।

विदेशी विद्वानों में प्रो. रॉबर्ट ओ. बेकर जो कि प्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी है एवं प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हॉवर्ड फ्रॉयडमैन तथा प्रसिद्ध शरीर विज्ञानी चार्ल्स एच. बॉकमैन ने अपने आविष्कारों से प्रमाणित किया है कि हृदयरोग, झुँझलाहट, सिरदर्द, चक्कर, मानसिक एवं स्नावयिक विकृतियाँ आदि रोग, सूर्य के धब्बों एवं सूर्य की लपटों से पूर्णतया सम्बन्धित हैं। नेशनल जियोफिजिकल रिसर्च इंन्स्टीट्यूट, हैदराबाद

ने अपने गहन शोध के आधार पर पूर्वोक्त तथ्यों को स्वीकार करते हुये इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भौतिक चुम्बकीय क्षेत्र में उत्पन्न अनियमितता एवं विकृति का प्रभाव यह होता है कि हृदयाघात से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या इस अवधि में सर्वाधिक पायी जाती है।

आचार्य वराहमिहिर ने बृ.सं. आदित्याचाराध्याय (३ : ७) में यह भी बताया है कि भूकम्प, प्राकृतिक आपदायें, आत्महत्या की प्रवृत्ति, मनुष्यों के अन्दर विध्वंसक प्रवृत्ति, भीषण नरसंहार, समुद्री तूफान, आदि दुर्घटनायें सूर्य बिम्ब के प्रभवाश्रित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी आचार्य वराहमिहिर की वैज्ञानिक दृष्टि और उनके ग्रन्थों से प्राप्त विषयों का समीचीन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वराहमिहिर के परवर्त्ती भारतीय विद्वानों एवं इतिहासकारों ने वारहमिहिर के त्रिस्कन्ध ज्योतिष में अपूर्व योगदान को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

प्रस्तुत बृहत्संहिता का यह चतुर्थ भाग शास्त्रानुक्रमणी सहित कुल २९ अध्यायों में है। अध्याय ७८ से अध्याय १०६ के अन्तर्गत इसकी पूर्णता हुयी है।

शय्यासन लक्षणाध्याय, ७८ से इस भाग का आरम्भ हो रहा है, हम यहाँ पर इन अध्यायों के अन्तर्गत उपस्थापित विषयों का क्रमशः विवेचन करना समीचीन समझते हैं, जिससे अध्यायानुसार वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय सार-स्वरूप में प्राप्त हो सके।

शय्यासनलक्षणाध्याय–७८।

इस अध्याय में शय्या अर्थात् शयनासन (पलंग) की विशिष्टता विवेचित है। कहा गया है कि यह शयनासन सर्वजन के लिये सार्वकालिक उपयोगी है। राजा के लिये तो इसका विचार करना अत्यधिक आवश्यक है, यथा–

सर्वस्य सर्वकालं यस्मादुपयोगमेति शास्त्रमिदम्।
राज्ञां विशेषतोऽतः शयनासनलक्षणं वक्ष्ये।।१।।

इस अध्याय के अन्तर्गत पलंग निर्माणयोग्य काष्ठों के वर्णन के साथ अयोग्य काष्ठों का भी उल्लेख किया गया है। वर्षा, वायु, विद्युत्, पशु-पक्षियों द्वारा विखण्डित वृक्षों का उपयोग नहीं करना चाहिये। मधुमक्खी के छत्ते वाले तथा पक्षियों के घोसलों का आधिक्य जिस वृक्ष पर हो, श्मशान भूमि, मार्ग और स्वयं शुष्क वृक्षों का भी शयनासन हेतु प्रयोग नहीं करना चाहिये। मन्दिर एवं नदी संगम पर उत्पन्न वृक्ष भी निषिद्ध माने गये हैं, जो वृक्ष काटने पर दक्षिण दिशा में गिरा हो वह भी निषिद्ध माना गया है। यदि इस प्रकार के वृक्षों को उपयोग में लाया जाय तो उससे वंशक्षय, रोग, भय और विवाद होते हैं।

इस प्रकरण में यह भी बतलाया गया है कि राजा, राजकुमार, मंत्री एवं

सेनापति के शयनासन की लम्बाई, चौड़ाई क्या होनी चाहिये। वृक्ष विशेष के काष्ठों का विविध फल बतलाते हुये गजदन्त के योग से अलंकृत करने का भी निर्देश है। काष्ठों में पाये जाने वाले छिद्रों एवं गाँठों के फलाफल का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ पर यह भी बतलाया गया है कि एक ही जाति से निर्मित शय्या धन्य एवं दो जाति के काष्ठ वाली शय्या धन्यतर और तीन जाति वाली शय्या सन्तान की वृद्धिकरी और चार प्रकार के काष्ठों से निर्मित शय्या यश प्रदान करती है। इससे अधिक पाँच, छः, सात और आठ प्रकार के काष्ठों से निर्मित सर्वथा निषिद्ध मानी गयी है, जैसा कि कहा गया है–

एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम्।
त्रिभिरात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरर्थं यशश्चाग्र्यम्।।
पंचवनस्पतिरचिते पञ्चत्वं याति तत्र यः शेते।
षट्सप्ताष्टतरूणां काष्ठैर्घटिते कुलविनाशः।।

रत्नपरीक्षाध्याय–७९-बृं. सं. का यह अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आजकल रत्नों का प्रयोग प्रचुरता के साथ हो रहा है, अनेक नामों से रत्नों का वर्गीकरण करते हुये आज के व्यापारिक प्रतिष्ठान एवं ज्योर्तिविद्, रत्नों का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। परञ्च रत्नों की शुद्धता उनकी उत्पत्ति एवं गुणानुसार मूल्य का निर्धारण करना अन्यत्र कहीं पर भी स्पष्टता के साथ उल्लिखित नहीं है। आचार्य वराहमिहिर ने रत्नों से सम्बन्धित सभी प्रकार की जटिलताओं का एवं उनके विशिष्ट गुणों का का तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया है। इस प्रकार समाधान ज्योतिष के किसी भी अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

आचार्य वराहमिहिर ने रत्नों की विशेषता को बतलाते हुए कहा है कि शुभ रत्न ही शुभ फल देते हैं, अन्यथा अशुभ (अशुद्ध) रत्न अनिष्ट उत्पन्न करते हैं। रत्नों में परीक्षण के आधार पर दैवी शक्ति का प्रभाव देखना चाहिये। इस दैवी शक्ति को दैवज्ञ (रत्नज्ञ) सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकित करें। "रत्न" शब्द का सामान्य अर्थ "श्रेष्ठ" होता है भट्टोत्पल ने कहा है–**जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते**।

सामान्य व्यवहार में पुरुषरत्न, स्त्रीरत्न देशरत्न, विद्या-रत्न, कला-रत्न, इत्यादि शब्द श्रेष्ठता सूचक अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं। रत्नोंके अनेक भेद है जिनमें १. वज्र, २. इन्द्रनील, ३. मरकत, ४. कर्केतर, ५. पद्मराग ६. रुधिर, ७. वैदुर्य, पुलक विमलक १०. राजमणि ११. स्फटिक, १२. चन्द्र कान्तमणि १३. सौगन्धिक, १४. गोमेदक, १५. शंख, १६. महानील १७. पुष्पराग, १८. ब्रह्ममणि, १९. ज्योतिरस, २०. सस्यक, २१. मुक्ताफल एवं २२. प्रवाल का उल्लेख किया गया है। इनमें से वज्र (हीरा), मोती (मुक्ता), पद्मराग (माणिक्य) और मरकत (पन्ना) इन चार

रत्नों को श्रेष्ठ मानकर आचार्य ने इनका विशद वर्णन किया है। भिन्न भिन्न प्रदेशों में एक ही रत्न विभिन्न वर्णों में प्राप्त होता है। जैसा कि कौशल देश का हीरा श्वेत पीत, सौराष्ट्र का हीरा किंचित् रक्त, सौरपारदेश का हीरा कृष्ण वर्ण का होता है। बेननदी के तट पर प्राप्त होने वाला हीरा दोषरहित माना गया है। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र का हीरा ताम्र वर्ण का, मतंगदेश का हीरा पीतवर्ण का और कलिंग देश का हीरा सम्पूर्णतः पीतवर्णी होता है। पौण्ड्रदेश का हीरा श्याम वर्ण का माना गया है।

हीरा के आकार के अनुसार उसकी विशेषता बतलायी गयी है। षट्कोण, सर्पमुख, समभुज, त्रिकोण, व्याघ्रनेत्र, यवाकार आदि की आकृति वाला हीरा स्वाकृति के अनुसार ही फल देता है। हीरा प्राप्त करने के ३ स्रोत माने गये हैं, नदी से, खनन से, प्रकीर्ण रूप से हीरा प्राप्त होता है। गुणानुसार हीरा का मूल्य न्यूनाधिक होता है। जिसके सम्बन्ध में आचार्य द्वारा मानक बतलाये गये हैं। पुत्रार्थिनी स्त्री को हीरा नहीं धारण करना चाहिये, यह कुछ आचार्यों का अभिमत उपस्थापित किया गया है, परन्तु आचार्य का कहना है कि त्रिकोणाकृति का हीरा जो कि होंठ की लालिमा सदृश वर्ण का हो उसको धारण करना शुभ होता है यथा–

वज्रं न किंचिदपि धारयितव्यमेके।
पुत्रार्थिनीभिरबलाभिरुशन्ति तज्ज्ञाः।
शृंगाटकत्रिपुटधान्यकवत् स्थितं यत् ।
श्रोणिनिभं च शुभदं तनयार्थिनीनाम्।।१७।।

इसी प्रकरण में आचार्य ने तौल के अनुसार हीरे के मूल्य की एक तालिका प्रस्तुत की है। इसका विचार करते हुये एम. राम कृष्णान भट्ट ने वृ.सं.के. अंग्रेजी अनुवाद में कहा है–२० चावल के दाने के भार वाला हीरा २ लाख कार्षापण मूल्य का होता है, कार्षापण का मान इस प्रकार है–

२० चाँदी के सिक्के	=	१ काकिणी
४ काकिणी	=	१ पण
४ पण	=	१ चतुर्थक
४ चतुर्थक	=	१ पुराण या कार्षापण

इस प्रकार काषीय के २ भेद हैं, जैसे–१६ पण अथवा २० पण के तुल्य एक कार्षापण का उल्लेख मिलता है (वृ.सं. पेज ७४० अंग्रेजी अनुवाद)।

इस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि यदि हीरा अशुभ लक्षण वाला अर्थात् दोषयुक्त हो तब विद्युत आघात, विष भय, के साथ ही स्वजनों का, स्वयं का, और ऐश्वर्य का क्षय होता है। हीरे की विशेषता बतलाते हुये आचार्य ने कहा है कि वह किसी भी धातु से कटता नहीं है। वह बड़े आकार का भी नहीं होता, जल में

रखने पर उसकी किरणें स्पष्ट रूप से सतह पर तैरती हैं।

मुक्तालक्षणाध्याय-८०

हाथी, सर्प, सीप, शंख, मेघ, बांस, मछली और सूकर में मुक्ता का निर्माण होता है। अभिप्राय यह है कि इन प्राणियों में मोती का निर्माण होता है। इनमें से सीप (शुक्ति) में निर्मित मोती सर्वश्रेष्ठ माना गया है–मोती प्राप्त होने के ८ स्थान चिह्नित किये गये हैं। इन स्थानों के नाम हैं–सिंहल, पारलौकिक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्णी नदी, पारशव, कौबेर, पाण्ड्यवाटक एवं हिमक्षेत्र। इन क्षेत्रों के आधार पर मोतियों के आकार एवं वर्ण में भेद होता है। वर्णानुसार इनके अधिदेवता भी अलग-अलग होते हैं। आकृति, वर्ण एवं भार के अधार पर मोती के मूल्य का निर्धारण किया जाता है। इसका विचार इस अध्याय में ३६ श्लोकों में विस्तार से किया गया है।

मोती के बारे में यह की कहा गया है कि उत्तम प्रभा से युक्त मोती अमूल्य होता है। ऐसे मोती को छेदकर धारण नहीं करना चाहिये। मोती से निर्मित माला का भी वर्णन किया गया है। १००८ मोती से सुरालंकार तथा ५०४ मोतियों से विजयमाला एवं १०८ मोतियों से हार, ८१ मोती से देवछन्द हार, ६४ मोती से अर्द्धहार एवं ५४ मोती से रश्मिकला नामक हार निर्मित होता है। इनमें सुवर्ण तथा मणि इत्यादि संयोजित कर धारण करना चाहिये। इसके महत्त्व को बताते हुये आचार्य ने कहा है कि मोती धारण करने से सन्तान, धन, सौभाग्य और यश प्राप्त होते हैं तथा रोग एवं शोक का शमन होता है यथा–

एतानि सर्वाणि महागुणानि
सुतार्थ सौभाग्ययशस्कराणि।
रुक् शोकहन्तृणि च पार्थिवानां
मुक्ताफलानीप्सितकामदानि।।३०।।

इस प्रकार से इस अध्याय में मोती प्राप्त करने के स्थान, उनके विविध स्वरूप, तदनुसार उनके प्रयोजन का समुचित वर्णन किया गया है।

पद्मरागलक्षणाध्याय-८१

इस अध्याय में पद्मराग अर्थात् माणिक्य (RUBY) का विचार किया गया है। कहा गया है कि सौगन्धिक सल्फर, उरोविन्द (Blacksalt?) और स्फटिक (Crystal) से माणिक्य उत्पन्न होता है, अर्थात् इनके ये तीन निर्माण स्रोत हैं। यह मयूरकंठ तथा दीपशिखा सदृश होता है। इसका अन्तर्भाग गहरा लाल होता है। इससे तीव्र किरणें निकलती हैं। यह भारवान होता है। कहा गया है कि इससे विष का प्रभाव नहीं पड़ता है। जैसा कि–

यस्तं विभर्त्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य
दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित्।
राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः।
शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात्।।६।।

इस अध्याय के अन्त में पद्मराग के मूल्य का निर्धारण करने की विधि बतलायी गयी है इसके भी आकार, वर्ण एवं द्युति के आधार पर मूल्यों में न्यूनाधिकता होती है।

मरकतलक्षणाध्याय-८२

यह वृ.सं. का सबसे छोटा अध्याय मात्र एक श्लोक का है। इसमें मरकत अर्थात् पन्ना (Emerald) का वर्णन किया गया है, यह तोतापरी वर्ण का, बाँस के पत्ते और कदलीपत्र के वर्ण का हरितिमा युक्त होता है। यह देवकार्य और पितृकार्य के निमित्त अतिशय पवित्र माना गया है, यथा–

शुकवंशपत्रकदलीशिरीषकुसुमप्रभं गुणोपेतम्।
सुरपितृकार्ये मरकतमतीव शुभदं नृणां विहितम्।।१।।

मरकत को मरगज के नाम से भी अन्य क्षेत्रों में व्यवहार होता है। बुध की अनुकूलता हेतु इसको धारण करने का निर्देश किया जाता है।

दीपलक्षणाध्याय-८३

यह अध्याय भी मात्र २ श्लोकों में वर्णित है। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार का दीपक शुभ होता है तथा किन दोषों के कारण वह अशुभ फल प्रदान करता है। यथा–

वामावर्त्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः।
क्षिप्रं नाशं व्रजति विमलस्नेहवर्त्यन्वितोऽपि।
दीपः पापं कथयति फलं शब्दवान् वेपनश्च।
व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद् यश्च नाशं प्रयाति।।१।।

इसका भावार्थ यह है कि जो दीपक स्वच्छबत्ती का तथा पूर्णतैल होने पर भी यदि उसकी किरणें मैली हों, मन्द प्रकाश हो तथा चिंगारी निकलती हो, कम्पन होता हो, ध्वनियुक्त हो, किरणें वामावर्त फैल रही हों तो वह विनाश का द्योतक होता है।

दन्तकाष्ठलक्षणाध्याय-८४

वनस्पतियों के रस-से मुख प्रक्षालन की विधि चिकित्सा विज्ञान में सर्वमान्य है। भारत में अति प्राचीन काल से इसका प्रयोग होता रहा है। इस विधि का आविष्कार कितना प्राचीन है, यह कहना कठिन है, परन्तु आचार्य वराहमिहिर ने इस अध्याय

के अन्तर्गत दन्तकाष्ठों का सम्पूर्ण विचार किया है। कहा गया है कि सहस्रों प्रकार के बल्ली लता, गुल्म, और वृक्ष उपलब्ध होते हैं, परन्तु जो जिह्वा, दन्त एवं मुख गह्वर के लिये अनुकूल एवं उनको पुष्ट करने वाले हों, ऐसे ही पादपों का ग्रहण करना चाहिए। आचार्य ने यह भी कहा है कि अज्ञात दन्तकाष्ठ का प्रयोग न करें। पत्रयुक्त प्रयोग भी वर्जित है, दो गांठ वाला, विदलित और शुष्ककाष्ठ भी अग्राह्य माना गया है। दन्तकाष्ठ हेतु ग्राह्य पादपों में वट, मदार, महुआ, शिरीस, पाकड़, बदरी, खदिर, विल्व, नीम आदि को अनुकूल माना गया है। यह भी विधान है कि पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर दन्तप्रक्षालन करना चाहिए। प्रयोग करने के बाद दन्तकाष्ठ को शुद्ध स्थल पर प्रक्षालित कर फेंक दें। आचार्य ने प्रक्षिप्त दन्तकाष्ठ के पतन के अनुसार शुभाशुभत्व का विवेचन भी किया है–

शाकुनाध्याय-८५

शकुन शब्द का अर्थ पक्षी होता है। अमरकोष में इसके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं।

"**शक्नोति, इति शकुनः**" अर्थात् जो आकाश में उड़ने में समर्थ रहता है, वह शकुन संज्ञक माना गया है। ज्योतिष शास्त्र में गिद्ध, चील, बाज, मुर्गा, कौवा, गौरैया आदि पक्षियों की ध्वनि; गति एवं चेष्टा से शुभाशुभत्व का विचार प्राचीन काल से किया जाता रहा है। आचार्य ने शाकुन-विद्या के स्रोतों का उल्लेख करते हुये कहा है कि इन्द्र, भृगु, बृहस्पति, कपिष्ठल, गरुड़, ऋषभ, भागुरी, देवल, भारद्वाज, सप्तर्षि, गर्ग, वशिष्ठ, पाराशर, काश्यप तथा ऋषिपुत्र आदि विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विचार किया है। उनके अनुसार ही बृ.सं. में यहाँ पर शाकुन विचार प्रस्तुत है।

एक महत्वपूर्ण बात आचार्य ने प्रस्तुत किया है कि संस्कृत भाषा के अतिरिक्त प्राकृत भाषा में जो शाकुन ज्ञान है उसका भी विचार इसमें समाहित है। उज्जयिनी के महाराजाधिराज श्री द्रव्यवर्धन का भी शकुनशास्त्र के ज्ञाता के रूप के उल्लेख किया गया है।

यात्रा काल में शुभाशुभ फलों का ज्ञान, शकुन द्वारा हो जाता है। इसमें हेतु उसका विशिष्ट विज्ञान है। आचार्य कहते हैं–

अन्य जन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत्तस्य शकुनः पुंसां निवेदयति गच्छताम्।।५।।

अर्थात् शकुन (पक्षी) व्यक्ति के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के फल को व्यक्त करने में समर्थ होते हैं। इसलिये शकुन शुभाशुभ निमित्तों को संसूचित करते हैं।

यहाँ पर ध्यान देना चाहिये कि परस्पर कलहाक्रान्त, रोगी, भयभीत, भोजनेच्छा में कलहकारी, मत्त एवं जलान्तर्गत शकुन का विचार नहीं करना चाहिये।

जंगल का शकुन ग्राम में तथा ग्रामशकुन वन में, दिवाचारी शकुन रात्रि में रात्रिचर शकुन दिन में निष्फल होते हैं। कुछ शकुन वामभाग में, कुछ दक्षिण भाग में, कुछ सम्मुख और कुछ शकुन पृष्ठ भाग में फलकारी होते हैं। इन सभी विषयों का विचार इस अध्याय में विस्तारपूर्वक किया गया है।

किस ऋतु में कौन सा शकुन सफल और कौन का निष्फल होता है, इसका भी विचार किया गया है। इस अध्याय में श्लोक सं. २९ से ३४ तक ३२ भेदों वाले दिक्चक्र के अनुसार प्राप्तव्य फल का विचार किया गया है। इसको द्वात्रिंशत् दिक् चक्र के नाम से जाना जाता है। स्पष्ट ज्ञान के लिये यह चक्र प्रदर्शित किया जा रहा है।

।।दिक् शकुन बोधक द्वात्रिंशत् चक्र।।

पूर्व दिशा	१. भाग कोषाध्यक्ष	२ भाग अग्निजीवी	३ भाग तापस	आग्नेय दिशा	१. भाग शिल्पी	२. भाग भिक्षु	३ भाग नग्न स्त्री
दक्षिण दिशा	१. भाग मातंग	२. भाग गोपालक	३. भाग धर्मरत	नैर्ऋत्य दिशा	१. भाग प्रभमदास्त्री	२. भाग मूर्ति	३. भाग तस्कर
पश्चिम दिशा	१. भाग शौण्डिक	२. भाग शाकुन धीवर	३. भाग क्रूर	वायव्य दिशा	१. भाग विषघातक	२. भाग गोस्वामी	३. भाग इन्द्रजालिक
उत्तर दिशा	१. भाग धनवान्	२. भाग दैवज्ञ	३. भाग मालाकार	ईशान दिशा	१. भाग वैष्णाव	२. भाग चरक	३. भाग अश्वरक्षक

शाकुनेऽन्तर चक्राध्याय-८६

इस अध्याय में पूर्वोक्त, शाकुनाध्याय ८५ के अनुसार ही शकुनों का विचार है। अध्याय ८५, के आगे के विषयों को इसमें पल्लवित किया गया है। ३२ कोष्ठात्मक दिक्चक्र के अनुसार विस्तार से शुभाशुभ फलों को स्थान दिया गया है।

शान्ता और दिप्ता नाम से शकुन के दो भेद होते हैं। जब कोई पक्षी शान्त भाव से प्राकृतिक अवस्था में होता है तब उसे शान्त शकुन कहते हैं। जब वह अप्राकृतिक अवस्था में उग्रता पूर्वक आचरण करता है, तब उसे दीप्त शकुन कहा जाता है। उसके अनुसार फल का विचार इस अध्याय में सम्पूर्णता के साथ किया गया है। दिशाओं के अनुसार शुभाशुभ फल का निरूपण दिक्चक्र के आधार पर समझना चाहिये।

विरुताध्याय-८७

इस अध्याय में विरुत् अर्थात् अर्थात् ध्वनि के अनुसार फल का विचार किया गया है। पशु पक्षियों द्वारा जिस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है, तदनुसार फलोपलब्धि

होती है। कहा गया है कि दिवसचारी, रात्रिचारी और उभयचारी; ये तीन प्रकार के शकुन होते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के शकुनों का पृथक्-पृथक् वर्गीकरण करते हुये उनकी नामावली दी गयी है। पशु-पक्षियों के जो प्राचीन नाम दिये गये हैं, उनको पहचानकर उनकी ध्वनियों को समझने का कार्य एक स्वतन्त्र अनुसन्धान का विषय है। आचार्य ने सुस्पष्ट कहा है कि विभिन्न प्रदेशों में शकुनों का स्वरूप एवं उनका अपना विरुत विभिन्न कथनों का संसूचक हो सकता है। उनका अध्ययन एवं परीक्षण कर इस शास्त्र में संयोजित करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आचार्य यह मानते हैं कि जितना इस ग्रन्थ में कहा गया है उतना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उपदेशानुसार इनकी सूची और अधिक बढ़ सकती हैं। यथा–

एवं देशे देशे तद् विद्भ्यः समुपलभ्य नामानि।
शकुनरुतज्ञानार्थं शास्त्रे सञ्चित्य योज्यानि।।१०।।

आचार्य ने शकुनों की ध्वनियों का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है उदाहरणार्थ छिप्पिका और विडाल के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है–

नानाविधानि विरुतानि हि छिप्पिकाया-
स्तस्याः शुभाः कुलुकुलुर्न शुभास्तु शेषाः।
यातुर्विडालविरुतं न शुभं सदैव
गोस्तु क्षुतं मरणमेव करोति यातुः।।३५।।

उलूक के सम्बन्ध में विचार करते हुये कहा गया है कि वह प्रसन्न होने पर अपनी सहचरी के साथ मिलन की अभिलाषा में "हुम्, हुम्" "गुग्लुग्" ध्वनि निकालता है। इसका पूर्ण शब्द "गुरुलु" होता है, यह सर्वदा "किस्किसि" शब्द करता है। जब यह बार-बार "बलबल" शब्द करे तब कलहकारी होता है। यदि "टटट्टट" शब्द करे, तब अशुभकारी दोषोत्पादक होता है। यथा–

हुं हुंगुग्लुगिति प्रियामभिलषन् क्रोशत्युलूको मुदा,
पूर्णः स्याद् गुरुलु प्रदीप्तमपि च ज्ञेयं सदा किस्किसि।।
विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्यासकृद्वाशितं।
दोषायैव टटट्टटेति न शुभाः शेषास्तु दीप्तस्वराः।।३६।।

इन सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि विविध प्राणियों की ध्वनियों तथा उनकी चेष्टाओं का गम्भीरता के साथ हमारे पूर्वाचार्यों ने अध्ययन किया था। उन प्राणियों की मनोदशा का व्यापक परीक्षण कर तदनुसार शुभाशुभत्व का निर्धारण किया गया है। आधुनिक काल में इन प्राणियों का विलोप होता जा रहा है, और इनकी ध्वनियों का हम ठीक-ठीक विश्लेषण भी नहीं कर पा रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि इस दिशा में पुनः प्रयास किया जाना चाहिये।

श्वचक्राध्याय-८८

इस अध्याय में 'श्व' अर्थात् कुत्ते की चेष्टा के अनुसार शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है। कुत्ता किसी स्थान अथवा वस्तु पर मूत्रोत्सर्ग कर देता है तब इसके शुभाशुभत्व के निर्देश के साथ ही यह अध्याय आरम्भ होता है। कुत्ते के भौंकने की दिशा और काल के अनुसार फलों का विचार किया गया है। कुत्ते की ध्वनि और उसकी चेष्टा, उसकी घ्राण क्रिया आदि के अनुसार फलों का निरूपण किया गया है। जैसाकि कहा गया है कि यदि कोई कुत्ता ग्राम में भौंकता हुआ श्मशान की ओर जाये तब निश्चित ही गाँव के प्रधान की मृत्यु होती है। यात्रा काल में किसी यात्री के सामने आकर भौंकने लगे तब निश्चित ही उस यात्रा में विघ्न आता है और यात्रा स्थगित करनी पड़ सकती है। यथा–

ग्रामे भषित्वा च बहिः श्मशाने
भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः।
यियासतश्चाभिमुखो विरौति
यदा तदा श्वा निरुणद्धि यात्राम्।।१४।।

इस प्रकार इस अध्याय में कुत्ते द्वारा प्राप्त लक्षणों के आधार पर शुभाशुभत्त्व का निर्धारण किया गया है। कुत्ते को एक संवेदनशील प्राणी माना गया है, जो भविष्यत् कालीन घटनाओं को अपनी चेष्टाओं से प्रकट करने में समर्थ होता है। कुत्ते के शुभाशुभ लक्षण का सम्पूर्ण विचार इस ग्रन्थ के श्वलक्षणाध्याय सं. ६१ में किया जा चुका है। जिज्ञासु अध्येताओं को वह अध्याय भी अवश्य देखना चाहिये।

शिवारुताध्याय-८९

इस अध्याय में शिवा अर्थात् गीदड़ी (JACKALS) की ध्वनि के अनुसार शुभाशुभ फल का विचार किया गया है, जन सामान्य में इसको सियार एवं सियारिन की बोली के आधार पर भावी घटनाओं का विचार किया जाता है। आचार्य ने इस अध्याय में शिवा अर्थात् सियारिन का ही उल्लेख किया है। यहाँ पर बतलाया गया है कि कुत्ते की ध्वनि के अनुसार ही इसका भी फल होता है। विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के अनुसार पृथक्-पृथक् चेष्टानुसार इसके फलों में विभिन्नता बतलायी गयी है। यदि शान्त भाव तथा मधुर स्वर में अकार के अनन्तर 'आ' कार की ध्वनि करें अथवा "टा टा" शब्द अथवा पहले "टे टे" शब्द के पश्चात् "थे थे" शब्द का उच्चारण करें, तब वह आत्मतुष्टिकारक शुभ फल करती है।

यथा–

शान्ता त्ववर्णात् परमारुवन्ती टाटामुदीर्णामिति वाश्यमाना।
टेटे च पूर्वं परतश्च थेथे तस्याः स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत्।।१४।।

इस प्रकार से शिवा के विविध ध्वनियों के अनुसार फलों की विभिन्नता को इस अध्याय में प्रदर्शित किया गया है।

मृगचेष्टिताध्याय-९०

इस अध्याय में केवल ३ श्लोक हैं; यहाँ पर बतलाया गया है कि अरण्य में रहने वाला मृग अर्थात् जंगली मृग जब ग्राम क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाय तो उसकी चेष्टाओं से ग्रामवासी जनों का शुभाशुभ प्रकट होता है। वह मृग किस स्थान पर किस दिशा मे किस प्रकार की चेष्टा कर रहा है इसके अनुसार फलादेश का कथन किया गया है।

गवेङ्गिताध्याय-९१

इस अध्याय में भी मात्र ३ श्लोक हैं। प्रसन्न तथा गम्भीर ध्वनि करने वाली गाय कल्याणकारी होती है। दीनमुखी, अश्रुपात करती हुयी, भयभीत और अकारण ध्वनि करने वाली गाय, अशुभत्व को सूचित करती है। इस प्रकार इस अध्याय मे गोचेष्टा के अनुसार फल का विचार किया गया है।

अश्वेङ्गिताध्याय–९२

घोड़े का महत्त्व मानव जीवन में सर्वदा रहा है। मानव जीवन की प्रगति में इसका विशेष सहयोग स्वीकार किया गया है। अश्वमेध यज्ञ से आरम्भ कर वर्तमान काल की अश्वसेना तक यह हमारा विश्वासपात्र सहयोगी प्राणी रहा है। इस अध्याय में अश्व के चेष्टानुसार शुभाशुभ फल का विवेचन किया गया है। इसके कम्पन, ध्वनि, गति के अनुसार भावी घटनाओं का ज्ञान होता है। घोड़े की चेष्टाओं से युद्ध में जय-पराजय का पूर्वज्ञान किया जा सकता है। जब घोड़ा बार-बार मल त्याग करे, अभीष्ट दिशा के विपरीत गतिमान हो, अकारण भयभीत हो जाय और अश्रुपात करता रहे, तब शुभ नहीं होता है यथा–

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी।
अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते।।१४।।

इसके विपरीत लक्षण होने पर अर्थात् जब घोड़ा प्रसन्न हो, अभीष्ट दिशा की ओर स्वतः गमन करने लगे, तब निश्चित अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध होने की सूचना देता है।

हस्तचेष्टिध्याय-९३

शय्यासन लक्षण (गजदन्तलक्षण) अध्याय-७८ के श्लोक सं. २० से २७ तक यथावत् इस अध्याय में श्लोक संख्या १ से ७ तक प्रस्तुत किये गये हैं।

इसमें हाथी के दाँतों पर लक्षित चिह्नों के आधार पर शुभाशुभत्व का निर्धारण किया गया है। हाथी का दन्त भंग जिस भाग में होता है, तदनुसार फल बतलाये गये हैं। यदि हाथी की गति अकस्मात् स्खलित हो, दीर्घ श्वास ले, सूँड़ पृथ्वी पर रख दे,

अनेक बार मल त्याग करे, तो ये शुभ लक्षण नहीं होते हैं। यदि ग्राह (Crocodile) द्वारा हाथी जल में खींचा जाय तब उसके स्वामी का अशुभ फल होता है। यदि हाथी ग्राह को खींचकर जमीन पर ला दे, तब स्वामी के लिये शुभकारक होता है–यथा–

प्रवेशनं वारिणि वारणस्य ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य।
ग्राहं गृहोत्वोत्तरणं नृपस्य तोयात् स्थलं वृद्धिकरं नृभर्तुः।।१४।।

इस प्रकार इस अध्याय में दन्त, कर्ण, गति आदि के द्वारा शुभाशुभत्व का परिज्ञान कराया गया है।

वायसविरुताध्याय-९४

विरुत का अर्थ–ध्वनि, बोली है। वायस शब्द का अर्थ कौवा होता है, शकुन शास्त्र में कौवे का विशेष महत्त्व है। आज भी ग्राम्यांचलों में कौवों का आधिक्य है और उनकी बोली के अनुसार यात्रा सम्बन्धी निर्णय किया जाता है। प्राय: वैशाख मास में कौआ घोंसला बनाता है। जिस वर्ष वर्षा की संभावना अत्यल्प होती है; उस वर्ष वह अपना घोंसला निम्न भाग में बनाता है। जिस वर्ष वर्षा की अधिकता संभावित होती है, उस वर्ष वह अपना घोंसला ऊर्ध्व भाग में बनाता है। अभिप्राय यह है कि कौवे के घोंसले को देखकर हम आगामी वर्षा की न्यूनाधिकता को ज्ञात कर सकते हैं। यह भी बतलाया गया है कि एक अंडा देने वाला अथवा अंडाविहीन रहने वाला कौवा अशुभ होने का संकेत करता है। जिस स्थान पर कौआ बैठता है और जिस प्रकार ध्वनि करता है, जिन पदार्थों को मुख में लेकर उड़ता है, जिस भाग में अवस्थित होता है, तदनुसार शुभाशुभ फलों का विचार किया गया है। जिस पदार्थ को लेकर कौआ भागता है उस पदार्थ का अभाव अथवा हानि होती है। जिस पदार्थ को लेकर कौआ हमारे सम्मुख आता है उस पदार्थ की वृद्धि तथा लाभ होता है। यात्राकाल में वाम-भागस्थ शुभ होता है तथा दक्षिण-भागस्थ अशुभ माना गया है। कौवे की बोली अनेक प्रकार की होती है उनके आधार पर विविध प्रकार की घटना का विचार किया जाता है, जैसा कि आचार्य ने कहा है–

का इति काकस्य रुतं स्वनिलयसंस्थस्य निष्फलं प्रोक्तम्।
कव इति चात्मप्रीत्यै केति रुते स्निग्धमित्राप्तिः।।
करेति कलहं कुरुकुरु च हर्षमथ कटकटेति दधिभक्तम्।
केके विरुतं कुकु वा धनलाभं यायिनः प्राह।।५०-५१।।

इस अध्याय में वर्णित काकचेष्टा और काक-ध्वनि को सरलता से समझा जा सकता है। लोक-व्यवहार में इसकी मान्यता को देखते हुये ज्योतिष शकुनशास्त्र के शोधार्थियों को स्वयं भी अनुभव करना चाहिये। इस प्रकार के जिज्ञासु छात्रों एवं विद्वानों के लिये यह अध्याय अति उपयोगी होगा।

शाकुनोत्तराध्याय-९५

इस अध्याय में सामान्य शकुनों के विचारोपरान्त शकुनकालिक तिथि-नक्षत्र-लग्नादि के संयोगानुसार विशेष विचार किया गया है। पूर्व कथित शकुनों में दिक्, देश, चेष्टा और स्वर के अनुसार विचार किया गया है, परन्तु इस अध्याय में इन चारों के अतिरिक्त दिन, नक्षत्र; महूर्त्त, होरा, करण, लग्न, नवमांश एवं चरादि के बलाबल का विचार कर शुभाशुभ ज्ञात करने का निर्देश किया गया है। यथा जलीय लग्न कर्क, मकर, मीन, जल नक्षत्र पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा; जलमुहूर्त वारुण, जल की दिशा पश्चिमादिक् होती है। इस काल खण्ड में पूर्णिमा अथवा अमावस्या को शकुन उपस्थित हो तो वह वर्षा का कारक होता है। यहाँ पर शकुन वरुण अर्थात् पश्चिम दिशा में चारण (ध्वनि) करता है, इतना ही पर्याप्त नहीं है, यह सामान्य शकुन (लक्षण) हुआ। आचार्य ने तिथि, नक्षत्र, लग्न, मुहूर्त्त आदि को आधार बनाकर तदन्तर शकुन का समावेश किया है। इसी प्रकार इस अध्याय में लग्न के पुरुष, स्त्री, चर, स्थिर, द्विस्वभाव, द्रेष्काण, नवांश, आदि के आधार पर विचार करना आवश्यक माना है। ग्रहों के वर्णानुसार विचार करने का एक नवीन प्रयोग इस अध्याय में किया गया है। यथा–

कवर्गपूर्वान् कुजशुक्रचान्द्रि-जीवार्कजानां प्रवदन्ति वर्गान्।
यकारपूर्वाः शशिनो निरुक्ता वर्णास्त्वकारप्रभवो रवेः स्युः।।३।।

स्पष्टार्थ चक्र

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
अ	य	क	त	ट	च	प
आ	र	ख	थ	ठ	छ	फ
इ	ल	ग	द	ड	ज	ब
ई	व	घ	ध	ढ	झ	भ
उ	श	ङ	न	ण	ञ	म
ऊ	ष					
ए	स					
ऐ	ह					
ओ						
औ						
अं						
अः						

राश्यादिकों के लिए वर्णों का विचार किया गया है। यह विचार नवमांश के अनुसार किया जाता है। इसका प्रयोजन भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् में प्राप्त होने वाले व्यक्ति, वस्तु एवं भोगादि के नाम का ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है। यथा–

मेषे ककारो हिबुके यकार-स्तुले चकारो मकरे पकारः।
मेषे छकारो हिबुकेऽप्यकारस्तुले खकारो मकरे फकारः।।१५।।

इस प्रकार इस अध्याय में 'आचार्य ने शुभाशुभ ज्ञान करने की चमत्कारिक विधि को प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ के अध्याय ८५ से ९५ तक ११ अध्यायों में विविध प्रकार के शकुनों का विस्तृत एवं ललित वर्णन किया गया है।

पाकाध्याय-९६-

पाकाध्याय में ग्रह नक्षत्रों के शुभाशुभ फल की प्राप्ति काल का विनिश्चय किया गया है। अप्राकृतिक घटनाओं के फलित होने के समय का निर्धारण इस अध्याय में प्राप्त होता है। "पाक" शब्द का अभिप्राय फलों का परिणाम है। जैसा कि बतलाया गया है कि रवि का फलपाक १५ दिनों में चन्द्रमा का १ मास और बुध का फलपाक उदित होने तक, गुरु का वर्ष पर्यन्त, शुक्र का छः मास, शनि का १ वर्ष, चन्द्रग्रहण का ६ मास, सूर्यग्रहण का एक वर्ष, धूमकेतु; का ३ माह, श्वेतकेतु की ७ रात्रि, ग्रह परिवेश, इन्द्रधनुष, संध्याराग, मेघसूची इन सभी का १ सप्ताह में फलपाक होता है। जब कभी ऋतु विपर्यय अर्थात् शीत ऋतु में गर्मी और ग्रीष्म ऋतु में शीत का आगमन होता है, असमय में फल-पुष्प उत्पन्न हों, प्रसवविकार आदि लक्षण उत्पन्न हों; तब छः मास में फलपाक होता है। इसी प्रकार अनेक असामान्य स्थितियाँ प्रकृति में दिखाई पड़ती हैं, जिनके काल का विचार किया गया है। जैसाकि कहा गया है–

अहुताशप्रज्वलनं घृततैलवसादिवर्षणं चापि।
सद्यः परिपच्यन्ते मासेऽध्यर्धेच जनवादः।।१०।।

अर्थात् अग्नि के बिना ही अकस्मात् किसी वस्तु में आग लग जाना, घृत, तैल मांस, मज्जा आदि की वर्षा हो; तो इसकी अशुभता का फल तत्काल तथा जनापवाद का फल डेढ़ मास में मिलता है। इसी प्रकार कहा गया है–

अत्यन्तविरुद्धानां स्नेहः शब्दश्च वियति भूतानाम्।
मार्जारनकुलयोर्मूषकेण सङ्गश्च मासेन।।१२।।

इसका तात्पर्य यह है कि परस्पर शत्रुता रखने वाले जीव आपस में प्रेम प्रदर्शित करने लगें, आकाश में विचित्र ध्वनि प्रतीत हो, सर्प, नेवला और मूषक एक साथ प्रेम पूर्वक रहने लगें, तब इसका परिणाम एक मास में प्रकट होता है। यहाँ

पर अश्विनी आदि नक्षत्रों में प्राकृतिक उत्पात के फलपाक का भी विवेचन किया गया है।

नक्षत्रकर्मगुणाध्याय-९७–

इस अध्याय में नक्षत्रों के गुणों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम अश्विनी आदि नक्षत्रों के योग-तारों का प्रमाण कहा गया है। यथा–

।।नक्षत्र तारा बोधक चक्र।।

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	नक्षत्र नाम
३	३	६	५	३	१	५	३	६	संख्या
मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	नक्षत्र नाम
५	८	२	५	१	१	५	४	३	संख्या
मूल	पू.षाढ़ा	उ.षाढ़ा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	नक्षत्र नाम
११	२	८	३	५	१००	२	८	३२	संख्या

टिप्पणी = उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चतुर्थ चरण और श्रवण नक्षत्र के प्रथम चरण को अभिजित नक्षत्र कहा जाता है इसके २ तारे होते हैं।

मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ में श्रीराम दैवज्ञ ने तारों की जो संख्या प्रदर्शित की है उसमें बृ. संहिता से भिन्न कुछ नक्षत्रों की संख्या उल्लिखित है। इनका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है–

नक्षत्र	मुहूर्त्तचिन्तामणि	बृहत्संहिता
पुनर्वसु	४	५
आश्लेषा	५	६
पू. फाल्गुनी	२	८
विशाखा	४	५
उ. आषाढ़ा	२	८
धनिष्ठा	४	५
उ. भाद्रपद	२	८

वस्तुत: आकाशमंडल में असंख्य तारों का पुंज है। भारतीय ज्योतिष में उन्हीं नक्षत्रों का विशेष विचार किया गया है जो क्रान्तिवृत्त में स्थित हैं। अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र हैं, जो क्रान्तिवृत्त में सुस्पष्ट देखे जाते हैं। वृत्त में ३६० अंश होते हैं। ३६० अंश को २७ नक्षत्रों में विभक्त करने पर १३°-२०' एक नक्षत्र का भोगांश होता है। प्रत्येक १३°-२० के अन्तर्गत अधिक प्रकाशवान जितने तारे परिलक्षित होते

हैं, उन्हीं नक्षत्रों की तारा की संख्या पठित है। प्राचीन ऋषियों के जिन नक्षत्रों के तारों की संख्या जो भी निर्धारित की है सम्भवत: कालान्तर में गणना करने पर कुछ तारे मन्द प्रकाश वाले अथवा नवीन अधिक प्रकाशवान तारे आ गये होंगे। इसी कारण से तारों की संख्या में न्यूनाधिक्य सम्भावित है।

आचार्य ने इस अध्याय में ध्रुव संज्ञक, तीक्ष्ण-संज्ञक, उग्र संज्ञक, क्षिप्र, संज्ञक, मृदु संज्ञक और साधारण संज्ञक नक्षत्रों का वर्गीकरण कर, इनमें विहित कार्यों का उल्लेख किया है। ज्योतिष शास्त्र की परम्परा में यह वर्गीकरण सर्वप्रथम बृ.सं. के इसी अध्याय में वर्णित है। इसके पश्चात् ही अन्य मुहूर्त्तादिक ग्रन्थों में इन संज्ञाओं को स्थान दिया गया है। इसके अनन्तर क्षौर कर्म, संस्कार मुहूर्त्त का विचार और अन्त में लग्न शुद्धि कही-गयी है। क्षौर कर्म की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये जो परिहार दिया गया है। वह सर्व प्रचलित है। यथा–

नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते च विवाहकाले मृतसूतके च।
बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्मभेषु।।१४।।

इस प्रकार इस अध्याय में नक्षत्रों का स्वामी सहित वर्णन और मुहूर्त्तों का विचार तथा ध्रुवादि संज्ञा का निरूपण किया गया है।

तिथि कर्मगुणाध्याय-९८-

इस अध्याय में मात्र ३ श्लोक हैं। तिथियों के स्वामी तथा नन्दादि वर्गीकरण इसमें प्रस्तुत किया गया है। मुहूर्त चिन्तामणि में वर्णित तिथि स्वामियों से भिन्न देवों का इसमें स्वामित्व निरूपित किया गया है। आचार्य ने बताया है कि जिस नक्षत्र के जो स्वामी हैं, उनसे सम्बन्धित कार्य उन तिथियों में करना चाहिये। यह भी बतलाया गया है कि नक्षत्रों में विहित कार्यों को तिथि सम्बन्धी दिनों के अनुसार उन तिथियों में करना चाहिये। करण मुहूर्त के लिये भी इस विधि का उपयोग किया जा सकता है। यथा–

यत् कार्यं नक्षत्रे तद् दैवत्यासु तिथिषु तत् कार्यम्।
करणमुहूर्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवता सदृशम्।।३।।

आचार्य भट्टोत्पल ने तिथियों में कर्तव्य कार्यों का बहुत विस्तार से विचार किया है। महर्षि पराशर के वचनों का उद्धरण पठनीय है। नन्दादि तिथियों का तथा

उनके देवों का और इनमें विहित कार्यों को बहुत ही सुरुचिपूर्ण ढंग से आचार्य गर्ग ने प्रस्तुत किया है, जिसका उल्लेख विवृत्ति में देखा जा सकता है। करणों का भी यहाँ पर आचार्य गर्ग ने सम्यक् विषय उपस्थापित किया है।

करणगुणाध्याय-९९-

नामानुसार इस अध्याय में करणों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। चल करण ७ होते हैं। इन बवादि करणों के क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा मित्र, अर्यमा भूमि, लक्ष्मी और यम अधिपति बतलाये गये हैं। ४ स्थिर करणों का क्रम शकुनि चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न नाम से दिया गया है। इनके स्वामी क्रमशः कलि, वृष, अग्नि और वायु माने गये हैं। इसके अनन्तर करणों में किये जाने योग्य कार्यों का उल्लेख है। विष्टि अर्थात् भद्रा में क्या करना चाहिये इसका बहुत ही सुन्दर एवं सम्यक् वर्णन है।

यथा–

न हि विष्टिकृतं विदधाति शुभं
परघातविषादिषु सिद्धिकरम्।।४।।

अर्थात् भद्रा यम दैवत्व करण है। अतः इसमें कोई भी शुभकार्य नहीं करना चाहिये। इसमें शत्रु संघात और विष प्रयोगादि कर्म सिद्ध होते हैं। विवृत्ति में उत्पलाचार्य ने महर्षि गर्ग के वचनों का १७ श्लोकों में उद्धरण दिया है, जो सर्वथा समीचीन एवं अवलोकनीय है। कर्णवेध नक्षत्र तथा विवाह मुहूर्त्त का भी इस अध्याय में समावेश है।

नक्षत्रजातकाध्याय-१००

इस अध्याय में अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों में उत्पन्न जातकों के स्वरूप एवं स्वभाव का निर्देश किया गया है। "मतिमान्" शब्द बुद्धिमान के लिये प्रयुक्त होता है, इसके लिये आचार्य भट्टोत्पल ने अष्टांग बुद्धि का उल्लेख किया है। यह अतीव दुर्लभ व्याख्या है। अष्टांग बुद्धि का वर्णन करते हुये कहा गया है–

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।।

भट्टोत्पल ने यहाँ पर शठ शब्द की व्याख्या करते हुये कहा है कि "शठः परकार्य-विमुखः" अर्थात् जो परोपकार एवं दूसरे की भलाई न करे वह शठ होता है।

श्लोक सं. १४ में "उदारदार:" शब्द का प्रयोग है इसकी व्याख्या करते हुये दार शब्द को दाता कहा गया है, यह दुर्लभ प्रयोग है, साथ ही नवीन भी। **भट्टोत्पल ने कहा है–उदारदार उदारेषु दारः। अथवोदारा दारा यस्य। उदारा दातारः।**

नक्षत्रों के फल की पुष्टि में पराशर के वचन सभी श्लोकों के साथ ही दिये गये हैं।

राशिविभागाध्याय-१०१-

इस अध्याय में अश्विन्यादि नक्षत्रों द्वारा निर्मित मेषादि द्वादश राशियों का उल्लेख किया गया है। कुल ७ श्लोकों में द्वादश राशियों के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक के नव पादों का वर्णन किया गया है। अन्तिम श्लोक में सूत्र रूप में नक्षत्र एवं राशियों के सम्बन्ध को बतलाया गया है। मेषादि चार राशियाँ, सिंहादि चार राशियाँ और धनु आदि चार राशियाँ, क्रमशः अश्विनी मघा और मूल से प्रारम्भ होती हैं। विषम (३,५,७,९) नक्षत्रों के क्रमशः १-१ चरण की वृद्धि से राशियाँ पूर्ण होती है। यथा–

अश्विनी पित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः।
विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम्।।७।।

इस अध्याय को अवकहड़ा चक्र भी कहा जा सकता है।

विवाहपटलाध्याय-१०२-

इस अध्याय में विवाहकालिक लग्न में स्थित ग्रहों का फल बतलाया गया है। यह बहुत ही आवश्यक विषय है। विवाह लग्न का निश्चय करते समय अवश्य ही ध्यान देना चाहिये कि वैवाहिक लग्नकुण्डली के द्वादश भावों में सूर्यादि ग्रह किस भाव में स्थित हैं और इनका क्या फल होता है। क्रमशः १२ श्लोकों में १२ भाव में स्थित सूर्यादि ग्रहों का शुभाशुभ फल बतलाया गया है। अन्त में गोधूलि लग्न की प्रशंसा करते हुये आचार्य ने कहा है–

गौपैर्यष्ट्याहतानां खुरपुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते
सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुलधनसुतारोग्यसौभाग्यकर्त्री।
तस्मिन् काले न चर्क्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः
ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं गोरजस्तु।।१३।।

आचार्य वराहमिहिर के पश्चात्वर्त्ती सभी मुहूर्त्तकारों ने इसी श्लोक का अनुसरण

अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। परम्परा में भी गोधूलि लग्न की सामाजिक स्वीकृति प्रबल है।

ग्रहगोचराध्याय-१०३

ग्रहगोचर का तात्पर्य मेषादि राशियों में सूर्यादि ग्रहों के संचरण का फलादेश है। इस अध्याय का आरम्भ करते हुए आचार्य ने उदाहरण के माध्यम से बतलाते हुये कहा है कि जिस प्रकार पुरानी रत्नमाला नवीन सूत्रों से ग्रंथित होने पर पुनः नूतनता को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार शास्त्र भी नवीन शब्दों एवं छन्दोंके माध्यम से पुनः कहे जाने पर आकर्षक हो जाते हैं। इस अध्याय में आचार्य ने अपनी काव्य प्रतिभा का सफल प्रदर्शन किया है और ज्योतिष शास्त्र में छन्दों की प्रस्तुति करने पर मुख चपलत्व हेतु आर्याछन्द में क्षमा भी माँगा है। यथा–

प्रायेण गोचरो व्यवहार्योऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि।
नानावृत्तैरार्या मुखचपलत्वं क्षमध्वं नः।।२।।

इस प्रकार मुखचपलाछन्द की प्रस्तुति के अनन्तर आचार्य ने जघन चपला आर्याछन्द का बहुत ही रोचक एवं चिन्ताकर्षित स्वरूप में प्रदर्शन किया है जो कि शृंगार रस से परिपूरित है। यथा–

माण्डव्यगिरं श्रुत्वां न मदीया रोचतेऽथवा नैवम्।
साध्वी तथा न पुंसां प्रिया यथा स्याज्जघनचपला।।३।।

इस अध्याय में प्रयुक्त छन्दों की संख्या निम्नलिखित है–

१. मुखचपला आर्या
२. जघनचपला आर्या
३. स्रग्धरा
४. सुवदना
५. सुवृत्ता
६. शिखरिणी
७. वृषभचरित
८. उपजाति
९. मालती
१०. अपरवक्त्रा
११. पुष्पिताग्रा
१२. इन्द्रवंशा
१३. स्वागता
१४. रुचिरा
१५. प्रहर्षिणी
१६. दोधक

१७. मालिनी
१८. भ्रमरविलसिता
१९. मणिगुणनिकर
२०. हरिणप्लुत
२१. ललितपद
२२. शालिनी
२३. रथोद्धता
२४. विलासिनी
२५. बसंततिलका
२६. इन्द्रवज्रा
२७. लक्ष्मी
२८. प्रमिताक्षरा
२९. स्थिर
३०. तोटक
३१. वंशपत्रपतित
३२. ललित
३३. अनवसिता
३४. भुजंगप्रयात
३५. पुटा
३६. वैश्वदेवी
३७. ऊर्मिमाला
३८. वितान
३९. भुजंग विजृम्भित
४०. उद्गता
४१. गीति
४२. उपगीति
४३. आर्या
४४. नरकूटक
४५. विलास
४६. आर्यागीति
४७. पथ्याआर्या
४८. वक्त्र
४९. श्लोक
५०. वैतालीय
५१. औपच्छन्दसिक
५२. दण्डक, ३-४ पाद
५३. वर्णकदण्डक
५४. समुद्र दण्डक प्रथमार्ध
५५. समुद्र दण्डक अपरार्ध
५६. विपुला आर्या
५७. शार्दूलविक्रीडित
५८. मन्दाक्रान्ता
५९. उपेन्द्रवज्रा
६०. विलम्बितगति
६१. द्रुतपद
६२. मत्तमयूर

इस गोचराध्याय में ६२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग कर आचार्य ने अपनी काव्य कला का प्रचुर प्रस्तुतिकरण किया है। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य वराहमिहिर ज्योतिष शास्त्र के साथ ही व्याकरण एवं साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इनकी गम्भीरता मूल पद्यों के अध्ययन से स्वतः प्रकट हो जाती है। लक्षणों का कथन भी आचार्य ने हृदयग्राही ललित उपमाओं के साथ प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ–श्लोक छन्द जिसको अनुष्टुप् छन्द भी कहा जाता है उसका लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत है।

पञ्चमं लघु सर्वेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वल्लघुतां याति दुःस्थितैः।।५७।।

जिस तरह श्लोक छन्द के चारों पदों में पञ्चम, तथा द्वितीय और चतुर्थपाद में सप्तम वर्ण लघु होता है, उसी तरह प्रतिकूल ग्रहों से मानव लघुता को प्राप्त करता है। पादान्त में लघु वर्ण के गुरुत्व का रूपक देखें–इस अध्याय का प्रयोजन पुनः स्थापित करते हुये आचार्य ने अध्याय के अन्त में कहा है–

विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत्।
श्रुतिसुखदवृत्तसंग्रहमिदमाह वराहमिहिरोऽतः।।६४।।

तात्पर्यार्थ यह है कि विस्तृत छन्दशास्त्र का अवगाहन कर इस अध्याय का निर्माण किया गया है। आचार्य ने अपने नाम का उल्लेख करते हुये उद्घोषित किया है कि प्रमुख उपयोगी तथा श्रवण सुखद छन्दों का संग्रह यहाँ पर मैंने किया है।

प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्त वाह्यो व्यवस्थितः।
स याति गुरुतां लोके यदास्युः सुस्थिता ग्रहाः।।५८।।

अनुष्टुप छन्द में जिस तरह स्वभाव से लघु अक्षर भी वृत्तबाह्य (पदान्त) में व्यवस्थित होने से गुरु हो जाता है, उसी तरह जो पुरूष स्वभाव से लघु (दूषित कुल में उत्पन्न और वृत्त बाह्य (बाह्येन्द्रिय) में व्यवस्थित है अर्थात् दुःशील है, वह भी अनुकूल ग्रह के आने पर लोगों में पूजित हो जाता है।

आचार्य भट्टोत्पल का काव्य-कौशल

आचार्य भटोत्पल का वैदुष्य बृहत्संहिता की विवृति टीका में सर्वत्र देखा जा सकता है। वराहमिहिर के काल से लगभग ४०० वर्षों के पश्चात् (८८८ शक) उत्पन्न भटोत्पल की अगाध श्रद्धा आचार्य वराहमिहिर के प्रति देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी समग्र कृतियों को इन्होंने पूर्णतः आत्मसात् कर लिया था।

यही कारण है कि बृहत्संहिता के श्लोकों की व्याख्या करते समय ये अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का सुस्पष्ट निदर्शन करा देते हैं।

ग्रहगोचराध्याय की विवृति में भटोत्पल का काव्यपक्ष प्रस्फुटित होता हुआ देखा जा सकता है। छन्दः शास्त्र में प्रयुक्त होने वाले छन्दों के लक्षण, न्यास एवं उनके उदाहरण प्रस्तुत कर भटोत्पल ने इस गम्भीर विषय को सरल बना दिया है। वराहमिहिर ने छन्दों के लक्षणों को नहीं कहा है। अपितु, साक्षात् उनके उदाहरणों को ही गोचर फल के माध्यम से उपस्थापित किया है। लक्षण-ज्ञान के बिना उदाहरणों के महत्त्व को समझना दुरूह हो जाता है अतएव भटोत्पल ने इस अभाव की पूर्ति कर अभिनन्दनीय कार्य किया है। उनका यह विनम्र कथन स्वागत योग्य है–

''आचार्येण ग्रन्थविस्तरभयात् प्रसिद्धत्वाच्च लक्षणं नोक्तम्।''

अभिप्राय यह है कि आचार्य ने नहीं कहा, यह उनका दोष नहीं है, अपितु छन्दों की प्रसिद्धि के कारण और ग्रन्थ को अतिविस्तार से मुक्त रखने के निमित्त छन्दों के लक्षणों को नहीं कहा है। इसमें भी आचार्य की शिष्यजन–वत्सलता को ही कारण माना है। प्रत्येक छन्द का न्यास प्रदर्शित करते हुये उनकी पूर्ण परिभाषा प्रमाण सहित उपस्थित कर ग्रन्थ की उपादेयता में वृद्धि करने का सत् प्रयास किया है। जघन चपला छन्द के लक्षण में वराहमिहिर ने ''**माण्डव्यगिरं श्रुत्वा**'' मात्र कहा है। परन्तु भटोत्पल्ल ने माण्डव्य के श्लोकों का उदाहरण देकर आचार्य के अभिमत को और अधिक स्पष्ट किया है। इस प्रकार से विषयों की संदर्भ सहित संगति प्रतिपादित करने के साथ ही उन्होंने शब्दों के उदाहरण एवं न्यास को प्रदर्शित करने का महनीय कार्य किया है। इस प्रकार इस अध्याय में भटोत्पल का साहित्यशास्त्रीय ज्ञान एवं इनका काव्य कौशल प्रकट होता है।

इस अध्याय के अन्त में भटोत्पल ने लिखा है–

वराहमिहिरीयेऽस्मिन् छन्दसां सारसंग्रहे।
उत्पलो गोचरे टीकां चक्रे शिष्यहितावहाम्।।

इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य उत्पल ने छन्दशास्त्र के लक्षणों एवं उदाहरणों को वराहमिहिर कृत गोचराध्याय को स्पष्टतया समझने के लिए तथा जन कल्याण के लिये निर्मित किया है।

रूपसत्राध्याय-१०४-

यह अध्याय नक्षत्र पुरुष के अंग-विभाग से आरम्भ होता है। नक्षत्र पुरुष की

आकृति बनाकर २७ नक्षत्रों को स्थापित करने का विधान है। कहा गया है कि चैत्र कृष्ण अष्टमी तिथि में जब चन्द्रमा मूल नक्षत्र का हो, उस दिन उपवास रखना चाहिये। विवृति के अनुसार दिन सोमवार श्रेयस्कर होता है। व्रत की समाप्ति पर घृत से परिपूर्ण पात्र एवं स्वर्ण का दान करे। नक्षत्रों के साथ भगवान विष्णु के पूजन का विधान है। यह व्रत रूप अर्थात् शारीरिक सौन्दर्य तथा लावण्य की वृद्धि हेतु किया जाता है। यह व्रत स्त्री एवं पुरुष दोनों कर सकते हैं। इस व्रत से स्त्री–पुरुष दोनों ही लावण्यता को प्राप्त होते हैं। यथा–

प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः क्षपाकरास्यः सितचारुदन्तः।
गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यमूर्तिः।।९।।
कदलीकाण्डनिभोरुः सुश्रोणी बरकुकुन्दरा सुभगा।
सुश्लिष्टाङ्गुलिपादा भवति प्रमदा मनुष्यश्च।।१२।।

आधुनिक काल में सौन्दर्यवर्धन के लिये स्त्री एवं पुरुष दोनों जागरूक हैं। विविध प्रकार के औषधीय प्रयोगों से तथा रासायनिक अनुलेपों से पर्याप्त धन का व्यय करते हुये, सौन्दर्यवृद्धि के लिए प्रयत्नशील हैं। अनेक प्रकार के सौन्दर्यवर्धन की दुकानें (ब्यूटी पार्लर्स) इस दिशा में स्त्री पुरुष के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये प्रयासरत हैं। प्राचीन भारतीय लोग भी सौन्दर्य के प्रति सजग थे, यह अध्याय उसका प्रमाण है। मात्र इतना अन्तर है कि व्रत-दान एवं दक्षिणा तथा पूजन से आन्तरिक तथा वाह्य दोनों प्रकार के लावण्य के लिये प्रयत्न किया जाता था। इसमें इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि अंतस्तल से स्वस्थ एवं प्रसन्न व्यक्ति का वास्तविक सौन्दर्य उसके स्वरूप में प्रस्फुटित हो जाता है। मात्र वाह्य सौन्दर्य-वृद्धि को ही स्थान नहीं दिया जाता था।

प्रत्येक मास की द्वादशी तिथि को विष्णु की पूजा करने का विधान बतलाया गया है। बारह मासों में विष्णु के भिन्न-भिन्न नामों से उपासना करने का उपदेश दिया गया है। बतलाया गया है कि इस व्रत के प्रभाव से व्यक्ति पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।

उपसंहाराध्याय-१०५-

इस अध्याय में पूर्वाचार्यों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की गयी है। आचार्य ने कहा है कि पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का मंथन कर यह ग्रन्थ निर्मित किया गया

है। दुर्जन और सुजन सभी कालों में विद्यमान् रहते हैं। दुर्जनों से भयभीत नहीं होना चाहिए, इनके द्वारा लेखक की कीर्ति और अधिक बढ़ जाती है।

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति।
श्रावयितव्यं तस्माद् दुष्टजनस्य प्रयत्नेन।।४।।

इसी भाव का रहीम का प्रसिद्ध पद है–

निन्दक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।
बिनु पानी साबण दिये निर्मल करत सुभाय।।

आचार्य ने बृहत्संहिता में प्रयुक्त विषयों की न्यूनता अथवा आधिक्य वा दोषपूर्ण प्रस्तुति के किये क्षमा की याचना बहुत ही मार्मिक शब्दों में की है यथा–

ग्रन्थस्य यत् प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद् बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण।
यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम्।।५।।

शास्त्रानुक्रमणिकाध्याय-१०६

इसके अन्तर्गत बृहत्संहिता के सभी अध्यायों के नाम गिनाये गये हैं। आचार्य ने कहा है कि ३९ सहस्र श्लोकों में इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। इस संख्या के अन्तर्गत वात चक्र, अंगविद्या, पुटकलक्षण, अश्वलक्षण और गजलक्षण की संख्या संयुक्त नहीं है। इन अध्यायों की संख्या को जोड़ देने पर कुल ४००० श्लोक होते हैं। आचार्य ने अंतिम श्लोक के अन्तर्गत यात्रा (योगयात्रा), जातक (बृहद्ज्जातक) तथा करण (पंचसिद्धान्तिका) ग्रन्थों की रचना इनके द्वारा की गयी है, इसको संसूचित किया है।

यहाँ आचार्य भटोत्पल का ग्रन्थ समापन के अवसर पर प्रकट किया गया भाव समादरणीय है, यथा–

यदत्राधिकमूनं वा भ्रान्त्या त्वज्ञानतोऽपि वा।
विपर्ययेण वा यत् तत्सर्वं संशोध्यतां बुधाः।।–विवृति

कोई भी रचनाकार अपनी रचना से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं रहता है। रचना के अनन्त सागर में स्वयं को अतृप्त समझना लेखक की विनम्रता और ज्ञान का असीमित अक्षय-कोश, ये दोनों ही हेतु हैं। बृहत्संहिताकार आचार्य वराहमिहिर तथा

विवृतिकार आचार्य भटोत्पल को इस वैदुष्यपूर्ण अनुपम प्रस्तुति के लिए मेरा कोटिशः नमन है। विद्वत् सम्प्रदाय इनका सदैव ऋणी रहेगा।

बृहत्संहिता के भाग चतुष्टय के प्रकाशन का विवरणात्मक इतिहास का सिंहावलोकन कर लेना समीचीन होगा। सन् १९९८ ई. से बृहत्संहिता-सविवृति का भाषानुवाद विशिष्ट व्याख्यान सहित का लेखन प्रारम्भ किया था, जो कि लगभग २० वर्षों के सतत् परिश्रम और अध्यवसाय के फलस्वरूप २०१७ ई. में पूर्ण हो सका है। इसका **प्रथम भाग** २००२ ई. में प्रकाशित हुआ था, जो उपनयनाध्याय प्रथम से प्रारम्भ कर अगस्त्यचाराध्याय-द्वादश पर्यन्त लिखित था।

द्वितीय भाग में सप्तर्षि चाराध्याय (१३) से पिटकलक्षणाध्याय (५१) तक कुल ३९ अध्याय हैं। यह भाग २००५ ई. में प्रकाशित हुआ था।

तृतीयभाग में वास्तुविद्याध्याय (५२) से स्त्रीपुरुष संयोगाध्याय (७७) यावत् २६ अध्याय समाहित है। यह २००८ ई. में प्रकाशित हुआ था।

चतुर्थ भाग में शय्यासन लक्षणाध्याय (७८) से शास्त्रानुक्रमणी अध्याय (१०६) पर्यन्त कुल २९ अध्याय हैं। और इसी चतुर्थभाग की पूर्णता के साथ ही यह ग्रन्थ भी २०१७ ई. में प्रकाशित होकर परिपूर्ण हुआ। यह भी ध्यातव्य है कि तृतीय भाग एवं चतुर्थ भाग के प्रकाशन के मध्य १० वर्षों का दीर्घ अन्तराल है। इसका प्रमुख कारण प्रकाशन विभाग में प्रदेश शासन का हस्तक्षेप था। कतिपय आर्थिक अनियमितता के आरोपों के कारण प्रकाशन-कार्य वर्षों तक अवरुद्ध रहा। मुझे प्रसन्नता है कि प्रकाशन कार्य अब प्रवाहमान है, जिसके परिणाम स्वरूप यह चतुर्थ भाग विलम्बित होकर भी अपने सत्स्वरूप की मर्यादा में प्रकाशित हो सका है।

मेरे लेखन कार्य में पारिवारिकजनों का यथेष्ट सहयोग रहा है। आत्मजद्वय डा. शुभेन्द्र शेखर पाण्डेय तथा पूर्णेन्दु शेखर पाण्डेय एवं आत्मजा सौ० ऋचा पाठक का बहुविध योगदान रहा है, जिनकी सम्पूर्ण उन्नति हेतु श्री विश्वेश्वर विश्वनाथ से सश्रद्ध प्रार्थना करता हूँ। उन सभी शिष्यों के लिए हृदय से मेरा आशीर्वाद है, जिन्होंने परोक्ष वा प्रत्यक्ष रूप से इसमें सहयोग किया है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के प्रकाशन निदेशक-डा. पद्माकर, मिश्र को विशेष साधुवाद देता हूँ जिनके कुशल निर्देशन में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। प्रकाशन विभाग के सदस्यों में श्री कन्हई सिंह कुशवाहा, श्री अशोक कुमार शुक्ल, श्री जितेन्द्र कुमार भाटिया प्रभृति सभी को धन्यवाद देता हूँ जिनकी

कर्तव्यनिष्ठा और तत्परता से प्रकाशन कार्य सुसम्पन्न हुआ है। आशीर्वाद मुद्रणालय के प्रबन्धक गण भी भूरिशः धन्यवादार्ह हैं। इति शिवोऽस्तु।

वि.सं. २०७४, श्रावणी पूर्णिमा
सूर्यसदनम्
१५-वरुणाविहार कालोनी
सिकरौल, वाराणसी-२
चलभाष-०९४५२५६४६४५,
९१२५३४४१८५

विदुषां वशंवदः

❑❑

विषयानुक्रमणिका
बृ. सं. चतुर्थो भागः

क्रमाङ्कः		अध्यायः	पृष्ठसंख्या
१.	शय्यासनलक्षणाध्यायः	७८	१-२१
२.	रत्नपरीक्षाध्यायः	७९	२२-३३
३.	मुक्तालक्षणाध्यायः	८०	३४-५३
४.	पद्मरागलक्षणाध्यायः	८१	५४-५९
५.	मरकतलक्षणाध्यायः	८२	६०-६१
६.	दीपलक्षणाध्यायः	८३	६२-६४
७.	दन्तकाष्ठलक्षणाध्यायः	८४	६५-७३
८.	शाकुनाध्यायः	८५	७४-१३९
९.	शाकुनेन्तरचक्राध्यायः	८६	१४०-१६३
१०.	विरुताध्यायः	८७	१६४-१९०
११.	श्वचक्राध्यायः	८८	१९१-२०८
१२.	शिवारुताध्यायः	८९	२०९-२१८
१३.	मृगेचेष्टिताध्यायः	९०	२१९-२२१
१४.	गवेङ्गिताध्यायः	९१	२२२-२२४
१५.	अश्वेङ्गिताध्यायः	९२	२२५-२३६
१६.	हस्तिचेष्टिताध्यायः	९३	२३७-२४७
१७.	वायसविरुताध्यायः	९४	२४८-२८७
१८.	शाकुनोत्तराध्यायः	९५	२८८-३३८
१९.	पाकाध्यायः	९६	३३९-३४९
२०.	नक्षत्रकर्मगुणाध्यायः	९७	३४९-३६७
२१.	तिथिकर्मगुणाध्यायः	९८	३६८-३८०
२२.	करणगुणाध्यायः	९९	३८१-३९४
२३.	नक्षत्रजातकाध्यायः	१००	३९५-४०७
२४.	राशिविभागाध्यायः	१०१	४०८-४११
२५.	विवाहपटलाध्यायः	१०२	४१२-४२०
२६.	ग्रहगोचराध्यायः	१०३	४२१-५२१
२७.	रूपसत्राध्यायः	१०४	५२२-५२८
२८.	द्वादशमासनामाध्यायः	१०४	५२९-५३०
२९.	उपसंहाराध्यायः	१०५	५३०-५३४
३०.	शास्त्रानुक्रमणी:	१०६	५३४-५४०
३१.	परिशिष्टः		५४१-६०५

।।श्रीगणेशाय नमः।।

।।श्री जानकीवल्लभो विजयते।।

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता

भट्टोत्पलविवृतिसहिता

बृहत्संहिता

हिन्दीव्याख्ययोपबृंहिता

[चतुर्थो भागः]

।।अथाष्टसप्ततितमोऽध्याय:।।

शय्यासनलक्षणाध्यायः

अथ शय्यासनलक्षणं व्याख्यायते।

तत्रादावेव तदारम्भप्रदर्शनार्थमाह—

सर्वस्य सर्वकालं यस्मादुपयोगमेति शास्त्रमिदम्।
राज्ञां विशेषतोऽतः शयनासनलक्षणं वक्ष्ये।।१।।

शय्यासनलक्षण नामक अध्याय ७८ की व्याख्या की जाती है।

सर्वप्रथम इसका प्रयोजन कहते हैं—

शय्यासन का विषय (शास्त्र) सभी जनों के लिए सार्वकालिक उपयोगी है। राजाओं के लिए इसका विशेष प्रयोजन है, अत: शय्यासन के लक्षणों को कहा जा रहा है।।१।।

यस्माद्यतं इदं शास्त्रं शयनासनलक्षणाख्यं सर्वजनस्य सर्वकालमुपयोगमेति गच्छति, विशेषतो नृपाणामुपयोगमेति। अतोऽस्माच्छयनासनलक्षणं वक्ष्ये कथयिष्ये।।१।।

यत: यह शयनासनलक्षण नामक शास्त्र (विषय) सर्वजन के लिए सार्वकालिक उपयोगी होता है और राजाओं के लिए तो विशेष उपयोगी है, अत: इस शयनासन-लक्षण को यहाँ पर कहा जायेगा।।१।।

तत्रादौ नृपाणामानसलक्षणमाह–

असनस्पन्दचन्दनहरिद्रसुरदारुतिन्दुकीशालाः।
काश्मर्यञ्जनपद्मकशाका वा शिंशपा च शुभाः।।२।।

राजाओं के आसन का लक्षण कहते हैं–

आसन हेतु असन, स्पन्दन, चन्दन, हरिद्र, देवदारु, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अञ्जन, पद्मक, शाक और शिंशप (शीशम); ये वृक्ष शुभ होते हैं।।२।।

असनम्। स्पन्दनम्। चन्दनं मलयजम्। हरिद्रः सुरदारुर्देवदारुः। तिन्दुकी। शालः। एते सर्व एव वृक्षविशेषाः। काश्मरी। अञ्जनं शौभाञ्जनम्। पद्मकः शाकः। शिंशपा च। एते वृक्षाः। सर्व एव शयने शय्यायामासने च शुभाः शुभदाः।।२।।

असन (असना), स्पन्दन, मलयचन्दन, हरिद्र, सुरदारु अर्थात् देवदार, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अञ्जन अर्थात् शौभाञ्जन, पद्मक, शाक (सागौन), शिंशप अर्थात् शीशम; ये सभी वृक्षविशेष शय्या तथा आसन के लिए शुभदायक होते हैं।।२।।

अथाशुभवृक्षानाह–

अशनिजलानिलहस्तिप्रपातिता मधुविहङ्गकृतनिलयाः।
चैत्यश्मशानपथिजोर्ध्वशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च।।३।।

अब अशुभ वृक्षों को कहते हैं–

अशनि (विद्युत्), जल, वायु, हाथी द्वारा गिरे हुये वृक्ष तथा मधुमक्खियों और पक्षियों द्वारा सेवित और चैत्य (मन्दिर का वृक्ष), श्मशान, पथ पर अवस्थित वृक्ष एवं ऊपर से सूखे हुये तथा लताओं से आवेष्टित वृक्ष अशुभ होते हैं।।३।।

अशनिर्विद्युत्। जलं पानीयम्। अनिलो वायुः। हस्ती करी। एभिर्ये वृक्षाः प्रपातिताः प्रपीडिताः। वा मधुविहङ्गकृतनिलयाः, मधुभिर्मीक्षिकाभिः, विहङ्गैश्च पक्षिभिः कृता निलया निवास्थानानि येषाम्। चैत्यः प्रधानवृक्षः। श्मशानजः पितृवनजातः। पथिजः। मार्गजातः। ऊर्ध्वशुष्कः स्थानस्थ एवोपरि भागे शुष्को नीरसो जातः। वल्लीभिर्निबद्धः। एते सर्व एवाशुभाः।।३।।

अशनि अर्थात् तडित्, जल अर्थात् पानी, अनिल अर्थात् वायु, हस्ती अर्थात् हाथी के द्वारा गिराये गये वृक्ष, तथा मधुमक्खियों और चिड़ियों का जिन पर बसेरा हो, ऐसे वृक्ष, चैत्य अर्थात् मठ-मन्दिरों में जो प्रधान वृक्ष हो, श्मशान भूमि में उत्पन्न, पथ अर्थात् मार्ग में उत्पन्न वृक्ष, ऊर्ध्व-शुष्क अर्थात् जिसका ऊपरी भाग सूखा एवं नीरस हो तथा जो लताओं से जकड़ा हुआ हो, इस प्रकार के सभी वृक्ष अमंगलकारी होते हैं।।३।।

अन्यदप्याह–

कण्टकिनो ये च स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च।
सुरभवनजाश्च न शुभा ये चापरयाम्यदिक्पतिताः।।४।।

और भी कहते हैं–

जो वृक्ष काँटेदार हों, जो बड़ी नदियों के संगम पर उत्पन्न हों और जो देवालयों में उत्पन्न हों, वे वृक्ष शुभ नहीं होते हैं। जो वृक्ष पश्चिम और दक्षिण दिशा में गिरे हों, ऐसे वृक्ष भी शुभ नहीं होते हैं।।४।।

कण्टकिन इति। ये च कण्टकिनः सकण्टकाः स्युर्भवेयुः। ये च महानदीसङ्गमोद्भवाः, महानद्यः प्रधानसरितः, सङ्गमः संयोगो यत्र तत्र येषामुद्भव उत्पत्तिः। तथा ये च सुरभवनजाता देववेश्मनि जाताः, ते सर्व एव वृक्षा न शुभाः। ये चाऽपरस्यां पश्चिमायां दक्षिणस्यां दिशि पतितास्तेऽपि न शुभाः।।४।।

कण्टकी अर्थात् काँटों से युक्त वृक्ष तथा महानदियों अर्थात् प्रमुख नदियों के संगम-स्थल पर उत्पन्न वृक्ष तथा सुरभवन अर्थात् मन्दिर परिसर में उत्पन्न हों, वे सभी वृक्ष अशुभ होते हैं। जो वृक्ष अपर अर्थात् पश्चिम अथवा दक्षिण दिशा में गिरे हों वे भी शुभ नहीं होते हैं।।४।।

अथाप्रशस्तवृक्षरचितस्य शयनासनस्य फलमनिष्टमाह–

प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात् कुलविनाशः।
व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्था अनेकविधाः।।५।।

अशुभ वृक्षों से निर्मित शयनासन का अनिष्ट-फल कहते हैं–

निषिद्ध अशुभ वृक्षों से निर्मित शय्या और आसन के प्रयोगों से वंश का विनाश होता है। साथ ही रोग, अपव्यय, विवाद तथा अनेक प्रकार के अनर्थ होते हैं।।५।।

प्रतिषिद्धेनाप्रशस्तेन वृक्षेण तरुणा यन्निर्मितं कृतं शयनमासनं वा तस्य सेवनात् कुलविनाशो वंशक्षयो भवति, तथा व्याधिः पीडा, भयं भीतिः, व्ययमर्थहानिः, कलहोऽप्रीतिः। एते भवन्ति। अनेकविधा अनेकप्रकाराश्चानर्था अनर्थ-कृतयो भवन्ति सन्ति।।५।।

प्रतिषिद्ध अर्थात् गर्हित वृक्ष के द्वारा निर्मित शय्या अथवा आसन के उपयोग से वंश का क्षय होता है तथा व्याधि अर्थात् पीड़ा, भय और व्यय अर्थात् धन-हानि एवं कलह अर्थात् अप्रिय-प्रसङ्ग होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के अनर्थ अर्थात् व्यर्थ के कार्य होते हैं।

अथ प्राक्छिन्नस्य दारुणः परीक्षणवशेन फलमाह–

पूर्वच्छिन्नं यदि वा दारु भवेत्तत्परीक्ष्यमारम्भे।
यद्यारोहेत् तस्मिन् कुमारकः पुत्रपशुदं तत्।।६।।

पूर्वछिन्न वृक्ष के परीक्षणानुसार फल कहते हैं–

पूर्व में किञ्चित् छिन्न अर्थात् प्रकल्पित वृक्ष का प्रारम्भ में परीक्षण करना चाहिए। यदि उस वृक्ष पर कोई सुकुमार बालक आरोहण करे, तब वह वृक्ष सन्तान एवं पशु का लाभ देने वाला होता है।।६।।

यदि वा कदाचिद्दारु काष्ठं पूर्वच्छिन्नं प्राक्कल्पितं भवेत् स्यात् तदा तद्दार्वारम्भे प्रारम्भकाले परीक्ष्य विचार्यम्।[1] ''अशनिजल'' इत्यादिनोक्तलक्षणेन तस्मिन् पूर्वच्छिन्ने दारुणि यदि कश्चित् कुमारको बालक आगत्याऽऽरोहेदु-पर्युपविशति, तदा तत्कृतं शयनासनं पुत्रपशुदं भवति। पुत्रान् सुतान् पशूंश्चतुष्पदान् ददाति।।६।।

जो दारु अर्थात् काष्ठ पहले छिन्न हो चुका है, तब उस काष्ठ के आरम्भ काल में ही परीक्षण कर विचार करना चाहिए। इस अध्याय के तृतीय श्लोक में जो लक्षण बतलाए गये हैं, उनके अनुसार छिन्न वृक्ष पर यदि कोई बालक आकर बैठे, तब उस प्रकार के काष्ठ से निर्मित शयनासन पुत्र और पशु का प्रदाता होता है। पुत्र अर्थात् सन्तति और पशु अर्थात् चौपाया पशु से तात्पर्य है।।६।।

अथारम्भकाले शुभचिह्नान्याह–

सितुकुसुममत्तवारणदध्यक्षतपूर्णकुम्भरत्नानि।
मङ्गल्यान्यन्यानि च दृष्ट्वारम्भे शुभं ज्ञेयम् ।।७।।

आरम्भ में शुभ चिह्नों को कहते हैं–

सफेद फूल, मतवाला हाथी, दही, अक्षत, पूर्णघट और रत्नादि अन्य मांगलिक वस्तुओं को, आरम्भ में ही देखकर शुभ समझना चाहिए।।७।।

सितकुसुमनि श्वेतपुष्पाणि। मत्तवारणो मत्तहस्ती। दधि क्षीरविकारः। अक्षता यवाः। पूर्णकुम्भो जलपूर्णो घटः। रत्ननि मणयः। मङ्गल्यानि। अन्यानि शङ्खशब्दवेदध्वनिगोचक्रवाककोकिलादीनां शब्दाः। आरम्भे आरम्भकाले। दृष्ट्वाऽवलोक्य शुभं ज्ञेयं ज्ञातव्यमिति।।७।।

सितकुसुम अर्थात् श्वेत पुष्प, मत्तवारण अर्थात् मदयुक्त हाथी, दधि अर्थात् दूध

---

१. बृ. सं. ७८/३.

से निर्मित (विकार) दही, अक्षत अर्थात् जौ, पूर्णकुम्भ अर्थात् जल से भरा कलश, रत्नों अर्थात् मणियों और अन्य मांगलिक घोष अर्थात् शंख-वादन, वेद ध्वनि तथा गाय, चक्रवाक और कोयल आदि की ध्वनियों को आरम्भ काल में देखकर और श्रवण कर शुभता का ज्ञान करना चाहिए॥७॥

अथ नृपस्य शय्यायाः प्रमाणमाह–

कर्माङ्गुलं यवाष्टकमुदरासक्तं तुषैः परित्यक्तम्।
अङ्गुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता॥८॥

राज-शय्या का प्रमाण बतलाते हैं–

भूसी रहित आठ जौ जिनके मध्यभाग परस्पर सटे हुए हों, उनको एक कर्माङ्गुल कहा जाता है। इस प्रमाण से १०० कर्माङ्गुल मान की लम्बी शय्या राजा के लिए विजय-दायिनी होती है॥८॥

अष्टौ यवा यवाष्टकम्। तुषैः परित्यक्तं तुषरहितम्। परस्परमन्योन्यमुदरासक्तं कर्मामङ्गुलसंज्ञं भवति। तेनाङ्गुलप्रमाणेन नृपाणां राज्ञामङ्गुलशतं महती दीर्घा शय्या कृता रचिता जयाय भवति॥८॥

आठ जौ का यवाष्टक होता है। यह तुष अर्थात् भूसी (छिलका) से रहित और परस्पर उदरासक्त अर्थात् मध्यभाग से सटे हुए हों तो इनकी "कर्माङ्गुल" संज्ञा होती है। इस प्रमाण से एक सौ कर्माङ्गुल लम्बी शय्या निर्मित होने पर वह राजा के लिए जयप्रदायिका होती है॥८॥

अथ नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां शय्याप्रमाणमाह–

नवतिः सैव षडूना द्वादशहीना त्रिषट्कहीना च।
नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां स्युर्यथासङ्ख्यम्॥९॥

राजकुमार-मन्त्री-सेनापति और पुरोहित की शय्या का मान कहते हैं–

नब्बे अङ्गुल लम्बी राजकुमार की शय्या तथा इससे क्रमशः ६,१२ और १८ अङ्गुल न्यून मन्त्री, सेनापति एवं राजपुरोहित की शय्या का मान होता है॥९॥

अङ्गुलानां नवतिर्नृपपुत्रस्य राज्ञः सुतस्य दीर्घा शय्या कार्या। सैव नवतिः षडूना चतुरशीत्यङ्गुलानि सचिवस्य मन्त्रिणो दीर्घा कार्या। सैव नवतिर्द्वादशहीना– ष्टसप्तत्यङ्गुलानि बलपते सेनापतेः। सैव नवतिस्त्रिषट्कहीना अष्टादशभिरङ्गुलैर्न्यूना पुरोधस आचार्यस्य शय्या दीर्घा कार्या। दैवज्ञस्याप्येवं समानत्वादिति॥९॥

नब्बे अङ्गुल लम्बी शय्या राज-पुत्र की होनी चाहिए। नब्बे में छः अंगल न्यून अर्थात् ८४ अंगुल लम्बी मन्त्री की शय्या होगी। नब्बे में १२ न्यून अर्थात् ७८ अंगुल लम्बी सेनापति की शय्या होती है। उसी नब्बे में से १८ न्यून कर अर्थात् ७२ अंगुल लम्बी शय्या पुरोहित (आचार्य) की होगी। पुरोहित के समकक्ष होने के कारण राज-ज्योतिषी की शय्या भी तुल्य तत्तुल्य ७२ अंगुल की ही होती है।।९।।

अथ विष्कम्भलक्षणं पादोच्छ्रायप्रमाणं चाह—

अर्धमतोऽष्टांशोनं विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः।
आयामत्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकुक्ष्यशिराः।।१०।।

शय्या की चौड़ाई तथा पावे की ऊँचाई कहते हैं—

आचार्य विश्वकर्मा ने लम्बाई से आधा से अष्टमांश न्यून विष्कम्भ अर्थात् शय्या की चौड़ाई रखने को कहा है। लम्बाई का तृतीयांश पावा (पाद) की कुक्षि-शिरा पर्यन्त ऊँचाई कही गई है।।१०।।

अतोऽस्माद् दैर्घ्यादर्धं दलमष्टांशोनमष्टभागवर्जितं विष्कम्भो विस्तारो विश्वकर्मणा प्रोक्तः कथितः। तद्यथा—अङ्गुलशतं नृपशय्या। अतोऽर्धं पञ्चाशदङ्गुलानि। एतदष्टांशोनं त्रिचत्वारिंशदङ्गुलानि सषड्यवानि विष्कम्भो वैपुल्यम्। एवं स्वदैर्घ्यानुसारेणान्यासामपि कल्पनीयम्। आयामत्र्यंशसम इति। आयामस्य दैर्घ्यस्य यस्त्र्यंशस्तृतीयो भागस्तत्समस्ततुल्यः पादस्योच्छ्रायः कार्यः। स च सकुक्ष्यशिराः सह कुक्ष्येण शिरो वर्तत इति सकुक्ष्यशिरा पादोच्छ्राय इति। एवमन्यासामपि स्वदैर्घ्यानुसारेण कल्पनीयम्। तथा च विश्वकर्मणोक्तम्—

शय्या के दैर्घ्य (लम्बाई) का आधा भाग अपने अष्टमांश से हीन कर विष्कम्भ अर्थात् विस्तार (चौड़ाई) का प्रमाण भगवान् विश्वकर्मा ने कहा है। जैसा कि—राजा की शय्या १०० अंगुल दीर्घ होती है। इसका आधा ५० अंगुल होता है। इसका अष्टमांश ६ अंगुल २ जौ हुआ। ५०-६.२=४३.६ अंगुल यह विष्कम्भ अर्थात् विस्तार का मान होगा। इसी प्रकार अपनी-अपनी लम्बाई के अनुसार अपने दैर्घ्य अर्थात् चौड़ाई की कल्पना करनी चाहिए। आयाम अर्थात् दैर्घ्य का तृतीय भाग तुल्य पाद (पावा) की ऊँचाई होती है। यह पाद की ऊँचाई शिरा और कुक्षि पर्यन्त समझनी चाहिए। इसी प्रकार अन्य सभी शय्याओं का अपने दैर्घ्य के अनुसार पादोन्नति की कल्पना करनी चाहिए। जैसा कि विश्वकर्मा ने कहा—

अन्योन्यमुदरासक्तं वितुषं तु यवाष्टकम्।
कर्माङ्गुलमिति प्रोक्तं तेन मानेन कारयेत्।।

नृपाणामङ्गुलशतं शय्या दीर्घा जयावहा।
नवतिर्नृपपुत्रस्य सा षडूना तु मन्त्रिणः।।
द्वादशोना बलेशस्य त्रिषट्कोना पुरोधसः।
दैवज्ञमानमेवैतत् तुल्यत्वात् कारयेत् ततः।।
दैर्घ्यमष्टमभागोनं विष्कम्भः परिकीर्तितः।
आयामत्र्यंशतुल्यश्च पादोच्छ्रायः प्रकीर्तितः।।
सकुक्ष्यशिरसो ज्ञेयः शय्यायाः शुभकारकः।
ऊनाधिका च या शय्या सा ज्ञेया स्वामिनोऽशुभा। ।इति।।१०।।

परस्पर उदरासक्त तुष रहित ८ जौ को कर्माङ्गुल का प्रमाण कहा गया है और इसी मान से दैर्घ्य विस्तार आदि का मापन किया जाता है। कर्माङ्गुल ही सामान्य अर्थों में अगुल कहा गया है। राजाओं के लिए १०० अंगुल लम्बी शय्या विजयदायिका होती है। राजकुमार की शय्या ९० अंगुल की और उससे ६ अंगुल न्यून पुरोहित की शय्या होती है। दैवज्ञ तथा पुरोहित सम-कक्ष माने जाते हैं। अत: इन दोनों की शय्या का मान एक समान ही रखना चाहिए। दैर्घ्य के मान को अष्टमांश से न्यून करने पर विष्कम्भ अर्थात् विस्तार कहा गया है। विस्तार का तीसरा भाग पाद की ऊँचाई होती है। शिर तथा कुक्षि से यह पाद का मान होता है जो शय्या के लिए शुभकारक है। उचित प्रमाण से न्यून अथवा अधिक प्रमाण की शय्या स्वामी के लिए अशुभकारक समझनी चाहिए।।१०।।

अधुना दारूणां विशेषफलमाह–

यः सर्वः श्रीपर्ण्या पर्यङ्को निर्मितः स धनदाता।
असनकृतो रोगहरस्तिन्दुकसारेण वित्तकरः।।११।।
यः केवलशिंशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः।
चन्दनमयो रिपुघ्नो धर्मयशोदीर्घजीवितकृत्।।१२।।
यः पद्मकपर्यङ्कः स दीर्घमायुः श्रियं श्रुतं वित्तम्।
कुरुते शालेन कृतः कल्याणं शाकरचितश्च।।१३।।
केवलचन्दनरचितं काञ्चनगुप्तं विचित्ररत्नयुतम्।
अध्यासन् पर्यङ्कं विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः।।१४।।

वृक्षों के विशेष फल कहे जाते हैं–

श्रीपर्णी वृक्ष की काष्ठ से निर्मित शय्या धनप्रदायिका होती है। असना से निर्मित शय्या रोगनिवारक तथा तिंदुकसार से निर्मित धनप्रदात्री होती है।।११।।

जो शय्या केवल शीशम से बनी हो वह विविध प्रकार से वृद्धि करती है। चन्दन से निर्मित पूर्ण शय्या शत्रु विनाशिनी तथा धर्म यश और दीर्घ जीवन प्रदान करती है॥१२॥

जो पद्मक काष्ठ का पलंग हो, वह दीर्घ-पुण्य, प्रभूत ज्ञान और धन को देता है। शाल अर्थात् साखू से निर्मित अथवा सागौन की लकड़ी से निर्मित हो, वह कल्याणकारी होती है॥१३॥

केवल चन्दन से निर्मित शय्या जो सुवर्ण अथवा विचित्र रत्नों से युक्त हो उस पर अधिष्ठित राजा देवों से भी पूजित होता है॥१४॥

यः सर्वः श्रीपर्ण्या इति। यः पर्यङ्कः सर्वो निःशेषं श्रीपर्ण्या निर्मितो रचितः साधनदाता वित्तप्रदो भवति। यः सर्वोऽसनकृतः सरोगहरो रोगान् हरति विनाशयति। यः सर्वस्तिन्दुकसारेण रचितः स वित्तकरो धनकरः॥११॥

जो पलंग श्रीपर्णी के काष्ठ से पूर्णतः निर्मित हो, वह धन-प्रदायक होता है। जो असना-काष्ठ से पूर्णतया बना हो, वह रोगों का विनाशक होता है। जो पलंग तिन्दुक-सार वृक्ष के काष्ठ से निर्मित हो, वह धनदायक रहता है॥११॥

यः केवल इति। यः पर्यङ्कः केवलः शिंशपयैव निर्मितः सबहुविधं बहुप्रकारं वृद्धिकरः। यः सर्वश्चन्दनमयश्चन्दनविरचितः पर्यङ्कः स रिपुघ्नस्तथा धर्मं यशः कीर्त्तिं दीर्घं च जीवितं करोति॥१२॥

जो पर्यङ्क (पलंग) केवल शिंशप (शीशम) से बना हुआ होता है, वह विविध प्रकार से उन्नति कराता है। जो पलंग पूर्णतया चन्दन की लकड़ी का बना हो, वह शत्रु-संहारक, धर्म, यश और दीर्घायुष्य का दाता होता है॥१२॥

यः पद्मकपर्यङ्क इति। यः सर्वः पद्मकरचितः पर्यङ्कः स आयुर्जीवितं दीर्घं चिरकालस्थायि। श्रियं लक्ष्मीम्, श्रुतं विद्याशुभं धर्म्यम्, वित्तं धनं कुरुते। तथा शालेन कृतो रचितः शाकरचितश्च कल्याणं श्रेयः कुरुते॥१३॥

जो पद्मक-काष्ठ से बना हुआ पलंग हो, वह दीर्घ-जीवन, धन, विद्या, अध्यात्म और वित्त (धन) का प्रदाता होता है। शालवृक्ष अर्थात् सागौन और साखू की लकड़ी से बना हुआ पलंग कल्याणकारी अर्थात् श्रेयस्कर होता है॥१३॥

केवलचन्दनरचितमिति। यत्पर्यङ्कं केवलेनैव चन्दनेन विरचितं निर्मितं तथा काञ्चनेन सुवर्णेन गुप्तमाच्छादितम्। विचित्रैर्नानाकारै रत्नैर्मणिभिर्युक्तं तन्नृपो राजा अध्यासन्नुपरि तिष्ठन् विबुधैर्देवैरपि पूज्यतेऽर्च्यते॥१४॥

वह पलंग जो कि केवल चन्दन-काष्ठ से निर्मित हो और स्वर्ण से युक्त तथा विविध प्रकार के रत्नों से संयुक्त हो, तो इस प्रकार के आसन पर अधिष्ठित राजा देवों से भी पूजित अर्थात् सर्वपूज्य होता है।।१४।।

अथ व्यतिमिश्रदारूणां फलमाह—

अन्येन समायुक्ता न तिन्दुकी शिंशपा च शुभफलदा।
न श्रीपर्णेन च देवदारुवृक्षो न चाप्यसनः।।१५।।
शुभदौ तु शालशाकौ परस्परं संयुतौ पृथक् चैव।
तद्वत् पृथक् प्रशस्तौ सहितौ च हरिद्रककदम्बौ।।१६।।
सर्वः स्पन्दनरचितो न शुभः प्राणान् हिनस्ति चाम्बकृतः।
असनोऽन्यदारुसहितः क्षिप्रं दोषान् करोति बहून्।।१७।।
अम्बस्पन्दनचन्दनवृक्षाणां स्पन्दनाच्छुभाः पादाः।
फलतरुणा शयनासनमिष्टफलं भवति सर्वेण।।१८।।

मिश्रित वृक्षों का फल कहते हैं–

तिन्दुकी और शीशम की लकड़ी किसी और लकड़ी से संयुक्त होने पर शुभ-फल नहीं करती है। श्रीपर्ण के साथ देवदार तथा असना का संमिश्रण भी शुभ नहीं रहता है।।१५।।

शाल (सागौन) और शाक (साखू) का परस्पर संयोग अथवा पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र रूप से बना हुआ पलंग शुभ होता है। इसी प्रकार हरिद्रक और कदम्ब-काष्ठ का संयुक्त अथवा स्वतन्त्र निर्माण शुभ रहता है।।१६।।

पूर्णतः स्पन्दन अथवा अम्बक से बना हुआ पलंग शुभ नहीं है, प्राणघातक होता है। असना का अन्य लकड़ी से संयोग भी शीघ्रता से अनेक दोषों को उत्पन्न करता है।।१७।।

स्पन्दन, अम्बक और चन्दन वृक्षों में स्पन्दन के पाद (पावा) शुभ होते हैं। सभी प्रकार के फलदार वृक्षों के काष्ठ से अभीष्टफल की प्राप्ति होती है।।१८।।

अन्येन समायुक्तेति। तिन्दुकी शिंशपा च अन्येनापरेण दारुणा समायुक्ता सहिता शुभफलदा न भवति। अशुभेत्यर्थः। न श्रीपर्णेन च देवदारुर्युक्तः शुभफलदो भवति। एवं श्रीपर्णेन चासनो युक्तो न शुभफलदो भवति।।१५।।

तिन्दुकी और शीशम की लकड़ी अन्य प्रकार की लकड़ी से मिश्रित होने पर शुभ फलदायी नहीं होती है, अर्थात् अशुभ होती है। श्रीपर्ण के साथ देवदारू का योग

शुभ फल नहीं देता है। इसी प्रकार श्रीपर्ण के साथ असना का संयोग भी शुभद नहीं होता है॥१५॥

शुभदाविति। शालशाकौ परस्परमन्योन्यं संयुक्तौ शुभदौ पृथक् चासंयुक्तौ केवलावपि शुभदौ। तद्वत्तेनैव प्रकारेण पृथक् पृथक् सहितौ च हरिद्रककदम्बौ प्रशस्तौ।।१६।।

शाल (सागौन) और शाक (साखू) का परस्पर संयोग शुभदायक होता है। ये पृथक्-पृथक् भी शुभ रहते हैं। इसी प्रकार संयुक्त अथवा स्वतन्त्र हरिद्रक और कदम्ब की लकड़ी उत्तम मानी जाती है॥१६॥

सर्वः स्पन्दनरचित इति। सर्वो निःशेषं स्पन्दनेन रचितो निर्मितो न शुभः पर्यङ्कः। यतः प्राणानसून् हिनस्ति नाशयति। अम्बकृतश्चशब्दादेवमेव प्राणान् हिनस्ति। असनोऽन्येनापरेण दारुणा संयुक्तः सहितः क्षिप्रमाश्वेव बहून् प्रभूतान् दोषान् करोति।।१७।।

सम्पूर्ण रूप से स्पन्दन द्वारा निर्मित पर्यङ्क शुभ नहीं होता है, यह प्राणों का हरण करता है। अम्ब से बना हुआ भी इसी प्रकार से प्राण-हर्ता होता है। असना को किसी अन्य लकड़ी से युक्त कर बनाया जाये तो यह तत्काल बहुत से दोषों को उत्पन्न करता है॥१७॥

अम्बस्पन्दनेति। अम्बः। स्पन्दनम्। चन्दनम्। एषां वृक्षाणां स्पन्दनात् स्पन्दनवृक्षात् पादाः शुभाः। सर्वेण येन केनचित् फलदारुणा फलवृक्षेण शय्यासनमिष्टं फलं शुभफलं भवति।।१८।।

अम्ब, स्पन्दन और चन्दन वृक्षों से स्पन्दन-वृक्ष के पाद (पावे) शुभ होते हैं। जिस किसी भी फलदार वृक्ष से निर्मित शय्यासन इष्टफलकारक अर्थात् शुभ-प्रद होते हैं॥१८॥

अथ सर्वेषां वृक्षाणां प्रशस्तगजदन्तेनालङ्कारविधिः कार्य इत्येतदाह—

गजदन्तः सर्वेषां प्रोक्ततरूणां प्रशस्यते योगे।
कार्योऽलङ्कारविधिर्गजदन्तेन प्रशस्तेन।।१९।।

सभी वृक्षों में गजदन्त से अलङ्करण की विधि—

सभी पूर्वोक्त वृक्ष-काष्ठों के साथ गजदन्त का संयोग शुभ होता है। श्रेष्ठ गजदन्त के द्वारा शय्यासन को अलंकृत करना चाहिए॥१९॥

प्रोक्ततरूणां कथितवृक्षाणां सर्वेषां निःशेषाणां योगे गजदन्तो हस्तिरदः। प्रशस्यते स्तूयते इष्यत इत्यर्थः। प्रशस्तेन लक्षणसंयुक्तेन गजदन्तेन हस्तिरदेनालङ्कारविधिः कार्यः शोभामुत्पादयेत् ।।१९।।

उपरि कथित सभी प्रकार के वृक्षों के साथ गजदन्त अर्थात् हाथी के दाँत का संयोजन प्रशस्त अर्थात् अभिमत और अपेक्षित है। प्रशस्त अर्थात् शुभ लक्षणों वाले गजदन्त (हाथी-दाँत) से अलंकृत अर्थात् सुशोभित करना चाहिए।।१९।।

अथ गजदन्तलक्षणमाह–

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोह्य कल्पयेच्छेषम्।
अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित्।।२०।।

गजदन्त का लक्षण कहते हैं–

दन्तमूल की परिधि का जो परिमाण हो उसका द्विगुणित भाग त्यागकर शेष गजदन्त का प्रयोग करें। जलीय प्रदेशों में उससे कुछ अधिक भाग तथा पर्वतीय प्रदेशों में इससे कुछ न्यून भाग को त्यागकर शेष का ग्रहण किया जा सकता है।।२०।।

गजदन्तस्य मूले यः परिधिः परिमण्डलं द्विरायतं द्विगुणं प्रोह्य त्यक्त्वा शेषं कल्पयेच्छिन्द्यात्। एतदुक्तं भवति-मूले यः परिणाहो गजदन्तस्य तद्द्विगुण-मायतं गजदन्तमूलात् परित्यज्य शेषं कल्पयेत्। बहूदको देशोऽनूपः। अनूप-चराणां गजानां दन्तमूलपरिधिं द्विरायतमधिकमपि प्रोह्य शेषं कल्पयेत्। गिरिचारिणां पर्वतचारिणां न्यूनमपि प्रोह्य शेषं कल्पयेत्। यतः पर्वतशिलास्तद्दन्तान् घर्षन्ति।।२०।।

गजदन्त के मूल की जो परिधि (मोटाई) हो उसके द्विगुणित भाग को मूल स्थान से छोड़कर शेष भाग का छेदन (काटना) करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गजदन्त के मूलभाग की मोटाई का जितना मान (इंच या सेन्टीमीटर में) हो उसका दुगुना मान गजदन्त के मूलस्थान से छोड़कर शेष अग्र भाग को काट लें। जलाधिक्य वाले प्रदेश को 'अनूप' कहा जाता है। अनूप प्रदेश में विचरण करने वाले हाथी के दन्तमूल के द्विगुणित परिधि से अधिक भाग को छोड़कर भी शेष भाग का ग्रहण किया जा सकता है। पर्वतचारी हाथी के द्विगुणित से अल्प भाग को छोड़कर भी शेष भाग का ग्रहण करे। इनके दाँत पर्वतों से घर्षित रहने के कारण कुछ सामान्यतया छोटे होते हैं, यही कारण है।।२०।।

अथ गजदन्तस्य कल्पितस्य शुभाशुभमाह–

श्रीवृक्षवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु।
छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि।।२१।।
प्रहरणसदृशेषु जयो नन्द्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः।
लोष्ठे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः।।२२।।
स्त्रीरूपे धननाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः।
कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन।।२३।।
कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशित्वम्।
गृध्रोलूकध्वाङ्क्षश्येनाकारेषु जनमरकः।।२४।।
पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत् स्रुते रक्ते।
कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति।।२५।।

छेदित गजदन्त के शुभाशुभ लक्षण–

श्रीवृक्ष (बेल), वर्धमान चिह्न, छत्र, ध्वज अथवा चामर का प्रतिरूप यदि गजदन्त के काटे हुए भाग में दृष्ट हो तब आरोग्य, विजय, धनवृद्धि तथा सुख प्राप्त होते हैं।।२१।।

शस्त्र के सदृश होने पर विजय, नन्द्यावर्त के समान लक्षण हो तब विनष्ट देश की प्राप्ति होती है। लोष्ठ (ढेला) के समान चिह्न होने पर कभी पूर्व में प्राप्त प्रदेश की पुनः प्राप्ति होती है।।२२।।

स्त्री का प्रतिरूप दृष्ट होने पर धन का विनाश तथा भृङ्ग (भौंरा) के सदृश चिह्न होने पर पुत्र-संतान की उत्पत्ति होती है। कुम्भ (घड़ा) के सदृश होने पर निधि की प्राप्ति तथा दण्ड-सदृश चिह्न होने पर यात्रा में विघ्न होता है।।२३।।

कृकलास (गिरगिट), वानर और सर्प के समान लक्षणों से अकाल, रोग और शत्रु के वश में होना पड़ता है। गिद्ध, उल्लू, कौआ तथा बाज की आकृति होने पर जनसंहार होता है।।२४।।

पाश (रस्सी) अथवा कबन्ध (शिर विहीन शरीर) के सदृश लक्षण से राजा की मृत्यु होती है और रक्तस्राव के सदृश लक्षण होने पर जन-हानि होती है। काले, मटमैले, कर्कश और दुर्गन्धपूर्ण लक्षणों से अमंगल होता है।।२५।।

श्रीवृक्षवर्धमान इति। श्रीवृक्षः प्रसिद्धः। विल्वः वर्धमानश्चिह्नम्। वर्धमानो वास्तुसदृशं सरागमिति केचित्। छत्रमातपत्रम्। ध्वजः प्रसिद्धो विविधपटविरचितं चिह्नम्। चामर बालव्यजनम्। एषामनुरूपेषु सदृशेषु। छेदे दन्तच्छेदे। दृष्टेष्ववलोकितेषु।

आरोग्यमरोगित्वम्। विजयो विशेषेण जयः। धनवृद्धिर्वित्तवर्धनम्। सौख्यम्। एतानि भवन्ति।।२१।।

श्रीवृक्ष बेल (बिल्व) के नाम से प्रसिद्ध है। वर्धमान एक आकृति विशेष का नाम है, जिसका वर्णन वास्तुप्रकरण में किया गया है, छत्र, ध्वज जो कि विविध वस्त्रों से बना होता है, चामर अर्थात् चमरी गाय के बाल से बना हुआ चँवर; इन सभी के समान दन्तच्छेद की आकृति दृष्ट हो, तब निरोगिता, विजय अर्थात् विशेष जय, धन की वृद्धि और सौख्य की प्राप्ति होती है।।२१।।

प्रहरणसदृशेष्विति। प्रहरणमायुधादि। प्रहरणसदृशेषु छेदे दृष्टेषु जयो भवति। नन्द्यावर्तसदृशं तस्मिन् दृष्टे प्रनष्टस्यापहृतस्य देशस्य प्राप्तिर्लाभो भवति। लोष्टं मृत्खण्डम्। लोष्टसदृशेषु छेदे दृष्टेषु लब्धपूर्वस्य देशस्य सम्प्राप्तिर्लाभो भवति। पूर्वं लब्धो लब्धपूर्वः। आदावेव लब्धः सम्प्राप्तो हस्तीभूतः स लब्धपूर्वः। देशस्य सम्प्राप्तिर्लाभो भवति तस्येति।।२२।।

आयुध (शस्त्र) को प्रहरण कहते हैं। आयुध के समान छेदित भाग दृष्ट हो, तो जय होती है। नन्द्यावर्त के समान दृष्ट होने पर प्रनष्ट अर्थात् हारे हुए प्रदेश का लाभ होता है। लोष्ठ अर्थात् मिट्टी का खण्ड (ढेला), इसके समान छेदित भाग दृष्ट हो, तब पूर्व में प्राप्त प्रदेश का लाभ होता है। पूर्व में लब्ध पदार्थ को पूर्वलब्ध कहते हैं। इस प्रकार के पूर्वलब्ध देश की संप्राप्ति होती है।।२२।।

स्त्रीरूप इति। स्त्रीरूपे छेदे दृष्टे धनविनाशो, भृङ्गे सुतोत्पत्तिः। पुत्रजन्म भवति। कुम्भेन कुम्भसदृशे छेदे चिह्ने दृष्टे निधिप्राप्तिर्निधिलाभो भवति। दण्डेन दण्डाकारेण यात्राविघ्नमगमनं भवति।।२३।।

स्त्री के समान छेदित भाग दृष्ट हो तब धनहानि और भ्रमर सदृश हो तो पुत्र की प्राप्ति होती है। कुम्भ के सदृश चिह्न दिखायी पड़े तो धन का लाभ होता है। दण्ड के समान अर्थात् दण्डाकार छिद्र हो तब यात्रा में व्यवधान अर्थात् यात्रा नहीं हो पाती है।।२३।।

कृकलासेति। कृकलासः प्राणिविशेषः। कपिर्वानरः। भुजङ्गः सर्पः। एवंविधेषु छेदे दृष्टेषु असुभिक्षं दुर्भिक्षम्। व्याधयः पीड़ाः। रिपुवशित्वं शत्रूणां वश्यत्वम्। गृध्रोलूकौ पक्षिणौ। ध्वाङ्क्षः काकः। श्येनो वाजिकः। एतेषामाकारेषु दृष्टेषु छेदे जनानां मरको भवति।।२४।।

कृकलास एक प्राणी विशेष है जिसको लोक भाषा में गिरगिट कहा जाता है, कपि अर्थात् वानर, भुजंग सर्प; इनके सदृश छेदित भाग के दृष्ट होने पर दुर्भिक्ष, व्याधि और शत्रु के वशीभूत होना पड़ता है। गिद्ध और उल्लू पक्षी, ध्वांक्ष अर्थात् कौवा, श्येन अर्थात् बाज; इनके आकार का छेदित भाग दृष्ट हो तो जन संहार होता है।।२४।।

पाशेऽथवेति। पाशः प्रसिद्धो रज्जुरूपः। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषः। एवंविधेऽथवा छेदे दृष्टे नृपस्य राज्ञो मरणं मृत्युर्भवति। रक्ते शोणिते स्रुते निर्गते छेदाज्जनानां विपदो भवन्ति। कृष्णे कृष्णवर्णे। श्यावे मलिने। रूक्षे परुषे। दुर्गन्धे च छेदात्, अशुभमनिष्टं भवति।।२५।।

पाश अर्थात् रस्सी, कबन्ध अर्थात् जिसका शिर कटकर अलग हो गया हो, ऐसे पुरुष का स्वरूप दिखाई पड़े तब राजा की मृत्यु होता है। छेदित स्थान से खून निकल रहा हो तब जनता में विपत्ति आती है। छेदित भाग यदि काले रंग का, मटमैला रूक्ष अर्थात् कठोर और दुर्गन्ध युक्त हो तब अशुभ अर्थात् अनिष्ट फल होता है।।२५।।

अथ शुभच्छेदानां लक्षणं शयने च तथाविधं फलमाह—

शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः।
अशुभशुभच्छेदा ये शयनेष्वपि ते तथा फलदाः।।२६।।

छेदित भाग के शुभ लक्षणों को शयन सहित फल कहते हैं—

श्वेत वर्ण का, समतल, सुगंधिपूर्ण और चिकना छेदित भाग शुभप्रदायक होता है। छेदित भाग का गजदन्त में शुभाशुभ फल कहा गया है, शयनासन हेतु छेदित वृक्षों का भी शुभाशुभ फल इसी के अनुसार समझना चाहिए।।२६।।

शुक्लः शुक्लवर्णः। समस्तुल्यः। सुगन्धिः शोभनगन्धिः। स्निग्धो निर्मलः। एवंविधश्छेदः शुभावाहो भवति। ये छेदा अशुभाः शुभा दन्ते प्रोक्तास्ते शयनेष्वपि शय्यायां लग्नास्तथा तेनैव प्रकारेण फलदाः। तथाविधं फलं भवति। शुभमशुभं वा प्रयच्छतीत्यर्थः। दारूणामप्येवमेव वेदितव्याः।।२६।।

शुक्ल अर्थात् श्वेत वर्ण, समतुल्य, सुन्दर गन्ध वाला, स्निग्ध अर्थात् निर्मल, इस प्रकार का छेदित भाग शुभकारक होता है। गजदन्त के छेदित भागों के लिए जो शुभाशुभ फल कहे गये हैं उसी प्रकार शय्या में संलग्न काष्ठों के लिए भी फलदायक होते हैं। उन काष्ठों का शुभाशुभ फल उसी प्रकार प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि गजदन्त के सदृश ही वृक्षों के शुभाशुभ फल को जानना चाहिए।।२६।।

अथ दारूणां विनियोगमाह—

ईषायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रं प्रशस्तमाचार्यैः।
अपसव्यैकदिगग्रे भवति भयं भूतसञ्जनितम्।।२७।।

शय्या काष्ठ की प्रयोगविधि बतलाते हैं–

ईषा-काष्ठ का संयोजन दक्षिणाग्र क्रम से होने पर आचार्यों ने श्रेष्ठ माना है। अपसव्य क्रम से अग्र भाग का संयोजन भूत-जनित भय उत्पन्न करता है।।२७।।

ईषाशब्देन चत्वारि काष्ठानि घटितान्युच्यन्ते। शिरः पादभागयोर्द्वौ वाम-दक्षिणभागयोर्द्वाविति। तेषां परस्परं यत्र संयोगः शिरः पादकाष्ठयोर्द्वे द्वे छिद्रे कृत्वा वामदक्षिणपादकाष्ठानि तेषु क्षिपेत्। तत्रायं क्रमः–ईषायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रमाचार्यैः प्रशस्तमुक्तम्। प्रदाक्षिण्येनाग्रं यस्मिन्। अपसव्यैकदिगग्र इति। अपसव्येऽप्रदक्षिणस्थे। पूर्वोक्तविन्यस्तस्य शिरः काष्ठस्य यदग्रं तत्र दक्षिणदिक्स्थकाष्ठमूलं क्षिपेत्। तस्याग्रे पादान्तभागस्थं काष्ठमूलं क्षिपेत्। तदग्र उत्तरदिग्भागस्थकाष्ठमूलं क्षिपेत्। तदग्रे शिरः काष्ठमूलं क्षिपेत्। एवं पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरसंस्थानेन न्यासे कृते प्रदक्षिणाग्रं भवति। अपसव्ये न प्रदक्षिणस्थे पूर्वोक्तन्यासाद्विपर्ययस्थे तथैकदिगग्रस्थिते दारौ भूतसञ्जनितं भूतग्रहोत्पन्नं भयं भीतिर्भवति। शिरः पाद-भागकाष्ठयोरेकस्यां दिश्यग्रं यद्भवति तदैकदिगम्।।२७।।

ईषा शब्द का अर्थ चार प्रमुख शय्याकाष्ठ है, शिर और पैर के भाग वाले दो काष्ठ तथा वाम और दक्षिण भाग वाले दो काष्ठ मिलकर कुल चार काष्ठ होते हैं। इनका परस्पर जहाँ पर संयोग होता है वहाँ पर शिरोभाग के दोनों पावों में दो-दो छिद्र कर वाम और दक्षिण पाद काष्ठों को उनमें लगा दें। यहाँ पर इस प्रकार से क्रम होता है। ईषाकाष्ठ का संयोजन प्रदक्षिणाग्र क्रम से अग्रभाग और अपसव्य क्रम से अग्र भाग का प्रयोग है जिसका अर्थ प्रदक्षिणा क्रम ही है। पूर्वोक्त स्थापित शिरः काष्ठ का जो अग्र भाग है उसमें दक्षिण भाग वाले काष्ठ मूल का संयोजन करे उसके आगे पैर वाले भाग के काष्ठ मूल को संयोजित करें, उसके पश्चात् इसके अग्र भाग अर्थात् उत्तर दिशा के भाग में स्थित काष्ठ-मूल का संयोजन किया जाय। तदनन्तर शिरः काष्ठ-मूल का संयोजन करें, इस प्रकार क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के क्रम से काष्ठों का विन्यास करने पर प्रदक्षिणाग्र होता है। अपसव्य अर्थात् प्रदक्षिणाक्रम के विपरीत काष्ठों का विन्यास करने पर तथा एक ही दिशा में अग्र भाग का संयोजन करने के विपरीत काष्ठों का विन्यास करने पर तथा एक ही दिशा में अग्र भाग का संयोजन करने पर भूत-जनित अर्थात् भूत ग्रहों से उत्पन्न भय होता है। शिर और पैर के भाग वाले काष्ठों की अग्र दिशा यदि एक ही दिशा में हो, तो उसको एक दिगग्र कहा जाता है।।२७।।

अथ पदानां लक्षणमाह–

एकेनावाक्शिरसा भवति हि पादेन पादवैकल्यम्।
द्वाभ्यां न जीर्यतेऽन्नं त्रिचतुर्भिः क्लेशवधबन्धाः।।२८।।

पादों के लक्षण कहते हैं–

शय्या का यदि एक पावा अधोमुख (नीचा) हो तब पैर की विकलांगता होती है, दो पावे इस प्रकार के हो तब अन्न का पाचन नहीं होता है। तीन अथवा चार पावे इसी प्रकार दोष युक्त हों तब कष्ट, वध और बन्धन होता है॥२८॥

एकेन पादेन। अवाक्शिरसा अधोमुखेन। मूलाग्रविपर्ययस्थितेन। पादवैकल्यं स्वामिनो भवति। द्वाभ्यां पादाभ्यामेवंविधाभ्यामन्नं भुक्तं न जीर्यते न परिणामं याति। त्रिभिश्चतुर्भिश्च क्लेशवधबन्धा भवन्ति।।२८।।

अवाक् शिर के अधोमुख अर्थात् मूलाग्र भाग के विपरीत स्थित होने पर स्वामी के पाद की विकलता होती है। दो पावे इसी प्रकार के हों तो अन्न का परिपाक नहीं होता है अर्थात् अजीर्णता उत्पन्न होती है। तीन और चार पावे इसी प्रकार हों तो कष्ट, मृत्यु और बन्धन होते हैं॥२८॥

अथ पादस्य ग्रन्थियुक्तस्य लक्षणमाह–

सुषिरेऽथवा विवर्णे ग्रन्थौ पादस्य शीर्षगे व्याधिः।
पादे कुम्भो यश्च ग्रन्थौ तस्मिन्नुदररोगः।।२९।।
कुम्भाधस्ताज्जङ्घा तत्र कृतो जङ्घयोः करोति भयम्।
तस्याश्चाधारोऽधः क्षयकृद्द्रव्यस्य तत्र कृतः।।३०।।
खुरदेशे यो ग्रन्थिः खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः।
ईषाशीर्षण्योश्च त्रिभागसंस्थो भवेन्न शुभः।।३१।।

ग्रन्थियुक्त पाये का लक्षण–

पावे के शीर्ष भाग में छिद्र अथवा विवर्णता हो तो व्याधि होती है। यदि पावे के कुम्भ भाग में ग्रन्थि हो तब उदररोग होता है॥२९॥

कुम्भ के अधोभाग को जंघा कहा जाता है। उस जङ्घा में ग्रन्थि हो तो भय उत्पन्न होता है। जङ्घा के नीचे का भाग आधार होता है, जिसमें ग्रन्थि होने पर द्रव्य का क्षय होता है॥३०॥

खुरप्रदेश अर्थात् पाये के अधोभाग में गाँठ हो तब पशुओं को कष्ट होता है। ईषा और शीर्ष-पट्टिका के तृतीय भाग में स्थित गाँठ शुभ नहीं होती है॥३१॥

सुषिरेऽथवेति। पादस्य शीर्षगे शिरोगते ग्रन्थौ सुषिरे अन्तरसार अथवा विवर्णे विगतवर्णे दारुवर्णान्तरमाश्रिते व्याधिर्भवति शिरस्येव स्वामिनः। तस्मिन्नेव पादे यश्च कुम्भः कुम्भभागस्तस्मिन् ग्रन्थौ सत्युदररोगो भवति।।२९।।

पावे का ऊर्ध्वभाग छिद्रयुक्त हो अथवा विकृत वर्ण का हो अर्थात् काष्ठ के प्राकृतिक वर्ण से भिन्न वर्ण का हो तब उसके स्वामी को शिरोरोग होता है। उसी पावे में जो कुम्भ भाग होता है, यदि उसमें गाँठ हो, तो उदररोग होता है।।२९।।

कुम्भाधस्ताद्या जङ्घा तत्र कृतो ग्रन्थिजङ्घयोर्भयं करोति। तस्या जङ्घाया अधस्ताद् य आधारस्तत्र कृतो ग्रन्थिर्द्रव्यस्य धनादिकस्य क्षयकृद्भवति ।।३०।।

कुम्भ के नीचे जङ्घा भाग में गाँठ होने पर जङ्घा सम्बन्धी कष्ट होता है। जङ्घा के नीचे के आधार भाग में गाँठ पड़ी हो, तब धनादि का क्षय होता है।।३०।।

खुरदेशे इति। यो ग्रन्थिः खुरदेशे पादस्थाने स्थितः खुरिणामश्वादीनां स पीडाकरो निर्दिष्टः कथितः। ईषा पार्श्वपट्टिका। शीर्षणी शिरः काष्ठम्। तयोः समाने त्रिभागे तृतीयांशे यः स्थितो ग्रन्थिः स स्वामिनो न शुभो भवति। पादभागस्य काष्ठद्वितीयपट्टिका वा अपि त्रिभागसंस्था न शुभदैव।।३१।।

जो गाँठ खुर प्रदेश में अर्थात् पाये के निचले भाग में स्थित हो, वह खुर वाले अश्वादि पशुओं के लिए कष्टकारक कही गयी है, शय्या की पार्श्व पट्टिकाओं को ईषा तथा शीर्षकाष्ठ पट्टिकाओं को शीर्षणी कहते हैं। इन दोनों के तृतीय भाग में जो गाँठ होती है, वह शय्या स्वामी के लिए शुभकारी नहीं होती है। पाद भाग में दूसरी काष्ठ पट्टिका भी तृतीय भाग में ग्रन्थियुक्त होने पर शुभदा नहीं होती है।।३१।।

अधुना छिद्राणां नामान्याह-

निष्कुटमथ कोलाक्षं सूकरनयनं च वत्सनाभं च।
कालकमन्यद्धुन्धुकमिति कथितश्छिद्रसंक्षेपः।।३२।।

अब काष्ठ छिद्रों के नाम बतलाते हैं–

निष्कुट, कोलाक्ष, सूकरनयन, वत्सनाभ, कालक और धुन्धुक नामक छः प्रकार के छिद्र संक्षेप में कहे गये हैं।।३२।।

निष्कुटं नाम छिद्रम्। अथशब्दश्चार्थे। कोलाक्षम्। सूकरनयनं च। वत्सनाभं च। कालकम्। अन्यदपरं धुन्धुकम्। इत्येवंप्रकारेण छिद्राणां संक्षेपः समासः कथित उक्तः।।३२।।

निष्कुट नामक छिद्र, कोलाक्ष, सूकरनयन, वत्सनाभ, कालक तथा धुन्धुक नामक छिद्रों का संक्षिप्त रूप से यहाँ पर उल्लेख किया गया है।।३२।।

अथैतेषां लक्षणमाह–

घटवत् सुषिरं मध्ये सङ्कटमास्ये च निष्कुटं छिद्रम्।
निष्पावमाषमात्रं नीलं छिद्रं च कोलाक्षम्।।३३।।

सूकरनयनं विषमं विवर्णमध्यर्धपर्वदीर्घं च।
वामावर्तं भिन्नं पर्वमितं वत्सनाभाख्यम्।।३४।।
कालकसंज्ञं कृष्णं धुन्धुकमिति यद्वेवेद्धिनिर्भिन्नम्।
दारुसवर्णं छिद्रं न तथा पापं समुद्दिष्टम्।।३५।।

छिद्रों के लक्षण कहते हैं-

मध्य में घड़े के समान गम्भीर और मुख भाग में सङ्कीर्ण छिद्र होने से उसको निष्कुट कहा जाता है। धान और उड़द के समान आकार का नीला छिद्र कोलाक्ष कहा जाता है।।३३।।

विषम छिद्र सूकरनयन होता है। जो विकृत वर्ण तथा आधे से अधिक दीर्घ पर्वों वाला हो वह विवर्ण होता है। जो छिद्र वामावर्त पर्व (गाँठ) वाला हो उसको वत्सनाभ कहते हैं।।३४।।

काले वर्ण का छिद्र कालक संज्ञक होता है। जिसका आधा भाग काले वर्ण से विभक्त हो, उसे धुन्धुक कहते हैं। काष्ठ के वर्ण का ही यदि छिद्र हो, तो वह विशेष अशुभ नहीं कहा गया है।।३५।।

घटवत् सुषिरं मध्ये इति। यत्सुषिरं छिद्रं मध्ये मध्यभागे घटवत् कुम्भवत्।आस्ये मुखे च सङ्कटमल्पं तन्निष्कुटं नाम। निष्पावाः शालयः। निष्पावमात्रं निष्पावतुल्यं माषमात्रं च वा। नीलं नीलवर्णं तच्छिद्रं कोलाक्ष संज्ञम् ।।३३।।

जो सुषिर अर्थात् छिद्र, मध्य भाग में घड़े के समान और मुख भाग में संकट अर्थात् सँकरा हो उसकी निष्कुट संज्ञा है। निष्पाव अर्थात् धान के तुल्य अथवा उड़द के समान नीले वर्ण का जो छिद्र होता है उसकी कोलाक्ष संज्ञा है।।३।।

सूकरनयनमिति। सूकरयनसंज्ञं विषमतुल्यम्। विवर्णं विगतवर्णम्। अध्यर्धपर्वदीर्घमधिकमर्धं यस्य पर्वणः सार्धं पर्वदीर्घं भवति। वामावर्तं प्रदक्षिणा-वर्तं भिन्नं द्वितीयभागदृश्यं पर्वमितं पर्वप्रमाणं वत्सनाभाख्यं वत्सनाभसंज्ञं छिद्रम् ।।३४।।

विषम अर्थात् असमान छिद्र की सूकरनयन संज्ञा होती है। वर्णहीन अथवा विकृत वर्ण का मध्यभाग जो आधे से अधिक दीर्घ पर्वों वाला हो, उसको विवर्ण कहा जाता है। वामावर्त अर्थात् प्रदक्षिणावर्त से भिन्न जिसका दूसरा भाग पर्व के समान हो, उस छिद्र को वत्सनाभ कहा जाता है।।३४।।

कालकसंज्ञमिति। कालकसंज्ञं कृष्णं कृष्णवर्णं भवति। यद्विनिर्भिन्नं द्वितीयभागदृश्यं कृष्णवर्णं च तद्धुन्धुकसंज्ञम्। दारुसवर्णं दारुसदृशवर्णं यच्छिद्रं न तत्र तथैषामेव दुष्टफलमुद्दिष्टमुक्तम्। एतदुक्तं भवति-अशुभमपि छिद्रं दारुसवर्णं यदि भवति तदाऽतिदुष्टफलं न भवति।।३५।।

कालक संज्ञक छिद्र कृष्णवर्ण का होता है। जो विनिर्भिन्न अर्थात् जिसका दूसरा भाग कृष्णवर्ण का दृष्ट हो, उस छिद्र की धुन्धुक संज्ञा होती है। काष्ठ के वर्ण के सदृश ही जो छिद्र होता है, उसका दुष्ट फल अर्थात् अशुभफल नहीं कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि अशुभ छिद्र भी काष्ठ के वर्ण का होने पर अधिक अकल्याणकारी नहीं होता है॥३५॥

अथैतेषां फलान्याह–

निष्कुटसंज्ञे द्रव्यक्षयस्तु कोलेक्षणे कुलध्वंसः।
शस्त्रभयं सूकरके रोगभयं वत्सनाभाख्ये।।३६।।
कालकधुन्धुकसंज्ञं कीटैर्विद्धं च न शुभदं छिद्रम्।
सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं सर्वत्र न शोभनं दारु।।३७।।

इन छिद्रों का फल कहते हैं–

निष्कुट संज्ञक छिद्र से धन-नाश, कोलेक्षण से कुल का विनाश, सूकर से शस्त्रभय और वत्सनाभ नामक छिद्र से रोग का भय होता है॥३६॥

कालक और धुन्धुक नामक छिद्र कीटों से विद्ध होकर शुभप्रद नहीं होते हैं। जिस लकड़ी में गाँठें अधिक हों, ऐसी लकड़ी किसी भी प्रयोजन में शुभ नहीं मानी जाती है॥३७॥

निष्कुटसंज्ञे छिद्रे द्रव्यस्य अर्थस्य क्षयो विनाशो भवति। कोलेक्षणे कोलाक्षसंज्ञे कुलस्य वंशस्य ध्वंसो विनाशः। सूकरके सूकरनयने शस्त्रभयं भवति। वत्सनाभाख्ये रोगभयम् ।।३६।।

निष्कुट-संज्ञक छिद्र के रहने पर धन का क्षय होता है। कोलाक्ष नामक छिद्र होने पर वंश का विनाश होता है। सूकरनयन नामक छिद्र से शस्त्राघात का भय रहता है। वत्सनाभ संज्ञक छिद्र के द्वारा रोग का भय उत्पन्न होता है॥३६॥

कालकच्छिद्रं तथा धुन्धुकाख्यं च यच्च कीटैः क्रिमिभिर्बिद्धं तच्छिद्रं न शुभदं दुष्टफलम्। यद्दारु सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं समस्तमेव ग्रन्थिबहुलं तत् सर्वत्र सर्वस्मिन् वस्तुनि न शोभनं प्रशस्तफलम्।।३७।।

कीटों से विद्ध अर्थात् छिद्रित कालक और धुन्धुक नामक छिद्र शुभफलदायक नहीं होते हैं, अर्थात् दुष्टफल (अशुभफल) करते हैं। जिस लकड़ी में सम्पूर्णतया गाँठों का बाहुल्य हो, वह सभी प्रकार के कर्मों में शुभफलदायिका नहीं होती है।।३७।।

अथ मिश्रदारुचितस्य शयनस्य फलमाह–

एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम्।
त्रिभिरात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरर्थं यशश्चाग्र्यम्।।३८।।
पञ्चवनस्पतिरचिते पञ्चत्वं याति तत्र यः शेते।
षट्सप्ताष्टतरूणां काष्ठैर्घटिते कुलविनाशः।।३९।।

मिश्रित काष्ठो वाली शय्या के फल–

एक वृक्ष की लकड़ी से निर्मित शय्या श्रेष्ठ होती है। दो वृक्षों से निर्मित शय्या श्रेष्ठतम होती है। तीन वृक्षों से निर्मित संतान-वृद्धि तथा चार वृक्षों से निर्मित धन तथा उत्तमयश को प्रदान करती है।।३८।।

पाँच वृक्षों से निर्मित शय्या पर शयन कर्ता का निधन होता है। छः, सात अथवा आठ वृक्षों के, योग से निर्मित शय्या के द्वारा कुल का विनाश होता है।।३९।।

यच्छय्यासनमेकद्रुमेणैकवृक्षेण निर्मितं तद्धन्यम्। वृक्षद्वयनिर्मितं धन्यतरम्। त्रिभिवर्वृक्षैः प्रागुक्तैर्यैर्विनिर्मितं तदात्मजानां पुत्राणां वृद्धिकरम्। चतुर्भिर्यन्निर्मितं तदर्थं धनम्। अग्र्यं प्रधानं यशः कीर्तिं च करोति।।३८।।

जो शय्या अथवा आसन एक ही वृक्ष के काष्ठ से निर्मित हो, वह धन्य अर्थात् उत्तम है। दो वृक्षों से निर्मित शय्यासन धन्यतर और अर्थात् प्रथम की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। कथित शुभ तीन वृक्षों से निर्मित पुत्रों के लिए वृद्धिकारक है। चार वृक्षों से निर्मित शय्यासन धन, प्रधानता (श्रेष्ठता) और यशस्विता को प्रदान करता है।।३८।।

पञ्चवनस्पतिरचित इति। पञ्चभिर्वनस्पतिभिर्वृक्षै रचिते निर्मिते शयनासने शयने यः शेते स्वपिति स पञ्चत्वं याति। म्रियत इत्यर्थः। षण्णां सप्तानामष्टानां च तरूणां वृक्षाणां काष्ठैर्घटिते निर्मिते कुलविनाशो वंशक्षयो भवति।।३९।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शय्यासनलक्षणं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः।।७८।।

पाँच वृक्षों से निर्मित शय्या अथवा आसन पर जो सोता और बैठता है, वह पञ्चत्व अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होता है। छः, सात और आठ प्रकार के वृक्षकाष्ठों से निर्मित शयनासन द्वारा कुल अर्थात् वंश का विनाश होता है।।३९।।

।।श्री भट्टोत्पल कृत बृहत्संहिता की विवृति में शयनासनलक्षण नामक अठहत्तरवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।७८।।

❊ ❊ ❊

।। अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः।।

रत्नपरीक्षाध्यायः

अथ रत्नपरीक्षा व्याख्यायते।

तत्र मणीनां तावद्गुणप्रधानार्थलक्षणमाह–

रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन।
यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः।।१।।

रत्नपरीक्षा नामक अध्याय ७९ की व्याख्या की जाती है।

मणियों की प्रधानता के लक्षण कहते हैं–

राजाओं (धारण कर्ताओं) को शुभ रत्न के द्वारा शुभफल तथा अशुभ रत्न के द्वारा अशुभफल प्राप्त होते हैं। अतएव रत्नों के विशेषज्ञ दैवज्ञ के द्वारा रत्न-सम्बन्धी दिव्यता का परीक्षण होना चाहिए।।१।।

नृपाणां राज्ञां रत्नेन मणिना शुभेन शुभलक्षणेन संयुक्तेन शुभं दैवं भवति; अशुभेनानिष्टमशुभं दैवं भवति। दैवशब्देन प्राक्तनकर्मणां विपाक उच्यते। यस्मा-देवमतोऽस्मात्तज्ज्ञै रत्नलक्षणज्ञै रत्नाश्रितं रत्नसंस्थितं दैवं परीक्ष्यं विचार्यम्।।१।।

शुभलक्षणों से युक्त मणि अर्थात् रत्न से राजाओं का भाग्य (दैव) शुभ होता है तथा अशुभ रत्न के द्वारा भाग्य अशुभ अर्थात् अनिष्टकारी होता है। पूर्वजन्म के कर्मों के फल-परिपाक को 'दैव' कहा जाता है। इसलिए रत्नों के लक्षणों के ज्ञाता को रत्न में स्थित दैव (शुभाशुभत्व) का परीक्षण अर्थात् विचार करना चाहिए।।१।।

रत्नपरीक्षायामुपलरत्नानामधिकारः क्रियत इत्येतदाह–

द्विपहयवनितादीनां स्वगुणविशेषेण रत्नशब्दोऽस्ति।
इह तूपलरत्नानामधिकारो वज्रपूर्वाणाम्।।२।।

रत्नपरीक्षा में पत्थर के रत्नों का प्रकरण प्रस्तुत करते हैं–

हाथी, घोड़ा और स्त्री आदि की उनके विशिष्ट उत्कृष्ट गुणों के द्वारा 'रत्न' संज्ञा होती है। यहाँ पर हीरा आदि पत्थर के रत्नों का अधिकार (प्रकरण) प्रस्तुत किया जा रहा है।।२।।

द्विपो हस्ती। हयोऽश्वः। वनिता स्त्री। अधिकरणाज्जातौ जातौ यदुत्कृष्टं रत्नं तदभिधीयते। एवमादीनां स्वगुणविशेषेणात्मीसगुणप्रभावेण रत्नशब्दोऽस्ति

विद्यते। तथा च—

जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते।इति।

इह त्वस्यां रत्नपरीक्षायामुपलरत्नानां पाषाणमणीनां वज्रपूर्वाणां वज्रप्रथमानामधिकारः क्रियते।।२।।

द्विप अर्थात् हाथी, हय अर्थात् घोड़ा, वनिता अर्थात् स्त्री आदि को अपनी-अपनी जाति में उत्कृष्टता के आधार पर 'रत्न' शब्द से पुकारा जाता है। इस प्रकार की जातियों अथवा पदार्थों में स्वकीय गुणों के प्रभाववश रत्न शब्द प्रयुक्त होता है। जैसा कि कथन है—

"प्रत्येक जातियों में जो सर्वोत्कृष्ट होता है, उसे रत्न कहा जाता है।"

यहाँ इस रत्नपरीक्षाध्याय में उपल अर्थात् पत्थर के रत्नों के क्रम में सर्वप्रथम वज्र अर्थात् हीरा का वर्णन किया जा रहा है॥२॥

तत्र रत्नानामुत्पत्तिप्रदर्शनार्थं मतभेदमाचार्याणामाह—

रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि।
केचिद् भुवः स्वभावाद् वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम्।।३।।

रत्नों की उत्पत्ति में विद्वानों के मतभेद बतलाते हैं—

कोई आचार्य बल नामक दैत्य से तथा अन्य आचार्य महर्षि दधीचि से रत्नों की उत्पत्ति कहते हैं। कुछ विद्वानों ने पृथ्वी के भीतर स्थित पत्थरों के प्राकृतिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप रत्नों की उत्पत्ति माना है॥३॥

बल इति दैत्याख्यस्तस्माद्बलाद्रत्नानि जातानि सम्भूतानि। स किलेन्द्रेण निहतस्तस्यास्थिभ्यो रत्नान्युत्पन्नानि। तथा च—

सम्भूतानि बलाद्दैत्याद्रत्नानि विविधानि च।
गतानि नानावर्णत्वमस्थिभ्यो भूमिसंश्रयात्।।

दधीचितोऽन्य इति। अन्येऽपरे दधीचिमुनेरस्थिभ्यो जातानीति वदन्ति। तथा च—

रत्नानि दधीचिमुनेर्जातानि सहस्रशो लोके।
अस्थिभ्यो भूमिवशाद् नानावर्णत्वमागतानि गुणैः।।

केचिदिति। केचिदन्ये आचार्या भुवो भूमेः स्वभावाज्जातानि रत्नानि विविधानि च। उपला रत्नरूपत्वं प्राप्ताः कालान्तरेणेति प्राहुरुक्तवन्तः।।३।।

बल नामक दैत्य से रत्न उत्पन्न हुए यह एक पक्ष का कथन है। वह दैत्य इन्द्र से मारा गया था और उसकी अस्थियों से रत्न उत्पन्न हुए। जैसा कि कहा

गया है–

बल नामक दैत्य की अस्थियों से रत्न उत्पन्न हुए जो कि भूमि के आश्रयानुसार विविध वर्णों के हो गये।

अन्य आचार्यों ने दधीचि मुनि की अस्थियों से रत्नों को उत्पन्न माना है। जैसा कि–

दधीचि मुनि की अस्थियों से हजारों प्रकार के रत्न पृथ्वी पर उत्पन्न हुए। भूमि के आश्रय वश तथा गुणों से विविध वर्ण के हो गये।

अन्य आचार्य भूमि से स्वाभाविक रूप से विविध रत्नों की उत्पत्ति मानते हैं। पत्थर ही अनेक वर्षों के पश्चात् (कालान्तर में) रत्न के रूप में परिणत हो गये, यही उनका अभिमत है।।३।।

अथ रत्नानां नामान्याह–

वज्रेन्द्रनीलमरकतकर्केतरपद्मरागरुधिराख्याः।
वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ताः।।४।।
सौगन्धिकगोमेदकशङ्खमहानीलपुष्परागाख्याः।
ब्रह्ममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रवालानि।।५।।

रत्नों के नाम कहते हैं–

वज्र, इन्द्र नील, मरकत, कर्केतर, पद्मराग, रुधिर, वैदूर्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिक, चन्द्रकान्त, सौगन्धिक, गोमेदक, शङ्ख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरस, सस्यक, मुक्ताफल और प्रवाल ये रत्नों के नाम (भेद) ।।४-५।।

वज्रेन्द्रनीलेति। वज्रम्। इन्द्रनीलः मरकतः। कर्केत्तरः। पद्मरागः। रुधिराख्यः। वैदूर्यम्। पुलकः। विमलकः। राजमणी राजवान्। स्फटिकः। शशिकान्तश्चन्द्रकान्तः।।४।।

रत्नों के सामन्य भेद इस प्रकार के हैं–वज्र (हीरा), इन्द्रनील (नीलम), मरकत (पन्ना), कर्केतर, पद्मराग (माणिक्य) रुधिर, वैदूर्य, पुलक, विमलक, राजमणि अर्थात् राजवान्, स्फटिक, शशिकान्त अर्थात् चन्द्रकान्त।।४।।

सौगन्धिक। गोमेदकः। शङ्खः। महानीलः। पुष्परागाख्यः। ब्रह्ममणिः। ज्योतीरसः। सस्यकः। मुक्ता मुक्ताफलानि। प्रवालं विद्रुमः। एतानि रत्नभेदानि। इत्यत उत्कृष्टानि चत्वारि वज्रमुक्तापद्मरागमरकताख्यानि, तेषामेव लक्षणमाचार्यः करोतीति सम्बन्धः।।५।।

सौगन्धिक, गोमेदक, शङ्ख, महानील, पुष्पराग (पुखराज), ब्रह्ममणि, ज्योतिरस,

सस्यक, मुक्ता अर्थात् मुक्ताफल (मोती), प्रवाल अर्थात् विद्रुम (मूँगा); ये रत्नों के भेद कहे गये हैं। इनमें से श्रेष्ठ चार रत्न वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत है, जिसका वर्णन आगे आचार्य ने प्रस्तुत किया है॥५॥

अथ वज्रमणेः सप्ताकारस्थानानि लक्षणं चाह—

वेणातटे विशुद्धं शिरीषकुसुमप्रभं च कौशलकम्।
सौराष्ट्रकमाताम्रं कृष्णं सौर्पाकं वज्रम्॥६॥
ईषत्ताम्रं हिमवति मतङ्गजं वल्लपुष्पसङ्काशम्।
आपीतं च कलिङ्गे श्यामं पौण्ड्रेषु सम्भूतम्॥७॥

वज्रमणि के साथ प्राप्ति-स्थल और लक्षण को कहते हैं—

वेणानदी के तट पर अतिशुद्ध हीरा होता है। कौशल क्षेत्र का हीरा शिरीष पुष्प के सदृश, सौराष्ट्र का ताम्रवर्णी तथा सौर्पार प्रदेश का कृष्ण होता है। हिमालय-पर्वत क्षेत्र का हीरा किञ्चित् रक्ताभ, मत्तङ्ग प्रदेश का वल्लपुष्प के सदृश, कलिङ्ग प्रदेशीय पीतवर्ण का और पौण्ड्र प्रदेशीय हीरा श्यामवर्ण का होता है॥६-७॥

वेणा नाम नदी तस्यास्तटे तीरे विशुद्धं दोषरहितम्। शिरीषकुसुमप्रभं शिरीषकुसुमसङ्काशं श्वेतपीतवर्णं तत्कौशलकं कोशलदेशसम्भूतम्। वज्रमाताम्रमाताम्रवर्णमीषल्लोहितम्, तत्तु सौराष्ट्रं सुराष्ट्रसम्भूतं वज्रम्। वज्रं कृष्णं कृष्णवर्णं सौर्पारकं सौर्पारदेशे सम्भूतं जातम्॥६॥

वेणा नामक नदी है, जिसके किनारे विशुद्ध अर्थात् निर्दोष हीरा मिलता है। शिरीष कुसुम के समान अर्थात् श्वेत मिश्रित पीले रंग का हीरा कोशल देश में उत्पन्न होता है। आताम्र वर्ण अर्थात् किञ्चित् रक्तवर्ण का हीरा सौराष्ट्र प्रदेश में उत्पन्न होता है। कृष्ण वर्ण का हीरा सौर्पारदेश में उत्पन्न होता है॥६॥

ईषत्ताम्रमिति। ईषत् किञ्चित्ताम्रं ताम्रवर्णं वज्रं हिमवति पर्वते हिमवत्सम्भूतम्। वल्लपुष्पसङ्काशं वल्लपुष्पनिभमीषत्पाण्डुरं मतङ्गजं मतङ्गदेशसम्भूतम्। आपीतं पीतवर्णं कलिङ्गे कलिङ्गदेशोद्भवं वज्रम्। श्यामं श्यामवज्रं पौण्ड्रेषु सम्भूतं पौण्ड्रदेशजातमिति॥७॥

ईषत् ताम्र अर्थात् किञ्चित् ताम्रवर्ण का हीरा हिमालय की पर्वतीय शृङ्खला में प्राप्त होता है। वल्लपुष्प के समान अर्थात् किञ्चित् पीताभ हीरा मतङ्ग देश में होता है। आपीत अर्थात् पीले रंग का हीरा कलिङ्ग-देशोत्पन्न होता है। श्याम अर्थात् साँवला हीरा पौण्ड्र देश में उत्पन्न होता है॥७॥

विशिष्ट व्याख्या-

(१) "वल वल्लभ संवरणे" (अमरकोश २/४/९) के अनुसार अजवाइन

अथवा तुलसी की मञ्जरी वल्ली कही जाती है, जिसका वर्ण ईषत्पीत होता है।

(२) सौराष्ट्रप्रदेश गुजरात का कच्छ भाग है।

(३) कलिङ्ग क्षेत्र उड़ीसा प्रदेश के कटक का आसन्न भाग है।

(४) सौर्पारक/शौर्पारक, महाभारत शान्तिपर्व ४९/६६, मुम्बई में थाणे का क्षेत्र कहा गया है।

(५) कौशल-क्षेत्र अयोध्या को कहा जाता है। द्रष्टव्य-वायुपुराण, ८८/१८९।

अथैतेषां दैवत्यमाह–

ऐन्द्रं षडश्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च।
कदलीकाण्डनिकाशं वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम्।।८।।
वारुणमबलागुह्योपमं भवेत् कर्णिकारपुष्पनिभम्।
शृङ्गाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षिनिभं च हौतभुजम्।।९।।
वायव्यं च यवोपममशोककुसुमप्रभं समुद्दिष्टम्।
स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकरसम्भवस्त्रिविधः।।१०।।

रत्नों के अधिदेवों को कहते हैं–

षट्कोणीय श्वेतवर्ण के हीरे के स्वामी इन्द्रदेव कहे गये हैं। कृष्णवर्ण के सर्पमुख के समान हीरे के स्वामी यमदेव और कदली की अंकुरित शाखा के सदृश वर्ण (हरितपीत) वाले सभी प्रकार के हीरे के अधिपति भगवान् विष्णु हैं। स्त्री के गुप्तांग के समान, कनेर-पुष्प के वर्ण के हीरे का स्वामी वरुणदेवता है। सिंघाड़े के समान व्याघ्रनेत्र के वर्ण वाले हीरे के अधिपति अग्निदेव हैं। जौ के समान, अशोक-पुष्प सदृश वर्ण के हीरे के स्वामी वायु हैं। जलस्रोत (नदी, समुद्रादि) खनिज (भूमि के नीचे) और भूमि के ऊपर; इन तीन प्रकार के क्षेत्रों में हीरे उपलब्ध होते हैं।।८-१०।।

ऐन्द्रमिति। यद्वज्रं षड्भिरश्रिभिर्युक्तम्। षट्कोणमित्यर्थः। शुक्लं शुक्लवर्णम्। तदैन्द्रम्। इन्द्रो देवतास्येन्द्रम्। यच्चासितं कृष्णवर्णं सर्पास्यरूपं भुजङ्गमुखसदृशम्, तद्याम्यं यमदैवतम्। यच्च कदलीकाण्डनिकाशं नीलपीतमित्यर्थः सर्वसंस्थानं सर्वाण्यशेषाणि संस्थानानि यस्य, सर्वाकारम्। तद्वैष्णवं विष्णुदैवत्यम्।।८।।

जो हीरा छः कोणों वाला अर्थात् षट्कोणीय और शुक्ल (श्वेत) वर्ण का हो, उसके देवता इन्द्र हैं। जो असित अर्थात् काले रंग का और सर्प के मुख के आकार का हो, उसका स्वामी यम होता है। जो केले की शाखापत्र के सदृश अर्थात् नीला और पीला मिश्रित रंग का सर्वसंस्थान अर्थात् सभी प्रकार के आकार का हो, वह

वैष्णव होता है अर्थात् उसके देवता विष्णु होते हैं।।८।।

वरुणमिति। अबला स्त्री तस्या गुह्यं वराङ्गं तदुपमं तद्विकारस्त्रीमणि-सदृशम्, तद्वारुणम्। कर्णिकारपुष्पनिभम्, कर्णिकारो वृक्षस्तत्कुसुमप्रभम्। शृङ्गाटकसंस्थानं त्र्यस्रम्। व्याघ्राक्षिनिभं व्याघ्रनेत्रसदृशं नीललोहितम्, तद्वज्रं हौत-भुजमाग्नेयम्।।९।।

अबला अर्थात् स्त्री, उसके गुप्ताङ्ग (योनि) के समान अर्थात् स्त्री की योनि की मणि भगनास के समान हीरा वारुण कहा जाता है। कर्णिकार पुष्प अर्थात् कनेर (कठ-चम्पा) के फूल के सदृश, शृङ्गाटक अर्थात् त्रिकोण और व्याघ्राक्षि अर्थात् बाघ के नेत्र के समान नीले और लाल मिश्रित वर्ण का हो, वह हीरा आग्नेय (अग्नि दैवत्) कहा जाता है।।९।।

वायव्यं चेति। यद्वज्रं यवोपमं यवाकारं मध्यस्थूलम्। अशोककुसुमप्रभ-मशोकपुष्पसदृशं लोहितवर्णं तद्वायव्यं वायुदैवत्यमुक्तम्। स्रोतः खनिः प्रकीर्णक-मिति। श्रोतो यतो जलं स्रवति। खनिः खन्यत इति खनि खातम्। प्रकीर्णकं यस्यां भूमौ मणयो भवन्ति। समुद्रे यथा। एवं स्रोतः खनि प्रकीर्णकमिति त्रिविधः त्रिप्रकार आकरसम्भवो वज्रस्येति।।१०।।

जो हीरा जौ के आकार का अर्थात् जिसका मध्यभाग स्थूल होता हो और अशोक के फूल के समान लाल रंग का हो, वह वायव्य है अर्थात् उसके स्वामी वायु-देवता होते हैं। जहाँ से जल निकलता है उसको स्रोत कहते हैं। जिसको खनन द्वारा प्राप्त किया जाये वह खनि (खात) है। जिस भूमि (स्थान) पर रत्न मिलते हैं, उसको प्रकीर्णक कहते हैं। जैसा कि समुद्र में; इस तरह हीरा के जल, भूमध्य और भूपृष्ठ ये तीन प्रकार के आकर अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं।।१०।।

अथ ब्राह्मणादीनां कीदृशं वज्रं प्रशस्यत इत्याह—

रक्तं पीतं च शुभं राजन्यानां सितं द्विजातीनाम्।
शैरीषं वैश्यानां शूद्राणां शस्यतेऽसिनिभम्।।११।।

ब्राह्मणादि वर्णों के लिये प्रशस्त हीरा को कहते हैं—

क्षत्रिय को लाल और पीले वर्ण का हीरा शुभ होता है। ब्राह्मण को श्वेत वर्ण का तथा शिरीष के वर्ण का, (किञ्चित् पीत वर्ण) वैश्य को और कृष्णवर्ण का हीरा शूद्र को प्रशस्त होता है।।११।।

रक्तं रक्तवर्णं पीतं च राजन्यानां क्षत्रियाणां शुभं प्रशस्तम्। सितं श्वेतवर्णं द्विजातीना ब्राह्मणानां शुभम्। शैरीषं शिरीषकुसुमसदृशं वैश्यानां शुभम्। असिनिभं खड्गसदृशं कृष्णमित्यर्थः। शूद्राणां शस्यते स्तूयते। शुभ-

मित्यर्थः।।११।।

रक्त और पीत वर्ण का हीरा क्षत्रियों के लिए शुभ अर्थात् प्रशस्त होता है। श्वेत-वर्ण द्विजाति अर्थात् ब्राह्मणों के लिए शुभ है। शिरीष-पुष्प के सदृश वैश्यों को शुभ होता है। असि अर्थात् तलवार के समान काले वर्ण का हीरा शूद्रों के लिए अनुशंसित अर्थात् शुभप्रदायक होता है।।११।।

अधुनास्य वज्रमणेर्मूल्यपरिज्ञानार्थमाह—

सितसर्षपाष्टकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु विंशत्या।
तुलितस्य द्वे लक्षे मूल्यं द्विद्व्यूनिते चैतत्।।१२।।
पादत्र्यंशार्धोनं त्रिभागपञ्चांशषोडशांशाश्च।
भागश्च पञ्चविंशः शतिकस्साहस्त्रिकश्चेति।।१३।।

हीरा के मूल्य का परिज्ञान कहते हैं—

आठ सफेद सरसों का एक तण्डुल होता है। बीस तण्डुल से तौले गये हीरे का मूल्य दो लाख होता है। दो-दो तण्डुल न्यून होने पर उसका मूल्य चतुर्थांश, तृतीयांश और अर्धांश क्रम से न्यून मूल्य होता है। क्रमशः न्यून होता हुआ हीरे का मूल्य पच्चीस, सौ और हजार तक होता है।।१२-१३।।

सितसर्षपाष्टकमिति। सितसर्षपा गौरसर्षपाः। तैरष्टभिस्तण्डुलो भवति। विंशत्या तण्डुलैश्च यद्वज्रं तुलितं परिच्छिन्नं तस्य द्वे लक्षे कार्षापणानां मूल्यम्। अशीत्या श्वेतिकानां पणः पणविंशत्या कार्षापणः। तथा च—

विंशतिः श्वेतिकाः प्रोक्ता काकिण्येका विचक्षणैः।
तच्चतुष्कं पण इति चतुर्थं तच्चतुष्टयम्।।
चतुर्थकचतुष्कं तु पुराण इति कथ्यते।
कार्षापणः स एवोक्तः क्वचित्तु पणविंशतिः।।

द्विद्व्यूनिते चैतदिति। तस्मिन्नेव वज्रे द्विद्व्यूनिते द्वाभ्यां द्वाभ्यां तण्डुलाभ्यामूनिते रहिते। एतद्वक्ष्यमाणम्।।१२।।

सिप सर्षत अर्थात् गौर सर्षप (पीली सरसों) के आठ दानों का एक तण्डुल होता है। २० तण्डुल के भार के हीरे का मूल्य दो लाख कार्षापण होता है। अस्सी श्वेतिका (सरसों का एक पण, तथा बीस पण का एक कार्षापण होता है। जैसा कि कहा गया है—

बीस श्वेतिका की एक काकिणी कही गयी है। चार काकिणी का एक पण तथा चार पण का एक चतुर्थक तथा चार चतुर्थक का एक पुराण होता है। इसी को

कार्षापण भी कहा गया है। कुछ स्थानों पर इसको बीस पण माना गया है।

पूर्वोक्त हीरे के भार में दो-दो तण्डुल भार न्यून करने पर हीरे का मूल्य क्रमशः निम्नवत् होगा॥१२॥

पादत्र्यंशार्धोनमिति। विंशतिद्व्यूनाष्टादशः। अष्टादशभिस्तण्डुलैर्यद्वज्रं तुलितं तस्य कार्षापणलक्षद्वयं पादोनं मूल्यम्। सार्द्धलक्षमित्यर्थः। यत्षोडशभिस्तण्डुलैस्तुलितं तस्य लक्षद्वयं त्र्यंशोनं त्रिभागरहितं मूल्यम्। लक्षमेकं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि शतत्रयं त्रयस्त्रिंशदधिकं सत्रिभागमित्यर्थः। चतुर्दशभिस्तण्डुलैस्तुलितं तस्यार्धोनं लक्षद्वयं लक्षमेकमित्यर्थः। द्वादशभिस्तण्डुलैस्तुलितस्य लक्षद्वयत्रिभागा मूल्यम्।षट्षष्टिसहस्राणि षट्शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि त्रिभागक्षय इत्यर्थः। दशभिस्तुलितस्य लक्षद्वयपञ्चांशो मूल्यम्। चत्वारिंशत्सहस्राणीत्यर्थः। अष्टाभिस्तण्डुलैस्तुलितस्य लक्षद्वयषोडशांशो मूल्यम्। द्वादशसहस्राणि पञ्चशतानीत्यर्थः। षड् भिस्तण्डुलैस्तुलितस्य लक्षद्वयात् पञ्चविंशतिको भागो मूल्यम्। अष्टौ सहस्राणीत्यर्थः। चतुर्भिस्तण्डुलैस्तुलितस्य लक्षद्वयाच्छतभागो मूल्यम्। सहस्रद्वयं कार्षापणानमित्यर्थः। अन्तरे स्वबुद्ध्या व्यस्तत्रैराशिकेन मूल्यमूह्यमिति।।१३।।

बीस तण्डुल में से दो तण्डुल भार न्यून करने पर अठारह तण्डुल का जो वज्र (हीरा) होगा, उसका मूल्य दो लाख का चतुर्थांश न्यून अर्थात् डेढ़ लाख होगा। जो सोलह तण्डुल भार का हीरा होगा, उसका मूल्य दो लाख का तृतीयांश न्यून मूल्य अर्थात् १,३३,३३३ कार्षापण होगा। जो हीरा चौदह तण्डुल भार का हो उसका मूल्य दो लाख का आधा अर्थात् १,००,००० कार्षापण होता है। बारह तण्डुलों के भार का हीरा दो लाख का तीसरा भाग अर्थात् ६६,६६७ कार्षापण होता है। दस तण्डुल भार वाले हीरे का मूल्य दो लाख का पञ्चमांश अर्थात् ४०,००० कार्षापण होगा। आठ तण्डुल भार वाले हीरे का मूल्य दो लाख का पच्चीसवाँ भाग अर्थात् ८,००० कार्षापण होता है। चार तण्डुल भार वाले हीरे का मूल्य दो लाख का सौवाँ भाग अर्थात् २००० कार्षापण होता है। इनके अतिरिक्त अन्य अन्तरित भाग वाले हीरे का मूल्य व्यस्त-त्रैराशिक गणित के द्वारा ज्ञात करना चाहिए॥१३॥

विशेष व्याख्या—

कार्षापण प्राचीन भारत का सबसे प्रसिद्ध सिक्का था। यह चाँदी का बनता

---

१. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गोकुलचन्द्र जैन, पृष्ठ संख्या १९६.

२. मनुस्मृति ८/१३५-३६.

३. अष्टाध्यायी ५/२/१२०.

था।[१] मनुस्मृति में इसे ही धारण और राजतपुराण (चाँदी का पुराण) भी कहा है।[२] पाणिनि ने इन सिक्कों को आहत कहा है।[३] उसी के अनुसार ये अंग्रेजी में पंच मार्क्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सिक्के बुद्ध युग से भी पुराने हैं तथा सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं। अब तक लगभग सात वर्ष में पचास सहस्र से भी अधिक चाँदी के कार्षापण मिल चुके हैं।

मनुस्मृति के अनुसार चाँदी के कार्षापण या पुराण का वजन बत्तीस रत्ती था। सोने या ताँबे के कर्ष का भार अस्सी रत्ती था।

कार्षापण का क्रय भी किया जाता था। अष्टाध्यायी, जातक तथा अर्थ-शास्त्र में इसकी सूचियाँ आयी हैं। अष्टाध्यायी में कार्षापण को केवल पण कहा है। इसके अर्ध, पाद, त्रिमाष, द्विमाष, अध्यर्ध या डेढ़ माष, माष और अर्ध-माष का उल्लेख है। कात्यायन ने इनमें काकणी और अर्धकाकणी नाम और जोड़े हैं। अर्थशस्त्र में पण, अर्धपण, पाद, अष्टभाग, माणक, अर्धमाणक, काकणी तथा अर्धकाकणी नाम आये हैं।

प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य ने तुलामान को परिभाषित करते हुये लीलावती नामक ग्रन्थ में कहा है कि पाँच गुञ्जे का एक माष, सोलह माष का एक कर्ष और चार कर्ष का एक पल होता है। यथा–

दशार्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम्।
कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः कर्षं सुवर्णस्य सुवर्णसंज्ञम्।।

–लीलावती, परिभाषा, श्लोक ४

अथ शुभवज्रलक्षणान्याह–

सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्।
तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम्।।१४।।

हीरा की शुद्धता के लक्षण कहते हैं–

किसी भी वस्तु से अकाट्य, अल्प जल में भी डूबने वाला, किरणों से युक्त और चिकना होता है। विद्युत्, अग्नि और इन्द्रधनुष के सदृश हीरा कल्याण-कारी होता है।।१४।।

यद्वज्रं सर्वद्रव्याभेद्यं न केनचिच्छस्त्रादिनापि भिद्यते। लघु गौरववर्जितम्। अम्भसि जले तरति निमज्जतीत्यर्थः। रश्मिवत् रश्मयः किरणा विद्यन्ते यस्य तत्। स्निग्धं स्नेहसंयुक्तम्। तडिद् विद्युत्। अनलोऽग्निः। शक्रचापमिन्द्रधनुः। एषामुपमं सदृशं तद्वज्रं हितायोक्तं श्रेयसे कथितम्।।१४।।

जो हीरा किसी भी शस्त्रादि से भेदित न हो सके, लघु अर्थात् गुरुता से रहित होकर भी जल में निमग्न हो जाता हो अर्थात् डूब जाता हो, जिसमें किरणें होती हैं, स्नेहयुक्त अर्थात् चिकना होता है, तडित् अर्थात् विद्युत्, अनल अर्थात् अग्नि और शक्रचाप अर्थात् इन्द्रधनुष के सदृश जो हीरा होता है, वह श्रेयस्कर कहा गया है।।१४।।

अथाशुभलक्षणान्याह–

काकपदमक्षिकाकेशधातुयुक्तानि शर्करैर्विद्धम्।
द्विगुणाश्रि दग्धकलुषत्रस्तविशीर्णानि न शुभानि।।१५।।

अशुभ लक्षणों को कहते हैं–

कौवे का पैर, मक्षिका, केश, धातुयुक्त, शर्करासहित, विद्ध, द्विगुणित कोणों वाला, दग्ध, कलुष, त्रस्त और विशीर्ण हीरा अशुभ होता है।।१५।।

यानि वज्राणि काकपदैः। काकपदाकृतिभिश्चिह्नैः। मक्षिकाभिस्तदाकृतिभिः। केशैर्बालसदृशरेखाभिः। धातुभिर्मृत्तिकाभिः। एतैर्युक्तानि। तथा यच्छर्करैर्युक्तं यच्च विद्धं वेधसंयुक्तम्। यच्च द्विगुणाश्रि लक्षणाभिरश्रिभिर्द्विगुणाभिर्युक्तम्। दग्धमग्निना। कलुषं विवर्णम्। त्रस्तं विगतकान्ति। विशीर्णं जर्जरितम्। एतानि न शुभानि, अशोभनानि।।१५।।

जो हीरे कौवे के पैर के चिह्न वाले हों, मक्खी की आकृति वाले, बाल की रेखाओं से युक्त, धातु अर्थात् मृत्तिकायुक्त तथा जो शर्करा (बालू) से युक्त हों और वेधित प्रतीत हों, जो द्विगुणित अक्षि अर्थात् द्विगुणित कोण युक्त हों, अग्नि से जले हुए, कलुषित अर्थात् विकृत वर्ण के, त्रस्त अर्थात् कान्तिहीन एवं विशीर्ण अर्थात् जर्जर हों, इस प्रकार के हीरे शुभ नहीं होते हैं।।१५।।

अन्यदप्याह–

यानि च बुद्बुददलिताग्रचिपिटवासीफलप्रदीर्घाणि।
सर्वेषां चैतेषां मूल्याद् भागोऽष्टमो हानिः।।१६।।

और भी कहते हैं–

जो हीरे बुदबुद (बुलबुला), खण्डित अग्रभाग वाले, चिपटे, वासीफल के समान दीर्घ हों, वे सभी शुभ नहीं होते हैं। इन सभी प्रकार के हीरों का मूल्य अष्टमांश न्यून होता है।।१६।।

यानि च वज्राणि बुद्बुदानि जलबुद्बुदसदृशानि। दलिताग्राणि दलितं विदारितमग्रं प्रान्तं येषाम्। चिपिटानि चर्पटानि। वासीफलवत्प्रदीर्घाणि वासिका द्रव्यविशेषः। एतेषां सर्वेषां प्राग्विधानेन यन्मूल्यं भवति तस्मादष्टमो भागो हानिर्भवति। अष्टभागोनं

मूल्यं भवतीत्यर्थः।।१६।।

जो हीरे पानी के बुलबुले के समान हों, जिनका अग्रभाग दलित अर्थात् विदीर्ण हो, जो चिपिट अर्थात् चिपटे हों और वासीफल के समान लम्बे हों (वासिका एक द्रव्य विशेष का नाम है); इन सभी का पूर्वविधि से जो मूल्य होता है उससे आठवाँ भाग न्यून मूल्य होता है। अर्थात् इनका मूल्य अष्टमांश अल्प रहता है।।१६।।

अथ वज्रमणेर्धारणे गुणानाह—

वज्रं न किञ्चिदपि धारयितव्यमेके
पुत्रार्थिनीभिरबलाभिरुशन्ति तज्ज्ञाः।
शृङ्गाटकत्रिपुटधान्यकवत् स्थितं य-
च्छ्रोणीनिभं च शुभदं तनयार्थिनीनाम्।।१७।।

हीरा धारण करने के गुणों को कहते हैं—

कतिपय आचार्यों का मत है कि पुत्रार्थिनी स्त्री को किञ्चिन्मात्र भी हीरा को धारण नहीं करना चाहिए। त्रिकोण, तीन पुटों वाला, धान्यक के समान तथा स्त्री के अधरराग के सदृश हीरा सुतार्थिनी स्त्रियों के लिए शुभदायक होता है।।१७।।

वज्रं वज्रमणिरबलाभिः स्त्रीभिः पुत्रार्थिनीभिः सुताभिलाषिणीभिर्न किञ्चिदपि धारयितव्यमित्येके आचार्या उशन्ति कथयन्ति। उच्छृङ्गाटकाकारं त्र्यस्त्रम्। त्रिपुटं त्रिभिः पुटैर्युक्तम्। धान्यकबद्धान्यकाफलवत्स्थितम्। श्रोणीनिभं स्त्र्यधररागसदृशम्। तत्तनयार्थिनीनां शुभदम् । तथा च—

वज्रमणि (हीरा) पुत्रार्थिनी स्त्रियों द्वारा किञ्चिन्मात्र भी धारण नहीं किया जाना चाहिए, ऐसा कुछ आचार्यों का अभिमत है। जो हीरा शृङ्गाटक अर्थात् सिंघाड़े के आकार का त्रिकोण हो, जो त्रिपुट अर्थात् तीन पुटों (तह) से युक्त, धान्यक अर्थात् धनिया के फल के समान और श्रोणी अर्थात् स्त्री के ओष्ठ-लालिमा के सदृश हो, ऐसा हीरा पुत्राभिलाषिणी स्त्रियों के लिए शुभप्रदायक होता है। जैसा कि—

सुतार्थिनीभिर्धन्याभिर्न धार्यं वज्रसंज्ञकम्।
यच्च शृङ्गाटकाकारं त्रिपुटं धान्यवत्स्थितम्।।
श्रोणीनिभं सुवर्णं च स्निग्धं किरणसंयुतम्।
तच्छस्तं धारणे स्त्रीणां पुत्रवृद्धिप्रदं स्मृतम् ।।इति।।१७।।

पुत्रार्थिनी सुभगा स्त्री को हीरा रत्न नहीं धारण करना चाहिए जो हीरा शृङ्गाटकाकार, त्रिपुट और धनिया के समान हो अधर-राग के सदृश सुन्दर, स्निग्ध और किरणों से युक्त हो; वह स्त्रियों के धारण योग्य होता है तथा सन्तति-

वृद्धिप्रदायक कहा गया है।।१७।।

अन्यदप्याह—

श्वजनविभवजीवितक्षयं जनयति वज्रमनिष्टलक्षणम्।

अशनिविषभयारिनाशनं [1]शुभमुपभोगकरं च भूभृताम्।।१८।।

और भी कहते हैं–

अशुभ हीरा प्रियजनों का, ऐश्वर्य का और जीवन का क्षय करतीं है। शुभ हीरा विद्युत्, विष, भय और शत्रु का नाशक होता है। इस प्रकार का हीरा धारण करने वाले राजा को सर्वोपभोग का सुख देता है।।१८।।

अनिष्टलक्षणमशुभलक्षणसंयुक्त वज्रं वज्रमणिः स्वजनानां बान्धवानां विभवस्यैश्वर्यस्य जीवितस्यायुषः क्षयं हानिं जनयत्युत्पादयति। शुभलक्षणं वज्रमशनिभयं विद्युद्भीतिम्। विषभयम्। अरिभयं शत्रुभयं च नाशयति। भृभूतां राज्ञामुपभोगकरं भवति। केचिदुरुभोगकरं विस्तीर्णभोगकरमितीच्छन्ति।।१८।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ वज्रमणिपरीक्षानामैकोनाशीतितमोऽध्याय:।।७९।।

अनिष्ट लक्षण अर्थात् अशुभ लक्षणों से युक्त वज्रमणि (हीरा) स्वजनों का अर्थात् बान्धवों का, विभव अर्थात् ऐश्वर्य का और जीवित अर्थात् आयु का क्षय करता है। शुभ लक्षणों वाला हीरा अशनि भय अर्थात् विद्युत् का भय, विष का भय और शत्रुओं के भय का विनाश करता है। यह राजाओं के लिए उपभोगकारक होता है। कुछ विद्वान् उरु भोगकर अर्थात् विस्तृत भोगकर ऐसा पाठ करते हैं।।१८।।

।।श्री भट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति में वज्रमणिपरीक्षा नामक उन्यासीवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।७९।।

❃ ❃ ❃

---

१. शुभमुरुभोगकरमिति पाठान्तरम्।

।। अथाशीतितमोऽध्यायः।।

मुक्तालक्षणाध्यायः

अथ मुक्तालक्षणं व्याख्यायते।

तत्रादावेव मुक्ताफलानामुत्पत्तिप्रदर्शनार्थमाह—

द्विपभुजगशुक्तिशङ्खाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि।

मुक्ताफलानि तेषां बहुसाधु च शुक्तिजं भवति।।१।।

मुक्तालक्षण नामक अध्याय ८० की व्याख्या की जाती है।

आरम्भ में मोती की उत्पत्ति को प्रदर्शित करते हैं—

हाथी, सर्प, सीप, शंख, बादल, बाँस, मछली और सूअर इनसे मोती उत्पन्न होता है। इन सभी में सीप से उत्पन्न मोती अत्युत्तम होता है।।१।।

द्विपो हस्ती। भुजगः सर्पः। शुक्तिः प्राणिविशेषः। शङ्खः प्राणी। अभ्रं मेघः वेणुर्वंशः। तिमिर्मत्स्यः। सूकरो वराहः। एभ्यः प्रसूतानि उत्पन्नानि मुक्ताफलानि भवन्ति। तेषां सर्वेषां मध्याच्छुक्तिजं शुक्तिसम्भूतं बहुसाध्वतिश्रेष्ठं भवति। प्राचुर्येण व्यवहारीत्यर्थः।।१।।

द्विप अर्थात् हाथी, भुजंग अर्थात् साँप, शुक्ति जल में उत्पन्न हो वाला प्राणिविशेष, शंख अर्थात् प्राणिविशेष जो जल में होता है, तिमि अर्थात् मछली और सूकर अर्थात् वराह (सूअर); इनसे मोती उत्पन्न होता है। इनमें से शुक्ति से उत्पन्न होने वाला मोती सर्वश्रेष्ठ होता है, अर्थात् इस मोती का सर्वाधिक प्रयोग होता है।।१।।

अथ मुक्ताफलानामष्टावाकरानाह—

सिंहलकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णिपारशवाः।

कौबेरपाण्ड्यवाटकहैमा इत्याकरास्त्वष्टौ।।२।।

मोती के आठ स्थानों को कहते हैं—

सिंहल, पारलौकिक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्णी, पारशव, कौबेर, पाण्ड्यवाटक तथा हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र, ये आठ स्थान मोती के लिए प्रसिद्ध हैं।।२।।

सिंहलको देशः। परलोको देशः, तत्र भवः पारलौकिकः। सौराष्ट्रिकः। सुराष्ट्रको देशभेदः। ताम्रपर्णी नदी। पारशवो देशः। कौबेरो देशः। पाण्ड्य-

वाटको देशः। तत्र भवाः। हैमा हिमभवाः। इत्येवं प्रकारा अष्टौ मुक्ताफलानामाकरा उत्पत्तिस्थानानि।।२।।

सिंहल देश अर्थात् श्रीलंका और परलोक देश में उत्पन्न होने वाला मोती पारलौकिक कहा जाता है। सौराष्ट्र अर्थात् गुजरात प्रदेश के जूनागढ़ क्षेत्र में प्राप्त मोती सौराष्ट्रिक होता है। ताम्रपर्णी नदीं में प्राप्त होने वाला मोती ताम्रपर्णी कहा जाता है। पारशव देश तथा कौबेर देश और पाण्ड्यवाटक देश में प्राप्त होने वाले मोती को उस देश के नाम से ही पुकारते हैं। हिमालय के क्षेत्र में उत्पन्न मोती को हैमा कहा जाता है। इस प्रकार मुक्ताफल अर्थात् मोती की उत्पत्ति के आठ स्थान माने गये हैं।।२।।

विशेष व्याख्या–

१. सिंहल–लंका द्वीप का बौद्धकालिक नाम सिंहल है।

२. पारलौकिक-एक द्वीप का नाम।

३. सौराष्ट्र-गुजरात प्रदेश में गिरिनगर (जूनागढ़) का परिक्षेत्र कहा गया है।

४. ताम्रपर्णी–यह दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी है। जो मलय पर्वत के अगस्त्य कुण्ड से निकलकर पूर्व समुद्र में मिलती है। ताम्बरवरी नाम से वर्तमान काल में जानी जाती है। यह मन्नाराखात नामक क्षेत्र में समुद्र से मिलती है। रघु-वंश ४/५० में महाकवि कालिदास ने इसको मोती की प्राप्ति का स्थल कहा है। जैसा कि–

ताम्रपर्णी समेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम्।।

५. पारशव–वर्तमान ईरान को प्राचीन काल में पारसिक अथवा पारशव कहा गया है। बलूचिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ भाग भी पारसिक कहे गये हैं।

६. कौबेर–इसका प्राचीन नाम अलकापुरी है जो कुबेर क्षेत्र से ११ मील की दूरी पर मानी जाती है, यह समुद्र से १२००० फीट ऊँचाई पर है। अनेक समीक्षक चमौली जनपद के गुप्तकाशी और सोमप्रयाग के मध्य भाग को अलकापुरी मानते हैं।

७. पाण्ड्यवाटक–यह स्थान दक्षिण भारत के चेन्नई से दक्षिण दिशा में त्रिचनापल्ली जिले में स्थित है। इसको केरल प्रदेश से दक्षिण भाग में कोचीन क्षेत्र को माना जाता है।

८. हिमालय–यह हेमकूट के नाम से भी जाना जाता है। यह बन्दर-पुच्छ पर्वत शृङ्खला का क्षेत्र माना गया है।।२।।

अथैतेषां लक्षणमाह–

बहुसंस्थानाः स्निग्धाः हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः।
ईषत्ताम्राः श्वेतास्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः।।३।।
कृष्णाः श्वेताः पीताः सशर्कराः पारलौकिका विषमाः।
न स्थूला नात्यल्पा नवनीतनिभाश्च सौराष्ट्राः।।४।।
ज्योतिष्मत्यः शुभ्रा गुरवोऽतिमहागुणाश्च पारशवाः।
लघु जर्जरं दधिनिभं बृहद् द्विसंस्थानमपि हैमम्।।५।।
विषमं कृष्णश्वेतं लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत्।
निम्बफलत्रिपुटधान्यकचूर्णाः स्युः पाण्ड्यवाटभवाः।।६।।

इन मोतियों के लक्षण कहते हैं–

विविध आकृति का, चिकना, हंस के वर्णवाला मोती, सिंहल द्वीप का होता है। मोटा (स्थूल) किञ्चित् लाल श्वेत, कालिमा रहित मोती ताम्रपर्ण क्षेत्र का होता है।।३।।

काला, श्वेत, पीला और शर्करा वाला (रवादार), विषम (टेढ़ा-मेढ़ा) मोती पारलौकिक क्षेत्र में प्राप्त होता है। सौराष्ट्र का मोती न तो मोटा और नहीं छोटा तथा मक्खन के रंग (Cream Colour) का होता है।।४।।

प्रकाश-युक्त, उज्ज्वल, अधिक भारवाला और अनेक गुणों वाला मोटा मोती पारशव होता है। छोटा, जीर्ण-शीर्ण, दही के वर्ण का, बड़ा तथा दो तहवाला मोती हेमकूट का होता है।।५।।

असमतल, काला एवं उजला और छोटा तथा प्रकाश युक्त मोती कुबेर क्षेत्र का होता है। नीम के फल के समान, तीन तलों वाला, धनिया के समान छोटा मोती पाण्ड्यवाट क्षेत्र का माना गया है।।६।।

बहुसंस्थाना इति। या मुक्ता बहुसंस्थाना बहुप्रकारसंस्थानमाकारो यासाम्। स्निग्धा निर्मलाः। हंसाभा हंसवर्णसदृशकान्तयः। स्थूला बृहत्यस्ताः सिंहलाकराः, सिंहल आकरो यासाम्। ईषत्ताम्राः किञ्चित्ताम्रवर्णाः। श्वेताः शुक्लाः। तमोवियुक्तास्तमोविरहिता निर्मला इत्यर्थः। तास्ताम्राख्यास्ताम्रपर्णभवाः।।३।।

जो मोती बहुसंस्थान अर्थात् विविध आकार का होता है, स्निग्ध अर्थात् मलरहित (स्वच्छ), हंस के रंग के सदृश वर्ण का, मोटा हो वह सिंहल-क्षेत्र में उत्पन्न होता है। कुछ-कुछ ताम्रवर्ण का, श्वेत अर्थात् उजला, तम अर्थात् कालिमा-रहित, निर्मल मोती ताम्रपर्ण देश का होता है।।३।।

कृष्णाः श्वेता इति। कृष्णाः कृष्णवर्णाः। श्वेताः सिताः। पीताः पीतवर्णाः। सशर्करा धातुयुक्ताः। विषमाश्चासमाः। ताः पारलौकिकाः परलोकभवाः। याश्च नातिस्थूला नातिबृहत्यः, नात्यल्पा नातिसूक्ष्माः। नवनीतनिभा नवनीतकान्तयस्ताः सौराष्ट्राः।।४।।

कृष्णवर्ण, श्वेतवर्ण और पीतवर्ण की शर्करा अर्थात् मृत्तिकादि धातु से युक्त और विषम अर्थात् असमतल मोती-परलोक प्रदेश में उत्पन्न होता है। जो मोती, बहुत मोटा न हो और अधिक छोटा भी न हो तथा नवनीत अर्थात् मक्खन के वर्ण का हो, वह सौराष्ट्र-क्षेत्र में उत्पन्न होता है।।४।।

ज्योतिष्मत्य इति। या मुक्ता ज्योतिष्मत्यस्तेजोयुक्ताः। शुभ्राः श्वेताः गुरवोऽतिगौरवयुक्ताः। महागुणा महद्भिर्गुणैर्युक्ताः। ताः पारशवाः। लघु स्वल्पम्। जर्जरं विवर्णम्। दधिनिभं दधिसदृशम्। बृहद्विस्तीर्णम्। द्विसंस्थानं द्वे संस्थाने यस्य तद्धैमं हिमवति सम्भूतम्।।५।।

जो मोती ज्योतिष्मती अर्थात् तेजयुक्त हो, श्वेत अर्थात् शुभ्र (उज्ज्वल) हो, गुरु अर्थात् गौरव (भारी) और महान् गुणोंवाला हो, वह पारशव देश में उत्पन्न होता है। लघु अर्थात् छोटा, जर्जर अर्थात् विकृत वर्ण, दही के रंग का बृहत् अर्थात् बड़ा (चौड़ा) और दो संस्थान अर्थात् दोहरी तह वाला हो, वह हेमकूट में उत्पन्न होता है।।५।।

विषममिति। विषममसमम्। कृष्णश्वेतं कृष्णवर्णं श्वेतवर्णं च। लघु गौरववर्जितम्। प्रमाणतेजोवत्। प्रमाणं महत्त्वं तेजश्च कान्तिर्विद्यते यस्मिस्तत्। निम्ब-फलसदृशम्। त्रिपुटं त्रिभिः पुटैरुपलक्षितम्। धान्यकं धान्यकाफलसदृशम्। चूर्णं चाति-सूक्ष्मम्। एताः सर्वा एव मुक्ताः पाण्ड्यवाटभवाः पाण्ड्यवटे जाताः स्यु-र्भवेयुः।।६।।

विषम अर्थात् समतल न हो, कृष्ण तथा श्वेत से मिश्रित वर्ण हो, छोटा और तेजयुक्त मोती कुबेरक्षेत्र का होता है। निम्बफल के समान, तीन पुट अर्थात् तीन तह का, धान्यकफल अर्थात् धनिया के समान, चूर्ण अर्थात् अधिक छोटा मोती पाण्ड्यवाट में उत्पन्न होता है।।६।।

विशेष व्याख्या—

विवृति में श्लोक सं. ६ की व्याख्या में कौबेर शब्द छूट गया है। मैंने अपनी हिन्दी व्याख्या में उसका समावेश कर अर्थ किया है।

अथैतेषां विशेषमाह–

अतसीकुसुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कसङ्काशम्।
हरितालनिभं वारुणमसितं यमदवतं भवति।।७।।
परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम्।
निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम्।।८।।

इनकी विशेषताओं को कहते हैं–

अलसी (तीसी) के पुष्प के समान श्यामल वर्ण का मोती वैष्णव तथा चन्द्रमा के समान ऐन्द्र होता है। हरिताल के समान वारुण और काला मोती यमदैवत होता है।।७।।

पके हुए अनार, गुलिका, गुञ्जा सदृश और ताम्रवर्ण का मोती वायुदैवत है। धूम-रहित अग्नि तथा कमल के वर्ण का मोती अग्निदैवत कहा गया है।।८।।

अतसीकुसुमश्याममिति। अतसीकुसुममतिप्रसिद्धं तद्वत् श्यामं यन्मुक्ताफलं तद्वैष्णवं विष्णुदैवत्यम्। शशाङ्कसङ्काशं चन्द्राभं तदैन्द्रम्। यच्च हरितालनिभं हरितालवर्णं तद्वारुणम्। यच्चासितं कृष्णं तद्यमदैवत्यम्।।७।।

अतसी अर्थात् अलसी जो प्रसिद्ध तैलीय पौधा है, उसका पुष्प साँवला (नीलाभ) होता है, इसके समान वर्ण के मोती के देवता भगवान् श्री विष्णु माने जाते हैं। चन्द्रमा के वर्ण (पीताभ) के मोती के देवता इन्द्र हैं। हरिताल फल के सदृश वर्ण के मोती के देवता वरुण और काली मोती के देवता यमराज माने गये हैं।।७।।

परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं चेति। परिपक्वदाडिमगुञ्जाफलरक्तं यत्तद्वायुदैवत्यं वायव्यम्। निर्धूमस्य धूमरहितस्यानलस्याग्नेः सदृशी प्रभा कान्तिर्यस्य तथा कमलस्य पद्मस्य च सदृशप्रभं यत्तदाग्नेयमग्निदैवत्यं विज्ञेयम्।।८।।

पके हुए (परिणत) अनार के समान तथा गुञ्जा के समान लाल वर्ण के मोती के देवता वायु कहे गये हैं। निर्धूम अर्थात् धूम-रहित अग्नि के समान जिससे कान्ति निकले और कमल-पुष्प के समान जिसकी प्रभा (वर्ण) हो, उस मोती के देवता अग्नि होते हैं, यह जानना चाहिए।।८।।

विशेष व्याख्या–

(१) हरिताल-सोने के रंग का होता है।

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि।
हरितालं द्विधाप्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञकम्।।

तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणैः परम्।
स्वर्णवर्णं गुरुः स्निग्धं सपत्रं चाम्रपत्रवत्।।

–भावप्रकाश निघण्टु, पृ. ६१८

(२) गुञ्जा-यह रक्त और श्वेत दोनों वर्ण की होती है। इसको घुँघुची, घुमची, करजनी और रत्ती भी कहा जाता है। अंग्रेजी में (जेक्वीरिटी) संज्ञा है। भावप्रकाश निघण्टु पृष्ठ ३५४ में इसका वर्णन किया गया है। यथा–

श्वेता गुञ्चोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला चापि सा स्मृता।
रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात् काक कान्ति च रक्तिका।।

प्रकृत प्रसङ्ग में रक्ता गुञ्जा ही अभिप्रेत है। कृष्णला भी गुञ्जा का पर्याय है। पाँच कृष्णला का एक माशा होता है।।८।।

अथैतेषां मूल्यपरिज्ञानार्थमाह–

माषकचतुष्टयधृतस्यैकस्य शताहता त्रिपञ्चाशत्।
कार्षापणा निगदिता मूल्यं तेजोगुणयुतस्य।।९।।
माषकदलहान्यातो द्वात्रिंशद्विंशतिस्त्रयोदश च।
अष्टौ च शतानि शतत्रयं त्रिपञ्चाशता सहितम्।।१०।।
पञ्चविंशं शतमिति चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः।
सार्धास्तिस्त्रो गुञ्जाः सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम्।।११।।
गुञ्जात्रयस्य मूल्यं पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य।
रूपकपञ्चत्रिंशत्त्रयस्य गुञ्जार्धहीनस्य।।१२।।

इनके मूल्यनिर्धारण की विधि को बतलाते हैं–

तेज (प्रकाश) और गुणों से युक्त चार माशा भार वाले मोती का मूल्य ३५×१००=३५०० कार्षापण होता है।।९।।

इससे आधा-आधा माशा न्यून हो तो क्रमशः ३२००, २०००, १३००, ८०० और ३५३ कार्षापण मूल्य होंगे।।१०।।

एक माशा के मोती का मूल्य १३५ कार्षापण तथा चार कृष्णला भार वाले मोती का मूल्य ९० कार्षापण होता है। साढ़े तीन कृष्णला अर्थात् गुञ्जा भार वाला मोती ७० कार्षापण का होता है।।११।।

तीन गुञ्जा (कृष्णला) भार का शुद्ध मोती ५० रूपक (चाँदी का सिक्का) मूल्य का तथा ढाई गुञ्जा तौल का मोती ३५ रूपक का होता है।।१२।।

माषकचतुष्टयधृतस्येति। एकस्य मुक्ताफलस्य तेजोगुणयुक्तस्य गुणान् वक्ष्यति– १"स्निग्धः प्रभानुलेपी" त्याद्येवं माषकचतुष्टयेन धृतस्य तुलितस्यत्रिपञ्चाशत्कार्षापणाः शताहताः शतगुणिता मूल्यम्। त्रिपञ्चाशत्कार्षापणशतानीत्यर्थः।।९।।

चिकनापन और प्रकाशयुक्तता आदि गुणों से युक्त एक मोती जो चार माषा तौल का हो, उसका मूल्य एक सौ गुणित तिरपन अर्थात् तिरपन सौ (५,३००) कार्षापण होता है।।९।।

माषकदलेति। अतोऽस्मान्माषकचतुष्टयधृतान्मुक्ताफलान्माकदकलहान्या माषकार्धोनितया एतद्वक्ष्यमाणं मूल्यम्- तद्यथा। सार्धैस्त्रिभिर्माषकैस्तुलितस्य द्वात्रिंशत्कार्षापणशतानि मूल्यम्। त्रिभिर्माषकैस्तुलितस्य विंशतिकार्षापणशतानि मूल्यम्। द्वाभ्यां सार्धाभ्यां तुलितस्य त्रयोदशकार्षापणशतानि। द्वाभ्यां तुलितस्याष्टौ शतानि। अध्यर्धेन माषकेण तुलितस्य त्रिपञ्चाशदधिकं शतत्रयं कार्षापणानां मूल्यम् ।।१०।।

इस प्रकार से चार माषा तौल वाले मुक्ताफल का जो मूल्य कहा गया है उससे आधा-आधा माषा न्यून तौल होने पर उनके मूल्यों में जो न्यूनता होगी उसे कहा जा रहा है। जैसा कि–साढ़े तीन माषा तौल वाले मुक्ताफल का मूल्य ३२०० कार्षापण होगा। तीन माषा तौल वाले का २००० कार्षापण मूल्य और साढ़े दो माषा के तौल पर १३०० कार्षापण मूल्य होगा। दो माषा तौल पर ८०० और डेढ़ माषा के तौल वाले मुक्ताफल का मूल्य ३५३ कार्षापण होगा।।१०।।

एकेन माषकेण तुलितस्य पञ्चत्रिंशदधिकं शतं कार्षापणानां मूल्यम्। चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्या इति। पञ्च कृष्णला एको माष इति। कृष्णलाशब्देन गुञ्जा उच्यते। यस्य मुक्ताफलस्य चत्वारः कृष्णला धृतं रूपम्, तस्य नवतिः कार्षापणा मूल्यम्। यस्य मुक्ताफलस्य रूपं प्रमाणं सार्धास्तिस्रो गुञ्जा धृतम्, तस्य सप्ततिमूल्यम्। सप्ततिः कार्षापणास्तस्य मूल्यमित्यर्थः।।११।।

एक माषा तौल होने पर १३५ कार्षापण मूल्य होगा। चार कृष्णला (गुञ्जा) तौल पर ९० कार्षापण मूल्य होगा। पाँच कृष्णला का एक माष (माषा) होता है। कृष्णला शब्द 'गुञ्जा' का बोधक है। जिस मुक्ताफल का रूप अर्थात् प्रमाण (तौल) चार कृष्णला हो, उसका ९० कार्षापण मूल्य होता है। जिस मुक्ताफल का प्रमाण अर्थात् तौल साढ़े तीन गुञ्जा प्राप्त हो, उसका मूल्य ७० होगा अर्थात् सत्तर कार्षापण उसका मूल्य होगा।।११।।

---

१. अस्यैव ग्रन्थस्य ८१ अध्यायस्य ३ श्लोकः।

गुञ्जात्रयस्येति। गुणयुक्तस्य सगुणस्य गुञ्जात्रयस्य पञ्चाशद्रूपका मूल्यम्। रूपकाः सुप्रसिद्धा एव। गुञ्जात्रयस्य गुञ्जार्धहीनस्य पञ्चत्रिंशद्रूपका मूल्यम्।।१२।।

गुण युक्त अर्थात् शुद्ध ३ गुञ्जा भार के मुक्ताफल का मूल्य ५० रूपक होता है। रूपक शब्द प्रसिद्ध है। तीन गुञ्जा में आधा न्यून (ढाई) गुञ्जा का मूल्य ३५ रूपक होगा।।१२।।

विशेष व्याख्या–

भास्कराचार्य की लीलावती के अनुसार २ जौ का एक गुंजा, ३ गुंजा = १ वल्ल, ८ वल्ल=१ धरण, २ धरण=१ गद्याणक, १४ वल्ल = १ धटक होता है। यथा–

तुल्या यवाभ्यां कथितात्र गुञ्जा वल्लस्त्रिगुञ्जो धरणं च तेऽष्टौ।
गद्याणकस्तद् द्वयमिन्द्रतुल्यैर्वल्लैस्तथैको धटकः प्रदिष्टः।।१२।।

अन्यान्यमूलपरिज्ञानमाह–

पलदशभागो धरणं तद्यदि मुक्तास्त्रयोदश सुरूपाः।
त्रिशती सपञ्चविंशा रूपकसङ्ख्या कृतं मूल्यम्।।१३।।
षोडशकस्य द्विशती विंशतिरूपस्य सप्ततिः सशता।
यत्पञ्चविंशतिधृतं तस्य शतं त्रिंशता सहितम्।।१४।।
त्रिंशत्सप्ततिमूल्यं चत्वारिंशच्छतार्धमूल्यं च।
षष्टिः पञ्चोना वा धरणं पञ्चाष्टकं मूल्यम्।।१५।।
मुक्ताशीत्या त्रिंशच्छतस्य सा पञ्चरूपकविहीना।
द्वित्रिचतुः पञ्चशता द्वादशषट्पञ्चकत्रितयम्।।१६।।

मूल्य निर्धारण की अन्य विधि–

पल का दशवाँ भाग एक धरण होता है। इस धरण तुल्य भार के १३ शुद्ध मोतीयाँ हों तो उनका मूल्य ३२५ रूपक होता है।।१३।।

यदि १६ मोती एक धरण भार के हों तो उनका मूल्य २०० रूपक तथा २० मोती का मूल्य १७० रूपक और २५ मोती एक धरण भार के हों तो उनका मूल्य १३० रूपक होगा।।१४।।

एक धरण भार में ३० मोती हों तो उनका मूल्य ७० रूपक एवं ४० मोती का ५० रूपक मूल्य होता है। ६० अथवा ५५ मोतियों का भार एक धरण होता हो तो उनका मूल्य ४० (पञ्चाष्टक) रूपक होगा।।१५।।

८० मोती का मूल्य ३० रूपक, १०० मोती का २५ रूपक तथा २००, ३००, ४०० और ५०० मोतियों का एक धरण भार हो तो क्रमशः १२, ६, ५, और ३ रूपक मूल्य होंगे॥१६॥

फलदशभागो धरणमिति। "पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश। पलं सुवर्णाश्चत्वारः" इति। एवं पलस्य यो दशभागः स धरणमित्युच्यते। तद्धरणं यदि त्रयोदश मुक्ताः सुरूपा गुणसंयुता भवति, तदा सपञ्चविंशा त्रिशती रूपक-संख्याकृतं मूल्यम्। त्रयाणां शतानां समाहारस्त्रिशती। सह पञ्चविंशत्या वर्तते या सा सपञ्चविंशा।।१३।।

"५ कृष्णलक (गुंजा) का एक माष और १६ माष का एक सुवर्ण और ४ सुवर्ण का एक पल"–यह–भार–मात्रक परिभाषित है। इस मान से पल के दशम भाग को धरण कहा जाता है। इस एक धरण भार में यदि १३ सुन्दर अर्थात् गुणयुक्त मोती हों तो उनका मूल्य पच्चीस सहित तीन सौ अर्थात् ३२५ रूपक मूल्य होता है। तीन सौ के योग को तीन सौ और पच्चीस सहित को "सपञ्चविंशा" कहा गया है॥१३॥

षोडशकस्येति। मुक्ताषोडशयुक्तस्य चेद्धरणं तदा द्विशती रूपकसंख्याकृतं मूल्यं भवति। एवं विंशतिरूपस्य सप्ततिः सशता। मुक्ताविंशतेर्धरणधृतायाः सप्त्यधिकं शतं मूल्यम्। पञ्चविंशतिमुक्ताया धृतं धरणं भवति, तस्य त्रिंशता सहितं शतं मूल्यमिति।।१४।।

एक धरण यदि १६ मोतियों का हो तो उसका २०० रूपक मूल्य होता है। इसी प्रकार २० मोतियों का मूल्य सत्तर सहित सौ १७० रूपक होगा। अर्थात् एक धरण भार में २० मोती का मूल्य एक सौ सत्तर रूपक होगा। २५ मोती का तौल यदि एक धरण होता है, तो उनका मूल्य १३० रूपक है॥१४॥

त्रिंशन्मुक्ता यद्धरणं भवति तस्य सप्ततिमूल्यम्। चत्वारिंशन्मुक्ता यद्धरणं तस्य शतार्धं पञ्चाशद्रूपका मूल्यम्। अत्र वाशब्दश्चार्थे। यच्च षष्टिः पञ्चोना वा पञ्चपञ्चाशन्मुक्ता धरणं भवति, तस्य पञ्चाष्टकमष्टौ पञ्चकाः। चत्वारिंशन्मूल्य-मित्यर्थः।।१५।।

३० मोतियों का तौल एक धरण होने पर उनका मूल्य ७० रूपक तथा ४० मोतियों का मूल्य सौ का आधा अर्थात् ५० रूपक होता है। मूल पाठ में 'वा' शब्द 'च' शब्द और के लिए प्रयुक्त है। जो ६० अथवा इससे ५ न्यून अर्थात् ५५ मोती का भार एक धरण हो तो उसका मूल्य पञ्चाष्टक अर्थात् आठ गुणित पाँच अर्थात् ४० रूपक होता है॥१५॥

मुक्ताशीत्येति। मुक्ताशीत्या धृतस्य धरणस्य त्रिंशद्रूपकमूल्यम्। मुक्ताशतधृतस्य सा त्रिंशत्पञ्चरूपकविहीना पञ्चविंशतिरूपका मूल्यम्। द्विशतधरणस्य द्वादशरूपकाः। त्रिशतधरणस्य षड्रूपकाः। चतुःशतधरणस्य रूपकपञ्चकम्। पञ्चशतधरणस्य त्रितयं रूपकाणां मूल्यमिति।।१६।।

८० मोतियों का भार यदि एक धरण हो तब उसका मूल्य ३० रूपक होगा। १०० मोतियों का तौल जब एक धरण हो तब उसका मूल्य ३० से ५ न्यून अर्थात् २५ रूपक होगा। २०० मोती एक धरण तौल की हो तो १२ रूपक तथा ३०० मोती हो तब ६ रूपक एवं ४०० मोतियों का एक धरण भार हो तब उसका ३० से ५ न्यून अर्थात् २५ रूपक होगा। २०० मोती एक धरण तौल की हो तो १२ रूपक तथा ३०० मोती हो तब ६ रूपक एवं ४०० मोतियों का एक धरण भार हो तब ५ रूपक और ५०० मोती का ३ रूपक मूल्य जानना चाहिए।।१६।।

अधुना त्रयोदशाद्यानां धरणानां संज्ञार्थमाह–

पिक्कापिच्चार्घार्धा रवकः सिक्थं त्रयोदशाद्यानाम्।
संज्ञाः परतो निगराश्चूर्णाश्चाशीतिपूर्वाणाम्।।१७।।

त्रयोदश आदि धरणों के नाम कहते हैं–

त्रयोदशादि धरणों की संज्ञा क्रमशः पिक्का, पिच्चा, अर्घा, अर्धा, रवक और और सिक्थ होती है। इससे अधिक ५५ धरणक का नाम निगरा और ८० धरणक से ऊपर के लिए चूर्णा शब्द का प्रयोग किया जाता है।।१७।।

त्रयोदशाद्यानां धरणानां पिक्काद्या संज्ञाः। तद्यथा–त्रयोदशमुक्ताधृतस्य धरणस्य पिक्केति संज्ञा। षोडशकस्य पिच्चा। विंशतिकस्यार्घा। पञ्चविंशतिकस्यार्धा। त्रिंशत्कधृतस्य रवकः। चत्वारिंशत्कस्य सिक्थम्। परतोऽनन्तरं पञ्चपञ्चाशत्कस्य निगरा। अशीतिपूर्वाणां पञ्चशतान्तानां सर्वधरणानां चूर्णा इति संज्ञा। एताश्चाकरस्थाने व्यवहार्थमुपयुज्यन्ते।।१७।।

तेरह से अधिक मोती वाले धरण की पिक्का आदि संज्ञा होती है। जैसा कि– १३ मोती वाले एक धरण की पिक्का संज्ञा, १६ की पिच्चा, २० की अर्घा, २५ की अर्धा, ३० की रवक, ४० की सिक्थ, तदनन्तर ५५ की निगरा संज्ञा है। ८० से ५०० तक के सभी धरणों की 'चूर्णा' संज्ञा होती है। इन पारिभाषिक शब्दों का आकर अर्थात् आढ़त (थोक विक्रय-स्थल) पर प्रयोग किया जाता है।।१७।।

अथोत्तराणां मूल्यपरिज्ञानमाह–

एतद्गुणयुक्तानां धरणधृतानां प्रकीर्तितं मूल्यम्।
परिकल्प्यमन्तराले हीनगुणानां क्षयः कार्यः।।१८।।

कृष्णश्वेतकपीतकताम्राणामीषदपि च विषमाणाम्।
त्र्यंशोनं विषमकपीतयोश्च षड्भागदलहीनम्।।१९।।

इसके अनन्तर मूल्य ज्ञात करने की विधि–

उपर्युक्त सभी विधियाँ शुद्ध तथा उत्तम गुणों वाले मोतियों के एक धरण तौल पर बतलायी गयी हैं। दो मानकों के मध्यवर्ती मान के लिए आनुपातिक कल्पना करनी चाहिए। दोषयुक्त मोती के मूल्य को न्यून करना चाहिए।।१८।।

कृष्ण, श्वेत, पीत और ताम्र वर्ण वाले मोतियों में किञ्चित् मात्रा में विषमता हो तो उनका मूल्य तृतीयांश अल्प होगा। अधिक विषम का छः भाग अल्प तथा पीताभ मोती का मूल्य आधा भाग अल्प होता है।।१९।।

एतदिति। गुणयुक्तानां मुक्ताफलानां धरणधृतानामेतद्यथोक्तं मूल्यम्। अन्तराले मध्ये परिकल्प्यं स्वबुद्ध्या मूल्यमूह्यम्। यथा त्रयोदशकस्य धरणस्य त्रिशती सपञ्चविंशा उक्ता। षोडशकस्य द्विशती। अन्तराले मध्ये चतुर्दशधृतस्य पञ्चदशधृतस्य वा व्यस्तत्रैराशिकेन मूल्यानयनं कार्यमित्यर्थः। हीनगुणानां वक्ष्यमाणेनैवं क्रमेण क्षयः कार्यः।।१८।।

गुण सहित अर्थात् विशुद्ध मोतियों के एक धरण भार होने पर पूर्वोक्त मूल्य समझना चाहिए। अन्तराल अर्थात् दो सामूहिक मानों के मध्य के भार का मूल्य स्वबुद्धि से कल्पना कर लें। जैसा कि–१३ धरण का मूल्य ३२५ रूपक कहा गया है। १६ मोती वाले धरण का २०० रूपक होता है। इन दोनों के मध्यवर्ती १४ भार वाले अथवा १५ भार वाले धरण का मूल्य व्यस्त त्रैराशिक गणित से निकालना चाहिए। अल्प गुणवती मोती का मूल्य अग्रिम विधि से न्यून कहना चाहिए।।१८।।

विशेष व्याख्या–

इच्छा की वृद्धि में फल की कमी और इच्छा के ह्रास में फल की वृद्धि हो उसे व्यस्त त्रैराशिक कहा जाता है। जैसे–यदि १० वर्षीया गाय दस हजार रूपये में मिलती हो, तब २० वर्षीया गाय कितने में मिलेगी? यहाँ पर गाय की अवस्था बढ़ने से वह बूढ़ी होती जायेगी तथा उसका मूल्य घटता जायेगा और दश वर्षीया गाय से २० वर्षीया का मूल्य आधा प्राप्त होगा। इस प्रकार इच्छा अर्थात् अवस्था की वृद्धि से फल अर्थात् मूल्य में ह्रास हुआ, यही व्यस्त त्रैराशिक है। इसको भास्कराचार्यकृत लीलावती में इस प्रकार कहा गया है–

इच्छावृद्धौ फलह्रासो ह्रासे वृद्धिः फलस्य तु।
व्यस्तं त्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणितकोविदैः।।
जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने।
भागहारे च राशीनां व्यस्तं त्रैराशिकं भवेत्।।१८।।

कृष्णश्वेतिकेति। ईषदिति प्रत्येकमभिसंबध्यते। ईषदिति प्रत्येकमभिसंबध्यते। ईषत्किञ्चित्कृष्णानामसितवर्णानाम्। ईषच्छुक्लानामीषत्ताम्राणामीषद्विषमाणां प्राग्विधानेन यन्मूल्यं तदेव त्र्यंशोनं त्रिभागहीनं तेषां मूल्यं भवति। विषमकपीतयोश्च यथासंख्यं षड्भागदलहीनम्। अतिविषमस्य षड्भागहीनं पीतस्यार्धहीनमिति।।१९।।

यहाँ पर ईषत् अर्थात् किञ्चित् शब्द का सभी पदार्थों के साथ सम्बन्ध है। ईषत् अर्थात् किञ्चित् कृष्ण अर्थात् काले की, किञ्चित् श्वेत, किञ्चित् ताम्र, किञ्चित् विषम मोतियों के मूल्य पूर्वोक्त विधि से जितने होंगे उससे तृतीयांश न्यून इनके रहेंगे। विषम और पीतवर्ण का मूल्य क्रमशः षष्ठांश और आधा भाग न्यून होगा। अर्थात् अतिविषम का षष्ठांश न्यून और पीतवर्ण का आधा भाग न्यून मूल्य रहेगा।।१९।।

अथ गजमुक्ताफललक्षणमाह—

ऐरावतकुलजानां पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु।
ये चोत्तरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वोश्च भद्रेभाः।।२०।।
तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु।
बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः।।२१।।
नैषामर्घः कार्यो न च वेधोऽतीव ते प्रभायुक्ताः।
सुतविजयारोग्यकरा महापवित्रा धृता राज्ञाम्।।२२।।

गजमुक्ताफल का लक्षण कहते हैं—

ऐरावत हाथी (देवेन्द्र-गज) के कुल में उत्पन्न जो कि पुष्य नक्षत्र अथवा श्रवण नक्षत्र और सोमवार एवं रविवार तथा उत्तरायण में उत्पन्न होते हैं अथवा रविग्रहण वा चन्द्रग्रहण में उत्पन्न होते हैं, उनको भद्र-गज कहा जाता है। इन भद्र-गजों के कुम्भस्थल (गण्डस्थल) और दाँतों के मध्य भाग में प्रचुर मोती प्राप्त होते हैं, जो बड़े आकार के, अनेक रूपों वाले तथा चमकीले होते हैं। इन मोतियों का मूल्य नहीं लगाना चाहिए और इनका बेधन (छिद्र) भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वे स्वतः प्राकृतिक तेज (चमक) से युक्त रहते हैं। राजाओं द्वारा धारण किये जाने पर ये पवित्र-मोती संतान, विजय और आरोग्य को प्रदान करते हैं।।२०-२२।।

ऐरावतकुलजानामिति। ऐरावतो नाम हस्ती तस्य कुले वंशे जाता ये गजास्तेषां तद्वंशप्रभवाणां तद्वंशप्रसूतानां गजानां च प्रजाताः पुष्ये पुष्यनक्षत्रे श्रवणे च नक्षत्रे। इन्दुदिने चन्द्रवासरे सूर्यदिवसे अर्कवारे यद्युत्पद्यन्ते। ये चैते गजा उत्तरायणभवा उत्तरायणे जाताः। अर्केन्द्वोः सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहण उपरागे च ये जातास्ते भद्रेभाः, भद्रनामामस्ते गजाः।।२०।।

इन्द्र का ऐरावत नाम का हाथी है, उसके कुल अर्थात् वंश में जो हाथी उत्पन्न होते हैं और पुष्यनक्षत्र अथवा श्रवणनक्षत्र में, चन्द्रवार (सोमवार) एवं अर्कवार (रविवार) में जो उत्पन्न होते हैं तथा वे हाथी जो कि उत्तरायण में उत्पन्न होते हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा के ग्रहण अर्थात् उपराग में जो उत्पन्न हैं, वे सभी भद्रनामक हाथी कहे जाते हैं।।२०।।

तेषामिति। किलेत्यागमदर्शनार्थम्। तेषामैरावतकुलजानां तथा भद्रेभानां कुम्भेषु मस्तकेषु सरदकोशेषु दन्तकोशसंयुक्तेषु मुक्ता जायन्ते उत्पद्यन्ते च। बहवः प्रभूता बृहत्प्रमाणाः स्थूलाः। बहुसंस्थाना अनेकाकाराः। प्रभायुक्तास्तेजस्विन्यः।।२१।।

यहाँ पर मूल श्लोक (सं. २१) में 'किल' शब्द का प्रयोग शास्त्र-परम्परा का प्रदर्शक है। इन ऐरावत कुलोत्पन्न भद्रनामक हाथियों के कुम्भ अर्थात् मस्तकों तथा दन्तकोष के संयोग-स्थलों पर मोती उत्पन्न होता है। वे मोती अत्यधिक स्थूल अर्थात् मोटा और भारवाला तथा बहुसंस्थाना अर्थात् अनेक आकारों में और प्रभा अर्थात् तेज (प्रकाश) से युक्त होता है।।२१।।

नैषामर्घः कार्य इति। तेषां मुक्ताफलानामर्घो मूल्यं न कार्यं न च वेधस्तेषां कार्यः। यतस्ताः सर्वा अतीवात्यर्थं प्रभायुक्तास्तेजस्विन्यो महापवित्रा अतिसाधना राज्ञां नृपाणां धृता देहस्थिताः सुतविजयाऽऽरोग्यकरा भवन्ति। सुताः पुत्राः। विजयः शत्रुनिग्रहः। आरोग्यं नीरोगत्वं च कुर्वन्ति।।२२।।

इन मोतियों का मूल्य नहीं निर्धारित करना चाहिए और उनका वेध (छिद्र) भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के ये सभी मोती तेजस्वी, परम-पवित्र और परमोपयोगी होते हैं। राजा के शरीर पर धारित होने से वे सभी पुत्र, विजय अर्थात् शत्रुसंहार और आरोग्य अर्थात् नीरोगिता को प्रदान करते हैं।।२२।।

विशेष व्याख्या–

ऐरावत, अभ्रमातङ्ग, ऐरावण, अभ्रमुवल्लभ ये चार नाम इन्द्र के हाथी के हैं। पुराणों के अनुसार वह समुद्र-मन्थन से प्राप्त हुआ था। अमरकोश १.१.४६ में उल्लिखित है–"ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः"।।२२।।

अथ वरा३हजस्य मुक्ताफलस्य तिमिजस्य च लक्षणमाह–

दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं बहुगुणं च वाराहम्।

तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत् पवित्रं बहुगुणं च।।२३।।

सूअर एवं मछली से उत्पन्न मोती के लक्षण–

सूकर (सूअर) की दाढ़ (चौघड़) दाँत के मूल में चन्द्र-किरण के वर्ण का, विविध गुणशाली वाराह-मोती होता है। मछली में पाये जाने वाला मोती मछली के नेत्र के समान बड़ा, पवित्र और अनेक गुणों वाला होता है।।२३।।

वराहाणां सूकराणाम्। दंष्ट्रामूलं यतो दंष्ट्रोत्पद्यते तत्र शशिकान्तिसप्रभं चन्द्रप्रभाभं बहुगुणमनेकगुणं वाराहं वराहसम्भूतं तन्मुक्ताफलं भवति। मत्स्याक्षिनिभं मीननेत्र-सदृशं तिमिजं मत्स्यजं भवति। बृहत् स्थूलम्। पवित्रं पावनम्। बहुगुणं च तज्ज्ञेयमिति।।२३।।

वराह अर्थात् सूअर के दंष्ट्रामूल अर्थात् जहाँ से दाँत निकलते (उत्पन्न होते) हैं, वहाँ पर चन्द्रमा की कान्ति के सदृश, अनेक गुणों वाले वराह से उत्पन्न मुक्ताफल मिलते हैं। मत्स्याक्षि अर्थात् मीन (मछली) के नेत्र के समान तिमिज अर्थात् मछली से जायमान मोती होता है। यह बृहत् अर्थात् स्थूल (मोटा), पवित्र और अनेक गुणों वाला माना जाता है।।२३।।

अथ मेघसम्भूतस्य मुक्ताफलस्य लक्षणमाह–

वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमाद् भ्रष्टम्।

ह्रियते किल खाद् दिव्यैस्तडित्प्रभं मेघसम्भूतम्।।२४।।

बादल से उत्पन्न मुक्ताफल का लक्षण कहते हैं–

सातवें वायुस्कन्ध से गिरे हुए, वर्षा के पत्थर से उत्पन्न आकाशीय मेघ से जायमान, विद्युत् कान्ति के सदृश रत्न दिव्यलोक से अवतरित होते हैं।।२४।।

वर्षे उपलो वर्षोपलः। वर्षोपलवज्जातम्। यथा वर्षमध्ये उपला जायन्ते तद्वत् सप्तमाद्वायुस्कन्धाद् भ्रष्टं पतितम्। किलेत्यागमार्थम्। दिवि भवा दिव्याः। खादन्तरिक्षात् पतमानं दिव्यैराकाशस्थैर्देवयोनिभिर्ह्रियते। तडित्प्रभं विद्युत्कान्तिसदृशं मेघसम्भूतमभ्रजं मुक्ताफलम् ।।२४।।

वर्षा के उपल (पत्थर) को वर्षोपल कहा जाता है। वर्षोपल के समान अर्थात् जिस प्रकार वर्षा के मध्य उपल (पत्थर) उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सप्तमवायु के स्कन्ध से पतित मेघरत्न कहे जाते हैं। "किल" शब्द शास्त्र-परम्परा का सूचक है। दिव्य अर्थात् आकाश से उत्पन्न और अन्तरिक्ष से पतित होकर आकाश में स्थित

देवयोनियों से हरण कर लिये जाते हैं। ये मुक्ताफल तडित् अर्थात् विद्युत् के तेज के समान एवं मेघ से अर्थात् बादल से उत्पन्न होते हैं।।२४।।

अधुना नागमुक्ताफलस्य लक्षणमाह–

तक्षकवासुकिकुलजाः कामगमा ये च पन्नागास्तेषाम्।
स्निग्धा नीलद्युतयो भवन्ति मुक्ताः फणस्यान्ते।।२५।।
शस्तेऽवनिप्रदेशे रजतमये भाजने स्थिते च यदि।
वर्षति देवोऽकस्मात् तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम्।।२६।।

अब नाग से उत्पन्न मोती का लक्षण कहते हैं–

तक्षकनाग और वासुकीनाग के कुल में उत्पन्न सर्प कामचारी होते हैं। इनके फण के अन्त भाग में चिकने और नीले रंग के मोती होते हैं।।२५।।

प्रशस्त भूमि पर चाँदी के पात्र में यदि इसको रखा जाय तो निश्चित ही अकस्मात् इन्द्रदेव वर्षा करने लगते हैं और ऐसा होने पर इसको नाग-मोती समझना चाहिए।।२६।।

तक्षकवासुकिकुलजा इति। ये पन्नगास्तक्षकवासुकिकुलजाः। तक्षककुले वासुकिकुले जाताः। कामगमा इच्छागामिनो ये च। तेषां नागानां फणस्यान्ते शिरः पर्यन्ते मुक्ताः स्निग्धाः सस्नेहा नीलद्युतयो नीलकान्तयो भवन्ति।।२५।।

जो सर्प तक्षक और वासुकी-कुल में उत्पन्न होते हैं और जो कामगामी अर्थात् अपने इच्छित स्थान पर ही विचरते हैं, उन नागों के फण के अन्त में अर्थात् शिर के अन्त भाग में होने वाली सस्नेहा अर्थात् चिकनी और नील प्रकाश होता है।।२५।।

शस्त इति। कथं नागजं मुक्ताफलं ज्ञातव्यम्? ज्ञायते तत्प्रत्ययार्थमिदमाह- यस्मिन् मुक्ताफले शस्ते प्रशस्तेऽवनिप्रदेशे भूभागे तत्र च रजतमये रौप्ये भाजने पात्रे स्थिते सति अकस्मादनाशङ्कितमेव देवो वर्षति, तन्मुक्ताफलं नागसम्भूतं ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।।२६।।

जो नाग से उत्पन्न मोती है, उसका क्या पहचान है? इसकौ विश्वास-पूर्वक जानने की विधि को यहाँ पर कहा जा रहा है–जिस मुक्ताफल को उत्तमभूमि पर रजत (चाँदी) पात्र में रखने पर अकस्मात् निःसंशय देव वर्षा करता है, उस मुक्ताफल को नाग से उत्पन्न जानना चाहिए।।२६।।

विशेष व्याख्या–

सर्पों के राजा को वासुकी कहते हैं। इसके शिर में रत्न होता है। "वासुकिस्तु सर्पराज:"–अमरकोश १/८/४। वसु रत्नं के मूर्ध्नि यस्य। सर्पाणां राजा नागराज:। पन्नग=पन्नं पतितं गच्छति यथा तथा इति पन्नग:। सर्प शब्द का पर्याय। तक्षक अर्थात् नाग। तक्षको नागवर्धक्यो:, अ. को. ३/३/४।, कद्रु का पुत्र नाग है जो कि सर्प की एक जाति है। नगे भवा: नागा:, यद्वा न गच्छन्तीति। फणलाङ्गलवतो नराकर: सर्प:- अ.को. १/८/३ ॥२६॥

अस्य च गुणानाह–

अपहरति विषमलक्ष्मीं क्षपयति शत्रून् यशो विकाशयति।
भौजङ्गं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजययदं च॥२७॥

इसके गुणों को कहते हैं–

नाग-मुक्ता राजाओं द्वारा जब धारण किया जाता है तब वह विष और निर्धनता का हरण करता है, शत्रुओं का संहार करता है, यश का विस्तार और विजय प्रदान करता है। यह मुक्ताफल अमूल्य होता है॥२७॥

भौजङ्गं सार्पं सर्पमुक्ताफलम्। अकृतार्घमकृतमूल्यं राज्ञां नृपतीनां धृतं विषमलक्ष्मीं चापहरति। शत्रून् रिपून् क्षपयति। यश: कीर्तिं विकाशयति। विजयदं च विजयं ददाति॥२७॥

भौजङ्ग अर्थात् सर्प का मुक्ताफल अमूल्य होता है, जो राजाओं द्वारा धारण किये जाने पर विष और अलक्ष्मी अर्थात् असमृद्धि का हरण करता है, शत्रुओं का नाश करता है, यश अर्थात् कीर्ति का विस्तार करता है और विजय देता है॥२७॥

अथ वेणुशङ्खोद्भवस्य लक्षणमाह–

कर्पूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषमं च वेणुजं ज्ञेयम्।
शङ्खोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुचिरं च॥२८॥

बाँस और शङ्ख से उत्पन्न मोती का लक्षण कहते हैं–

बाँस से उत्पन्न मोती कपूर और स्फटिक-पत्थर के समान श्वेत वर्ण का चिपटा और विषम होता है। शंख से उत्पन्न मोती चन्द्रमा के वर्ण का, गोल, सुन्दर और रुचिकर होता है॥२८॥

कर्पूरनिभं स्फटिकनिभं चिपिटं विषमं च तद्वेणुजं वेणुसम्भूतम्। शशिनिभं चन्द्रसदृशं वृत्तं परिवर्तुलं भ्राजिष्णु भ्राजनशीलं रुचिरं तेजस्वि शङ्खोद्भवं शङ्खजं ज्ञेयम्॥२८॥

कपूर के सदृश तथा स्फटिक श्वेत-पत्थर के सदृश, चिपटा और विषम (असम-तल) आकृति के मोती को बाँस से उत्पन्न जानना चाहिए। चन्द्रमा के सदृश अर्थात् चन्द्रमा के वर्ण (पीताभ) के समान, परिवर्तुल अर्थात् गोल, भ्राजिष्णु अर्थात् भ्राजनशील (सुन्दर) और रुचिर अर्थात् तेज (प्रकाश) से युक्त मोती को शंख से उत्पन्न समझना चाहिए॥२८॥

विशेष व्याख्या–

भ्राजिष्णु और रुचिर शब्द पर्यायवाची है। दोनों का अर्थ सुन्दर और अलंकारादि से सुशोभित वस्तु है। यथा–अमरकोश २.६.१०१–"विभ्राड् भ्राजिष्णुरोचिष्णू", भ्राजते तच्छील:, रोचते तच्छील:, अलङ्कारादिना शोभमानस्य।

अथैतेषां परिभाषाज्ञानार्थमाह–

शङ्खतिमिवेणुवारणवराहभुजगाभ्रजान्यवेद्यानि।

अमितगुणत्वाच्चैषामर्घः शास्त्रे न निर्दिष्टः।।२९।।

इनकी परिभाषा के सम्बन्ध में कहते हैं–

शंख, मछली, बाँस, हाथी, सूअर, सर्प और मेघों से उत्पन्न मुक्ताफल अन्वेद्य (निर्दोष) होते हैं। इनके गुण अपरिगणित होते हैं, अत: शास्त्रकारों ने इनके मूल्य का निर्देश नहीं किया है॥२९॥

शङ्खः प्राणी। तिमिर्मत्स्यः। वेणुर्वंशः। वारणो हस्ती। वराहः सूकरः। भुजगः सर्पः। अभ्रं मेघः। एभ्यो यानि जातानि सम्भूतानि तान्यवेद्यानि न वेदनीयानि। एषां सर्वेषाममितगुणत्वाद्बहुगुणत्वाच्छास्त्रे अर्घो मूल्यं न निर्दिष्टो नोक्तः।।२९।।

शङ्खः एक प्राणी विशेष, तिमि अर्थात् मछली, वेणु अर्थात् बाँस (वंश), वारण अर्थात् हाथी, वराह अर्थात् सूअर, भुजग अर्थात् सर्प (साँप), अभ्र अर्थात् मेघ (बादल); इनसे जो उत्पन्न मोतियाँ होती हैं, वे सभी अवेद्य अर्थात् वेदना रहित (दोष रहित) होती हैं। इन सभी के अमित गुण अर्थात् बहुत अधिक गुण होने से शास्त्र में अर्घ अर्थात् मूल्य निर्दिष्ट नहीं हैं अर्थात् मूल्य नहीं कहे गये हैं॥२९॥

एतेषां प्रशस्तार्थमाह–

एतानि सर्वाणि महागुणानि
सुतार्थसौभाग्ययशस्कराणि।
रुक्शोकहन्तॄणि च पार्थिवानां
मुक्ताफलानीप्सितकामदानि।।३०।।

इनके महत्व को बतलाते हैं–

पूर्वोक्त ये सभी मुक्ता-रत्न महान् गुणों वाले संतति, धन, सौभाग्य और यश के कर्ता होते हैं। राजाओं के लिए तो वे मुक्ताफल-रत्न रोग एवं शोक को दूर कर अभीष्ट कामना को पूर्ण करते हैं॥३०॥

एतानि सर्वाणि निःशेषाणि शङ्खादिसम्भूतानि मुक्ताफलानि महागुणानि प्रभूतगुणानि। सुताः पुत्राः। अर्थो धनम्। सौभाग्यं सर्वजनप्रियत्वम्। यशः कीर्ति कुर्वन्ति। पार्थिवानां राज्ञां रुक्शोकहन्तृणि, रुग् रोगः, शोको दुःखं हरन्ति, ईप्सितमभिलषितं काममिच्छां च ददति।।३०।।

ये सभी शंखादि से उत्पन्न मुक्ताफल महान् गुण अर्थात् प्रचुर गुणों से युक्त होते हैं। पुत्र, धन, सौभाग्य अर्थात् लोकप्रियता और यश कीर्ति की वृद्धि करते हैं। राजाओं के रोग और शोक अर्थात् दुःख का हरण करते हैं तथा ईप्सित अर्थात् मनोभिलषित काम अर्थात् इच्छा को ये पूर्ण करते हैं॥३०॥

अधुना मुक्तारचितानामाभरणानां संज्ञा आह–

सुरभूषणं लतानां सहस्रमष्टोत्तरं चतुर्हस्तम्।
इन्दुच्छन्दो नाम्ना विजयच्छन्दस्तदर्धेन।।३१।।
शतमष्टयुतं हारो देवच्छन्दो ह्यशीतिरेकयुता।
अष्टाष्टकोऽर्धहारो रश्मिकलापश्च नवषट्कः।।३२।।
द्वात्रिंशता तु गुच्छो विंशत्या कीर्तितोऽर्धगुच्छाख्यः।
षोडशभिर्माणवको द्वादशभिश्चार्धमाणवकः।।३३।।
मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः पञ्चलता हारफलकमित्युक्तम्।
सप्ताविंशतिमुक्ता हस्तो नक्षत्रमालेति।।३४।।
अन्तरमणिसंयुक्ता मणिसोपानं सुवर्णगुलिकैर्वा।
तरलकमणिमध्यं तद्विज्ञेयं चाटुकारमिति।।३५।।

एकावली नाम यथेष्टसङ्ख्या
हस्तप्रमाणा मणिविप्रयुक्ता।
संयोजिता या मणिना तु मध्ये
यष्टीति सा भूषणविद्भिरुक्ता।।३६।।

मुक्ता से विनिर्मित अलंकारों के नाम कहते हैं–

देव-आभूषण १००८ लताओं वाला चार हाथ लम्बा होता है, जिसको

इन्दुच्छन्द नाम से पुकारते हैं। इस परिमाप का आधा विजयछन्द कहा जाता है। १०८ लता वाले आभूषण को हार कहा जाता है। ८१ लता से युक्त आभरण देवच्छन्द होता है। ६४ लताओं को अर्द्धकार तथा ५४ लताओं को रश्मिकलाप कहा जाता है। ३२ लताओं का गुच्छ और २० लताओं का अर्ध-गुच्छ, १६ लताओं का माणवक और १२ लताओं का अर्द्ध-माणवक होता है। आठ लताओं से मन्दर, ५ लताओं से हारफलक कहा जाता है। २७ मोतियों वाला तथा एक हाथ लम्बा नक्षत्रमाला कहा जाता है। मोतियों के बीच यदि मणि संयुक्त हो तो उसको मणिसोपान कहा जाता है। सोने की गुलिका भी बीच-बीच में रखी जाये तो उसको भी मणिसोपान की कहा जाता है। सुवर्ण मणि यदि मध्य में स्थापित किया जाये तो उसकी संज्ञा ''चाटुकार'' होती है।

मणि रहित एक हाथ लम्बी यथेष्ट संख्या वाली एकावली कही जाती है। जो मोती की माला मध्य भाग में मणि से युक्त हो उसको आभूषण विद्या के ज्ञाता विद्वान् 'यष्टी' नाम से सम्बोधित करते हैं॥३१-३६॥

सुरभूषणं लतानामिति। अष्टाधिकसहस्रं लतानां चतुर्हस्तं चत्वारो हस्ता दीर्घं सुरभूषणं सुराणां देवानां भूषणमलङ्कारं तच्च क्रियते। तस्य नाम संज्ञा इन्दुच्छन्दः। तस्यैवेन्दुच्छन्दसोऽर्धेन दलेन पञ्चशतानि चतुरधिकानि लतानां द्विहस्तं च विजयछन्दः संज्ञम्। शतमष्टयुतमिति। अष्टयुतं शतं लतानां द्विहस्तं च हारः। एकयुताशीति-रेकाशीतिर्लतानां द्विहस्तं च देवच्छन्दः। अष्टाष्टकोऽर्धहारः अष्टाभिरष्टवैश्चतुःषष्ट्या लतानामर्धहारः। नवषट्कश्चतुष्पञ्चाशल्लता रश्मिकलापाख्यः॥३२॥

आठ अधिक एक सहस्र अर्थात् १००८ लता वाले चार हाथ दीर्घ (लम्बे) देवताओं के लिए अलंकार निर्मित किये जाते हैं। उसका नाम इन्दुछन्द है। इस इन्दुच्छन्द के आधे प्रमाणों से अर्थात् ५०४ लताओं वाले दो हाथ लम्बे अलंकरण की विजयच्छन्द के आधे प्रमाणों से अर्थात् ५०४ लताओं वाले दो हाथ लम्बे अलंकरण की विजयच्छन्द के आधे प्रमाणों से अर्थात् ५०४ लताओं वाले दो हाथ लम्बे अलंकरण की विजयच्छन्द संज्ञा होती है। आठ सहित सौ अर्थात् १०८ लताओं का दो हाथ लम्बा आभरण हार कहा जाता है॥३१॥

८१ लताओं का दो हाथ लम्बा देवच्छन्द तथा अष्टाष्टक (८×८=६४) अर्थात् ६४ लताओं का अर्द्ध हार होता है। नव षटक् १०८ (९×६=५४) अर्थात् ५४ लताओं का रश्मि-कलाप कहा जाता है॥३२॥

द्वात्रिंशता त्विति। लतानां द्वात्रिंशता युक्तं गुच्छाख्यम्। विंशत्या लतानामर्धगुच्छाख्यः कीर्तित उक्तः। षोडशभिर्लताभिर्माणवकाख्यः। द्वादशभिर्लताभिरर्धमाणवकः। द्विहस्त इति सर्वत्रानुवृत्तिः॥३३॥

३२ लताओं से युक्त आभरण गुच्छा, २० लताओं का अर्द्धगुच्छा कहा गया है। १६ लताओं का माणवक तथा १२ लताओं का अर्द्धमाणवक होता है। यहाँ पर दो हाथ लम्बाई सभी की समझनी चाहिए।।३३।।

मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिरिति। अष्टाभिर्लताभिर्मन्दरसंज्ञः। पञ्चभिर्लताभिर्हारफलकमिति उक्तं कथितम्। सप्तविंशतिर्मुक्ताफलानि हस्तप्रमाणा च नक्षत्रमालेति संज्ञा।।३४।।

आठ लताओं का मन्दर संज्ञक तथा ५ लताओं वाला हारफलक कहा गया है। सत्ताइस मोतियों वाला, एक हाथ लम्बा आभरण नक्षत्रमाला नाम से जाना जाता है।।३४।।

अन्तरमणिसंयुक्तेति। सैव लता हस्तप्रमाणा अन्तरे मध्ये मणिभिः संयुक्ता सुवर्णगुलिकैर्वा कनकगुलिकैरथवान्तरे संयुक्ता मणिसोपानसंज्ञम्। तरलकमणिमध्यम्। हेमनिबद्धो मणिस्तरलकमणिः, स मध्ये यस्य। तेन संयुक्तं चाटुकारमिति ज्ञेयम् ।।३५।।

यही लता एक हाथ लम्बी तथा मध्य में मणियों से संयुक्त अथवा सुवर्ण गुलिका से संयुक्त होकर मणिसोपान संज्ञक होती है। यही तरलकमणि से मध्य भाग में संयुक्त होकर चाटुकार संज्ञक होती है। स्वर्ण गुलिका से निबद्धमणि को तरलक मणि कहा जाता है।।३५।।

एकावलीति। यथेष्टसङ्ख्या यथेष्टैर्मुक्ताफलैर्युक्ता हस्तप्रमाणा हस्तसम्मिता मणिभिर्विप्रयुक्ता रहिता एकावली नाम तस्या भवति। या तु यथेष्टसङ्ख्या हस्तप्रमाणा मणिना तु मध्ये संयोजिता सा भूषणविद्भिर्भूषणलक्षणज्ञैर्यष्टीत्युक्ता कथिता।।३६।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृत्तौ मुक्तालक्षणं नामशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

यथेष्टा संख्या अर्थात् यथेष्ट मुक्ताफल से युक्त १ हाथ लम्बी माला जो कि मणियों से रहित हो उसका नाम एकावली होता है। जो माला यथेष्ट संख्या में एक हाथ लम्बी और मध्य भाग में मणि से संयुक्त हो, वह आभूषण के लक्षणों के ज्ञाता, विद्वानों द्वारा यष्टि संज्ञा से सम्बोधित होती है।।३६।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में मुक्तालक्षण नामक अध्याय अस्सी की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८०।।

❄ ❄ ❄

।। अथैकाशीतितमोऽध्यायः ।।

पद्मरागलक्षणाध्यायः

अथ पद्मरागलक्षणं व्याख्यायते।

तत्रादावेव पद्मरागाणामुत्पत्तेर्लक्षणमाह—

सौगन्धिककुरुविन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः।
सौगन्धिकजा भ्रमराञ्जनाब्जजम्बूरसद्युतयः।।१।।
कुरुविन्दभवाः शबला मन्दद्युतयश्च धातुभिर्विद्धाः।
स्फटिकभवा द्युतिमन्तो नानावर्णा विशुद्धाश्च।।२।।

पद्मरागलक्षण नामक अध्याय ८१ की व्याख्या की जाती है।

पद्मरागों की उत्पत्ति के लक्षण कहते हैं—

सौगन्धिक, तथा कुरुविन्द धातु और स्फटिकपत्थर से पद्मरागरत्न उत्पन्न होता है। सौगन्धिक से उत्पन्न पद्मराग, भ्रमर, अञ्जन, कमल और जामुन के रस के सदृश-वर्ण का होता है।।१।।

कुरुविन्द से उत्पन्न पद्मराग शबल (मटमैला), अल्प प्रकाश वाला और मिट्टी आदि से मिश्रित होता है। स्फटिक से उत्पन्न पद्मराग चमकीला (प्रकाशमान) अनेक वर्णों का और उत्तम होता है।।२।।

सौगन्धिकेति। सौगन्धिककुरुविन्दौ धातुविशेषौ। स्फटिकः स्फटिकोपलः। एभ्यः पद्मरागाणां सम्भूतिरुत्पत्तिः। तत्र च ये भ्रमरद्युतयो द्विरेफसमकान्तयः। अञ्जनद्युतयः। अब्जवर्णा उत्पलवर्णा वा तत्तुल्यकान्तयः। जम्बूरसद्युतयः, जम्बूर्वृक्षविशेषः, तद्रससमकान्तयो लोहितवर्णाः। ते सौगन्धिकजाः सौगन्धिकसम्भूताः।।१।।

सौगन्धिक और कुरुबिन्द एक विशेष धातु है। स्फटिक को स्फटिक-पत्थर कहते हैं। इन तीनों से पद्मराग की उत्पत्ति होती है। इनमें से जो भ्रमर अर्थात् द्विरेफ (भँवरा) के समान वर्ण का, अञ्जन (काजल) के वर्ण का, अब्ज अर्थात् उत्पल (नील कमल) के वर्ण का अथवा जामुन के फल के रंग अर्थात् जामुनी वर्ण का हो; उसको सौगन्धिक धातु से उत्पन्न जानना चाहिए।।१।।

कुरुविन्दभवा इति। ये तु शबलाः शुक्लकृष्णव्यामिश्राः मन्दद्युतयोऽल्पकान्तयः। धातुभिर्मृत्तिकादिभिर्विद्धाः सकलङ्कास्तत्संयोगाज्जातास्ते कुरुविन्दभवाः कुरुविन्दजाताः। ये च द्युतिमन्तः प्रभावन्तो नानावर्णा विचित्रा विशुद्धा निर्मलास्ते स्फटिकभवाः स्फटिकसम्भूता।।२।।

जो पद्मराग शबल अर्थात् श्वेत और कृष्ण से मिश्रितमन्द वर्ण के होते हैं, थोड़ी चमक वाले तथा धातु अर्थात् मिट्टी आदि से संलिप्त अर्थात् इससे संलग्न होकर धूमिल होते हैं, वे कुरुविन्द धातु से उत्पन्न रहते हैं। जो पद्मराग प्रकाश किरणों से युक्त, विविध वर्णों के, विशुद्ध अर्थात् निर्मल (स्वच्छ) होते हैं, वे स्फटिक से उत्पन्न रहते हैं।।२।।

विशेष व्याख्या–

पद्मराग लालवर्ण का रत्न है, जिसको शोणरत्न और लोहितक भी कहा जाता है। यथा–अमरकोश २.९.९२ "शोणरत्नं लोहितकः पद्मरागः"।

अधुनैतेषां गुणानाह–

स्निग्धः प्रभानुलेपी स्वच्छोऽर्चिष्मान् गुरुः सुसंस्थानः।
अन्तःप्रभोऽतिरागो मणिरत्नगुणाः समस्तानाम्।।३।।

अब इनके गुणों को कहते हैं–

चिकने, प्रकाशमान्, निर्मल, किरणों सहित, भारवान, सुन्दर-सुडौल, भीतर से चमकदार और गाढ़े रंग के होने से सभी प्रकार के रत्न गुणवान (महत्व-पूर्ण) समझे जाते हैं।।३।।

स्निग्धः स्नेहसंयुक्तः। प्रभानुलेपी प्रभया कान्त्या अनुलिम्पति तच्छीलः। स्वच्छो निर्मलः। अर्चिष्मान् दीप्तियुक्तः। गुरुर्गौरवयुक्तः। सुसंस्थानः शोभनाकृतिः। अन्तःप्रभोऽन्तर्मध्ये प्रभा कान्तिर्यस्य अतिरागोऽतीव रागेण लौहित्येन युक्तः। एते समस्तानां सर्वेषां पद्मरागादीनां मणिरत्नगुणाः प्रधान-रत्नगुणाः।।३।।

स्नेहयुक्त, प्रभा अर्थात् कान्ति (प्रकाश) से अनुलिप्त, स्वच्छ अर्थात् मलरहित, अर्चिष्मान् अर्थात् दीप्तिमान् (तेजवान्) गौरव अर्थात् भारी, सुसंस्थान अर्थात् सुन्दर आकृति वाले, अन्तःप्रभा अर्थात् जिसके भीतर प्रकाश हो, अतिराग अर्थात् जो अतिशय लालिमा से युक्त हो; ये सभी पद्मरागादि रत्नों के प्रधान-गुण होते हैं।।३।।

अथैतेषामपि दोषनाह–

कलुषा मन्दद्युतयो लेखाकीर्णाः सधातवः खण्डाः।
दुर्विद्धा न मनोज्ञाः सशर्कराश्चेति मणिदोषाः।।४।।

इनके दोषों को कहते हैं–

कलुष (कालिमा युक्त), हल्के प्रकाश वाले, रेखा (खरोंच) वाले, मिट्टी सहित, खण्डित और विकृत, वेध (छिद्र) वाले, देखने में आकर्षक न हों तथा शर्करा (बालुकण) सहित हों तो, ये सभी मणियों (रत्नों) के दोष कहे गये हैं।।४।।

कलुषा अनिर्मलाः मन्दद्युतयः स्वल्पकान्तयः। लेखाकीर्णा लेखाभिर्व्याप्ता। सधातवो धातुभिर्मृत्तिकादिभिः सहिताः। खण्डाः स्फटिताः। दुर्विद्धा दुष्टेनाप्रशस्तेन वेधेन संयुक्ताः। न मनोज्ञा न चित्तह्लादकाः। सशर्कराः शर्करासंयुक्ताः। इत्येवंप्रकारा मणिदोषाः।।४।।

कलुष अर्थात् जो निर्मल (स्वच्छ) न हो, मन्दद्युति अर्थात् धीमे प्रकाश वाले, लेखा अर्थात् रेखाओं से युक्त, मृत्तिकादि धातु सहित, खण्ड अर्थात् फटे हुए, दुर्विद्ध अर्थात् दूषित वेध (छिद्र) से युक्त, अमनोज्ञ अर्थात् चित्ताकर्षक न हों एवं जो शर्करा (बालुका) सहित हों, इस प्रकार के ये सभी रत्नों के दोष होते हैं।।४।।

अथ सर्पमणिलक्षणमाह–

भ्रमरशिखिकण्ठवर्णो दीपशिखासप्रभो भुजङ्गानाम्।
भवति मणिः किल मूर्धनि योऽनर्घेयः स विज्ञेयः।।५।।

सर्पमणि के लक्षण कहते हैं–

भ्रमर और शिखि-कण्ठ (मयूर कण्ठ) तथा दीपक की लौ (शिखा) के समान वर्षा वाले रत्न सर्प से उत्पन्न होते हैं। सर्प की मूर्धा शीर्ष में ये रत्न होते हैं, जिनको अमूल्य समझना चाहिए।।५।।

भुजङ्गानां सर्पाणां मूर्धनि शिरसि भ्रमरसदृशो द्विरेफकान्तिः। शिखिकण्ठ-सदृशोवर्णो मयूरगलसमप्रभः। दीपशिखासप्रभः प्रदीपाग्रकान्तिः। यो मणि-र्भवति सोऽनर्घेयोऽमूल्यो विज्ञेयो ज्ञातव्यः।।५।।

भुजंग अर्थात् सर्प की मूर्धा अर्थात् शिर में, द्विरेफ अर्थात् भ्रमर के सदृश वर्ण के तथा शिखिकण्ठ अर्थात् मोर के गले के समान वर्ण के और दीपशिखाग्र की कान्ति के समान जो मणि होती है, उसको अमूल्य (अनर्घ) जानना चाहिए।।५।।

अस्य प्रभावमाह–

यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य
दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित्।
राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः
शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभवात्।।६।।

इनका प्रभाव कहते हैं–

उस सर्पमणि को जो राजा धारण करता है उसको विषरोग-जन्य दोष नहीं होते हैं। उस राजा के राष्ट्र में इन्द्रदेव नित्य वर्षा करते हैं और उस रत्न के प्रभाव से शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।६।।

यो मनुजाधिपति राजा तं सर्पमणिं बिभर्ति धारयति तस्य विषकृता रोगकृता दोषा न कदाचिद्भवन्ति। तस्य च राज्ञो राष्ट्रे देवः शक्रो नित्यं सर्वकालं वर्षति। तस्य च मणेः प्रभावाच्छत्रून् रिपून् स राजा नाशयति।।६।।

जो राजा उस सर्पमणि को धारण करता है, उसे विषजन्य और रोग-जन्य कष्ट कभी भी नहीं होते हैं। उस राजा के राष्ट्र में देव अर्थात् इन्द्र नित्य अर्थात् सर्वदा वर्षा करता है। उस मणि के प्रभाव से वह राजा शत्रुओं को विनष्ट कर देता है।।६।।

अथास्य मूल्यपरिज्ञानार्थमाह–

षड्विंशतिः सहस्राण्येकस्य मणेः पलप्रमाणस्य।
कर्षत्रयस्य विंशतिरुपदिष्टा पद्मरागस्य।।७।।
अर्धपलस्य द्वादश कर्षस्यैकस्य षट्सहस्राणि।
यच्चाष्टमाषकधृतं तस्य सहस्रत्रयं मूल्यम्।।८।।
माषकचतुष्टयं दशशतक्रयं द्वौ तु पञ्चशतमूल्यौ।
परिकल्प्यमन्तराले मूल्यं हीनाधिकगुणानाम्।।९।।
वर्णन्यूनस्यार्द्धं तेजोहीनस्य मूल्यमष्टांशम्।
अल्पगुणो बहुदोषो मूल्यात् प्राप्नोति विंशांशम्।।१०।।
आधूम्रं व्रणबहुलं स्वल्पगुणं चाप्नुयाद् द्विशतभागम्।
इति पद्मरागमूल्यं पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टम् ।।११।।

इसके मूल्य को ज्ञात करने की विधि बतलाते हैं–

एक पल भारी पद्मराग मणि का मूल्य २६,००० रूपक तथा ३ कर्ष (३/४ पल) का मूल्य २०,००० रूपक होता है। आधे पल का १२,००० तथा एक कर्ष (१/४ पल) ६,००० रूपक और जो ८ माषक भार का पद्मराग हो, उसका मूल्य

३,००० रूपक होता है। ४ माषक का १,००० रूपक और २ माषक का मूल्य ५०० रूपक मूल्य होता है। इसके बीच के तौल वाले पद्मराग का मूल्य गुणानुसार न्यून अथवा अधिक निर्धारित करें। वर्ण से हीन पद्मराग का मूल्य आधा और तेज से हीन का अष्टमांश ही मूल्य होगा। जो थोड़े गुण और अधिक दोषों वाला हो उसका मूल्य बीसवाँ अंश ही होता है। धूमिल तथा अनेक छिद्रों वाला और स्वल्प गुणों वाला पद्मराग १/२०० मूल्य प्राप्त करता है। इस प्रकार से प्राचीन आचार्यों ने पद्मरागमणि का मूल्य निर्दिष्ट किया है॥७-११॥

षड्विंशतिः सहस्राणीति। एकस्य पद्मरागस्य पलप्रमाणस्य चतुष्कर्षस्य मूल्यं षड्विंशतिः सहस्राणि रूपकाणामुपदिष्टान्युक्तानि। कर्षत्रयस्य विंशतिसहस्राण्युपदिष्टा-न्युक्तानि।।७।।

एक पद्मराग जो पल प्रमाण अर्थात् ४ कर्ष भार का हो, उसका मूल्य छब्बीस हजार रूपक कहा गया है। तीन कर्ष भार वाले पद्मराग का मूल्य बीस हजार रूपक कहा गया है॥७॥

अर्धपलस्य द्वादशहस्राणि मूल्यम्। एकस्य कर्षस्य षट्सहस्राणि। यश्च पद्मरागोऽष्टाभिर्माषकैर्धृतस्तुलितस्तस्य सहस्रत्रयं रूपकाणां मूल्यम्।।८।।

आधे पल का बारह हजार और एक कर्ष का मूल्य छः हजार होते हैं। जिस पद्मराग का तौल ८ माषा हो उसका मूल्य तीन हजार रूपक होगा॥८॥

माषकचतुष्टयमिति। माषकचतुष्टयेन यो धृतः पद्मरागस्तस्य दशशतक्रयं सहस्रमूल्यम्। द्वौ तु माषकौ पञ्चशतमूल्यौ। अन्तराले मध्ये हीनाधिकगुण नां परिकल्प्यं स्वबुद्ध्या मूल्यमूह्यम्। यथा प्रलप्रमाणस्य षड्विंशतिः सहस्राणि। कर्षत्रयस्य विंशतिरेव। अर्धकर्षोनपलस्य त्रैराशिकविधानेन क्षयः कार्यः।।९।।

चार माषा तौल का जो पद्मराग हो उसका मूल्य एक हजार रूपक और जो दो माषा भारी हो उसका मूल्य पाँच सौ रूपक होगा। उक्त भार के मध्यवर्ती भार वाले पद्मराग का मूल्य उसके गुणों की न्यूनता अथवा अधिकता के आधार पर स्व-विवेक से कल्पित करें। जैसा कि एक पल भार का छब्बीस हजार तथा तीन कर्ष का बीस हजार कहा गया है। पल में आधा कर्ष न्यून अर्थात् साढ़े तीन कर्ष का मूल्य त्रैराशिक विधि से ज्ञात करना चाहिए॥९॥

वर्णन्यूनस्यार्द्धमिति। वर्णन्यूनस्य वर्णहीनस्य पद्मरागस्य प्रागुक्तान्मूल्यादर्धं मूल्यं भवति। तेजोविहीनस्य विगतकान्तेः प्रागुक्तान्मूल्यादष्टांशमष्टभागं मूल्यं भवति। योऽल्पगुणो बहुदोषः। स प्रागुक्तान्मूल्याद्विंशांशं विंशतितमं भागं प्राप्नोति

लभते।।१०।।

वर्ण हीन अर्थात् बदरंग पद्मराग का पूर्वोक्त मूल्य का आधा रूपक ही मूल्य प्राप्त होगा। जो तेजो-हीन अर्थात् प्रकाश-रहित हो उसका मूल्य पूर्वोक्त मूल्य का अष्टमभाग ही होगा। जिसमें थोड़ा गुण और अधिक दोष हो उसका पूर्वोक्त मूल्यों का बीसवाँ भाग ही मूल्य प्राप्त होगा।।१०।।

आधूम्रमिति। आधूम्रं कलुषं व्रणबहुलं प्रभूतच्छिद्रं स्वल्पगुणं मूल्यात् प्रागुक्ताद् द्विशतभागं चाप्नुयाद् लभते। इत्यनेन प्रकारेण पूर्वाचार्यैः पद्मरागस्य मूल्यं समुद्दिष्टं कथितमिति।।११।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृत्तौ पद्मरागलक्षणं नामैकशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

धूमवान् अर्थात् कलुषित, व्रणबहुल अर्थात् अत्यधिक छिद्रों वाला तथा थोड़े गुणों वाला हो उसका पूर्वोक्त मूल्यों का दो सौवाँ भाग ही मूल्य प्राप्त होगा। इस प्रकार से पूर्व के प्राचीनाचार्यों ने पद्मराग का मूल्य कहा है।।११।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में पद्मराग लक्षण नामक अध्याय इक्यासी की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८१।।

❄ ❄ ❄

।। अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।

मरकतलक्षणाध्यायः

अथ मरकतक्षणं व्याख्यायते।

तल्लक्षणं प्रयोजनं चाह—

शुकवंशपत्रकदलीशिरीषकुसुमप्रभं गुणोपेतम्।

सुरपितृकार्ये मरकतमीव शुभदं नृणां विहितम्।।१।।

मरकत लक्षण नामक अध्याय ८२ की व्याख्या की जाती है।

इसके लक्षण और प्रयोजन कहते हैं—

शुक (तोता), बाँस के पत्ते, केले के पत्ते और शिरीष पुष्प के वर्ण वाले तथा उत्तम गुणों से युक्त मरकतमणि रत्न देवकार्य एवं पितृ-कर्म के लिए अत्यन्त शुभदायक कहे गये हैं।।१।।

यन्मरकतं शुकवंशपत्रसदृशं शुकपक्षसमवर्णं वंशपत्रसदृशं कदलीसदृशं श्यावपीतं शिरीषकुसुमप्रभं शिरीषपुष्पतुल्यवर्णं श्वेतपीतं वा। एतेषामन्यतमवर्णोपेतं तच्च यदि गुणोपेतं बहुगुणम्। बहुगुणाः स्निग्धः प्रभानुलेपी स्वच्छोऽर्चिष्मानित्यादिकास्तैर्युक्तं तथाविधं नृणां पुंसां सुरपितृकार्ये देवकार्ये पितृकार्ये वाऽतीवात्यर्थं शुभदं विहितमुक्तमिति।।१।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ मरकतलक्षणं

नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

जो मरकत शुकवंश-पत्र अर्थात् तोते के पंख के समान वर्ण के, बाँस के पत्ते के सदृश वर्ण के, केले के समान श्याम-पीत वर्ण के, शिरीषकुसुम के समान श्वेतपीत वर्ण के होते हैं। अर्थात् इनमें से किसी भी एक वर्ण के समान होते हैं तथा अधिक गुणशाली रहते हैं, गुणों का वर्णन "स्निग्ध, प्रभानुलेपी, स्वच्छ, अर्चिष्मान् इत्यादि (पद्मराग लक्षणाध्याय श्लोक सं. ३) कहा गया है, उन गुणों से युक्त मरकत मनुष्यों के लिए देवकार्य और पितृकार्य में अतीव शुभदायक कहे गये हैं।।१।।

विशेष व्याख्या–

मरकत, गारुत्मत, अश्मगर्भ और हरितमणि; ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। मुहूर्त्त चिन्तमणि, गोचर-१० में इसे बुध का रत्न कहा गया है। पीयूषधारा में गोविन्द ने इसका नाम गरुडपाची भी बतलाया है। अमरकोश-२/९/९२ में कहा है–"गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणि:।।"

अंग्रेजी में इसको एमराल्ड EMERALD कहा गया है।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में मरकतलक्षण नामक अध्याय बयासी की

हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८२।।

❋ ❋ ❋

।।अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।

दीपलक्षणाध्यायः

अथ दीपलक्षणं व्याख्यायते।

तत्रादावेवाशुभलक्षणफलमाह–

वामावर्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः
क्षिप्रं नाशं व्रजति विमलस्नेहवर्त्यन्वितोऽपि।
दीपः पापं कथयति फलं शब्दवान् वेपनश्च
व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद्यश्च नाशं प्रयाति।।१।।

दीपलक्षण नामक अध्याय ८३ की व्याख्या की जाती है।

आरम्भ में अशुभ लक्षण वाले दीप का फल कहते हैं–

वामावर्त, कालिमायुक्त लौ वाला हो, चिनगारी छूटती हो, मद्धिम प्रकाश हो, स्वच्छ बत्ती और तेल होने पर भी अकस्मात् बुझ जाये, इस प्रकार का दीपक अशुभ फल को व्यक्त करता है। जिसके जलने पर ध्वनि निकले और लौ में कम्पन हो, किरणें फैलती हों तथा जो पतंगा (कीड़ा) और हवा के झोंके के बिना ही बुझ जाये, ऐसा दीपक भी अशुभ फल करता है॥१॥

यो दीपो वामावर्तो वामेनाप्रदक्षिणेनाऽऽवर्तेन परिभ्रमति। तथा मलिनकिरणोऽविमलरश्मिः। सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः स्फुलिङ्गैरग्निकिरणैः सहितः, अल्पमूर्तिर्लघु-प्रकाशः। विमलेन निर्मलेन स्नेहेन तैलेन वर्त्याप्यन्वितो युक्तः क्षिप्रमाश्वेव नाशं व्रजति याति। तथा शब्दवान् शब्दयुक्तः। वेपनः कम्पनः कम्पनसंयुक्तः। व्याकीर्णार्चिर्वि-कीर्णज्वालः। विशलभमरुद्यश्च नाशं प्रयाति, शलभेन पतङ्गेन मरुता वायुना विना यो नाशं प्रयाति गच्छति। स तथाभूतः पापमनिष्टं फलं कथयति वक्ति।।१।।

जो दीप वामावर्त अर्थात् प्रदक्षिणा क्रम के विपरीत भ्रमण करता हो तथा जिसकी मलिन किरण अर्थात् कालिमापूर्ण किरणें हों, स्फुलिङ्ग सहित अर्थात् अग्नि (चिंगारी) किरणों सहित हो, अल्पमूर्ति अर्थात् लघु (मद्धम) प्रकाश हो, विमल अर्थात् स्वच्छ स्नेह अर्थात् तेल और बत्ती से युक्त होने पर भी क्षिप्र अर्थात् शीघ्र ही विनष्ट (बुझ) जाता हो, साथ ही शब्दयुक्त एवं कम्पनशील हो, व्याकीर्ण अर्थात् फैली

हुई ज्वाला हो, शलभ अर्थात् पतंगा और वायु के बिना भी नष्ट हो जाये (बुझ जाये), इस प्रकार का दीप पापफल अर्थात् अशुभ फल प्रकट करता है॥१॥

अथ शुभलक्षणमाह—

दीपः संहतमूर्तिरायततनुर्निर्वेपनो दीप्तिमान्
निःशब्दो रुचिरः प्रदक्षिणगतिर्वैदूर्यहेमं द्युतिः।
लक्ष्मीं क्षिप्रमभिव्यनक्ति सुचिरं यश्चोद्यतं दीप्यते
शेषं लक्षणमग्निलक्षणसमं योज्यां यथायुक्तितः॥२॥

दीप के शुभलक्षणों को कहते हैं–

दीप की लौ घनीभूत, दीर्घ, कम्पन-रहित, स्पष्ट प्रकाश वाली, शब्दरहित, सुन्दर, प्रदक्षिणावर्त, लहसुनिया रत्न अथवा स्वर्ण के समान प्रकाश-कान्ति हो और जो दीर्घकाल तक सुप्रकाशित रहे, तो वह शीघ्र ही धनागम को सूचित करता है॥२॥

यो दीपः संहतमूर्तिर्घनदेहः। आयततनुर्दीर्घशरीरः। निर्वेपनः कम्परहितः। दीप्तिमान् सुकान्तः। निःशब्दः स्वररहितः। रुचिरोऽतिप्रकाशः। प्रदक्षिणगतिः प्रदक्षिणज्वालः। वैदूर्यस्य मणेर्नीलपीतस्य हेम्नः सुवर्णस्य वा सदृशी द्युतिः कान्तिर्यस्य। सुचिरमतिबहुकालमुद्यतमतितेजस्वी दीप्यते ज्वलति। स क्षिप्रमेवाश्वेव लक्ष्मीं श्रियमभिव्यनक्ति प्रकाशयति। शेषं यल्लक्षणमत्र नोक्तं तद्यथायुक्तितो यथासम्भवमग्निलक्षणसमं तत्तुल्यं योज्यं योजयितव्यम्। यथा—

जो दीप, संहत अर्थात् सघन, मूर्ति अर्थात् रूप वाला, आयत अर्थात् दीर्घ (विस्तृत) स्वरूप का, वेपन अर्थात् कम्पन के बिना, सुन्दर प्रकाश वाला, निःशब्द अर्थात् जिससे कोई ध्वनि न हो, रुचिर अर्थात् तेज प्रकाश वाला, जिसकी ज्वाला दक्षिण की ओर गतिशील रहे, वैदूर्य मणि के समान नीला-पीला वर्ण अथवा सोने के वर्ण के सदृश जिसकी प्रकाश-कान्ति हो, सुचिर काल अर्थात् दीर्घकाल तक तीव्र प्रकाशमान रहे, इस प्रकार का यह शुभलक्षणों वाला दीपक शीघ्र ही घर में लक्ष्मी को प्रकट करता है। अन्य शेष लक्षण जो इस प्रकरण में नहीं कहे जा सके हैं, युक्ति पूर्वक यथा सम्भव अग्नि के शुभाशुभ लक्षणों का भी दीप-लक्षण में समायोजन कर लेना चाहिए। जैसा कि–

[१]ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम्।
उदयास्तधराधराऽधरा हिमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा॥

---

१. इन्द्रध्वज अ. ४२ श्लो. ३५.

"ध्वज, घट, घोड़ा, हाथी और पर्वत के सदृश अग्निज्वाला, प्रतीत हो तब उदयाचल से अस्ताचल पर्यन्त, हिमालय तथा विन्ध्यपर्वत सहित सागर पर्यन्त भूमि, राजा (हवनकर्त्ता यजमान) के अधीन हो जाती है।"

तथा–

१चामीकराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ।
न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य।।

और भी कहा है–

"चामीकर (स्वर्ण), अशोक पुष्प, कुरन्टक, कमल, वैदूर्य तथा नीलकमल के सदृश वर्ण की अग्नि हो, तब राजा के राजभवन में रत्नकिरणों से सभी प्रकार का अन्धेरा नष्ट हो जाता है तथा कहीं भी रिक्तता नहीं रहती है।"

सर्वं चिन्त्यमग्नौ यत्सम्भवति। यथा "२स्वाहावसानसमये" इत्यादि विचिन्त्यम् ।।२।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ दीपलक्षणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्याय:।।८३।।

ये सभी अग्नि के जो वैशिष्ट्य पूर्व में कहे गये हैं, उनको दीप के सन्दर्भ में भी यथा सम्भव विचार करना चाहिए। जैसा कि–इन्द्रध्वजसम्पद् अध्याय ४२ के श्लोक ३२ में "स्वाहावसानसमये" इत्यादि के द्वारा अग्नि के कथित लक्षणों का दीप के लिए भी विचार करना चाहिए।२।।

विशेष व्याख्या–

वैदूर्य अथवा वैडूर्य लहसुनिया पत्थर को कहते हैं। इसको मार्जारिकाक्ष भी कहंते हैं। यह केतु का रत्न है। अंग्रेजी में इसको Cat'seye Stone तथा साइमोफेन Cymophane कहा जाता है।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में दीपलक्षण नामक तिरासीवें
अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८३।।

❄ ❄ ❄

---

१. इन्द्रध्वज अ. ४२ श्लो. ३३.
२. इन्द्रध्वज अ ४२ श्लो. ३२.

।।अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः।।

दन्तकाष्ठलक्षणाध्यायः

अथ दन्तकाष्ठलक्षणं व्याख्याते।

तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

वल्लीलतागुल्मतरुप्रभेदैः
स्युर्दन्तकाष्ठानि सहस्रशो यैः।
फलानि वाच्यान्यथ तत्प्रसङ्गो
मा भूदतो वच्म्यथ कामिकानि।।१।।

दन्तकाष्ठलक्षण नामक अध्याय ८४ की व्याख्या की जाती है।

आरम्भ में प्रयोजन बतलाते हैं—

वल्ली, लता, गुल्म और तरु के विविध भेदों के कारण हजारों प्रकार के दन्तकाष्ठ (दातून) होते हैं। इनके फलकथन के अभिप्राय से अत्यधिक विस्तार न हो जाये, अत: जो प्रमुख उपयोगी दन्तकाष्ठ हैं, उनको ही कहा जा रहा है।।१।।

वल्ल्यः प्रसिद्धाः। लताश्च प्रसिद्धा एव। गुल्म एकमूलः शाखासमूहः। तरवो वृक्षाः। एतेषां ये प्रभेदाः पृथक्पृथग् जातयःस्तैः सहस्रशः सहस्रप्रकारैर्दन्तकाष्ठानि स्युर्भवेयुः। यैः फलानि वाच्यानि वक्तव्यानि। अथ तत्प्रसङ्गो मा भूत् तेषां दन्तकाष्ठानामतिप्रसङ्गोऽत्यासक्तिर्विस्तरेण मा भूत्। अतोऽस्माद्धेतोः कामिकान्य-भीष्टफलप्रदानि वच्मि कथयामि। अथशब्दः पादपूरणे।।१।।

वल्ली और लता सुप्रसिद्ध हैं। एक मूलाधारित शाखा-समूह गुल्म होता है। तरु को वृक्ष कहा जाता है। इनके जो प्रभेद अर्थात् विविध जातियाँ हैं, इनसे हजारों प्रकार के दन्तकाष्ठ हो जाते हैं। इनके फलों का विवेचन करना है। यह प्रसंग अधिक न हो जाये अर्थात् इन दन्तकाष्ठों के वर्णन में अतिशय विस्तार न हो सके इसलिए कामिक अर्थात् अभीष्ट कामनाओं के फलदायक का ही वर्णन कर रहा हूँ।।१।।

विशेष व्याख्या—

(१) वृक्ष के महीरुह, शाखी, विटपी, पादप, अनोकह, तरु, कुट, शाल,

पलाशी, द्रु, द्रुम, अगम ये १२ शब्द पर्याय हैं।

(२) वल्ली–'वल वल्ल संवरणे', वल्लते। वल्ली तु व्रततिर्लता–अ. को. २/४/९.

(३) लता–'लतिः' सौत्रो धातुर्वेष्टनार्थः। लता प्रतानिनीर्वीरुद् गुल्मिन्युलय इत्यपि–अ. को. २/४/९.

(४) गुल्म = स्तम्ब, गुच्छ, शाखादिभिर्विस्तृतः।

अथ परिभाषार्थमाह–

अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठा-
न्यद्यान्न पत्रैश्च समन्वितानि।
न युग्मपर्वाणि न पाटितानि
न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा च।।२।।

परिभाषा हेतु कहते हैं–

जो पहले से ज्ञात (प्रयोज्य) न हों, ऐसे दन्तकाष्ठों का सेवन न करें। पत्ता सहित भी प्रयोग न करें। दो गाँठों वाला तथा फटा हुआ एवं ऊपरी भाग जिसका सूख गया हो और बिना त्वचा (छिलके के बिना) वाले दन्तकाष्ठ का प्रयोग न करें।।२।।

न ज्ञातं पूर्वं येषां तानि दन्तकाष्ठानि नाद्यान्न भक्षयेत्। पत्रैश्च समन्वितानि युक्तानि नाद्याद् न भक्षयेद्। न युग्मपर्वाणि युग्मग्रन्थिभिर्युक्तानि नाद्यात्। पाटितानि दलितानि नाद्यात्। चोर्ध्वशुष्काणि ऊर्ध्वमुपरिभागं शुष्कं येषां तानि नाद्यात्। विना त्वचा च त्वग्रहितानि नाद्यात्।।२।।

पूर्व में जिस दन्तकाष्ठ का ज्ञान न हो, उसका प्रयोग न करें। पत्र के साथ भी प्रयोग न करें। दो गाँठ सहित का भी प्रयोग न करें। पाटिल अर्थात् दलित (दो भागों में विभक्त) का प्रयोग न करें। जिसका उपरि भाग शुष्क हो उसका सेवन न करें। त्वचा से रहित का भी सेवन न करें।।२।।

अथ प्रविभागेन फलान्याह–

वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु
ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः।
वृद्धिर्वटेऽर्के प्रचुरं च तेजः
पुत्रा मधूके सगुणाः प्रियत्वम्।।३।।

विभागानुसार फल कहते हैं–

वैकंकत, श्रीफल और काश्मरी वृक्षों के दन्तकाष्ठ से ब्रह्म-तेज बढ़ता है। दुग्ध वाले वृक्ष से सुन्दरी स्त्री मिलती है। वट (वरगद) से वृद्धि (उन्नति) तथा मदार (आक) से अधिक तेज मिलता है। मधूक (महुआ) से गुणवान् पुत्र और लोकप्रियता प्राप्त होती है।।३।।

वैकङ्कतः प्रसिद्धो वृक्षः। श्रीफलं प्रसिद्धम्। काश्मरी प्रसिद्धा। एतेषु दन्तकाष्ठेषु भक्षितेषु ब्राह्मी ब्राह्मणसंबन्धिनी द्युतिः कान्तिर्भवति। ब्रह्मवर्चो भवतीत्यर्थः। क्षेमतरौ क्षीरवृक्षे सुदाराः शोभनदारा भवन्ति। दाराः कलत्रम्। वटेऽर्थानां वृद्धिर्भवति। अर्केऽर्कवृक्षे प्रचुरं प्रभूतं तेजः कान्तिर्भवति। मधूके पुत्राः सुता भवन्ति। ते च सगुणा गुणसहिताः। प्रियत्वं जनवाल्लभ्यं च भवति।।३।।

वैकङ्कत, श्रीफल और काश्मीर प्रसिद्ध वृक्ष हैं। इनमें से किसी का भी दन्तकाष्ठ (दातून) के रूप में भक्षण (प्रयोग) करने से ब्राह्मी अर्थात् ब्राह्मणत्व सम्बन्धी तेज होता है। अर्थात् ब्रह्मवर्चस्व प्राप्त होता। क्षेमतरु अर्थात् दुग्ध वाले वृक्ष से सुन्दरी दारा अर्थात् कलत्र (स्त्री) होती है। वट (बरगद) से धन में वृद्धि होती है। अर्क (मदार) के वृक्ष से प्रचुर तेज (कान्ति) होती है। मधूक से पुत्र होते हैं। वे सभी पुत्र गुणवान् होते हैं। प्रियत्व अर्थात् जन-प्रियता प्राप्त होती है।।३।।

विशेष व्याख्या–

(१) काश्मरी गंभारी को कहते हैं। जिसको लोकभाषा में संभारी कहा जाता है। सर्वतोभद्रा और मधुपर्णिका इसका पर्यायवाची है। कहीं पर गम्भार भी कहा जाता है।

(२) श्रीफल को विल्वफल, बेल कहा जाता है। शाण्डिल्य और शैलूष, मालूर, इसके पर्याय हैं। अंग्रेजी में इसको Bengal Quines वेंगल क्वीन्स कहा जाता है।

(३) मधूक महुआ को कहते हैं। भाव प्रकाश निघण्टु में कहा है–मधूको मधुपुष्पः स्याद् गुडपुष्पो मधुस्त्रवः।

(४) वैकङ्कत सम्भवतः बरियारा (बला) होता है।

अन्यदप्याह–

लक्ष्मीः शिरीषे च तथा करञ्जे
प्लक्षेऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात्।
मान्यत्वमायाति जनस्य जात्यां
प्रधान्यमश्वत्थतरौ वदन्ति।।४।।

और भी कहते हैं–

शिरीष और करञ्ज वृक्ष के दन्तकाष्ठ से लक्ष्मी प्राप्त होती है। पाकड़ से धनागम और कामना की पूर्ति होती है। जाति-वृक्ष से लोक में प्रतिष्ठा होती है। पीपल के वृक्ष से प्रधानता (श्रेष्ठता) मिलती है॥४॥

शिरीषे शिरीषवृक्षे तथा तेनैव प्रकारेण करञ्जे प्लक्षे च लक्ष्मीः श्रीर्भवति। अर्थानां धनानामभीप्सिताभिलषिता सिद्धिः स्याद् भवेत्। जात्यां जनस्य लोकस्य मान्यत्वं पूज्यत्वमाप्नोति लभते। अश्वत्थतरावश्वत्थवृक्षे प्राधान्यं प्रधानत्वं वदन्ति।।४।।

शिरीष वृक्ष में तथा इसी प्रकार करञ्ज और पाकड़ वृक्ष में लक्ष्मी अर्थात् धन (श्री) होता है। अर्थ अर्थात् धन और अभीप्सित अर्थात् अभिलाषा की सिद्धि होती है। जातिवृक्ष में लोक की पूज्यता प्राप्त होती है। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष में प्रधानता (श्रेष्ठता) प्राप्त होना कहा गया है॥४॥

विशेष व्याख्या–

(१) शिरीष को कुछ जगह सिरस कहा जाता है। भण्डी और शुवपुष्प भी इसके नाम हैं। इसका पुष्प शुक्रस्तम्भक और पौष्टिक होता है।

(२) करञ्ज के करज, किरमाल, दिठोरी आदि कहा जाता है। यह कृमिघ्न और त्वचा-रोग में लाभदायक है। अंग्रेजी में स्मूथ लीव्ड पोंगेमिया Smooth Leaved Pongamia, Indian कहा गया है।

(३) जाति के पर्याय है–जाती, मालती, राजपुत्रिका, सुमना, हृद्यगन्धा और चमेली। अंग्रेजी में Jasmine जस्मीन कहा जाता है। इसका तेल शीतल-सुगन्धित होता है। पत्ते के रस का व्रण, कुष्ठ एवं मुखरोग में प्रयोग किया जाता है।

अन्यदप्याह–

आरोग्यमायुर्बदरीबृहत्यो-
रैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे।
द्रव्याणि चेष्टान्यतिमुक्तके स्युः
प्राप्नोति तान्येव पुनः कदम्बे।।५।।

और भी कहते हैं–

बदरी (बेर) के दन्तकाष्ठ से आरोग्य एवं बृहती से दीर्घायुष्य प्राप्त होता है। खैर और बिल्व (बेल) से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। अतिमुक्तक से इच्छित द्रव्य की प्राप्ति होती है, और कदम्ब-वृक्ष से भी यही फल मिलता है॥५॥

बदरी वृक्षविशेषः। बृहती कण्टकारिका। अनयोर्यथासङ्ख्यम्। आरोग्यं नीरोगता आयुर्दीर्घजीवित्वं भवति। खदिरे सबिल्वे बिल्वसहिते ऐश्वर्यस्य वृद्धिर्भवति। अथवा ऐश्वर्यलब्धी। खदिरे ऐश्वर्यम्। बिल्बे लब्धिर्लाभः। अतिमुक्तके इष्टान्यभिलषितानि द्रव्याणि धनादीनि स्युर्भवेयुः। कदम्बे तान्येव द्रव्याणि चेष्टानि प्राप्नोति पुनः।।५।।

बदरी एक वृक्ष-विशेष (बेर) है। बृहती, कण्टकारिका है। इनका गुण क्रमशः समझें। आरोग्य अर्थात् नीरोगता और आयु अर्थात् दीर्घजीवन प्राप्त होता है। खैर (कत्था) और बेल से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। अथवा ऐश्वर्य प्राप्त होता है। खैर से ऐश्वर्य और बिल्व से लब्धि अर्थात् धनादि का लाभ होता है। अतिमुक्तक से इष्ट अर्थात् अभिलषित द्रव्य, धनादि प्राप्त होते हैं। कदम्ब से भी वे ही द्रव्यादि प्राप्त होते हैं।।५।।

विशेष व्याख्या–

(१) बृहती को कटेरी, कण्टकारि, भटकटैया आदि कहा गया है। कटेरी छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती है। श्वास, कास, हृद्रोग, ज्वर और कफ में इसका सेवन लाभकारी है।

अमरकोश २/४/९३ में इसके १० नाम दिये गये हैं।

(२) अतिमुक्तक–इसको माधवी लता के नाम से जानते हैं। अमर-कोश में अतिमुक्त और अतिमुक्तक दो भिन्न द्रव्य हैं। अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद् वासन्ती माधवी लता (अ. का. २/४/७२)। तिनिशे स्यन्दने नेमी रथद्रुरतिमुक्तकः (अ. को. २/४/२६)। भाव प्रकाश निघण्टु, पुष्प वर्ग, ४१ में वर्णन है–

माधवी स्यात्तु वासन्ती पुण्डको माण्डकोऽपि च।
अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः।।
माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा।।

अन्यदप्याह–

नीपेऽर्थाप्तिः करवीरेऽन्नलब्धि-
र्भाण्डीरे स्यादन्नमेवं प्रभूतम्।
शम्यां शत्रूनपहन्त्यर्जुने च
श्यामायां च द्विषतामेव नाशः।।६।।

और भी कहते हैं–

नीप वृक्ष के दन्तकाष्ठ से धनलाभ, करवीर से अन्न-प्राप्ति, भाण्डारी से प्रचुर

अन्न-लाभ, शमी एवं अर्जुन से शत्रु-संहार और श्यामा वृक्ष से शत्रुओं का विनाश होता है॥६॥

नीपे नीपवृक्षेऽर्थाप्तिरर्थलाभो भवति। करवीरेऽन्नलब्धिर्भोजनलाभ:। भाण्डीरवृक्षे प्रभूतं पर्याप्तमन्नमेवं स्यात् भवेत्। शम्यां शमीवृक्षे शत्रून् रिपूनपहन्ति नाशयति स कर्ता। अर्जुनवृक्षे चशब्दाच्छत्रूनेवापहन्ति। श्यामायां च द्विषतां शत्रूणामेव नाश: क्षयो भवति।।६।।

नीप-वृक्ष से अर्थ प्राप्ति होती है। करवीर से अन्न अर्थात् भोजन का लाभ होता है। भाण्डीर के वृक्ष से पर्याप्त अन्न का ही लाभ होता है। शमी के वृक्ष से दन्तकाष्ठ करने वाला शत्रुओं को विनष्ट कर देता है। अर्जुन वृक्ष से शत्रु का नाश ही करता है। श्यामा वृक्ष से भी शत्रु क्षय होता है॥६॥

विशेष व्याख्या–

(१) नीपवृक्ष कदम्ब को कहते हैं। अमरकोश २/४/४२ में यह शब्द कदम्ब का पर्याय है। भावप्रकाश निघण्टु में यह मूत्ररोधन एवं शुक्र-शोधन में उपयोगी है।

इसके पूर्वश्लोक (सं. ५) में कदम्ब शब्द का प्रयोग आया है। अत: यह निश्चित ही किसी अन्य वृक्ष के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। अमरकोश की रामाश्रयी व्याख्या में इस प्रकार एक उद्धरण आया है–"नीप: कदम्बबन्धूकनीलाशोक द्रुमेषु च।" इससे ज्ञात होता है कि 'नीप' कदम्ब के साथ ही बन्धूक और नीलाशोक के लिए भी प्रयुक्त होता है। बन्धूक का फूल लाल होता है जिसको बन्धुजीवक और दोपहरिया कहा जाता है। नील-अशोक को अशोक वृक्ष का ही भेद समझना चाहिए। इसी वृक्ष से आचार्य का अभिप्राय हो सकता है।

(२) करवीर कनेर को कहते हैं। इसका श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण वर्ण का पुष्प होने से राजनिघण्टु में ४ भेद बतलाया गया है। यह तिक्त तथा गर्भपातक होता है। नेत्ररोग, कण्डु तथा ज्वरघ्न होता है। अंग्रेजी में Sweet-scented Oleander "स्वीट सेन्टेड ओलिएण्डर" कहा जाता है।

(३) भाण्डीर को लोक भाषा में भाँट कहा जाता है। इसको थुनेर और स्थौणेयक भी कहते हैं। यह कटु, व्रणशोधक और कृमिनाशक होता है। रस-तिक्त तथा दुर्गन्धियुक्त रहता है।

(४) श्यामा शब्द सारिवा औषधीयद्रव्य तथा प्रियङ्गु के लिए प्रयुक्त होता है।

अन्यदप्याह—

शालेऽश्वकर्णौ च वदन्ति गौरवं
सभद्रदारावपि चाटरूषके।
वाल्लभ्यमायाति जनस्य सर्वतः
प्रियङ्ग्वपामार्गसजम्बुदाडिमैः।।७।।

और भी कहते हैं—

शाल और अश्वकर्ण के वृक्ष से गौरव बढ़ता है। भद्रदारु (देवदार) और चाटरूषक वृक्ष से भी गौरव-वृद्धि होती है। प्रियंगु, अपामार्ग (चिचिड़ा), जामुन और अनार के दातौन से सर्वजन-प्रियता प्राप्त होती है॥७॥

शाले शालवृक्षे अश्वकर्णे च गौरवं सम्मानं वदन्ति कथयन्ति। भद्रदारौ देवदारौ। अपिशब्दः समुच्चये। तथा चाटरूषके वासिकायां चशब्दाद् गौरवमेव वदन्ति। प्रियङ्गुणाऽपामार्गेण सजम्ब्वा जम्बूवृक्षसहितेन दाडिमेन च एतैः सर्वैरेव सर्वतः सर्वस्य वाल्लभ्यं वल्लभत्वमायात्यागच्छति।।७।।

शाल और अश्वकर्म वृक्ष से गौरव अर्थात् सम्मान कहा गया है। भद्रदारू अर्थात् देवदार से तथा चाटरूषक अर्थात् वासिका से गौरव ही कहा गया है। प्रियंगु, अपामार्ग तथा जामुन-वृक्ष के साथ ही अनार सहित; इन सभी वृक्षों से सर्वतोभावेन सभी का वल्लभत्व अर्थात् प्यार मिलता है॥७॥

विशेष व्याख्या—

(१) शाल का अर्थ साखू का पेड़ है। अंग्रेजी में Sal-Tree कहा जाता है। यह व्रण, कफ, कर्णरोग में लाभदायक है। इसका निर्यास 'राल' कहा जाता है।

(२) चाटरूषक एक अप्रसिद्ध पौधा है। किसी भी कोश में इसका पर्याय नहीं मिला है। चाटराशि के नाम से एक क्षुद्र पौधा तेलगु भाषा में कहा गया है, जिसको हिन्दी में पित्त पापड़ा और धमगजरा कहा जाता है। यह रक्तविकार में लाभप्रद है। विवृति में चाटरूषक की संज्ञा वासिका दी गयी है।

(३) वासिका को अडूसा कहा जाता है। अडूसा को अंग्रेजी में माला-वारनट Malabarnut कहा गया है। इसको निघण्टु में आटरूष अथवा अट-रूषक कहा गया है। यथा—भावप्रकाश नि. पृ. ३२०.

वासको वासिका वासा भिषङ्माता च सिंहिका।
सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः॥

यह कफ निःसारक, श्वास, कास और क्षयरोग का नाशक होता है।

(४) प्रियंगु के कई भेद हैं। अमरकोश २/९/२० में कंगु और प्रियंगु दो नाम आये हैं। इसी को टांगुन धान भी कहा जाता है।

(५) अश्वकर्ण को अमरकोश में–'साले तु सर्जकार्ष्याश्वकर्णका सस्यसंवरः' कहकर साल (साखू) का पर्याय माना गया है। भावप्रकाश में अश्वकर्ण को गर्जन कहा गया है। यह ऊँचा वृक्ष असम तथा अण्डमान के जंगलों में अधिक पाया जाता है। यहाँ पर आचार्य का अभिमत गर्जन वृक्ष विशेष ही है, क्योंकि शाल या साल का उल्लेख इसी श्लोक में पृथक् वृक्ष के रूप में किया गया है।

अथ दन्तकाष्ठलक्षणे विधानमाह–

उदङ्मुखः प्राङ्मुख एवं वाब्दं
कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य।
अद्यादनिन्दन् च सुखोपविष्टः
प्रक्षाल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे।।८।।

दन्तकाष्ठ की विधि कहते हैं–

उक्त दन्तकाष्ठ में से जिसके फल की कामना हो, उसको हृदय में स्थिर रखकर एक वर्ष तक पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख हो उस दन्तकाष्ठ का दातौन करे। सुखपूर्वक बैठकर, निन्दा न करता हुआ दातौन करना चाहिए। तत्पश्चात् उसको धोकर पवित्र स्थान पर त्याग दे॥८॥

दन्तकाष्ठमुदङ्मुख उत्तराभिमुखः, पूर्वाभिमुखो वा। अब्दं वार्षिकं यथेष्टं यथाभिप्रेतं काममिच्छां हृदये निवेश्य हृद्यवस्थाप्य अनिन्दन् कुत्सामकुर्वन् सुखोपविष्टः सुखासीनोऽद्याद् भक्षयेत्। ततः प्रक्षाल्य शुचिप्रदेशे शुचौ शुद्धे प्रदेशे स्थाने जह्यात् परित्यजेत्।।८।।

दन्तकाष्ठ को उदग् अर्थात् उत्तरमुख अथवा पूर्वमुख होकर, अब्द अर्थात् एक वर्ष पर्यन्त, यथाभिलषित कामना को हृदय में स्थापित कर, निन्दा न करता हुआ, सुख-पूर्वक बैठकर दातून करे। तत्पश्चात् उसको धोकर शुद्ध स्थान पर त्याग दे॥८॥

अथ त्यक्तस्य लक्षणमाह–

अभिमुखपतितं प्रशान्तदिक्स्थं
शुभमतिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत्।
अशुभकरमतोऽन्यथा प्रदिष्टं
स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम्।।९।।

त्यक्त का लक्षण कहते हैं–

त्याग कर फेंकने पर यदि वह दातौन अपने सामने, शान्त दिशा में तथा ऊँचे स्थान पर गिरे तो अतिशुभ होता है। इसके विपरीत क्रम से गिरने पर अशुभकर कहा गया है। खड़ा होकर पुनः गिरने से मधुर भोजन मिलता है।।९।।

अभिमुखपतितम्। येन भक्षितं तस्यैवाभिमुख्येन सम्मुखं पतितं प्रशान्तदिक्स्थं प्रशान्तायां च दिशि स्थितं च शुभम्। यदूर्ध्वसंस्थितं तत्र च स्वोर्ध्वस्थं भवति, तदतिशोभनम्। अतोऽस्मात् प्रकारादन्यथा विपर्ययेणानभिमुखं पतितमप्रशान्तदिक्स्थमनूर्ध्वसंस्थितं न शुभकरं प्रदिष्टमुक्तम्। स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम्। स्थित्वा यत्पतितं तमृष्टमन्नं करोति विदधाति।।९।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ दन्तकाष्ठलक्षणं नाम

चतुरशीतितमोऽध्यायः।।८४।।

जिसने दातून किया, उसी के सम्मुख वह दातून यदि गिरता है और प्रशान्त दिशा में स्थित होता है तो शुभ है। जो ऊर्ध्व खड़ा हो जाता है, वह अति शुभ है। इससे विपरीत अर्थात् अपने सम्मुख न गिरे, अशान्त दिशा में गिरे और ऊपर न स्थित हो, तब शुभ करने वाला नहीं कहा गया है। खड़ा होकर जो गिर जाता है, वह मधुरान्न प्रदान करता है।।९।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में दन्तकाष्ठ लक्षण नामक

अध्याय चौरासी की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८४।।

❄ ❄ ❄

।।अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।

शाकुनाध्यायः

अथ शाकुनं व्याख्यायते।

तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

यच्छक्रशुक्रवागीशकपिष्ठलगरुत्मताम्।
मतेभ्यः प्राह ऋषभो भागुरेर्देवलस्य च।।१।।
भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः।
आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः।।२।।
सप्तर्षीणां मतं यच्च संस्कृतं प्राकृत च यत्।
यानि चोक्तानि गर्गाद्यैर्यात्राकारैश्च भूरिभिः।।३।।
तानि दृष्ट्वा चकारेमं सर्वशाकुनसंग्रहम्।
वराहमिहिरः प्रीत्या शिष्याणां ज्ञानमुत्तमम्।।४।।

शाकुन नामक अध्याय ८५ की व्याख्या की जाती है।

इस अध्याय का प्रयोजन कहते हैं—

जिस शकुनशास्त्र को इन्द्र, शुक्राचार्य, बृहस्पति, कपिष्ठल और गरुड़ के मतानुसार आचार्य ऋषभ ने कहा; साथ ही भागुरि और देवल के अनुसार जो विवेचन किया, पुन: जिस शकुनशास्त्र को भारद्वाज के मतानुसार अवन्तिका-नरेश महाराजाधिराज श्रीद्रव्यवर्धन ने कहा और जिस शकुनशास्त्र को सप्तर्षियों ने कहा एवं संस्कृत तथा प्राकृत में जो कुछ गर्गादि मुनियों द्वारा तथा न्याय शास्त्र के विद्वानों द्वारा जो बहुश: कहा गया है, उन सभी का सम्यक् अवलोकन कर, इस सर्व-शाकुन संग्रह नामक उत्तम ज्ञान को शिष्यों की प्रसन्नता हेतु आचार्य वराहमिहिर ने उपस्थापित किया है।।१-४।।

यत् शाकुनं शक्र इन्द्रः, शुक्रो भार्गवः, वागीशो बृहस्पतिः, कपिष्ठलो मुनिः, गरुत्मान् वैनतेयः। एषां शास्त्रकर्तृणां मतेभ्यः ऋषभाख्य आचार्यः प्राह प्रोक्तवान्। तथा भागुरेर्मुनिर्देवलस्य च मुनेर्मताद्यच्छाकुनम्, ऋषभाख्यः प्राह।।१।।

जो शाकुनशास्त्र शक्र अर्थात् इन्द्र, शुक्र अर्थात् भार्गव, वागीश अर्थात् बृहस्पति, कपिष्ठल मुनि, गरुत्मान् अर्थात् वैनतेय (गरुड़); इन शास्त्र-कारों के मतों

को ऋषभ नामक आचार्य ने कहा, तथा भागुरि मुनि और देवल मुनि के मतानुसार भी इस शाकुनशास्त्र को ऋषभ ने कहा था।।१।।

भारद्वाजमतमिति। यच्च शाकुनं भारद्वाजाख्यस्य मुनेर्मतं दृष्ट्वावलोक्य श्रीद्रव्यवर्धनाख्यो महाराजाधिराजवंशप्रसूत आवन्तिक उज्जयिन्या नृपो राजा प्राहोक्त-वान्।।२।।

जिस शाकुनशास्त्र को भारद्वाज नामक मुनि के मत को देखकर महाराजाधिराजवंश में उत्पन्न उज्जयिनी के राजा श्रीद्रव्यवर्धन ने कहा था।।२।।

मतं सप्तर्षीणामिति। यच्छाकुनं सप्तर्षीणां मरीच्यादीनां मतम्। यच्चान्यत् संस्कृतं लोके व्यवहरति। यच्च प्राकृतं शाकुनं शाकुनं संस्कृतवाचा रहितम्। यानि च शाकुनानि गर्गाद्यैर्गर्गवसिष्ठपराशरकास्यपैर्ऋषिपुत्रैर्भूरिभिर्बहुभिर्यात्राकारैरुक्तानि कथितानि।।३।।

जिस शाकुनशास्त्र को मरिच्यादि सप्तर्षियों ने कहा है। जो कुछ संस्कृत भाषा में लोक में व्यवहृत होता है। जो शाकुन शास्त्र संस्कृतभाषेतर प्राकृत भाषा में कहा गया है तथा गर्गादि अर्थात् गर्ग, वशिष्ठ, पराशर, काश्यप, ऋषिपुत्र आदि अनेकों विद्वांनों तथा यात्रा मुहूर्तकारों द्वारा कहा गया है।।३।।

तानि च दृष्ट्वालोक्येमं वराहमिहिरो वराहमिहिराख्यो मगधद्विजः शिष्याणां प्रीत्या हेतुभूतया प्रीत्यैव प्रीत्यर्थं सर्वशाकुनसंग्रहं संक्षेपमुत्तमं प्रधानं चकार कृतवान् ।।४।।

इन सबकों देखकर, वराहमिहिर नामक मगधद्विज शिष्यों के प्रसन्नार्थ सर्वशाकुनसंग्रह को संक्षिप्त तथा उत्तम रूप में निर्मित किया है।।४।।

अथ शाकुने प्रयोजनमाह—

अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम्।।५।।

शाकुन का प्रयोजन कहते हैं—

मनुष्यों द्वारा पूर्वजन्म में किये गये कर्म के शुभाशुभ फल के परिपाक को यात्राकाल में शकुन सूचित करता है।।५।।

पुंसां पुरुषाणामन्यजन्मान्तरकृतं प्राग्जन्मन्यर्जितं शुभाशुभं यत् कर्म तस्य कर्मणो यत्पाकं शुभाशुभफलं तच्छकुनः शुभाशुभफलं निवेदयति सूचयति। कश्चित् प्राणिरूपः स गच्छतां व्रजमानानां यात्रायै निवेदयति।।५।।

पुरुषों के अन्य जन्मान्तर अर्थात् पूर्वजन्म में अर्जित जो शुभा-शुभ कर्म, उसका पाक अर्थात् जो शुभाशुभफल होता है, उस शुभाशुभफल को शाकुन सूचित

करता है। यात्रा के लिए जाते हुए किसी व्यक्ति को साक्षात् शरीरी के समान शुभाशुभफल को शकुन इङ्गित करता है॥५॥

अधुना शाकुनानां भेदप्रदर्शनार्थमाह–

ग्रामारण्याम्बुभूव्योमद्युनिशोभयचारिणः।
रुतयोतेक्षितोक्तेषु ग्राह्याः पुंस्त्रीनपुंसकाः।।६।।

शकुनों के भेद प्रदर्शित करते हैं–

ग्राम, वन, जल, भूमि तथा आकाश में विचरण करने वाले शकुन दिन-चर, निशाचर अथवा उभयचर होते हैं। इनकी ध्वनि, गति तथा दृष्टि के अनुसार शकुनों को पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक समझना चाहिए॥६॥

शकुनाः केचिद् ग्राम्या ग्रामभवाः, अन्ये आरण्या अरण्यनिवासिनः, अन्येऽम्बुचरा जलचारिणः, भूचराः स्थलवासिनः, व्योमचरा आकाशचराः। तत्र ग्राम्या नरतुरगगजसारमेयाः। आरण्याः सिंहव्याघ्रवराहद्वीपिमृगाः। अम्बुचरा हंसादयः। भूचराः श्वाविघ्नकुलसर्पादयः। व्योमचार ये नित्यमेवाकाशस्था दृश्यन्ते, न कदाचिद् भूमौ शिलष्यन्ते। अन्ये द्युचारिणोऽहश्चराः, अन्ये निशाचरा रात्रिचरा, अन्य उभयचारिणो द्युचरा रात्रिचराश्च। एतेषां लक्षणमुत्तरत्राचार्य एवं वक्ष्यति– ''श्यामाश्येनशशघ्नवञ्जुल''१ इत्यादि ग्रन्थेन वयमपि तत्रैव व्याख्यास्यामः। एतेषु च शकुनेषु पुंस्त्रीनपुंसका रुतयातेक्षितोक्तेषु ग्राह्या ग्रहीतव्याः। रुतं शब्दः। यातं तेषामेव गमनम्। एतेषु लक्षणप्रेक्षणमीक्षितम्। तेषामेव विचारः किम्यं पुरुषः स्त्री वा नपुंसको वेत्युक्तम्। तत्कालजातो बाह्यशब्दा दूरस्थः शकुनो यत्र व्याहरति तत्र संशयः, किं पुरुषेण व्याहृतम्, स्त्रिया वा, नपुंसकेनैव वा। तत्र यदि पुंसः सम्भाषणं निकटस्थस्य तत्कालं श्रूयते, तदा स शकुनः पुमान्। अथ स्त्रियाः श्रूयते तदा सापि स्त्री। नपुंसकस्य यदि श्रूयते तदा नपुंसक एवेति।।६।।

कुछ शकुन ग्राम्य अर्थात् गाँवों में उत्पन्न, अन्य आरण्य अर्थात् वनवासी और अम्बुचर अर्थात् जलचारी, भूचर अर्थात् भूमि पर निवास करने वाले, व्योमचर अर्थात् आकाश में विचरणशील होते हैं। ग्राम्य शकुनों में मनुष्य, अश्व, हाथी और कुत्ते परिगणित हैं। सिंह, व्याघ्र, शूकर, हाथी और मृग आरण्य-शकुन हैं। हंसादि जलचर और कुत्ते तथा विषरहित सर्प आदि भूचर शकुन माने गये हैं। नित्य आकाश में अर्थात् जो नित्य आकाशस्थ दिखाई पड़ें तथा कभी भी भूमि पर न रहें, वे नभचर शकुन होते हैं। कुछ शकुन दिवाचारी अर्थात् दिन में चलने वाले तथा अन्य निशाचर

---

१. बृहत्संहितायाम् ८७ अध्यायस्य १ श्लोकः।

जो रात्रि में विचरणशील होते हैं और अन्य शकुन उभयचारी अर्थात् रात्रि और दिन में समान रूप से विचरण करते हैं। इन सभी का लक्षण आचार्य ने इसके आगे "श्यामश्येन" इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा है, जिसकी व्याख्या उसी स्थल पर की जायेगी।।

इन शकुनों में पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक का विचार उनकी ध्वनि, गति और दृष्टि के आधार पर करना चाहिए। रुत अर्थात् शब्द, यात अर्थात् गमन और ईक्षित अर्थात् प्रेक्षण को शकुन लक्षण में विचार करना चाहिए। इसमें यह विचार होता है कि उपस्थित शकुन पुरुष है अथवा स्त्री या नपुंसक। तत्काल उत्पन्न शकुन दूरस्थ होकर जो व्यवहार करता है, वहाँ पर यह संशय हो जाता है कि यह पुरुष द्वारा व्यवहृत है अथवा स्त्री या नपुंसक द्वारा। यहाँ पर यदि समीप में पुरुष की वाणी तत्काल सुनाई पड़े तो पुरुष शकुन होता है। यदि स्त्री की ध्वनि सुनायी दे तो स्त्री शकुन तथा नपुंसक की ध्वनि सुनायी पड़ने पर नपुंसक शकुन को ही समझना चाहिए।।६।।

पुनरप्याह—

पृथग् जात्यनवस्थानादेषां व्यक्तिर्न लक्ष्यते।
सामान्यलक्षणोद्देशे श्लोकावृषिकृताविमौ।।७।।

और भी कहते हैं-

शकुनों की विविध जातियों के कारण तथा एक स्थान पर स्थित न होने के कारण इनका स्पष्ट भेद परिलक्षित नहीं होता, अतः इनके सामान्य लक्षणों के परिज्ञान हेतु वृद्ध ऋषि के वक्ष्यमाण दो श्लोकों को समझना चाहिए।।७।।

एषां शकुनानां पृथक् पृथग्जातिर्योनिविभागः। अनवस्थानमेकदेशे त्वनवस्थितेरभावः। इति हेतोर्व्यक्तिर्विभागो न लक्ष्यते न ज्ञायते। सामान्यमविशेष-लक्षणं यत्तस्य य उद्देश्यः कथनं तत्रेमावृषिकृतौ मुनिप्रणीतौ बृद्धगर्गोक्तौ द्वौ श्लोकावुच्येते।।७।।

इन शकुनों की जाति एवं योनि भिन्न-भिन्न होती है। किसी एक स्थान पर इनकी स्थिति का अभाव रहता है। अतः इनका प्रत्यक्ष भेद ज्ञात नहीं होता। इनका जो सामान्य लक्षण है, उनका कथन मुनिप्रणीत अर्थात् वृद्धगर्ग द्वारा कहे गये दो श्लोकों में प्रस्तुत है।।७।।

अधुना तावेवाह—

पीनोन्नतविकृष्टांसाः पृथुग्रीवाः सुवक्षसः।
स्वल्पगम्भीरविरुता पुमांसः स्थिरविक्रमाः।।८।।
तनूरस्कशिरोग्रीवाः सूक्ष्मास्यपदविक्रमाः।

प्रसक्तमृदुभाषिण्यः स्त्रियोऽतोऽन्यन्नपुंसकम् ।।९।।

वृद्ध ऋषि के दोनों श्लोकों को कहते हैं–

मांसल, उन्नत और विस्तृत कन्धों वाले, स्थूल कण्ठ और गुरु [illegible] वाले, लघु तथा गम्भीर ध्वनि और सुस्थिर पराक्रमशील शकुन पुरुषसंज्ञक होते हैं। जिनकी छाती, सिर और कण्ठ कृश हों; मुख, पैर और पराक्रम लघु हो, निरन्तर मधुर भाषी हों; उनको स्त्रीसंज्ञक शकुन समझना चाहिए। इन दोनों लक्षणों से भिन्न शकुन नपुंसकसंज्ञक होता है।।८-९।।

पीनोन्नतविकृष्टांसा इति। पीनौ मांसोपचितौ उन्नतावुच्चौ विकृष्टौ विस्तीर्णौ अंसौ स्कन्धौ येषाम्। पृथुग्रीवा विस्तीर्णशिरोधराः। सुवक्षसः शोभनोरः-स्थलाः। स्वल्पगम्भीरविरुताः स्वल्पमत्यल्पं गम्भीरं सानुनादं विरुतं शब्दा येषाम्। ये च स्थिरविक्रमा दृढपौरुषाः। ते पुमांसः पुरुषाख्याः शकुनाः।।८।।

पीन अर्थात् मांसल, उन्नत अर्थात् ऊँचे, विकृष्ट अर्थात् विस्तीर्ण जिनके कन्धे हों, पृथुग्रीवा अर्थात् जिसकी गर्दन विस्तृत हो, सुवक्ष अर्थात् जिसका सुन्दर वक्षस्थल हो, स्वल्प अर्थात् अत्यल्प और गम्भीर जिसके शब्द हों, जिसका स्थिर विक्रम अर्थात् दृढ़ पौरुष हो, वे पुरुष संज्ञक शकुन होते हैं।।८।।

तनूरस्केति। उरो वक्षः शिरः शीर्षम्। ग्रीवा शिरोधरा। एतान्यवयवानि तनूनि यासां तास्तथाभूताः। ककारोऽत्र समासान्तः। सूक्ष्ममल्पमास्यं मुखं पदानि चरणानि विक्रमः पुरुषार्थश्च सूक्ष्मो यासाम्। प्रसक्तं श्लिष्टं मृदु मधुरं भाषितं रवो यासां ताः स्त्रियः। अतोऽन्यन्नपुंसकमिति। अतोऽस्माल्लक्षणद्वयादन्य-लक्षणसंयुतं नपुंसकम्। एतदुक्तं भवति-पुरुषस्य यल्लक्षणमुक्तं यच्च स्त्रियास्तेन व्यामिश्रेण लक्षणद्वयेन संयुतं नपुंसकं ज्ञेयम् ।।९।।

उर अर्थात् वक्ष, सिर, ग्रीवा अर्थात् गला; ये अवयव जिसके कृश हों, सूक्ष्म अर्थात् छोटे मुख, चरण और पुरुषार्थ हों, प्रसक्त अर्थात् श्लिष्ट (सघन) जिसकी मधुर वाणी हो, उनको स्त्रीसंज्ञक शकुन कहना चाहिए। इन दोनों लक्षणों से भिन्न लक्षण से संयुक्त शकुन नपुंसक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष तथा स्त्रीसंज्ञक शकुन का जो लक्षण बतलाया गया है। इन दोनों के मिश्रित लक्षणों से युक्त शकुन को नपुंसकसंज्ञक शकुन जानना चाहिए।।९।।

यत्र यन्नोक्तं तल्लक्षणं तल्लोकाद् ज्ञातव्यमित्येतदाह–

ग्रामारण्यप्रचाराद्यं लोकादेवोपलक्षयेत्।

संचिक्षिप्सुरहं वच्मि यात्रामात्रप्रयोजनम्।।१०।।

लोक से ज्ञातव्य लक्षणों को कहते हैं–

ग्राम्य और आरण्यादि शकुनों की विशेषताओं को लोक से ही जानना चाहिए। संक्षिप्त कथन की अभिलाषा से मैं (आचार्य वराहमिहिर) यात्रा-मात्र के लिए आवश्यक शकुनों को कहूँगा।।१०।।

तेषां शकुनानां ग्रामप्रचारमरण्यप्रचारं च लोकाल्लोकतोऽन्यशास्त्रादुपल-क्षयेद् जानीयात्। आदिग्रहणाद् द्युनिशोभयचारित्वम्। संचिक्षिप्सुरिति। संक्षेपं कर्तुमिच्छुः संचिक्षिप्सुः। अहं संचिक्षिप्सुर्यात्रामात्रप्रयोजनम्। यात्रायां समानं यावन्मात्रमुप-युज्यते तावन्मात्रं वच्मि कथयामि इति हेतोर्विस्तरेण मयैतन्नोक्तं ग्रन्थगौरवभ-यादिति।।१०।।

उन शकुनों का ग्राम सम्बन्धी विवरण तथा अरण्य सम्बन्धी विचार लोक (जन सामान्य) एवं अन्य शास्त्रों से ज्ञातव्य है। प्रस्तुत श्लोक में "आदि" शब्द के ग्रहण से दिनचर, रात्रिचर एवं उभयचरादि का भाव अभिप्रेत है। संक्षिप्त करने की इच्छा से यात्रा में सामान्यतया जितना उपयोग होता है, उतना ही विषय यहाँ पर वर्णित है। अतएव ग्रन्थ-गौरव के भय से विस्तार पूर्वक मैंने शकुनों का विचार नहीं किया है।।१०।।

अधुना किमधिकृत्य शाकुनं विचारयेदित्याह–

पथ्यात्मानं नृपं सैन्ये पुरे चोद्दिश्य देवताम्।
सार्थे प्रधानं साम्ये स्याज्जातिविद्यावयोऽधिकम्।।११।।

शकुन-विचार के अधिकृत व्यक्ति को बतलाते हैं–

मार्ग में स्वयं का, सेना में राजा का, पुर (नगर-ग्राम) में देवता का और सामूहिक व्यावसायिक यात्रा (सार्थ) में उनमें से प्रधान का, शकुन-फल का विचार करना चाहिए। प्रधानों में अनेक की समानता होने पर उनमें से जो जाति, विद्या और अवस्था में अधिक हो, उसका विचार करना चाहिए।।११।।

पथि गच्छतः पुंस आत्मानं स्वशरीरमुद्दिश्य शाकुनं शुभाशुभं लक्षयेत्। सैन्ये सेनायां नृपं राजानमुद्दिश्य। पुरे नगरे देवतां दैवतस्वामिनमुद्दिश्य। पुरग्रहणमुपलक्षणार्थम्। ग्रामाधिपतिमुद्दिश्य। सार्थे जनसमूहे प्रधानमर्थपतिमुद्दिश्य। यदा सार्थे बहवः प्रधाना भवन्ति, तदा समये जातितो जातिसाम्ये विद्यया योऽधिकस्तम्। विद्यासाम्ये या वयसोऽधिकस्तमिति।।११।।

मार्ग में यात्रा करते समय अपने शरीर के उद्देश्य से शकुन के शुभाशुभ फल का विचार करे। सेना में राजा को उद्दिष्ट कर विचार करे। पुर अर्थात् नगर में देवता अर्थात् नगर देवता का विचार करे। यहाँ पर पुर का ग्रहण प्रतीकात्मक है, ग्रामाधिपति का भी विचार अभीष्ट है। सार्थ अर्थात् जनसमूह के मध्य प्रमुख अर्थपति (मुखिया) का विचार करे। यदि जनसमूह में अनेक प्रधान हों तब उनकी साम्यता होने पर अर्थात् जाति साम्यता में, जो विद्या में अधिक हो तथा विद्या की साम्यता में, जो अवस्था में अधिक हो, उसका शकुन विचार करें॥११॥

अधुना दिग्लक्षणफलनियमांश्चाह–

मुक्ताप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम्।
अङ्गारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततोऽपराः।।१२।।

दिशाओं के लक्षण तथा फल विचारने की विधि कहते हैं–

सूर्य की स्थिति के अनुसार सभी दिशाओं में क्रमशः मुक्त, प्राप्त, एष्यत् अवस्था होती है, जिनमें क्रमशः अंगार, दीप्त और धूमिनी अवस्था कही गई है। इनके अतिरिक्त दिशा को शान्ता दिशा कहते हैं॥१२॥

अत्र तावदादित्यस्य भ्रमणवशेनाष्टासु, दिक्ष्ववस्थितिर्भवति। तद्यथा– सूर्योदयादारभ्य यावद्दिनस्य प्रहरस्तावदैशानी दिङ्मुक्तसूर्या। पूर्वा प्राप्तसूर्या। आग्नेयी एष्यत्सूर्या। ततः प्रहरादूर्ध्वं यावत्प्रहरद्वयं प्राची मुक्तसूर्या। आग्नेयी प्राप्तसूर्या। दक्षिणैष्यत्सूर्या। ततः प्रहरद्वयादूर्ध्वं प्रहरत्रयं यावदाग्नेयी मुक्तसूर्या। दक्षिणा प्राप्तसूर्या। नैर्ऋती एष्यत्सूर्या। ततः प्रहरत्रयादूर्ध्वमस्तमयं यावद्दक्षिणा मुक्तसूर्या। नैर्ऋति प्राप्तसूर्या। ऐशान्येष्यत्सूर्या। ततः प्रहरत्रयादूर्ध्वं सूर्योदयं यावदुत्तरा मुक्तसूर्या। ऐशानी प्राप्तसूर्या। पूर्वैष्यत्सूर्या। एतासु मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु दिक्षु फलं तथाविधमिति। तासु दिक्षु तथाविधं नामानुरूपं फलमादेश्यम्। अशुभमित्यर्थः। मुक्तासूर्यायां दिशि यदशुभं शाकुनमुक्तं तन्मुक्तं गतम्। तत्फलमतीतमित्यर्थः। प्राप्तसूर्यायां यदशुभं शाकुनं तत्प्राप्तम्। तस्मिन्नेवाहनि भवति। एष्यत्सूर्यायां ता दिशो मुक्तप्राप्तैष्यदर्काख्या पुरस्ताद् भविष्यति।। अङ्गारदीप्तधूमिन्यश्चेति। ता दिशो मुक्ताप्राप्तैष्यदर्काख्या यथाक्रमेणाङ्गारदीप्तधूमिन्यः। मुक्तसूर्याङ्गारिणी। प्राप्तसूर्या दीप्ता। एष्यतत्सूर्या धूमिनी। ततः पराः पञ्च दिशः शान्ताः। उक्तं च–

सूर्य के भ्रमण वश आठों दिशाओं में भिन्न-भिन्न स्थिति होती है। जैसा कि

सूर्योदय से प्रारम्भ कर दिन एक प्रहर तक ईशान कोण की दिशा मुक्त-सूर्या तथा पूर्वदिशा प्राप्त-सूर्या और अग्नि कोण की दिशा एष्यत्-सूर्या कही जाती है। तत्पश्चात् एक प्रहर के पश्चात् दूसरे प्रहर तक पूर्व दिशा मुक्त-सूर्या, अग्निकोण प्राप्तदिशा तथा दक्षिणदिशा एष्यत्-सूर्या होती है। तत्पश्चात् दोपहर से तीसरे प्रहर तक अग्निकोण मुक्त-सूर्या, दक्षिण प्राप्त-सूर्या और नैर्ऋत्यकोण एष्यत्-सूर्या होती है। तीन प्रहर से चौथे प्रहर अर्थात् अस्तकाल पर्यन्त दक्षिण दिशा मुक्त-सूर्या, नैर्ऋत्य प्राप्तसूर्या तथा पश्चिम दिशा एष्यत्-सूर्या होती है। अस्तकाल के पश्चात् रात्रि के प्रथम प्रहर में नैर्ऋत्य मुक्त-सूर्या, पश्चिम प्राप्त-सूर्या और वायव्य एष्यत् सूर्या रहती है तदनन्तर रात्रि के एक प्रहर के पश्चात् दूसरे प्रहर तक पश्चिमदिशा मुक्त-सूर्या, वायव्य प्राप्त-सूर्या और उत्तरदिशा एष्यत्-सूर्या होती है। रात्रि के दूसरे प्रहर से तीसरे प्रहर तक वायव्य मुक्तसूर्या, उत्तरदिशा प्राप्त सूर्या ईशान एष्यत्-सूर्या होती है। तदनन्तर रात्रि के तृतीय प्रहर से चतुर्थ प्रहर अर्थात् सूर्योदय पर्यन्त उत्तर दिशा मुक्त सूर्या, ईशान प्राप्त सूर्या और पूर्वदिशा एष्यत् सूर्या होती है।

इस मुक्त, प्राप्त और एष्यत्-सूर्या की दिशाओं का फल उसी प्रकार होता है अर्थात् इन दिशाओं में इनके नाम के अनुसार ही फल कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इनका फल अशुभ होता है। मुक्तसूर्या की दिशा में जो अशुभ शकुन का फल कहा गया है वह फल बीत चुका होता है। अर्थात् उस फल को गत समझना चाहिए। प्राप्तसूर्या का जो अशुभ शकुन फल निर्धारित है, वह प्राप्त होता है, अर्थात् उसी दिन फल घटित हो जाता है। एष्यत् अर्थात् आगे भविष्य में होता है। वे दिशाएँ मुक्त, प्राप्त और एष्यत् संज्ञा वाली क्रमशः अंगार, दीप्त और धूमिनी होती है। मुक्त-सूर्या अंगारिणी, प्राप्त-सूर्या दीप्ता और एष्यत्-सूर्या धूमिनी होती है। तत्पश्चात् पाँच दिशाएँ शान्त कही गई है। जैसा कि कहा गया है–

अङ्गारिणी दिग्रविविप्रमुक्ता यस्यां रविस्तिष्ठति सा प्रदीप्ता।
प्रधूमिता यास्यति यां दिनेशः शेषाः प्रशान्ताः शुभदाश्च ताः स्युः।।

रवि से मुक्त दिशा अङ्गारिणी, रवि जिस दिशा में स्थित हो, वह प्रदीप्त दिशा तथा जिस दिशा में जानेवाला हो, वह प्रधूमित दिशा तथा शेष प्रशान्त शुभदायिका दिशा होती है।

अत्र केचिद् रात्रेरर्धप्रहरमारभ्य यावद्दिनस्यार्धप्रहरं तावत् प्राचीं दिशं प्राप्त-सूर्यामिति वर्णयन्ति। तत ऊर्ध्वं सार्धप्रहरं यावदाग्नेयीम्। शेषास्वप्येवं ज्ञेयम्। अयुक्तमेतत्। यस्माद् भगवान् गर्गः–

इस प्रकरण में कुछ विद्वान् रात्र्यर्धप्रहर से दिन के अर्धप्रहर तक सूर्य की प्राप्तदिशा कहते हैं। तत्पश्चात् डेढ़ प्रहर तक आग्नेयी मानते हैं। शेष समय में इसी के आधार पर दिशा का ध्यान करे। इस मान्यता को उपयुक्त नहीं माना गया और इसको अस्वीकार किया गया है। इसलिए भगवान् गर्ग ने कहा है–

उदये दीप्यते पूर्वा पूर्वाह्णे पूर्वदक्षिणा।
मध्याह्ने दक्षिणा दीप्ताऽथापराह्णे तु नैर्ऋती।।
पश्चिमास्तमये दीप्ता वायवी पूर्वरात्रिके।
सौम्या तु मध्यरात्रे स्यादैशान्यपररात्रिके।।
सम्प्राप्तानागतातीता दीप्यन्तेऽत्र सदा दिशः।
व्याहरन्ते मृगास्तासु वेदयन्ति महद् भयम्।।
ताश्च वृत्तमतीतायां दीप्तायां शंसते मृगः।
अनागतायामाशादि दीप्तायां तद्दिने स्मृतम्।।इति।।१२।।

सूर्योदय के समय पूर्व दिशा दीप्त होती है। पूर्वाह्ण में पूर्व-दक्षिण (अग्नि कोण) की दिशा तथा मध्याह्न में नैर्ऋत्यदिशा दीप्त होती है। सूर्यास्त के समय पश्चिमदिशा तथा अर्धरात्रि के पूर्व वायव्यदिशा दीप्त होती है। मध्यरात्रि में उत्तरदिशा तथा मध्यरात्रि के पश्चात् (रात के चौथे प्रहर में) ईशान-दिशा दीप्त होती है। इस क्रम से सभी दिशाएँ प्राप्त, अनागत और अतीत संज्ञा से दीप्त होती रहती हैं। इन दिशाओं में व्यवहार करते हुए मृग-शकुन (पशुपक्षी) अत्यधिक सत्य को संसूचित करते हैं। उनमें से अतीत दिशा में बीता हुआ फल, ये शकुन कहते हैं तथा अनागत में भविष्यकालिक फल और दीप्त दिशा में उसी दिन फल की उपलब्धि बतलाते हैं।।१२।।

अधुनाऽऽसां दिशां फलनियमानाह–

तत्पञ्चमदिशां तुल्यं शुभं त्रैकाल्यमादिशेत्।
परिशेषदिशोर्वाच्यं यथासन्नं शुभाशुभम्।।१३।।

दिशाओं में फलादेश का नियम कहते हैं–

तीनों काल में पञ्चम-दिशा के समान फल कहना चाहिए। शेष दिशाओं में अपने आसन्नवर्ती शकुन के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्देश करे।।१३।।

तदित्थनेनाङ्गारिण्याद्यानां दिशां परामर्शः। ताभ्यः पञ्चमास्तत्पञ्चमाः। तत्पञ्चमदिशां तुल्यं सदृशं त्रैकाल्यं त्रिकालभवं शुभं फलमादिशेद् वदेत्। एतदुक्तं भवति–अङ्गारिण्या या पञ्चमी दिक् शान्ता तस्यां सौम्ये शकुने शुभं यत् फलं तद्यातम्। तस्यामेव वामे स्थिते शकुनेऽल्पफलमनिष्टं यातम्। दीप्ताया या पञ्चमी

दिक् तस्यां शुभे स्थिते शकुने यत् शुभं तत् साम्प्रतम्। तस्यामेव वामे स्थिते शकुनेऽल्पमशुभं साम्प्रतम्। धूमिताया या पञ्चमी दिक् तस्यां शुभे स्थिते शकुने यत् शुभं फलं तदेष्यम्। तस्यामेव वामे शकुनेऽल्पमशुभमेष्यम्। अङ्गारिण्याद्यानामप्येवं शुभे शकुनेऽल्पं शुभमशुभेऽतीवाशुभं फलमिति सर्वासामूह्यम्। परिशेषदिशोरिति। परिशेषयोर्द्वयोर्दिशोर्यथासन्नं येन प्रकारेणासन्नं निकटवर्तिनी शुभाशुभं फलं वाच्यं वक्तव्यम्। यस्यां या दिक् प्रत्यासन्ना निकटवर्तिनी दीप्तायां तथा तस्यां यत् फलं तत् तस्यामेव वाच्यम्। एतदुक्तं भवति—ते दिशौ भागद्वयेन परिकल्प्य निश्चय: कार्य:। अङ्गारितशान्तासन्ने भागे पापे शकुने स्थिते यातमल्पमनिष्टं ज्ञेयम्। तस्मिन्नेव सौम्ये स्थिते शकुने शुभं यातम्। धूमितशान्तासन्ने भागे सौम्ये स्थिते शकुने भाव्यल्पमनिष्टम्। तस्मिन्नेव पापे स्थिते शकुने भावि बह्वनिष्टं भवति। उक्तं च—

"यातमुक्तायां साम्प्रतं दीप्तायामेष्यं ज्ञेयं धूपितायामनिष्टं शान्तास्वेवं दिक्षु तत्पञ्चमासु प्रत्यासन्नाशयै: शान्तदीप्तम्" इति।।१३।।

यहाँ पर "तद्" शब्द से अङ्गारिका आदि संज्ञाओं को समझना चाहिए। उनसे पञ्चम दिशा के समान तीनों काल में उत्पन्न शुभफल का आदेश करे। इस कथन का अभिप्राय यह है कि—अङ्गारिणी दिशा से पाँचवी दिशा शान्त है, उससे वामदिशा में शकुन का अनिष्टफल भी गत समझना चाहिए। दीप्ता-दिशा से जो पाँचवी दिशा है, उसमें शुभ शकुन के होने पर जो शुभफल है, वह वर्तमान में ही प्राप्त होता है। उसी के वामभाग में स्थित शकुन का अशुभ फल भी तत्काल ही मिलता है। धूमिता से पाँचवीं दिशा में जो शुभ शकुन का अशुभ फल भी भविष्य में घटित होगा। अङ्गारिका शकुन में अत्यधिक अशुभ फल कहना चाहिए। इसी प्रकार से शेष दिशाओं के फल की परिकल्पना करे।

शेष दो दिशाओं में उनके आसन्न (पार्श्ववर्ती) जो शकुन हैं, तदनुसार ही शुभाशुभ फल को कहना चाहिए। जो दिशा प्रत्यासन्न अर्थात् निकटवर्ती दीप्त हो, उसके फलानुसार ही उस दिशा का फल भी कहना चाहिए। इसका तात्पर्यार्थ यह है कि—उन दोनों दिशाओं को दो भाग में बाँट कर विचार करें। अङ्गारिका और शान्ता दिशा के आसन्न भाग में पाप-शकुन होने पर अशुभफल को बीता हुआ समझे। उसमें शुभ शकुन होने पर शुभफल को व्यतीत समझ ले। धूमिल एवं शान्त के आसन्न भाग में शुभ शकुन के होने पर भावी अनिष्ट फल का थोड़ा प्रभाव समझे। उसमें पाप शकुन के होने पर भविष्य में अधिक अनिष्टफल होता है। कहा गया है—मुक्ता दिशा में

व्यतीत, दीप्ता में वर्तमान तथा धूपिता में भविष्य में होने वाला फल समझे। शान्ता दिशाओं में इसी प्रकार समझे। उससे पञ्चम दिशाओं में आसन्न दिशाएँ शान्त और दीप्त होती हैं।।१३।।

पुनरपि फलनियमार्थमाह—

शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्चिरादुन्नतदूरगैः।
स्थानवृद्ध्युपघाताच्च तद्वद् ब्रूयात् फलं पुनः।।१४।।

पुनः फलादेश का नियम बतलाते हैं—

निकटवर्ती तथा निम्न स्थान में स्थित शकुन का शीघ्र फल मिलता है। तथा दूरस्थ अथवा उच्च स्थान पर विद्यमान शकुन का फल विलम्ब से प्राप्त होता है। वृद्धिप्रद (चल) स्थान पर स्थित शकुन से उपघात अर्थात् चोट-चपेट का फल कहना चाहिए।।१४।।

आसन्नैर्निकटवर्तिभिः शकुनैर्निम्नस्थैर्नीचस्थानतैश्च शीघ्रमाश्वेव शुभमशुभं वा फलं भवति। उन्नतैरुच्चप्रदेशस्थैर्दूरस्थैरनिकटवर्तिभिश्चिराद् बहुकालेन शुभम् शुभं वा फलं भवति। तथा च पराशरः—

आसन्न अर्थात् समीपवर्ती शकुन के निम्नस्थान पर स्थित होने पर उसका शुभाशुभफल शीघ्र ही होता है। ऊँचे स्थान पर स्थित शकुन, वह दूर अथवा निकटवर्ती हो, तो उसका शुभाशुभ फल बहुत विलम्ब से मिलता है। जैसा कि पराशर ने भी कहा है—

श्लिष्टेषुतु भवेत् क्षिप्रं शुभं वा यदि वेतरत्।
दूरस्थेषु तु सर्वेषु चिरात् सम्पद्यते फलम्।।

आसन्न शकुन का शुभ अथवा अशुभफल शीघ्र मिलता है, जब कि दूरस्थ शकुन का सम्पूर्ण फल देर से मिलता है।

स्थानवृद्ध्युपघाताद्धेतोस्तद्वत् तेनैव प्रकारेण फलं ब्रूयाद् वदेत्। वर्द्धमाने स्थाने यत्र प्रत्यहं वृद्धिर्दृश्यते तत्रस्थोऽशुभः शकुने उपघातं करोति।

स्थान की वृद्धि उपघात (आघात) का कारण होती है, अतः इसके अनुसार फल का कथन करे। अर्थात् वर्धनशील (चल, परिवर्तन शील) स्थान, जो प्रतिदिन बढ़ता हुआ दिखाई पड़े, उस स्थान पर स्थित अशुभ शकुन के द्वारा आघात होता

है।

अत्रैव शुभं किञ्चिदेवं विचार्य पुनर्भूयः शुभाशुभं फल ब्रूयात्। तथा च पराशरः—

यहाँ पर कुछ शुभ का विचार करने के पश्चात् पुनः शुभाशुभ फल को कहे। जैसा कि आचार्य पराशर ने कहा है–

दग्धवक्रातुरच्छिन्नशुष्ककण्टकिवृक्षगाः।
अश्मनिम्नकपालास्थिसिकताकेशभस्मसु।।
श्मशानाङ्गारवल्मीका ऊषरापांसुमत्सराः।
शीर्णजीर्णाशुच्यशुभ्रदेशस्था दीप्तसंज्ञिताः।।
मनोज्ञस्निग्धफलितक्षीरपुष्पतरुस्थिताः।
समप्रशस्तभूमिष्ठाः शान्ताः स्युर्मृगपक्षिणः।।
अत्र दीप्तशुभाः शान्ताः शुभा इति।।१४।।

जले हुए, टेढ़े, रोगग्रस्त, कटे हुए, सुखे और कंटीले वृक्ष पर स्थित शकुन दीप्त होते है। पत्थर, नीचे, कपाल हड्डी, बालू, केश और भस्म पर स्थित शकुन भी दीप्त होते हैं। इसी प्रकार श्मशान भूमि, कोयला, वल्मीक, ऊषरभूमि, बालूकामयी, घृणित, जीर्ण-शीर्ण, अपवित्र तथा काले कलूटे स्थान पर स्थित शकुन दीप्त माने गये हैं।

मनोभिराम, चिकने, फलदार, दूध वाले और पुष्पित वृक्षों पर स्थित तथा समतल एवं उत्तम भूमि पर स्थित शकुन अर्थात् पशु अथवा पक्षी शान्त कहे जाते हैं।

यहाँ दीप्त-शकुन का अभिप्राय अशुभ-शकुन तथा शान्त-शकुन का तात्पर्यार्थ शुभ-शकुन है।।१४।।

अधुना दशप्रकारस्य दीप्तस्य शकुनस्य लक्षणमाह–

क्षणतिथ्युडुवातार्कैर्देवदीप्तो यथोत्तरम्।
क्रियादीप्तो गतिस्थानभावस्वरविचेष्टितैः।।१५।।

अब दश प्रकार के दीप्त शकुनों के लक्षण कहते हैं–

मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, वायु और रवि संज्ञक पाँच दैव-दीप्त शकुन उत्तरोत्तर क्रम से प्रबल होते हैं। क्रिया, गति, स्थान, भाव, स्वर और चेष्टा ये पाँच भी शकुनों के दीप्त हैं, जिनको उत्तरोत्तर प्रबल समझना चाहिए।।१५।।

क्षणो मुहूर्तः शिवादिकः। तत्र दारुणोग्राणां नक्षत्राणां ये मुहूर्तास्तेषु क्षणेषु

दीप्तः शकुनः। तिथिर्नन्दादिकस्तत्र चतुर्थीषष्ट्यष्ठमीनवमीचतुर्दश्यो दीप्ताः। एतासु तिथिषु दीप्तः शकुनः। दारुणोग्रनक्षत्रेषु तत्र दीप्तः शकुनः। उडूनि नक्षत्राण्युच्यन्ते; एवमुडुदीप्तः। चण्डखरपरुषप्रतिलोममारुतो वातदीप्तः। आदित्याभिमुखो वातदीप्तादि-[illegible]दीप्तः। एवं यथोत्तरं शकुनः पञ्चप्रकारे दैवदी[illegible] भवति-क्षणदीप्तात् तिथिदीप्तोऽधिकः। तस्मान्नक्षत्रदीप्तः। तस्माद्वातदीप्तः; तस्मादर्कदीप्त इति दैवदीप्तः। विद्युदुल्कार्कमरुतामभिमुखे यो धावति स गतिदीप्तः। छिन्नभिन्नवक्रदिग्ध-पाणिजग्धशीर्णाशुचिस्थानस्थितः स्थानदीप्तः। भावः सत्ता, सत्तासंवित्तिः। तद्विहीनो भावदीप्तः। विषमविप्लुताक्षरक्षमाजर्जरस्वरः स्वरदीप्तः। पक्षपाततुण्डविधूननिपात-परोच्चावचभावकुट्टनैश्चेष्टादीप्तः। एवमेषोऽपि यथोत्तरं दीप्त इति। तथा चात्रोक्त ऋषिपुत्रोक्तवाक्यैर्निश्चयः। तद्यथा—

क्षण अर्थात् शिवादि मुहूर्त होते हैं। यहाँ पर दारुण, उग्र नक्षत्रों के मुहूर्तो अर्थात् क्षणों में, दीप्त शकुन होते हैं। नन्दादि तिथियाँ हैं, जिनमें ४,६,८, ९, और १४ तिथियाँ दीप्त हैं। इन तिथियों में दीप्त शकुन कहा गया है। दारुण तथा उग्र नक्षत्रों में दीप्त शकुन होता है। 'उडु' अर्थात् नक्षत्रों के दीप्त होने पर उडु-दीप्त कहा जाता है। चण्ड, खर, परुष और प्रतिलोम वायु को वात-दीप्त कहा जाता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रम से पाँच प्रकार के दैव-दीप्त शकुन होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि–मुहूर्त दीप्त से तिथिदीप्त अधिक प्रभाव-शाली होता है और उससे भी अधिक प्रभावशाली नक्षत्रदीप्त एवं उससे अधिक वात-दीप्त तथा वात-दीप्त से अधिक प्रभावशाली दैवदीप्त कहा गया है। ये सभी दैवदीप्त कहे जाते हैं। विद्युत्, उल्का, सूर्य और वायु की ओर अभिमुख होकर जो दौड़ता है वह गतिदीप्त है। छिन्न, भिन्न, वक्र दिग्धपाणि अर्थात् सना हुआ हाँथ, जग्ध अर्थात् खाया हुआ, शीर्ण अर्थात् फटा-पुराना और अपवित्र स्थान पर स्थित शकुन स्थान दीप्त कहा जाता है। भाव अर्थात सता और सत्ता अर्थात् समवित्ति (मनोभाव) कहा जाता है। इस समवित्ति भाव से रहित शकुन को भाव दीप्त कहते हैं। विषम, लुप्ताक्षर, क्षीण तथा जर्जर स्वर को स्वरदीप्त कहते हैं। पंख गिरना, चोंच रगड़ना, गिरना, ऊपर तथा नीचे होना और काटना ये चेष्टाएँ दीप्त होती हैं। इनमें भी उत्तरोत्तर क्रम से दीप्ताधिक्य होता है। इस प्रकार का कथन ऋषिपुत्र ने किया है। जैसा कि–

"चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीचतुर्दशीषु तिथिदीप्ताः। विष्ट्यां करणे करणदीप्ताः। मूलेन्द्रसर्परौद्रेन्द्राग्नेययाम्यपित्र्याग्नेयपूर्वासु नक्षत्रदीप्ताः। मुहूर्तेऽथैतेषामेव मुहूर्तदीप्ता। विसंज्ञाः स्वल्पसंज्ञा भावदीप्ताः। स्वरपरुषभिन्नभैरवार्तोद्वेजनीयविषम विप्लुताक्षरक्षाम-जर्जरस्वराः स्वरदीप्ताः। अशनिहतपतितच्छिन्नभिन्नभग्नोन्मूलितार्ध-दलितोपमृष्टशुष्क-व्याधितापत्राफलाक्षीरमलिनशीर्णवित्वगासारविरसक-त्वाम्ललवणतिक्तक्वथि-तायतविषमसंश्रितसङ्कटितलतावितानावनतनिरोधान्या-क्रान्तकटादिग्नदग्धेषु तरुषु। प्राकारगोपुराट्टलकककुब्भूमिसंस्थाः स्थानदिप्ताः।

ये शीर्णविषमनिम्नसङ्करकेशास्थिकपाल-वल्मीकाङ्गारपलालविनष्टा-युधाग्न्याधारकलहसर्पविद्युदुल्कार्कमारुतायुधाग्नीनुपधावन्ते ते गतिदीप्ताः। पक्षविपातोत्तुण्डविधूननैर्निपातपरोच्चावचभावकुट्टनैश्च चेष्टादीप्ताः। चण्डपरुषप्रतिलोममारुता वातदीप्ताः। अर्काभिमुखा दीप्तदिक्स्था रविदीप्ता इत्याह भगवानिन्द्रः''।।१५।।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियाँ दीप्त हैं। विष्टिकरण अर्थात् भद्रा में करण दीप्त कहा गया है। मूल, ज्येष्ठा, श्लेषा, भद्रा, कृत्तिका, भरणी, मघा और तीनों पूर्वा को नक्षत्रदीप्त कहा जाता है। इन्हीं नक्षत्रों के मुहूर्त में मुहूर्त-दीप्त होता है। संज्ञा शून्यता अर्थात् विसंज्ञा को भाव कहते हैं। कठोर स्वर, भिन्न स्वर, भैरव (भयङ्कर) स्वर, आर्त स्वर, व्याकुल स्वर, विषम स्वर, विलुप्त-अक्षर, क्षीणस्वर और जर्जर स्वर को स्वर दीप्त कहा गया है। विद्युत् से आहत, गिरे हुए, छिन्न-भिन्न, भग्न, उत्पाटित, आधे कटे हुए, मसले हुए, शुष्क, रोग-ग्रस्त, पत्र-फल और दुग्ध विहीन, मलिन, विशीर्ण, छाल रहित, रस रहित, आम्ल, लवण, तिक्त, क्वथित चौड़े और विषम स्वरूप वाले, लताओं से संकुल, सूखे हुए, अवरोधक तथा आक्रान्त और अग्नि दग्ध वृक्षों पर जो शकुन होते हैं तथा प्राकार, गोपुर, अट्टालिका, ककुभ अर्थात् शिखर पर स्थित, स्थान दीप्त होता है। जो शकुन जीर्ण, विषम, निम्न और संकीर्ण, कोश, हड्डी, कपाल, वल्मीक, कोयला, माँस, टूटे हुए शस्त्र, जली हुयी लकड़ी, सर्प, विद्युत्, उल्का, सूर्य, वायु, शस्त्र और अग्नि की ओर दौड़ते हैं, उन्हें गति दीप्त कहा जाता है। पंख गिराना, चोंच को घिसना, गिरना, नीचे ऊपर होना और काटने के लिए दौड़ने को चेष्टा-दीप्त कहा जाता है। प्रचण्ड, कठोर और विपरीत वायु को वात-दीप्त कहते हैं। सूर्याभिमुख तथा दीप्त दिशाओं में स्थित शकुन को रवि-दीप्त कहा जाता है। यह भगवान् इन्द्र ने कहा है।।१५।।

विशेष व्याख्या—

दिग्ध (वि.) (दिह+क्त) सना हुआ, लिपा हुआ, पोता हुआ। हस्तायसृग्दिग्धौ मनु. ३/१३२। रघु १६/१५ दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्म-लाक्ष्या गाढनिखात इव मे हृदये कटाक्षः मा १/२। मिट्टी में सना हुआ, कलुषित, विषाक्त कु. ४/२५ जग्ध- (वि.) (अद्+क्त जग्धादेशः) खाया हुआ।

प्राकार— यष्टिकाकण्टकादिरचित वेष्टनस्य''

प्राचीनं प्रान्ततो वृत्तिः।

प्राचीनमिति।। प्रागेव विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम् (५/४/८) इति खः प्राचीरम् इति पाठे तु प्राचीयते। प्राङ्पूर्व। 'चिञ् चयने' शुचिचिमीनां दीर्घश्च (उ. २/२५) इति क्रान्दीर्घा।। प्रान्ततः सप्तम्यारतसिः वरण वृत्तिः। 'वृञ् वरणे' (स्वा. उ. अ.)। ठिन्

(३/३/९४) 'व्रियतेऽनया इति वृतिः इत्यपि नाम इति स्वामी–इति मुकुटः। तत्र करणे ल्युट् प्रसङ्गात्। **गोपुर**=ग्रन्थिपर्णं शुकं बर्हिपुष्पं स्थौणेयकुक्कुरे।। **ग्रन्थीति**।। ग्रन्थौ पर्णन्यस्य। ग्रन्थय इव पर्णान्यस्य इति वा। शोचति "शुच शोके' (भ्वा.प.से.) शु गतौ वा।। शुकवल्कोल्काः (उ. ३/४२) इति निपातः। ग्रन्थिपर्णे शिरीषे च शुकः स्यात् इति विश्वः। 'शुको व्यास-सुते कीरे रावणस्य च मन्त्रिणी। शिरीषपादपे पुंसि, ग्रन्थि-पर्णे नपुंसकम् (इति मेदिनी)-शुकस्येव वर्हाणि पर्णान्यस्य (शुक वर्हम्) इत्येकं नाम इत्येके वर्हं पत्रं प्रशस्तमस्य। इनिः (५/२/११५) **पुष्प्यति**। 'पुष्प विकसने' (दि. प. से.) अच् (३/१/१३०) वर्हिपुष्पम् इत्येकं नाम इत्येके।। 'बर्हपुष्पम्'।। बर्हम् इति पृथग् नाम इति कश्चित् स्थूणाया अपत्यम् 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४/१/१२०) कुक्कुरीऽ-स्यास्ति। कुकुरशब्दस्तद् गन्धे लाक्षणिकः अर्श आघच् (५/२/१२७) (५) मज्ञत् इत्यश्राप्यन्वेति। 'मरुद्देशे समीरे न ग्रन्थिपर्णे नपुंसकम्' (इति मेदिनी) पञ्च ग्रन्थिपर्णस्य 'कुक्कुरवद्रा' इति ख्यातस्य।

अत्र विशेषमाह–

दशधैवं प्रशान्तोऽपि सौम्यस्तृणफलाशनः।
मांसामेध्याशनो रौद्रो विमिश्रोऽन्नाशनः स्मृतः।।१६।।

दीप्त-शकुन में विशेष बात कहते हैं–

इन दस प्रकारों में भी शान्त शकुन होते हैं। यदि तृण अथवा फल खा रहे हो तो शुभफल होता है। माँस तथा अभोज्य वस्तु खाने वाले शकुन का रौद्र अर्थात् अशुभ फल होता है। अन्न खाने वाले शकुन का शुभाशुभ मिश्रित फल कहा गया है।।१६।।

एवमनेन प्रकारेण दशधा दशभिः प्रकारैरपि शान्तः शकुनो भवति। तथापि यदि तृणाशनस्तृणभक्षः, फलाशनो वा फलान्यश्नाति, तदा सौम्यः शुभफलः। अथ मांसामेध्याशनो मांसमामिषममेध्यं विष्ठादि वाऽश्नाति तदा रौद्रो दीप्तः। अन्नाश-नोऽन्नमश्नाति। अन्नभोजी विमिश्रः शान्तो दीप्तश्च स्मृत उक्तः। उक्तं च–

इस प्रकार से दस प्रकार के दीप्त शकुन भी शान्त शकुन होते हैं। जैसा कि तृण का भक्षण करने वाले अथवा फल खाने वाले शकुन का सौम्य अर्थात् शुभफल

होता है। माँस अर्थात् आमिष, अमेध्य अर्थात् विष्ठा आदि खाने वाले रौद्र अर्थात् दीप्त शकुन होते हैं। जो अन्न को खाता है, वह विमिश्रित अर्थात् शान्त एवं दीप्त फल प्रदान करने वाला कहा गया है। जैसा कि कहा गया है–

पिशिताशुचिभोजनः प्रदीप्तस्तृण-
फलभुक् च निसर्गतः प्रशान्तः।
उभयः कथितस्तथान्नभोजी
दिक्-स्थानोदयकालतश्च चिन्त्यः।।इति।।१६।।

माँसादि अपवित्र भोजन करने वाले प्रदीप्त एवं तृण अथवा फल खाने वाले स्वभावतः प्रशान्त होते हैं। अनाज खाने वाले शकुन दोनों के मिश्रित फल देते हैं। दिशा, स्थान काल के अनुसार इनके फलों का विचार करना चाहिए।।१६।।

अथान्यदप्याह–

हर्म्यप्रासादमङ्गल्यमनोज्ञस्थानसंस्थिताः।
श्रेष्ठा मधुरसक्षीरफलपुष्पद्रुमेषु च।।१७।।

और भी कहते हैं–

भवन, अट्टालिका, माङ्गलिक स्थान और मनोहर स्थान पर स्थित शकुन उत्तम कहे गये हैं। मधुर, दूध वाले और फलों तथा फूलों से युक्त वृक्षों पर स्थित शकुन भी श्रेष्ठ माने गये हैं।।१७।।

हर्म्यं गृहम्। प्रासादो देवप्रासादः। मङ्गल्यस्थानानि देवब्राह्मणगोभिरध्यासितानि। मनोज्ञानि हरितशाद्वलासु शीतलद्रुमच्छायासंयुक्तानि। एतेषु स्थानेषु ये संस्थिताः शकुनास्ते श्रेष्ठाः शुभफलाः। तथा मधुरेषु सुस्वादफलेषु वृक्षेषु। तथा सक्षीरेष्वर्कादिषु। फलवृक्षेषु बीजपूरादिषु पुष्पवृक्षेषु च स्थिताः श्रेष्ठा एव।।१७।।

हर्म्य अर्थात् गृह, प्रासाद अर्थात् देवगृह, माङ्गलिक स्थान अर्थात् देवता, ब्राह्मण एवं गायों से युक्त भूमि, मनोज्ञ हरे-भरे, शीतल वृक्षों की छाया से संयुक्त स्थान। इन स्थानों में स्थित जो शकुन होते हैं वे श्रेष्ठ अर्थात् शुभ फल देते हैं। इसी प्रकार मधुर अर्थात् सुस्वादु फलदार वृक्षों पर तथा मन्दार आदि दूध वाले वृक्षों पर, फलदार वृक्ष अर्थात् नीबू चकोतरा आदि वृक्षों पर और फूलों पर स्थित शकुन श्रेष्ठ होते हैं।।१७।।

अधुना शाकुनानां बलविशेषफलमाह–

स्वकाले गिरितोयस्था बलिनो द्युनिशाचराः।

क्लीबस्त्रीपुरुषा ज्ञेया बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ।।१८।।

शकुनों का बलाबल विचार करते हैं–

द्युचर तथा निशाचर अपने समय में क्रमशः पर्वत और जल में स्थित होने पर बली होते हैं। नपुंसक, स्त्री और पुरुष शकुनों को क्रमशः उत्तरोत्तर बली समझना चाहिए।।१८।।

स्वकाले आत्मीयसमये गिरितोयस्थाः पर्वतजलस्था यथासंख्यं द्युनिशाचरा बलिनो वीर्यवन्तो भवन्ति। द्युचरा दिवसे गिरिस्था बलिनः। गिरिशब्द उच्चदेशोपलक्षणार्थः। निशाचरा निश्यनूपे च। तथा च मनुधर्माः–

अपने समय में पर्वत और जल पर स्थित क्रमानुसार दिवाचर और निशाचर बलशाली होते हैं अर्थात् दिवाचर शकुन दिन में पर्वत पर स्थित हो तो बली होता है। यहाँ पर गिरि शब्द उच्चप्रदेश का द्योतक है। निशाचर शकुन रात्रिकाल में जलीयस्थान पर बली होते हैं। जैसा कि मनुधर्म का वचन है–

गिरौ दिवा दिवाचारी निश्यनूपे निशाचराः।
रोधवाक् शकुनो ज्ञेयो विभजेद् बलमन्यथा।।

दिन में पर्वतीय स्थल पर दिनचर और रात्रि में जलीयस्थान पर निशाचर शकुन शुभ होता है। जो शकुन अवरुद्ध वाणी वाला हो, उसका बल विपरीत एवं विभक्त हो जाता है।

क्लीबस्त्रीपुरुष इति। एषां शकुनानां यथोत्तरं यथासंख्यं क्लीबस्त्रीपुरुषा बलिनः। क्लीबेभ्यः स्त्रियो बलिन्यः। स्त्रीभ्यः पुरुषा इति। उक्तं च–

इन शकुनों में उत्तरोत्तर क्रमानुसार नुपंसक, स्त्री और पुरुष-शकुन बली होते हैं। अर्थात् नपुंसक शकुन से स्त्री शकुन बली होता है और स्त्री शकुन से पुरुष शकुन बली होता है। जैसा कि कहा गया है–

द्युनिशोभयचारिणः स्वकाले
पुरवनमिश्रचराः स्वभूमिसंस्थाः।
सफला विफला विपर्ययस्था
गमनेच्छोः पुरपार्थिवाः शुभास्ते।।इति।।१८।।

द्युचर, निशाचर और उभयचर शकुन अपने समय पर तथा नगर, वन और मिश्रित स्थल पर क्रमशः स्वस्थान पर स्थित होने से सफल होते हैं। इसके विपरीत क्रम में स्थित शकुन विफल माने गये हैं। प्रयाण करने के इच्छुक राजा के सम्मुख स्थित शकुन, शुफभल प्रदान करते हैं।।१८।।

अन्यदप्याह—

जवजातिबलस्थानहर्षसत्त्वस्वरान्विताः।
स्वभूमावनुलोमाश्च तदूनाः स्युर्विवर्जिताः।।१९।।

और भी कहते हैं—

गति, जाति, बल, स्थान, हर्ष, सत्व और स्वर से युक्त तथा अपनी भूमि पर स्थिति के अनुसार शकुन बली होते हैं। इनमें हीन बल वाले शकुन निर्बल माने गये हैं।।१९।।

जवो वेगो गतिरित्यर्थः। जातिर्योनिविभागः। बलं प्रमाणं वा। स्थानं स्थितिः हर्षश्चित्तहर्षः। सत्त्वं [1]सौन्दर्यनिर्भयमित्यर्थः। स्वरः शब्दः। एतैर्ये बलवत्तराः। वक्ष्यति च—“[2]ग्राह्यो यो बलवत्तरः”। तत्र न ज्ञायते शकुनानां बलं तदर्थमुक्तम्। द्वयोर्मध्ये यः शकुनो जवेनाधिकः। यश्च जातेरधिकः। यश्च बलाधिकः। यश्च स्थाने शोभने स्थितः। यश्च हर्षयुक्तः। यश्च सत्त्वयुक्तः। यश्च शोभनः स्वरान्वितः। यश्च स्वभूमावानुलोम्येन स्थितः स एव बली। तदूनाः स्युर्विवर्जिताः, तदित्यनेन जवादयः परामृश्यन्ते। तैरूना रहिता बलवर्जिताः स्युर्भवेयुः।।१९।।

जव अर्थात् गति, जाति अर्थात् योनिभेद, बल अर्थात् शारीरिक मात्रा का परिमाण, स्थान अर्थात् जिस जगह पर स्थित हो, हर्ष अर्थात् मन की प्रसन्नता, सत्व अर्थात् निर्भय सौन्दर्य और स्वर अर्थात् शब्द (ध्वनि) इनसे जो बली होते हैं, उनको बलवत्तर कहा जाता है। शकुनों का परस्पर बल का ज्ञान सामान्य रूप से नहीं हो पाता। इसलिये इनके बल को ज्ञात करने की विधि को बतलाते हैं। दो शकुनों के मध्य जो गति में अधिक हो, जो जाति में श्रेष्ठ हो, जिसका बल अधिक हो, जो सुन्दर स्थान पर स्थित हो, जो अधिक प्रसन्न हो, जो सत्व सम्पन्न हो, जो मधुर स्वर वाला हो, जो अपनी भूमि पर अनुकूलता से स्थित हो, वह शकुन ही बली होता है। इन गति, जाति आदि विषयों में हीन रहने वाला शकुन निर्बल होता है।।१९।।

अधुनैतेषां जातिविभागेन दिग्बलमाह—

कुक्कुटेभपिरिल्यश्च शिखिवञ्जुलछिक्कराः।

---

१. सत्त्वमौदार्यम्—इति ग. पू. पाठः।

२. अस्यैवाध्यायस्य ५४ श्लोकः।

बलिनः सिंहनादश्च कूटपूरी च पूर्वतः।।२०।।

शकुनों की जाति के अनुसार दिग्बल का विचार करते हैं। कुक्कुट (मुर्गा), इभ (हाथी) पिरली (पक्षी), मयूर, मञ्जुल (पक्षी), छिक्कर (पशु) सिंहनाद (पक्षी) और कूटपूरी (पक्षी) ये सभी पूर्व दिशा में बली होते हैं।।२०।।

कुक्कुटः कृकवाकुः। इभो हस्ती। पिरिली पक्षिविशेषः। शिखी मयूरः। वञ्जुलः खदिरचञ्चुः। छिक्करो मृगजातिः। सिंहनादः पक्षिविशेषः। कूटपूरी करायिका। एते पूर्वतः पूर्वस्यां दिशि बलिनः। प्राजापत्यात्र पूर्वा ज्ञेया, न यातुर्वशेनेत्येवं सर्वत्र ज्ञेयम्।।२०।।

कुक्कुट अर्थात् कृकवाकु (मुर्गा), इभ अर्थात् हाथी, पिरली एक प्रकार की पक्षी विशेष, शिखी अर्थात् मयूर, वञ्जुल अर्थात् खदिरचञ्चु, छिक्कर पशु विशेष, सिंहनाद एक प्रकार की पक्षि विशेष, कूटपूरी अर्थात् करायिका ये सभी पूर्व दिशा में बली होते हैं। यहाँ पर प्राजापत्य अर्थात् ब्राह्म-दिशा (सूर्योदय दिशा) से पूर्व दिशा जाननी चाहिए। यात्रिक के अनुसार दिशा का निर्धारण कहीं पर भी नहीं करना चाहिए ।।२०।।

अथ दक्षिणस्यामाह–

क्रोष्टुकोलूकहारीतकाककोकर्क्षपिङ्गलाः।
कपोतरुदिताक्रन्दक्रूरशब्दाश्च याम्यतः।।२१।।

दक्षिण-दिशा में बली शकुन का विचार करते हैं–

सियार, उल्लू, हारीत, (हारिल), कौआ, कोक, रीक्ष (भालू), पिङ्गला, कबूतर, रोदन, आक्रन्दन तथा क्रूर शब्द ये सभी दक्षिणदिशा में बली होते हैं।।२१।।

क्रोष्टुकः शृगालः। उलूकहारीतौ पक्षिविशेषौ। काको वायसः। कोकः पक्षी। ऋक्षः प्राणी। पिङ्गला उलूकचेटिका। कपोतः पक्षी। रुदितं रोदनम्। आक्रन्दमाक्रन्दितम्। अन्ये क्रूरशब्दा अप्रियाभिधायिनः। ते च सर्वे याम्यतो दक्षिणस्यां दिशि बलिनः।।२१।।

क्रोष्टुक अर्थात् सियार उल्लू तथा हारीत नामक पक्षी कौआ अर्थात् वायस, कोक नामक पक्षी, रुदन करना, आक्रन्दन अर्थात् चिल्लाना तथा अन्य क्रूर शब्द जो अप्रिय लगते हों, ये सभी दक्षिण दिशा में बली होते हैं।।२१।।

अथ पश्चिमायामाह–

गोशशक्रौञ्चलोमाशहंसोत्क्रोशकपिञ्जलाः।

विडालोत्सववादित्रगीतहासाश्च वारुणाः।।२२।।

पश्चिम दिशा में बली शकुन–

गाय, खरगोश, क्रौंच, लोमाश, हंस, उत्क्रोश, कपिंजल, बिल्ली, खरगोश, उत्सव, वाद्य-यन्त्र, गीत तथा हास-परिहास, ये सभी पश्चिम दिशा में बली होते हैं।।२२।।

गौः प्रसिद्धा। शशः प्राणिविशेषः। क्रौञ्चः पक्षी। लोमाशः प्राणी। हंसः उत्क्रोशाख्याः कुरवः। कपिञ्जाख्यः। सर्व एव पक्षिविशेषाः। विडालो मार्जारः। उत्सवो विवाहादिकः। वादित्राणि वीणामुरुजमर्दलकरटाभेरी-पणवगोमुखपटहादयः। गीतं प्रसिद्धम्। हास उपहासः। एते वारुणाः पश्चिमायां बलिनः।।२२।।

गाय तथा खरगोश जो कि सुप्रसिद्ध प्राणी हैं, क्रौंच अर्थात् चक्रवाक पक्षी, लोमाश प्राणी, हंस, उत्क्रोश अर्थात् कुरव तथा कपिञ्जल नामक पक्षी, ये सभी पक्षी विशेष हैं। विडाल अर्थात् मार्जार (विलाव) विवाहादि माङ्गलिक उत्सव कर्म, वीणा, मृदङ्ग, मर्दल, करट, तुरही, पणव, गोमुख, नगाड़ा आदि वाद्य-यन्त्र, प्रसिद्ध गीत, हास अर्थात् हँसी, ये सभी पश्चिम-दिशा में बली होते हैं।।२२।।

अथोत्तरस्यामाह–

शतपत्रकुरङ्गाखुमृगैकशफकोकिलाः।

चाषशल्यकपुण्याहघण्टाशङ्खरवा उदक्।।२३।।

उत्तर दिशा में बली शकुन–

शतपत्र पक्षी, हरिण, मूषक, मृग, एक खुर वाले पशु, कोयल, चाष पक्षी, शल्यक (साहिल पशु), पुण्याह वाचन, घंटी और शंख के शब्द उत्तर दिशा में बली माने गये हैं।।२३।।

शतपत्रः पक्षी, दार्वाघाट इति प्रसिद्धः। कुरङ्गो हरिणः। आखुर्मूषकः। मृगः प्रसिद्धो हरिणः। एकशफावश्वगर्दभौ। कोकिलः परभृतः। चाषः पक्षी। शल्यको विलेशयः प्राणी। पुण्याहरव आशीःसंयुक्तः शब्दः। घण्टाशङ्खौ प्रसिद्धौ। एषां सर्वेषां रवाः शब्दा उदगुत्तरस्यां दिशि बलिनः।।२३।।

शतपत्र अर्थात् दार्वाघाट नामक प्रसिद्ध पक्षी, कुरङ्ग अर्थात् हरिण, आखु अर्थात् चूहा, मृग नाम से सुप्रसिद्ध हिरण, एक शफ वाले घोड़े गदहे आदि, कोयल अर्थात् परभृत–जो दूसरों के द्वारापलित होता है, चाष अथवा चाख नामक पक्षी, शाल्यक प्राणि–जो बील में निवास करता है। (साहिल), पुण्याह के शब्द–जो

आचार्यों द्वारा आशीर्वाद स्वरूप बोले जाते हैं और घण्टा तथा शङ्ख के शब्द, ये सभी ध्वनियाँ उत्तरदिशा में बली होती हैं॥२३॥

विशेष व्याख्या–

"शफ क्लीबे खुरः पुमान्"–अमरकोश २.८.४९ शं फणति, पण गतौ, शफं मूले तरूणां स्याद् गवादीनां खुरेऽपि च (मेदिनी)। खुरति, खुर छेदने।

अधुना तेषां प्रतिभागमाह–

न ग्राम्योऽरण्यगो ग्राह्यो नारण्यो ग्राम्यसंस्थितः।
दिवाचरो न शर्वर्यां न च नक्तं चरो दिवा॥२४॥

इन शकुनो में भेद का निरूपण करते हैं–

गाँव में रहने वाले शकुनों का वन में और वन में रहने वाले शकुनों का गाँव में शकुन-विचार न करे। इसी प्रकार से दिन में विचरण करने वाले शकुन का रात में और रात्रिचर का दिन में विचार न करें॥२४॥

ग्राम्यशब्दः शकुनोऽरण्यगोऽरण्यस्थितः शुभोऽशुभो वा न ग्राह्यः। एवमारण्योऽपि ग्रामसंस्थितो न ग्राह्यः। दिवाचरो दिवसचरः शर्वर्यां रात्रौ न ग्राह्यः। नक्तंचरो रात्रिंचरो दिवसे न ग्राह्यः॥२४॥

गाँव के शकुन का शब्द वन में सुनाई पड़ने पर, उसका शुभाशुभ फल ग्रहण नहीं किया जाता है। इसी प्रकार वनचारी शकुन का गाँव में प्राप्त ध्वनि का विचारार्थ ग्रहण न करे। दिन में संचरणशील शकुन का रात में तथा रात में संचरण करने वाले शकुन का दिन में शुभाशुभ फल ग्रहण न करे॥२४॥

पुनरतिप्रतिषेधार्थमाह–

द्वन्द्वरोगार्दितत्रस्ताः कलहामिषकाङ्क्षिणः।
आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित्॥२५॥

अन्य प्रतिषेधों को कहते हैं–

जोड़ा सहित (युग्म), रोगग्रस्त, भयाक्रान्त, कलह करने वाले और माँसादि के झपटने के इच्छुक, जल में डूबे हुए और मदमत्त शकुनों से शुभाशुभ का कथमपि विचार न करे॥२५॥

द्वन्द्वं युग्मं तच्च सारयुग्मं विना यतस्तदिष्टफलं वक्ष्यति–"[१]**सारसकूजितमिष्टफलं तद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य" इति। रोगार्दितो गदपीड़ितः। त्रस्तो भीताः। कलहकाङ्क्षी कलहेच्छुः। आमिषकाङ्क्षी मांसाभिलाषी। आपगानतरिता नद्यन्तरिताः। मत्ता ऋतुकालवेशन सदर्पाः। एवंविधाः शकुनाः सदसत्फलेषु न क्वचिदपि ग्राह्यः। उक्तं च–**

शकुन में सारस की जोड़ी का अनुकूल शुभफल मिलता है। जैसा कि कहा गया है–"सारसयुग्म का एक साथ बोलना शुभ होता है।" अतः सारस के अतिरिक्त अन्य शकुनों की युग्मता, रोग से पीड़ित, त्रस्त अर्थात् भयभीत, कलह का इच्छुक, मांस की आकांक्षा वाला, आपगा अर्थात् नदी में अन्तर्हित, ऋतुकाल के अनुसार मतवाला, इस प्रकार का शकुन शुभाशुभ फल के लिए कथमपि ग्राह्य नहीं होता है। कहा गया है–

द्वन्द्वादिरोगार्दितभीतमत्तवैरान्तयुद्धामिषकाङ्क्षिणश्च ।

सीमान्तनद्यन्तरिताश्च सर्वे न चिन्तनीयाः सदसत्फलेषु।।इति।।२५।।

युग्म, रोग से पीड़ित, भयग्रस्त, मतवाला, कलहपूर्वक युद्ध करने वाला, मांस की इच्छा वाला, सीमान्त प्रदेश और नदी के भीतर स्थित, इस प्रकार के शकुनों का शुभाशुभ फल के ग्रहण हेतु विचार न करे॥२५॥

अधुना चैतेषामृतुकालज्ञानं निष्फलत्वं चाह–

रोहिताश्वाजवालेयाः कुरङ्गोष्ट्रमृगाः शशः।

निष्फलाः शिशिरे ज्ञेया वसन्ते काककोलिकौ।।२६।।

ऋतु के अनुसार इनकी विफलता को कहते हैं–

रोहित (पशु), घोड़ा, बकरा, गदहा, हरिण, ऊँट, मृग और खरगोश, शिशिर ऋतु में निष्फल होते हैं। वसन्तऋतु में कौआ तथा कोयल को निष्फल समझे॥२६॥

रोहितो मृगजातिः। अश्वस्तुरगः। अजश्छागः। वालेयो गदर्भः। कुरङ्गो मृगजातिः। उष्ट्रः करभः। मृगो हरिणः। शशः प्राणी। एते सर्वे शिशिरे माघ-फाल्गुनयोः सदसत्त्वान्निष्फला ज्ञेया ज्ञातव्याः। वसन्ते चैत्रवैशाखयोः काको वायसः, कोकिलः परभृतः। एतौ सदसत्त्वान्निष्फलावेव।।२६।।

रोहित, जो मृमजाति का पशु है, घोड़ा, अज अर्थात् बकरा (छाग), वालेय

---

१. बृहत्संहितायाम् ८७ अध्याये ३७ श्लोकः।

अर्थात् गदहा, कुरङ्ग संज्ञक मृग की एक जाति, उष्ट्र अर्थात् ऊँट (करभ) शश (शशक) अर्थात् खरगोश, ये सभी शिशिर ऋतु अर्थात् माघ और फाल्गुन मास में शुभ अथवा अशुभ फल देने में निष्फल होते हैं। वसन्त ऋतु अर्थात् चैत्र एवं वैशाख मास में कौआ तथा कोयल, ये दोनों ही शुभाशुभ फल हेतु निष्फल रहते हैं।।२६।।

अन्येष्वाह—

न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकरश्ववृकादयः।
शारद्याब्जादगोक्रौञ्चाः श्रावणे हस्तिचातकौ।।२७।।

और भी कहते हैं—

भादो मास में सूअर, कुत्ता और भेड़ियों आदि का शकुन ग्रहण न करे। शरद् ऋतु अर्थात् आश्विन और कार्त्तिक मास में जलभक्षी हंसादि तथा गाय और चक्रवाक पक्षी का एवञ्च श्रावण मास में हाथी तथा चातक पक्षी का शकुन ग्रहण न करे।।२७।।

भाद्रपदे मासि सूकरो वराहः। श्वा सारमेयः। वृकः प्राणी। आदिग्रहणाद् मृगादयो विलेशयाः। एते न ग्राह्याः। सदसत्त्वाद्व निष्फलाः। शारद्याश्विनकार्तिकयोः। अब्जादा हंसादयः। अप्सु जायत इत्यब्जजम्। तददन्ति भक्षयन्ति इति अब्जादाः। गौः प्रसिद्धा। क्रौञ्चः पक्षिविशेषः। एते सदसत्त्वान्निष्फलाश्च ग्राह्याः। श्रावणे मासि हस्तिचातकौ न ग्राह्यौ। हस्ती गजः। चातकः पक्षिविशेषः।।२७।।

भाद्रपद मास में सूकर अर्थात् वराह, श्वान (सारमेय), वृक अर्थात् भेंड़िया तथा आदि पद से मृगादि पशु एवं विल में रहने वाले प्राणी, इनके शुभाशुभत्व का फल ग्रहण न करे, ये निष्फल होते हैं। शरद् अर्थात् आश्विन और कार्त्तिक मास में "अब्जाद" अब्ज अर्थात् जल में उत्पन्न पदार्थ का 'अद' यानि भक्षण करने वाले हंसादि पक्षी, गाय, क्रौञ्च अर्थात् चक्रवाक पक्षी, ये सभी शुभाशुभ व्यक्त करने में निष्फल होने से अग्राह्य हैं। श्रावण मास में हाथी और चातक का ग्रहण न करे। हस्ति अर्थात् हाथी (गज) पशु तथा चातक एक विशेष पक्षी है।।२७।।

अथान्येष्वप्याह—

व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषाः सबिलेशयाः।
हेमन्ते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषाः।।२८।।

अन्य मासों में कहते हैं—

बाघ, ऋक्ष (भालू), वानर, द्वीपी, भैंसा और बिल निवासी, ये सभी हेमन्त ऋतु में निष्फल होते हैं। मनुष्य के बालकों को छोड़कर अन्य सभी प्राणियों के बालक भी इस ऋतु में अग्राह्य हैं॥२८॥

व्याघ्रः प्रसिद्धः प्राणी नखी। ऋक्षः प्राणी। वानरः कपिः। द्वीपी चित्रकः। महिषः प्रसिद्धः। एते सविलेशयाः, विलेशयैः प्राणिभिः सहिताः। बिले शेते बिलेशयः, श्वाविन्नकुलादयः। विमानुषा मानुषवर्जिताः सर्वे प्राणिनः। बालाः शिशवः। हेमन्ते मार्गशीर्षपौषयोर्निष्फला ज्ञेया ज्ञातव्याः। मानुषा बालाः पुनः सफला एव। एतेषां यच्छुभाशुभचेष्टितं तत्सफलमेव।

व्याघ्र अर्थात् प्रसिद्ध नखों वाला प्राणी, ऋक्ष अर्थात् भालू नामक प्राणी, वानर, द्वीपी (चीता), (चित्रक), भैंसा, बिलेशय प्राणी अर्थात् बिल में शयन करने वाले श्वावित् साहिल (सेह) तथा नकुल अर्थात् नेवला आदि, मनुष्य को छोड़कर सभी प्राणियों के शिशु को, हेमन्त ऋतु अर्थात् मार्गशीर्ष और पौष मास में निष्फल समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों के बालकों का शकुन सफल होता है। इन बच्चों की चेष्टाओं के अनुसार शुभाशुभ फल घटित होता है।

अत्र ऋतुकाललक्षणं भगवत्पराशरकृतं विस्तृतं लिख्यते—

"[१]अथ शकुनेषु कोकिलमयूरजीवजीवकप्रियपुत्रराजपुत्रीगोदापुत्रशतपत्रदात्यूहमदनसारिकावर्षाभूकोयष्टिमहामुक्तकमषकदण्डिमाणवकवायसकुक्कुटवकोत्क्रोशं शार्ङ्ग-प्लवकचित्रकपोतपुष्परथोष्ट्ररथादीनां वसन्तो मदकालः। शतपत्रोत्क्रोशभृङ्गराजमयूर-कोकिलवकवलाहकाप्लववाकधन्वनचातकसारङ्गाणां वर्षाः। चकोरकादम्बरमदनशारिका-कीरपुष्करचातकहंसचक्रवाकसारसकुररक्रौञ्चकारण्डवभ्रमराणां शरत्। श्येनकुर-रक्रौञ्चसारसादीनां हेमन्ते शिशिरे एवमादयः शकुनानां मदकालाश्च। मृगाणां पुनः पुरुषाणां च शिवाशशजम्बूकसृमरचमरवानरमार्जारनकुलगजगवयसिंहव्याघ्रकूर्मवराहा-दीनां प्रायः सर्वेषां मदकालश्च विशेषतश्च सारससृमरसिंहव्याघ्रादीनां ग्रीष्मे। हरिणगजवृषभादीनां प्रावृट्। वृषभरुरुमहिषगयसृमरचमराणां शरत्, गोगवयवृषादीनां हेमन्तः शिशिरः" इति।।२८।।

ऋतुकाल के पराशरकृत लक्षणों को लिखते हैं—

शकुनों में कोयल, मयूर, जीव-जीवक, प्रियपुत्र, राजपुत्री, गोदापुत्र, शतपत्रदा, अत्यूह, मदन-सारिका, वर्षाभू, कोयष्टि, महामुक्तक, मषकदण्डि, माणवक, वायस,

---

१. शार्दूल इति ग. पु. पाठः।

कुक्कुट, वक, उत्क्रोश, शार्ङ्ग, प्लवक, चित्र, कपोत, पुष्प-रथ और उष्ट्ररथ, इन सभी का मदकाल वसन्त-ऋतु है। शतपत्र, उत्क्रोश, भृंग, राजमयूर, कोकिल, वक, वलाहक, प्लववाक, धन्वन, चातक, सारङ्ग, इनका मदकाल वर्षा ऋतु है। चकोर, कादम्ब, मदनशारिका, कीर, पुष्कर, चातक, हंस, चक्रवाक, सारस, कुरर, क्रौञ्च, कारण्डव और भ्रमर का शरद् ऋतु में मद-काल होता है।

श्येन, कुरर, क्रौञ्च और सारस आदि का मदकाल हेमन्त ऋतु है। इस प्रकार से शिशिरादि ऋतुओं में शकुनों के मदकाल का निरूपण किया गया है। मृगों अर्थात् पशुओं तथा पुरुष-शकुनों शिवा, शश, जम्बूक, सृमर, चमर, वानर, मार्जार, नकुल, गज, गवय, सिंह, व्याघ्र, कूर्म तथा वराह आदि सभी का मदकाल ग्रीष्म ऋतु है। पुनः विशेषतः सारस, सृमर और व्याघ्र आदि का ग्रीष्म ही मदकाल होता है। हरिण, गज और वृषभ इत्यादि का वर्षाकाल, गवय, सृमर और चमर आदि का शरद् काल तथा गो, गवय, वृष इत्यादि का हेमन्त तथा शिशिर ऋतु मदकाल है॥२८॥

विशेष व्याख्या–

पशु पक्षियों के नाम हेतु परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

अधुना द्वात्रिंशद्भेदभिन्नस्य दिक्चक्रस्य प्रतिभागप्रदर्शनार्थमाह–

ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः।
कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्॥२९॥

बत्तीस भेद वाले दिक्चक्र को प्रदर्शित करते हैं–

पूर्वदिशा तथा अग्निकोण के मध्य तीन सम-भागों में क्रमशः कोशाधिपति, अग्निकर्मी एवं तपस्वीजन प्रदक्षिणावर्त क्रम से स्थित होते हैं॥२९॥

ऐन्द्री पूर्वा दिक्, अनला आग्नेयी। अनयोर्मध्येऽन्तरे त्रयस्त्रिभागास्तेषु व्यवस्थिताः क्रमेण कोशे गञ्जेऽध्यक्षः स चैकस्मिन् भागे। द्वितीये अनलाजीवी अग्न्युपजीवकः सुवर्णकारादिकः। तृतीये तपोयुक्तस्तापसः। एत एव प्रदक्षिणं प्रदाक्षिण्येनेति॥२९॥

ऐन्द्री अर्थात् पूर्व दिशा, अनला अर्थात् अग्निकोण, इनके मध्य तीन भागों में क्रमशः कोशाध्यक्ष अर्थात् गञ्जाध्यक्ष एक भाग में तथा सुवर्णकार आदि अग्नि-जीवी दूसरे भाग में और तपस्यारत तापसजन तीसरे भाग में स्थित रहते हैं॥२९॥

अन्येष्वाह—

शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा स्त्री याम्यानलदिगन्तरे।
परतश्चापि मातङ्गगोपधर्मसमाश्रयाः।।३०।।

अन्य दिशाओं में कहते हैं–

अग्निकोण और दक्षिणदिशा के मध्य क्रमशः तीन भागों में शिल्पकार, भिक्षु और नग्नस्त्री रहती है। तत्पश्चात् दक्षिण और नैर्ऋत्यकोण के मध्यस्थ तीनों भाग में मातङ्ग (हाथी), गोपालनकर्ता और धार्मिकजन स्थित रहते हैं।।३०।।

याम्या दक्षिणा, अनला आग्नेयी। अनयोरन्तरे मध्ये ये त्रयो भागास्तेषु क्रमेण व्यवस्थिताः। शिल्पी चित्रकरलेखकरवर्धकिप्रायाः प्रथमे त्रिभागे। भिक्षुर्यतिर्द्वितीये। विवस्त्रा स्त्री नग्ना स्त्री तृतीये। परतो दक्षिणनैर्ऋत्योर्मध्ये ये त्रयस्त्रिभागास्तेषु प्रथमे मातङ्गो हस्ती तत्समाश्रितः पुमान्। द्वितीये गोपालकस्तत्समाश्रितः पुमान्। तृतीये धर्मसमाश्रयो धर्मानुरतः।।३०।।

याम्या अर्थात् दक्षिण, अनला अर्थात् आग्नेयी इन दोनों दिशाओं के मध्य जो तीन भाग हैं, उनमें क्रमशः प्रथमभाग में शिल्पकार, चित्रकार, लेखक, काष्ठ शिल्पी स्थित होते हैं। दूसरे भाग में भिक्षु अर्थात् संन्यासी रहते हैं। तीसरे भाग में नग्ना स्त्री का स्थान है। तदनन्तर दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण के बीच जो तीन भाग होंगे उनमें से प्रथण भाग में मातङ्ग अर्थात् हाथी (पुरुष), तथा दूसरे में गोपालक और उनसे सम्बन्धित पुरुष और तीसरे भाग में धर्मानुरक्त पुरुष का स्थान है।।३०।।

अन्येष्वाह—

नैर्ऋतीवारुणीमध्ये प्रमदासूतितस्कराः।
शौण्डिकः शाकुनी हिंस्रो वायव्यापश्चिमान्तरे।।३१।।

अन्य दिशाओं में कहते हैं–

नैर्ऋत्यकोण और पश्चिमदिशा के मध्यस्थ तीन भागों में क्रमशः महिला, प्रसूति और तस्कर स्थित होते हैं। पश्चिमदिशा और वायव्यकोण के मध्य के तीन भागों में क्रमशः मद्यपायी, बहेलिया और हिंसक प्राणी स्थित होते हैं।।३१।।

नैर्ऋती दक्षिणपश्चिमा, वारुणी पश्चिमा, अनयोर्मध्ये ये त्रयस्त्रिभागा मध्ये स्थितास्तेषु प्रथमे प्रमदा स्त्री। द्वितीये सूतिः प्रसवः। तृतीये तस्कराश्चौराः। वायव्यापश्चिमान्तरे ये त्रयस्त्रिभागा मध्ये स्थितास्तेषु प्रथमे शौण्डिको मधुपानसक्तः। कल्पपाल इति केचित्। द्वितीये शाकुनी धीवरः। तृतीये हिंस्रः क्रूरः।।३१।।

नैर्ऋत्य अर्थात् दक्षिण और पश्चिम दिशा के मध्य का कोण एवं वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा, इन दोनों के मध्य के तीन भागों में से क्रमशः प्रथम भाग में स्त्री, दूसरे भाग में प्रसूति-स्त्री और तीसरे भाग में तस्कर अर्थात् चोर रहते हैं। पश्चिम दिशा और वायव्यकोण के बीच जो तीन भाग होते हैं उनमें से प्रथम भाग में शौण्डिक अर्थात् मद्य-पान करने वाले हैं, जिनको कुछ विद्वान् कल्प-पाल कहते हैं। दूसरे भाग में शाकुनी अर्थात् धीवर (मछुवारे) एवं तीसरे भाग में हिंसक अर्थात् क्रूर-प्राणी रहते हैं।।३१।।

विशेष व्याख्या–

'शाकुनी' शब्द का विवृति में 'धीवर' अर्थ किया गया है। 'शाकुनी' पक्षी पकड़ने वाला बहेलिया कहा जाता है। धीवर (मछुवारा) शब्द का पर्याय अमरकोश (१/१०/९५) में इस प्रकार है–"कैवर्ते दाशधीवरौ", विद्वज्जन कृपया विचार कर लें।

अन्येष्वाह–

विषघातकगोस्वामिकुहकज्ञास्ततः परम्।
धनवानीक्षणीकश्च मालाकारः परं ततः।।३२।।

अन्य दिशाओं में कहते हैं–

तदनन्तर (वायव्योत्तर के तीन भागों में) क्रमशः विषघात करने वाले, गायों के स्वामी, इन्द्रजाल विद्या के ज्ञाता रहते हैं। इसके पश्चात् उत्तर-ईशान दिशा के तीन भागों में क्रमशः सम्पन्न लोग, लक्षणज्ञ ज्योतिषी, और मालीगण रहते हैं।।३२।।

ततः परमनन्तरम्। वायव्योत्तरयोरन्तरे ये त्रयस्त्रिभागाः। तत्र प्रथमे विषघातकः। विषं घातयति मारयति। द्वितीये गोस्वामी गोमान्। तृतीये कुहकज्ञ इन्द्रजालवित्। ततः परमुत्तरैशान्योरन्तरे ये त्रयो भागास्तेषु प्रथमे धनवान्। द्वितीये ईक्षणीको दैवज्ञः। तृतीये मालाकारः पुष्पप्रचायकः।।३२।।

उसके बाद व्यायव्यकोण एवं उत्तर दिशा के मध्य में जो तीन भाग होंगे, उसके प्रथम भाग में विषघातक, दूसरे भाग में गोस्वामी अर्थात् गोपालक और तीसरे भाग में कुहक अर्थात् इन्द्रजाल के ज्ञाता जन होते हैं। तत्पश्चात् उत्तर दिशा और ईशान कोण के मध्य में जो तीन भाग होंगे, उनमें से प्रथम भाग में धनवान्, दूसरे भाग में ईक्षणीक अर्थात् दैवज्ञ ज्योतिषी और तीसरे भाग में माला बनाने वाले माली प्रभृति लोग रहते हैं।।३२।।

अन्येष्वप्याह–

वैष्णवश्चरकश्चैव वाजिनां रक्षणे रतः।
द्वात्रिंशदेवं भेदाः स्युः पूर्वदिग्भिः सहोदिताः।।३३।।

अन्य दिशाओं में कहते हैं–

ईशान-पूर्व के मध्यगत तीन भागों में क्रमशः वैष्णव-भक्तजन, गुप्तचर और अश्वपालक होते हैं। इस प्रकार पूर्वादिदिशाओं से प्रारम्भ कर ३२ भेद होते हैं।।३३।।

ऐशानीपूर्वयोरन्तरे त्रयस्त्रिभागास्तेषु प्रथमे वैष्णवो विष्णुभक्तः। द्वितीये चरकश्चरः। तृतीये वाजिनामश्वानां रक्षणे पालने रतः सक्तः। एवमनेनैव प्रकारेण द्वात्रिंशद्भेदाः पूर्वदिग्भिः प्रागुक्ताभिरष्टाभिर्दिग्भिः सह साकमुदिताः कथिताः स्युर्भवेयुः।।३३।।

ईशानकोण एवं पूर्वदिशा के बीच के तीन भागों में प्रथम विष्णुभक्त, द्वितीय में चरक अर्थात् गुप्तचर तथा तीसरे भाग में घोड़ों की रक्षा में लगे हुए लोग रहते हैं। इस प्रकार से पूर्वोक्त आठ दिशाओं के साथ बत्तीस भेद कहे गये हैं।।३३।।

अधुनाष्टासु दिक्ष्वधिपतीनाह–

राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः।
राजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम्।।३४।।

प्रमुख आठ दिशाओं के अधिपतियों को कहते हैं–

पूर्वादि आठ दिशाओं में क्रमशः राजा, राजकुमार, नेता, दूत, सेठ, गुप्तचर, विप्र और गज-प्रमुख का स्थान होता है। पूर्वादि प्रधान चार दिशाओं में क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण का स्थान है।।३४।।

राजा नृपः पूर्वस्यां दिशि। कुमारो राजपुत्र आग्नेय्याम्। नेता सेनापतिर्दक्षिणस्याम्। दूतो गमागमिको नैर्ऋत्याम्। श्रेष्ठी पश्चिमायाम्। चरो गूढपुरुषो वायव्याम्। द्विजो ब्राह्मण उत्तरस्याम्। गजाध्यक्षो हस्तिशालाध्यक्ष ऐशान्याम्। एते पूर्वाद्या ज्ञेया। क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम्। पूर्वाद्यासु चतसृषु दिक्षु क्षत्रियाद्या वर्णाः। तद्यथा–पूर्वस्यां क्षत्रियाः। दक्षिणस्यां वैश्याः। पश्चिमायां शूद्राः। उत्तरस्यां ब्राह्मणाः।।३४।।

राजा पूरब दिशा में, कुमार अर्थात् राजपुत्र अग्निकोण में, नेता अर्थात् सेनापति दक्षिणदिशा में, दूत अर्थात् गमनागमन करने वाला नैर्ऋत्यकोण में, श्रेष्ठीजन पश्चिमदिशा में, चर अर्थात् गुप्तचर (गूढ पुरुष) वायव्य-कोण में, ब्राह्मण उत्तर दिशा में और हस्तीशाला का अध्यक्ष ईशानकोण में रहता है। इनको पूर्वादि क्रम से समझना चाहिए। पूर्वादि चार दिशाओं में क्षत्रियादि चातुर्वर्ण्य होते हैं। जैसा कि–पूर्वदिशा में क्षत्रिय, दक्षिणदिशा में वैश्य, पश्चिमदिशा में शूद्र और उत्तरदिशा में ब्राह्मण होते हैं।।३४।।

अथ चक्रस्य प्रविभागमाह–

गच्छतस्तिष्ठतो वापि दिशि यस्यां व्यवस्थितः।
विरौति शकुनो वाच्यस्तद्दिग्जेन समागमः।।३५।।

दिक्-चक्र के भागानुसार फल–

जिस दिशा के जिस भाग में जाते हुए अथवा बैठे हुए व्यक्ति के सम्मुख शकुन शब्द करता है, उस दिग्-भाग से सम्बन्धित पदार्थ का संयोग होता है।।३५।।

पुंसो गच्छतो यात्रायां व्रजतः। तिष्ठत एकदेशस्थस्य निश्चलस्य वाऽपि यस्यां दिशि व्यवस्थितः समवस्थितः। शकुनः प्राणी पक्षी वा विरौति शब्दं करोति, तद्दिग्जेन यस्यां दिशि यो जातस्तेन कथितेन सह तस्मिन् दिने तस्य समागमः संयोगो वाच्यो वक्तव्यः। यथेन्द्रानलदिशोर्मध्ये प्रथमत्रिभागस्थे शकुने कोशाध्यक्षेण सह संयोगः। द्वितीयेऽनलाजीविना। तृतीये। तापसेनेत्यादि सर्वत्रोदाहार्यम्।।३५।।

यात्रा हेतु गमन करता हुआ अथवा स्थिरता से बैठा हुआ व्यक्ति दिक्-चक्र के जिस किसी भाग में स्थित हो और उस समय शकुन-प्राणी अथवा शकुन पक्षी शब्द करता हो, तब जिस दिशा में वह जा रहा होता है, उसी दिशा सम्बन्धित व्यक्ति से उसका संयोग, उसी दिन हो जाता है। उदाहरणार्थ–पूर्व और अग्निकोण के तीन भागों में से प्रथम भाग में शकुन के होने पर कोशाध्यक्ष के साथ संयोग होगा। दूसरे भाग में अग्निजीवी तथा तीसरे भाग में शकुन के होने पर तापस के साथ संयोग होगा। इसी प्रकार से अन्य दिशाओं को भी समझे।।३५।।

अत्र शिष्यजनभ्रान्तिनिरासाय चक्रविन्यासः प्रदर्श्यते–

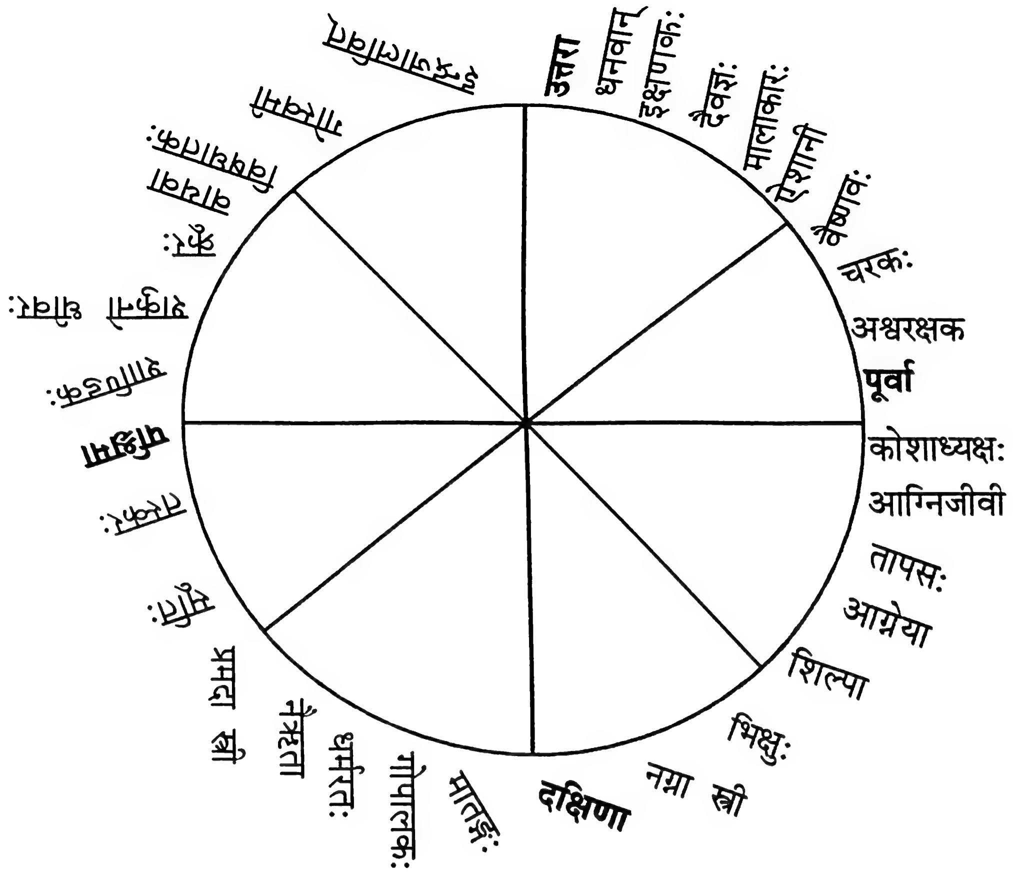

अधुना रुतान् शुभाशुभानाह–

भिन्नभैरवदीनार्तपरुषक्षामजर्जराः।

स्वना नेष्टाः शुभाः शान्तहृष्टप्रकृतिपूरिताः।।३६।।

शकुन-शब्दों के शुभाशुभत्व को कहते हैं–

छिन्न-भिन्न (टूटे) विच्छिन्न शब्द, भयङ्कर, दैन्यपूर्ण, कराहना, कठोर, पतला और जर्जरित शब्द शुभ नहीं होते हैं। शान्त, प्रसन्न तथा स्वाभाविकता से परिपूर्ण शब्द शुभकारी होते हैं।।३६।।

ये स्वनाः शब्दा भिन्ना विषमाः। भैरवाः क्रूराः। दीना दैन्यमागताः। जर्जरा भिन्नभाण्डसमुद्भूतशब्दसदृशाः। ते सर्व एव नेष्टा न शुभाः। ये स्वनाः शान्तेन शान्तदिक्स्थेनार्काभिमुखेन च हृष्टप्रकृतिना सहर्षेण पूरिताः कृतास्ते च शुभाः।।३६।।

जो शब्द भिन्न अर्थात् असमान (विषम), भैरव अर्थात् क्रूर (भंयकर), दीनता से पूर्ण, टूटे हुए के समान जर्जर शब्द, ये सभी नेष्ट अर्थात् शुभावह नहीं होते हैं। जो शब्द शान्त दिशा में, सूर्याभिमुख हों, माधुर्य पूर्ण हों, प्रसन्नता से भरे हुए हों, वे सभी शुभ होते हैं।।३६।।

विशेष व्याख्या–

विवृति में मूल श्लोक के कुछ शब्द छूट गये हैं। उनके अर्थ सामान्य हैं। मेरा श्लोकार्थ द्रष्टव्य है।

अथ यातुर्वामभागगता ये शुभा गतास्तेषां नामान्याह–

शिवा श्यामा रला छुच्छुः पिङ्गला गृहगोधिका।
सूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः।।३७।।

यात्री के वामभागगत शुभशकुनों के नाम–

सियारिन, कबूतरी, रला, छुच्छुन्दरी, पिंगला, विछतूइया, सूकरी और कोयल ये सभी शकुन तथा पुरुषवाचक अन्य शकुन भी, वाम-भाग में शुभ होते हैं।।३७।।

शिवा शृगालिका। श्यामा पोतकी रला कलहकारिका। छुच्छुः छुच्छुन्दरी मूषकजातिः। पिङ्गला उलूकचेटिका गृहगोधिका पल्ली। सूकरी प्रसिद्धा परपुष्टा च कोकिला। ये चान्ये पुन्नामानः पुरुषसंज्ञास्ते यातुर्वामतो वामभागगताः शुभाः। उक्तं च–

शिवा अर्थात् सियारिन, श्यामा अर्थात् पोतकी, रला अर्थात् कलहकारी नामक पक्षी, छुच्छु अर्थात् मूषक जाति की छच्छुन्दरी, पिंगला अर्थात् उलूक-चेटिका नामक पक्षी, गृहगोधिका अर्थात् पल्ली (विच्छतुईया), सूकरी नाम से प्रसिद्ध प्राणी, परपुष्टा अर्थात् कोयल इनके साथ ही जो पुरुष संज्ञक शकुन हैं, वे सभी यात्रिक के वाम भाग में शुभ होते हैं। जैसा कि कहा गया है–

छुच्छुन्दरी सूकरिका शिवा च
श्यामा रला पिङ्गलिकाऽन्यपुष्टा।
शस्ताः प्रयाणे गृहगोधिका च
पुंसंज्ञिता ये च पतत्रिणः स्युः।।इति।।३७।।

छुच्छुन्दरी, सूकरी, शृंगालिका, श्यामा, रला, पिंगला, कोयल तथा विछतूईया तथा पुरुष संज्ञक शकुन-पक्षी यात्रा काल में शुभ होते हैं।।३७।।

विशेष व्याख्या–

सूकरी का अमरकोश में सन्दर्भ में नहीं है। मटमैले रंग की एक चिड़िया होती है, जिससे बदबूदार गन्ध निकलती है, बाल घने होते हैं और वर्षा एवं शरद् में कदम्ब आदि के वृक्षों पर इनका झुंड बैठता है। लोक-भाषा में इसे सूअरी (बादुर) कहा जाता है।

अथ यातुर्दक्षिणभागगता ये शुभास्तेषां नामान्याह–

स्त्रीसंज्ञा भासभषककपिश्रीकर्णधिक्करा:।

शिखिश्रीकण्ठपिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणा:।।३८।।

यात्री के दक्षिणभाग-गत शुभ शकुनों को कहते हैं–

स्त्री संज्ञक सभी शकुन तथा भास पक्षी, भषक, कपि (वानर), श्रीकर्ण पक्षी, धिक्कर पक्षी, शिखि (मयूर), श्रीकण्ठ (नीलकण्ठ), पिप्पिका, रुरु तथा श्येन (बाज पक्षी), ये सभी दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।।३८।।

ये च स्त्रीसंज्ञा: स्त्रीनामान:। तथा च भगवान् पराशर:–

स्त्री संज्ञक जो शकुन हैं, उनके नाम को भगवान् पराशर ने इस प्रकार कहा है–

"तेषां शिवागोधाकालकाराजपुत्रीभरद्वाजबलाकापोतकीसूकरिकापिप्पीकास्त्रुत-क्षिप्रचलापिण्डीकपिङ्गलाद्या स्त्रीसंज्ञा: शेषा: पुन्नामान:।"

"शिवा, गोधा, कालका, राजपुत्री, भरद्वाज, बलाका, पोतकी, सूकरिका, पिप्पिका, स्त्रुत, क्षिप्रचला, पिण्डीक, पिंगला आदि स्त्री-संज्ञक तथा शेष पुरुष संज्ञक हैं।"

तथा भास: पक्षी। भषक: करायिका। कपिर्वानर:। श्रीकर्ण: पक्षी। धिक्करो मृगजाति:। श्येनो वाजिक:। एते दक्षिणा यातुर्दक्षिणभागगता: शुभा:। उक्तं च–

इसके साथ ही भासपक्षी, भषक अर्थात् करायिका पक्षी, अर्थात् बन्दर, श्रीकर्ण पक्षी, धिक्कर नामक मृग की एक जाति, श्येन अर्थात् बाज पक्षी, ये सभी यात्री के दक्षिण भाग में शुभ होते हैं। कहा भी गया है–

श्येनो रुरु: पूर्वकुट: कपिश्च

श्रीकर्णधिक्कारकपिप्पिकाजा:।

स्त्रीसंज्ञिता ये च शिखिद्विपौ च

याने हिता दक्षिणभागसंस्था:।।इति।।३८।।

श्येन, रुरु, पूर्वकूट, कपि, श्रीकर्ण, धिक्कारक, पिप्पिका, अजा तथा स्त्री संज्ञक जो शकुन हैं तथा मयूर एवं हाथी यात्री के दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।।३८।।

विशेष व्याख्या–

विवृति में शिखि, श्रीकण्ठ, पिप्पिका, रुरु की व्याख्या छूट गई है। श्लोकार्थ में मैंने इनको स्पष्ट कर दिया है।

अथान्येषामपि वामदक्षिणभागानां शुभाशुभफलमतिदिशन्नाह–

क्ष्वेडास्फोटितपुण्याहगीतशङ्खाम्बुनिःस्वनाः।

सतूर्याध्ययनाः पुंवत् स्त्रीवदन्या गिरः शुभाः।।३९।।

अन्य शकुनों के वाम-दक्षिण भाग का शुभाशुभत्व कहते हैं–

क्ष्वेडा अर्थात् ललकार, ताली बजाना, पुण्याह-वेदध्वनि, मङ्गल-गीत, शंख तथा जल से निकले शब्द, तूर्य (तुरहीवाद्य) और वेदाध्ययन के शब्द, ये सभी पुरुष शकुन के समान (वामस्थ) शुभ हैं। अन्य प्रकार के शब्द स्त्रीशकुन के समान (दक्षिण-भागस्थ) शुभ हैं।।३९।।

क्ष्वेडो मुखशब्दः, शोडनिकेति प्रसिद्धा। आस्फोटितं करशब्दः करास्फोटः, वक्षःस्थस्य बाहोर्द्वितीयहस्तेन ताडनम्। पुण्याहशब्दः प्रशस्तवादः। शङ्खः प्रसिद्ध एव। अम्बु जलम्। एषां सर्वेषां निःस्वनाः शब्दाः सतूर्याध्ययनाः, तूर्येण च सहिताः। अध्ययनशब्दा वेदानिर्घोषाः। एते सर्व एव पुंवयच्छुभाः। वामभागस्था इत्यर्थः। स्त्रीवदन्यः गिरः शुभाः। अन्याः सर्वा गिरो वाचः स्त्रीवच्छुभाः। माङ्गलिकवाचा दक्षिणभागस्थाः शुभा इत्यर्थः। उक्तं च–

क्ष्वेड अर्थात् मुख के शब्द जिसे शोडनिका कहा जाता है, आस्फोटित अर्थात् हाथ से बजाये गये शब्द, जो वक्ष पर स्थित हाथ पर दूसरे हाथ से ताडन द्वारा शब्द निकले, वह करास्फोट होता है। पुण्याह शब्द अर्थात् प्रशस्त (उत्तम) कथन, प्रसिद्ध शंख तथा जल की ध्वनि, इन सभी ध्वनियों के साथ तूर्य (तुरही) की ध्वनि और अध्ययन अर्थात् वेदध्वनि, ये सभी पुरुष शुकन के समान अर्थात् वाम भाग में शुभ हैं। अन्य शब्द स्त्री के समान अर्थात् अन्य सभी शब्द स्त्री शकुन के समान शुभ हैं। माङ्गलिक ध्वनियाँ दक्षिण-भाग में शुभ होती हैं। यह तात्पर्य है। कहा गया है–

आक्ष्वेडितस्फोटितशङ्खतूर्यपुण्याहगीतध्वनिगीतशब्दाः ।

वामाः प्रशस्ताः शुभदा नराणामाक्रन्दितो दक्षिणतः परेषाम् ।।इति।।३९।।

आक्ष्वेडित, स्फोटित, शंख, तूर्य, पुण्याह-वाचन, गीतध्वनि, गीतशब्द, ये वाम-भाग में शुभ होते हैं। अन्य शब्द यात्री के लिए दक्षिण-भाग में शुभ होते हैं।।३९।।

विशेष व्याख्या–

'क्ष्वेडा' शब्द मुख से की गई ध्वनि के लिए निर्दिष्ट है। अमरकोश १.९.९ में "क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्' तथा २.८.१०७ में "क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्यात्" तथा ३.३.४३ में "क्ष्वेडा वंशशलाकापि" कहा गया है। मेदिनी में–"क्ष्वेडो ध्वनौ कर्णामये विषे। क्ष्वेडा वंशशलाकायां सिंहनादे च योषिति" कहा गया है। मुख द्वारा जोर से निकले हुए शब्द का ही प्रकृत-प्रसंग में अभिप्राय है।

अधुना ग्रामस्वराणां शुभाशुभत्वमाह–

ग्रामौ मध्यमषड्जौ तु गान्धारश्चेति शोभनाः।
षड्जमध्यमगान्धारा ऋषभश्च स्वरा हिताः।।४०।।

गान-स्वरों का शुभाशुभत्व कहते हैं–

मध्यम, षड्ज और गान्धार ग्रामस्वर (संगीत के स्वर) शुभ होते हैं। इसी प्रकार षड्ज, मध्यम, गान्धार और ऋषभ स्वर हितकारक होते हैं।।४।।

विशेष–स्वरों के लिए परिशिष्ट द्रव्य है।

याने यात्रायां ग्रामौ मध्यषड्जौ तु शस्तौ शोभनौ। गान्धारश्चेति शोभन एव। इतिशब्दः प्रकारार्थः। स च गान्धारो देवेषु गीयते। मानुषेषु तथा षड्ज-मध्यमगान्धारा ऋषभश्चेति स्वराः शस्ताः। उक्तं च–

यात्रा काल में मध्यम एवं षड्ज ग्राम प्रशस्त है। गान्धार ग्राम (स्वर) भी शुभ हैं। 'इति' शब्द अन्य प्रकार का सूचक है। गान्धार-स्वर देवाराधन में गाया जाता है। षड्ज, मध्यम, गान्धार और ऋषभ स्वर मनुष्यों के लिए शुभ होते हैं। जैसा कि कहा गया है–

गान्धारषड्जऋषभः खलु मध्यमश्च
याने स्वराः शुभकरा न तु येऽवशेषाः।
ग्रामौ शुभावपि हि मध्यमषड्जसंज्ञौ
गान्धारगीतमपि भद्रमुशन्ति देवाः।।४०।।

गान्धार, षड्ज, ऋषभ और मध्यम स्वर यात्रा में शुभ होते हैं। शेष अन्य स्वर शुभ नहीं होते हैं। मध्यम एवं षडज् ग्राम (स्बर) होते हैं। गान्धार-गानस्वर को देवगण कल्याणकारक मानते हैं।।४०।।

अथान्यच्छुभाशुभशकुनमाह—

रुतकीर्तनदृष्टेषु भारद्वाजाजबर्हिणः।
धन्या नकुलचाषौ च सरटः पापदोऽग्रतः।।४१।।

अन्य शुभाशुभ शकुनों को कहते हैं–

भारद्वाज (भरदूल) पक्षी, बकरा और मयूर इनका शब्द करना, संस्मरण करना तथा दर्शन शुभ होता है। नकुल (नेवला) और चाख पक्षी भी शुभ होते हैं। सरट (सरगट) यात्रा काल में आगे पड़े तो शुभ नहीं होता है॥४१॥

भरद्वाज पक्षिविशेषः। लाटेति प्रसिद्धः। अजश्छागः। बर्हो मयूरः। एते सर्वे रुतेन शब्देन कीर्तनेन नामसङ्कीर्तनेन दृष्टेन दर्शनेन च धन्याः शुभाः। नकुलचाषौ, नकुलः प्राणी, चाषः पक्षिविशेषः। एतावपि च शब्दौ धन्यावेव रुतकीर्तनदृष्टेष्विति। सरटः प्राणी पक्षिभेदः। कृकलास इति केचित्। स चाग्रतः पुरतः पापदोऽनिष्ट-फलः।।४१।।

भरद्वाज नामक एक पक्षिविशेष है जिसे 'लाट' भी कहा जाता है, अज अर्थात् छाग (बकरा), बर्ह अर्थात् मयूर–ये सभी रुत अर्थात् शब्द (ध्वनि), कीर्तन अर्थात् नाम-चर्चा और प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा शुभ होते हैं। नकुल नामक प्राणी (नेवला) और चाष नामक पक्षी, ये दोनों शब्द, कीर्तन और दर्शन द्वारा शुभ होते हैं। सरट नामक प्राणी पक्षियों का एक भेद है और कुछ लोग इसको कृकलास (सरगट) कहते हैं, यह सामने आने पर पाप अर्थात् अनिष्टफल करने वाला होता है॥४१॥

अथान्यदप्याह—

जाहकाहिशशक्रोडगोधानां कीर्तनं शुभम्।
रुतं सन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः।।४२।।

और भी कहते हैं–

जाहक, सर्प, खरगोश, सूअर और गोधा (गोह) इन सभी का नाम-स्मरण करना शुभ है, परञ्च इनकी ध्वनि अथवा दर्शन शुभ नहीं होता है। वानर और ऋक्ष (भालू) इनका विपरीत फल कहा गया है॥४२॥

जाहकः प्राणी। अहिः सर्पः। शशः प्राणी। क्रोडः सूकरः। गोधा प्राणिविशेषः। एतेषां कीर्तनं नामग्रहणं शुभम्। एतेषामेव रुतं शब्दः सन्दर्शनमवलोकनं नेष्टमशुभम्। प्रतीपं वानरर्क्षयोः, वानरः, कपिः, ऋक्षः प्राणी। एतयो प्रतीपमेतद्विपरीतम्। एतयो रुतं सन्दर्शनमिष्टम्, न कीर्तनमित्यर्थः। उक्तं च—

जाहक नामक प्राणी, अहि अर्थात् साँप, क्रोड अर्थात् सूअर, गोधा नामक विशेष प्राणी (गोह), इनका कीर्तन अर्थात् नाम लेना शुभ होता है। इनका रुत अर्थात् शब्द और सन्दर्शन अर्थात् देखा जाना अशुभ होता है। वानर (कपि), ऋक्ष अर्थात् भालू इन दोनों का इससे विपरीत फल है। इन दोनों की बोली और दर्शन शुभ फल करता है, जबकि नाम लेना नेष्ट होता है। जैसा कि कहा गया है–

भारद्वाजजवन्तिचाषनकुलाः सङ्कीर्तनाद् दर्शनात्

क्रोशन्तश्च शुभप्रदा न सरटो दृष्टः शिवाय क्वचित्।

गोधासूकरजाहकाहिशशकाः पापा रुतालोकने

धन्यं कीर्तनमृक्षवानरकलं तद्व्यत्ययाच्छोभनम् ।।इति।।४२।।

भारद्वाज, जवन्ती, चाष, नकुल-इनका स्मरण, दर्शन और ध्वनि का श्रवण शुभ होता है। सरट किसी भी रूप में कल्याणकारी नहीं होता है। गोधा, सूअर, जाहक, सर्प, इनकी ध्वनि और दर्शन अशुभ होता है। इनका स्मरण शुभ है। ऋक्ष (भालू) और वानर का इसके विपरीत फल जानना चाहिए।।४२।।

अन्यदप्याह–

ओजाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः।

चाषः सनकुलो वामो भृगुराहापराह्णतः।।४३।।

और भी कहते हैं–

मृग, नकुल और अण्डज जीव, ओज अर्थात् विषम संख्या में हों, तथा दाहिनी ओर निकलें तो शुभ होते हैं। चाख पक्षी तथा नेरला वामभाग में गमन करें तो शुभ हैं। आचार्य भृगु ने कहा है कि ये वामभाग में अपराह्ण के बाद गमन करें तभी शुभ हैं।।४३।।

मृगा हरिणाः। सनकुलाण्डजा नकुलाः प्राणिनः अण्डजाः पक्षिणः। ते चोजा विषमसङ्ख्याः। एकस्त्रयः, पञ्च, सप्त, नव इत्यादि। प्रादक्षिण्येन शस्ताः शुभाः। यातुर्वामपार्श्वादग्रत आगत्य प्रदक्षिणेन पार्श्वेन क्रामति यत् तत् प्रदक्षिणं सव्यं च। एतद्विपरीतं दक्षिणपार्श्वाद्वामपार्श्वगमनं यत् तदपसव्यम्। एतत्सर्वं शाकुने विज्ञेयम्। यस्मादाचार्य एव ज्ञापकः–

मृग अर्थात् हरिण, नकुल-प्राणी और अण्डज अर्थात् पक्षी, ये सभी विषम संख्या में १, ३, ५, ७, ९ आदि की संख्या में प्रदक्षिण होने पर शुभ होते हैं। यात्री के बाँए भाग से सामने आकर दक्षिणभाग में चले जायें तो उसे प्रदक्षिणगमन अथवा सव्य-गमन कहा जाता है। इसके विपरीत दक्षिणभाग से आकर वामभाग में जाने को

अपसव्य-गमन कहा जाता है। इन सभी का विशेष ज्ञान शकुन विचार में करना चाहिए। जैसा आचार्य वराहमिहिर ने (८५/२९) सूचित किया है–

[1]ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः।

कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्।।इति।

पूर्व एवं अग्निकोण के मध्य तीन भागों में प्रदक्षिण क्रम से क्रमशः कोषाध्यक्ष, अग्निजीवी और तपस्वीजन व्यवस्थित रहते हैं।

चाषः सनकुलो वाम इति। चाषः सनकुलो नकुलेन सहितो वामो वाम-भागगतो धन्यः। भृगुराहापराह्णतः, भृगुर्नाम मुनिरेवमाहोक्तवान्। यथाऽपराह्णतोऽपराह्णात् परतो वामगौ धन्यौ, न पूर्वाह्णे।। तथा भृगुः–

नकुल सहित चाष वामभाग में जाने पर शुभ है। भृगुनामक मुनि ने कहा है कि अपराह्न (दोपहर बाद) के पश्चात् वामभाग में उक्त दोनों का गमन शुभ होता है, पूर्वाह्न में नहीं। जैसा कि भृगु का वाक्य है–

वामगौ चाषनुकलावपराह्णे शुभप्रदौ।

श्वशृगालयोरिदं व्यत्यासेन फलं प्रशस्यते। चाषो नकुलश्च वामगो दिवसार्धात् परतः शुभप्रदः।।४३।।

"अपराह्न में वामभागगत चाख और नकुल शुभ प्रदायक होते हैं।"

कुत्ते और सियार का इसके विपरीत क्रम से गमन शुभ हैं। अर्थात् पूर्वाह्न में वामभाग में गमन शुभ है। चाख, नकुल दिनार्ध के बाद वामभाग में गमन करें तो शुभ हैं।।४३।।

अथान्येषामप्याह–

छिक्करः कूटपूरी च पिरिली चाह्नि दक्षिणाः।

अपसव्याः सदा शस्ता दंष्ट्रिणः सबिलेशयाः।।४४।।

अन्य प्राणियों के लिए भी कहते हैं–

छिक्कर, कूटपूरी और पिरली ये दिन में, दक्षिण भाग में गमन करें तो शुभ हैं। दन्तुल और बील में रहने वाले जीव सदैव अपसव्य अर्थात् वामभाग में जाने पर शुभ होते हैं।।४४।।

---

१. अस्यैवाध्यायस्य २९ श्लोकः।

छिक्करः शृगालः, कूटपूरी करायिका, पिरिली पक्षिविशेषः, तेऽह्नि दिवसे दक्षिणाः शस्ताः। दंष्ट्रिणो वराहादयः। बिले शेरते ते बिलेशयाः श्वाविद्नकुलादयः। दंष्ट्रिणो बिलेशयैः सह अपसव्या वामभागगताः शस्ता शोभना।।४४।।

छिक्कर अर्थात् सियार, कूटपूरी अर्थात् करायिका तथा पिरिली नामक पक्षी, ये सभी दिन में दक्षिण-गत होने पर शुभ होते हैं। दंष्ट्री अर्थात् दाँतों वाले सूअर आदि पशु तथा विलेशय अर्थात् बिल में शयन करने वाले कुत्ते, नेवले ये सभी अपसव्य अर्थात् वामभाग में गमन करें तो शस्त अर्थात् शुभ होते हैं।।४४।।

अधुना दिग्वशेन शाकुनानां शुभाशुभमाह—

श्रेष्ठे हयसिते प्राच्यां शवमांसे च दक्षिणे।
कन्यकादधिनी पश्चादुदग्गोविप्रसाधवः।।४५।।

दिशा के अनुसार शकुनों के शुभाशुभ को कहते हैं–

अश्व और श्वेत पदार्थ पूर्व दिशा में प्रशस्त होते हैं। शव और मांस दक्षिण दिशा में शुभ हैं। कन्या, दधि पश्चिमदिशा में तथा गाय, ब्राह्मण एवं साधु-जन उत्तर दिशा में शुभ होते हैं।।४५।।

हयोऽश्वः। सितः श्वेतवर्णो यः कश्चिद्वस्तुरूपः। एते प्राच्यां पूर्वदिशि यातुः श्रेष्ठे शोभने। शवो मृतपुरुषः। मांसमामिषम्। एते दक्षिणे दक्षिणस्यां दिशि शुभे। कन्यका कुमारी। दधि क्षीरविकारः। एते पश्चिमे पश्चिमायां दिशि शोभने। गौः प्रसिद्धा। विप्रो ब्राह्मणः। साधुः सज्जनः। एत उदग् उत्तरस्यां दिशि शोभनाः। उक्तं च—

अश्व अर्थात् घोड़ा तथा जो कुछ भी श्वेत वर्ण की वस्तु हो, वह पूरब दिशा में हो, तब यात्रा करने वाले के लिए श्रेष्ठ अर्थात् शुभ होते हैं। शव अर्थात् मृतक एवं मांस अर्थात् आमिष, ये दक्षिण दिशा में शुभ होते हैं। कुमारी कन्या एवं दही (दुग्ध से निर्मित), ये पश्चिम दिशा में शुभ होते हैं। विप्र अर्थात् ब्राह्मण, साधु अर्थात् सज्जन पुरुष, गाय (प्रसिद्ध पशु) ये सभी उत्तर दिशा में शुभ होते हैं। जैसा कि कहा गया है–

द्रव्याणि श्वेतानि तुरङ्गमश्च
पूर्वेण याम्येन शवं समांसम्।
पश्चात् कुमारी दधि चाति-शस्तं

सौम्येन गोब्राह्मणसाधवश्च।।इति।।४५।।

श्वेत-द्रव्य और घोड़े पूर्व दिशा में तथा मृतक एवं मांस दक्षिण दिशा में और पश्चिम दिशा में कुमारी कन्या तथा दही शुभ है। गो-ब्राह्मण और साधु उत्तर दिग्गत शुभ होते हैं।।४५।।

अथाशुभानाह–

जालश्वचरणौ नेष्टौ प्राग्याम्यौ शस्त्रघातकौ।

पश्चादासवषण्ढौ च खलासनहलान्युदक्।।४६।।

अशुभ शकुनों को कहते हैं–

पूर्व दिशा में जाल तथा कुत्ते की सहायता से कार्य करने वाले (शिकारी) शुभ नहीं होते हैं। दक्षिण दिशा में शस्त्र तथा वधिक शुभ नहीं है। पश्चिम दिशा में मदिरा एवं नपुंसक अशुभ हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशा में दुर्जन, आसन, हल शुभ नहीं होते हैं।।४६।।

जालः प्रसिद्धः। सूत्रतन्तुविरचितो जालः पक्षिणो यत्र बध्यन्ते। जालेन चरति शुना चरतीति जालश्वचरणौ। एतौ प्राक् पूर्वस्या दिशि नेष्टावशुभौ। शस्त्रमायुधवर्जितमन्यद्यत् किञ्चित्। घातको बधिकः। एतौ याम्यायां दक्षिणस्यां दिशि न शुभौ। आसवः पानविशेषः। षण्ढः क्लीबः। एतौ पश्चात् पश्चिमायां दिशि न शुभौ। खलो दुर्जनः। आसनं प्रसिद्धम्। पर्यङ्कादि। हलं लाङ्गलम्। एतान्युदगुत्तरस्यां दिशि न शोभनानि। उक्तं च–

जाल अर्थात् सूत के धागों से विनिर्मित पक्षियों को पकड़ने का तन्तुपट, जाल से आजीविका चलाने वाले तथा शून (कुत्ते) के द्वारा आजीविका हेतु विचरण करने वाला, दोनों प्रकार के व्यक्ति पूर्वदिशा में शुभ नहीं होते हैं। शस्त्र अर्थात् आयुधरहित अर्थात् अन्य प्रकार के मारकशस्त्र वाले तथा घात करने वाले व्यक्ति दक्षिणदिशा में शुभ नहीं होते हैं। आसव अर्थात् विशेष प्रकार का पेय-पदार्थ और षण्ढ अर्थात् नपुंसक, ये पश्चिमदिशा में शुभ नहीं होते हैं। खल अर्थात् दुष्ट, पलङ्गादि आसन, हल अर्थात् लाङ्गल,, ये सभी उत्तर-दिशा में शुभ नहीं होते हैं। जैसा कि कहा गया है–

जालकरश्वकरौ न शुभौ प्राग् घातकशस्त्रकरौ यमदिक्स्थौ।

षण्ढकमद्यकरावपि पश्चादासनशीरखलैः सह चोदक्।।इति।।४६।।

जाल और कुत्तों से सम्बन्धित व्यक्ति, पूर्वदिशा में शुभ नहीं होता है। घातक तथा शस्त्रधारी दक्षिणदिशा में शुभ नहीं हैं। षण्ढ और मद्यकर पश्चिम-दिशा में शुभ

नहीं हैं। आसन, हल और खलजन उत्तरदिशा में अशुभ होते हैं।।४६।।

अधुना कर्मादौ शकुनानां विशेषमाह–

कर्मसङ्गमयुद्धेषु प्रवेशे नष्टमार्गणे।
यानव्यस्तगता ग्राह्या विशेषश्चात्र वक्ष्यते।।४७।।

कर्मानुसार शकुनों की विशेषता कहते हैं–

कोई भी कर्म, सङ्गम (मिलन), युद्ध, प्रवेश और नष्टवस्तु के अन्वेषण में यात्राकालिक शकुनों से विपरीत शकुनों का ग्रहण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में विशेष विचार आगे किया जायेगा।।४७।।

कर्म यत् किञ्चित् क्रियते। सङ्गमः केनचिद्वृद्धादिना सह संयोगः। युद्धः संग्रामम्। एतेषु। तथा प्रवेशे गृहप्रवेशादौ। नष्टमार्गणे नष्टस्यापहृतस्य वस्तुनो मार्गणेऽन्वेषणे। एतेषु सर्वेषु यानव्यस्तगता ग्राह्याः। याने यात्रायां येन प्रकारेणोक्तास्तद्व्यत्ययेनैतेषु ग्राह्याः। एतदुक्तं भवति–यात्रायां ये दक्षिणे शस्तास्तेऽत्र वामतः। यात्रायां वामतस्तेऽत्र दक्षिणतः। यात्रायां ये च पुरस्तात् तेऽत्र पृष्ठतः। यात्रायां ये च पृष्ठतस्तेऽत्राग्रत इति। दिक्ष्वप्येवमेव विपर्यया विज्ञातव्याः। तेन यात्रायां ये पूर्वस्यां दिशि तेऽत्र पश्चिमायाम्। ये च पश्चिमायां ते च पूर्वस्याम्। ये च दक्षिणास्यां त उत्तरस्याम्। य उत्तरस्यां ते दक्षिणस्यामिति। अत्रास्मिन्नर्थे कर्मसङ्गमादिके यो विशेषः स वक्ष्यते कथयिष्यते। उक्तं च–

कर्म अर्थात् जो कुछ भी किया जाता है, सङ्गम अर्थात् किसी वृद्धादि व्यक्ति से संयोग, युद्ध अर्थात् संग्राम, इन सभी में तथा गृह-प्रवेश इत्यादि में और नष्ट वस्तु के अन्वेषण में, यात्रा के विपरीत शकुन का ग्रहण करना चाहिए। यान अर्थात् यात्रा के लिए जिस प्रकार से शकुनों का विचार किया गया है, उसके विपरीत इन कार्यों में ग्रहण करना अभीष्ट है। इसका अभिप्राय यह है कि यात्रा काल में जो शकुन दक्षिण दिशा में प्रशस्त होते हैं, वे यहाँ पर वाम-दिशा में ग्राह्य हैं। इसी प्रकार यात्रा में वामभाग के शकुन यहाँ पर दक्षिणदिशा में शुभ होते हैं। यात्रा में जो आगे शुभ हैं, वे यहाँ पर पृष्ठभाग में तथा पृष्ठभाग वाले अग्रभाग में शुभ माने जाते हैं। दिशाओं में भी इसी प्रकार से विपरीत क्रम समझना चाहिए। यात्रा में जो शकुन पूर्वदिशा में ग्राह्य है, वह यहाँ पर पश्चिम-दिशा में जानना चाहिए। जो पश्चिमदिशा में शकुन अनुकूल होते हैं, उनको पूर्व-दिशा में और दक्षिण के शकुन को उत्तरदिशा में तथा उत्तर दिशा के शकुन को दक्षिणदिशा में शुभ कहा गया है। इस कर्मानुसार शकुन का

विवेचन आगे किया जायेगा। जैसा कि कहा गया है–

नष्टावलोकनसमागमयुद्धकर्म–
वेश्मप्रवेशमनुजेश्वरदर्शनेषु।
वृद्धागमेषु शुभकर्मषु चैव नित्यं
यानप्रतीपविधिना शुभदा भवन्ति।।इति।।४७।।

नष्टवस्तु का अन्वेषण, समागम, युद्ध, गृह-प्रवेश तथा राजा का दर्शन इत्यादि कर्म, यात्रा में ग्राह्यशकुनों से विपरीत होकर शुभदायक होते हैं।।४७।।

अथात्रैव विशेषमाह–

दिवा प्रस्थानवद्ग्राह्याः कुरङ्गरुरुवानराः।
अह्नश्च प्रथमे भागे चाषवञ्जुलकुक्कुटाः।।४८।।
पश्चिमे शर्वरीभागे नप्तृकोलूकपिङ्गलाः।
सर्व एव विपर्यस्ता ग्राह्याः सार्थेषु योषिताम्।।४९।।

यहाँ पर विशेष विचार करते हैं–

दिन में मृग, रुरु और वानर को यात्रा के समान ही ग्रहण करना चाहिए। दिन के प्रथमभाग में चाष, वञ्जुल और कुक्कुट (मुर्गा) का ग्रहण करना चाहिए। रात्रि के उत्तरार्द्ध भाग में नप्तृका, उलूका और पिङ्गला इन सभी पक्षियों को यात्रानुसार ही ग्रहण करना चाहिए। स्त्री यात्री के लिए सभी शकुनों को विपरीत क्रम में ग्रहण करना चाहिए।।४८-४९।।

दिवा प्रस्थानवदिति। कर्मादिषु दिवा दिवसे। कुरङ्गरुरुवानराः, कुरङ्गो हरिणः, रुरुर्मृगजातिः, वानरः कपिः, एते प्रस्थानवद् ग्राह्याः। यथा प्रस्थाने यात्रायां गृह्यते तथात्रापि। अह्नो दिवसस्य प्रथमे भाग चाषवञ्जुलकुक्कुटाः सर्व एते पक्षिणः प्रस्थानवद् ग्राह्यः।।४८।।

कर्मादि के लिए दिन में कुरङ्ग अर्थात् हरिण, रुरु नामक मृग-जाति, वानर अर्थात् कपि; इनको प्रस्थान के समान ही ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार प्रस्थान अर्थात् यात्रा काल में इन शकुनों का शुभाशुभ विचार किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ पर कर्मादि में भी ग्रहण करना चाहिए। दिन के प्रथम-भाग में चाष, वञ्जुल और कुक्कुट; इन सभी पक्षियों का प्रस्थान के समान ही शकुन विचार ग्राह्य है।।४८।।

शर्वरी रात्रिः, तस्याः पश्चिमेऽन्त्ये भागे। नप्तृका उलूका पिङ्गला एते सर्व एव पक्षिणः। पिङ्गलोलूकचेटिका, एते प्रस्थानवद् ग्राह्याः। योषितां स्त्रीणां

केवलानां सर्वेषु सर्व एव विपर्यस्ता विपरीतगता ग्राह्याः। यात्रायां कर्मसङ्गमादिष्वपि सर्वत्र विपरीता ग्राह्या इति।।४९।।

शर्वरी अर्थात् रात्रि के पश्चिम अर्थात् अन्तिम भाग में नप्तृका, उलूका और पिङ्गला ये सभी पक्षी "पिङ्गलालोलूकचेटिका" के यात्राकाल में कथित फल के समान ही फल ग्राह्य हैं। केवल स्त्रियों के यात्राकाल में सभी शकुनों का विपरीत फल ग्रहण करना चाहिए। यात्रा में तथा कर्मसंयोगादि में भी विपरीत फल ग्रहण करना चाहिए।।४९।।

अन्यदप्याह—

नृपसन्दर्शने ग्राह्यः प्रवेशेऽपि प्रयाणवत्।
गिर्यरण्यप्रवेशेषु नदीनां चावगाहने।।५०।।
वामदक्षिणगौ शस्तौ यौ तु तावग्रपृष्ठगौ।

और भी कहते हैं—

राजदर्शन और प्रवेश में भी यात्रा के समान ही शकुन का ग्रहण करें। पर्वत तथा वन-प्रवेश में और तीर्थस्नान में, जो शकुन यात्राकाल में वाम तथा दक्षिण-भाग में प्रशस्त होते हैं, उनको यहाँ पर अग्रभाग एवं पृष्ठप्रवेश में शुभ मानना चाहिए।।५०।।

नृपो राजा तस्य सन्दर्शनेऽवलोकने। यद्यपि प्रवेशो राजगृहे भवति, तथापि प्रयाणवद् ग्राह्यः। एवं यद्यपि प्रवेशस्तथापि तस्मिन् प्रयाणवद् ग्राह्यः। उक्तं च—

नृप अर्थात् राजा के दर्शन का विचार किया जा रहा है। यद्यपि राजगृह में प्रवेश होता है, तथापि यात्रानुसार ही शकुन का ग्रहण करें। यहाँ पर जो प्रवेश होता है इसमें प्रयाण के समान ही विचार करें। जैसा कि कहा गया है—

केचिज्जगुर्गमनवन्नृपदर्शनेषु....इति।

गिरिप्रिवेशे पर्वतप्रवेशे। अरण्यप्रवेशे अटव्याम्। नदीनां सरितामेवावगाहने उत्तरणे।।५०।।

कुछ विद्वानों के अनुसार यात्रा के समान ही राजदर्शन का भी निर्देश किया गया है।

गिरि अर्थात् पर्वतीय क्षेत्र में प्रवेश करते समय, अरण्य प्रदेश अर्थात् वन में प्रवेश करते समय, नदियों को पार करते समय, जो शकुन यात्राकाल में वाम तथा दक्षिणभाग में प्रशस्त कहे गये हैं, वे यहाँ पर प्रवेशदिशा से अग्रदिशा तथा पृष्ठदिशा में प्रशस्त होते हैं। यात्रा में जो शकुन वामदिशा में शुभ होते हैं, वे यहाँ पर

सम्मुखदिशा में और जो यात्रा में दक्षिणदिशा में ग्राह्य हैं, उनको यहाँ पर पीछे की दिशा में ग्रहण करना चाहिए।।५०।।

यौ शकुनौ यात्रायां वामदक्षिणगौ शस्तौ तावग्रपृष्ठगाविति प्रवेशादिशि सस्तौ। यात्रायां ये वामतः शस्तास्तेऽत्राग्रतः पुरतः। यात्रायां ये दक्षिणतस्तेऽत्र पृष्ठत इति।

अथान्येष्वाह–

क्रियादीप्तौ विनाशाय यातुः परिघसंज्ञितौ।।५१।।

तावेव तु याथाभागं प्रशान्तरुतचेष्टितौ।

शकुनौ शकुनद्वारसंज्ञितावर्थसिद्धये।।५२।।

अन्य भी कहते हैं–

यात्री के दोनों तरफ यदि क्रिया-दीप्त शकुन हों तो यात्री का विनाश होता है। वे यदि प्रशान्त-ध्वनि और चेष्टा वाले हों, तब उस शकुन की 'शकुन-द्वार' संज्ञा होती है, जो कि उद्देश्यों को सिद्ध करने वाली है।।५१-५२।।

क्रियादीप्तस्य लक्षणं प्रागुक्तम्–"१क्रियादीप्तो गतस्थानभावस्वर-विचेष्टितैः" इति। क्रियादीप्तौ शकुनौ यातुर्जिगमिषोर्यदि परिघसंस्थितौ उभयपार्श्वस्थितौ भवतस्तदा विनाशाय यातुरेव भवतस्तावेव शकुनौ परिधसंज्ञितौ।।५१।।

क्रिया-दीप्त का लक्षण श्लोक १५ में कहा जा चुका है–"गतस्थान-भावस्वरविचेष्टितैः" इत्यादि। इस प्रकार के क्रिया-दीप्त शकुन यदि यात्री के परिघ में अर्थात् दोनों पार्श्व-भाग में स्थित हों, तब यात्रिक के विनाश के लिए ये परिघ नामक शकुन हैं।।५१।।

यथाभागं यथास्थितौ भवतः। यः शकुनो दक्षिणस्थितः स च तत्रैव शुभः, यश्च वामभागस्थः स च वामभाग एव शुभः। तौ च प्रशान्तरुतचेष्टितौ, प्रशान्तं रुतं शब्दश्चेष्टितं च यतोस्तौ तथाभूतौ शकुनौ शकुनानां शुभानामर्थानां द्वारसंज्ञितौ मार्गभूत वर्थानां च सिद्धये भवतः।।५२।।

जो शकुन दक्षिणभाग में हो, वह उसी भाग में शुभ और जो वामभाग में स्थित हो वह वामभाग में ही शुभ होता है। वे दोनों प्रशान्तरुत अर्थात् शान्त-ध्वनि तथा

---

१. अस्यैवाध्यायस्य १५ श्लोकः।

चेष्टा वाले हों, तब इस प्रकार के शकुन शुभ अर्थों के द्वार अर्थात् शुभ-मार्ग हीं समझें जाते हैं, जिनसे वाञ्छित अर्थ की सिद्धि होती है।।५२।।

अधुना मतान्तरेण शकुनद्वारमाह—

केचित् तु शकुनद्वारमिच्छन्त्युभयतः स्थितैः।
शकुनैरेकजातीयैः शान्तचेष्टाविराविभिः।।५३।।

अब मतान्तर से शकुन-द्वार बतलाते हैं—

कुछ आचार्यों का अभिमत है कि एक जाति के ही शकुन दोनों भाग में स्थित हों तथा शान्तचेष्टा एवं शान्त ध्वनि वाले हों, तब वे शकुन-द्वार हैं।।५३।।

चेष्टालक्षणं वक्ष्यति—"[१]तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टादीप्ता यथाक्रमम्।" एवं शान्तचेष्टा विरावः शब्दश्च येषां तैः शकुनैरेकजातीयैरेकयोन्युद्भवैरुभयतः स्थितैः पार्श्वद्वयगतैः केचित् शकुनद्वारमिच्छन्ति कथयन्ति। तथा च नन्दिः—

चेष्टा का लक्षण अग्रिम श्लोक सं ५८ में—"तिथिवार्य्वक" इत्यादि के द्वारा कहा गया है। इस प्रकार शान्तचेष्टा और विराव अर्थात् ध्वनि जिन शकुनों के हों, तथा वे शकुन एक जातीय अर्थात् एक ही जाति के दोनों तरफ अर्थात् दोनों पार्श्व (वाम-दक्षिण) में स्थित हों, तब कुछ विद्वान् इसको शकुन-द्वार कहते हैं। आचार्य नन्दि ने जैसा कि कहा है—

एकयोन्युद्भवैः शान्तैः शान्तचेष्टैर्व्यवस्थितैः।
यथाभागगतैस्थैश्च शकुनद्वारमिष्यते।।इति।।५३।।

एक ही जाति का शकुन यदि अन्य भाग में भी शान्त-चेष्टा और शान्त-ध्वनि के साथ स्थित हो, तब दोनों भाग में स्थित होने के कारण उसको शकुन-द्वार कहा जाता है।।५३।।

अन्यदप्याह—

विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति।
स विरोधोऽशुभो यातुर्ग्राह्यो यो बलवत्तरः।।५४।।

और भी कहते हैं—

यदि एक शकुन यात्रा के लिए शुभ-सूचक हो और दूसरा शकुन अशुभ-सूचक (निषेधपरक) हो, तब इस स्थिति को अशुभ जानना चाहिए। इन दोनों में जो शकुन बली हो, उसी का फल ग्रहण करना चाहिए।।५४।।

---

१. अस्यैवाध्यायस्य ५८ श्लोकः।

एकः शकुनो यदि विसर्जयति यश्चात्र सिद्धिमाचष्टे। एकश्चान्यः प्रतिषेधति विरोधमाचष्टे स च यातुर्गच्छतो विरोधसंज्ञः, अशुभश्च, अथवा तयोर्द्वयोर्बलवत्तरोऽतिशयेन बली स ग्राह्यः। बलं च प्रागेवोक्तम्–"१जवजातिबलस्थानम्" इति।।५४।।

एक शकुन यदि विसर्जित करता है अर्थात् जो यात्रा में सफलता का संकेत देता है और एक अन्य दूसरा शकुन प्रतिषेध विरोध व्यक्त करता है तो वह यात्रा करने वाले का विरोधी जानना चाहिए। अर्थात् वह शकुन अशुभ होता है। अथवा उन दोनों में जो बलवत्तर अर्थात् अत्यधिक बली हो, वही ग्राह्य होगा। बल के सम्बन्ध में पहले ही श्लोक संख्या १९ में "गति, जाति, बल, स्थान इत्यादि" के द्वारा कहा जा चुका है।।५४।।

अन्यदप्याह–

पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा पुनः प्रास्थानिको भवेत्।
सुखेन सिद्धिमाचष्टे प्रवेशे तद्विपर्ययात्।।५५।।

और भी कहते हैं–

सर्वप्रथम प्रावेशिक-शकुन होने के पश्चात् पुनः प्रास्थानिक-शकुन हो तब सुख पूर्वक यात्रा की सिद्धि होती है। प्रवेश काल में इससे विपरीत शकुन को शुभ कहा गया है।।५।।

पूर्वं प्रथमं शकुनः प्रावेशिको भूत्वा पुनः पश्चात् प्रास्थानिकः प्रायाणिको यदि भवति, प्रयाणे यद्धितं तत् करोति। प्रवेशे नष्टमार्गणे यानव्यस्तगतो ग्राह्य इत। एवमादौ प्रावेशिकः। तदा स शकुनः सुखेनाक्लेशेन यातुः सिद्धिमाचष्टे कथयति। प्रवेशे तद्विपर्ययात्। प्रवेशो यात्रायां निर्वर्त्य स्वगृहे याता प्रविशति, तस्मिन् प्रवेशे तद्विपर्ययादुक्तविपर्ययाद् ग्राह्यः। पूर्वं प्रायाणिकः पश्चात् प्रावेशिको यदि भवति, तदा सुखेन सिद्धिमाचष्ट इति।।५५।।

पहले यदि प्रावेशिक शकुन हो और पुनः उसके पश्चात् प्रास्थानिक अर्थात् प्रयाणकालिक शकुन होता है तब प्रयाणकाल में यह कल्याण करता है। प्रवेशकाल में, नष्टवस्तु के अन्वेषण में यान की व्यस्तता (विपरीत) का ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार पहले प्रावेशिक शकुन होता है तब वह शकुन सुखपूर्वक कष्ट रहित यात्रा की सिद्धि को व्यक्त करता है। प्रवेशकाल में इससे विपरीत समझना चाहिए।

---

१. अस्यैवाध्यायस्य १९ श्लोकः।

यात्रा से निर्वृत्त होकर अपने गृह में जब यात्री प्रवेश करता है, उस प्रवेश के समय कथित शकुन के विपरीत फल ग्रहण करना चाहिए। प्रथम प्रायाणिक शकुन तत्पश्चात् प्रवेश-कालिक शकुन हो तब सुख-पूर्वक यात्रा की सिद्धि कही गयी है।।५५।।

अथान्यदप्याह–

विसर्ज्य शकुनः पूर्वं स एव निरुणद्धि चेत्।
प्राह यातुररेर्मृत्युं डमरं रोगमेव वा।।५६।।

और भी कहते हैं–

पहले यात्रारम्भ के शुभ-शकुन के पश्चात् निरोधक (अशुभ) शकुन हों, तब यात्रिक के लिए शत्रु से मृत्यु, शस्त्र-प्रहार अथवा रोग होना बतलाया गया है।।५६।।

शकुनः प्रथमं पूर्वं विसर्ज्य यात्रायां शुभचेष्टितं कृत्वा स एव पुनर्यदि निरुणद्धि यात्रां प्रतिषेधयति, तदा यातुर्गच्छतः, अरेः शत्रोः सकाशान्मृत्युं मरणं प्राह कथयति। अथवा डमरं शस्त्रकलहं रोगमेव वा कथयति।।५६।।

जो शकुन पहले विसर्जन का अर्थात् यात्रा के निमित्त शुभता का संकेत करे और वही बाद में यदि यात्रा के निषेध को सूचित करता है तब यात्री के लिए शत्रु द्वारा मृत्यु को सूचित करता है। अथवा डमर अर्थात् सशस्त्र विरोध अथवा रोग उत्पन्न होने का संकेत करता है।।५६।।

अथान्यदप्याह–

अपसव्यास्तु शकुना दीप्ता भयनिवेदिनः।
आरम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तस्तद्भयङ्करः।।५७।।

और भी कहते हैं–

अपसब्य (वाम-भागस्थ) शकुन यदि दीप्त हों, तो भय की सूचना देते हैं। कार्यारम्भ में ही यदि दीप्त शकुन हो, तब वर्ष के मध्य में भय उत्पन्न होता है।।५७।।

अपसव्या अप्रदक्षिणाः शकुनास्ते च दीप्तदिक्स्थाः सूर्याभिमुखं भय-निवेदिनो भयं निवेदयन्ति कथयन्ति। आरम्भे कार्यप्रारम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तर्वर्षमध्ये तद्भयङ्करः। तस्मिन्नेव कार्ये तद्भयं करोति।।५७।।

अपसव्य अर्थात् प्रदक्षिणा से भिन्न (वामभाग) भाग के शकुन हों और वे दीप्त-दिशा अर्थात् सूर्याभिमुख हों, तब भय का निवेदन अर्थात् कथन करते हैं। कार्य के

प्रारम्भ में दीप्त-शकुन हो, तब वर्षान्त अर्थात् वर्ष के मध्य काल में वह भयकारी है, अर्थात् उस आरम्भ किये गये कार्य में भय (विघ्न) उपस्थित करता है।।५७।।

अधुना चेष्टादीप्तस्य लक्षणं तत्फलं चाह—

तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टादीप्ता यथाक्रमम्।
धनसैन्यबलाङ्गेष्टकर्मणां स्युर्भयङ्कराः।।५८।।

अब चेष्टित और दीप्त के लक्षण तथा फल कहते हैं—

तिथि, वायु, अर्क, नक्षत्र, स्थान और चेष्टा से दीप्त होकर क्रमशः धन, सैन्य, बल, अंग, इष्ट और कर्म के लिए भय-प्रदायक होते हैं।।५८।।

तिथिदीप्तः। वायुदीप्तः। अर्कदीप्तः। नक्षत्रदीप्तः। स्थानदीप्तः। चेष्टादीप्तः। एतेषां लक्षणं प्रागेवोक्तम्। कस्यचिद्विघातं कर्तुमिच्छुः। एवंविधा दीप्ताः। यथाक्रमं धनसैन्यबलाङ्गेष्टकर्मणां भयङ्कराः स्युर्भवेयुः। तद्यथा—तिथिदीप्तः शकुनो धनभयं करोति। वायुदीप्तः सैन्यस्य। अर्कदीप्तो बलस्य। नक्षत्रदीप्तोऽङ्गस्य शरीरावयवस्य। स्थानदीप्त इष्टस्याभिप्रेतस्य बल्लभस्य वा। चेष्टादीप्तः कर्मणः।।५८।।

तिथि-दीप्त, वायुदीप्त, अर्कदीप्त, नक्षत्रदीप्त, स्थानदीप्त और चेष्टादीप्त, इनके लक्षण पूर्व में ही कहे जा चुके हैं। इस प्रकार के ये दीप्त शकुन किस वस्तु का घात करते हैं, इसका विचार इस प्रकार है। ये क्रमशः धन, सैन्य, बल, अंग, इष्ट और कर्म के लिये भयकारक होते हैं। यथा—तिथि-दीप्त, शकुन धन का भय करता है, वायु-दीप्त सेना का, अर्क-दीप्त बल (शक्ति) का, नक्षत्र-दीप्त अंग अर्थात् शरीर के अंगों का, स्थान-दीप्त इष्ट अर्थात् अभीष्ट कार्य अथवा स्वजन का और चेष्टा-दीप्त कर्म (कार्य) का भय करता है।।५८।।

अन्यदप्याह—

जीमूतध्वनिदीप्तेषु भयं भवति मारुतात्।
उभयोः सन्ध्ययोर्दीप्ताः शस्त्रोद्भवभयङ्कराः।।५९।।

और भी कहते हैं—

मेघ की गर्जना से दीप्त शकुन के द्वारा वायु-भय होता है। प्रातः एवं सायं की दोनों सन्ध्याओं में होने वाले दीप्तशकुन, शस्त्र सम्बन्धित भय के कारक होते हैं।।५९।।

जीमूतो मेघः। जीमूतध्वनिना मेघशब्देन दीप्तेषु शकुनेषु मारुताद्वायोर्भयं

भवति। उभयोर्द्वयोः सन्ध्ययोः सूर्योदयास्तमययोर्दीप्ताः शकुनाः शस्त्रोद्भवं शस्त्रसमुत्थं भयं कुर्वन्ति।।५९।।

जीमूत को मेघ (बादल) कहते हैं। जीमूत की ध्वनि अर्थात् मेघ के शब्द (बादल के गर्जन) से दीप्त शकुन हो, तब मारुत अर्थात् वायु का भय होता है। दोनों सन्ध्या अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में दीप्तशकुन शस्त्र से समुत्पन्न भय को उत्पन्न करते हैं।।५९।।

अथान्यदप्याह—

चितिकेशकपालेषु मृत्युबन्धवधप्रदाः।
कण्टकीकाष्ठभस्मस्थाः कलहायासदुःखदाः।।६०।।
अप्रसिद्धिं भयं वापि निःसाराश्मव्यवस्थिताः।
कुर्वन्ति शकुना दीप्ताः शान्ता याप्यफलास्तु ते।।६१।।

और भी कहते हैं–

चिता, केश और कपाल पर स्थित शकुन क्रमशः मृत्यु, बन्ध और मरण प्रदायक हैं। काँटा, काष्ठ और भस्म पर स्थित शकुन क्रमशः कलह, श्रम और दुःख देते हैं।।६०।।

निःसार (खोखले) वस्तु और पत्थर पर स्थित शकुन अकीर्ति और भयदायक हैं। ये सभी फल दीप्त शकुन के हैं। यदि शान्त शकुन हो तो तब इनका फल किञ्चित् (न्यून) होता है।।६१।।

चितिकेशकपालेष्विति। चितौ शवदाहाग्निसमीपे मृत्यु मरणं ददाति। केशेषु मूर्धजेषु स्थितो बन्धं ददाति। कपालेऽस्थिशकले स्थितो वधं मरणं तथा कण्टकीवृक्षे स्थितः शकुनः कलहं ददाति। काष्ठे स्थितः आयासमुपद्रवं ददाति। भस्मानि स्थितो दुःखम्।।६०।।

चिता अर्थात् शव-दाह की अग्नि के पास के शकुन से मरण मिलता है। केशों के ऊपर शकुन स्थित हो तब बन्धन होता है। कपाल अर्थात् हड्डी के टुकड़ों पर स्थित शकुन मरण तथा काँटेदार वृक्ष पर स्थित शकुन कलह (झगड़ा-विवाद) देता है। काष्ठ (लकड़ी) पर स्थित आयास अर्थात् उपद्रव देता है। भस्म (राख) पर स्थित शकुन दुःख देता है।।६०।।

तथा निःसाराश्मव्यवस्थिता अप्रसिद्धिं भयं वापि कुर्वन्ति। निःसारेऽन्तः सुषिरे स्थितः कार्याणामप्रसिद्धिं करोति। अश्मनि पाषाणे स्थिथो भयं करोति।

कुर्वन्ति शकुना दीप्ता इति। यदेतत् प्रागुक्तं चितिकेशकपालेषु, तद्दीप्ताः शकुनाः कुर्वन्ति, शान्तास्तु ते पुनर्याप्यफला भवन्ति। याप्यमीषत् फलं भवति।।६१।।

निःसार-अश्म पर स्थित शकुन अप्रसिद्धि अथवा भय करता है। निःसार अर्थात् अन्तः में (भीतर से) सुषिर (पोपला) हो, इस पर स्थित शकुन कार्य में प्रसिद्धि (प्रचार) नहीं कराता है। अश्म अर्थात् पत्थर पर स्थित होकर भय करता है। ये सभी पूर्वोक्त चिता-केश-कपलादि के फल को दीप्त-शकुन करते हैं। शान्तशकुन से तो याप्य-फल प्राप्त होता है। 'याप्य' का तात्पर्य ईषत् (किञ्चित्) फल प्राप्त होना है।।६१।।

अन्यदप्याह—

असिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयौ निर्हाराहारकारिणौ।
स्थानाद्द्रुवन् व्रजेद् यात्रां शंसते त्वन्यथागमम्।।६२।।

और भी कहते हैं—

निर्हार अर्थात् मलत्याग और आहार अर्थात् भोजन करते हुए शकुन द्वारा क्रमशः कार्य की असिद्धि और सिद्धि मिलती है। अपने स्थान से शब्द करते हुए उड़ जाय तो यात्रा प्रशंसनीय होती है और इसके विपरीत होने से किसी का आगमन होता है।।६२।।

निर्हाराहारकारिणौ शकुनौ यथासङ्ख्यमसिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयो ज्ञातव्यौ। निर्हारं पुरीषोत्सर्गः। निर्हारकारी शकुनोऽसिद्धिं कार्याणां करोति। आहारकारी भोजनकृल्लीलासिद्धिकरः। स्थानाद्द्रुवन्निति। यस्मिन् स्थाने स्थितस्मादाद्द्रुवन् शब्दं कुर्वन् यदि व्रजेद् गच्छेत्, तदा यात्रां गमनं शंसते कथयति। अन्यथा विपर्यय आगमं शंसते कथयति। एतदुक्तं भवति-वाच्यमानः स्थानमागत्य उपविशति तदा शकुनः कस्यचिदागमं शंसते।।६२।।

निर्हार और आहार करने वाले दोनों शकुन क्रमशः असिद्धि और सिद्धि को प्रदान करते हैं। निर्हार पुरीषोत्सर्ग अर्थात् मलत्याग कर्म है। निर्हार करने वाला शकुन कार्यों को असिद्ध करता है। आहार करता हुआ शकुन सरलता से कार्य को सिद्ध करता है। जिस स्थान पर स्थित हो वहाँ से शब्द अर्थात् ध्वनि करता हुआ यदि चल पड़े, तब यात्रा की सफलता का समर्थन करना है। इससे अन्यथा अर्थात् विपरीत शकुन हो तब यात्रा से आगमन का समर्थन करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि

यदि ध्वनि करता हुआ किसी स्थान पर आकर बैठता है, तब वह शकुन किसी के आगमन को सूचित करता है॥६२॥

अथान्यदप्याह–

कलहः स्वरदीप्तेषु स्थानदीप्तेषु विग्रहः।
उच्चमादौ स्वरं कृत्वा नीचं पश्चाच्च दोषकृत्॥६३॥

और भी कहते हैं–

शकुन के दीप्त-स्वरों से कलह और स्थान-दीप्त से विग्रह होता है। पहले उच्च स्वर बोलने के पश्चात् यदि नीच-स्वर करे तो यह दोषकारक होता है॥६३॥

स्वरो दीप्तो येषां तेषु शकुनेषु कलहो भवति। स्थाने दीप्ता ये स्थितास्तेषु विग्रहो भवति। आदौ प्रथममुच्चं स्वरं कृत्वा पश्चान्नीचमल्पं करोति, तदा दोषकृद्दोषं करोति॥६३॥

जिसमें स्वरदीप्त हो उस शकुन से कलह होता है। यदि स्थान दीप्त में स्थित हो, तब विग्रह (युंद्ध) होता है। पहले उच्चस्वर का बाद में नीच-स्वर अर्थात् मन्द-स्वर करे तो यह दोष करता है॥६३॥

अन्यदप्याह–

एकस्थाने रुवन् दीप्तः सप्ताहाद् ग्रामघातकः।
पुरदेशनरेन्द्राणामृत्वर्धायनवत्सरात् ॥६४॥

और भी कहते हैं–

एक ही स्थान पर सम्पूर्ण दिन रुदन करता हुआ शकुन एक सप्ताह में ग्राम का विघातक होता है। एक ऋतु, तीन मास और एक वर्ष पर्यन्त एक स्थान पर रुदन करे तो क्रमशः नगर, देश और राजा विनाश होता है॥६४॥

दीप्तः शकुन एकस्मिन् स्थाने रुवन् क्रोशन् सकलमेव दिनं तिष्ठति, तदा सप्ताहात् सप्तभिर्दिनैः पुरतो ग्रामघातको ग्रामविनाशं करोति। न केवलं यावत् पुरदेशनरेन्द्राणामृत्वर्धायनवत्सराद् विनाशं करोति। पुरं नगरं तत्र चैकस्थाने रुवन् ऋतुना मासद्वयेन घातं करोति। एवमर्धायनेन त्रिभिर्मासैर्देशघातं करोति। नृपस्य राज्ञो वत्सराद् वर्षाद् घातं करोति। एकस्थाने रुवन्निति सर्वत्रानुवृत्तिः॥६४॥

दीप्त शकुन एक ही स्थान पर रुदन करता हुआ सम्पूर्ण दिन स्थित रहे, तो

सात दिनों में उस ग्राम का विनाश करता है। इतना ही नहीं, पुर, देश और नरेन्द्र का क्रमशः ऋतु, त्रिमास और वर्ष पर्यन्त रुदन से विनाश करता है। भावार्थ यह है कि नगर में एक स्थान पर रुदन करता हुआ शकुन एक ऋतु अर्थात् दो मास में, नगर का विघात करता है। इसी प्रकार अर्धायन अर्थात् तीन मास में देश का विघात करता है। वह एक वर्ष में राजा का विघात करता है। "एक ही स्थान पर रोता हुआ"–इस प्रकार के अर्थ का सभी के लिए अनुवर्तन करें।।६४।।

अन्यदप्याह–

सर्वे दुर्भिक्षकर्त्तारः स्वजातिपिशिताशिनः।
सर्पमूषकमार्जारपृथुलोमविवर्जिताः।।६५।।

और भी कहते हैं–

सर्प, मूषक, मार्जार और मछली को छोड़कर अन्य जन्तु यदि अपनी ही जाति के जन्तु का भक्षण करें, तब दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ता है।।६५।।

सर्वे शकुनाः स्वजातिपिशिताशिनः स्वजातीनां पिशितं मांसमश्नन्ति भक्षयन्ति, तथाभूता दुर्भिक्षं कुर्वन्ति, किन्तु उरगः, मूषक आखुः, मार्जारो बिडालः, पृथुलोमा मत्स्यः। एतान् वर्जयित्वा एषां सर्वेषां पिशिताशित्वं स्वभाव एव अन्येषामुत्पातः। उक्तं च–

सभी शकुन, यदि अपनी जाति के मांस का भक्षण करते हैं, तो इससे दुर्भिक्ष होता है। परञ्च सर्प अर्थात् उरग, मूषक अर्थात् चूहा, मार्जार अर्थात् बिडाल और पृथुलोम अर्थात् मछली, इनको छोड़कर। क्योंकि इनका स्वजातीय मांस के भक्षण का स्वभाव नैसर्गिक है। जैसा कि कहा गया है–

विहाय सर्पाखुविडालमत्स्यान् स्वजातिमांसान्युपभुञ्जते वा।
व्रजन्ति वा मैथुनमन्यजात्याम् दुर्भिक्षकालं प्रवदन्ति तत्र।।इति।।६५।।

साँप, विडाल, चूहा और मछली को छोड़कर जो अन्य जीव अपनी जाति के माँस का भक्षण करते हैं अथवा अन्य जाति के जीवों के साथ मैथुन करते हैं तो यह दोषकारक कर्म माना गया है।।६५।।

अन्यदप्याह–

परयोनिषु गच्छन्तो मैथुनं देशनाशनाः।
अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां चाजातिमैथुनात्।।६६।।

और भी कहते हैं–

अपने से भिन्न जाति की योनि में यदि कोई प्राणी मैथुन करता है, तब उससे

देश का नाश होता है। अश्व तथा मनुष्य से भिन्न जाति में यह विचार होता है, क्योंकि इन दोनों का भिन्न-जाति में मैथुन होना सामान्य है।।६६।।

परयोनिष्वन्ययोनिषु मैथुनं व्रजन्तो गच्छन्तो देशनाशं कुर्वन्ति, किन्तु अन्यत्र वेसरोत्पत्तेरिति। वेसरोऽश्वतरस्तदुत्पत्तेस्तत्संम्भवादन्यत्र तां वर्जयित्वा तत्राश्वायां गर्दभो याति। नृणां पुंसा चाजातिमैथुनादन्यत्र। यतो नरा मनुष्या अजातौ वडवादिषु यान्ति। एवमादिकं वर्जयित्वा यतस्तदुत्पत्तिरूपं न भवति।।६६।।

पर-योनि में अर्थात् स्वयं से भिन्न जाति की योनि में मैथुन करता हुआ देश का नाश करता है, परन्तु वेसर की उत्पत्ति को छोड़कर। वेसर अर्थात् अश्वतर (खच्चर) की उत्पत्ति पर-योनि से सम्भव होती है, अत: इसको छोड़कर अन्य का विचार करे, क्योंकि घोड़ी में गर्दभ के द्वारा मैथुन करने से खच्चर पैदा होता है। मनुष्य के भी अजाति में मैथुन को छोड़कर विचार करे, क्योंकि मनुष्य भी घोड़ी आदि अजाति की योनि में मैथुन करता है। इस प्रकार के विजातीय मैथुन को छोड़कर विचार करे, क्योंकि इन दोनों से दुष्फल की उत्पत्ति नहीं होती है।।६६।।

अन्यदप्याह—

बन्धघातभयानि स्युः पादोरुमस्तकान्तिगैः।
शष्पापःपिशितान्नादैर्दोषवर्षक्षयग्रहाः ।।६७।।

और भी कहते हैं–

शकुन यदि पाद, उरु और मस्तक के समीप होता है, तब क्रमशः बन्धन, घात और भय प्राप्त होता है। शकुन यदि शष्प-भक्षी, जलसेवी, मांस-भक्षी अथवा अन्न-जीवी हो, तब क्रमशः दोष, वर्षा, क्षय और ग्रहण (संयोग) का फल मिलता है।।६७।।

पादोरमस्तकान्तिगैः शाकुनैर्यथाक्रमं बन्धगातभयानि स्युर्भवेयुः, यदा शकुनः पादान्तिगः पादनिकटे याति तदा बन्धं करोति। अथोरुप्रदेशे ऊर्वोर्निकटे याति, तदा घातमभिघातं करोति। अथ मस्तके याति, तदा भयं करोति। शष्पापःपिशितान्नादैरिति। शष्पापस्तृणाशी शकुनः नृणां नाशेन दोषं करोति। अपोऽदो जलाशी शकुनो वर्षं वृष्टिं करोति। पिशितादो मांसभक्षी क्षतमङ्गक्षतं करोति। अन्नादोऽन्नभक्षी ग्रहं संयोगं केनचिद्बन्धुना सह करोति।।६७।।

पाद, उरु (जंघा) अथवा मस्तक के पास यदि शकुन पहुँच जाय तो क्रमानुसार बन्धन, घात और भय होता है। यदि शकुन पादान्तिग अर्थात् पैर के निकट जाता है, तब बन्धन करता है। यदि वह उरु प्रदेश अर्थात् जाँघ के निकट आ जाता है, तब अभिघात (चोट) करता है। जब मस्तक पर जाता है, तब भयकारी होता है। शष्प

अर्थात् तृण (घास) खाने वाला शकुन जन-हानि सम्बन्धित दोष करता है। अपोऽद अर्थात् जलाश्रयी शकुन, वर्ष अर्थात् वर्षा करता है। पिशिताद अर्थात् मांसभक्षी शकुन, अंग-भंग करता है। अन्नभक्षी शकुन, ग्रह अर्थात् किसी बन्धु-बान्धव के साथ संयोग कराता है।।६७।।

अधुना शकुनोपदेशेनागन्तूनां लक्षणमाह–

क्रूरोग्रदोषदुष्टैश्च प्रधाननृपवृत्तकैः।
चिरकालेन दीप्ताद्यास्वागमो दिक्षु तन्नृणाम्।।६८।।

शकुन के माध्यम से आगन्तुकों के लक्षण कहते हैं–

दीर्घकाल तक दीप्तादि आठ दिशाओं में शकुन के होने से क्रमशः क्रूर, उग्र, दोष, दुष्ट, प्रधान, राजा, सन्देशवाहक और बहुप्रतीक्षित व्यक्ति का आगमन होता है।।६८।।

दीप्ताद्यास्वष्टसु दिक्षु स्थिते शकुने क्रूराद्युपलक्षितानां नृणां पुरुषाणामागमो भवति। तन्नृणां तन्नृशकुनोपलक्षितानाम्। तेन दीप्तायां दिशि स्थितः शकुनः कस्यचित् पुरुषस्य क्रूरेण हिंस्रेण संयुतस्यागमं करोति। धूमितायां दिशि स्थितः शकुनः कस्यचिदुग्रेण दण्डेन सह नरस्यागमं करोति। तत्परं शान्तायां दिशि स्थितः कस्यचिद्दोषयुक्तेन नरेण सहितस्यागमं करोति। तत्परं दुष्टेन संयुक्तस्य। तत्परं प्रधानेन युक्तस्य। तत्परं नृपेण राज्ञा संयुक्तस्य। तत्परं वृत्तकेन श्रावकेण संयुक्तस्य। तत्परमङ्गारितायां दिशि स्थितः शकुनश्चिरकालेन प्रभूतसमयेन सहितस्य नरस्यागमं करोति। एवं केचिद् व्याचक्षते। अन्ये चतस्रो दिश इच्छन्ति। दीप्ता दीपिता शान्ताङ्गारिणी चेति। तत्र दीप्तदिक्स्थे शकुने क्रूरेण सहितस्य नरस्यागमम्। धूमितदिक्स्थे उग्रेण तीव्रतरेण दोषेण दुष्टो यस्तेन सहितस्या-गमम्। शान्तदिक्स्थे प्रधानस्य नृपस्य नहुषादेर्वृत्तं चरितं यः कथयति, तेन सहितस्य। अङ्गारितस्थे चिरकालेन सहितस्येति सहयोगे तृतीया। एषैव व्याख्या ज्यासी।।६८।।

दीप्तादि आठ दिशाओं में शकुन के स्थित होने पर क्रूरादि गुण-विशिष्ट पुरुषों का आगमन होता है। यह नर-शकुन सम्बन्धी फल समझना चाहिए। इसके अनुसार दीप्त दशा में स्थित शकुन किसी क्रूर अर्थात् हिंसक (पशु अथवा पदार्थ) के साथ पुरुष का आगमन सूचित करता है। धूमित दशा में स्थित शकुन, किसी उग्र पुरुष का जो दण्ड (शस्त्र) सहित हो, उसका आगमन कराता है। तत्पश्चात् शान्त-दिशा में स्थित शकुन किसी दोष-मुक्त व्यक्ति के साथ वाले पुरुष का आगमन करता है। क्रमशः तत्पश्चात् दुष्टसहित व्यक्ति का, तत्पश्चात् प्रधान के साथ किसी व्यक्ति का,

तत्पश्चात् राजा के साथ, तदनन्तर वृत्तक अर्थात् सन्देश सुनाने वाले पुरुष के साथ और तत्पश्चात् अङ्गारित-दिशा में स्थित शकुन चिर-प्रतीक्षित व्यक्ति को साथ लेकर आने वाले पुरुष के आगमन की सूचना देता है। इस प्रकार से इसकी व्याख्या कुछ विद्वान् करते हैं।

अन्य विद्वान् चार दिशाओं में ही शकुन-विचार को समीचीन मानते हैं। दीप्ता, धूमिता, शान्ता और अंगारिका ये चार दिशायें हैं। यहाँ पर दीप्त दिशा में स्थित शकुन क्रूर से युक्त पुरुष का आगमन करता है। धूमित दिशा में स्थित होने पर उग्र अर्थात् जो तीव्रता से युक्त हो, इस प्रकार के व्यक्ति के साथ आगमन होता है। शान्त-दिशा में स्थित होने पर प्रधान-नृप अर्थात् जो नहुष नामक पौराणिक राजा के चरित्र को उपस्थापित करता हो, उसके साथ और अंगारिका दिशा में स्थित होने पर चिरकाल से जो साथ रहा हो, उसके साथ और अंगारिका दिशा में स्थित होने पर चिरकाल से जो साथ रहा हो, उसके साथ आगमन कराता है। "सह" के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है और यही व्याख्या समुचित है॥६८॥

अथ य आगच्छति तस्य सद्रव्यनिर्द्रव्यत्वज्ञानमाह—

सद्रव्यो बलवांश्च स्यात् सद्रव्यस्यागमो भवेत्।
द्युतिमान् विनतप्रेक्षी सौम्यो दारुणवृत्तकृत्॥६९॥

आगन्तुक के सद्रव्यत्व और निर्द्रव्यत्व होने का ज्ञान—

यदि शकुन पक्षी सद्रव्य (भक्ष्यपदार्थ सहित) और बलवान हो, तब द्रव्य-युक्त पुरुष का आगमन होता है। दीप्त दिशा का शकुन यदि अधोदृष्टि वाला हो तब सरल व्यक्ति भी क्रूर कर्म करने वाला हो जाता है॥६९॥

शकुनः सद्रव्यो येन केनचिद् भक्ष्यद्रव्येण संयुक्तः स च बलवांश्च बल-युक्तः स्याद् भवेत। तदा सद्रव्यस्यागमो भवेत् स्यात्। य आगच्छति तद्दिने स द्रव्ययुक्तः, अन्यथा शून्यहस्तः। अथ शकुनो द्युतिमान् दीप्तियुक्तः स एव यदि विनतप्रेक्षी अधोदृष्टिर्भवति, तदा सौम्योऽपि शुभोऽपि दारुणं तीव्रं वृत्तं करोति। वृत्तं कथनं यः सूचयति स वृत्तकृद् दुष्टं फलं करोति। य आगच्छति सद्रव्यः पुमान् स उपद्रवं करोतीत्यर्थः॥६९॥

शकुन यदि किसी द्रव्य अर्थात् किसी भी भक्ष्य-पदार्थ के साथ हो और वह सबल हो, तब द्रव्यमान् व्यक्ति का आगम होता है। जिस दिन वह आता है उस दिन द्रव्ययुक्त होता है, अन्यथा अन्य दिनों में द्रव्यशून्य रहता है। दीप्त-युक्त वह शकुन यदि नीचे की ओर दृष्टि किया हो, तब वह शुभ (सौम्य) शकुन भी तीव्र अर्थात् दुष्टफल करता है। वृत्त अर्थात् वार्ता (कथन) को जो सूचित करता है, वह 'वृत्तकृत्'

होता है जो कि दुष्ट (अशुभ) फल करता है। जो द्रव्ययुक्त पुरुष आता है वह उपद्रव करता है, यही इसका अभिप्राय है।।६९।।

विशेष व्याख्या–

विवृति की अन्तिम पंक्ति "य आगच्छति....स उपद्रवं करोति"–यह मूल श्लोक से असम्बद्ध और अप्रासंगिक है।

अन्यदप्याह–

विदिक्स्थः शकुनो दीप्तो वामस्थेनानुवाशितः।

स्त्रियाः संग्रहणं प्राह तद्दिगाख्यातयोनितः।।७०।।

और भी कहते हैं–

विदिक् अर्थात् कोणस्थ दीप्त-शकुन यदि वाम-दिक्स्थ अन्य शकुन से अनुच्चारित हो, तब उस दिशा की प्रसिद्ध योनि की स्त्री का संग्रह होता है।।७०।।

शकुनो विदिक्स्थो विदिशि स्थितो दीप्तः सूर्याभिमुखः स च वामस्थेन वामभागसमवस्थितेनान्येन शकुनेनानुवाशितो यदि भवति, तदा तद्दिगा-ख्यातयोनितः तस्यां दिशि आख्याता उक्ता योनिरुत्पत्तिर्यस्य नरस्य तस्य सकाशात् स्त्रिया योषितः संग्रहणं संयोगं प्राह कथयति। पुरुषस्तां स्त्रियं ददातीत्यर्थः। अथवा तस्यां विदिशि यस्याः स्त्रिया आख्याता योनिस्तस्याः संयोगमाहेति।।७०।।

विदिशा (कोण) में स्थित दीप्त अर्थात् सूर्याभिमुख शकुन यदि वह वामभाग में स्थित किसी दूसरे शकुन से अनुवासित (उच्चारित) हो तब उस दिशा में जो विख्यात योनि अर्थात् उत्पत्ति, जिस व्यक्ति की हो–उसके पास से स्त्रियों के संग्रहण अर्थात् संयोग का कथन करता है। अर्थात् वह पुरुष स्त्रियों को प्रदान करता है। अथवा उस विदिशा (कोण-दिशा) में जिस स्त्री की प्रशस्त उत्पत्ति हो उसका संयोग होना कहा गया है।।७०।।

अन्यदप्याह–

शान्तः पञ्चमदीप्तेन विरुतो विजयावहः।

दिग्गरागमकारी वा दोषकृत् तद्विपर्यये।।७१।।

शान्तः शकुन यदि किसी अन्य दीप्त शकुन के द्वारा मुखरित हो, तब वह विजय-प्रदायक होता है। अथवा उस दिशा के व्यक्ति का आगमन कहता है। इसके

विपरीत शकुन का दोषकारी फल होता है॥७१॥

शान्तः शकुनः पञ्चमदीप्तेनान्येन विरुतः। तस्माच्छकुनाद्यः पञ्चम्यां दिशि दीप्तायां स्थितो दीप्तः स एवार्काभिमुखस्तेन। विरुतः कृतशब्दो विजयावहो भवति विजयमावहति। दिग्नरागमकारी वा। तस्यां दिशि यो नरः पुरुषस्तस्य वाऽऽगमं करोति। तत आगच्छतीत्यर्थः। दोषकृत् तद्विपर्यये। यस्तस्मात् पूर्वोक्ताद् विपर्यये विपरीते स दोषकृत्। दीप्तः पञ्चमशान्तेन विरुतस्तदा दोष-कृद्भवति, दोषमशुभं करोतीत्यर्थः।।७१।।

शान्त-शकुन यदि पञ्चमदीप्त अर्थात् अन्य दीप्तशकुन के द्वारा ध्वनि करता है। तब उस शकुन से जो पञ्चम दीप्त दिशा में स्थित अर्थात् सूर्याभिमुख हो, उसके द्वारा किये गये शब्द के द्वारा विजय प्राप्त होता है। अथवा उस दिशा में जो पुरुष हो, उसका आगमन होता है, अर्थात् उस दिशा से किसी पुरुष का आगमन होता है। इसके विपरीत जो शकुन हो, वह दोषकारक होता है। तात्पर्य यह है कि दीप्तशकुन यदि अन्य (पञ्चम) शान्तशकुन के द्वारा शब्द करता है तो वह दोषकारक होता है अर्थात् अशुभ फल करता है॥७१॥

अन्यदप्याह—

वामसव्यगतो मध्यः प्राह स्वपरयोर्भयम्।
मरणं कथयन्त्येते सर्वे समविराविणः।।७२।।

और भी कहते हैं—

मध्यदिशा में स्थित शकुन, यदि वाम अथवा दक्षिणभाग में स्थित शकुन से प्रेरित होकर शब्द करता है, तब क्रमशः स्वपक्ष अथवा परपक्ष से भय का निर्देश करता है। यदि ये तीनों शकुन एक साथ ही ध्वनि करते हैं, तब मृत्यु का संकेत है॥७२॥

मध्यो मध्यमभागस्थः शकुनो वामसव्यगतो यथाक्रमं स्वपरयोर्भयं प्राह कथयति। मध्यस्थः शकुनो वामसव्यगतो यथाक्रमं स्वपरयोर्भयं प्राह कथयति। मध्यस्थः शकुनो वामभागस्थेन शकुनेन विरुतः स्वभयं स्वीयेभ्य आत्मीयेभ्यो भयं प्राह। स एव मध्यमः सव्येन दक्षिणभागस्थेन विरुतः पराच्छत्रोर्भयं प्राह। अर्थादिव द्वाभ्यां विरुतो मध्यस्थः स्वपरयोरेव भयं प्राह। सर्व एते त्रयः समविराविणो युगपदुद्भावन्तो मरणं कथयन्ति प्रवदन्ति।।७२।।

मध्यमभाग में स्थित शकुन, वाम-दक्षिण भागस्थ शकुनों के द्वारा क्रमशः स्वजन और परकीय जन से भय का संकेत करता है। मध्यस्थ शकुन अपने वाम भाग में स्थित शकुन के द्वारा शब्द करता है, तब अपने आत्मीय लोगों से भय उत्पन्न होता है।

वही मध्यस्थित शकुन दक्षिण-भागस्थ शकुन के द्वारा शब्द करे, तब वह पर अर्थात् शत्रुपक्ष से भय देता है। ये सभी तीनों शकुन यदि एक साथ ही ध्वनि करने लगें तब मरण होने का फल कहा गया है॥७२॥

अन्यदप्याह–

वृक्षाग्रमध्यमूलेषु गजाश्वरथिकागमः।
दीर्घाब्जमुषिताग्रेषु नरनौशिबिकागमः।।७३।।

और भी कहा गया है–

वृक्ष के अग्रभाग, मध्यभाग और मूलभाग में स्थित शकुन के द्वारा क्रमशः हाथी, अश्व और रथ पर आरूढ़ व्यक्ति का आगमन होता है। लम्बी वस्तु, कमल-पुष्प और टूटी हुई वस्तु के अग्रभाग में स्थित शकुन के द्वारा क्रमशः मनुष्य, नौका और पालकी में सवार व्यक्ति का आगमन होता है॥७३॥

वृक्षाग्रे स्थितः शकुनो गजारूढस्य नरस्यागमं करोति। वृक्षमध्ये स्थितोऽश्वारूढस्य। वृक्षमूले रथिकस्य रथारूढस्य। दीर्घे आयामिनि वस्तुनि स्थितः शकुनो नरारूढस्य नरस्यागमं करोति। अब्जे पद्मादौ स्थितो नाव आगमनं करोति। मुषिताग्रे छिन्नाग्रे स्थितः शिबिकागमनं युग्यस्यागमनं करोति। युग्यस्थस्येत्यर्थः।।७३।।

वृक्षाग्र पर स्थित शकुन हाथी पर सवार व्यक्ति का आगमन बतलाता है। वृक्ष के मध्यभाग में स्थित शकुन अश्वारोही का, वृक्ष-मूल पर स्थित रथारोही का और दीर्घ आयामी लम्बी वस्तु पर स्थित शकुन, नर पर आरूढ़ व्यक्ति का आगमन कराता है। अब्ज अर्थात् कमल आदि जलीय उत्पाद पर स्थित शकुन नाव से आगमन बतलाता है। मुषित अर्थात् छिन्न-भिन्न वस्तु के अग्र-भाग पर स्थित शकुन, शिबिका अर्थात् पालकी का आगमन कहता है। शिबिका 'युग्य' होता है, अर्थात् युग्यस्थ (पालकी में स्थित) व्यक्ति का आगमन होता है॥७३॥

विशेष व्याख्या–

'युग्य' शब्द वाहन का वाचक है। "सर्वं स्याद् वाहनं यानं युग्यं पत्रं च धोरणम्"–अ. को. २/८/५८.

अथान्यदप्याह–

शकटेनोन्नतस्थे वा छायास्थे छत्रसंवृते।

एकत्रिपञ्चसप्ताहात् पूर्वाद्यास्वन्तरासु च।।७४।।

और भी कहते हैं–

उन्नतस्थान पर स्थित शकुन से शकटारूढ का तथा छाया में स्थित शकुन से छत्रयुक्त-पुरुष का आगमन होता है। पूर्वादिदिशाओं तथा आग्नेय आदि कोणों में स्थित शकुन के अनुसार क्रमशः १,३,५ और ७ दिनों में फलागम होता है।।७४।।

शकटेनोन्नतस्थे। उच्चभागसमवस्थिते पर्वतादौ व्यवस्थिते। शकटेन गन्त्र्या कश्चिदागच्छति। छायास्थे शकुने छत्रसंयुत आतपत्रेण संयुक्त आगच्छति। तद्यथा– शकुने शुभमशुभं चोक्तं गन्त्र्याद्यागमनं वा; तत् कस्मिन् काले भवतीत्याह– एकत्रिपञ्चसप्ताहादिति। प्राच्यादिषु दिक्ष्वन्तरासु च विदिक्ष्वेकत्रिपञ्चसप्ताहाद् भवति। पूर्वस्यां दिशि स्थितेन शकुनेन यत् सूचितं शुभाशुभफलं कस्यचिद् वाऽऽगमने केनचिद् वा संयोगस्तदेकाहादेकेनैव दिवसेन भवति। एवं दक्षिणस्यां त्र्यहात्। पश्चिमायां पञ्चाहात्। उत्तरस्यां सप्ताहात्। अन्तरासु च विदिक्षु, चशब्दादेवमेव। तेनाग्नेय्यामेकाहात्। नैर्ऋत्यां त्र्यहात्। वायव्यां पञ्चाहात्। ऐशान्यां सप्ताहादिति।।७४।।

उच्चभाग अर्थात् पर्वत आदि पर यदि शकुन स्थित हो तब शकट अर्थात् गाड़ी से कोई व्यक्ति आता है। छाया में शकुन के स्थित होने पर छाता लगा कर आता है। यहाँ पर जिस शकुन का जो शुभाशुभ फल अथवा गाड़ी आदि से आगमन का फल कहा गया है, वह किस समय पर होता है? इस सम्बन्ध में कहते हैं–पूर्वादि दिशाओं और कोणों में (विदिशा में) १,३,५,७ दिनों पर होता है। पूर्वदिशा में स्थित शकुन का जो भी शुभाशुभ फल संसूचित हैं अथवा किसी का आगमन अथवा किसी के साथ मिलन कहा गया है, वह एक ही दिन में घटित हो जाता है। इसी प्रकार दक्षिणदिशा के शकुन के तीन दिनों पर, पश्चिम से पाँच दिनों पर और उत्तर दिशा के शकुन से सात दिनों पर फल मिलते हैं। दिगन्तर्वर्ती कोण-दिशाओं का भी इसी प्रकार से विचार करें। जैसा कि–अग्निकोण में एक दिन पर, नैर्ऋत्य में तीन दिनों पर, वायव्य में पाँच दिनों पर और ईशानकोण में सात दिनों पर फल मिलते हैं।।७४।।

अधुनाऽत्रैव विशेषज्ञानार्थमाह–

सुरपतिहुतवहयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्कराः क्रमशः।

प्राच्याद्यानां पतयो दिशः पुमांसोऽङ्गना विदिशः।।७५।।

यहाँ पर विशेष ज्ञान बतलाते हैं–

पूर्वादि आठ दिशाओं के इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव देवता क्रमशः स्वामी होते हैं। इनमें पूर्वादि प्रमुख चार दिशायें पुरुष और चारों कोण स्त्री संज्ञक हैं।।७५।।

सुरपतिप्रभृतयो देवाः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः स्वामिनः। सुरपतिरिन्द्रः, स पूर्वास्यां दिश्यधिपतिः। हुतवहोऽग्निराग्नेय्यामधिपतिः। यमः पितृपतिर्दक्षिणस्याम्। निर्ऋती राक्षसानामधिपतिर्नैर्ऋत्याम्। वरुणोऽपाम्पतिः पश्चिमायाम्। पवनो वायुर्वायव्याम्। इन्दुश्चन्द्रमा उत्तरस्याम्। शङ्करो रुद्र ऐशान्याम्। प्रयोजनम्– आगतस्य नरस्य येन वा तद्दिने संयोगश्तस्येन्द्रादिपर्यायो नाम तस्य देवस्य भक्तिर्वा हृतनष्टादौ चौरद्रव्यस्थानां वा शुभाशुभे शकुने लाभालाभे स्थानं वा प्रश्ने चिन्तायां तत्र मनसा स्थितिर्वा आतुरे तत्सुरपूजनात्छान्तिर्वेत्यादि। दिशः पुमांसोऽङ्गना विदिश इति। दिशः पूर्वाद्याश्चतस्रः पुमांसो मनुष्याः। विदिशश्चतस्रोऽङ्गनाः स्त्रियः। तथा च पराशरः–

इन्द्रादि देव पूर्वादि दिशाओं के पति अर्थात् स्वामी होते हैं। सुरपति इन्द्र पूरब दिशा का स्वामी होता है। हुतवह अर्थात् अग्नि, आग्नेयकोण का स्वामी, यम दक्षिण दिशा का स्वामी, राक्षस-पति निर्ऋती नैर्ऋत्यकोण का, जलाधिप वरुण पश्चिम का, वायुदेव वायव्यकोण का, चन्द्रमा उत्तर का और शंकर अर्थात् रुद्र, ईशानकोण का स्वामी होता है। इनका प्रयोजन बतलाते हैं–

वर्णानां ब्राह्मणादीनामुत्तरादिदिशः स्मृताः।
ऐशान्याद्याश्च विदिशस्ताः स्त्रीणां परिकीर्तिताः।।

प्रयोजनम्–दिक्षु स्थिते शकुने प्रष्टरि वा पुरुषकृता चिन्ता तज्जन्म वा। एवं विदिदिक्षु स्त्रीजन्मनश्चिन्ता वा हृतनष्टादौ चौरज्ञानं च। एषामागमः संयोगो भवति।।७५।।

आगन्तुक व्यक्ति का जिसके साथ उस दिन मिलन होगा इन्द्र आदि वाचक नाम हो सकता है, अथवा इन देवताओं में उसकी भक्ति होगी। चोरी गये अथवा नष्टद्रव्यों के स्थान का ज्ञान, अथवा शुभाशुभ शकुन में लाभालाभ का स्थान अथवा प्रश्नकालिक चिन्ता में मनोगतस्थिति का ज्ञान तथा पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा को दूर करने हेतु इन देवों के पूजन से शान्ति प्राप्त होना, इत्यादि दिशापतियों का प्रयोजन

है। पूर्वादि चार दिशायें पुरुषवाचक और चार कोण-दिशायें स्त्री-संज्ञक होती है। जैसा कि महर्षि पराशर ने कहा है–

ब्राह्मण आदि चार वर्णों की उत्तरादि चार दिशायें होती हैं। ईशानादि चार कोण-दिशायें स्त्रियों के लिये कही गयी हैं।

इनका प्रयोजन यह है कि दिशाओं में स्थित शकुन अथवा प्रश्नकर्ता के होने पर पुरुष सम्बन्धी चिन्ता अथवा पुरुष जातक का जन्म होता है। इसी प्रकार विदिशा अर्थात् कोण-दिसाओं में स्त्री जन्म की चिन्ता अथवा हरण और नष्ट हुयी वस्तु के चोर का ज्ञान होता है। तात्पर्य यह है कि उनका आगमन अथवा संयोग (मिलन) होता है।।७५।।

अथ लेखज्ञानमाह–

तरुतालीविदलाम्बरसलिलजशरचर्मपट्टलेखाः स्युः।
द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे तेषु कार्याणि।।७६।।

लेख का ज्ञान बतलाते हैं–

पूर्वादि आठ दिशाओं में स्थित शकुन के अनुसार क्रमशः तरु (वृक्ष), ताल पत्र, छिन्न-पत्र, वस्त्र, जलीय-पत्र, शरकण्डा (मूँज), चमड़ा और पट्टवस्त्र पर लिखित लेख होते हैं। बत्तीस कोष्ठकों में विभक्त दिशाचक्र से इन लेखों का विचार करना चाहिए।।७६।।

पूर्वमेवै[१]न्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिता इत्यनेन प्रमाणेन यद्दिक्चक्रं द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं द्वात्रिंशद्भेदभिन्नं प्रदर्शितं तस्मिन् यानि शुभाशुभानि कार्याणि शकुनान्युक्तानीत्यभिधीयन्ते च तानि तेषु लोकेषु भवन्ति। वक्ष्यति च–"[२]नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभस्तुरगालङ्कारदूतलेखाप्तिः" इति। तत्र लेखपरिज्ञानं तरुतालीत्यादि। पूर्वस्यां दिशि स्थिते शकुने लेखस्तरौ वृक्षे लिखितः। वृक्षावयवे त्वचि पर्णे वेत्यर्थः। एवमेवाग्नेय्यां तालवृक्षदले। दक्षिणस्यां विदले विगतार्थे यत्र तत्र। नैर्ऋत्यामम्बरे वस्त्रे। पश्चिमायां सलिलजे पद्मपत्रादौ। वायव्यां शरे काण्डे। उत्तरस्यां चर्मणि। ऐशान्यां पट्टे। पट्टः प्रसिद्धो नेत्रादिकः।।७६।।

इसके पूर्व इसी अध्याय के श्लोक संख्या २९ में 'पूर्व और अग्नि दिशाओं के मध्य तीन भागों में व्यवस्थित' इत्यादि के द्वारा ३२ कोष्ठकों में विभक्त दिक्चक्र प्रदर्शित किया जा चुका है। वहाँ पर जो भी शुभाशुभ कार्य तथा शकुनों के लक्षण

१. अस्यैवाध्यायस्य २९ श्लोकः।
२. अस्यैव ग्रन्थस्य ८६ अध्याये ८ श्लोकः।

कहे गये हैं, वे सभी उन क्षेत्रों में होते हैं। जैसा कि अध्याय ८६ के श्लोक संख्या ८ में कहा गया है–

नैर्ऋत्य दिशा में स्त्री-लाभ, अश्व, आभूषण, दूत और लेख की प्राप्ति होती है। वहाँ पर लेख का परिज्ञान तरु, ताल इत्यादि के द्वारा ही किया जाता है। यथा– पूर्वदिशा में यदि शकुन स्थित हो तो लेख, तरु अर्थात् वृक्ष (काष्ठ) पर लिखित होता है। अभिप्राय यह है कि वृक्ष की शाखा, छाल अथवा पत्ते पर लिखा होता है। इसी प्रकार अग्निकोण में शकुन होने पर ताल वृक्ष के पत्ते पर (ताड़ पत्र पर) लिखित होता है। दक्षिणदिशा में शकुन के होने पर विदल अर्थात् अनेक भागों में छिन्न-भिन्न रहता है। नैर्ऋत्यकोण में होने पर वस्त्र पर लिखा हुआ तथा पश्चिम दिशा में शकुन हो तब जल में उत्पन्न कमल पत्रादि पर लिखित होता है। वायव्य कोण में शकुन तो तब शर-काण्ड अर्थात् मूँज और उत्तरदिशा में शकुन होने से चमड़े पर लिखित होता है। ईशानकोण में शकुन के होने पर पट्ट पर लिखित होता है। पट्ट, नेत्रादि वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध है।।७६।।

विशेष व्याख्या–

नेत्र शब्द आँख के लिये प्रसिद्ध है। वार्तिककार ने पट्ट शब्द के पर्याय में नेत्र शब्द का प्रयोग किया है। नेत्र नारियल की जटा अथवा जूट से निर्मित वस्त्रों का वाचक होता है। जैसा कि अमरकोश ३/३/१८० में कहा गया है–"स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्"। इसकी व्याख्या में दिया गया सन्दर्भ इस प्रकार है–नेत्रं मथिगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने। विश्वे–नेत्रं रथे च नाड्यां च नेत्रों नेतरि भेद्यवत्। नेत्रं मथिगुणे वस्त्रभेदे मूले द्रुमस्य च। रथे चक्षुषि नद्यां च नेत्री नाड्यां च योषिति।–मेदिनी।

अथान्यान्यपि संयोगास्थानान्याह–

व्यायामशिखिनिकूजितकलहाम्भोनिगडमन्त्रगोशब्दाः।
वर्णास्तु रक्तपीतककृष्णसिताः कोणगा मिश्राः।।७७।।

अन्य संयोग स्थानों को कहते हैं–

पूर्वोक्त शकुनों का फल पूर्वादि क्रम से व्यायाम-स्थल, अग्नि-स्थल, गूँजायमान स्थान, विवाद-स्थल, जलसंस्थान, बन्धन (जेल या थाना) स्थान, मन्त्र अर्थात् वेद पाठ का स्थान और जिस स्थान पर गायों का शब्द (गौशाला) हो, इन स्थानों पर फल प्राप्त होता है। पूर्वादि दिशाओं के क्रमशः लाल, पीले, काले और श्वेतवर्ण होते हैं। कोण की दिशाओं में मिश्रितवर्ण कहे गये हैं।।७७।।

पूर्वस्यां दिशि स्थिते शकुने यच्छुभं फलं सूचितम्, तत्प्राप्तिः कस्मिन् स्थाने भवति? तत्र व्यायामे युद्धादौ। एवमाग्नेय्यां शिखिस्थानेऽग्निसमीपे। दक्षिणस्यां निकूजितं शब्दः कस्यापि श्रूयते यत्र। नैर्ऋत्यां यत्र कलहः। पश्चिमायां यत्राम्भो जलम्। वायव्यां यत्र निगडो बन्धनादिकः। उत्तरस्यां यत्र मन्त्रो वेदः पठ्यते। ऐशान्यां यत्र गावस्तेषां शब्दो रवो यत्र। एतेषूपलक्षितेषु स्थानेषु शुभशकुने कार्यागमः संयोगो वा केनचित् सह। वर्णास्त्विति। यत्किञ्चिदुक्तो वर्णो रक्तो लोहितं तत् पूर्वस्याम्। पीतवर्णो याम्यायाम्। कृष्णमसितं पश्चिमायाम्। सितं श्वेतमुत्तरस्याम्। कोणगा मिश्राः। मिश्रवर्णाः कोणेषु विदिक्षु। तद्यथा–आग्नेयां रक्तपीतः। नैर्ऋत्यां पीतकृष्णः। वायव्यां कृष्णासितः। ऐशान्यां सितरक्तः। प्रयोजनम्–सद्रव्ये शकुने सद्रव्यस्यागम उक्तः। तत्र द्रव्यज्ञानमेतत्। हृतनष्टादौ द्रव्यवर्णज्ञानम्। वस्त्रचिन्तायां वस्त्रवर्णज्ञानम्। एतद्वर्णदेवताविषये भक्तिर्वा।।७७।।

पूर्वदिशा में शकुन के स्थित होने पर जो शुभफल कहा गया है, उसकी प्राप्ति किस स्थान में होगी? इसका उत्तर है–पूर्व दिक्स्थ शकुन में व्यायाम अर्थात् युद्ध आदि शारीरिक द्वन्द्व का स्थान। इसी प्रकार अग्निकोण के शकुन से शिखि अर्थात् अग्नि के समीप का स्थल तथा दक्षिण दिशा में निकूजित अर्थात् जहाँ पर किसी का शब्द (कोलाहल या गूँजन) सनायी पड़े। नैर्ऋत्य-दिशा से कलह का स्थान, पश्चिमदिशा से जल का स्थान, वायव्य से निगड अर्थात् बन्धन का स्थान, उत्तर से जहाँ पर मन्त्र अर्थात् वेदपाठ होता हो और ईशानकोण के शकुन से जहाँ पर गायों के रव अर्थात् रेघाँने के शब्द होते हैं, उस स्थान पर फलाप्ति होती है। इन कथित स्थानों पर शुभ-शकुनों के फल, किसी के साथ मिलन आदि होते हैं।

अब वर्णों (रङ्गों) का विचार करते हैं। पूरबदिशा में जो पदार्थ कहा गया उसका वर्ण रक्त अर्थात् लोहित (लाल) होता है। दक्षिणदिशा में पीला वर्ण, पश्चिमदिशा में काला, उत्तरदिशा में श्वेतवर्ण होता है। कोण-दिशा में मिश्रित वर्ण होते हैं। जैसा कि–अग्निकोण में लाल-पीला, नैर्ऋत्यकोण में पीला-काला, वायुकोण में काला-सफेद और ईशानकोण में सफेद-लाल मिश्रित वर्ण होते हैं। इनका प्रयोजन बतलाते हैं–सद्रव्य शकुन में द्रव्य-सहित व्यक्ति का आगमन कहा गया है, इससे द्रव्य के वर्ण का ज्ञान होता है। चोरित अथवा नष्टवस्तु के वर्ण का भी ज्ञान हो जायेगा। वस्त्र से सम्बन्धित प्रश्न में वस्त्र के वर्ण का ज्ञान होगा। देवता अथवा भक्ति के विचार में, उस वर्ण के देवता में भक्ति का विचार किया जा सकता है।।७७।।

अथान्यच्छुभे शकुने स्थाननिर्देशार्थमाह—

चिह्नं ध्वजो दग्धमथ श्मशानं
दरी जलं पर्वतयज्ञघोषाः।
एतेषु संयोगभयानि विन्द्या-
दन्यानि वा स्थानविकल्पितानि।।७८।।

अन्य शुभ-शकुनों में स्थान का निर्देश करते हैं—

पूर्वादि आठ दिशाओं के शकुन में क्रमशः ध्वज-चिह्न, दग्ध (जला हुआ), श्मशान, दरी (गुफा), जल, पर्वत, यज्ञ और घोष ये स्थान होते हैं। इन स्थानों पर संयोग अथवा भय प्राप्त होते हैं। अन्य शकुनों के स्थान की इसी प्रकार परिकल्पना करनी चाहिए।।७८।।

पूर्वस्यां दिशि ध्वजश्चिह्नमुपलक्षणम्। आग्नेय्यां दग्धमग्निना दग्धं यत् किञ्चित्। अथानन्तरं याम्यायां श्मशानं पितृवनम्। नैर्ऋत्यां दरी गुहा। पश्चिमायां जलमुदकम्। वायव्यां पर्वतो गिरिः। उत्तरस्यां यज्ञो यागः। ऐशान्यां घोषो गह्वरम्। एतेषु स्थानेषु संयोगभयानि विन्द्याज्जानीयात्। शुभे शकुने केनचित् सह संयोगः। वक्ष्यति च—

पूरब दिशा में ध्वज-चिह्न तथा अग्निकोण में आग में जला हुआ कोई पदार्थ तत्पश्चात् दक्षिण में श्मशान अर्थात् पितृवन, नैर्ऋत्य में दरी अर्थात् गुफा, पश्चिम में जल, वायव्य में पर्वत, उत्तरदिशा में यज्ञ-यागादि, ईशानकोण में घोष अर्थात् गहरी ध्वनि ध्वनि, इन स्थानों में संयोग (मिलन) अथवा भय की प्राप्ति होगी, यह जानना चाहिए। शुभशकुन से किसी के साथ संयोग होता है। जैसा कि कहा गया है—

[१]ऐन्द्र्यां दिशि शान्तायां विरुवन्नृपसंश्रितागमं वक्ति।

"पूरब दिशा में शान्त-शकुन की ध्वनि से राज्याश्रित व्यक्ति का आगमन संसूचित होता है।"

शकुनेष्वेतेषु भयं वक्ष्यति च—

[२]शान्तासु दिक्षु फलमिदमुक्तं दीप्तास्वतोऽभिधास्यामि।
ऐन्द्र्यां भयं नरेन्द्रात् समागमश्चापि शत्रूणाम्।।इति।।

---

१. अस्यैव ग्रन्थस्य ८६ अध्याये ९ श्लोकः।

२. अस्यैव ग्रन्थस्य ८६ अध्याये २९ श्लोकः।

भय-प्रद शकुन इस प्रकार कहे गये हैं–

"शान्त दिशाओं में शुभफल कहे गये हैं, द्वीप्त शकुनों के फल कहे जा रहे हैं। पूरब दिशा में दीप्त-शकुन के होने पर राजा से भय और शत्रुओं का आगमन होता है।"

अन्यानि वा स्थानविकल्पितानीति। अन्यान्यपराणि वा कार्याणि स्थानवशेन परिकल्पनीयानि। एतदुक्तं भवति–शुभानि यानि कार्याणि शुभशकुनसंसूचितानि शुभेष्वेव स्थानेषु भवन्ति। यान्यशुभानि तान्यशुभेष्विति।।७८।।

अन्य स्थानों की भी परिकल्पना करनी चाहिए। अर्थात् अन्य कार्यों का भी स्थान के अनुसार कल्पना कर लेनी चाहिए। इस कथन का अभिप्राय यह है कि जो भी शुभ कार्य हैं, वे शुभ शकुनों से सूचित शुभ स्थानों पर ही सम्पन्न होते हैं। जो अशुभ फल हैं, वे सभी अशुभ स्थान पर ही होते हैं।।७८।।

विशेष व्याख्या–

विवृति में 'घोष' शब्द की व्याख्या में "गह्वर" शब्द का प्रयोग विचारणीय है। घोष शब्द का अर्थ अमरकोश (२.३.२०) में गोपालकों के स्थान, आभीर-पल्ली दिया गया है, यथा–"घोष आभीरपल्ली स्यात्" घोषन्ति गावोऽत्र। घुषिर-विशब्देन।

घोष आभीरपल्ल्यां स्याद् गोपालध्वनिघोषके।
कांस्ये चाम्बुनादे ना घोषा मधुरिकौषधि।।

'गह्वर' शब्द दरी अर्थात् केवल पर्वत की गुफा (२.४.६) के लिए (पर्वत-बिल) ही प्रयुक्त होता है। विवृतिकार का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा है।

अन्यदप्याह–

स्त्रीणां विकल्पा बृहती कुमारी
व्यङ्गा विगन्धा त्वथ नीलवस्त्रा।
कुस्त्री प्रदीर्घा विधवा च ताश्च
संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युः।।७९।।

और भी कहते हैं–

पूर्वादि आठ दिशाओं के शकुन से क्रमशः स्थूलास्त्री, कुमारीकन्या, विकलाङ्गी, दुर्गन्धा, नीलवस्त्रा, कुत्सिता, लम्बी और विधवास्त्री की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार की स्त्रियों के साथ संयोग और इनसे सम्बन्धित चिन्ता उत्पन्न होती है।।७९।।

पूर्वास्यां स्त्रीणां विकल्पा बृहती बृहत्काया स्त्री। आग्नेय्यां कुमारी कन्यका। दक्षिणस्य व्यङ्गाऽङ्गहीना। नैर्ऋत्यां विगन्धा दुर्गन्धा। अथशब्द आनन्तर्ये। पश्चिमायां नीलवस्त्रा नीलाम्बरा। वायव्यां कुस्त्री कुत्सिता योषित्। उत्तरस्यां प्रदीर्घात्युच्चा। ऐशान्या विधवा विगतभर्तृका रण्डा स्त्री। एवं केचिद्व्याचक्षते। अन्ये चतस्रो दिश इच्छन्ति। यत् उक्तम्—अङ्गना विदिश इति। ताश्च ऐशान्यां बृहती कुमारी। आग्नेय्यां व्यङ्गा विगन्धा। नैर्ऋत्यां नीलवस्त्रा कुस्त्री। वायव्यां प्रदीर्घा विधवा। प्रयोजनम्—ताश्च संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युरिति। ताभिः सह प्रागाद्यासु दिक्षु शुभे संयोगे समागमे चिन्तां परिवेदयन्त्युत्पादयन्ति। हृतनष्टादौ चौर्य एता एव।।७९।।

पूरब दिशा में शकुन होने पर बृहत् काया स्त्री की सम्भावना करें। अग्निकोण में कुमारी कन्या, दक्षिण दिशा में अङ्गहीना, नैर्ऋत्य में दुर्गन्धवाली होती है। 'अथ' शब्द अनन्तर का वाचक है। पश्चिम दिशा में नील-वस्त्र धारण करने वाली, वायव्य में कुत्सित (निन्दित) स्त्री, उत्तर दिशा में प्रदीर्घा अर्थात् अत्यधिक ऊँची, ईशान में विधवा अर्थात् मृतपतिका (राँड़) स्त्री होती है, इस प्रकार से कुछ विद्वान् यह फल कहते हैं। अन्य आचार्य चार ही दिशाओं का फल बतलाते हैं। जैसा कि—ईशानकोण में बृहती कुमारी, आग्नेय में विकलाङ्गी तथा दुर्गन्धा, नैर्ऋत्य में नील वस्त्रा एवं कुत्सिता, वायव्य में लम्बी और विधवा स्त्री होती है। इसका प्रयोजन यह है कि ये स्त्रियाँ संयोग अथवा चिन्ता को उत्पन्न करती हैं। इनके साथ पूर्वादि दिशाओं में शुभशकुन होने पर संयोग अर्थात् समागम की चिन्ता को परिवेदित अर्थात् उत्पन्न करती है। किसी वस्तु के हरण अथवा नष्ट होने पर इसी प्रकार की स्त्रियाँ चोर होती है।।७९।।

अन्यदप्याह—

पृच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां
मेषाव्ययानमखगोकुलसंश्रयासु।
न्यग्रोधरक्ततरुरोध्रककीचकाख्या-
श्चूतद्रुमाः खदिरविल्वनगार्जुनाश्च।।८०।।

और भी कहते हैं—

प्रश्न के समय प्रश्न-कर्ता के पूरब आदि दिशाओं में स्थित होने पर क्रमशः चाँदी, सोना, रोगी, स्त्री, बकरा, वाहन, यज्ञ एवं गौशाला से सम्बन्धित प्रश्न होते हैं। इसी प्रकार पूर्वादि दिशाओं के अनुसार क्रमशः बरगद, लाल-वृक्ष, लोध, बाँस, आम का पेड़, खैर, बेल और अर्जुन-वृक्ष का प्रश्न से सम्बन्ध रहेगा।।८०।।

पृच्छासमये पूर्वस्यां दिशि स्थिते शकुने प्रष्टरि वा रूप्यसंश्रया रजतसमाश्रिता पृच्छा वक्तव्या। एवमाग्नेय्यां कनकस्य सुवर्णस्य। याम्यायामातुरस्य व्याध्यर्दितस्य। नैर्ऋत्यां भामिन्याः स्त्रियाः। पश्चिमायां मेषाव्यस्याजस्य। वायव्यां यानस्याश्वादिकस्य गमनस्य वा। उत्तरस्यां मखस्य यज्ञस्य च। ऐशान्यां गोकुलसंश्रया वाटसमाश्रिता पृच्छा वक्तव्येति। तथा न्यग्रोधी वृक्षः पूर्वस्याम्। रक्त-तरुर्लोहितवर्णो वृक्ष आग्नेय्याम्। रोध्रवृक्षो दक्षिणस्याम् कीचकाख्यो वेणुर्नैर्ऋत्याम्। चूतद्रुम आम्रवृक्षः पश्चिमायाम्। खदिरो वायव्याम्। बिल्वतरुरुत्तरस्याम्। नग एवार्जुनवृक्ष ऐशान्याम्। अथवा नगः पर्वतोऽर्जुनवृक्षश्च। अथवा सर्व एव न्यग्रोधादयो नगशब्दवाच्याः। नगो वृक्ष उच्यते स्थिरत्वात्। प्रयोजनम्—प्रागाद्यासु दिक्षु स्थिते शुभे शकुन एतेषु स्थानेषु रूप्यादीनां लब्धिरशुभे हानिः। संयोगो वियोगो वा केनचित् सह चौरादिस्थानपरिग्रहमिति।।८०।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सर्वशाकुने मिश्रकं नाम पञ्चशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

प्रश्न करने के समय पूरबदिशा में शकुन अथवा प्रश्नकर्ता के स्थित होने पर रूप्य अर्थात् रजत (चाँदी) से सम्बन्धित प्रश्न है, ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार अग्निकोण में स्वर्ण का, दक्षिण में आतुर अर्थात् व्याधि-पीड़ित व्यक्ति का, नैर्ऋत्य में स्त्री का, पश्चिम में मेषाव्य अर्थात् अज (बकरा) का, वायव्य में अश्व आदि वाहन अथवा यात्रा का, उत्तर में यज्ञ का और ईशानकोण में गोवंश का (वाट = मार्ग) सम्बन्ध प्रश्न से रहता है।

इसी प्रकार पूरबदिशा में न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्ष, आग्नेय में लालरंग का वृक्ष, दक्षिणदिशा में लोध का पेड़, नैर्ऋत्य में कीचक संज्ञक बाँस का पेड़, पश्चिम में चूतवृक्ष अर्थात् आम का पेड़, वायुकोण में खदिर (खैर-कत्था) का वृक्ष, उत्तर में बेल का पेड़, ईशान में अर्जुन वृक्ष सम्बन्धी प्रश्न रहता है। 'नग' शब्द पर्वत और अर्जुन वृक्ष का वाचक है। अथवा ये सभी न्यग्रोध आदि वृक्ष 'नग' शब्द से अभिप्रेत हैं। स्थिर होने के कारण वृक्ष को भी नग कहा जाता है। इनका प्रयोजन यह है कि पूर्वादि दिशाओं में शुभशकुन के होने पर इन स्थानों पर चाँदी आदि वस्तुओं की प्राप्ति तथा अशुभशकुन से इनकी हानि होती है। किसी व्यक्ति के साथ संयोग अथवा वियोग और चोर आदि के स्थान का ग्रहण करना चाहिए।।८०।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति के सर्वशाकुन में मिश्रक नामक पच्चासीवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८५।।

❊ ❊ ❊

।।अथ षडशीतितमोऽध्यायः।।

शाकुनेऽन्तरचक्राध्यायः

अथ शाकुनेऽन्तरचक्रं व्याख्यायते।

तत्रादौ प्राग् द्वात्रिंशद्भागप्रविभक्ते दिक्चक्रे शान्तासु दिक्षु स्थिते शकुने फलान्याह–

ऐन्द्र्यां दिशि शान्तायां विरुवन् नृपसंश्रितागमं वक्ति।

शकुनः पूजालाभं मणिरत्नद्रव्यसम्प्राप्तिम्।।१।।

शाकुनेऽन्तरचक्र नामक अध्याय ८६ की व्याख्या की जाती है।

सर्वप्रथम पूर्वोक्त ३२ विभागात्मक दिक्चक्र में शान्त दिशाओं में स्थित शकुन का फल कहते हैं–

शान्त पूर्वदिशा में जब शकुन का शब्द हो तब राजकीयव्यक्ति का आगमन होता है तथा पूजा-सामग्री, मणि, रत्न, द्रव्य की प्राप्ति होती है।।१।।

ऐन्द्र्यां पूर्वस्यां दिश्याशायां शान्तायां विरुवन् क्रोशन् नृपसंश्रितस्य राजसमाश्रितस्यागमं वक्ति कथयति। तथा तत एव पूजालाभार्थानां मणिरत्नानां प्रधानरत्नानां द्रव्याणामन्येषां सुवर्णादीनां सम्प्राप्तिं लाभं च कथयति। यदि च स शकुनः शुभः, अथ मध्यमस्तदा मध्यमं फलं करोति। अथाशुभस्तदा किञ्चिच्छुभम्। एवं सर्वं परिज्ञेयम्।।१।।

ऐन्द्र अर्थात् पूर्वदिशा में जब वह पूर्वोक्त प्रकार से शान्त हो उस समय विरुत् अर्थात् शब्दायमान होने पर राज्याश्रित व्यक्ति का आगमन कहा जाता है तथा पूजा पदार्थों का लाभ, मणिरत्न अर्थात् प्रमुख रत्नों का और स्वर्णादि द्रव्यों का लाभ कहना चाहिए। यह फल शुभशकुन के होने पर पूर्णतः फलता है। यदि मध्यम शकुन हो तो मध्यम फल करता है और अशुभ होने पर किञ्चित् शुभ फल करता है। यह सब जानना चाहिए।।१।।

अथान्यदाह–

तदनन्तरदिशि कनकागमो भवेद्वाञ्छितार्थसिद्धिश्च।

आयुधधनपूगफलागमस्तृतीये भवेद् भागे।।२।।

और भी कहते हैं–

उससे अनन्तर दिशा में शकुन होने पर स्वर्ण-लाभ और मनोरथ की सिद्धि होती है। तदनन्तर तृतीयभाग में शकुन हो तब शस्त्र, धन और पूग-फल (सुपारी) का लाभ होता है।।२।।

तस्या एव पूर्वस्या अनन्तरदिशि प्रादक्षिण्येन द्वितीयदिशि स्थिते शकुने कनकागमः सुवर्णलाभो भवति, वाञ्छितस्याभिलषितस्य च कार्यस्य सिद्धिर्भवति। तृतीय भागे आयुधस्य च खड्गादेर्धनस्य वित्तस्य पूगफलानां वाऽऽगमो लाभो भवति।।२।।

उस पूर्वदिशा की अनन्तर दिशा अर्थात् प्रदक्षिणा क्रम से द्वितीय दिशा में शकुन के स्थित होने पर सुवर्ण का लाभ होता है और मनोभिलषित कार्य की सिद्धि होती है। तृतीयभाग में खड्गादि शस्त्रों का, धन का और पूगफलों का लाभ होता है।।२।।

अन्यदप्याह–

स्निग्धद्विजस्य सन्दर्शनं चतुर्थे तथाहिताग्नेश्च।

कोणेऽनुजीविभिक्षुप्रदर्शनं कनकलोहाप्तिः।।३।।

और भी कहते हैं–

यदि चतुर्थ दिग्-भाग में उदात्त ब्राह्मण तथा अग्निहोत्री का दर्शन हो तब सुवर्ण और लोहे का लाभ होता है। अग्निकोण में याचक भिक्षु का दर्शन हो तब भी यही फल कहना चाहिए।।३।।

चतुर्थे भागे स्निग्धस्येष्टस्य द्विजस्य ब्राह्मणस्य तथाऽऽहिताग्नेर्याजकस्य सन्दर्शनं कनकस्य सुवर्णस्य लोहस्य शस्त्रस्य च प्राप्तिर्लाभो भवतीत्यर्थः। आग्नेये कोणे अनुजीविनो भिक्षोः प्रदर्शनम्।।३।।

चतुर्थभाग में स्निग्ध अर्थात् अभीष्ट ब्राह्मण का तथा आहिताग्नि अर्थाथ् याज्ञिक अग्निहोत्री का दर्शन हो तब सुवर्ण और लोहे (लौह शस्त्र) का लाभ होता है। अग्निकोण में आश्रित भिक्षु का दर्शन हो तो भी ये ही लाभ होते हैं।।३।।

अथान्यदप्याह–

याम्येनाद्ये नृपपुत्रदर्शनं सिद्धिरभिमतस्याप्तिः।

परतः स्त्रीधर्माप्तिः सर्षपयवलब्धिरप्युक्ता।।४।।

और भी कहते हैं–

दक्षिण दिशा के पूर्व भाग में यदि राजपुत्र का दर्शन हो तब कार्य सिद्धि और अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। द्वितीय भाग में राजपुत्र का दर्शन होने पर स्त्री-लाभ,

धर्म लाभ, सरसों और जौ की प्राप्ति होती है।।४।।

याम्येन दक्षिणदिग्भागेन तदाद्येनोपलक्षित आद्यः, स च कोणाद् बहिः। आद्ये प्रथमभागे नृपपुत्रस्य राजपुत्रस्य दर्शनं सिद्धिश्च भवति कार्याणाम्। अभिमतस्याभीष्टस्यार्थस्य चाप्तिर्लाभो भवति। परतोऽनन्तरं द्वितीये भागे स्त्रीप्राप्तिर्धर्मप्राप्तिश्च भवति। सर्षपाणां यवानामपि लब्धिरुक्ता कथिता।।४।।

दक्षिणदिशा के प्रथम भाग अर्थात् कोण के बाहर प्रथम भाग में राजपुत्र का दर्शन होने से कार्यसिद्धि होती है। इसमें मनोभिलषित अर्थ का लाभ होता है। इसके बाद द्वितीय भाग में स्त्रीप्राप्ति और धर्मप्राप्ति होती है। इसमें सर्षप और जौ का भी लाभ कहा गया है।।४।।

अन्यदप्याह-

कोणाच्चतुर्थखण्डे लब्धिर्द्रव्यस्य पूर्वनष्टस्य।
यद्वा तद्वा फलमपि यात्रायां प्राप्नुयाद्याता।।५।।

और भी कहते हैं-

कोण से चतुर्थभाग में शकुन होने पर पहले से खोये हुए धन का लाभ होता है। इसमें यात्रा करनेवाला तत्तत् फलों को प्राप्त करता है।।५।।

कोणादारभ्य यश्चतुर्थखण्डस्तस्मिन् पूर्वनष्टस्य प्रागपहृतस्य द्रव्यस्यार्थस्य लब्धिर्लाभो भवति। याता यात्रायां यद्वा यत्तत् फलं तद्वा येन तेन प्रकारेणाप्नुयात् प्राप्नोतीत्यर्थः।।५।।

कोण से प्रारम्भ कर चतुर्थ खण्ड में कोई शकुन हो तब पूर्व काल में विनष्ट अर्थात् चोरी गया हुआ धन प्राप्त होता है। यात्री अपनी यात्रा में तत्तत् फलों को प्राप्त करता है।।५।।

अन्यदप्याह-

यात्रासिद्धिः समदक्षिणेन शिखिमहिषकुक्कुटाप्तिश्च।
याम्याद् द्वितीयभागे चारणसङ्गः शुभं प्रीतिः।।६।।

और भी कहते हैं-

दक्षिणदिशा में शकुन हो तब सफल यात्रा तथा मयूर, भैंस और मुर्गे का लाभ होता है। दक्षिणदिशा से दूसरे भाग में चारण लोगों का साथ और शुभ तथा प्रिय पदार्थ का लाभ मिलता है।।६।।

समश्चासौ दक्षिणो भागः समदक्षिणः। तस्मिन् समदक्षिणे च यात्रासिद्धिर्भवति। शिखी मयूरः। शिखिमहिषकुक्कुटानां चाप्तिर्लाभो भवति। याम्यात् समदक्षिणाद् द्वितीये भागे चारणा नटनर्तकप्रभृतयः। तैः सह सङ्गः संयोगो भवति, शुभं धर्मादिप्रीतिश्च भवति।।६।।

सम-दक्षिण भाग का अर्थ ठीक दक्षिणभाग होता है। इस समदक्षिण भाग में शकुन होने से यात्रा में सिद्धि मिलती है। शिखी अर्थात् मोर, भैंस और कुक्कुट अर्थात् मुर्गे का लाभ होता है। इस सम-दक्षिण दिशा से दूसरे भाग में चारण अर्थात् नट और नर्तक इत्यादि का साथ होता है। साथ ही शुभ अर्थात् धर्म-कार्य और प्रसन्नता कारक फल मिलते हैं।।६।।

अन्यदप्याह–

ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्तसङ्गमो मीनतित्तिराद्याप्तिः।
प्रव्रजितदर्शनं तत्परे च पक्वान्नफललब्धिः।।७।।

और भी कहते हैं–

तत्पश्चात् तृतीयभाग में शकुन होने पर केवट (मल्लाह) का साथ तथा मछली और तितिर का लाभ होता है। तत्पश्चात् चतुर्थभाग में सन्यासी का दर्शन होने पर पकवान और फलों का लाभ होता है।।७।।

ऊर्ध्वं द्वितीयभागात् परतस्तृतीयभागे सिद्धिः कार्याणां भवति। कैवर्तेन सङ्गस्तेन सह संयोगो मीनतित्तिरादीनां प्राप्तिश्च भवति। मीनो मत्स्यः। तित्तिरः पक्षी। आदिग्रहणाद् लावकादयः। तत्परे चतुर्थे भागे प्रव्रजितस्य गृहीतव्रतस्य दर्शनं भवति, पक्वान्नस्य फलानां च लब्धिर्लाभो भवति।।७।।

ऊर्ध्व अर्थात् द्वितीय भाग के अनन्तर तृतीय भाग में कार्यों की सिद्धि होती है। कैवर्त अर्थात् केवट (मल्लाह) का साथ और मीन अर्थात् मछली तथा तितर पक्षी का लाभ होता है। 'आदि' शब्द से लावक इत्यादि पक्षियों का विचार करना चाहिए। उसके बाद चतुर्थभाग में प्रव्रजित अर्थात् संन्यास व्रत धारण करने वाले व्रती का दर्शन हो, तब पकवान तथा फल का लाभ होता है।।७।।

विशेष व्याख्या–

लावक शब्द को लाव शब्द से अमरकोश (२/५/३५) में वर्णन किया गया है। लावयति, लूञ् छेदने (क्या. उ.से.) स्वार्थण्यन्तः। आप्टे के अनुसार लावक का

अर्थ काटने वाला, खण्ड-खण्ड करने वाला, लावनी करने वाला, एकत्र करने वाला, लवा, बटेर पक्षी होता है॥७॥

अन्यदप्याह–

नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभस्तुरगालङ्कारदूतलेखाप्तिः।

परतोऽस्य चर्मतच्छिल्पिदर्शनं चर्ममयलब्धिः॥८॥

और भी कहते हैं–

नैऋत्यकोण में शकुन होने पर स्त्रीलाभ, अश्व, आभूषण, व्रत तथा लेख की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् अर्थात् नैऋत्यकोण के पश्चात् भाग में चमड़े तथा चमड़े के शिल्पकार और चमड़े से निर्मित पदार्थों का लाभ होता है॥८॥

नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभो भवति। तुरगस्याश्वस्यालङ्करणस्य भूषणस्य दूतस्य देशावेदिनो लेखस्य च प्राप्तिर्भवति। अस्य नैर्ऋतभागस्य परत्रोऽनन्तरं चर्मदर्शनं भवति। तच्छिल्पी चर्मशिल्पी तस्यापि दर्शनमवलोकनम्। चर्ममयस्य भाण्डस्य उपहारादेर्लब्धिर्लाभो भवति॥८॥

नैऋत्यकोण में स्त्री का लाभ होता है। घोड़ा, अलंकार एवं दूत अर्थात् देश विदेश का ज्ञाता और लेख (पत्र अथवा अभिलेख) प्राप्त होते हैं। इस नैऋत्य भाग के अनन्तर चमड़ा तथा चर्मशिल्पी का दर्शन और चमड़े के पदार्थ अर्थात् चर्मपात्र का लाभ होता है॥८॥

अन्यदप्याह–

वानरभिक्षुश्रवणावलोकनं नैर्ऋतात् तृतीयांशे।

फलकुसुमदन्तघटितागमश्च कोणाच्चतुर्थांशे॥९॥

और भी कहते हैं–

नैऋत्यकोण में तीसरे भाग में वानर, भिक्षुक और श्रमण का दर्शन होने पर फल, पुष्प और दन्त निर्मित वस्तुओं का लाभ होता है और यही फल नैऋत्यकोण से चतुर्थ भाग में भी होता है॥९॥

नैर्ऋतात् कोणात् तृतीयांशे तृतीयभागे वानरस्य कपेर्भिक्षोर्यतेः श्रवणस्य बौद्धस्य चावलोकनं दर्शनमित्यर्थः। कोणान्नैर्ऋतकोणाच्चतुर्थांशे चतुर्थभागे फलादीनामाम्रादीनां कुसुमानां पुष्पाणां दन्तघटितानां दन्तादिकृतानां चागमो भवति॥९॥

नैर्ऋत्यकोण से तीसरे भाग में यदि वानर, श्रवण अर्थात् बौद्ध का दर्शन हो और इसी प्रकार चतुर्थ भाग में भी दिखायी पड़े, तब आम आदि फल, फूल और दाँतों से बने हुए पदार्थों का लाभ होता है॥९॥

विशेष व्याख्या–

"श्रवण" शब्द का अर्थ अमरकोश २/६/९४ देते हुए कहा गया है– कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः। मेदिनी कोश में कहा गया है–श्रवणं श्रुतौ च कर्णे नक्षत्रे न नपुंसकम्। 'बौद्ध' अर्थ में श्रवण शब्द अप्रचलित है। यहाँ विवृति में श्रवण शब्द का अर्थ श्रमण वाचक बौद्ध अर्थ किया गया है जो कि विचारणीय है। सम्भवतया लेखन की त्रुटि से श्रमण शब्द का श्रवण उल्लेख हो गया है॥९॥

अन्यदप्याह–

वारुण्यामर्णवजातरत्नवैदुर्यमणिमयप्राप्तिः।
परतोऽतः शबरव्याधचौरसङ्गः पिशितलब्धिः॥१०॥

और भी कहते हैं–

वारुणी दिशा अर्थात् पश्चिमदिशा में शकुन होने पर समुद्र में उत्पन्न रत्न तथा वैदूर्य (नीलम) मणि की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् प्रथमभाग में शकुन के होने पर शबर (किरात), व्याध (शिकारी) तथा चोर का साथ होता है और माँस की प्राप्ति होती है॥१०॥

वारुण्यां पश्चिमायामर्णवजातानां समुद्रसम्भूतानां रत्नानां वैदूर्यादीनां मणीनां मणिमयानां रत्नकृतानां च भाण्डानां प्राप्तिर्लाभो भवति। अतो वारुण्याः परतोऽनन्तरं शबरैः शबरजनैर्व्याधैर्लुब्धकजनैश्चौरैस्तस्करैश्च सह सङ्गमो योगो भवति। पिशितस्य च मांसस्य लब्धिर्लाभो भवति॥१०॥

पश्चिम दिशा से समुद्र में उत्पन्न होने वाले रत्नों का, नीलम इत्यादि मणियों का तथा मणिमय पदार्थों अर्थात् रत्नजड़ित पात्रों का लाभ होता है। इस पश्चिमदिशा से अनन्तर दिशा में शकुन होने पर शबर अर्थात् जंगली लोगों, व्याधों और तस्करों का साथ होता है तथा इसमें माँस की प्राप्ति होती है॥१०॥

अन्यदप्याह–

परतोऽपि दर्शनं वातरोगिणां चन्दनागुरुप्राप्तिः।
आयुधपुस्तकलब्धिस्तद् वृत्तिसमागमश्चोर्ध्वम्॥११॥

और भी कहते हैं–

इसके अनन्तर अर्थात् पश्चिमदिशा के द्वितीयभाग में वातरोगियों का दर्शन होने

पर चन्दन तथा सुगन्धित-पदार्थ अगरु की प्राप्ति होती है। उसके अनन्तर भाग में शस्त्र और पुस्तक की लब्धि तथा इसकी आजीविका से सम्बन्धित लोगों का साथ होता है॥११॥

परतोऽनन्तरमस्मिन् भागे वातरोगिणामनिलव्याध्यर्दितानां दर्शनम्। चन्दनस्य मलयजस्य, अगुरोः सुगन्धद्रव्यस्य प्राप्तिर्लाभो भवति। अत ऊर्ध्वमतः परमन्यस्मिन् भागे आयुधस्य खड्गादेः पुस्तकस्य च शास्त्रस्य लब्धिः। तद्वृत्तीनामायुधपुस्तके एवं वृत्तिर्वर्तनं येषां तैः सह समागमः संयोगो भवति॥११॥

पूर्वोक्त के अनन्तर भाग में वातरोगी अर्थात् वायुविकार से ग्रस्त व्यक्तियों का दर्शन होता है। चन्दन अर्थात् जो कि मलय गिरि पर उत्पन्न होता है और अगुरु अर्थात् सुगन्धित द्रव्य का लाभ होता है। तत्पश्चात् तृतीयभाग में आयुध अर्थात् तलवार इत्यादि और पुस्तक तथा शास्त्र का लाभ होता है। साथ ही शास्त्र और पुस्तकों से आजीविका वाले व्यक्तियों का साथ होता है॥११॥

अन्यदप्याह–

वायव्ये फेनकचामरौर्णिकाप्तिः समेति कायस्थः।
मृन्मयलाभोऽन्यस्मिन् वैतालिकडिण्डिभाण्डानाम्॥१२॥

और भी कहते हैं–

वायव्यकोण में शकुन होने पर फेनक, चामर और ऊन से निर्मित पदार्थ का लाभ होता है और कायस्थजाति के व्यक्ति का साथ होता है। इसके अनन्तर भाग में मिट्टी के बर्तन मिलते हैं और वैतालिक अर्थात् टोना-टोटका करने वाले लोगों के साथ ही डिंडिभ अर्थात् वाद्य-यन्त्रों का लाभ होता है॥१२॥

वायव्ये कोणे फेनकस्य चामरस्य बालव्यजनस्यौर्णिकस्य च कम्बलादेः प्राप्तिर्भवति। कायस्थो देवरः समेति संयोगं याति। अन्यस्मिन् द्वितीयभागे मृन्मयस्य द्वितीयस्य भाण्डस्य लाभः। वैतालिको नग्नाचार्यः। डिण्डिभाण्डानि वादित्रविशेषाः। पटहमृदङ्गकरटा समेता यत्र वाद्यन्ते तानि डिण्डिभाण्डानि तेषां लाभः॥१२॥

वायव्यकोण में शकुन होने पर फेनक अर्थात् फेन सम्बन्धित दूध अथवा समुद्री लवण तथा चामर अर्थात् चँवर (बालों का गुच्छ जिससे पँखे का काम लिया जाता है) एवं कम्बल आदि ऊनी वस्त्रों का लाभ होता है। कायस्थ अर्थात् देवर का संयोग (मिलन) होता है। इसके अनन्तर द्वितीय भाग में मृत्तिका-पात्र का लाभ एवं वैतालिक अर्थात् नग्नाचार्य (नागा इत्यादि) और डिण्डिभांड अर्थात् वाद्य-विशेष का लाभ होता है। जहाँ पर पटह (नगाड़ा) मृदंग और करट इत्यादि वाद्य एक साथ बजते हैं उसको डिण्डिभाण्ड कहते हैं॥१२॥

विशेष व्याख्या–

'कायस्थ' शब्द पूर्वोत्तर भारत में कायस्थ जाति (चित्रगुप्त पूजक) के लिए प्रसिद्ध है। क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता की संतान। अमरकोष २.४५.९ में यह हरीतकी का पर्याय है। मेदिनी में "नरजाति विशेष" है। विवृति का 'देवर' अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। देवर शब्दार्थ पति के अनुज भ्राता हेतु सर्वमान्य है।

अन्यदप्याह–

वायव्याच्च तृतीये मित्रेण समागमो धनप्राप्तिः।
वस्त्राश्वाप्तिरतः परमिष्टसुहृत्यसम्प्रयोगश्च।।१३।।

और भी कहते हैं–

वायव्यकोण से तीसरेभाग में शकुन होने पर मित्रों का समागम और धन का लाभ होता है। तदनन्तर भाग में वस्त्र तथा अश्व का लाभ और प्रियमित्र का संयोग होता है।।१३।।

वायव्यकोणात् परे तृतीयभागे मित्रेण सह सुहृदा सह समागमो भवति। धनस्यार्थस्य च प्राप्तिः। अतोऽस्मात् तृतीयात् परं वस्त्रस्याम्बरस्याश्वस्य तुरगस्य च प्राप्तिः। इष्टेन वल्लभेन सुहृदा मित्रेण सह सम्प्रयोगः समागमः।।१३।।

वायव्यकोण से तीसरे भाग में मित्रों का समागम होता है और धन अर्थात् अर्थ की प्राप्ति होती है। इसके अनन्तर अर्थात् चतुर्थभाग में वस्त्र तथा घोड़े का लाभ होता है और अपने इष्ट-मित्र का साथ मिलता है।।१३।।

अन्यदप्याह–

दधितण्डुललाजानां लब्धिरुदग् दर्शनं च विप्रस्य।
अर्थावाप्तिरनन्तरमुपगच्छति सार्थवाहश्च।।१४।।

और भी कहते हैं–

उत्तरदिशा में शकुन होने पर दही, चावल और लावा (दाना) का लाभ तथा ब्राह्मण का दर्शन होता है। इसके अनन्तर भाग में धन की प्राप्ति होती है और सार्थवाह अर्थात् रथयुक्त व्यापारी का समागम होता है।।१४।।

उदगुत्तरस्यां दिशि दधितण्डुललाजानां लब्धिः। दध्नस्तण्डुलानां लाजानां च लाभो भवति। विप्रस्य ब्राह्मणस्य दर्शनमवलोकनम्। अनतरमतः परमन्यस्मिन् भागेऽर्था-वाप्तिरर्थलाभो भवति सार्थवाहश्चोपगच्छति आयाति।।१४।।

उदग् अर्थात् उत्तर दिशा में दही, चावल तथा लावा का लाभ होता है, तथा ब्राह्मण का दर्शन प्राप्त होता है। इसके पश्चात् भाग में धन का लाभ होता है तथा

सार्थवाह का आगमन होता है॥१४॥

अन्यदप्याह–

वेश्यावटुदाससमागमः परे शुक्लपुष्पफललब्धिः।

अत ऊर्ध्वं चित्रकरस्य दर्शनं चित्रवस्त्राप्तिः॥१५॥

और भी कहते हैं–

दूसरे भाग में शकुन होने पर वेश्या, वटुक, भृत्य का समागम होता है और श्वेतपुष्प तथा फल का लाभ होता है। दूसरी दिशा मे चित्रकार का दर्शन एवं चित्रित वस्त्रों का लाभ होता है॥१५॥

परेऽन्यस्मिन् भागे वेश्या बन्धकी। वटुर्ब्राह्मणः। दासो भृत्यः। एतैः समागमः संयोगः। शुक्लपुष्पाणां फलानां च लब्धिर्लाभो भवति। अत ऊर्ध्वमतः परमन्यस्मिन् भागे चित्रकरस्य दर्शनं भवति। चित्राणां नानावर्णानां वस्त्राणामम्बराणां च प्राप्तिर्भवति॥१५॥

इसके अनन्तर भाग में वेश्या, ब्राह्मण वटु, दास (नौकर) इन लोगों का समागम होता है। श्वेतपुष्प और फलों का लाभ होता है। इसके अनन्तर अन्य भाग में चित्रकार का दर्शन चित्रित अर्थात् विविधवर्णों के वस्त्रों की प्राप्ति होती है॥१५॥

अन्यदप्याह–

ऐशान्यां देवलकोपसङ्गमो धान्यरत्नपशुलब्धिः।

प्राक् प्रथमे वस्त्राप्तिः समागमश्चापि बन्धक्या॥१६॥

और भी कहते हैं–

ईशानदिशा में शकुन होने पर देवलक अर्थात् भोजक का साथ होता है और धान्य, रत्न तथा पशुओं का लाभ मिलता है। पूर्वदिशा के प्रथम भाग में शकुन होने पर वस्त्रों की प्राप्ति और वेश्या स्त्रियों का समागम होता है॥१६॥

ऐशान्यां दिशि देवलेकन भोजकेनोपसङ्गमः संयोगो भवति। धान्यरत्नपशूनां च लब्धिः। प्राक् प्रथमे पूर्वस्यां दिशि प्रथमे भागे वस्त्राप्तिम्बरलाभो बन्धक्या वेश्यया सह समागमो भवति॥१६॥

ईशान दिशा में शकुन होने पर देवलक अर्थात् देवप्रतिमा से आजीविका प्राप्त करने वाले व्यक्ति का संयोग और धान्यपदार्थ, रत्न एवं पशुओं का लाभ होता है। पूर्वदिशा के प्रथम भाग में शकुन होने पर वस्त्रों की प्राप्ति के साथ ही वेश्या के साथ

समागम होता है।।१६।।

अन्यदप्याह–

रजकेन समायोगो जलजद्रव्यागमश्च परतोऽतः।

हस्त्युपजीविसमाजश्चास्माद् धनहस्तिलब्धिश्च।।१७।।

और भी कहते हैं–

इसके अनन्तर भाग में रजक अर्थात् धोबी का साथ और जल में उत्पन्न द्रव्यों का लाभ होता है। तदनन्तर भाग में हाथी से आजीविका वाले लोगों का साथ प्राप्त होता है और धन एवं हाथी का लाभ मिलता है।।१७।।

रजकेन वस्त्ररागकृता समायोगो जलजानां जलोत्पन्नद्रव्याणामागमो लाभश्च भवति। अतोऽस्मात् परतो हस्त्युपजीविभिर्हस्तिनामनुजीविभिः समाजः संयोगो भवति। अस्माच्च समाजाद् धनलब्धिर्हस्तिलब्धिश्च भवति।।१७।।

रजक अर्थात् वस्त्रों को रंगने वाले का साथ और जल में उत्पन्न द्रव्यों का लाभ होता है और तदनन्तर भाग में हाथियों से आजीविका रखने वाले लोगों का संयोग और उनके समाज अर्थात् मिलन से धन तथा हाथी का लाभ होता है।।१७।।

अत्रैव विशेषमाह–

द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं दिक्चक्रं वास्तुवत्सनेम्युक्तम्।

अरनाभिस्थैरन्तः फलानि नवधा विकल्प्यानि।।१८।।

यहाँ पर कुछ विशेष कहते हैं–

यह दिक्चक्र वास्तु-चक्र के समान ३२ भागों में विभक्त है जिसको नेमी (परिधि) सहित कहा गया है। इसकी नाभि एवं आरे के मध्य स्थित नौ भागों के फलों का विचार करना चाहिए।।१८।।

दिक्चक्रं दिङ्मण्डलं वास्तुवद् द्वात्रिंशाद्भागप्रविभक्तं सनेम्युक्तं नेम्या सह कथितम्। नेमियुक्तस्यैतत् फलम्। यथा वास्तुबन्धने द्वात्रिंशाद्भागप्रविभक्ते वास्तुप्रतिदिशमष्टौ द्वाराणि विभक्तान्येवं दिक्चक्रमपि विभक्तम्, तत्रैतत्फलम्। अरनाभिस्थैरणीनाभिस्थैः। अराश्चक्रस्य मध्यवर्तिनः। नाभिर्मध्यं तैरनाभिस्थैः शकुनैरन्तर्मध्ये नवधा नवप्रकारं फलानि विकल्प्यानि विकल्पनीयानि।।१८।।

दिक्चक्र अर्थात् दिग्-मण्डल वास्तुचक्र के समान ३२ भागों में विभक्त कर नेमी सहित कहा गया है अर्थात् नेमीयुक्त के ये फल हैं। जिस प्रकार वास्तुचक्र में

३२ भागों में विभक्त प्रत्येक दिशाओं में आठ द्वारों का विभाजन कर दिशाचक्र होते हैं, उसी प्रकार इनका फल है। अरा तथा नाभि का तात्पर्य इस प्रकार है–चक्र के मध्यवर्ती भाग को अरा और मध्यकेन्द्र को नाभि कहा जाता है। इस केन्द्र और आरे के मध्य स्थित शकुनों के आधार पर ९ प्रकार के फल की कल्पना करनी चाहिए।।१८।।

तानि चाह–

नाभिस्थे बन्धुसुहृत्समागमस्तुष्टिरुत्तमा भवति।
प्राग्रक्तपट्टवस्त्रागमस्त्वरे नृपतिसंयोगः।।१९।।

इनका फल कहते हैं–

नाभि अर्थात् केन्द्रभाग में शकुन होने पर बन्धु और मित्रों का समागम तथा पर्याप्त सन्तुष्टि होती है। पूर्वभाग में शान्तशकुन के होने पर रक्तवस्त्रों का लाभ और राजा के साथ मिलन होता है।।१९।।

नाभिस्थे चक्रनाभिस्थे शकुने बन्धुभिः कुटुम्बैः। सुहृद्द्भिर्मित्रैः सह समागमः संयोगो भवति। उत्तमा प्रकामा च तुष्टिः। प्राक् पूर्वभागे योऽरस्तत्र स्थिते शान्ते शकुने रक्तस्य लोहितस्य पट्टस्य वस्त्रस्याम्बरस्य चागमो लाभो भवति। नृपतिना राज्ञा सह संयोगः।।१९।।

चक्र की नाभि में शकुन होने पर कुटुम्बीजनों और मित्रों के साथ संयोग होता है और उत्तम अर्थात् प्रचुर सन्तुष्टि प्राप्त होती है। पूर्वभाग में जो चक्र का आरा है, उसमें शकुन होने पर रक्तवर्ण के वस्त्रों का लाभ होता है और राजा के साथ मिलन होता है।।१९।।

अन्यदप्याह–

आग्नेये कौलिकतक्षपारिकर्माश्वसूतसंयोगः।
लब्धिश्च तत्कृतानां द्रव्याणामश्वलब्धिर्वा।।२०।।

और भी कहते हैं–

अग्निकोण में शुभशकुन हो तब तन्तुवाय, बढ़ई, अश्वचालक का संयोग होता है। इनसे सम्बन्धित द्रव्यों का लाभ अथवा अश्व का लाभ होता है।।२०।।

आग्नेयेऽरे कौलिकस्तन्तुवायः। तक्षो वर्धकिः। पारिकर्मा परिकर्म वेत्ति यः स पारिकर्मा। गणितपरिकर्माणि जानाति यः। केचित् कर्मज्ञा इत्याहुः। अश्वस्तुरगः। सूतोऽश्ववाहकः। एतैः सह संयोगो भवति। तत्कृतानां कौलिकादि-कृतानां द्रव्याणां लब्धिर्लाभः। अश्वलब्धिस्तुरगलब्धिश्च वा भवति।।२०।।

अग्निकोण के आरे पर शकुन होने से कौलिक अर्थात् वस्त्र-बुनकर, तक्ष अर्थात् बढ़ई, परिकर्मा अर्थात् गणित के परिकर्माष्टक विधि को जानने वाला अथवा कुछ विद्वानों के अनुसार कर्मों का ज्ञाता और अश्ववाहक इन सभी का संयोग होता है। इसमें बुनकर इत्यादि के उत्पादित पदार्थों का लाभ होता है अथवा अश्व का लाभ होता है॥२०॥

अन्यदप्याह–

नेमीभागं बुद्ध्वा नाभीभागं च दक्षिणे योऽरः।
धार्मिकजनसंयोगस्तत्र भवेद् धर्मलाभश्च॥२१॥

और भी कहते हैं–

चक्र की नेमी अर्थात् परिधि और केन्द्रबिन्दु को समझते हुए दक्षिणभाग में जो अरा अर्थात् व्यास (सूत्र) है। उस दिशा में धार्मिकव्यक्ति का आगमन एवं धर्म-लाभ जानना चाहिए॥२१॥

नेमी चक्रस्य प्रान्तं तस्या नाभेश्च भागं बुद्ध्वा प्रविभागं ज्ञात्वा दक्षिणेन दक्षिणस्यां दिशि योऽरस्तत्र स्थिते शकुने धार्मिकजनैः सह संयोगो भवति धर्मलाभश्च॥२१॥

नेमी अर्थात् चक्र का प्रान्त (किनारा) और उसके केन्द्र भाग को ठीक से जानकर उससे दक्षिणभाग में जो अरा है उसमें स्थित शुभशकुन से धार्मिक लोगों का संयोग तथा धार्मिकलाभ जानना चाहिए॥२१॥

अन्यदप्याह–

उस्राक्रीडककापालिकागमो नैर्ऋते समुद्दिष्टः।
वृषभस्य चात्र लब्धिर्माषकुलत्थाद्यमशनं च॥२२॥

और भी कहते हैं–

नैर्ऋत्य भाग में शकुन होने पर गौ, खिलाड़ी, कापालिक (तपस्वी) जनों का आगमन होता है। इस शकुन में बैल प्राप्त होता है और उड़द तथा कुलथी का भोजन मिलता है॥२२॥

उस्रा गौः। क्रीडको यः क्रीडयति। कापालिकः प्रसिद्धस्तपस्वी। एषामागमो नैर्ऋतेऽरे समुद्दिष्टः कथितः। अत्रास्मिन्नरे वृषभस्य दान्तस्य च लब्धिर्लाभो भवति। अशनं भोज्यं माषकुलत्थाद्यं भवति। माषकुलत्थौ प्रसिद्धौ सस्यविशेषौ। आद्यग्रहणाद् यवगोधूमकङ्गुनिका गृह्यन्ते॥२२॥

उस्रा अर्थात् गाय, क्रीडक अर्थात् खेलने वाले, कापालिक अर्थात् तपस्वी लोगों का आगमन, नैऋत्यकोण के अरे पर शकुन होने से होता है। इस अरे के शकुन से वृषभ का लाभ होता है, उड़द और कुलत्थ आदि का भोजन मिलता है। उड़द और कुलत्थ प्रसिद्ध अन्न विशेष का नाम है। यहाँ पर आद्य शब्द के ग्रहण से जौ, गेहूँ और कंगुनिका (टाँगुन) आदि का भी बोध करना चाहिए।।२२।।

अन्यदप्याह–

अपरस्यां दिशि योऽरस्तत्रासक्तिः कृषीवलैर्भवति।
सामुद्रद्रव्यसुसारकाचफलमद्यलब्धिश्च ।।२३।।

और भी कहते हैं–

पश्चिमदिशा के अरे पर शकुन होने से कृषकों का सहयोग मिलता है। समुद्रीपदार्थ, सुसारमणि, सीसा, फल और मादक पदार्थों का लाभ होता है।।२३।।

अपरस्यां पश्चिमायामरस्तत्र तस्मिन् कृषीवलैः कार्षिकैरासक्तिः संयोगो भवति। सामुद्रद्रव्याणां सुसारस्य काचस्य च लब्धिर्लाभो भवति। सुसारो मणिविशेषः। फलानामाम्रादीनां मद्यस्य पानविशेषस्य च लब्धिर्लाभो भवति।।२३।।

अपर अर्थात् पश्चिमदिशा में स्थित अरे पर शकुन हो तब कृषिबल अर्थात् कृषिकार्य करने वाले लोगों का संयोग होता है। समुद्र में उत्पन्न होने वाले द्रव्यों का, सुसार तथा काँच का लाभ होता है। "सुसार" एक प्रकार के विशेष मणि को कहा जाता है। आम्रादि फलों का तथा मद्य अर्थात् विशेष पेय (मदिरा) का लाभ होता है।।२३।।

अन्यदप्याह–

भारवहतक्षभिक्षुकसन्दर्शनमपि च वायुदिक्संस्थे।
तिलककुसुमस्य लब्धिः सनागपुन्नागकुसुमस्य।।२४।।

और भी कहते हैं–

वायुकोण में शकुन हो तब भारवाह, बढ़ई और भिक्षु का दर्शन होता है। तिलक का फूल, पुन्नाग का फूल और नाग वृक्ष के फूलों का लाभ होता है।।२४।।

वायव्यां दिशि योऽरस्तत्संस्थे शकुने भारवहो भारवाहकः। तक्षो वर्धकीः। भिक्षुको यतिः। एषां सन्दर्शनं भवति। तिलककुसुमस्य, तिलको वृक्षविशेषः, तत्पुष्पाणां लब्धिर्भवति। पुन्नागकुसुमस्य पुन्नागपुष्पस्य सनागस्य नागकुसुमेन

सहितस्य लब्धिर्भवति।।२४।।

वायव्यदिशा में जो अरा है उस पर शकुन होने से भारवाहक, तक्ष अर्थात् बढ़ई तथा भिक्षुक (संन्यासी) लोगों का दर्शन होता है। तिलक अर्थात् एक प्रकार का विशेष वृक्ष, इसका पुष्प प्राप्त होता है और नागपुष्प सहित पुन्नागपुष्प प्राप्त होता है।।२४।।

अन्यदप्याह–

कौबेर्यां दिशि योऽरस्तत्रस्थो वित्तलाभमाख्याति।

भागवतेन समागमनमाचष्टे पीतवस्त्रैश्च।।२५।।

और भी कहते हैं–

उत्तरदिशा के अरे पर शकुन हो तब धन का लाभ कहा गया है। भक्तों का आगमन होता है तथा पीले वस्त्रों का संयोग मिलता है।।२५।।

कौबेर्यामुत्तरस्यां दिशि शान्तायां योऽरस्तत्रस्थः शकुनो वित्तलाभं धनलब्धिमाख्याति कथयति। तथा भागवतेन वैष्णवेन द्विजेन सह समागमं संयोगमाचष्टे कथयति। पीतवस्त्रैश्च पीतवर्णैरम्बरैः संयोगम्।।२५।।

कौवेरी अर्थात् उत्तरदिशा में जो अरा है उस पर शकुन होने पर धनोपलब्धि कही गयी है। भागवत अर्थात् वैष्णव-ब्राह्मण का समागम होता है। पीले रंग के वस्त्रों का भी सुयोग मिलता है।।२५।।

अन्यदप्याह–

ऐशाने व्रतयुक्ता वनिता सन्दर्शनं समुपयाति।

लब्धिश्च परिज्ञेया कृष्णायसः शस्त्रघण्टानाम्।।२६।।

और भी कहते हैं–

ईशानकोण में शकुन होने पर व्रत की हुई महिला दिखाई पड़ती हैं। कृष्णवर्ण का लौह तथा शस्त्र और घण्टे प्राप्त होते हैं।।२६।।

ऐशोनेऽरे व्रतयुक्ता व्रतस्था वनिता स्त्री सन्दर्शनं समुपयाति गच्छति। कृष्णायसः कृष्णलोहस्य शस्त्रस्य घण्टानां च लब्धिः परिज्ञेया।।२६।।

ईशानकोण के अरे पर शकुन होने से व्रत में स्थित अर्थात् व्रतीस्त्री का दर्शन होता है। काले रंग का लोहा, शस्त्र और घण्टा का लाभ जानना चाहिए।।२६।।

अथात्रैव विशेषमाह–

याम्येऽष्टांशे पश्चाद् द्विषट्त्रिसप्ताष्टमेषु मध्यफला।
सौम्येन च द्वितीये शेषेष्वतिशोभना यात्रा।।२७।।
अभ्यन्तरे तु नाभ्यां शुभफलदा भवति षट्सु चारेषु।
वायव्यानैर्ऋतयोररयो क्लेशावहा यात्रा।।२८।।

यहाँ पर कुछ विशेष कहते हैं–

दक्षिणदिशा के अष्टमभाग पर और पश्चिम दिशा के २,६,३,७,८ इन अंशों में तथा उत्तर दिशा के दूसरे अंश पर शकुन के होनों पर यात्रा करने से मध्यम फल प्राप्त होता है। शेष अंशों पर शकुन होने से यात्रा का अच्छा फल मिलता है।।२७।।

नाभि के मध्य में ६ तथा ८ आरे पर शकुन होने से यात्रा शुभ होती है। वायव्य तथा नैऋत्यकोण के आरे पर शकुन हो तब यात्रा में कष्ट होता है।।२८।।

याम्येऽष्टांश इति। याम्ये दक्षिणदिग्भागे योऽष्टांशोऽष्टभागस्तस्मिंस्तथा पश्चात् पश्चिमदिग्भागे नैर्ऋतकोणादारभ्य द्विषट्त्रिसप्ताष्टमेषु, द्वितीयषष्ठतृतीयसप्तमाष्टमेषु। तथा सौम्येन उत्तरदिग्भागेन च द्वितीयाष्टांशे एतेषु शकुने स्थिते शान्ते मध्यफला यात्रा भवति। न शुभा नाप्यशुभेत्यर्थः। शेषेष्वन्येषु भागेषु पञ्चविंशत्सङ्ख्यास्वतिशोभना यात्रा भवति।।२७।।

दक्षिणदिशा के आठवें भाग में तथा पश्चिमदिशा में नैऋत्य-कोण से आरम्भ कर २,६,३,७, और आठवें भाग में एवं उत्तरदिशा के दूसरे तथा आठवें भाग में यदि-शकुन स्थित हो तब यात्रा मध्यम-फलदायिका होती है। शेष अन्य २५ भागों में शकुन हो तब यात्रा अति शुभ होती है।।२७।।

अभ्यन्तर इति। नाभ्यामभ्यन्तरे नाभिमध्ये षट्सु चाष्टसु चारेषु वायव्या-नैर्ऋतवर्जितेषु स्थिते शकुने शुभफलदा यात्रा भवति। वायव्यनैर्ऋतयोर्द्वयोररयोः क्लेशावहा कष्टप्रदा यात्रा भवति।।२८।।

नाभि के मध्य में ६ और ८ आरे पर, जिसमें नैऋत्यकोण वर्जित है, इसमें शकुन होने से यात्रा शुभ-फलदायिनी होती है। वायव्य अर्थात् नैऋत्य के अरे पर शकुन के होने से यात्रा कष्टदायिका होती है।।२८।।

एवमिदं यदुक्तं तच्छान्तासु दिक्षु दीप्तासु वक्ष्यामीत्याह–

शान्तासु दिक्षु फलमिदमुक्तं दीप्तास्वतोऽभिधास्यामि।

ऐन्द्र्यां भयं नरेन्द्रात् समागमश्चैव शत्रूणाम्।।२९।।

पूर्वोक्त फल शान्त दिशाओं के कहे गये हैं। इसके अनन्तर दीप्त दिशाओं के फल कहे जायेंगे। दीप्ता पूर्वदिशा में राजा का भय और शत्रुओं का आगमन होता है।।२९।।

इदं यदुक्तं शान्तासु दिक्षु। अतोऽस्मात् परं दीप्तास्वभिधास्यामि कथयिष्यामि। ऐन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि दीप्तायां स्थिते शकुने नरेन्द्राद् राज्ञो भयं भवति। शत्रूणां रिपूणां समागमः संयोगो भवति।।२९।।

ये जो फल कहे गये हैं वे सभी शान्तदिशा में घटित होते हैं। इसके पश्चात् दीप्तदिशाओं में होने वाले फलों को कहूँगा। ऐन्द्र अर्थात् पूर्वदिशा में जब वह दीप्त हो तब शकुन के होने पर राजा का भय होता है और शत्रुओं का समागम होता है।।२९।।

अन्यदप्याह–

तदनन्तरदिशि नाशः कनकस्य भयं सुवर्णकाराणाम्।
अर्थक्षयस्तृतीये कलहः शस्त्रप्रकोपश्च।।३०।।

और भी कहते हैं–

इसके अनन्तर द्वितीय भाग की दिशा में सुवर्ण का नाश और स्वर्णकारों को भय उत्पन्न होता है। तृतीयभाग में शकुन होने पर कलह तथा शस्त्र-प्रकोप अर्थात् युद्ध होता है।।३०।।

तदनन्तदिशि पूर्वस्यां परतो द्वितीयभागे स्थिते दीप्ते कनकस्य सुवर्णस्य नाशो भवति, सुवर्णकाराणां च सम्बन्धि भयं भवति। तृतीय भागे अर्थक्षयो वित्तनाशः कलहः शस्त्रप्रकोपश्च।।३०।।

अनन्तर दिशा अर्थात् पूर्वदिशा के बाद दूसरे भाग में शकुन के दीप्त होने पर सुवर्ण का नाश और स्वर्णकार सम्बन्धित भय उत्पन्न होता है। तीसरे भाग में शकुन के होने पर धन का नाश, कलह और शस्त्र का प्रकोप होता है।।३०।।

अन्यदप्याह–

अग्निभयं च चतुर्थे भयमाग्नेये च भवति चौरेभ्यः।
कोणादपि द्वितीये धनक्षयो नृपसुतविनाशः।।३१।।

और भी कहते हैं–

पूर्वदिशा के चतुर्थ भाग में शकुन होने पर अग्निभय होता है और अग्नि-कोण

में चोरों का भय तथा अग्निकोण से दूसरे भाग में सम्पत्ति का विनाश होता है और राजकुमार की मृत्यु होती है॥३१॥

चतुर्थे प्राग्भागादग्निभयं भवति। आग्नेये च कोणे चौरेभ्यस्तस्करेभ्यो भयं भवति। कोणादपि आग्नेयकोणात् तृतीयभागे धनस्य वित्तस्य क्षयः। नृपसुत-विनाशो राजपुत्रस्य विनाशः क्षयो म्रियत इत्यर्थः।।३१।।

पूर्वदिशा से चतुर्थ भाग में शकुन होने पर अग्नि का भय होता है। अग्निकोण में शकुन होने पर चोर अर्थात् तस्करों का भय होता है। अग्निकोण से दूसरे भाग में धन का क्षय और राजा के पुत्र की मृत्यु होती है॥३१॥

विशेष व्याख्या–

मूल स्वरूप में "कोणादपि द्वितीये" यह पाठ है तथा विवृति में "आग्नेय-कोणात् तृतीयभागे" यह उल्लेख है। यहाँ पर द्वितीयभाग ही मूल ग्रन्थ के अनुसार समुचित अर्थ करना चाहिए। द्वितीयभाग के स्थान पर तृतीय भाग का उल्लेख भ्रमवश हो गया है, अतः मैंने द्वितीय भाग ही शुद्ध मानकर अर्थ किया है।

अन्यदप्याह–

प्रमदागर्भविनाशस्तृतीयभागे भवेच्चतुर्थे च।
हैरण्यककारुकयोः प्रध्वंसः शस्त्रकोपश्च।।३२।।

और भी कहते हैं–

अग्निकोण से तृतीयभाग में शकुन होने पर स्त्री के गर्भ का विनाश और चतुर्थभाग में शकुन होने से सुवर्ण और शिल्पकार का विनाश एवं शस्त्र संघात होता है॥३२॥

कोणादाग्नेयात् तृतीयभागे स्थिते शकुने प्रमदा जाया तस्या गर्भविनाशो भवेत् स्यात्। चतुर्थे च भागे हैरण्यकः सुवर्णादिविक्रयादिकः, कारकः, शिल्पी, तयोः प्रध्वंसो विनाशो भवति। तथा शस्त्रकोपश्च।।३२।।

अग्निकोण से तृतीयभाग में शकुन होने पर स्त्री के गर्भ का विनाश होता है। चतुर्थभाग में सुवर्णादि विक्रय योग्य मूल्यवान् वस्तुओं का तथा कारुक अर्थात् शिल्पकार का विनाश तथा शस्त्र-प्रकोप अर्थात् युद्ध होता है॥३२॥

अन्यदप्याह–

अथ पञ्चमे नृपभयं मारीमृतदर्शनं च वक्तव्यम्।
षष्ठे तु भयं ज्ञेयं गन्धर्वाणां सडोम्बानाम्।।३३।।

और भी कहते हैं–

पंचम भाग में शकुन होने पर राजा का भय, महामारी और मरे हुए लोगों का दर्शन होता है अर्थात् सामूहिक रूप से लोग मरते हैं। छठे भाग में गन्धर्वों और डोम जाति के लोगों का भय रहता है॥३३॥

अथानन्तरं पञ्चमे भागे नृपभयं राजभयं भवति। मारी तत्र जनानां मरको भवति। मृतस्य पुरुषस्य दर्शनमवलोकनं वक्तव्यं वाच्यम्। षष्ठे भागे गन्धर्वाणां गायनानां सडोम्बानां डोम्बसहितानां भयं भवति। तेभ्यो भयं भवतीत्यर्थः॥३३॥

इसके अनन्तर पंचमभाग में शकुन होने पर राजा का भय होता है। उस समय महामारी अर्थात् लोगों की मृत्यु होती है। इस स्थिति में मरे हुए लोगों के दिखाई पड़ने का फलादेश करना चाहिए। छठें भाग में गन्धर्वों अर्थात् गायकों का और डोम जनों का भय होता है। अर्थात् गन्धर्व तथा डोम इन दोनों से भय उत्पन्न होता है॥३३॥

अन्यदप्याह–

धीवरशाकुनिकानां सप्तमभागाद् भयं भवति दीप्ते।
भोजनविघात उक्तो निर्ग्रन्थभयं च तत्परतः॥३४॥

और भी कहते हैं–

सप्तम भाग में शकुन होने पर मछली मारने वाले और पक्षी मारने वालों से भय होता है। अष्टम भाग में शकुन होने से भोजन का विनाश और नागा साधुओं से भय होता है॥३४॥

सप्तमभागे दीप्ते शकुने धीवरः प्रसिद्धः। शाकुनिकः पक्षिघाती। तेभ्यः सकाशाद्भयं भवति। तत्परतोऽष्टमभागे भोजनस्याशनस्य विघातो नाश उक्तः कथितः। निर्ग्रन्थो नग्नक्षपणकस्तमाच्च भयं भवति॥३४॥

सातवें भाग में दीप्त शकुन हो तब धीवर अर्थात् मछुवारे और शाकुनिक अर्थात् चिड़िमारों से भय होता है। तदनन्तर अष्टम भाग में भोजन का विनाश (नष्ट होना) कहा गया है। इसमें निर्ग्रन्थ अर्थात् नागा-संन्यासियों से भय उत्पन्न होता है॥३४॥

अन्यदप्याह–

कलहो नैर्ऋतभागे रक्तस्रावोऽथ शस्त्रकोपश्च।
अपराद्धे चर्मकृतं विनश्यते चर्मकारभयम्॥३५॥

और भी कहते हैं-

नैर्ऋत्यभाग में शकुन होने से कलह, रक्तपात और युद्ध होता है। पश्चिम दिशा के प्रथमभाग में शकुन होने पर चमड़े सम्बन्धित वस्तुओं का विनाश और चर्मकारों से भय होता है।।३५।।

नैर्ऋतकोणे कलहो रक्तस्रावोऽसृक्स्रुतिः। शस्त्रकोपः संग्रामश्च भवति। अपरार्द्धे पश्चिमप्रथमभागे चर्मकृतं चर्ममयं वस्त्रोपानहादिकं विनश्यते नाशं याति। चर्मकारभयं चर्मकाराच्च भीतिर्भवति।।३५।।

नैर्ऋत्यकोण में कलह और रक्तस्राव अर्थाथ् रक्तपात और शस्त्र-कोप अर्थात् युद्ध होता है। अपर अर्थात् पश्चिमदिशा के प्रथमभाग में चमड़े के पदार्थ, उसके वस्त्र एवं जूते आदि विनष्ट होते हैं और चर्मकारों से भय होता है।।३५।।

अन्यदप्याह—

तदनन्तरे परिव्राट् श्रवणभयं तत्परे त्वनशनभयम्।
वृष्टिभयं वारुण्ये श्वतस्कराणां भयं परतः।।३६।।

और भी कहते हैं-

इसके बाद दूसरे भाग में शकुन होने पर घुमक्कड़ संन्यासियों और बौद्ध भिक्षुओं से भय होता है। तत्पश्चात् भाग में (तृतीयभाग में) शकुन होने पर खाद्य पदार्थों से भय अर्थात् खाद्यान्न की न्यूनता रहने का भय होता है। पश्चिमदिशा में शकुन होने पर वर्षा का भय और उसके अनन्तर भाग में शकुन होने पर कुत्ते तथा तस्करों का भय होता है।।३६।।

तदनन्तरं द्वितीये भागे परिव्राजकस्य तपस्विनो भयं श्रवणाच्छाक्यभिक्षोश्च भयं भवति। तत्परे तृतीये भागे त्वनशनभयमुपवासभीतिर्भवति। वारुण्ये पश्चिमायां वृष्टिभयं वर्षणाद् भीतिर्भवति। परतोऽनन्तरमन्यस्मिन् भागे श्वतस्कराणां सारमेयानां चौराणां च सम्बन्धि भयं भवति।।३६।।

इसके अनन्तर द्वितीय भाग में शकुन होने पर परिव्राजक अर्थात् तपस्वियों का और शाक्य-भिक्षुकों (बौद्ध भिक्षुओं) से भय उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् तीसरे भाग में शकुन होने पर उपवास रहने का भय होता है। वरुण अर्थात् पश्चिमदिशा में शकुन होने पर वर्षा का भय होता है। इसके बाद के भाग में श्व (श्वान) अर्थात् कुत्ते का और तस्कर अर्थात् चोरों का भय होता है।।३६।।

अन्यदप्याह—

वायुग्रस्तविनाशः परे परे शस्त्रपुस्तवार्तानाम्।

कोणे पुस्तकनाशः परे विषस्तेनवायुभयम्।।३७।।

और भी कहते हैं–

तदनन्तर दिशा में शकुन पर वायुग्रस्तता अर्थात् वातरोग से विनाश और तदनन्तर भाग में शकुन होने पर शस्त्रों और पुस्तकों से आजीविका रखने वालों का विनाश होता है। वायव्य कोण में पुस्तकों का नाश और तदनन्तर भाग में शकुन होने पर विष, चोर और वायु का भय उत्पन्न होता है।।३७।।

तत्परतो भागे वायुग्रस्तविनाशः, वायुनाऽनिलेन ग्रस्तः क्रोडीकृतो वायुग्रस्तो वातादिना विनाशो मरणं भवति। परे परभागेऽन्यस्मिन् शस्त्र-पुस्तवार्तानां भवति। शस्त्रमायुधम्, पुस्तं लिपिकर्म। शस्त्रपुस्तयोर्वार्ता वर्तनं येषां तेभ्यो भयं भवति। कोणे वायव्ये पुस्तकस्य विनाशो भवति। परे द्वितीये भागे विषस्तेनवायुकृतं भयम्, विषं प्रसिद्धम्, स्तेनश्चौरः, वायुर्मारुतः। एभ्यो भयं भवति।।३७।।

तदनन्तर भाग में वायु से ग्रस्त अर्थात् वातादि रोगों से विनाश अर्थात् मृत्यु होती है। उसके बाद वाले भाग में शकुन होने पर शस्त्र तथा पुस्त अर्थात् लिपिकर्म से व्यवहार (आजीविका) करने वाले लोगों से भय होता है। वायव्यकोण में पुस्तक अर्थात् शास्त्र का विनाश होता है। दूसरे भाग में विष और वायु के द्वारा तथा चोरों के द्वारा भय होता है।।३७।।

अन्यदप्याह–

परतो वित्तविनाशो मित्रैः सह विग्रहश्च विज्ञेयः।
तस्यासन्नेऽश्ववधो भयमपि च पुरोधसः प्रोक्तम्।।३८।।

और भी कहते हैं–

इसके अनन्तर भाग में शकुन होने पर धनहानि तथा मित्रों के साथ विरोध होता है। उसके दूसरे भाग में घोड़े का वध और पुरोहित का भय कहा गया है।।३८।।

परतोऽनन्तरमन्यस्मिन् भागे वित्तस्य धनस्य विनाशः क्षयो भवति। मित्रैः सुहृद्भिश्च सह विग्रहः कलहो विज्ञेयो ज्ञातव्यः। तस्यासन्ने निकटवर्तिनि द्वितीये भागे अश्वस्य तुरगस्य वधो मरणं भवति। पुरोधस आचार्यस्य भयं प्रोक्तं कथितम्।।३८।।

तदनन्तर भाग में धन का विनाश होता है और मित्रों के साथ कलह होता है, यह जानना चाहिए। उसके समीपवर्ती दूसरे भाग में शकुन होने पर तुरग (घोड़ा) का

वध अर्थात् मृत्यु होती है और पुरोहित आचार्य का भय कहा गया है॥३८॥

अन्यदप्याह–

गोहरणशस्त्रघातावुदक् परे सार्थघातधननाशौ।
आसन्ने च श्वभयं व्रात्यद्विजदासगणिकानाम्॥३९॥

और भी कहते हैं–

उत्तरदिशा में शकुन होने पर पशुओं का अपहरण तथा शस्त्र-प्रहार होता है। तदनन्तर भाग में सारथी (व्यापारी) के प्रहार का भय और धन के विनाश का भय होता है। तदनन्तर भाग में कुत्ते का भय और उपनीतब्राह्मण, सेवक और गणिकाओं का भय होता है॥३९॥

उदगुत्तरस्यां दिशि गोहरणं गवामपहरणं शस्त्रस्य च घातो विनाशो भवति। परे द्वितीये भागे सार्थस्य च घातो वधो धननाशो वित्तहानिश्च भवति। आसन्ने निकटवर्तिनि भागे श्वभयं सारमेयभयं च भवति। तथा व्रात्यद्विजदासगणिकानां भयं भवति। यस्य ब्राह्मणस्याष्टमाद् वर्षादारभ्य षोडशवर्षं यावदुपनयनं कृतं स व्रात्यो द्विजः। दासः कर्मकरः। गणिका वेश्या। एतासां सम्बन्धि भयं भवति॥३९॥

उत्तरदिशा में गायों का अपहरण और शस्त्रों का विनाश होता है। दूसरे भाग में सार्थ अर्थात् व्यापारीजनों का विनाश और धन की हानि होती है। उसके निकटवर्ती भाग में शकुन होने पर कुत्ते का भय होता है तथा व्रात्यद्विज, दास और गणिकाओं का भय होता है। जिस ब्राह्मण का आठवें वर्ष से आरम्भ कर सोलहवें वर्ष तक यज्ञोपवीत हो जाता है वह व्रात्यद्विज कहा जाता है। कर्मचारियों को दास और वेश्या को गणिका कहा जाता है। इन तीनों से सम्बन्धित भय उत्पन्न होता है॥३९॥

अन्यदप्याह–

ऐशानस्यासन्ने चित्राम्बरचित्रकृद्भयं प्रोक्तम्।
ऐशाने त्वग्निभयं दूषणमप्युत्तमस्त्रीणाम्॥४०॥

और भी कहते हैं–

ईशानकोण के समीपस्थ भाग में शकुन होने पर रंगीन कपड़ों और वस्त्र रंगने वाले लोगों को भय कहा गया है। ईशानकोण में शकुन होने पर अग्नि का भय और प्रमुख महिला की दुष्टता का भय होता है॥४०॥

ऐशानस्यासन्ने निकटवर्तिनि भागे चित्राम्बरस्य चित्रवस्त्रस्य चित्रकृतश्चित्रकरस्य सम्बन्धि भयं प्रोक्तं कथितम्। ऐशाने कोणे त्वग्निभयं हुतवहभीतिरुत्तमस्त्रीणां प्रधानयोषितामपि दूषणं दुष्टत्वं भवति।।४०।।

ईशानकोण के समीपवर्ती भाग में शकुन होने से चित्रित वस्त्रों और वस्त्र चित्रित करने वाले लोगों से सम्बन्धित भय कहा गया है। ईशानकोण में शकुन होने से आग का भय और प्रमुख महिला में दूषण अर्थात् दुष्टता उत्पन्न होती है।।४०।।

अन्यदप्याह—

प्रोक्तस्यैवासन्ने दुःखोत्पत्तिः स्त्रिया विनाशश्च।
भयमूर्ध्वं रजकानां विज्ञेयं काच्छिकानां च।।४१।।

और भी कहते हैं—

ईशानकोण के समीपवर्ती भाग में शकुन से दुःख प्राप्त होते हैं और स्त्रियों की मृत्यु होती है। इससे दूसरे भाग में शकुन होने पर रजक अर्थात् धोबी और काच्छिक अर्थात् सुगन्ध-निर्माताओं का भय होता है।।४१।।

प्राक् पूर्वस्यां दिशि तस्यैवैशानकोणस्यासन्ने निकटवर्तिनि भागे दुःखस्योत्पत्तिरागमः। स्त्रिया योषितो विनाशो मरणं भवति। ऊर्ध्वं द्वितीयभागे रजकानां वस्त्ररागकृतानां काच्छिकानां गन्धयोजकानां च सम्बन्धि भयं ज्ञेयं ज्ञातव्यम्।।४१।।

पूर्वदिशा में जो उसी ईशानकोण का समीपवर्ती भाग है, उसमें शकुन होने पर दुःख का आगमन होता है। स्त्रियों की मृत्यु होती है। तदनन्तर दूसरे भाग में शकुन होने पर रजक अर्थात् वस्त्रों को रंगने वाले और काच्छिक अर्थात् सुगन्धित पदार्थ तैयार करने वाले लोगों से सम्बन्धित भय को जानना चाहिए।।४१।।

अन्यदप्याह—

हस्त्यारोहभयं स्याद् द्विरदविनाशश्च मण्डलसमाप्तौ।
अभ्यन्तरे तु दीप्ते पत्नीमरणं ध्रुवं पूर्वे।।४२।।

और भी कहते हैं—

चक्र-मण्डल जहाँ समाप्त होता है उस स्थान पर शकुन के होने पर हाथी पर सवार लोगों का भय होता है और हाथियों की मृत्यु होती है। पूर्व-मध्यभाग में शकुन होने पर पत्नी की मृत्यु होती है।।४२।।

मण्डलसमाप्तौ मण्डलस्य द्वात्रिंशत्प्रविभक्तस्य यत्र समाप्तिस्तस्यां स्थिते

दीप्ते शकुने हस्त्यारोहेभ्यो भयं भवति। द्विरदो हस्ती तस्य च विनाशो मरणम्। अभ्यन्तरे तु मध्यभागे पूर्वे प्राग्भागे योऽरस्तस्मिन दीप्ते तत्रस्थे शकुने ध्रुवं निश्चितं पत्नीमरणम्, पत्नी भार्या तस्या मरणं भवति।।४२।।

मण्डल के जो ३२ भाग होते हैं उनकी समाप्ति (अन्तिम भाग) पर शकुन होने से हाथियों के सवारों से भय होता है। तथा द्विरद अर्थात् हाथी का विनाश (मृत्यु) होता है। अभ्यन्तर अर्थात् मध्यभाग में और पूर्वभाग में जो अरा (पंक्ति) है उसमें दीप्त अर्थात् दीप्तशकुन के होने पर निश्चित ही पत्नी की मृत्यु होती है।

अन्येष्वप्याह–

शस्त्रानलप्रकोपावाग्नेये वाजिमरणशिल्पिभयम्।
याम्ये धर्मविनाशोऽपरेऽग्न्यवस्कन्दचोक्षवधाः।।४३।।
अपरे तु कर्मिणां भयमथ कोणे चानिले खरोष्ट्रवधः।
अत्रैव मनुष्याणां विसूचिकाविषभयं भवति।।४४।।
उदगर्थविप्रपीडा दिश्यैशान्यां तु चित्तसन्तापः।
ग्रामीणगोपपीडा च तत्र नाभ्यां तथात्मवधः।।४५।।

अन्य भागों में शकुन का फल कहते हैं–

अग्निकोण में शकुन होने पर शस्त्र तथा अग्नि का प्रकोप, घोड़े की मृत्यु एवं शिल्पकार का भय होता है। दक्षिणभाग के अरे पर शकुन होने से धर्म का नाश होता है। तदनन्तर नैर्ऋत्यकोण में शकुन होने पर अग्नि, आक्रान्ता और चतुर लोगों का भय होता है।।४३।।

पश्चिमभाग के अरे पर शकुन होने से कार्मिकों का भय होता है। वायव्य-कोण में शकुन होने पर गदहा तथा ऊँट का वध होता है। यहाँ पर मनुष्यों को विसूचिका और विषय का भय भी कहना चाहिए।।४४।।

उत्तरदिशा के अरे पर शकुन होने से कार्मिकों का भय होता है। वायव्य-कोण में शकुन होने पर गदहा तथा ऊँट का बध होता है। यहाँ पर मनुष्यों को विसूचिका और विष का भय भी कहना चाहिए।।४४।।

उत्तरदिशा के अरे पर शकुन होने से धन और विप्रों की पीड़ा होती है। ईशान दिशा में मनस्ताप और ग्रामीण गोपालकों को कष्ट कहना चाहिए। नाभि अर्थात् केन्द्र में शकुन होने पर स्वयं की मृत्यु होती है।।४५।।

शस्त्रानलेति। आग्नेये कोणे योऽरस्तत्रस्थे दीप्ते शकुने शस्त्रप्रकोपोऽनलस्याग्नेश्च प्रकोपो भवति। वाजिमरणमश्वविनाशः। शिल्पियो लेखपुस्तक-चित्रकृद्भ्यो भयं

भवति। याम्ये दक्षिणेऽरे धर्मविनाशः। अपरे नैर्ऋते अग्निर्हुताशनः। अवस्कन्द उपर्यागमनम्। चोक्षो दुष्ट इति प्रसिद्धः। एभ्यो वधो मरणं भवति।।४३।।

अग्निकोण में जो अरा होता है उसमें दीप्त अर्थात् दीप्त शकुन के होने पर शस्त्र का प्रकोप और अग्नि का प्रकोप होता है। घोड़े का विनाश और शिल्पी अर्थात् लेखक, पुस्तक-रचयिता और चित्रकारों से भय होता है। दक्षिण अरे पर धर्म की हानि एवं नैऋत्यकोण के अरे पर शकुन होने से अग्नि का भय होता है। अवस्कन्द अर्थात् किसी के ऊपर आक्रमण करने वाले आक्रान्ताओं तथा चोक्ष अर्थात् दुष्ट लोगों से मृत्यु होती है।।४३।।

अपरे त्विति। अपरे पश्चिमे भागे योऽरस्तत्रस्थे शकुने कर्मिणां सम्बन्धि भयं भवति। अथान्तरमनिले वायव्येऽरे खराणां गदर्भानामुष्ट्राणां करभाणां च वधो मरणं भवति। अत्रैव वायव्ये मनुष्याणां पुंसां विसूचिकाभयमुदरशूलभीतिर्विषभयं च भवति।।४४।।

पश्चिमभाग में स्थित अरे पर शकुन होने से कर्मकरों से सम्बन्धित भय होता है। तदनन्तर अनिल अर्थात् वायव्य कोण के अरे पर शकुन होने से खर अर्थात् गदहा और ऊँटों का वध अर्थात् मृत्यु होती है। इस वायव्यकोण में मनुष्यों को विसूचिका अर्थात् उदर-व्यथा और विष का भय होता है।।४४।।

उदगुत्तरस्यां योऽरस्तत्रार्थस्य धनस्य विप्राणां ब्राह्मणानां च पीडा भवति। ऐशान्यां दिशि अरे चित्तस्य मनसः सन्तापो भवति। सन्तापश्चित्तविभेदः। तत्र तस्मिन्नेवैशाने भागे ग्रामीणगोपपीडा भवति। ग्रामीणा ग्राम्यजनाः। गोपा गोपालकाः। एभ्यः पीडा। तथा नाभ्यां दीप्तायामात्मवध आत्मनो वधो मरणं भवतीति।।४५।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सर्वशाकुनेऽन्तरचक्रं

नाम षडशीतितमोऽध्यायः।।८६।।

उत्तरदिशा में स्थित अरे पर शकुन होने से धन का कष्ट और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। ईशानकोण में स्थित अरे पर शकुन हो तब मन का सन्ताप होता है। चित्त के विभेद अर्थात् दुःख को सन्ताप कहते हैं। इसी ईशानभाग के शकुन से ग्रामीण लोगों और गोपालकों से पीड़ा होती है। नाभिभाग पर शकुन से अपनी ही मृत्यु (आत्महत्या) होती है।।४५।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में सर्वशाकुनेऽन्तरचक्र नामक छियासीवें

अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८६।।

❁ ❁ ❁

।।अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।

विरुताध्यायः

अथ विरुताध्यायो व्याख्यायते।

तत्रादावेव दिवसचराणां संज्ञार्थमाह—

श्यामाश्येनशशघ्नवञ्जुलशिखिश्रीकर्णचक्राह्वया-
श्चाषाण्डीरकखञ्जरीटकशुकध्वाङ्क्षाः कपोतास्त्रयः।
भारद्वाजकुलालकुक्कुटखरा हारीतगृध्रौ कपिः
फेण्टः कुक्कुटपूर्णकूटचटकाः प्रोक्ता दिवासञ्चराः।।१।।

विरुताध्याय ८७ की व्याख्या की जाती है।

सर्वप्रथम दिन में संचरणशील-पक्षियों के नाम बतलाते हैं—

श्यामा, बाज, शशघ्न, वंजुल, मयूर, श्रीकर्ण, चकवा, चाष, अण्डीरक, खञ्जरीट, तोता, कौआ, कबूतर तीनों प्रकार के, भारद्वाज, जलमुर्गी, खर (गदहा), हारीत पक्षी, गिद्ध, वानर, फेण्ट पक्षी, मुर्गा, पूर्णकूट, गौरैया; ये सभी दिन में संचरण करने वाले कहे गये हैं।।१।।

श्यामा पोतकी। श्येनो वाजिकः। शशघ्नः पक्षी। वञ्जुलः खदिरचञ्चुः। शिखी मयूरः। श्रीकर्णः पक्षी। चक्राह्वयश्चक्रवाकः। चाषः। अण्डीरकः। खञ्जरीटः। शुकः। एते सर्व एव पक्षिणः। ध्वाङ्क्षः काकः। कपोतास्त्रयः। आपाण्डुरश्चित्रकपोतः कुङ्कुमधूम्रश्चेति। भारद्वाजः पक्षी। कुलालकुक्कुटो गर्ता कुक्कुटः। खरो गर्दभः। हारीतगृध्रौ पक्षिणौ। कपिर्वानरः। फेण्टः पक्षिविशेषः। कुक्कुटः कुकवाकु। पूर्णकूटः करायिकः। चटकः कलविङ्कः। एते सर्वे दिवासञ्चरा दिवसचरा उक्ताः कथिता।:।।१।।

श्यामा अर्थात् पोतकी पक्षी, श्येन अर्थात् बाज पक्षी, शशघ्न अर्थात् बाज के सदृश एक अन्य पक्षी, वंजुल अर्थात् खैर के समान लम्बी चोंच वाला पक्षी, शिखी अर्थात् मयूर, श्रीकर्ण पक्षी, चक्र नामक चक्रवाक अथवा चकवा पक्षी, चाष अर्थात् चाख पक्षी, अण्डीरक नामक पक्षी, खञ्जरीट अर्थात् खिड़लीच पक्षी, शुक अर्थात् तोता; ये सभी पक्षीगण तथा ध्वाङ्क्ष अर्थात् कौआ, पीले वर्ण के तथा चितकबरे और

कुंकुमधूम्र वर्ण वाले तीनों प्रकार के कबूतर, भारद्वाज अर्थात् भरदूल पक्षी, कुलाल कुक्कुट अर्थात् गड्ढे में रहने वाला मुर्गा जिसे जलमुर्गा कहा जाता है, खर अर्थात् गदहा (गर्दभ) हारीत और गिद्ध पक्षी, कपि अर्थात् बन्दर, फेण्ट नामक विशेष पक्षी, कुक्कुट अर्थात् मुर्गा, पूर्णकूट अर्थात् करायिक और चटक (गौरैया) अर्थात् कलविङ्क ये सभी दिन में विचरण करने वाले कहे गये हैं॥१॥

अथ ये रात्रिसंज्ञास्तेषां च फलमाह—

लोमाशिका पिङ्गलछिप्पिकाख्यौ
वल्गुल्युलूकौ शशकश्च रात्रौ।
सर्वे स्वकालोत्क्रमचारिणः स्यु-
र्देशस्य नाशाय नृपान्तदा वा॥२॥

रात्रिचारी पक्षियों के नाम एवं उनके फल कहते हैं

लोमशिका, पिङ्गल, छिप्पिका, वल्गुली, उल्लू और खरगोश; ये प्राणी रात्रि में विचरण करते हैं, ये सभी यदि अपने निर्धारित समय के विपरीत काल में विचरण करते हैं, तब देश का विनाश करने वाले अथवा राजा को समाप्त करने वाले होते हैं॥२॥

लोमाशिका प्रसिद्धा प्राणिविशेषः। पिङ्गल उलूकचेटी। छिप्पिकाख्यः पक्षिविशेषः। छिप्पिकेत्याख्या नाम यस्य। वल्गुली चर्मचटिका। उलूकः। शशकः प्राणी। एते रात्रौ चरन्ति। रात्रिचरा वा यदि दिवाचरास्तदा स्वकालोत्क्रमचारिणः। ते च देशस्य जनपदस्य नाशाय क्षयाय स्युर्भवेयुः। नृपस्य राज्ञोऽन्तदा वा मृत्युकराः स्युः॥२॥

लोमाशिका नामक एक प्रसिद्ध प्राणी (गीदड़), पिंगल अर्थात् उलूकचेटी अर्थात् छोटा उल्लू, छिप्पिका नामक विशेष पक्षी, वल्गुली अर्थात् चर्मचटिका (चमगादड़) अथवा गीदड़, उल्लू और खरगोश नामक प्राणी, ये सभी रात्रि विचरण करते हैं। यदि रात्रिचर दिन में विचरण करने लगे अथवा दिन में चलने वाले रात्रि में संचरण करने लगें तो वे अपने निर्धारित काल का अति-क्रमण करते हैं। इस स्थिति में वे उस देश के लिए विनाशक सिद्ध होते हैं। साथ ही राजा की मृत्यु के कारक होते हैं॥२॥

अथोभयचारिण आह—

हयनरभुजगोष्ट्रद्वीपिसिंहर्क्षगोधा
वृकनकुलकुरङ्गश्वाजगोव्याघ्रहंसाः।

पृषतमृगशृगालश्वाविदाख्यान्यपुष्टा
द्युनिशमपि बिडालः सारसः सूकरश्च।।३।।

उभयचारी प्राणियों के विषय में कहते हैं–

घोड़ा, मनुष्य, सर्प, ऊँट, हाथी, सिंह, भालू, गोह, भेड़िया, नेवला, हरिण, कुत्ता, बकरा, गाय, बाघ, हंस, पृषत, मृग, सियार, श्वाविद्, कोयल, बिलाव, सारस और सूअर; ये प्राणी दिन तथा रात्रि दोनों काल में संचरणशील होते हैं।।३।।

हयोऽश्वः। नरो मनुष्यः भुजगः सर्पः। उष्ट्रः करभः। द्वीपी चित्रकः। सिंहो हरिः। ऋक्षः प्राणी। गोधा प्राणिविशेषः। वृको मृगजातिः। नकुलः प्रसिद्धो विलेशयः प्राणी। कुरङ्गो हरिणः। श्वा सारमेयः। अजश्छागः। गौः प्रसिद्धा। व्याघ्रः प्राणिविशेषः। हंसः पक्षी। पृषतो मृगजातिः। मृगः प्रसिद्धः। शृगालः क्रोष्टुकः। श्वाविद् बिलेशयः प्राणी। श्वाविदित्याख्या नाम यस्य। अन्यपुष्टः कोकिलः। तथा विडालो मार्जारः। सारसः पक्षी। सूकरो वराहः। एते सर्वे द्युनिशमहोरात्रमपि चरन्ति। रात्रिचरा द्युचराश्चैत इत्यर्थः।।३।।

अश्व, मानव, सर्प, ऊँट, चित्रक, सिंह, ऋक्ष (भालू), गोधा (गोह नामक प्राणी विशेष), वृक अर्थात् पशु जाति का भेड़िया, नेवला एक प्रसिद्ध प्राणी है जो बिल में रहता है, कुरंग अर्थात् हरिण, कुत्ता, बकरा, गौ, बाघ, हंस पक्षी, पृषत नामक एक मृग विशेष, प्रसिद्ध मृग, सियार, श्वाविद् अर्थात् बिल में रहने वाला एक प्राणी जिसका नाम श्वाविद् है, अन्यपुष्ट अर्थात् कोयल, बिलाव, सारस पक्षी और सूअर; ये सभी रात्रि एवं दिन में दोनों ही समय संचरणशील होते हैं।।३।।

विशेष व्याख्या–विवृति में 'द्वीपी' का पर्याय चित्रक है परन्तु इस शब्द की व्युत्पत्ति (द्वाभ्याम् पाति) करने से हाथी शब्द ही उपयुक्त है। इसी प्रकार 'वृक्' शब्द का पर्याय मृग जाति दिया गया है, जबकि यह शब्द भेड़िया के लिए प्रसिद्ध है। जैसा कि अमरकोष २/५/७ में कहा गया है–कोक ईहामृगो वृकः।

अथैतेषां व्यवहारार्थं संज्ञामाह–

भषकूटपूरिकुरबककरायिकाः पूर्णकूटसंज्ञाः स्युः।
नामान्युलूकचेट्याः पिङ्गलिका पेचिका हक्का।।४।।
कपोतकी च श्यामा वञ्जुलकः कीर्त्यते खदिरचञ्चुः।
छुच्छुन्दरी नृपसुता वालेयो गर्दभः प्रोक्तः।।५।।
स्रोतस्तडागभेद्यैकपुत्रकः कलहकारिका च रला।
भृङ्गारवच्च विरुवति निशि भूमौ द्व्यङ्गुलशरीरा।।६।।

दुर्बलिको भाण्डीकः प्राच्यानां दक्षिणः प्रशस्तोऽसौ।
धिक्कारो मृगजातिः कृकवाकु कुक्कुटः प्रोक्तः।।७।।
गर्ताकुक्कुटकस्य प्रथितं तु कुलालकुक्कुटो नाम।
गृहगोधिकेति संज्ञा विज्ञेया कुड्यमत्स्यस्य।।८।।
दिव्यो धन्वन उक्तः क्रोडः स्यात् सूकरोऽथ गौरुस्रा।
श्वा सारमेय उक्तो जात्या चटिका च सूकरिका।।९।।

इन पक्षियों के नामों की व्यावहारिक संज्ञा को कहते हैं। पूर्णकूट पक्षी, भष, कूटपुरी, कुर्वक और करायिका नाम से जाने जाते हैं। उलूकचेटी पक्षी का पर्याय पिंगलिका, पेचिका और हक्का होता है।।४।।

कपोतकी की श्यामा और पोतकी संज्ञा है। वञ्जुल को खदिरचंचु कहा जाता है। छुछुन्दरी को नृपसुता तथा गर्दभ को वालेय कहा जाता है।।५।।

रला को स्रोतभेद्य, तडागभेद्य, एकपुत्रक और कलहकारिका कहा जाता है। यह भृङ्गार (भँवरा) के समान रात्रि में ध्वनि करती है। इसका शरीर भूमि पर दो अंगुल का होता है।।६।।

भाण्डीक को दुर्बलिक कहा जाता है। यह पूर्वदिशा के लोगों के लिए दक्षिण भागस्थ शुभ होता है। धिक्कार एक मृगजाति का नाम है। कुक्कुट (मुर्गा) को कृकवाकु कहा जाता है।।७।।

गर्ताकुक्कुट का प्रसिद्ध नाम कुलाल कुक्कुट (जलमुर्गी) है। कुड्यमत्स्य को गृहगोधिका कहते हैं।।८।।

दिव्य को धन्वन कहा जाता है। तथा सूकर (सुअर) को क्रोड एवं गौ को उस्रा कहा जाता है। कुत्ते का श्वा और सारमेय कहा जाता है। चटिका को अपनी जाति के कारण सूकरिका कहते हैं।।९।।

भषकूटपूरीति। भषः कूटपुरी कुरबकः करायिका एता सर्वाः पूर्णकूटस्य संज्ञा नामानि स्युर्भवेयुः। पिङ्गलिका पेचिका हक्का एतानि उलूकचेट्या नामानि।।४।।

भष, कूटपूरी, कुरबक तथा करायिका ये सभी पूर्णकूट की संज्ञाएँ होती हैं। पिंगलिका, पेचिका और हक्का ये नाम उलूकचेटी के कहे गये हैं।।४।।

कपोतकी की श्यामा पोतकीत्युच्यते। वञ्जुलः खदिरचञ्चुरिति कीर्त्यते

कथ्यते। छुच्छुन्दरी सुगन्धमूषिका नृपसुता राजपुत्री कीर्त्यते। गदर्भः खरो वालेयः प्रोक्त इति कथितः।।५।।

कपोतकी (कबूतरी) को श्यामा और पोतकी कहा जाता है। वंजुल को खुदिरचंचु कहते हैं। छुच्छुन्दरी को सुगन्धमूषिका, नृपसुता राजपुत्री कहा जाता है। गर्दभ (गदहा) को खर और वालेय कहा जाता है।।५।।

स्रोत इति। स्रोतोभेद्यस्तडागभेद्य एकपुत्रकः। कलहकारिका च एतैर्नामभी रला इति ज्ञेया। सा च निशि रात्रौ भृङ्गारवद्विरुवति वाशति भृङ्गारो १दांदानी दमनी। भृङ्गारेण तुल्यं भृङ्गारवत्। तद्वत् शब्दं करोति। हुङ्कारमुच्चरतीत्यर्थः। केचिद् भृङ्गारः पक्षिविशेष इतीच्छन्ति। निशि रात्रौ, किं प्रमाणा द्व्यङ्गुलशरीरा द्व्यङ्गुलप्रमाणं शरीरं यस्याः।।६।।

स्रोतभेद्य, तडागभेद्य, एकपुत्रक और कलहकारिका नाम से रला को जानना चाहिए। वह रला रात्रि में भृंग की तरह शब्द करती है। भृंग को दांदानी तथा दमनी कहा जाता है। भृङ्गार (भृंग) भँवरा के समान हुंकारपूर्वक उच्चारण करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार भृङ्गार एक विशेष पक्षी का नाम है। रात्रि में जिसका शरीर दो अंगुल के प्रमाण (मान) का होता है।।६।।

दुर्बलिक इति। भाण्डीको दुर्बलिकः प्रोक्तः। असौ दुर्बलिकः प्राच्यानां पूर्वदेशभवानां दक्षिणः प्रशस्तः। अथदिवान्येषां सर्वेषां वामतः। धिक्कारो मृगजातिरुक्ता। कुक्कुटः कृकवाकुरिति प्रोक्तः कथितः।।७।।

भाण्डीक को दुर्बलिक कहा गया है। यह दुर्बलिक पूर्वदेश के निवासियों के लिए दक्षिणभाग में रहता हुआ शुभ कहा गया है अर्थात् शेष अन्य देशों के निवासियों के लिए वामभाग में शुभ होता है। धिक्कार नामक जीव एक मृग जाति को कहा गया है। कुक्कुट (मुर्गा) को कृकवाकु कहते हैं।।७।।

गर्ताकुक्कुटस्येति। गर्ता खातं तत्र य उक्तः कुक्कुटस्तस्य कुलालकुक्कुटेति नाम संज्ञा प्रथितं प्रख्यातम्। कुड्यमत्स्यस्य भित्तिमीनस्य गृहगोधिकेति संज्ञा नाम विज्ञेया विज्ञातव्या।।८।।

गर्ता अर्थात् खात (गड्ढा) में मिलने वाला कुक्कुट, कुलाल-कुक्कुट के नाम से प्रसिद्ध है। कुड्य-मत्स्य, भित्ति-मीन और गृहोधिका संज्ञा छिपकली की कही गयी है।।८।।

दिव्यो धन्वन इति। दिव्यो धन्वन इत्युक्तः कथितः। क्रोडः सूकरः स्याद् भवेत्। अथशब्दश्चार्थे। गौरुस्रेति ख्याता। श्वाकुक्कुरः सारमेय इति कथितः। जात्या प्रकृत्या या चटिका सा सूकरिकेत्युक्ता।।९।।

१. दांदानी दमनी इति टीकाकारदेशभाषेति।

दिव्य को धन्वन कहा गया है। सूकर (सूअर) को क्रोड नाम से जानना चाहिए। गाय उस्रा के नाम से प्रसिद्ध है। कुक्कुर, श्वा (श्वान) तथा सारमेय शब्द से जाना जाता है। जाति अर्थात् प्रकृति से जो चटिका है वह सूकरिका कही जाती है॥९॥

अत्रैवोपदेशार्थमाह–

एवं देशे देशे तद्विद्भ्यः समुपलभ्य नामानि।
शकुनरुतज्ञानार्थं शास्त्रे सञ्चित्य योज्यानि॥१०॥

यहाँ पर विशेष उपदेश करते हैं–

इस प्रकार ज्योतिषी शकुन के विद्वानों को, भिन्न-भिन्न देशों के जीवों के नाम को जानकर उनके शब्दों को शकुन-ध्वनि के जानने के निमित्त संग्रह कर इस शकुनशास्त्र में जोड़ना चाहिए॥१०॥

एवमनेन प्रकारेण देशे देशे विद्भ्यः शकुननामविद्भ्यो नामानि समुपलभ्य ज्ञात्वा शकुनानां शुभाशुभसूचकानां रुतज्ञानार्थं तच्छब्दज्ञानाय सञ्चित्य विचार्य शास्त्रे ग्रन्थे योज्यानि संयोजनीयानि॥१०॥

इस प्रकार विभिन्न देशों में शकुनों के नाम के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा उनके नामों को जानकर शुभाशुभ-सूचक शकुनों के शब्दों को ज्ञान हेतु संग्रह कर विचारपूर्वक शकुनशास्त्र में संयोजन किया जाना चाहिए॥१०॥

अथ वञ्जुलश्येनशुकगृध्राणां रुतलक्षणमाह–

वञ्जुलकरुतं तित्तिडिति दीप्तमथ किल्किलीति तत्पूर्णम्।
श्येनशुकगृध्रकङ्काः प्रकृतेरन्यस्वरा दीप्ताः॥११॥

वंजुल, श्येन, शुक और गृध्र पक्षियों की ध्वनि के लक्षण कहते हैं–

वञ्जुल की ध्वनि "तित्तिड' होने पर दीप्त माना जाता है और "किल-किल" शब्द हो तो पूर्ण अर्थात् उत्तम शब्द जानना चाहिए। श्येन (बाज), शुक (तोता) और गिद्ध तथा कंक पक्षियों की ध्वनि लोक प्रसिद्ध है। इसके प्राकृतिक उच्चारण से भिन्न ध्वनि होने पर दीप्तध्वनि समझनी चाहिए॥११॥

प्रकृतेः स्वभावतोऽन्यस्वरा विपरीतशब्दा दीप्ता उक्ताः। वञ्जुलकरुतं तित्तिडिति। यद्वञ्जुलकस्य रुतं तित्तिड्–इति दीप्तमशुभम्। यत् किल्किलीत्येतत्पूर्णं शुभम्। श्येनशुकगृध्रकङ्काः प्रसिद्धाः पक्षिणः। एते सर्वे प्रकृतेः स्वभावतोऽन्यस्वरा विपरीतशब्दा दीप्ता उक्ताः॥११॥

प्राकृतिक अर्थात् स्वाभाविक ध्वनि से विपरीत-स्वर को दीप्त कहा जाता है। वञ्जुल पक्षी का "तित्तिड' स्वर दीप्त अर्थात् अशुभ होता है। यदि "किल-किल" स्वर हो तो शुभ माना जाता है। श्येन, शुक, गृध और कंक प्रसिद्ध पक्षी हैं। इनकी ध्वनि स्वाभाविकता के विपरीत हो तब दीप्त अर्थात् अशुभ मानी गयी है॥११॥

अथ कपोतचेष्टितमाह–

यानासनशय्यानिलयनं कपोतस्य सद्मविशनं वा।
अशुभप्रदं नराणां जातिविभेदेन कालोऽन्यः॥१२॥
आपाण्डुरस्य वर्षाच्चित्रकपोतस्य चैव षण्मासात्।
कुङ्कुमधूम्रस्य फलं सद्यः पाकं कपोतस्य॥१३॥

कपोत की चेष्टाओं को बतलाते हैं–

यान (वाहन), आसन, शैय्या के ऊपर बैठना अथवा घर के भीतर प्रवेश करना मनुष्यों के लिए अशुभप्रदायक होता है। इनकी जातियों के आधार पर फल-परिपाक का काल निर्धारित किया जाता है॥१२॥

पाण्डु (श्वेतवर्ण के कबूतर) का फल एक वर्ष तथा रंग-बिरंगे कबूतर का फल छः माह में और कुंकम (लाल) तथा धूम्रवर्ण के कबूतर का फल तत्काल होता है॥१३॥

यानासनेति। यानमश्वादि। आसनं पीठम्। यत्रोपविश्यते। शय्या आस्तरणम्। एतेषु कपोतस्य निलयनं संश्लेषः सद्मविशनं वा गृहप्रवेशनं वा भवति। एतन्नराणां पुंसामशुभप्रदमनिष्टप्रदं भवति। अन्यः परः कालः समयः फलस्य जातिभेदेन योनिविशेषेण भवति॥१२॥

यान अर्थात् घोड़ा, हाथी इत्यादि, आसन अर्थात् सिंहासन, चौकी आदि। शय्या अर्थात् शयनोपयोगी खटिया, पलंग आदि पर कबूतर का बैठना (संयुक्त होना) अथवा घर में प्रवेश करना, यह मनुष्यों के लिए अनिष्ट फलदायक कहा गया है। इनका समय उनकी जातियों के भेद के अनुसार होता है॥१२॥

तं च कालमाह–आपाण्डुरस्येति। आपाण्डुरस्य श्वेतवर्णस्य कपोतस्य वर्षात् पाकः फलम्। विचित्रकपोतस्य नानावर्णस्य षष्मासात् षड्भिर्मासैः पाकः। कुङ्कुमवर्णस्य धूम्रवर्णस्य च कपोतस्य सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि पाकः फलं भवति॥१३॥

इनके फल-काल को कहते हैं–आपाण्डुर अर्थात् श्वेतवर्ण के कबूतर का

फल एक वर्ष में प्राप्त है। विविध वर्णों वाले कबूतर का फल छः मास में होता है। कुंकुम और धूम्रवर्ण के कबूतर का फल तत्काल अर्थात् उसी दिन हो जाता है॥१३॥

अधुना श्यामारुतमाह—

चिचिदिति शब्दः पूर्णः श्यामायाः शूलिशूलिति च धन्यः।
चच्चेति च दीप्तः स्यात् स्वप्रियलाभाय चिक्चिगिति।।१४।।

श्यामा के स्वर का लक्षण कहते हैं—

श्यामा पक्षी का ''चिचित्'' शब्द पूर्ण होता है तथा ''शूलि-शूलित'' शब्द धन्य अर्थात् शुभ माना गया है। ''चच्च'' शब्द दीप्त होता है जबकि ''चिक्-चिक्'' शब्द अपने स्वजन की प्राप्ति के लिए होता है॥१४॥

श्यामायाश्चिचिदिति शब्दः पूर्णस्तस्या एव शूलिशूलिति च शब्दो धन्यः शुभः। चच्चेति च शब्दो दीप्तोऽशुभः। स्याद् भवेत्। चिक्चिगिति च शब्दः स्वस्यात्मीयस्य प्रियस्य वल्लभस्य लाभाय प्राप्तये भवति।।१४।।

श्यामा चिड़िया का ''चिचित्'' शब्द पूर्ण और ''शूलि-शूलित'' शब्द धन्य अर्थात् अनुकूल कहा गया है। ''चच्च'' शब्द दीप्त अर्थात् अशुभ होता है। ''चिक्चिक्'' शब्द अपने आत्मीय प्रियव्यक्ति की प्राप्ति के लिए होता है॥१४॥

अथ हारीतभारद्वाज्यो रुतमाह—

हारीतस्य तु शब्दो गुग्गुः पूर्णोऽपरे प्रदीप्ताः स्युः।
स्वरवैचित्र्यं सर्वं भारद्वाज्याः शुभं प्रोक्तम्।।१५।।

हारीत और भारद्वाज के शब्दों को कहते हैं—

हारीत पक्षी का ''गुग्गु'' शब्द पूर्ण, अर्थात् शुभ और इससे भिन्न प्रकार का शब्द प्रदीप्त अर्थात् अशुभ होता है। भारद्वाज पक्षी का विचित्रप्रकार का स्वर शुभ कहा गया है॥१५॥

हारीतस्य तु गुग्गुशब्दः पूर्णः। अपरे अन्ये सर्व एव शब्दाः प्रदीप्ताः स्युर्भवेयुः। भारद्वाज्याः स्वराणां शब्दानां वैचित्र्यं नानात्वं सर्वं निःशेषं शुभं प्रशस्तं प्रोक्तं कथि-तम् ।।१५।।

हारीत (हारिल) पक्षी का ''गुग्गु'' शब्द पूर्ण तथा इससे भिन्न प्रकार का शब्द प्रदीप्त होता है। भारद्वाज (भर्दुल) पक्षी का स्वरवैचित्र्य अर्थात् विविध प्रकार के सभी स्वर शुभ कहे गये हैं॥१५॥

करायिकरुतमाह—

किष्किषिशब्दः पूर्णः करायिकायाः शुभः कहकहेति।
क्षेमाय केवलं करकेति न त्वर्थसिद्धिकरः।।१६।।
कोटुक्लीति क्षेम्यः स्वरः कटुक्लीति वृष्टये तस्याः।
अफलः कोटिकिलीति च दीप्तः खलु गुं कृतः शब्दः।।१७।।

करायिता के शब्दों को कहते हैं—

करायिक पक्षी का ''किष्किष्'' शब्द शुभ माने जाते हैं। इसका ''करकर'' शब्द केवल कल्याण के लिए होता है। इसमें अर्थ-सिद्धि नहीं होती है।।१६।।

इसका ''कोटुक्ली'' शब्द क्षेम के लिए और ''कटुक्ली'' शब्द वर्षाकारक होता है। ''कोटिकिली'' शब्द निष्फल होता है और ''गुं'' शब्द दीप्त अर्थात् अशुभ होता है।।१७।।

किष्किषीति। कारायिकायाः पूर्णकूट्याः किष्किषिशब्दः पूर्णः। कहकहेति शब्दः शुभः। करकरेति शब्दः केवलं क्षेमाय लब्धपालनाय। न त्वर्थसिद्धिकरोऽर्थसिद्धिं न करोति।।१६।।

करायिका अर्थात् पूर्णकूटी पक्षी का ''किष्किष'' शब्द पूर्ण एवं ''कहकह'' शब्द शुभ माना गया है। ''कर-कर'' शब्द केवल क्षेम अर्थात् लब्धवस्तु के पालन हेतु ही होता है। इससे अर्थ की सिद्धि नहीं होती है।।१६।।

कोटुक्लीति। तस्याः करायिकायाः कोटुक्लीति शब्दः क्षेम्यः क्षेमे साधुः। कटुक्लीति च शब्दो वृष्टये वर्षणाय भवति। देवो वर्षति। कोटि-किलीति चाफलो निष्फल इत्यर्थः। खलुशब्दश्चार्थे। गुं कृतः शब्दस्तस्या एव दीपः।।१७।।

इस करायिका के ''कोटुक्ली'' शब्द भरण-पोषण हेतु अच्छे होते हैं। ''कटुक्ली'' शब्द वर्षा के लिए शुभ होता है अर्थात् वर्षा होती है। ''कोटिकिली'' शब्द निष्फल होता है। इसका ''गुं'' शब्द दीप्त अर्थात् अशुभ समझना चाहिए।।१७।।

अथ दिव्यकचेष्टितमाह—

शस्त्रं वामे दर्शनं दिव्यकस्य
सिद्धिर्ज्ञेया हस्तमात्रोच्छ्रितस्य।

तस्मिन्नेव प्रोन्नतस्थे शरीराद्

धात्री वश्यं सागरान्ताभ्युपैति।।१८।।

दिव्यक की चेष्टाओं को कहते हैं–

दिव्यक पक्षी का वामभाग में दर्शन हो तो शुभ होता है। यदि एक हाथ की ऊँचाई पर दिखाई पड़े तो कार्य की सिद्धि समझनी चाहिए। यदि वह अपने शरीर से सामने ऊँची उठी हुई दिखाई पड़े तो निश्चय ही समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का अधिकार मिलता है।।१८।।

दिव्यकस्य धन्वनस्य वामे वामभागे दर्शनमवलोकनं शस्तं शुभम्। तत्रैव वामभागे भूमेर्हस्तमात्रोच्छ्रितस्य शयप्रमाणोच्चस्य सिद्धिरभीष्टा कार्याणां च ज्ञेया। तस्मिन्नेव वाभागे यातुः शरीराद् देहात् प्रोन्नतस्थ उच्चतरो भवति, तदा धात्री भूर्वश्यं विधेयित्वं सागरान्ता समुद्रपर्यन्ताभ्युपैत्युपगच्छति। उक्तं च–

वामे शस्तो धन्वनः सिद्धि-

दाता प्रोत्तुङ्गश्चेद्धस्तमात्रं जयाय।

आकायं चेदुन्नतो वामभागे

पृथ्वीलाभं बन्धुनाशं करोति।। इति।।१८।।

दिव्यक अर्थात् धन्वन का अपने वामभाग में दर्शन हो तो शुभ होता है। उसी वामभाग में यदि वह पृथ्वी से एक हाथ ऊँची दिखाई पड़े तब अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। उसी वामभाग में यदि दर्शक के शरीर से अधिक ऊँचाई पर हो तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी उसके अधीन हो जाती है। जैसा कि कहा गया है–

वामभाग में स्थित धन्वन सिद्धिदायक और एक हाथ ऊँचा विजय प्रदायक होता है। यदि वामभागस्थ धन्वन शरीर पर्यन्त उन्नत हो तो पृथ्वी का लाभ और बन्धुओं का विनाशक होता है।।१८।।

अथ सर्पचेष्टितमाह–

फणिनोऽभिमुखागमोऽरिसङ्गं

कथयति बन्धुवधात्ययं च यातुः।

अथवा समुपैति सव्यभागात्

न स सिद्ध्यै कुशलो गमागमे च।।१९।।

सर्पों की चेष्टाओं को कहते हैं–

सर्प का अपने सामने आगमन हो रहा हो तो शत्रु का सामना होता है और बन्धुओं का वध तथा विनाश होता है। यदि दक्षिणभाग से वामभाग की ओर जाये तब वह सिद्धिकारक तथा यात्रा में कुशलताकारक नहीं होता है॥१९॥

फणिनः सर्पस्याभिमुखागमोऽरिसङ्गं शत्रुसंयोगं यातुः कथयति वक्ति। अथवा बान्धवानां वधो मरणमत्ययो विनाशः। अथ सव्यभागाद् दक्षिणभागाद्वामभागे समुपैत्यायाति तदा स सर्पः सिद्ध्यै गमागमे न कुशलः शस्तो न भवति॥१९॥

फणि अर्थात् सर्प का सम्मुख आगमन होने पर द्रष्टा को शत्रु का संयोग होता है। अथवा बन्धुओं का मरण और विनाश प्राप्त होता है। सव्य अर्थात् दक्षिणभाग से वामभाग में यदि सर्प जाता हुआ दिखाई पड़े तब वह सर्प, कार्यसिद्धि के लिए अथवा गमनागमन (यात्रा) के लिए अनुकूल एवं उत्तम नहीं होता है॥१९॥

अथ खञ्जनकचेष्टिमाह—

अब्जेषु मूर्धसु च वाजिगजोरगाणां
राज्यप्रदः कुशलकृच्छुचिशाद्वलेषु।
भस्मास्थिकाष्ठतुषकेशतृणेषु दुःखं
दृष्टः करोति खलु खञ्जनकोऽब्दमेकम्॥२०॥

खञ्जन की चेष्टाओं को कहते हैं–

खञ्जन (खिड़लिच पक्षी) कमलपुष्प पर और घोड़ा, हाथी तथा सर्प के सिर पर बैठा हुआ दिखलायी पड़े तब वह राज्य-लाभ कराता है। वह यदि पवित्रस्थान और दूर्वा आदि सुरम्य-स्थल पर देखा जाये तब वह शुभफल करता है। वह भस्म, हड्डी, काष्ठ, भूसा, केस तथा तिनके आदि पर दिखायी पड़े, तब वह एक वर्ष तक दुःख प्रदान करता है॥२०॥

खञ्जनकोऽब्जेषु पद्मादिषु तथा वाजिनोऽश्वाः, गजा हस्तिनः, उरगाः सर्पाः, एतेषां मूर्धसु मस्तकेषु दृष्टो राज्यप्रदो भवति। तथा शुद्धप्रदेशे शाद्वलेषु—दूर्वासु च दृष्टः कुशलकृत् कुशलं करोति शुभफलकृद्वा भवति। भस्मनि अस्थि-काष्ठतुषकेशतृणेषु दृष्टोऽब्दं वर्षमेकं दुःखं करोति। खलुशब्दः आगम-द्योतनार्थः॥२०॥

खञ्जनपक्षी अब्ज अर्थात् कमल के फूलों पर तथा अश्व, गज तथा सर्प इनके मस्तकों पर दिखायी पड़े तब वह राज्यप्रदायक होता है। यदि वह शुद्ध प्रदेश में तथा

दूर्वा इत्यादि अच्छे स्थान पर दिखाई पड़े तो शुभफल करने वाला होता है। भस्म, अस्थि, काष्ठ, भूसा, केश और तिनके पर दिखाई पड़े तब एक वर्ष तक दुःख देता है॥२०॥

अथ तित्तिरशशकयोश्चेष्टितमाह—

किलिकिल्किलि तित्तिरस्वनः
शान्तः शस्तफलोऽन्यथापरः।
शशको निशि वामपार्श्वगो
वाशन् शस्तफलो निगद्यते॥२१॥

तीतर (चकोर) और शशक अर्थात् खरगोश की चेष्टाओं को कहते हैं—

तीतरपक्षी का "किल्किल्" शब्द शान्त माना गया है जो कि उत्तम फल देता है। इससे भिन्न प्रकार का स्वर अनिष्टकारक होता है। खरगोश रात्रि में बायीं ओर शब्द करता हुआ प्रशस्तफलकारक कहा गया है॥२१॥

तित्तिरस्वनः किलिकिल्किलीति शान्तः। स च शस्तफलः शोभनः। अपरोऽयोऽन्यथा प्रदीप्त इत्यर्थः। स चाशस्तफलः। शशको निशि रात्रौ वामपार्श्वगो वामभागतो वाशन् विरुवन् शस्तफलः शोभनफलो निगद्यते कथ्यते॥२१॥

तीतर का "किलकिली" शब्द शान्त होता है और यह सुन्दर फल देता है। इससे अन्यथा शब्द प्रदीप्त समझना चाहिए और यह अशुभ फल देता है। शशक अर्थात् खरगोश रात्रि में वामभाग की ओर शब्द करता हुआ हो, तब शुभफल कहा जाता है॥२१॥

अथ कपिकुलालकुक्कुटयो रुतमाह—

किलिकिलिविरुतं कपेः प्रदीप्तं
न शुभफलप्रमदमुद्दिशन्ति यातुः।
शुभमपि कथयन्ति चुग्लुशब्दं
कपिसदृशं च कुलालकुक्कुटस्य॥२२॥

वानर और मुर्गे के शब्दों को कहते हैं—

वानर का "किलिकिलि" शब्द प्रदीप्त कहा गया है। यात्रा करने वाले के लिए इस प्रकार का शब्द शुभ नहीं कहा गया है। "चुग्लु" शब्द शुभ होता है। वानर के

शब्दों की भाँति ही कुलाल-कुक्कुट का भी फल समझना चाहिए।।२।।

कपेर्वानरस्य किलिकिलिविरुतं प्रदीप्तं तच्च यातुर्गमनेच्छोर्न शुभफलप्रदमुद्दिशन्ति कथयन्ति। चुग्लुशब्दं च शुभफलं कथयन्ति। कुलालकुक्कुटस्य रुतं कपिसदृशं वानरतुल्यमिति। यथैवं कपिदीप्तशान्तविरुतमुक्तं तथैव कुलाल-कुक्कुटस्येति।।२२।।

वानर की "किलिकिलि" ध्वनि प्रदीप्त होती है, जो कि गमनेच्छु व्यक्ति के लिए शुभ नहीं कही गयी है। "चुग्लु" शब्द को आचार्यगण शुभ फलदायक कहते हैं। कुलाल-कुक्कुट की ध्वनि को वानर के समान ही जानना चाहिए। तात्पर्य यह है जिस प्रकार का शब्द वानर के लिए दीप्त और शान्त कहा गया है उसी प्रकार कुलालकुक्कुट का भी समझना चाहिए।।२२।।

विशेष व्याख्या—कुलाल कुक्कुट मुर्गे की एक विशेष प्रजाति को कहा गया है। जंगली मुर्गे के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। इसी को बोल-चाल में वनमुर्गा कहा जाता है। द्रष्टव्य संस्कृत हिन्दी कोश, आप्टे, पृष्ठ २८८ ।।२२।।

अथ चाषविरुतचेष्टितमाह—

पूर्णाननः कृमिपतङ्गपिपीलकाद्यै-
श्चापः प्रदक्षिणमुपैति नरस्य यस्य।
खे स्वस्तिकं यदि करोत्यथवा यियासो-
स्तस्यार्थलाभमचिरात् सुमहत् करोति।।२३।।

चाख के शब्दों को कहते हैं–

चाख (नीलकण्ठ) पक्षी अपने मुख में कीट, पतंग, चीटें आदि भरकर जिस व्यक्ति के दक्षिण भाग से उड़ता हुआ जाये अथवा आकाश में स्वस्तिक-चिह्न के समान उड़ता हुआ दिखाई पड़े तो उस यात्री को शीघ्र ही पर्याप्त धन का लाभ होता है।।२३।।

यस्य नरस्य चाषः कृमिभिः सरीसृपैः पतङ्गैः शलभैः पिपीलका प्रसिद्धा-स्ताभिः। आद्याग्रहणादन्यैरपि प्राणिभिः पूर्णाननः परिपूरितवक्त्रः प्रदक्षिण-मुपैति प्रादक्षिण्येन याति। अथवा यस्य यियासोर्यातुमिच्छोः। खे नभसि स्वस्तिकं करोति स्वस्तिकवद्याति तस्यार्थलाभं वित्तलाभं सुमहदतिप्रभूतमचिराच्छीघ्रमेव करोति।।२३।।

चाख (चाष) पक्षी कीड़े अर्थात् शरीर से चलने वाले, पतंग अर्थात् उड़ने वाले फतिगें और पिपलिका अर्थात् सुप्रसिद्ध चीटी इत्यादि से मुख को भरकर प्रदक्षिण क्रम

से उड़ता हो अथवा जिस यात्री के आकाश के ऊपर (सिर के ऊपर) स्वस्तिक-क्रम से उड़ता हो, उसको प्रभूत-धन की प्राप्ति शीघ्र ही होती है। यहाँ पर ''आदि'' शब्द से कीट-पतंग के साथ ही किसी अन्य भी जन्तुओं को अपने मुख में लिए हुए हो, तो उसका भी यही फल समझना चाहिए।।२३।।

अन्यदप्याह–

चाषस्य काकेन विरुध्यतश्चेत्
पराजयो दक्षिणभागगस्य।
वधः प्रयातस्य तदा नरस्य
विपर्यये तस्य जयः प्रदिष्टः।।२४।।

और भी कहते हैं–

चाखपक्षी यदि कौवे के साथ लड़ता हुआ उसके दक्षिणभाग में जाकर पराजित हो जाये तब यात्रा करने वाले व्यक्ति का वध होता है। इसके विपरीत उसकी जय कही गयी है।।२४।।

यदि चाषस्य काकेन वायसेन सह विरुद्धतः कलहं कुर्वतः काकाद् दक्षिणभागगतस्य चाषस्य पराजयः, तदा तस्मिन् काले प्रयातस्य गतस्य नरस्य पुरुषस्य वधो मरणं भवति। विपर्यये विपरीते काकादुत्तरभागे गतस्य जयः प्रदिष्ट उक्तः। जये सति प्रयातस्य जय एव। उक्तं च–

पूर्णाननो यस्य करोति चाषः
प्रदक्षिणं स्वस्तिकमेव वा खे।
लाभो महांस्तस्य पराभवाय
काकेन भङ्गो विजयो जयश्च।।इति।।२४।।

यदि चाखपक्षी का कौवे के साथ युद्ध करते हुए कौवे से दक्षिणभाग में गये हुए चाख की पराजय हो जाती है, तब उस समय यात्रा के लिए निकले व्यक्ति का मरण होता है। इसके विपरीत कौवे से उत्तरभाग में गए हुए चाख से विजय कहा गया है। चाख के जीतने पर यात्री की विजय होती है। जैसा कि कहा गया है–

आहार से भरे हुए मुखवाला चाख दक्षिणभाग में हो अथवा आकाश में स्वस्तिक के क्रम में उड़ता हुआ हो तो उस समय यात्री को प्रचुर लाभ होता है। यदि कौवे के साथ युद्ध में चाख पराजित हो जाये तो यात्री की पराजय और चाख के जीतने परयात्री की जय होती है।।२४।।

अन्यदप्याह–

केकेति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे
चाषः करोति विरुतं जयकृत् तदा स्यात्।
क्रेक्रेति तस्य विरुतं न शिवाय दीप्तं
सन्दर्शनं शुभदमस्य सदैव यातुः।।२५।।

और भी कहते हैं–

यात्री के वामभाग में पूर्णकूट पक्षी के समान "केका" शब्द यदि चाख करता है तब उसके लिए जयकारक होता है। चाख का "क्रेक्रे" शब्द दीप्त होता है जो कि शुभदायक नहीं होता है। इस चाखपक्षी का यात्राकाल में दर्शन होना सदैव शुभदायक कहा गया है॥२५॥

चाषो वामपार्श्वे वामभागे केकेति विरुतं शब्दं करोति तथा पूर्णकुटवत् करायिकावत् किष्किषिकाहकहेति शब्दं करोति, तदा जयकृत् स्याद् भवेत्। तस्य चाषस्य क्रेक्रेति विरुतं दीप्तं तच्च न शिवाय न श्रेयसे भवति। अस्य चाषस्य सन्दर्शनमवलोकनं यातुः सदैव सर्वकालं शुभदम्।।२५।।

चाखपक्षी वामभाग में केका शब्द करता है तथा पूर्णकूट अर्थात् करायिका के समान "किष्किष" शब्द 'कहकह" शब्द करता है, तब जयकारक होता है। उस चाख पक्षी का "क्रेक्रे" शब्द दीप्त माना गया है जो कि कल्याणकाक नहीं होता। इस चाख पक्षी का दिखाई पड़ना यात्री के लिए सदा ही शुभदायक होता है॥२५॥

अथाण्डीरकफेण्टकयोश्चेष्टितमाह–

अण्डारकष्टीति रुतेन पूर्ण-
ष्टिट्टिट्टिशब्देन तु दीप्त उक्तः।
फेण्टः शुभो दक्षिणभागसंस्थो
न वाशिते तस्य कृतो विशेषः।।२६।।

अण्डीरक पक्षी की "टी" ध्वनि पूर्ण होती है और "टिट्टि" ध्वनि दीप्त कही गयी है। इस अण्डीरक तथा फेण्ट पक्षी का दक्षिणभाग में स्थित होना शुभ कहा गया है। फेण्ट पक्षी की ध्वनि के सम्बन्ध में कोई विशेष विचार नहीं किया गया है॥२६॥

अण्डीरकष्टीति। अण्डीरकः 'टी' इति रुतेन शब्देन पूर्ण उक्तः। टिट्टिट्टि अनेन शब्देन तु दीप्त उक्तः कथितः। फेण्टश्चाण्डीरको यातुर्दक्षिणभागसंस्थः शुभः तस्य फेण्टस्य वाशिते विरुते न विशेषः कृत उक्तः।।२६।।

अण्डीरक का "टी" शब्द पूर्ण कहा गया है। "टिट्टिट्टि" शब्द दीप्त होता है। फेण्ट और अण्डीरक पक्षी यात्रा करने वाले के दक्षिणभाग में होने पर शुभ होते हैं। फेण्टपक्षी की ध्वनि के सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं कहा गया है॥२६॥

अथ श्रीकर्णरुतमाह—

श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे
क्वक्वक्वेति शुभं प्रकीर्तितम्।
मध्यं खलु चिक्चिकीति य-
च्छेषं सर्वमुशन्ति निष्फलम्।।२७।।

श्रीकर्ण की ध्वनि को कहते हैं—

श्रीकर्ण पक्षी की ध्वनि "क्वक्वक्व" दक्षिण भाग में हो तो शुभ कही गयी है। इसकी "चिक्चिक्" ध्वनि मध्यम फलदायक होती है और इन दोनों से भिन्न प्रकार की ध्वनि को निष्फल कहा गया है॥२७॥

दक्षिणे दक्षिणभागे श्रीकर्णरुतं क्वक्वक्वेति शुभं प्रकीर्तितमुक्तम्। तस्यैव चिक्चिकि इति यद्रुतं तन्मध्यफलं न शुभं नाप्यशुभमित्यर्थः। शेषं परिशिष्टं यद्रुतं तत् सर्वं निष्फलं फलरहितमुशन्ति कथयन्ति मुनयः।।२७।।

दक्षिणभाग में श्रीकर्ण की ध्वनि "क्वक्वक्क" हो तो उसे शुभ कहा गया है। उसी की "चिक्चिक्" की ध्वनि मध्यमफलदायक अर्थात् न तो शुभ न अशुभ होती है। शेष प्रकार की ध्वनि मुनियों द्वारा निष्फल अर्थात् फलहीन कही गयी है॥२७॥

अथ दुर्बलिविरुतमाह—

दुर्बलेरपि चिरिल्विरिल्विति
प्रोक्तमिष्टफलदं हि वामतः।
वामतश्च यदि दक्षिणं व्रजेत्
कार्यसिद्धिमचिरेण यच्छति।।२८।।

दुर्बलि की ध्वनि को कहते हैं—

दुर्बलि की "चिरिल्विरिल्वि" ध्वनि वामभाग में होने पर इष्टफलदायक कही गयी है। यदि यह वामभाग से दक्षिणभाग में जाये तो शीघ्र ही कार्य की सिद्धि देती है॥२८॥

दुर्बलिर्भाण्डीकस्तस्य दुर्बलेश्चिरिल्विरिल्विति प्रोक्तमिष्टफलदं शोभनं कथितम्। वामतो वामभागे। यदि वामतो वामभागाद् दक्षिणभागे व्रजेद् गच्छति, तदाऽचिरेण शीघ्रमेव कार्यसिद्धिमर्थप्राप्तिं यच्छति ददाति।।२८।।

दुर्बलि अर्थात् भाण्डीक, इसकी ''चिरिल्विरिल्वि'' ध्वनि सुन्दर फलदायक होती है, यदि वह वामभाग में हो। यदि वह वामभाग से दक्षिणभाग में जाये तो शीघ्र ही कार्यसिद्धि अर्थात् अभीष्ट अर्थ को प्रदान करती है।।२८।।

अस्यैव विशेषरुतमाह—

चिक्चिकिवाशितमेव तु कृत्वा
दक्षिणभागमुपैति तु वामात्।
क्षेमकृदेव न साधयतेऽर्थान्
व्यत्ययगो वधबन्धभयाय।।२९।।

इसका विशेष-प्रकार कहते हैं—

यदि दुर्बलि ''चिक्चिक्'' ध्वनि करता हुआ वामभाग से दक्षिणभाग में जाता है तो कल्याण करता है, परन्तु अर्थसिद्धि नहीं होती है। इसके विपरीत होने पर वध तथा बंधन का भय होता है।।२९।।

स एव दुर्बलिकश्चिक्चिकीति वाशितमेव तु कृत्वा ततो वामाद् वामभागाद् दक्षिणभागमुपैति आगच्छति, तदा क्षेमकृदेव क्षेमं करोति, अर्थानभीष्टान् न साधयते, सिद्धिं तेषां न ददाति। व्यत्ययगो विपरीतश्चातो वधो मरणं बन्धो बन्धनं भयं भीतिः, एतानि करोति। यदि दक्षिणभागाद् वाममुपैति।।२९।।

यही दुर्बलि पक्षी ''चिक्चिक'' शब्द करता हुआ वामभाग से दाहिनेभाग में आता है तब वह कल्याणकारक होता है परन्तु अभीष्ट कार्य की सिद्धि नहीं कराता। इससे विपरीत मृत्यु, बन्धन और भय करता है अर्थात् जब इसी ध्वनि के साथ दक्षिणभाग से वामभाग में जाता है तब यह फल होता है।।२९।।

अन्यदप्याह—

क्रक्रेति च सारिका द्रुतं त्रेत्रे वाप्यभया विरौति या।
सा वक्ति यियासतोऽचिराद् गात्रेभ्यः क्षतजस्य विस्रुतिम्।।३०।।

और भी कहते हैं—

यदि सारिका (मैना) पक्षी ''क्रक्र'' शब्द करती हुई अथवा ''त्रेत्रे'' शब्द करती

हुई भयरहित होकर शीघ्रता से गमन करती है तब निश्चित ही यात्रा करने वाले के शरीर के आघात से निकलने वाले रक्त की शीघ्र ही सूचना देती है।।३०।।

या सारिका द्रुतं त्वरितं क्रक्रेति विरौति शब्दं करोति। या वा सारिकाऽभया भयवर्जिता त्रेत्रे इति विरौति शब्दं करोति, साऽचिराच्छीघ्रमेव यियासतो यातुमिच्छोर्गात्रेभ्योऽवयवेभ्यः क्षतजस्य रक्तस्य विस्रुतिं स्रावं वक्ति कथयति।।३०।।

जो सारिका शीघ्रता से "क्रक्र" ध्वनि करती है अथवा जो सारिका निर्भीक होकर "क्रेक्रे" शब्द करती है तो वह शीघ्र ही यात्री के अंगों से आघात के द्वारा रक्त के स्रवित होने की सूचना करती है।।३०।।

अथ फेण्टकरुतमाह—

फेण्टकस्य वामतश्चिरिल्विरिल्विति स्वनः।
शोभनो निगद्यते प्रदीप्त उच्यतेऽपरः।।३१।।

फेण्टक की ध्वनि को कहते हैं—

फेण्टक पक्षी की "चिरिल्विरिल्वि" ध्वनि वामभाग में हो तो वह शुभ कही जाती है। इससे भिन्न ध्वनि को प्रदीप्त कहा जाता है, जो अशुभ-सूचक है।।३१।।

वामतो वामभागे फेण्टकश्चिरिल्विरिल्विति स्वनं शब्दं यदि करोति, तदा शोभनः शुभफलप्रदो निगद्यते कथ्यते। अपरोऽन्यः प्रदीप्त उच्यते कथ्यत इति।।३१।।

वामभाग में फेण्टक की "चिरिल्विरिल्वि" ध्वनि यदि होती है तब उसे शुभ फलप्रदायक कहा जाता है। अन्य प्रकार के शब्दों को प्रदीप्त (अशुभ) कहा गया है।।३१।।

अथ गर्दभरुतमाह—

श्रेष्ठं खरं स्थास्नुमुशन्ति वाम-
मोङ्कारशब्देन हितं च यातुः।
अतोऽपरं गर्दभनादितं यत्
सर्वाश्रयं तत् प्रवदन्ति दीप्तम्।।३२।।

गर्दभ की ध्वनि को कहते हैं—

वामभाग में गर्दभ स्थित हो तो उसे शुभ कहा जाता है। उसका किया गया

"ओङ्कार" शब्द करने वाले के लिए हितकारक होता है। इससे भिन्न गर्दभध्वनि सर्वाश्रय तथा दीप्त कही गयी है॥३२॥

खरं गर्दभं वामं वामभागगतं स्थास्नुमेकस्थानस्थितं श्रेष्ठं शोभनमुशन्ति कथयन्ति, तथौङ्कारशब्देन यदि विरौति तदा यातुर्हितमनुकूलम्। अतोऽपरमन्यद् गर्दभनादितं खरविरुतं सर्वाश्रयम्, सर्ववर्णा आश्रया यस्य तत् सर्वाश्रयं दीप्तं प्रवदन्ति कथयन्ति॥३२॥

खर अर्थात् गदर्भ (गदहा) वामभाग में एक स्थान पर स्थित हो तो उसे श्रेष्ठ कहा जाता है। यदि "ओङ्कार" शब्द करें तो उस यात्री के लिए अनुकूल कहना चाहिए। इससे भिन्न दूसरे प्रकार की ध्वनि सर्वाश्रय अर्थात् जिसके सभी वर्ण आश्रित हो, इस प्रकार से दीप्त कहा गया है॥३२॥

अथ कुरङ्गमृगपृषतरुतमाह—

आकाररावी समृगः कुरङ्ग
ओकाररावी पृषतश्च पूर्णः।
येऽन्ये स्वरास्ते कथिताः प्रदीप्ताः
पूर्णाः शुभाः पापफलाः प्रदीप्ताः॥३३॥

कुरंग, मृग और पृषत की ध्वनि को कहते हैं—

मृग एवं कुरंग की ध्वनि "आकार" सदृश हो तो उसे शुभ कहा गया है। पृषत (चित्तीमार हिरन) यदि ओङ्कार की ध्वनि करें तो उसे पूर्ण कहा जाता है। इससे भिन्न प्रकार की ध्वनि को प्रदीप्त कहना चाहिए। पूर्णध्वनि शुभकारक तथा प्रदीप्त ध्वनि अशुभ-कारक होती है॥३३॥

कुरङ्गो मृगजातिः। समृगो मृगेण सहितः। सचाकाररावी, आकारं रौतीति आकाररावी, स च पूर्णः शुभः पृषत ओकाररावी पूर्णः। अन्ये परिशिष्टाः स्वरास्ते प्रदीप्ताः कथिता उक्ताः। सर्वेषां शकुनानां ये पूर्णाः स्वरास्ते शुभाः, ये च प्रदीप्तास्ते पापफला अशुभाः॥३३॥

कुरंग अर्थात् मृग (हिरण) की एक जाति तथा प्रसिद्ध मृग (हरिण): ये दोनों "आकार" की ध्वनि करते हैं तो उसे पूर्ण अर्थात् शुभ समझना चाहिए। इसी प्रकार पृषत की ओङ्कार-ध्वनि पूर्ण कही गयी है। अन्य अवशिष्ट ध्वनियाँ प्रदीप्त कही जाती हैं। सभी प्रकार के शकुनों में जो पूर्ण ध्वनियाँ हैं वे शुभकारक और जो प्रदीप्त होती हैं उन्हें अशुभ अर्थात् पाप फलदायक जानना चाहिए॥३३॥

अथ कुक्कुटरुतमाह—

भीता रुवन्ति कुकुकुक्विति ताम्रचूडा-
स्त्यक्त्वा रुतानि भयदान्यपराणि रात्रौ।
स्वस्थैः स्वभावविरुतानि निशावसाने
ताराणि राष्ट्रपुरपार्थिववृद्धिदानि।।३४।।

कुक्कुट की ध्वनि को कहते हैं–

कुक्कुट "कुकुकुकु" शब्द भयभीत होकर करता है। इससे भिन्न शब्द रात्रि में करें तो वह भयदायक होता है। प्रात:काल ब्राह्म-बेला में स्वस्थ भाव से उच्च स्वर में शब्द करता है अर्थात् "वाग्" देता है, तो राष्ट्र, नगर और राजा के लिए वृद्धिदायक होता है।।३४।।

ताम्रचूडाः कुक्कुटा रात्रौ निशि सभयाः कुकुकुकु-इति रुवन्ति शब्दं कुर्वन्ति। तानि तु रुतानि त्यक्त्वा परित्यज्यापराण्यन्यानि भयदानि भवन्ति। स्वस्थैः स्वभावस्थैर्नीरुजैरपरतन्त्रैः। स्वभावविरुतानि प्राकृतानि। स्वभाविकाः शब्दा निशावसाने राज्यन्ते ताराण्युच्चतराणि यानि क्रियन्ते तानि राष्ट्रस्य जनपदस्य पुरस्य नगरस्य पार्थिवस्य राज्ञो वृद्धिदानि वृद्धिं ददति।।३४।।

ताम्रचूड अर्थात् कुक्कुट (मुर्गा) रात्रि के समय भयपूर्वक "कुकु-कुकु" शब्द करता है। इन शब्दों को छोड़कर अन्य प्रकार के शब्द भयदायक होते हैं। अपने स्वाभाविक शब्द को स्वतन्त्रभाव से रात्रि के अन्त में जो उच्चस्वर में शब्द करता है वह राष्ट्र अर्थात् जनपद के लिए, नगर के लिए और राजा के लिए वृद्धि प्रदान करता है।।३४।।

अथ छिप्पिकाबिडालविरुतं गोक्षुतं चाह–

नानाविधानि विरुतानि हि छिप्पिकाया-
स्तस्या शुभाः कुलुकुलुर्न शुभास्तु शेषाः।
यातुर्बिडालविरुतं न शुभं सदैव
गोस्तु क्षुतं मरणमेव करोति यातुः।।३५।।

छिपकली तथा बिल्ली की ध्वनि और गाय के छींकने को कहते हैं–

छिपकली की ध्वनि अनेक प्रकार की होती है। इसकी "कुलकुलु" ध्वनि शुभ होती है। जबकि इससे भिन्न ध्वनि अशुभ मानी गयी है। यात्रा करने वाले के लिए बिडाल (बिलाव) का शब्द कभी भी शुभ नहीं होता है। यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए गाय का छींकना मृत्युदायक होता है।।३५।।

छिप्पिकाया नानाविधानि बहुप्रकाराणि विरुतानि भवन्ति। तेभ्यो मध्यात्

तस्यास्तु कुलकुलुशब्दाः शुभाः। शेषा अपरास्तु सर्व एव न शुभाः। विडालविरुतं मार्जारशब्दो यातुः सदैव सर्वकालमेव न शुभम्। गोस्तु पुनः क्षुतं यातुर्मरणमेव करोति। उक्तं च–

सर्वत्र पापं क्षुतमुद्दिशन्ति गोस्तु क्षुतं मृत्युकरं यियासोः।

मार्जाररावस्खलनं च यातुर्वस्त्रस्य सङ्गस्य न शोभनानि।।इति।।३५।।

छिपकली के विविध प्रकार के स्वर होते हैं। इसमें से ''कुलकुलु'' शब्द शुभ होते हैं। अन्य सभी प्रकार के शब्द शुभकारक नहीं होते हैं। गाय की छींक यात्रा करने वाले के लिए मृत्युकारक होती है। बिलाव का शब्द यात्रा करने वाले के लिए सदैव अशुभ होता है। जैसा कि कहा गया है–

छींकना सभी प्रकार के कार्यों के लिए अशुभ होता है। यात्राकाल में गाय का छींकना मृत्युकारक है। बिलाव का बोलना यात्रा करने वाले के लिए चोट पहुँचाने वाला तथा उसके वस्त्रों और सहयात्रियों के लिए शुभ नहीं होता है।।३६।।

विशेष व्याख्या–

''क्षुत'' शब्द छिक्का अर्थात् छींकने के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि अमरकोष (२/६/५२) में कहा गया है–''स्त्री क्षुत् क्षुतं क्षवः पुंसि''।

अथोलूकविरुतमाह–

हुंहुंगुग्लुगिति प्रियामभिलषन् क्रोशत्युलूको मुदा

पूर्णः स्याद् गुरुलु प्रदीप्तमति च ज्ञेयं सदा किस्किसि।

विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्यासकृद्वाशितं

दोषायैव टटट्टटेति न शुभाः शेषास्तु दीप्तस्वराः।।३६।।

उल्लू अपनी प्रियतमा की इच्छा करता हुआ ''हुंहुंगुग्लुग्'' शब्द प्रसन्न होकर करता है। ''गुरुलु'' शब्द पूर्ण तथा शुभ होता है। ''किस्किस्'' शब्द सदैव प्रदीप्त (अशुभ) समझना चाहिए। जब वह अनेक बार ''बलबल'' शब्द करता है तब कलह जानना चाहिए। ''टटट्टट'' शब्द दोषकारक होते हैं तथा इनसे भिन्न शब्द दीप्त अर्थात् अशुभकारक होते हैं।।३६।।

उलूको मुदा हर्षेण प्रियां स्वपत्नीमभिलषन् वाञ्छन् हुंहुंगुग्लुगिति क्रोशति वाशति। गुरुल्विति शब्दः पूर्णः स्याद् भवेत्। सदा सर्वस्मिन् काले किस्किसि रुतं प्रदीप्तमपि ज्ञेयं ज्ञातव्यम्। यदा तस्योलूकस्यासकृत् पुनः पुनर्बलबलमिति वाशितं तदा कलहो विज्ञेयः। टटट्टटेति वाशितं दोषायैव भवति। शेषास्तु अन्ये

स्वराः सर्वे दीप्तास्ते चन शुभा इति ।।३६।।

उल्लू प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नी की इच्छा करता हुआ "हुंहुं-गुग्गुल" शब्द करता है। "गुरुलु" शब्द पूर्ण कहा गया है। सभी कालों में "किस्किस" शब्द को प्रदीप्त समझना चाहिए। "टटट्टट" शब्द दोषकारक होता है। शेष सभी शब्द दीप्त होते हैं जो कि शुभ नहीं हैं।।३६।।

अथ सारसविरुतमाह–

सारसकूजितमिष्टफलं तद्यद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य।
एकरुतं न शुभं यदि वा स्यादेकरुते प्रविरौति चिरेण।।३७।।

सारस की ध्वनि को कहते हैं–

सारस का जोड़ा यदि एक साथ बोले तब मनोभिलषित फल मिलता है। एक का बोलना शुभ नहीं होता अथवा एक के बोलने के पश्चात् दूसरा विलम्ब से बोले तब भी शुभ नहीं होता है।।३७।।

सारसकूजितमिति। सारसशब्दो मिथुनस्य युग्मस्य युगपत् तुल्यकालं विरुतं तदिष्टफलं शुभम्। एकरुतमेकस्य रुतं न शुभं यदि वैकरुते पश्चादन्यश्चिरेण प्रविरौति तदा न शुभम्।।३७।।

सारस के जोड़े का एक साथ किया गया शब्द इष्टफल अर्थात् शुभ फल देता है। एक का बोलना शुभ नहीं होता है। यदि एक के बोलने के पश्चात् देर से दूसरे का बोलना हो, तो वह शुभ नहीं होता है।।३७।।

अथ पिङ्गलारुतमाह–

चिरिल्विरिल्विति स्वरैः शुभं करोति पिङ्गलाः।
अतोऽपरे तु ये स्वराः प्रदीप्तसंज्ञितास्तु ते।।३८।।

पिंगला के शब्दों को कहते हैं–

"चिरिल्विरिल्वि" स्वरों से युक्त पिंगला शुभ करती है। इससे भिन्न जो भी स्वर होते हैं उनको प्रदीप्त (अशुभ) समझना चाहिए।।३८।

पिङ्गला चिरिल्विरिल्विति स्वरैः शब्दैः करोति। अतोऽस्मादपरे येऽन्ये स्वराः शब्दास्ते सर्वे प्रदीप्तसंज्ञितास्ते नेष्टाः।।३८।।

पिंगला "चिरिल्विरिल्वि" शब्दों के द्वारा शुभ करती है। इससे भिन्न जो दूसरे शब्द हैं, वे सभी प्रदीप्त संज्ञक अर्थात् अनिष्टकारक होते हैं।।३८।।

अथान्यत्–

इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि

कुशकुशु चेत् कलहं प्रकरोति।

अभिमतकार्यगतिं च यथा सा

कथयति तं च विधिं कथयामि।।३९।।

और भी कहते हैं–

इसका "इशि" शब्द यात्रा के निषेधक होते हैं। यदि "कुशुकुशु" शब्द करे तब कलह होता है। यह अभीष्ट कार्य की सिद्धि जिस प्रकार व्यक्त करती है, उस विधि को कहता हूँ॥३९॥

इशीति विरुतं तस्या गमनप्रतिषेधि यात्राविघ्नं करोति। यदि कुशुकुशु-शब्दं करोति तदा कलहं करोति। सा च पिङ्गला यथा येन प्रकारेणाभिमतकार्य-गतिमभिमतकार्याणां गतिमभिमतसिद्धिं कथयति वक्ति। तथा तं च विधिमभीष्टार्थसिद्धिं कथयामि वदामि।।३९।।

"इशि" शब्द यात्रा में विघ्न करते हैं। यदि वह "कुशुकुशु" शब्द करे तब कलह होता है। वह पिंगला जिस प्रकार से अभीष्टकार्य की सिद्धि को कहती है, उस अभीष्ट-कार्य की सिद्धि की विधि को कहता हूँ॥३९॥

तमेवाह–

दिनान्तसन्ध्यासमये निवास-

मागम्य तस्याः प्रयतश्च वृक्षम्।

देवान् समभ्यर्च्य पितामहादीन्

नवाम्बरस्तं च तरु सुगन्धैः।।४०।।

एको निशीथेऽनलदिक्स्थितश्च

दिव्येतरैस्तां शपथैर्नियोज्य।

पृच्छेद्यथाचिन्तितमर्थमेव-

मनेन मन्त्रेण यथाशृणोति।।४१।।

इसको कहते हैं–

सायंकालीन संध्या की वेला में उसके निवास वाले वृक्ष के पास संयत होकर जायें और ब्रह्मा आदि देवताओं की पूजा करें। नवीनवस्त्र धारण कर उस वृक्ष की सुगन्धित द्रव्यों से अर्चना करें। फिर अकेले ही अर्धरात्रि में अग्निकोण में स्थित होकर

देवताओं से भिन्न लौकिक शपथ दिलाता हुआ अपने चिन्तित कार्य की सिद्धि के सन्दर्भ में प्रश्न करें। आगे कहे गये मन्त्रों को पढ़ें, जिसे वह सुन सके॥४०-४१॥

दिनान्तसन्ध्यासमय इति। तस्याः पिङ्गलाया दिनान्ते अस्तसमये या सन्ध्यासमयः सन्ध्याकालस्तस्मिन् दिनान्तसन्ध्यासमये निवासं गृहमागम्य गत्वा वृक्षं तरुं प्रयतोऽनुच्छिष्टः संचयः पितामहादीन् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् देवान् सुरान् समभ्यर्च्य सम्पूज्य। कीदृशः प्रष्टा? नवाम्बरोऽभिनववसनः सन्, तं तरुं वृक्षं सुगन्धैः सुगन्धद्रव्यैश्चन्दनकुङ्कुमकस्तूरिकागुरुप्रभृतिभिरभ्यर्च्य।।४०।।

उस पिंगलापक्षी के निवास स्थान के वृक्ष के पास सायंकाल संयमित होकर जाकर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव की अर्चना कर प्रश्न करें। प्रश्नकर्त्ता किस प्रकार का हो? नवीनवस्त्र धारण किया हुआ और उस वृक्ष की सुगन्धित द्रव्य अर्थात् चन्दन, कुमकुम, कस्तूरी, अगरु इत्यादि से पूजा करें॥४०॥

ततो निशीथे सुप्तजनेऽर्धरात्रावधौ एक एवानलदिक्स्थ आग्नेयाशासमवस्थितः तां च पिङ्गलां शपथैः प्रत्ययैर्दिव्येतरैर्देवानां सम्बन्धिभिः शपथैरितरैरन्यैर्लौकिकैश्च नियोज्य सन्निवेश्य ततो यथा येन प्रकारेणशृणोत्याकर्णयति तथाऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण यथाचिन्तितमेवार्थं तस्याः सिद्धिं पृच्छेत्।।४१।।

तत्पश्चात् लोगों के सो जाने पर आधी रात में अकेला ही आग्नेयकोण में स्थित होकर उस पिङ्गला को शपथपूर्वक भावित करें। देवताओं से भिन्न शपथ अर्थात् लौकिक-शपथ को प्रस्तुत क़र वह जिस प्रकार से सुन सके, उस प्रकार आगे कहे गये मन्त्र के द्वारा अपने मनोरथ की सिद्धि को पूछे॥४१॥

विशेष व्याख्या—पिङ्गला नामक पक्षी ऊल्लू की एक प्रंजाति है।

अथ मन्त्रमाह—

विद्धि भद्रे मया यत् त्वमिममर्थं प्रचोदिता।
कल्याणि सर्ववचसां वेदित्री त्वं प्रकीर्त्यसे।।४२।।
आपृच्छेऽद्य गमिष्यामि वेदितश्च पुनस्त्वहम्।
प्रातरागम्य पृच्छे त्वामग्नेयीं दिशमाश्रितः।।४३।।
प्रचोदयाम्यहं यत् त्वां तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
स्वचेष्टितेन कल्याणि यथा वेद्मि निराकुलम्।।४४।।

मन्त्र को कहते हैं—

"हे कल्याणकारिणी! जिस अर्थसिद्धि के निमित्त मेरे द्वारा निवेदन किया जा रहा है उसको तुम अच्छी तरह से जानती हो। हे कल्याणी! सभी प्रकार के बातों की

तुम ज्ञाता कही जाती हो। आज मैं तुमसे प्रश्न करता हूँ। मैं उस प्रश्न को जानकर चला जाऊँगा। प्रात:काल आकर आग्नेयदिशा में स्थित होकर प्रश्न करूँगा, जिन इच्छाओं से मैं प्रेरित हूँ, उन्हें तुम मुझे व्यक्त करने में समर्थ हो। हे कल्याणी! तुम्हारी चेष्टाओं के द्वारा मैं शान्त चित्त से (अभीष्ट फल को) जान सकता हूँ'' ॥४२-४४॥

विद्धि भद्रे इति। हे भद्रे कल्याणवति मया यत् त्वमिममर्थं प्रचोदिता प्रष्टुमारब्धा विद्धि: जानीहि। हे कल्याणि सौभागिनि सर्ववचसां नि:शेषवाक्यानां त्वं वेदित्री ज्ञप्त्री प्रकीर्त्यसे।।४२।।

हे कल्याणमयी! मैं जिस अर्थ की सिद्धि के लिए प्रेरित होकर प्रश्न आरम्भ कर रहा हूँ उसे तुम जानती हो। हे सौभाग्यशालिनी! तुम सम्पूर्ण बातों को जानने वाली कही जाती हो॥४२॥

अद्यापृच्छे। यत् करोषि। गमिष्यामि यास्यामि। गमितेति पृष्टश्च पुनर्भूयोऽहं प्रात: श्वरागम्य आग्नेयी पूर्वदक्षिणां दिशमाश्रित: स्थित: पृच्छे।।४३।।

जैसा तुम संकेत करोगी तदनुसार मैं जाऊँगा। गमन सम्बन्धित प्रश्न होने पर मैं फिर प्रात:काल आकर आग्नेय अर्थात् पूर्व-दक्षिण कोण की दिशा में स्थित होकर प्रश्न करूँगा॥४३॥

त्वां यदहं प्रचोदयामि पृच्छामि तत् कल्याणि सौभागिनि स्वचेष्टितेन आत्मीयेन चेष्टितेन यथा येन प्रकारेण निराकुलं नि:संशय: वेद्मि जानामि तथा तन्मे व्याख्यातुं कथयितुमर्हसि।।४४।।

आज मैं जिन प्रश्नों को पूँछ रहा हूँ हे कल्याणी! उन्हें अपनी चेष्टाओं के द्वारा जिस प्रकार असंदिग्ध जान सकूँ, उस प्रकार का व्याख्यान करने में तुम समर्थ हो॥४४॥

अथ चेष्टिमाह—

इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगाया-
श्चिरिल्विरिल्वीति रुतेऽर्थसिद्धि:।
अत्याकुलत्वं दिशिकारशब्दे
कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा।।४५।।
अवाक्प्रदानेऽपि हितार्थसिद्धि:
पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैरतोऽन्यत्।
वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीच-
शाखास्थितायां वरमध्यनीचम्।।४६।।

अब चेष्टाओं को कहते हैं–

इस प्रकार कहने के पश्चात् वृक्ष के ऊर्ध्व भाग से "चिरिल्विरिल्वि" की ध्वनि हो तब इष्टकार्य की सिद्धि होती है। "दिशिकार" शब्द हो तो अथवा "कुचाकुचा" शब्द होने पर प्रश्नकर्त्ता की व्याकुलता अधिक बढ़ जाती है। मौन अर्थात् कोई भी शब्द न होने पर भी अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। पूर्वोक्त दिक्चक्र के अनुसार अन्य फलों को समझना चाहिए। ऊपर, मध्य और नीचे की शाखाओं पर पिङ्गला के होने से अपने कार्य को क्रमशः श्रेष्ठतम, मध्यम और न्यून जानना चाहिए।।४५-४६।।

इत्येवमुक्त इति। इतिशब्दः समाप्तौ। एवमुक्ते कथिते तस्याः पिङ्गलायास्तरुमूर्धगाया वृक्षमस्तके स्थितायाश्चिरिल्विरिल्वीति रुते अर्थसिद्धिर्भवति। दिशिकारेति शब्दे रुतेव्याकुलत्वमिति चित्तव्याक्षेपो भवति। कुचाकुचेत्येवंप्रकारे उदाहृते वाऽत्याकुलत्वमेव।।४५।।

यहाँ पर श्लोक में "इति" शब्द समाप्ति का सूचक है। इस प्रकार मन्त्रोच्चारण के पश्चात् वृक्ष के ऊर्ध्व भाग पर स्थित पिङ्गला का "चिरिल्विरिल्व" शब्द हो तो अर्थसिद्धि होती है। "दिशिकार" शब्द होने पर अति व्याकुलता अर्थात् मन में विक्षोभ होता है। "कुचाकुचा" ऐसी ध्वनि होने से भी व्याकुलता ही होती है।।४५।।

अवाक्प्रदानेऽपीति। अवाक्प्रदानेऽपि न किञ्चित्सम्भाषणेऽपि हितस्याभीष्टार्थस्य सिद्धिर्भवतीति। अतोऽन्यदस्मादपरं शुभं पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैः। यथा दिक्चक्रे द्वात्रिंशद्भागप्रविभक्ते फलान्युक्तानि तद्वदस्या वक्तव्यम्। ऐन्द्र्यां दिशि शान्तायामित्यादि। उत्तमायाः प्रधानायाः स्वशाखस्थिताया वरं श्रेष्ठ फलं वाच्यम्। मध्यमशाखायां स्थितायां मध्यमम्। नीचशाखायां स्थितायां नीचमल्पमिति।।४६।।

कुछ भी न बोले जाने पर भी अभीष्ट-अर्थ की सिद्धि होती है। इसके पश्चात् शुभाशुभ का विचार पूर्वोक्त दिक्चक्र के अनुसार जानना चाहिए। जैसा कि ३२ भागों में विभक्त दिक्चक्र में फल कहे गये हैं, उसी प्रकार इसका भी फल कहना चाहिए। उस चक्र में पूर्वदिशा में शान्त स्थिति होने पर शुभ बताया गया है, उसी प्रकार अन्य भागों का भी फल समझना चाहिए। मुख्यशाखा पर पिङ्गला के स्थित होने पर श्रेष्ठफल कहना चाहिए तथा मध्यशाखा पर स्थित होने से मध्यमफल और नीचे की शाखा पर स्थित होने से नीचफल अर्थात् न्यूनफल जानना चाहिए।।४६।।

दिङ्मण्डलेऽभ्यन्तरबाह्यभागे
फलानि विन्द्याद् गृहगोधिकायाः।

छुच्छुन्दरी चिच्चिडिति प्रदीप्ता
पूर्णा तु सा तित्तिडिति स्वनेन।।४७।।

दिक्चक्र के भीतरी तथा बाहरी भाग में छिपकली (गृहगोधिका) के होने पर चक्रोक्त फल का निर्देश करे। छुच्छुन्दरी "चिच्चिड" शब्द करने पर प्रदीप्त कही गयी है तथा "तित्तिड्" शब्द करने पर उसे पूर्ण (शुभ) समझना चाहिए।।४७।।

गृहगोधिकायाः कुड्यमत्स्यस्य दिङ्मण्डलेऽष्टासु दिक्षु अभ्यन्तरनाभ्यां बाह्यभागे द्वात्रिंशद्भागप्रविभक्ते दिक्चक्रे फलानि विन्द्याद् जानीयात्। अथ शान्ता दिक् सा च मधुरवा तदोत्तमं फलम्। अथ दुष्टरवा तदा मध्यमम्। अथ दीप्ता दिक् सा च मधुरवा तदानीं च शुभफलम्। अदीप्ता दिक् सा च दीप्तरवा तदा दुष्टफलमेव सर्वत्र पिङ्गलाया अप्येवमेव वेदितव्यम्। छुच्छुन्दरीति सुगन्धमूषिका चिच्चिडिति शब्देन प्रदीप्ता। सा तु तित्तिडिति स्वनेन शब्देन पूर्णेति ज्ञेया।।४७।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सर्वशाकुने विरुतं नाम

सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

गृहगोधिका अर्थात् कुड्यमत्स्य का दिक्चक्र के आठों दिशाओं में भीतरी नाभि में तथा बाहरी भाग में ३२ भागों में विभाजित दिक्चक्र के अनुसार फल का ज्ञान करें। वह यदि शान्त दिशा में मधुर स्वर कहे तो उत्तम फल, दुष्ट शब्द कहें तब मध्यम फल कहना चाहिए। यदि दीप्तदिशा हो और वह मधुर शब्द कहे तब शुभ फल देती है। यदि शान्तदिशा हो और शब्द दीप्त (कठोर) हो तब इस पिङ्गला के फल अशुभ ही होते हैं। इसी प्रकार अन्य फलों को भी समझना चाहिए। छुच्छुन्दरी अर्थात् सुगन्धमूषिका "चिच्चिङ्"-शब्द से प्रदीप्त होती है और वह "तित्तिड्" शब्द से पूर्ण होती है, यह समझना चाहिए।।४७।।

।।श्री भट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति के सर्वशाकुन प्रकरण में विरुत नामक सत्तासीवें

अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८७।।

❃ ❃ ❃

।।अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः।।

श्वचक्राध्यायः

अथ श्वचक्रं व्याख्यायते।

तत्रादावेव चेष्टितमाह—

नृतुरगकरिकुम्भपर्याणसक्षीरवृक्षेष्टका-
सञ्चयच्छत्रशय्यासनोलूखलानि ध्वजं चामरं
शाद्वलं पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वावमूत्र्याग्रतो
याति यातुस्तदा कार्यसिद्धिर्भवेदार्द्रके गोमये
मिष्टभोज्यागमः शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडो
मोदकावाप्तिरेवाथवा।।

श्वचक्राध्याय ८८ की व्याख्या की जाती है।

आरम्भ में श्वान (कुत्ते की) की चेष्टाओं को दण्डक छन्द में कहते हैं—

कुत्ता यदि मनुष्य, घोड़ा, हाथी, घड़ा, घोड़े का जीन, दूध वाले वृक्ष, ईटों का ढेर, छाता, शैय्या, आसन, ओखली, ध्वज, चँवर, दूर्वा अथवा पुष्पितप्रदेश पर मूत्र करता हुआ यात्रा करने वाले के आगे से निकले, तब उसके मनोवाञ्छित कार्य की सिद्धि होती है।

गीले गोबर पर मूत्रत्याग करें तब मधुर भोज्य-पदार्थ प्राप्त होता है तथा शुष्क गोमय पर उसके मूत्र-त्याग करने से सूखा अन्न, गुड़ और मधुर पदार्थ की प्राप्ति होती है।

नृ (ना) मनुष्यः। तुरगोऽश्वः। करी हस्ती। कुम्भो घटः। पर्याणं प्रसिद्धम्। सक्षीरवृक्षोऽर्कादिः। इष्टकासञ्चय इष्टकाकूटः। छत्रमातपत्रम्। शय्या आस्तरणम्। आसनं पट्टादि। उलूखलं प्रसिद्धमेव। तथा ध्वजं चिह्नम्। चामरं बालव्यजनम्। शाद्वलं दूर्वा। पुष्पितं वा प्रदेशं सञ्जातपुष्पस्थानम्। यदा श्वा सारमेयः। अवमूत्र्य मूत्रेण सिक्त्वा यातुर्गच्छतोऽग्रतः पुरो यादि गच्छति तदा कार्यस्याभीष्टस्य सिद्धिर्भवेत् स्यात्। उक्तं च—

नरतुरगगजातपत्रकुम्भध्वजसयनासनपुष्पचामराणि।
व्रजति यदि पुरोऽवमूत्र्य पक्षः[१] क्षपयति शत्रुबलं तदा नरेन्द्रः।।

---

१. पक्षों वा यक्षो न कुत्रापि कुक्कुरवाची शब्द उपलभ्यतेऽतोऽत्र चेच्छवा-इति पाठः साधुः।

मनुष्य, अश्व, हाथी, घट, घोड़े का जीन, दुधारू वृक्ष, मदार इत्यादि, ईटों का ढेर, छत्र, शय्या, आसन पीढ़ा इत्यादि, प्रसिद्ध ओखली, ध्वज, चँवर, अर्थात् चवरी गाय के बाल से बना हुआ व्यजन, शाद्वल अर्थात् दूर्वा अथवा जिस स्थान पर फूल लगें हुए हों उस स्थान पर यदि श्वा अर्थात् कुत्ता मूत्र कर यात्री के आगे से चलता है तब उसके अभीष्टकार्य की सिद्धि होती है। जैसा कि कहा गया है–

नर, अश्व, गज, छत्र, घट, ध्वज, शय्या, आसन, पुष्प और चँवर पर मूत्र त्याग कर यदि कुत्ता आगे से निकल जाता है, तब राजा अपने शत्रुपक्ष को विनष्ट करने में सक्षम होते हैं।

आर्द्रके गोमय इति। आर्द्रके सरसे गोमये सम्मूत्रणे मिष्टभोज्यस्यागमो लाभः। शुष्कगोमयसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडो मोदकानामवाप्तिर्लाभोऽथवा भवति।

गीले गोमय पर मूत्र करने से मधुर भोजन का लाभ होता है। सूखे गोमय पर मूत्र करने पर सूखे भोजन, गुड़ और मिष्ठान्न का लाभ होता है।

अन्यदप्याह–

अथ विषतरुकण्टकीकाष्ठपाषाण-
शुष्कद्रुमास्थिश्मशानानि मूत्र्यावहत्याथवा
यायिनोऽग्रेसरोऽनिष्टमाख्याति शय्याकुलालादि-
भडान्यभुक्तान्यभिन्नानि वा मूत्रयन् कन्यकादोषकृद्-
भुज्यमानानि चेद् दुष्टतां तद् गृहिण्यास्तथा
स्यादुपानत्फलं गोस्तु सम्मूत्रणेऽवर्णजः सङ्करः।।

और भी कहते हैं–

कुत्ता यदि विषैले वृक्ष, काँटेदार वृक्ष, लकड़ी, पत्थर, सूखे वृक्ष, हड्डी एवं श्मशान पर मूत्र कर अथवा अपने पैरों से कर्षण (खुरज) कर यात्री के आगे होता है तब अनिष्ट की सूचना है। शय्या एवं मृत्तिकापात्र, जो कि न तो प्रयोग में लाये गये हों और न टूटे-फूटे हों, ऐसी वस्तुओं पर मूत्र करता हुआ, कन्या में दोष उत्पन्न करता है। यदि भोजन-पात्रों पर मूत्र करता है, तब गृहिणी की दुष्टता को प्रकट करता है। जूते पर मूत्र करने का भी यही फल होता है। गाय के ऊपर मूत्र करने पर वर्णहीन वर्णसंकर की सूचना देता है।

विषतरौ विषवृक्षे। कण्टक्यां सकण्टके वृक्षे। काष्ठे पाषाणेऽश्मनि। शुष्कद्रुमे शुष्कवृक्षे। अस्थिश्मशाने वा। एषामन्यतमस्थानमवमूत्र्य अथवा हस्तेन पादेन वाऽवहत्य सन्ताड्य यायिनो गच्छतोऽग्रेसरः पुरतो याति, तदाऽनिष्टमशुभमाख्याति कथयति। शय्या आस्तरणम्। कुलालादिभाण्डानि

कुम्भकारकृतानि मृन्मयानि। आदिग्रहणाद् दारुमन्यायपि। अभुक्तानि अभिनवानि। अभिन्नान्यस्फुटानि वा। अत्र मूत्रयन् कन्यकादोषकृत् कुमार्या दौःशील्यं करोति। यदि भुज्यमानानि भाण्डानि अवमूत्रयति तदा तद् गृहिण्या दुष्टतां करोति। उपानत्फलं तथा तेनैव प्रकारेण स्यात्। एतदुक्तं भवति—अभुक्ते उपानहाववमूत्रयन् कन्यकादोषकृत्, भुज्यमाने चेत् तद्गृहिण्या दुष्टतां करोति। गोस्तु सम्मूत्रणे अवर्णजो निकृष्टवर्णजातः सङ्करोऽत्र गृहे। उक्तं च—

विषकण्टकशुष्कवृक्षलोष्टानवमूत्र्यास्थिचितेन याति चेच्छ्वा।
न शुभोऽभिमुखं भषद्विधुन्वन् पुच्छाङ्गं विलिखन्नखे वसाश्च।।

विषैले वृक्षों पर, काँटेदार वृक्षों, पर, लकड़ी तथा पत्थर पर, सूखे वृक्ष पर, अस्थि अथवा श्मशान पर, इनमें से किसी भी एक स्थान पर मूत्र कर अथवा हाथ या पैर से भूमि को ताड़ित करता हुआ (खुड़चता हुआ) यात्रा करने वाले के आगे निकलता है तो अनिष्ट का आभास देता है। शय्या (बिस्तर), कुम्भकार द्वारा बनाये गये मिट्टी के बर्तन तथा "आदि" शब्द से काष्ठनिर्मित पात्र भी ग्राह्य हैं, जो नवीन हों और टूटे-फूटे न हों इन पर मूत्र करता है तब कुवाँरी कन्याओं में दुःशीलता उत्पन्न करता है। यदि प्रयुक्त पात्रों (पुराने पात्रों) पर मूत्र करता है तब उसकी पत्नी की दुष्टताओं को प्रकट करता है। उपानह (जूते) का फल भी इसी प्रकार से समझना चाहिए। इस कथन का अभिप्राय यह है कि बिना प्रयोग में लाये नूतन जूते पर मूत्र करता हुआ कन्या के लिए दोष उत्पन्न करता है और प्रयोग में लाये गये जूते पर मूत्र करने से उसकी पत्नी के लिए दोषकारी होता है। गाय पर यदि मूत्र करे तब गृह में निकृष्टवर्ण से उत्पन्न संकर-वर्ण की उपस्थिति को बतलाता है। जैसा कि कहा गया है—

विषयुक्त कँटीले तथा सूखे वृक्ष, टुकड़ों के ढेर और अस्थिसंचय पर मूत्र कर यदि कुत्ता सामने की ओर भौंकता हुआ अथवा जमीन को कुरेदता हुआ, पूँछ को हिलाता हुआ, नख से जमीन पर खरोचता हुआ गमन करतदा है, तब वह शुभ नहीं होता है।

अन्यदप्याह—

गमनमुखमुपानहं सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद्यदा
स्यात् तदा सिद्धये मांसपूर्णाननेऽर्थाप्तिरार्द्रेण चास्थ्ना
शुभं साग्न्यलातेन शुष्केण चास्थ्ना गृहीतेन मृत्युः
प्रशान्तोल्मुकेनाभिघातोऽथ पुंसः शिरोहस्तपादादि-
वक्त्रे भुवोऽभ्यागमो वस्त्रचीरादिभिर्व्यापदः

केचिदाहुः सवस्त्रे शुभम्।
प्रविशति तु गृहं सशुष्कास्थिवक्त्रे प्रधानस्य
तस्मिन् वधः शृङ्खलाशीर्णवल्लीवरत्रादि वा बन्धनं
चोपगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात् तदा बन्धनं
लेढि पादौ विधुन्वन् स्वकर्णावुपर्याक्रमंश्चापि
विघ्नाय यातुर्विरोधे विरोधस्तथा स्वाङ्गकण्डूयने
स्यात् स्वपंश्चोर्ध्वपादः सदा दोषकृत।।१।।

और भी कहते हैं-

यदि यात्री के सम्मुख कुत्ता अपने मुख से जूता पकड़ कर उपस्थित हो जाये तब कार्य की सिद्धि होती है। अपने मुख में माँस लेकर आये तब धन की प्राप्ति होती है। गीले मुख वाला (सरस) कुत्ता शुभ होता है। जलती हुई लकड़ी (लूकाट) अथवा सूखी हड्डी मुँह में पकड़ा हुआ हो तो मृत्यु होती है। बुझी हुई लकड़ी (कोयला युक्त) मुख में हो तो आघात (चोट) होता है। यदि मनुष्य के हाथ पैर आदि अंगों को मुख में लेकर सामने आये तब भूमि का लाभ होता है। वस्त्र, वल्कल आदि लेकर आता है तो विघ्न उपस्थित होता है। कुछ आचार्यों का मत है कि मुख में वस्त्र लेकर आना शुभ होता है। यदि सूखी हड्डी लेकर घर में प्रवेश करे तब घर के मुखिया की मृत्यु होती है। जंजीर, जीर्णशीर्ण-लता, चमड़े की रस्सी इत्यादि लेकर उपस्थित हो तब बन्धन (कारागार) होता है। यात्रा करने वाले के पैरों को चाटता हो तथा अपने कानों को फड़फड़ाना हुआ उसके ऊपर चढ़ता हो तब यात्रा विघ्नकारक होती है। यात्री के विरुद्ध होने पर यात्रा में विरोध उत्पन्न होता है। अपने अंगों को खुजलाने पर भी यात्रा में मार्गावरोध मिलता है। अगले दोनों पैरों को ऊपर कर सोता हुआ हो तो सर्वदा दोषकारक होता है।।१।।

गमनमुखमिति। यदोपानहं मुखेन सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद् गमनमुखं यियासुमुपतिष्ठेत् समीपे तस्य तिष्ठेत् तदा सिद्ध्येऽर्थानां स्याद्भवेत्। मांसपूर्णानने आमिषपूरितवदने अर्थाप्तिर्धनानां लाभो भवति। आर्द्रेण सरसेनास्थ्ना पूर्णानने शुभम्। अग्निना अलातेन दग्धकाष्ठेन शुष्केण नीरसेन चास्थ्ना गृहीतेन मृत्युर्मरणं यातुर्भवेत्। प्रशान्तेनाग्नि-रहितेनोल्मुकेनाभिघात उपद्रवः। अथशब्दो विकल्पे। पुंसो मनुष्यस्य। शिरो मूर्धा। हस्तौ पाणी। पादौ चरणौ। आदिग्रहणादन्यमप्यवयवं वक्त्रे गृहीत्वा उपतिष्ठेत्, तदा भुवो भूम्या अभ्यागमो लाभो भवति। वस्त्रमम्बरम्। चीराणि वृक्षवल्कलानि। आदिग्रहणाद्वस्त्रचीरैकदेशमपि। एतैर्व्यापदो भवन्ति। केचिन्मुनयः

सवस्त्रे सारमेये शुभमाहुः कथयन्ति। तथा च पराशरः-

"गमने यातुर्वस्त्रगृहीतवक्त्रे सारमेये महानर्थलाभः" इति।

यदि कुत्ता मुख में जूता लेकर यात्री के सम्मुख खड़ा हो तब अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। माँस से परिपूर्ण मुखवाला हो तब धनलाभ होता है। रसपूर्ण गीले मुख वाला शुभ होता है। जलती हुई लकड़ी अथवा सूखी लकड़ी लेकर आये तब मरण होता है। अग्नि-रहित काष्ठ (लूकाठ) से उपद्रव होता है। यहाँ पर "अथ" शब्द विकल्प का वाचक है। मनुष्य की खोपड़ी, हाथ अथवा पैर अथवा अन्य किसी अंग को मुख में लेकर उपस्थित हो तो भूमि का लाभ होता है। वस्त्र (कपड़ा) तथा चीर अर्थात् वृक्षों के वल्कल अथवा वस्त्र और वल्कल का टुकड़ा लेकर उपस्थित होता है, तब वह विपत्ति-कारक माना गया है। कुछ आचार्यगण कपड़ा लेकर कुत्ते के आने पर शुभ फल कहते हैं। जैसा कि आचार्य पाराशर ने कहा है–

"यात्राकाल में यात्रा करने वाले के सम्मुख, मुख में वस्त्र पकड़ कर यदि कुत्ता आता है तब प्रचुर अर्थ की प्राप्ति होती है।"

प्रविशति त्विति। सशुष्कास्थि वक्त्रे मुखे यस्य तथाभूते सारमेये गृहं वेश्म प्रविशति तु तस्मिन् गृहे प्रधानस्य पुरुषस्य गृहपतेर्वधो मरणं भवति। शृङ्खला प्रसिद्धा लोहमयी। शीर्णा पुरातना। वल्ली प्रसिद्धा। वरत्रा चर्ममयी रज्जुः। आदिग्रहणादन्यद्रज्ज्वादिकं बन्धननिगडादिकं चोपगृह्य यदोपतिष्ठेत् तदा बन्धनं स्याद् भवेत्। यातुः पादौ चरणौ लेढि। स्वकर्णौ स्वश्रोत्रे विधुन्वंश्चालयन्नुपरि यातुर्वा आक्रमन् प्लावितुमिच्छन् यातुर्यात्राविघ्नाय भवेत्। यातुः सविरोधे यातुरेव पथि विरोधः। विरोधोऽत्र मार्गरोधो ज्ञेयः। तथा च गर्गः–

प्रस्थितस्य यदा श्वा वै मार्गं बद्ध्वा तु तिष्ठति।
अवरुद्धं तदाध्वानं चौरैरिति विनिर्दिशेत्।।

मुख में सूखी हड्डी लेकर जो कुत्ता जिस घर में प्रवेश करता है उस घर के प्रधान पुरुष की अर्थात् गृहपति की मृत्यु होती है। लोहे की जंजीर, पुरानी जीर्ण-शीर्ण वस्तु, लता, चमड़े की रस्सी अथवा अन्य भी कोई बाँधने की रस्सी लेकर उपस्थित होता है तब बंधन प्राप्त होता है। यात्री के चरणों पर लोटता हुआ अथवा चाटता हुआ अपने कानों को फड़फड़ाता हुआ अथवा यात्री के ऊपर आक्रण अर्थात् गिराने की इच्छा करता हुआ हो, तब यात्रा में विघ्न उत्पन्न होता है। यात्री के लिए विरोध उपस्थित होने पर मार्ग में विरोध अर्थात् मार्गावरोध होता है, यह जानना चाहिए। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है–

प्रस्थान करते समय यदि कुत्ता मार्ग रोक कर खड़ा हो जाता है तब आगे का

मार्ग चोरों द्वारा अवरुद्ध होने वाला है, ऐसा निर्देश करना चाहिए।

तथा स्वाङ्गस्यात्मीयावयवस्य कण्डूयने यातुर्विरोधः स्यात्। ऊर्ध्वपाद ऊर्ध्वचरणः स्वपन् सदा सर्वस्मिन् काले गमने यातुरेकदेशस्थस्य वा दोष कृद्भवेत्।।१।।

अपने अंगों को कुत्ता खुजलाने लगे तब यात्री के सम्मुख विरोध उपस्थित होता है। ऊपर पैर उठा कर सोता हुआ किसी भी काल में यात्रा करने वाले के लिए विघ्न उपस्थित करने वाला होता है॥१॥

अथ दिग्विभागेन शुनः फलमाह—

सूर्योदयेऽर्काभिमुखो विरौति
ग्रामस्य मध्ये यदि सारमेयः।
एको यदा वा बहवः समेताः
शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु।।२।।

दिशाओं के अनुसार कुत्ते का फल कहते हैं—

सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख कर गाँव के बीचो-बीच यदि कोई अकेला कुत्ता अथवा बहुत से कुत्ते मिलकर भौंकते हों तब शीघ्र ही उस देश का राजा कोई अन्य होने वाला है, ऐसा सूचना देते हैं॥२॥

सारमेयः श्वा ग्रामस्य मध्ये सूर्योदये अर्कोद्गमनकाले यद्यर्काभिमुख आदित्याभिमुखो विरौति शब्दं करोति। एकोऽथवा बहवो यदा प्रभूता समेताः सहितास्तदाऽऽशु शीघ्रं देशाधिपं देशस्वामिमन्यं द्वितीयं शंसन्ति।।२।।

सारमेय अर्थात् कुत्ता गाँव के बीच में सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख होकर ध्वनि करता है, अकेले ही अथवा बहुत से मिलकर भौंकते हों तब शीघ्र ही देश के वर्तमान राजा को बदलकर किसी दूसरे के राजा होने का संकेत करते हैं॥२॥

विशेष व्याख्या—

कौलेयकः सारमेयः कुक्कुरो मृगदंशकः।

शूनको भषकः श्वा स्यात् (अमरकोष २.१०.२१)।

सरमाया अपत्यम्। "स्त्रीभ्यो ढक्" ४.१.१२०। सारमेय=कुत्ता।

अन्यदप्याह—

सूर्योन्मुखः श्वानलदिक्स्थितश्च
चौरानलत्रासकरोऽचिरेण।

मध्याह्नकालेऽनलमृत्युशंसी

सशोणितः स्यात् कलहोऽपराह्णे।।३।।

और भी कहते हैं–

सूर्य की ओर मुखकर तथा अग्निकोण में स्थित होकर यदि कुत्ते भौंकते हैं तब चोरों से और अग्निदाह के द्वारा शीघ्र ही भय उत्पन्न होता है। मध्याह्नकाल में सूर्याभिमुख होकर भौंकने पर अग्नि से मृत्यु की आशंका होती है और तीसरे पहर में सूर्याभिमुख होकर कुत्ता भौंके तब रक्तपात होता है।।३।।

श्वा सारमेयः। सूर्योन्मुख आदित्याभिमुखः। अनलदिक्स्थितश्च आग्नेय्यभिमुखो विरौति, तदा अचिरेण शीघ्रकालेन चौरानलत्रासकरः, चौरैस्तस्करैरनलेनाग्निना त्रासं भयं करोति। मध्याह्नकाले सूर्याभिमुखो भवन्। अनलमृत्युशंसी अनलमग्निं मृत्युं मरणं च शंसति कथयति। अपराह्णे तृतीये प्रहरे सूर्याभिमुखो भवन् सशोणितो रक्तसहितः कलहः स्याद् भवेत्।।३।।

श्वा अर्थात् सारमेय (कुत्ता)। यह यदि सूर्याभिमुख होकर और अग्निकोणाभिमुख होकर भौंकता है तब शीघ्र ही चोर तथा अग्नि से भय उपस्थित होता है। चोर अर्थात् तस्कर तथा अनल अर्थात् अग्नि के द्वारा भय उत्पन्न करता है। मध्याह्नकाल में सूर्याभिमुख होता हुआ यदि कुत्ता भौंकता है तब अग्नि और मृत्यु की आशंका कही जाती है। अपराह्ण अर्थात् दिन के तीसरे प्रहर में सूर्याभिमुख होकर यदि कुत्ता भौंके तब रक्तरञ्जित कलह होता है।।३।।

अन्यदप्याह–

रुवन् दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले

कृषीवलानां भयमाशु दत्ते।

प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखश्च

दत्ते भयं मारुततस्करोत्थम् ।।४।।

और भी कहते हैं–

सूर्यास्त के समय सूर्याभिमुख होकर रोता हुआ कुत्ता कृषीवल अर्थात् कृषकों को शीघ्र भय देता है। प्रदोषकाल अर्थात् रात्रि में (रात्रि के आरम्भ में) वायव्यकोण की दिशा में मुख करता हुआ कुत्ता रोता है तो मारुत् अर्थात् वायु और तस्कर अर्थात् चोर से उत्पन्न भय होने का सङ्केत देता है।।४।।

अस्तकाले अस्तमये, दिनेशाभिमुखोऽर्कसंमुखः। रुवन् क्रोशन्। कृषीबलानां कार्षिकाणाम्। आशु शीघ्रम्। भयं भीतिम्। दत्ते ददाति। प्रदोषकाले

रात्रिमुखेऽनिलदिङ्मुखो वायव्याशाभिमुखो रुवन् मारुततस्करोत्थं मारुताद् वायोस्तस्करेभ्यः समुत्थमुत्पन्नं भयं दत्ते ददाति।।४।।

अस्तकाल में सूर्याभिमुख होकर रोता हुआ कुत्ता कृषकों को शीघ्र ही भय प्रदान करता है। इसी प्रकार रात में वायव्यकोण की ओर मुखकर रोता हो, तब वायु तथा तस्करों से भय उपस्थित होता है।।४।।

अन्यदप्याह—

उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले

विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति।

निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च

कन्याभिदूषानलगर्भपातान्।।५।।

और भी कहते हैं—

आधी रात को उत्तरमुख होकर शब्द करता है, तब ब्राह्मणों को पीड़ा और गायों का अपहरण होता है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में ईशानाभिमुख होकर यदि कुत्ता रोता है तब कन्याओं में दोष उत्पन्न होता है, तथा[अ. ८८][अ. ८८] अग्निभय और गर्भपात होता है।।५।।

निशार्धकाले अर्धरात्रसमये उदङ्मुख उत्तराभिमुखो भवन् विप्रव्यथां ब्राह्मणपीडां गोहरणं गवां परैरपहरणं शास्ति कथयति। निशावसाने रात्र्यन्ते शिवदिङ्मुख ऐशान्यभिमुखो भवन् कन्याभिदूषं कन्यां कुमारीं दूषयति, अनलमग्निं गर्भपातं गर्भपतनं च स्त्रीणां शास्ति।।५।।

निशार्धकाल अर्थात् अर्धरात्रि के समय उत्तराभिमुख होता हुआ कुत्ता रोता है तब ब्राह्मणों को कष्ट देता है तथा दूसरों के द्वारा गायों का अपहरण होता है। निशावसान अर्थात् रात्रि के अन्तिम काल में ईशानदिशा की ओर मुख करके कुत्ता रोता है, तब कुमारी कन्याओं को दूषित करता है, अग्नि का भय और स्त्रियों का गर्भपात होता है।।५।।

अन्यदप्याह—

उच्चैः स्वराः स्युस्तृणकूटसंस्थाः

प्रासादवेश्मोत्तमसंस्थिता वा।

वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्रा-

मन्यत्र मृत्युं दहनं रुजश्च।।६।।

और भी कहते हैं–

पुआल के ढेर पर तथा भवन के शीर्ष पर स्थित होकर उच्चस्वर में कुत्ता भौंकता है, तब वर्षा ऋतु में अतिवृष्टि तथा वर्षाऋतु से भिन्न ऋतु होने पर मृत्यु, अग्निदाह और रोग होते हैं॥६॥

तृणकूटस्तृणराशिस्तत्र संस्थिताः। प्रासादः उत्तमं वेश्म प्रधानगृहम्। एतेषु संस्थिता वा यद्युच्चैः स्वरास्तीव्रशब्दाः स्युर्भवेयुः। वर्षासु वर्षाकाले तीव्रां वृष्टिं कथयन्ति उद्दिशन्ति। अन्यत्र वर्षाभ्योऽन्यस्मिन् ऋतौ मृत्युं मरणं दहनमग्निं रूजो रोगांश्च कथयन्ति।।६।।

तृणकूट अर्थाथ् तृणसमूह (पुआल आदि) तथा प्रासाद अर्थात् श्रेष्ठभवन; उन पर स्थित होकर यदि कुत्ता तीव्र शब्द करता है तब वर्षाऋतु में अत्यधिक वर्षा होती है, ऐसा कहा गया है। वर्षा से भिन्न ऋतु में कुत्ते के भौंकने पर मृत्यु, अग्निदहन और रोगों की उत्पत्ति कही गयी है॥६॥

अन्यदप्याह–

प्रावृट्कालेऽवग्रहेऽम्भोऽवगाह्य प्रत्यावर्तै रेचकैश्चाप्यभीक्ष्णम्।
आधुन्वन्तो वा पिबन्तश्च तोयं वृष्टिं कुर्वन्त्यपरे द्वादशाहात्।।७।।

और भी कहते हैं–

वर्षाऋतु में यदि वृष्टि न हो और उस समय जल से भींगा हुआ कुत्ता भूमि पर लोटते हुए अपने शरीर को प्रकम्पित करता है और जल पीता है, तब बारह दिनों के भीतर वर्षा अवश्य होती है॥७॥

प्रावृट्काले वर्षासमये अवग्रहे वृष्टिनिरोधे सति अम्भो जलमवगाह्य तन्मध्ये स्थित्वा प्रत्यावर्तै रेचकेः। पार्श्वपरिवर्तनं प्रत्यावर्तः। पार्श्ववलितं कृत्वा पुनस्तदेव व्यत्येयन करोति। एतैः प्रत्यावर्तै रेचकैरभीक्ष्णं पुनः पुनर्यद्युपलक्षिता भवन्ति, अथवा तोयं जलमाधुन्वन्तः कम्पयन्तः पिबन्तो वा दृश्यन्ते, तदाऽवग्रहे सति वर्षाकाले द्वादशाहाद् द्वादशकादन्तरे मध्ये वृष्टिं वर्षणं कुर्वन्ति। द्वादशाहमध्ये देवो वर्षतीत्यर्थ।।७।।

प्रावृट्काल अर्थात् वर्षा के समय अवग्रह अर्थात् वर्षा का अभाव हो तथा जल में भींगकर कुत्ता प्रत्यावर्तन अर्थात् लोटता-पोटता है अर्थात् अगल-बगल दोनों पार्श्वों को बदलता हुआ लोटता है, ऐसा बार-बार करता है, अथवा जल को

उछालता हुआ जल पीता है, तब उस अनावृष्टि के काल में भी बारह दिनों के भीतर वर्षा होती है। तात्पर्य यह है कि बारह दिनों के भीतर ही इन्द्रदेवता अवश्य वर्षा करते हैं।।७।।

अन्यत् श्वचेष्टितमाह–

द्वारे शिरो न्यस्त बहिः शरीरं रोरूयते श्वा गृहिणीं विलोक्य।

रोगप्रदः स्यादथ मन्दिरान्तर्बहिर्मुखो वक्ति च बन्धकीं ताम्।।८।।

कुत्ते की अन्य चेष्टाओं को बतलाते हैं–

यदि कुत्ता अपना सिर दरवाजे पर तथा शेष शरीर बाहर रखकर गृहणी को देखता हुआ रोता है तो रोग उत्पन्न होता है। इसके विपरीत भवन के भीतर स्थित होकर सिर बाहर करके रोता है तब गृहपत्नी वेश्या होती है।।८।।

श्वा सारमेयो द्वारे गृहद्वारे शिरो मस्तकं न्यस्य क्षिप्त्वा शरीरं देहं बहिर्बाह्यभागे न्यस्य गृहणीं विलोक्य रोरूयते तदा तां गृहिणीं बन्धकीं वेश्यामिति च वक्ति कथयति।।८।।

सारमेय अर्थात् कुत्ता घर के दरवाजे पर सिर रखकर शेष शरीर को बाहर कर गृहणी को देखते हुए विलाप करता है, तब रोगप्रदायक होता है। यदि घर के भीतर स्थित होकर दरवाजे के बाहर मुखकर रोता है तब उस घर की गृहणी के वेश्या होने का संकेत देता है।।८।।

अन्यदप्याह–

कुड्यमुत्किरति वेश्मनो यदा तत्र खानकभयं भवेत् तदा।

गोष्ठमुत्किरति गोग्रहं वदेद्धान्यलब्धिमपि धान्यभूमिषु।।९।।

और भी कहते हैं–

यदि कुत्ता घर की भित्ति (दीवार) का खनन करता हो, तो घर में सेंध लगने का भय होता है। यदि गोष्ठ (गाय बाँधने का स्थान) का खनन करता हो, तब गाय का हरण (चोरी) होता है। धान के स्थान का उत्खनन करता हो तब धान्य की प्राप्ति होती है।।९।।

वेश्मनो गृहस्य यदा कुड्यं भित्तिमुत्किरति खनति तदा तत्र गृहे खानकभयं सन्धिभेदभीतिर्भवेत् स्यात्। गोष्ठं गोस्थानकं यद्युत्किरति तदा गोग्रहं गोहरणं च वदेद् ब्रूयात्। धान्यभूमिषु खनने धान्यलब्धिर्भवति। यस्यां भूमौ धान्यानि

भवन्ति सा धान्यभूमिः।।९।।

घर के कुड्य् अर्थात् भित्ति को यदि कुत्ता उत्कीर्ण अर्थात् खनन करता है, तब उस घर में खानक सन्धिभेद (सेंध) होने का भय होता है। गोष्ठ अर्थात् गोशाला का उत्खनन करे, तब गोहरण कहना चाहिए। धान्यभूमि को खनने पर धान्य की प्राप्ति होती है। जिस भूमि पर धान्य उत्पन्न होता है, उसे "धान्यभूमि" कहते हैं।।९।।

अथान्यच्चेष्टितमाह–

एकेनाक्ष्णा साश्रुणा दीनदृष्टिर्म-
न्दाहारो दुखकृत् तद्गृहस्य।
गोभिः साकं क्रीडमाणः सुभिक्षं
क्षेमारोग्य चाभिधत्ते मुदं च।।१०।।

अन्य चेष्टाओं को बतलाते हैं–

यदि गृह-श्वान एक नेत्र से आँसू गिराता हुआ कातर नयनों वाला हो और अल्प भोजन करे, तो उस घर के लिए दुःखकारक होता है। गायों के साथ खेलता हुआ श्वान, सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य और प्रसन्नता लाता है।।१०।।

एकेनाक्ष्णा एकेन नयनेन चाश्रुणाश्रुयुक्तेनोपलक्षितः स च दीनदृष्टिर्मन्दाहारोऽ-ल्पभोजनो यदि भवति, तदा तद्गृहस्य तस्य वेश्मनो दुःखकृद्भवति। गोभिः साकं गोभिः सह क्रीडमाणः सुभिक्षमभिधत्ते करोति। तथा क्षेमारोग्यं मुदं च हर्षमभिधत्ते करोति।।१०।।

एक आँख अश्रुयुक्त हो और वह श्वान भोजन कम करे, दीन-हीन नेत्रों वाला प्रतीत हो तब उस घर के लिए दुःख देने वाला होता है। गायों के साथ क्रीड़ा करे तब सुभिक्ष लाता है तथा क्षेम, आरोग्य और मुद अर्थात् हर्ष का कारक होता है।।१०।।

अन्यदप्याह–

वामं जिघ्रेज्जानु वित्तागमाय स्त्रीभिः साकं विग्रहो दक्षिणं चेत्।
ऊरु वामं चेन्द्रियार्थोपभोगः सव्यं जिघ्रेदिष्टमित्रैर्विरोधः।।११।।

और भी कहते हैं–

यदि श्वान बायें घुटने को सूँघें तब धनागम होता है। वह यदि दाहिने घुटने को

सूँघता है तब स्त्रियों के साथ कलह होता है। यदि कुत्ता बायीं जंघा को सूँघे तब ऐन्द्रिक सुख प्राप्त होता है। यदि दक्षिण जंघा को सूँघता है तब इष्ट-मित्रों से विरोध होता है॥११॥

सारमेयो यातुर्वामं जानु यदि जिघ्रेत् तदा वित्तागमाय धनलाभाय भवेत्। यदा दक्षिणं जानु जिघ्रेत् तदा स्त्रीभिः साकं योषिद्भिः सह विग्रहो भवति। वाममूरुं यदि जिघ्रेत् तदा इन्द्रियार्थोपभोगो भवति। इन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां येऽर्था विषया-स्तदुपभोगो भवति। सव्यं दक्षिणमूरूं जिघ्रेत् तदा इष्टैर्बन्धुभिर्मित्रैः सुहृद्भिः सह विरोधो भवति।।११।।

कुत्ता यदि यात्री का बायाँ घुटना सूँघता है तब धन का लाभ होता है। यदि वह दक्षिण घटुना सूँघता है तब स्त्रियों के साथ विग्रह (कलह) होता है। यदि बाएँ जंघे को सूँघता है तब इन्द्रियों को सुखोपभोग प्राप्त होता है। अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के जो विषय होते हैं उनका उपभोग होता है। यदि दाहिने जंघे को सूँघता है, तब मित्रों के साथ विरोध होता है॥११॥

अन्यदप्याह—

पादौ जिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रां प्राहार्थाप्ति वाञ्छितां निश्चलस्य।
स्थानस्थस्योपानहौ चेद्विजिघ्रेत् क्षिप्रं यात्रां सारमेयः करोति।।१२।।

और भी कहते हैं—

यदि यात्री के पैरों को कुत्ता सूँघता है, तो यात्रा का निषेध होता है। यदि कुत्ता स्थिर स्थित रहे, तब मनोवाञ्छित धन की प्राप्ति होती है। अपने स्थान पर बैठे हुये यात्री के जूते को यदि कुत्ता सूँघता है, तो शीघ्र ही प्रस्थान होता है॥१२॥

सारमेयः श्वा यायिनो गच्छतः पादौ चरणौ जिघ्रेत् तदाऽयात्रां गमननिषेधं प्राह कथयति। निश्चलस्य तत्र स्थितस्यैव वाञ्छितामभीष्टामर्थप्राप्तिं धनागमं प्राह। स्थानस्थितस्यैकदेशस्थितस्योपानहौ चेद्यदि विजिघ्रेत् तदा क्षिप्रमाश्वेव यात्रां गमनं करोति।।१२।।

सारमेय अर्थात् कुत्ता यात्रा करने वाले व्यक्ति के चलते हुये पैरों को सूँघता है, तब उस यात्रा का निषेध अर्थात् स्थगन होता है। यदि वह निश्चल स्थित हो तब मनोभिलषित धनागम होता है। एक प्रान्त में स्थित जूते को यदि कुत्ता सूँघता है, तब शीघ्र ही यात्रा का आरम्भ होता है॥१२॥

अन्यदप्याह—

उभयोरपि जिघ्रणे हि बाह्वो-

विज्ञेयो रिपुचौरसम्प्रयोगः।

अथ भस्मनि गोपयीत भक्षान्

मांसास्थीनि च शीघ्रमग्निकोपः।।१३।।

और भी कहते हैं-

यदि कुत्ता दोनों बाहों को सूँघे तब शत्रु तथा चोर से हानि होती है। यदि कुत्ता भोज्य पदार्थों को भस्म (राख) में छिपाये अथवा हड्डी, मांस आदि को छिपाये, तो शीघ्र ही आग लगने का भय होता है।।१३।।

उभयोर्द्वयोरपि बाह्योर्जिघ्रणे रिपुचौरसम्प्रयोगो विज्ञेयः। रिपुः शत्रुः। चौरा स्तस्कराः। एतैः सम्प्रयोगो विज्ञेयो विज्ञातव्यः। अथ वा भस्मनि भस्ममध्ये भक्षानपूपादीन् गोपयीत स्थगित्वा स्थापयेत्, मांसास्थीनि वा गोपयीत तदा शीघ्रमाश्वेवाग्निकोपो भवति। तथा च गर्गः-

यदा श्वा जिघ्रति भुजौ यातुर्द्वावपि निर्दिशेत्।

रिपुचौरभयं घोरं तस्मिन्नुत्पातदर्शने।।

आमिषं तु यदाऽऽगृह्य तृणैराच्छाद्य तिष्ठति।

उत्पातं तादृशं दृष्ट्वा विन्द्यादग्निमुपस्थितम्।।इति।।१३।।

यदि दोनों भुजाओं को कुत्ता सूँघता है तब रिपु अर्थात् शत्रु और चोर अर्थात् तस्कर का सम्प्रयोग अर्थात् आघात जानना चाहिए। भस्म (राख) के भीतर पूआ आदि भक्ष्य पदार्थों को चुरा कर रखता है अथवा मांस एवं हड्डी को छिपा कर रखथा है, तब शीघ्र अग्निप्रकोप होता है। जैसा कि आचार्यगर्ग ने कहा है-

यदि कुत्ता दोनों भुजाओं को सूँघता है तब इस उत्पात (क्रिया) को देखने का फल शत्रु तथा चोर से घोर कष्ट की प्राप्ति है। यदि आमिष पदार्थ (मांसादि) को लेकर तृणों से ढँककर स्थित होता है, तब इस प्रकार के उत्पात का फल अग्निभय का होना कहा गया है।।१३।।

अन्यदप्याह-

ग्रामे भषित्वा च बहिः श्मशाने

भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः।

यियासतश्चाभिमुखो विरौति

यदा तदा श्वा निरुणद्धि यात्राम्।।१४।।

और भी कहते हैं-

ग्राम में भौंक कर यदि श्मशान में भौंकने लगता हो, तब प्रमुख व्यक्ति का निधन होता है। इसी प्रकार यदि यात्री के सम्मुख आकर कुत्ता भौंकने लगता है, तब यात्रा रुक जाती है॥१४॥

ग्रामे भषित्वा शब्दं कृत्वा बहिर्बाह्ये श्मशाने च यदि भषन्ति। शब्द कुर्वन्ति सारमेयास्तदोत्तमस्य प्रधानस्य पुंसो नरस्य मरणं विनाशो भवति। यियासतो यातुमिच्छोरभिमुखः संमुखो विरौति यदा शब्दं कुरुते तदा यात्रा गमनं निरुणद्धि निवर्तयति।।१४।।

गाँव में भौंक कर यदि कुत्ते बाह्य श्मशानभूमि में भौंकते हैं, तब प्रधान अर्थात् प्रमुख व्यक्ति का मरण होता है। यात्रा की कामना करने वाले व्यक्ति के सम्मुख यदि कुत्ता भौंकने लगे तब उसकी यात्रा नहीं हो पाती है॥१४॥

अन्यदप्याह—

उकारवर्णे विरुतेऽर्थसिद्धि-
रोकारवर्णेन च वामपार्श्वे।
व्याक्षेपमौकाररुतेन विन्द्या-
न्निषेधकृत्सर्वरुतैश्च पश्चात्।।१५।।

और भी कहते हैं—

कुत्ता जब 'उ'कार ध्वनि का शब्द करे तब कार्यसिद्धि होती है। वाम-भाग में 'ओ'कार वर्ण की ध्वनि करे तब भी कार्य की सिद्धि होती है। 'औ' वर्ण की ध्वनि से व्याकुलता बढ़ती है। सभी वर्णों की सम्मिलित ध्वनि होती है, तब यात्रा का निषेध हो जाता है॥१५॥

उकारवर्णे विरुते उकाराक्षरेण विरुते उच्चारितेऽर्थानां सिद्धिर्भवति। तथा यातुर्वामपार्श्वे वामभागे ओकारवर्णेन रुतेऽर्थसिद्धिरेव। औकाररुतेन व्याक्षेपमाकुलतां विन्द्यात्। यातुः पश्चात् सर्वरुतैः सर्ववर्णानामुच्चारणे निषेधकृद्यात्राप्रतिषेधं करोति।।१५।।

यदि कुत्ता भौंकने समय उकार की ध्वनि करे, तब अर्थ की सिद्धि होती है। यदि वह कुत्ता बायीं ओर होकर ओकार-ध्वनि से भौंकता है, तब भी अर्थ की सिद्धि होती है। औकार-स्वर की ध्वनि करने पर व्याकुलता की वृद्धि समझनी चाहिए। यात्री के पीछे यदि सभी स्वरों की मिश्रित-ध्वनि कुत्ता करता है, तब यात्रा का निषेध हो जाता है॥१५॥

अन्यदप्याह—

खंखेति चोच्चैश्च मुहुर्मुहुर्ये
रुवन्ति दण्डैरिव ताड्यमानाः।
श्वानोऽभिधावन्ति च मण्डलेन
ते शून्यतां मृत्युभयं च कुर्युः।।१६।।

और भी कहते हैं–

जो कुत्ते डण्डे से मारे जाने की तरह "खं, खं" की ध्वनि जोर-जोर से करते हैं; अथवा वृत्ताकार में समूह-बद्ध होकर दौड़ते हैं, तब वह गाँव जनशून्य हो जाता है और मृत्यु का भय उत्पन्न होता है।।१६।।

ये श्वानः कुक्कुरा उच्चैः कृत्वा मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं खंखेति रुवन्ति शब्दं कुर्वन्ति तथैव मुहुर्मुहुः रुवन्ति। अथवा मण्डलेन मण्डलाकृतिना समूहेन परिवर्तुलेन धावन्ति गच्छन्ति ते नगरस्य शून्यतां शून्यत्वं मृत्युभयं मरणभयं च कुर्युः।।१६।।

जो कुत्ते ऊँचे स्वर में बार-बार खं, खं शब्द कर भौंकते हैं, अथवा समूह में मण्डलाकार अर्थात् गोले में दौड़ते हैं, तब वे उस नगर की शून्यता तथा मृत्यु का भय उपस्थित करते हैं।।१६।।

अन्यदप्याह–

प्रकाश्य दन्तान् यदि लेढि सृक्विणी
तदाशनं मृष्टमुशन्ति तद्विदः।
यदाननं लेढि पुनर्न सृक्विणी
प्रवृत्तभोज्येऽपि तदान्नविघ्नकृत्।।१७।।

और भी कहते हैं–

यदि कुत्ता दाँतों को निकालकर तथा जबड़ा फैलाकर खाता है, तब मिष्ठान्न भोजन मिलता है। जिस भोज्य-वस्तु को मुख से खाकर ओठ पर्यन्त न खाये, तो भोजन कर्ता की भोजन में रुचि होने पर भी भोजन करने में विघ्न उपस्थित हो जाता है।।१७।।

दन्तान् रदान् प्रकाश्य सन्दर्श्य सृक्विणी ओष्ठपर्यन्ते यदि लेढि, तदा तद्विदः श्वचेष्टितज्ञा मृष्टमशनं भोजनमुशन्ति। यदाननं मुखं लेढि न पुनः सृक्विणी ओष्ठपर्यन्ते लेढि, तदा प्रवृत्तभोज्येऽपि भोक्तुं प्रवृत्तेऽपि नरेऽन्नविघ्नं करोति। न भोजनं लभत इति।।१७।।

दाँतो को प्रदर्शित करता हुआ ओठ पर्यन्त यदि कुत्ता भोजन करे, तब कुत्ते के लक्षणों को जानने वाले विद्वान् मधुरान्न के भोजन का लाभ बतलाते हैं। यदि मुख से भोजन करे और ओठ पर्यन्त मुख खोलकर भोजन न करे, तब भोजनकर्त्ता की प्रवृत्ति होने पर भी उसके भोजन में विघ्न होता है। अर्थात् भोजन प्राप्त नहीं होता है।।१७।।

विशेष व्याख्या–

'सृक्विणी' शब्द मूल में प्रयुक्त है जिसका अर्थ विवृति में 'ओठपर्यन्त' कहा गया है। अमरकोष २/६/११ में "प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी" शब्द आया है। इस प्रकार ये दोनों शब्द समानार्थी हैं। इसकी व्युत्पत्ति 'सृजति लालादि, सृज विसर्गे' है। रामाश्रमी टीका में इस शब्द पर निम्नलिखित सन्दर्भ प्राप्त होते हैं–

'महासृक्काय शोभितो नृसिंहनखाग्रवत्' इति लताश्लेषात् कद्वयम्। 'स्मतस्य संभावय सृक्वणा कणान्' इति श्रीहर्षप्रयोगात् वकार युक्तं च। "न संयोगाद्वमन्तात्" (५/४/१३७) इत्यल्लोपो न।। 'स सृक्कणीप्रान्तमसृक्प्रदिग्धं प्रहेलिहानो हरिणारिरुच्चैः" इति पाणिनेर्ङीवन्ता च।। 'सृक्के द्वे चैव विज्ञेये चत्वारिंशच्च वक्रजाः' इति वदनाददन्तं सृक्कमपि।। सृक्कणि इतीदन्तमपि 'क्लीवेवारिशब्दवत्' इत्युक्तेः। सृक्वि शब्दो ह्रस्वेकारान्तोऽपि क्लीवः–इत्यपरे। सक्थ्यक्षिदधिसृक्कि तथा वारि स्यात् इत्यरुणः– इति मुकुटः।।

अन्यदप्याह–

ग्रामस्य मध्ये यदि वा पुरस्य
भषन्ति संहत्य मुहुर्मुहुर्ये।
ते क्लेशमाख्यान्ति तदीश्वरस्य
श्वारण्यसंस्थो मृगवद्विचिन्त्यः।।१८।।

और भी कहते हैं–

यदि गाँव अथवा नगर के मध्यभाग में कुत्ते एकत्रित होकर बारम्बार भौंकते हैं, तब वे उस ग्राम अथवा नगर के स्वामी के क्लेश को संसूचित करते हैं। वनों में रहने वाले कुत्ते की चेष्टाओं का मृग के सदृश ही फल का विचार करना चाहिए।।१८।।

ये सारमेया ग्रामस्य मध्ये पुरस्य वा संहत्य समेत्य बहवो मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं

---

१. द्रष्टव्योऽस्यैव ग्रन्थस्य ८५ अध्यायस्य ४३ श्लोकः।

भषन्ति शब्दं कुर्वन्ति, ते तदीश्वरस्य ग्रामस्वामिनः पुरस्वामिनो वा क्लेशमाख्यान्ति क्लेशं कथयन्ति। अरण्यसंस्थः श्वा कुक्कुरो मृगवद्विचिन्त्यः। मृगेण तुल्यं मृगवत्। मृगस्य यच्चेष्टितमुक्तं तदारण्यस्यास्य सारमेयस्य विचिन्तनीयमिति। "ओजाः१ प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः" इत्यादि।।१८।।

जो श्वान ग्राम अथवा पुर के मध्य में समवेत स्वर से बार-बार भौंकते हैं, वे उस ग्राम अथवा पुर के अधिपति को होने वाले कष्ट को प्रकट करते हैं। अरण्य में स्थित श्वान अर्थात् कुक्कुर का मृग के समान विचार करना चाहिए। मृग की चेष्टाओं के सम्बन्ध में जो कुछ बतलाया गया है, तदनुसार ही अरण्यवासी-श्वान का भी फल-विचार करना चाहिए। जैसाकि अध्याय ८५ के श्लोक संख्या ४३ में "ओजाः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः" इत्यादि के द्वारा कहा गया है।।१८।।

अन्यदप्याह—

वृक्षोपगे क्रोशति तोयपातः
स्यादिन्द्रकीले सचिवस्य पीडा।
वायोर्गृहे सस्यभयं गृहान्तः
पीडा पुरस्यैव च गोपुरस्थे।।१९।।
भयं च शय्यासु तदीश्वराणां
याने भषन्तो भयदाश्च पश्चात्।
अथापसव्या जनसन्निवेशे
भयं भषन्तः कथयन्त्यरीणाम् ।।२०।।

और भी कहते हैं—

वृक्ष के समीपस्थ यदि कुत्ता भौंकता है, तो वर्षा होती है। इन्द्रकील अर्थात् अर्गला के समीप में भौंकने पर सचिव को शारीरिक पीड़ा होती है। घर के मध्यभाग अथवा वायव्यकोण में कुत्ता भौंकता है, तो सस्य-भय होता है, तथा यदि नगर के द्वार पर स्थित होकर भौंकता है, तब नगर को भय प्राप्त होता है। शय्या के ऊपर श्वान शब्द करे तो शय्या के स्वामी को भय मिलता है। यात्रा हेतु प्रस्थान करने पर भौंके तो यात्री को भय की प्राप्ति होती है। जन-समूह के वामभाग में स्थित होकर कुत्ते भौंकते हैं, तो शत्रुओं का भय उत्पन्न होता है।।१९-२०।।

वृक्षोपग इति। वृक्षोपगे वृक्षसमीपवर्तिनि सारमेये क्रोशति सति तोयपातो जलपातः स्याद् भवेत्। देवो वर्षतीत्यर्थः। इन्द्रकीले अर्गलासमीपे सचिवस्य

मन्त्रिणः पीडा स्याद् भवेत्। गृहान्तर्गृहमध्ये वायोर्गृहे वा वायव्यां दिशि यदि क्रोशति, तदा सस्यस्य भयं भवति। गोपुरस्थे पुरद्वारस्थिते पुरस्यैव पीडा भवेत्।।१९।।

वृक्ष के निकट कुत्ते के भौंकने पर तोयपात अर्थात् जल-वृष्टि होती है। अर्थात् देवता वर्षा करते हैं। इन्द्रकील अर्थात् अर्गला के समीप स्थित होकर भौंकता है, तब मन्त्री को पीड़ा पहुँचती है। गृह के मध्यभाग में अथवा गृह के वायव्यदिशा में यदि श्वान शब्द करता है, तो सस्यों को भय होता है। गोपुर अर्थात् नगर के द्वार पर स्थित होकर कुत्ता भौंकता है, तो नगरवासियों को कष्ट मिलता है।।१९।।

भयं च शय्यास्विति। शय्यास्वास्तरणेषु तदीश्वराणां शयनस्वामिनां भयं कुर्वन्ति। याने यात्रायां पश्चाद्भषन्तो यातुरेव भयदा भयं ददति। अथशब्दश्चार्थे। जनसन्निधौ जनानामेवापसव्या वामभागस्था भषन्तोऽरीणां शत्रूणां सम्बन्धि भयं प्रवदन्ति कथयन्तीति।।२०।।

।।इत श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुने श्वचक्रं नामाष्टाशीतितमोऽध्याय:।।८८।।

यदि शय्या के ऊपर स्थित होकर कुत्ता भौंकता है, तो उसके स्वामी अर्थात् शय्या के स्वामी को भय प्रदान करता है। तथा यदि यात्री के गमन के अनन्तर भौंकता है, तो यात्री को भय होता है। यहाँ पर "अथ" शब्द का प्रयोग "च" (और) अर्थ हेतु किया गया है। जनसन्निवेश अर्थात् जनसंकुल (जन-समूह) के अपसव्य अर्थात् बायीं ओर स्थित होकर कुत्ता भौंकता है, तो शत्रुओं से सम्बन्धित भय को सूचित करता है।।२०।।

।।श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति में शाकुनपरक श्वचक्र नामक अट्ठासीवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।८८।।

❋ ❋ ❋

।।अथैकोननवतितमोऽध्यायः।।

शिवारुताध्यायः

अथ शिवारुतं व्याख्यायते।

तत्रादावेव श्ववदतिदेशं विशेषं चाह—

श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन
विशेष एषां शिशिरे मदाप्तिः।
हूहू रुतान्ते परतश्च टाटा
पूर्णः स्वरोऽन्ये कथिताः प्रदीप्ताः।।१।।

शिवारुत अध्याय ८९ की व्याख्या करते हैं।

श्वान से सियार की साम्यता और उसका वैशिष्ट्य कहते हैं—

सियारों का (शुभाशुभ) फल कुत्तों के समान होता है। तथापि विशेषता यह है कि शिशिर ऋतु में इसको (सियार को) मद (कामोत्तेजना) की प्राप्ति हो जाती है। बोलने के अन्त में हू-हू शब्द के बाद टा-टा शब्द इसके पूर्णस्वर हैं। तथा अन्य स्वरों को प्रदीप्त कहा गया है।।१।।

शृगालाः श्वभिः सारमेयैः फलेन सदृशास्तुल्याः यादृशं चेष्टितं फलं च शुनामुक्तं तादृशमेव शृगालानां विज्ञातव्यम्, किन्त्वयं विशेषः—एषां शृगालानां शिशिरे माघफाल्गुनयोर्मदाप्तिर्मदप्रादुर्भावो भवति। तस्मात् तेषां शिशिरे निष्फलता। रुतान्ते रुतावसाने हूहूशब्दः परतोऽनन्तरं टाटा एष पूर्णः स्वरः। अन्ये सर्वे स्वराः प्रदीप्ता उक्तः कथिताः।।१।।

शृगालों अर्थात् सियारों का कुत्तों के सदृश फल होता है। जिस प्रकार की चेष्टा का जो फल कुत्तों का कहा गया है, उसी प्रकार का फल सियारों का भी जानना चाहिए। किन्तु यहाँ पर विशेष बात यह है कि इन सियारों को शिशिरऋतु अर्थात् माघ तथा फाल्गुन मास में मद उत्पन्न होता है। इस कारण से शिशिर ऋतु में उनकी (सियारों की) चेष्टाएँ निष्फल होती हैं। क्रन्दन के अन्त में हूहू शब्द के पश्चात् टा-टा शब्द सियार का पूर्णस्वर होता है। तथा अन्य समस्त स्वर प्रदीप्त कहे गये हैं।।१।।

अथात्रैव लोमाशिकायाश्चेष्टितमाह—

लोमाशिकायाः खलु कक्कशब्दः
पूर्णः स्वभावप्रभवः स तस्याः।
येऽन्ये स्वरास्ते प्रकृतेरपेताः
सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः।।२।।

यहाँ पर श्रृगाली की चेष्टाओं को बतलाते हैं–

श्रृगाली के कक्क शब्द ही पूर्ण हैं, जो कि उसके स्वभाव से उत्पन्न होता है। तथा जो अन्य स्वर होते हैं, वे उसकी प्रकृति के विरुद्ध होते हैं। अत: उन सभी स्वरों को दीप्त बतलाया गया है।।२।।

खलुशब्दचार्थे। लोमाशिकायाश्च कक्कशब्दः पूर्णः स च लोमाशिकायाः स्वभावप्रभवः स्वभावादेव प्रभवत्युत्पद्यते। येऽन्ये स्वराः शब्दास्ते प्रकृतेः स्वभावतोऽपेता अपगतास्ते च सर्वे दीप्ताः सम्प्रदिष्टाः कथिताः।।२।।

"खलु" शब्द यहाँ पर "च" अर्थात् "और" अर्थ में प्रयुक्त है। लोमाशिका अर्थात् श्रृगाली का "कक्क" शब्द पूर्ण (स्वर) है। तथा वह (कक्क स्वर) श्रृगाली में स्वभाव से ही उत्पन्न होता है। तथा जो अन्य स्वर अर्थात् शब्द उत्पन्न होते हैं, वे उसके स्वभाव के विपरीत उत्पन्न होते हैं तथा उन सभी (अस्वाभाविक) स्वरों को दीप्त कहा जाता है।।२।।

अथ शिवाचेष्टितमाह—

पूर्वोदीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता।
धूमिताभिमुखी हन्ति स्वरदीप्ता दिगीश्वरान् ।।३।।

श्रृगाली की चेष्टा बतलाते हैं–

पूर्व तथा उत्तरदिशा में श्रृगाली शुभ कही गयी है। तथा शब्द-रहित होने पर सर्वत्र शुभदायी मानी गयी है। सूर्याभिमुखी होकर श्रृगाली दीप्त स्वर करे, तो उस दिशा के राजा का नाश होता है।।३।।

शिवा शृगालिका पूर्वोदीच्योः पूर्वस्यामुत्तरस्यां च दिशि शस्ता शुभफलदा। सा च शान्ता शान्तरवा शान्तदिक्स्था च सर्वत्र सर्वस्यां दिशि पूजिता शुभदा। यां दिशमादित्यो यास्यति सा धूमिता। धूमिताभिमुखी शिवा स्वरदीप्ता च क्रूरशब्दा दिगीश्वरान् हन्ति। तस्यां दिशि योऽधिपतिस्तं विनाशयतीत्यर्थः।।३।।

शिवा अर्थात् श्रृगाली पूर्वदिशा तथा उत्तरदिशा में स्थित हो, तो शुभफल देती है। तथा वह शान्तरवा अर्थात् नि:शब्द होकर स्थित हो, तब सभी दिशाओं में

शुभप्रदायक होती है। जिस दिशा की ओर सूर्य गमन कर रहा हो, उस दिशा को "धूमिता" कहते हैं। धूमितामुखी शृगाली दीप्तस्वर अर्थात् क्रूरस्वर करे तो उस दिशा के स्वामी का नाश होता है। अर्थात् उस दिशा का जो अधिपति (स्वामी) होता है, उसका विनाश होता है॥३॥

अथ न ज्ञायते कस्यां दिशि क ईश्वरस्तदर्थमाह—

[१]राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः।
गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम्॥४॥

किस दिशा का कौन स्वामी है, यह बतलाते हैं—

राजा, राजकुमार, सेनापति, दूत, श्रेष्ठी, गुप्तचर, ब्राह्मण तथा गजाध्यक्ष क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं। तथा क्षत्रिय आदि क्रमशः पूर्वादि चार दिशाओं के स्वामी हैं॥४॥

राजा नृपः पूर्वस्यां दिशि। कुमारो राजपुत्र आग्नेय्याम्। नेता सेनापतिर्दक्षिणस्याम्। दूतो गमागमिको नैर्ऋत्याम्। श्रेष्ठी पश्चिमायाम्। चरो गूढपुरुषो वायव्याम्। द्विजो ब्राह्मण उत्तरस्याम्। गजाध्यक्षो हस्तिशालाध्यक्ष ऐशान्याम्। ऐते क्रमेण पूर्वाद्या ज्ञेयाः। तथा क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशाम्। पूर्वस्यां क्षत्रियाः। दक्षिणस्यां वैश्याः। पश्चिमायां शूद्राः। उत्तरस्यां ब्राह्मणाः॥४॥

राजा अर्थात् नृप पूर्वदिशा का स्वामी होता है। कुमार अर्थात् राजा का पुत्र अग्निकोण का, नेता अर्थात् सेनापति दक्षिणदिशा का, दूत नैर्ऋत्यकोण का, श्रेष्ठी पश्चिमदिशा का, चर अर्थात् गूढ़-पुरुष (गुप्तचर) वायव्यकोण का, द्विज अर्थात् ब्राह्मण उत्तरदिशा का तथा गजाध्यक्ष अर्थात् हस्ति-शालाध्यक्ष ईशानकोण का स्वामी होता है। तथा क्षत्रिय आदि क्रमशः चारों दिशाओं के स्वामी होते हैं। अर्थात् पूर्वदिशा के स्वामी क्षत्रिय, दक्षिणदिशा के वैश्य, पश्चिमदिशा के शूद्र तथा उत्तरदिशा के स्वामी ब्राह्मण होते हैं॥४॥

अन्यदप्याह—

सर्वदिक्ष्वशुभा दीप्ता विशेषणाह्न्यशोभना।
पुरे सैन्येऽपसव्या च कष्टा सूर्योन्मुखी शिवा॥५॥

और भी कहते हैं—

दीप्त स्वर सभी दिशाओं में अशुभ होते हैं तथा दिन में विशेष अशुभ होते हैं। नगर अथवा सेना के दक्षिणभाग में सूर्याभिमुखी शिवा (शृगाली) कष्ट देती है॥५॥

---

१. इदं पद्यमस्य ग्रन्थस्य ८५ अध्यायेऽपि।

दीप्ता शिवा सर्वासु दिक्ष्वशुभा अनिष्टफला। अह्नि दिवसे विशेषेणातिशयेनाशोभना। पुरे नगरे सैन्ये सेनायां वा अपसव्या दक्षिणभागस्था सूर्योन्मुखी रव्यभिमुखी शिवा कष्टा कष्टफला। अशुभेत्यर्थः।।५।।

शिवा अर्थात् शृगालीका दीप्तस्वर सभी दिशाओं में अनिष्ट-फल देता है। दिन में विशेष रूप से अशुभकारक होता है। नगर अथवा सेना के दक्षिणभाग में स्थित सूर्योन्मुखी अर्थात् सूर्य की ओर मुँह की हुई शिवा (शृगाली) कष्ट देती है।।५।।

अथ रुतविशेषेण फलमाह–

याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति [१]मृतवेदिका।
धिग्धिग् दुष्कृतिमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी।।६।।

शब्द-विशेष के द्वारा फल बतलाते हैं–

शिवा 'याहि' शब्द उच्चरित करे तो अग्निभय, 'टा-टा' शब्दोच्चार करे तो मृत्यु, 'धिग्-धिग्' शब्द करे तो अतिशय पीड़ा को सूचित करती है। ज्वालायुक्त शृगाली देश का नाश करती है।।६।।

याहीति रुते शिवा अग्निभयं हुताशनभीतिं शास्ति कथयति। टाटेति रुते मृतवेदिका। मृतं बन्ध्वादिकं वेदयति कथयति। केचिन्मृतिवेदिकेति पठन्ति। धिग्धिगिति रुते दुष्कृतिमतिकष्टमाचष्टे कथयति। सज्वाला ज्वालासंयुता देशनाशिनी देशान् नाशयति।।६।।

यदि शृगाली 'याहि' शब्द करे, तो अग्निभय को व्यक्त करती है। 'टा-टा' शब्द का उच्चारण करे तो बन्धु आदि की मृत्यु बतलाती है। कुछ लोग मरण को कहती है, ऐसा पाठ करते हैं। यह शृगाली 'धिग्-धिग् शब्द करती है तो अतिशय कष्ट की सूचना देती है। सज्वाला अर्थात् ज्वाला-युक्त (मुख से ज्वाला निकालती) हो तो वह देशनाशिनी अर्थात् देशों का नाश करती है।।६।।

अत्रैव मतान्तरमाह–

नैव दारुणतामर्के सज्वालायाः प्रचक्षते।
अ[२]र्काद्यनलवत् तस्या वक्त्र लालास्वभावतः।।७।।

---

१. मृतिवेदिकेति पाठान्तरम्।

२. आक्रान्तानलवदिति पाठान्तरम्।

यहाँ पर मतान्तर को बतलाते हैं–

शृगाली के मुख से ज्वाला का निकलना भयङ्कर नहीं होता, क्योंकि सूर्य आदि पिण्ड जिस प्रकार तेजयुक्त (ज्वालायुक्त) होते हैं, उसी प्रकार उसका (शृगाली का) मुख भी लार के कारण स्वभाव से ही ज्वाला का निकलना भयङ्कर नहीं होता है, क्योंकि सूर्य आदि पिण्ड तेजयुक्त (ज्वालायुक्त) होते हैं, उसी प्रकार उसका (शृगाली) का मुख भी लार के कारण स्वभाव से ही ज्वालायुक्त होता है।।७।।

एके काश्यपादयो मुनयः सज्वालायाः शिवाया दारुणतां क्रूरतां नैव प्रचक्षन्ते कथयन्ति। कुतो हेतोः? अर्काद्यनलवदिति। तस्याः शिवाया वक्त्रं मुखं लाला-स्वभावत अर्काद्यनलवत्। यथार्कादिको ज्योतिष्मान् पदार्थः स्वभावादेव साग्निक-स्तेजस्वी। एवमेतस्या वक्त्रं लालास्वभावादेव साग्निकमिति हेतोस्तस्य नैव दारुणता। तथा च काश्यपः–

नैव दारुणता तस्याः सज्वालाया स्वभावतः।
लालायाः साग्निकं वक्त्रमतः सा सुभदा शिवा।।

काश्यप आदि मुनियों का मत है कि ज्वालायुक्त शृगाली भयङ्करता को व्यक्त नहीं करती है। किस कारण से? यह बतलाते हैं–उसका अर्थात् शृगाली का मुख लार के कारण स्वाभाविक रूप से ज्वालायुक्त प्रतीत होता है। जिस प्रकार से सूर्य आदि ज्योतिष्मान् पदार्थ स्वभावतः अग्नियुक्त अर्थात् तेजयुक्त होते हैं, उसी प्रकार से इसका (शृगाली का) मुख लार के कारण स्वभावतः अग्नियुक्त दीखता है। इस कारण से ज्वालायुक्त शृगाली दारुण नहीं होती है। जैसाकि आचार्य काश्यप ने कहा है–

इसकी (शृगाली की) ज्वाला की भयङ्करता स्वभावतः नहीं होती है। अपितु लार से अग्नि (ज्वाला) युक्त प्रतीत होने वाला शृगाली का मुख हो, तो भी कल्याणदायक होता है।

केचिदाक्रान्तानलवदिति पठन्ति। यथा साग्निकं काष्ठमाक्रान्तं भ्राम्यमाणं साग्निकं सर्वत्र दृश्यते तद्वत् तस्या वक्त्रं लालास्वभावतः साग्निकमिति। एवं मुखपानीयस्वभावात् सा सज्वालेति।।७।।

"कुछ लोग यहाँ पर अग्नि से आक्रान्त" ऐसा पाठ करते हैं। जिस प्रकार अग्नियुक्त काष्ठ को घुमाने से सर्वत्र प्रज्ज्वलित अग्नि दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार उसका मुख भी स्वाभाविक रूप से लार के कारण अग्नियुक्त प्रतीत होता है। एवं इस प्रकार उसके मुख के स्वाभाविक जलद्रव (लार) के कारण वह ज्वाला प्रकट होती है।।७।।

अन्यदप्याह—

अन्यप्रतिरुता याम्या सोद्बन्धमृतशंसिनी।
वारुण्यनुरुता सैव शंसते सलिले मृतम्।।८।।

और भी कहते हैं–

दक्षिणदिशा में अन्य किसी शिवा के शब्द के साथ ही प्रति-शब्द कोई शिवा करती है, तो वह किसी प्राणी की बन्धन से होने वाली मृत्यु को सूचित करती है। पश्चिमदिशा में वह ध्वनि करती हुई जल में डूबने से होने वाली मृत्यु की सूचना देती है।।८।।

याम्या दक्षिणादिग्भागस्थाऽन्यप्रतिरुताऽन्यया परया शिवया सैव कृतशब्दा सा शिवोद्बन्धमृतशंसिनी, उद्बन्धनेन मृतं शंसति कथयति। सैव शिवा वारुणी पश्चिमदिक्स्थाऽन्ययाऽनुरुता सलिले जले मृतं बन्ध्वादिकं शंसते कथयति।।८।।

याम्य अर्थात् दक्षिणदिशा में स्थित शिवा की ध्वनि को कोई अन्य शिवा प्रतिध्वनित करती है, वह शिवा बन्धन द्वारा मृत जीव को सूचित करती है। वही शिवा पश्चिमदिशा में स्थित होकर किसी अन्य शिवा द्वारा प्रतिरुदित होने पर जल में मृत किसी बन्धु (कुटुम्बी जन) की आशंका प्रकट करती है।।८।।

अस्याः शब्दवशेनफलमाह—

अक्षोभः श्रवणं चेष्टं धनप्राप्तिः प्रियागमः।
क्षोभः प्रधानभेदश्च वाहनानां च सम्पदः।।९।।
फलमासप्तमादेतदग्राह्यं परतो रुतम्।
याम्यायां तद्विपर्यस्तं फलं षट् पञ्चमादृते।।१०।।

ध्वनि के अनुसार शिवा का फल कहते हैं–

एक बार से सात बार तक शिवा द्वारा की गयी ध्वनि का क्रमशः क्षोभरहित, श्रवण (शुभ समाचार), धनप्राप्ति, प्रियसमागम, क्षोभ, श्रेष्ठजनों से मतभेद और वाहन-सम्पदा का लाभ होता है। इन सातों फलों को दूसरी शिवा के द्वारा प्रतिशब्द किये जाने पर ग्रहण नहीं करना चाहिए। दक्षिणदिशा में स्थित ये फल विपरीत होते हैं। परन्तु पञ्चम एवं षष्ठ फल विपरीत नहीं होते हैं।।९-१०।।

अक्षोभ इति। सा शिवा एकं वारमुक्त्वा यदि तूष्णीं करोति, तस्मिन् देशे अक्षोभोऽनाकुलता भवति। द्वितीये एवमुक्त्वा यदि तूष्णीं करोति, तदा श्रवणं

चेष्टमिष्टस्याभिप्रेतस्य श्रवणमाकर्णनम्। एवं तृतीये रावे धनप्राप्तिरर्थलाभः। चतुर्थे प्रियस्य वल्लभस्यागमः। पञ्चमे क्षोभ आकुलता। षष्ठे प्रधानभेदः। प्रधानानां राजपुरुषाणां परस्परं भेदो भवति। सप्तमे वाहनानामश्वादीनां च सम्पदो भवन्ति। सम्पदो वृद्धयः।।९।।

यदि शिवा एक बार ध्वनि करके मौन होती है, तो उस स्थान पर अक्षोभ अर्थात् अव्याकुलता होती है। दो बार ध्वनि करके शान्त होने पर श्रवण अर्थात् मनोभिलषित वस्तु विषय में सूचना मिलती है। इसी प्रकार तीन बार ध्वनि होने पर आर्थिक लाभ और चार बार की ध्वनि पर अपने प्रियजन का आगमन होता है। पाँच बार शब्द होने पर व्याकुलता और छः बार के शब्द से प्रमुख राजपुरुषों का परस्पर भेद उत्पन्न होता है। सात बार शब्द करने पर वाहन अर्थात् हाथी, घोड़ा आदि वाहन-सम्पदा प्राप्त होती है। अथवा सम्पत्ति की वृद्धि होती है।।९।।

फलमासप्तमादिति। यदेतत् प्रागुक्तं शिवारुते फलं तदासप्तमाद्रावात् परतो यदि विरौति, तदा तद्रुतमग्राह्यं निष्फलत्वात्। याम्यायामिति। याम्यायां दक्षिण-दिक्स्थितायां शिवायां तदेव फलं विपर्यस्यं विपरीतगतं ग्राह्यम्, किन्तु षट्पञ्चमादृते षष्ठं पञ्चमं च वर्जयित्वा। तयोः पूर्वोक्तमेव फलमन्येष्वपि विपर्ययः। अयमर्थः— प्रथमे क्षोभः। द्वितीये अनिष्टश्रवणम्। तृतीये धनहानिः। चतुर्थे प्रियविप्रयोगः। पञ्चमे क्षोभ एव। षष्ठे प्रधानभेद एव। सप्तमे वाहनानामसम्पदो हानयः। सप्तमात् परतो न ग्राह्यं निष्फलत्वात्।।१०।।

ये सभी शिवा शब्द के फल सात बार से अधिक किये जाने पर ग्राह्य नहीं होते हैं, क्योंकि उनका कोई फल नहीं होता है। दक्षिणदिशा में स्थित शिवा के ये सभी फल विपरीत ग्रहण करने चाहिए। किन्तु पञ्चम और षष्ठ को छोड़-कर ही विपरीत फल प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि प्रथम में क्षोभ, दूसरे में अशुभ श्रवण, तीसरे में धनहानि, चतुर्थ में प्रिय-वियोग, पञ्चम में क्षोभ, षष्ठ प्रधानपुरुषों में भेद, सप्तम में वाहनों की हानि होती है। सात बार से अधिक ध्वनि निष्फल होने के कारण ग्रहण नहीं की जाती है।।१०।।

अथाशुभां शिवामाह—

या रोमाञ्चं मनुष्याणां शकृन्मूत्रं च वाजिनाम्।
रावात् त्रासं च जनयेत् सा शिवा न शिवप्रदा।।११।।

अशुभ-शिवा का फल कहते हैं—

जिसा शिवा की ध्वनि से मनुष्यों में रोमाञ्च हो जाये तथा घोड़े मूत्र त्याग करने लगें और उस ध्वनि से भय उत्पन्न हो, ऐसी शिवा की ध्वनि शुभाकरक नहीं होती

है॥११॥

या शिवा रावाच्छब्दान्मनुष्याणां पुरुषाणां रोमाञ्चं रोमहर्षं जनयेदुत्पादयेत्। वाजिनामश्वानां पुरीषमूत्रं जनयेत्। जनानां त्रासं भयं च। सा न शिवप्रदा शिवं श्रेयो न ददाति।।११।।

जो शिवा-ध्वनि पुरुषों में रोमाञ्च उत्पन्न करे, अश्वों में मूत्र एवं लीद (पुरीष) का विसर्जन होने लगे तथा लोगों में भय उत्पन्न होने लगे, तो वह शिवा श्रेयस्करी नहीं होती है॥११॥

अथ शुभलक्षणमाह—

मौनं गता प्रतिरुते नरद्विरदवाजिभिः।
या शिवा सा शिवं सैन्ये पुरे वा सम्प्रयच्छति।।१२।।

अब शुभ लक्षणों को कहते हैं—

जो शिवा मनुष्य, हाथी और घोड़े द्वारा प्रतिध्वनि किये जाने पर मौन हो जाती है, वह सेना अथवा नगर में कल्याण करने वाली होती हैं।१२॥

या शिवा नरैर्मनुष्यैः। द्विरदैर्हस्तिभिः। वाजिभिरश्वैः। प्रतिरुते प्रतिवाशिते मौनं गता तूष्णीं करोति। सा सैन्ये सेनायाम्। पुरे नगरे। शिवं श्रेयः। सम्प्रयच्छति ददाति।।१२।।

मनुष्यों, हाथियों, अश्वों द्वारा प्रतिध्वनि किये जाने पर जो शिवा मौन रहती है, वह सेना और नगर में शिव अर्थात् कल्याण को देती है॥१२॥

अन्यद्रुतलक्षणमाह—

भेभेति शिवा भयङ्करी भोभो व्यापदमादिशेच्च सा।
मृतिबन्धनिवेदिनी फिफे हूहू चात्महिता शिवा स्वरे।।१३।।

अन्य शब्दों के लक्षण कहते हैं—

"भेभा" ध्वनि करने वाली शिवा भयङ्करी होती है और यदि वह भो-भो ध्वनि करे, तब विपत्ति की सूचक होती है। फि-फे ध्वनि करने पर मृत्यु और बन्धन की सूचना देती है तथा हू-हू शब्द करने पर आत्मकल्याण करती हैं॥१३॥

भेभा इति रुते शिवा भयङ्करी भवति भयं करोति। भोभो इति रुते सा शिवा व्यापदं विशेषेणातीवापदमादिशेत् कथयेत्। मृतिबन्धनिवेदिनी फिफे इति। फिफे इति रुते मृतिं मरणं बन्धनं च निवेदयति कथयति। हूहू इति स्वरं शब्दं

रुवन्ती शिवा आत्महिता भवति। आत्मनः शिवं श्रेयः करोति श्रोतुः।।१३।।

शिवा भेभा शब्द करने वाली भयङ्करी अर्थात् भय उत्पन्न करती है। भोभो शब्द करने पर वह शिवा व्यापद अर्थात् विशेष आपदा का निर्देश करती है। फिफे ध्वनि करने पर मरण और बन्धन को संसूचित करती हैं। हूहू स्वर को निकालती हुई शिवा आत्महिता अर्थात् श्रोता का कल्याण करती है।।१३।।

अन्यदप्याह–

शान्ता त्ववर्णात् परमारुवन्ती
टाटामुदीर्णामिति वाश्यमाना।
टेटे च पूर्वं परतश्च थेथे
तस्याः स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत्।।१४।।

और भी कहते हैं–

जो शिवा अवर्णादि से रुदन करती है और शान्तदिशा में होती हैं अथवा टा-टा शब्दोच्चारण करती है अथवा पहले टेटे की ध्वनि करने के पश्चात् थेथे शब्द करती है, वह अपनी प्रसन्नता के लिए इन शब्दों का उच्चारण करती हैं, जिससे श्रोता का शुभ होता है।।१४।।

या शिवा शान्ता शान्तदिक्स्था मधुरस्वरा च। अवर्णादकाराक्षरात् परमनन्तरमारुवन्ती। अकारमादावुच्चार्य पश्चादाकारमुच्चारयतीत्यर्थः अथवोदीर्णामुद्भटशब्दां टाटामिति वाश्यमाना रुवन्ती, अथवा पूर्वं प्रथमं टेटे इति रुवन्ती, एतच्छोभनम् ।।१४।।

जो शिवा शान्ता अर्थात् शान्तदिशा में स्थित होकर मधुर स्वर में अवर्ण से आरम्भ कर पश्चात् रोती है। अर्थात् पहले अकार का उच्चारण कर तत्पश्चात् आकार का उच्चारण करती है। अथवा उद्भट शब्द "टाटा" का उच्चारण करती हुई अथवा पहले टेटे की ध्वनि करती हुई बाद में थेथे की ध्वनि करे, तब उस शिवा का यह रुदन आत्मीय-तुष्टि के लिए होता है और यह शुभकारक है।।१४।।

अन्यदप्याह–

उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्य पूर्वं
पश्चात् क्रोशेत् क्रोष्टुकस्यानुरूपम्।
या सा क्षेमं प्राह वित्तस्य चाप्तिं
संयोगं वा प्रोषितेन प्रियेण।।१५।।

और भी कहते हैं–

प्रारम्भ में कठोर वर्णों का उच्चारण कर तत्पश्चात् अपनी जातिगत ध्वनि (हुँआ-हुँआ) करे, तब वह कल्याण करने वाली, धनप्रदात्री और प्रवासी-प्रेमी के साथ संयोग कराती है॥१५॥

या शिवा उच्चैः पूर्वमादौ घोरं क्रूरं वर्णमक्षरमुच्चार्य पश्चादनन्तरात् क्रोष्टुकस्य शृगालस्यानुरूपं सदृशं क्रोशेद्। ब्रूयात्। एवंविधा सा क्षेमं प्राह कथयति। क्षेमं लब्धपालनं वित्तस्य चाप्तिं लब्धिम्। अथवा प्रोषितेन प्रियेण देशान्तरगतेन प्रियेण वल्लभेन संयोगं प्राह कथयति।।१५।।

॥श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुने शिवारुतं

नामैकोननवतितमोऽध्याय:॥८९॥

जो शिवा उच्च स्वर में पहले घोर अर्थात् क्रूर वर्णों का उच्चारण करे, तदनन्तर क्रोष्टुक अर्थात् सियार के अनुरूप बोले, इस प्रकार वह कल्याण को व्यक्त करती है। क्षेम अर्थात् प्राप्त की रक्षा और धन की प्राप्ति कराती है, अथवा प्रोषित अर्थात् प्रवासी प्रियतम के साथ अर्थात् जो देशान्तर गया हो, ऐसे प्रिय-वल्लभ के साथ संयोग को अभिव्यक्त करती है॥१५॥

॥श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति में शाकुन के अन्तर्गत शिवारुत नामक

नवासीवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥८९॥

❄ ❄ ❄

।।अथ नवतितमोऽध्यायः।।

मृगचेष्टिताध्यायः

अथ मृगचेष्टितं व्याख्यायते।

तच्चाह–

सीमागता वन्यमृगा रुवन्तः
स्थिता व्रजन्तोऽथ समापतन्तः।
सम्प्रत्यतीतैष्यभयानि दीप्ताः
कुर्वन्ति शून्यं परितो भ्रमन्तः।।१।।

मृगचेष्टित अध्याय ९० की व्याख्या करते हैं।

जैसा कि कहा गया है–

जंगल में रहने वाला मृग गाँव की सीमा में स्थित होकर ध्वनि करता हो, और वहीं स्थित रहे, तो वर्तमानकालिक भय को तथा यदि भ्रमण करता हुआ हो, तो भूतकालिक भय को और यदि गाँव की सीमा में प्रवेश कर रहा हो, तब आगामी भय को प्रकट करता है। चुतर्दिक् भ्रमण करने वाले मृगों का फल यह है कि वह गाँव निर्जन हो जाता है।।१।।

वने भवा वन्याः। वन्यमृगाः ऋष्यपृषतरुरुप्रभृतयः। सीमागता ग्रामसीमायां स्थिताः, तत्र च रुवन्तो वाश्यमानाः। ते च स्थितास्तत्रैव यदि तिष्ठन्ति, तदा सम्प्रति तस्मिन्नेव दिने भयमावेदयन्ति यदि च दीप्ताः। अथ तस्मात् सीमाप्रदेशात् व्रजन्तो गच्छन्तस्तदातीतभयमतीतमतिक्रान्तं भयमावेदयन्ति। अथ समापतन्तः समागच्छन्तो दीप्ताश्च रुवन्तः। तदैष्यभयानि, आगामिभयान्यावेदयन्ति। परितः समन्ततः पुरे भ्रमन्तः शून्यं निर्जनं पुरं कुर्वन्ति।।१।।

वन में उत्पन्न मृग को वन्यमृग कहते हैं। ऋष्य, पृषत् तथा रुरु इत्यादि मृग यदि गाँव की सीमा में स्थित हों और वहाँ पर शब्द करें, तो उसका फल इस प्रकार होता है। यदि वे स्थित होकर शब्द करते हुए वहीं पर ठहरे हुए हों, तो उस दिन के साम्प्रतिक-भय को दीप्त होने पर सूचित करते हैं। उस सीमा-प्रदेश से गमन करते हुए, विगतभय को निवेदित करते हैं। आते हुए दीप्त होकर रुदन करें, तब भविष्यत् कालिक अर्थात् आगामी भय को सूचित करते हैं। नगर के चारों तरफ भ्रमण करते

हुए, मृग, उस नगर को शून्य अर्थात् निर्जन कर देते हैं॥१॥

अन्यदप्याह–

ते ग्राम्यसत्त्वैरनुवाश्यमाना
भयाय रोधाय भवन्ति वन्यैः।
द्वाभ्यामपि प्रत्यनुवाशितास्ते
वन्दिग्रहायै च मृगा रुवन्ति।।२।।

और भी कहते हैं–

वे सीमान्त मृग यदि ग्राम्य पशुओं द्वारा प्रतिशब्द किये जाते हों, तब भय और पुर के अवरोध को प्रकट करते हैं। दोनों के द्वारा शब्द-प्रतिशब्द किये जाने पर उस पुर के बन्धक होने का सूचक होता है॥२॥

ते सीमागता मृगा दीप्ताः। ग्राम्यसत्त्वैर्ग्रामीणैः प्राणिभिरनुवाश्यमाना भयाय पुरस्य भवन्ति। वन्यैः प्राणिभिरनुवाश्यमानाः पुरस्य रोधाय च भवन्ति। परैः पुरं रुध्यते। ते सीमागता द्वाभ्यामपि ग्राम्यैर्वन्यैश्च सत्त्वैः प्रत्यनुवाशिताः पश्चात् कृतशब्दा वन्दिग्रहायै च भवन्ति। वन्दिग्रहा हठहरणेन या स्त्री नीयते सा वन्दिग्रहा भीता। मृगा वन्दिग्रहायै च भवन्ति। तत्पुरं बलादेव शत्रुभिर्नीयत इत्यर्थः।।२।।

वे सीमान्त दीप्तमृग जब ग्राम-प्राणियों (ग्राम्य पशुओं) के द्वारा प्रतिशब्दित होते हैं, तब उस नगर के लिए भयप्रदायक होते हैं। वन्य-प्राणियों द्वारा प्रतिध्वनित होने पर उस नगर में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अर्थात्शत्रु पक्ष के द्वारा वह नगर अवरोधित किया जाता है। वे सीमागत मृग यदि ग्राम्य एवं वन्य; इन दोनों ही प्राणियों से प्रतिरुदन किये जाते हों अर्थात् तत्पश्चात् शब्द करते हों, तब ''वन्दीग्रह'' के सूचक होते हैं। हठपूर्वक किसी स्त्री का अपहरण कर ले जाने को वन्दीग्रह कहते हैं। ये मृग वन्दीग्रह के सूचक होते हैं। अर्थात् वह नगर बलपूर्वक शत्रुओं के द्वारा अधिग्रहीत कर लिया जाता है॥२॥

अन्यदप्याह–

वन्ये सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य
रोधो वाच्यः सम्प्रविष्टे विनाशः।
सूते मृत्युः स्याद्भयं संस्थिते च
गेहं याते बन्धनं सम्प्रदिष्टम्।।३।।

और भी कहते हैं–

वन्य प्राणी यदि नगर-द्वार पर स्थित हों, तो उस नगर का अवरोध उत्पन्न होता है। यदि नगर में प्रवेश कर जाये, तब नगर का विनाश होता है। यदि वह नगर में प्रसव करें, तो मृत्यु तथा नगर में स्थित हो जाये तो भय उत्पन्न होता है। किसी घर में प्रविष्ट होने पर गृहपति का बन्धन होता है॥३॥

वन्ये सत्त्वे वनजाते प्राणिनि द्वारसंस्थे पुरस्य नगरस्यैव रोधो वाच्या। रोधः परैर्वेष्टनम्। पुरमध्ये सम्प्रविष्टे पुरस्यैव विनाशो वाच्यो वक्तव्यः। तस्मिन्नेव प्रसूते मृत्युर्मरणं स्याद् भवेत्। संस्थिते मृते च भयं स्यात्। गेहं याते गृहं प्रविष्टे गृहस्वामिनो बन्धन सम्प्रदिष्टम्॥३॥

॥इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुने मुगविरुतं नाम

नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

वन्यसत्त्व अर्थात् वन में उत्पन्न होने वाले प्राणियों के पुर-द्वार पर स्थित होने से नगर का अवरोध कहना चाहिए। अवरोध अर्थात् शत्रुपक्ष द्वारा घिर जाना। नगर के मध्य में प्रविष्ट हो जाने पर उस नगर का विनाश कहना चाहिए। वन्य प्राणियों का नगर में प्रसव होने पर मृत्यु होती है। स्थित होने पर और मृत्यु हो जाने पर भय उत्पन्न होता है। गृह में प्रविष्ट होने पर गृहस्वामी का बन्धन कहा गया है॥३॥

॥श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिताविवृति में शाकुन विचार के अन्तर्गत मृगचेष्टित नामक

नब्बेवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥९०॥

❄ ❄ ❄

।।अथैकनवतितमोऽध्यायः।।

गवेङ्गिताध्यायः

अथ गवेङ्गितं व्याख्यायते।

तदेवाह—

गावो दीनाः पार्थिवस्याशिवाय
पादैर्भूमिं कुट्टयन्त्यश्च रोगान्।
मृत्युं कुर्वन्त्यश्रुपूर्णायताक्ष्यः
पत्युर्भीतास्तस्करानारुवन्त्यः।।१।।

गवेङ्गिताध्याय ९१ की व्याख्या की जाती है।

इसके सम्बन्ध में कहते हैं—

दीनता प्रकट करने वाली गाय राजा के लिए अशुभ होती है। अपने पैरों से भूमि को कुरेदने वाली गाय रोगों को उत्पन्न करती है। अश्रुपूरित नेत्रों वाली गाय अपने स्वामी की मृत्यु को सूचित करती है। भयभीत होकर रँभाने वाली गाय चौरागम की सूचना देती है॥१॥

गावो दीना दैन्यं गता म्लानमुखाः पार्थिवस्य राज्ञोऽशिवाय अश्रेयसे भवन्ति। तथा भूमिमवनिं पादैः खुरैः कुट्टयन्त्यो विदारयन्त्यो रोगान् कुर्वन्ति। अश्रुपूर्णायताक्ष्यः, अश्रुपूर्णे आयते दीर्घे अक्षिणी यासां तास्तथाभूताः पत्युः स्वामिनो मृत्युं मरणं कुर्वन्ति। तथा भीताः सभया आरुवन्त्यः अतीव शब्दं कुर्वत्यः तस्करांश्चौरान् कुर्वन्ति।।१।।

जो गाय दीन अवस्था को प्राप्त हो, अर्थात् मलिन मुख (मुर्झायी हुई मुख वाली) हो, तब राजा के लिए अनिष्टकारक होती है। अपने खुरों से भूमि को विदीर्ण करने वाली गाय व्याधियों को उत्पन्न करती है। अश्रु-पूरित दीर्घ नेत्रों वाली जो गाय हो, वह स्वामी की मृत्यु करती है। भययुक्त रोती हुयी जब अत्यधिक शब्द करे, तब तस्कर अर्थात् चोरों के आने का सङ्केत देती है॥१॥

अन्यदप्याह—

अकारणे क्रोशति चेनदर्थो भयाय रात्रौ वृषभः शिवाय।

भृशं निरुद्धा यदि मक्षिकाभिस्तदाशु वृष्टिं सरमात्मजैर्वा।।२।।

और भी कहते हैं–

यदि वृषभ अकारण ही रात्रि में चिल्लाता है, तब अनर्थ और भय उत्पन्न करता है। यदि मक्खियों से वृषभ निरुद्ध (पीड़ित) हो जाये अथवा कुत्तों द्वारा घेर लिया जाये, तब शीघ्र ही वर्षा होती है॥२॥

यदाकारणं निष्कारणमेव क्रोशति वाशति, तदाऽनर्थो भवति। तस्य जल-तृणादिकं कारणं तद्वर्जमकारणम्। रात्रौ निशि यदि वाशति, तदा भयाय भवति। वृषभो दान्तो रात्रौ वाच्यमानः शिवाय श्रेयसे भवति। भृशमत्यर्थं यदि मक्षिकाभिर्निरुद्धा व्याप्ता, सरमात्मजैः श्वभिर्वा निरुद्धा व्याप्ता तदा आशु शीघ्रमेव वृष्टिं करोति।।२।।

वृषभ यदि अकारण चीखता हो, तब अनर्थ होता है। यदि जल अथवा तृण की इच्छा के बिना बोले तो उसको अकारण कहते हैं। रात्रि में यदि बोलता है, तब भयप्रदायक होता है। वृषभ अर्थात् दान्त रात्रि में शब्द करने पर कल्याण-कारक होता है। यदि अत्यधिक मक्खियों द्वारा निरुद्ध अर्थात् परिव्याप्त हो अथवा कुत्तों द्वारा रोका जाता हो, तब शीघ्र ही वर्षा करता है॥२॥

अन्यदप्याह–

[१]आगच्छन्त्यो वेश्मबम्भारवेण
संसेवन्त्यो गोष्ठवृद्ध्यै गवां गाः।
आर्द्राङ्ग्यो वा हृष्टरोम्ण्यः प्रहृष्टा
धन्या गावः स्युर्महिष्योऽपि चैवम्।।३।।

और भी कहते हैं–

बम्भा (रम्भाती) ध्वनि के साथ आती गौयें अपने गोष्ठ-समुदाय की वृद्धि करती हैं। आर्द्र अंगों वाली अथवा पुलकित अङ्गों वाली गौवें धन्य होती हैं। महिषी भी इन लक्षणों से युक्त होने पर शुभ कही गयी है॥३॥

वेश्म गृहमागच्छन्त्यो बम्भारवेण मधुरस्वरेण संयुक्ता गा गावः संसेवन्त्यो निषेवन्त्यो गवां गोष्ठवृद्ध्यै गोष्ठसंवर्धनाय धन्याः प्रशस्ताः स्युर्भवन्ति। अर्थ-वशाद्विभक्तिलिङ्गवचनविपरिणामः। गोवृद्धिं कुर्वन्ति। केचिदागव्यूतेरिति पठन्ति। गव्यूतिः क्रोशद्वयम्। तस्माद् बम्भारवेणेति पूर्ववद्योज्यम्। आर्द्राङ्ग्यो वेति। आर्द्राणि

---

१. आगव्यूतेरिति पाठान्तरम्।

जलेन क्लिन्नानि अङ्गानि अवयवानि यासाम्। हृष्टरोम्ण्यः संजात-पुलकाः। प्रहृष्टा हर्षसंयुक्ताः। एवंविधाश्च गोष्ठवृद्ध्यै धन्याः। महिष्योऽपि चैवम्। एवमनेन प्रकारेण— ''आगच्छन्त्यो वेश्मबम्भारवेण'' इत्यादिकेन। तथा—''दीनाः पार्थिवस्याशिवाय'' इत्यादिकेन शुभाशुभेन महिष्योऽपि स्युर्भवेयुरिति। यद् गवामिङ्गितं तन्महिषीणामित्यर्थः।।३।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुने गवेङ्गितं नामैकनवतितमोऽध्याय:।।९१।।

वेश्म अर्थात् गृह की ओर आती हुई ''बम्भारव'' अर्थात् मधुर स्वर से संयुक्त गौवें, संसेवित होने पर गोशाला की वृद्धि करने वाली तथा उत्तम होती हैं। अर्थों के आधार पर विभक्ति, लिङ्ग और वचन में यहाँ पर परिवर्तन हुआ है। कुछ विद्वान् ''आगव्यूति'' ऐसा पाठ करते हैं। दो कोस अर्थात् छः किलोमीटर की एक गव्यूति होती है। इतनी दूरी से बम्भा शब्द करती हुई गौवें पूर्ववत् शुभ होती हैं। आर्द्र अर्थात् जल से भींगी हुई अंगों वाली तथा हृष्ट रोमावलियों अर्थात् पुलकित गौवें गोशाला की वृद्धि करने वाली तथा श्रेष्ठ मानी गयी हैं। महिषी का भी इसी प्रकार फल समझना चाहिए। जैसाकि ''बम्भारव के साथ गृह में आती हुई'' इत्यादि पूर्व में कहा गया है। इसी प्रकार ''दीन मुख वाली राजा के लिए अमंगलकर्त्री'' इत्यादि जो शुभा-शुभफल कहे गये हैं, वे महिषी के लिए भी कहे गये हैं। तात्पर्यार्थ यह है कि जो फल गौवों के लिए बतलाये गये हैं, वे ही महिषियों के लिए भी होते हैं।।३।।

।।श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिता-विवृति में शाकुनविचार के अन्तर्गत गवेङ्गिताध्याय नामक इक्यानबेंवे अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।९१।।

❋ ❋ ❋

।।अथ द्विनवतितमोऽध्यायः।।

अश्वेङ्गिताध्यायः

अथाश्वेङ्गितं व्याख्यायते।

तच्चाह–

उत्सर्गान्न शुभदमासनात् परस्थ
वामे च ज्वलनमतोऽपरं प्रशस्तम्।
सर्वाङ्गज्वलनमवृद्धिदं हयानां
द्वे सर्वे दहनकणाश्च धूपनं वा।।१।।

अश्वेङ्गिताध्याय ९२ की व्याख्या की जाती है।

इसके सम्बन्ध में कहते हैं–

उत्सर्ग आसन से पृष्ठभाग तथा वामभाग में ज्वलन (दाह) का होना शुभ नहीं होता है। इसके विपरीत पूर्वभाग में और दक्षिणभाग का ज्वलन शुभप्रद होता है। अश्वों के सम्पूर्ण अङ्गों में ज्वलन का होना वृद्धिदायक नहीं होता है। दो वर्षों तक दहनकण अर्थात् स्फुलिङ्ग अथवा धूपन का होना अशुभ होता।।१।।

उत्सर्गान्न शुभदमिति। हयानामश्वानामुत्सर्गादयं नियमो यत्रापवादो नास्ति। आसनात् परस्थम्, आस्यते यस्मिन्नित्यासनं पर्याणस्थानम्। तस्मात्परस्थं पश्चिमभागे स्थितं ज्वलनं न शुभदमप्रशस्तम्। बामे च वामभागे वामपार्श्वे तस्मादेवासन-स्थानान्न शुभदम्। अतोऽस्मादपरं प्राग्भागे दक्षिणे च प्रशस्तमिष्टतरम्। अश्वानामुत्पातवशेन ज्वालारूपमवयवेषु दृश्यते तत् सर्वाङ्गज्वलनम्। तत् सर्वाङ्गानां समस्तावयवानां ज्वलनमवृद्धिदम्। अवृद्धिं विनाशं ददाति। उक्तं च–

तत्रोत्सर्गेणासनपश्चिमभागाश्रये ज्वलनमेवम्।
नेष्टमितरत्र शस्तं वामेतरपार्श्वयोस्तद्वत्।।इति।।

द्वे वर्षे दहनकणाश्च धूपनं वेति। यस्य हयस्य द्वे वर्षे वर्षद्वयमविच्छिन्नं कृत्वा दहनकणा अग्निविस्फुलिङ्गा धूपनं धूमो वा दृश्यते तदा तस्यावृद्धिदमेव।।१।।

अश्वों का उत्सर्ग सम्बन्धी यह नियम है, जिसका अपवाद नहीं होता है। जिस पर आसन लगाया जाता है उसको अर्थात् पर्याण स्थान को आसन कहा जात है। उस

आसन से पश्चिमभाग में स्थित ज्वलन अप्रशस्त अर्थात् अशुभ होता है। वामभाग में उस आसन से वामपार्श्वगत स्थित ज्वलन शुभदायक नहीं होता है। इससे भिन्न पूर्वभाग और दक्षिणभाग में प्रशस्त कहा गया है। अश्वों के उत्पातवशात् उनके अङ्गों में ज्वाला का रूप दिखायी पड़ता है, जिसको सर्वाङ्ग ज्वलन कहते हैं। इस प्रकार सभी अङ्गों का ज्वलन वृद्धिदायक नहीं होता है, वह अवृद्धि अर्थात् विनाश को देता है। जैसा कि कहा गया है–

आसन के पश्चिमभाग में उत्सर्ग द्वारा जलन होता है, जो अनिष्टकारक है। इससे भिन्न पूर्वभाग में प्रशस्त कहा गया है। वामभाग में अशुभ और दक्षिणभाग में शुभफलदायक माना गया है।

जिस घोड़े के दो वर्षों तक अनवरत दहनकण अर्थात् अग्निविस्फुलिङ्ग तथा धूपन अथवा धूम दिखायी पड़ते हों, तब उसके लिए अवृद्धिदायक समझना चाहिए।।१।।

विशेष व्याख्या–आसन शब्द को विवृति में "पर्याण" कहा है। इसको जीन अथवा काठी कहा जाता है। कादम्बरी-१२६, दत्त "पर्याणम्"

अथान्येष्वप्याह–

अन्तः पुरं नाशमुपैति मेढ्रे
कोशः क्षयं यात्युदरे प्रदीप्ते।
पायौ च पुच्छे च पराजयः स्याद्
वक्त्रोत्तमाङ्गज्वलने जयश्च।।२।।

अन्य प्रकार से बतलाते हैं–

अश्वों के लिङ्ग में ज्वलन होने पर अन्त:पुर का नाश होता है, तथा उदर में दाह होने पर कोश की हानि होती है। उपस्थ अर्थात् गुदाद्वार में और पूँछ में दाह पराजयकारक होती है। मुख और शीर्षभाग पर ज्वलन होने पर विजय प्राप्त होती है।।२।।

अश्वानां मेढ्रे लिङ्गे प्रदीप्ते राज्ञोऽन्तःपुरं नाशमुपैति विनाशं प्राप्नोति। उदरे जठरे प्रदीप्ते ज्वलिते कोशो गञ्जः क्षयं नाशं याति। पायावुपस्थे पुच्छे लाङ्गूले च प्रदीप्ते पराजयः स्याद् भवेत्। वक्त्रं मुखम्। उत्तमाङ्गं शिरः। वक्त्रोत्तमाङ्गज्वलने जयश्च भवति।।२।।

अश्वों के मेढ्र अर्थात् लिङ्ग में दाह हो, तो राजा के अन्त:पुर का विनाश होता है। उदर अर्थात् पेट में दाह हो, तो कोश अर्थात् धनागमप्रदेश का नाश होता है। पायु अर्थात् गुदा और पुच्छभाग में दाह होने पर पराजय होती है। मुख और उत्तमाङ्ग अर्थात्

शिरोभाग में ज्वलन होने पर जय होती है॥२॥

अथान्येष्वङ्गेष्वप्याह–

स्कन्धासनांसज्वलनं जयाय
बन्धाय पादज्वलनं प्रदिष्टम्।
ललाटवक्षोऽक्षिभुजे च धूमः
पराभवाय ज्वलनं जयाय॥३॥

अन्य अङ्गों में भी दाह का फल कहते हैं–

कन्धा और आसन; इनका ज्वलन विजयदायक होता है। पैर का ज्वलन बन्धन का द्योतक है। ललाट, वक्षस्थल, नेत्र और बाहु पर धूम हो, तब पराभव होता है और ज्वलन हो तो जयप्रदायक होता है॥३॥

स्कन्धवंसौ। आसनं पर्याणस्थानम्। ग्रीवापार्श्वगौ तदंसौ। एतेषां स्कन्धासनांसानां ज्वलनं जयाय भवति। पादाः शफाः। पादज्वलनं स्वामिनो बन्धाय प्रदिष्टं कथितम्। तत्र स्वामिनो बन्धनं भवति। ललाटेत्यादि। ललाटं मुखपृष्ठभागः। वक्षमुरः प्रदेशः। अक्षिणी नेत्रे। भुजौ बाहू। एषामन्यतमेऽङ्गेऽश्वानां यदि धूमो दृश्यते तदा पराभवाय भवति। शत्रोः सकाशात् पराभव उत्पद्यते। एतेषामन्यतमेऽङ्गे ज्वलनं जयाय भवति॥३॥

विशेष व्यवाख्या–

शफ = खुर। "शकं क्लीवे खुरः पुमान्, द्वे पादस्य" अमरकोश २/८/९.

आसन अर्थात् पर्याण (पृष्ठभाग), ग्रीवा अर्थात् कन्धे का उभय-भाग इन पर ज्वलन हो, तो जयकारक होता है। पैर अर्थात् खुर का ज्वलन स्वामी के लिए बन्धनकारक कहा गया है। ललाट, वक्ष अर्थात् उदर प्रदेश, दोनों नेत्र और दोनों बाँह; इनमें से किसी भी अङ्ग में यदि धूम दिखायी पड़े, तो पराभवकारक होता है। शत्रु द्वारा पराभव प्राप्त ही है। घोड़े के इनमें से किसी भी अङ्ग में यदि ज्वलन हो, तो जयप्रदायक होता है॥३॥

अन्यदप्याह–

नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपात-
नेत्रे च रात्रौ ज्वलनं जयाय।
पलाशताम्रासितकर्बुराणां
नित्यं शुकाभस्य सितस्य चेष्टम्॥४॥

और भी कहते हैं–

नासाछिद्र तथा नासिका का मध्यभाग, शिर, अश्रुपात का स्थान, दोनों नेत्र; इनमें रात्रिकाल में ज्वलन हो, तब विजय प्राप्त होती है। पलाश के वर्ण का, ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण, श्वेत-श्याम मिश्रितवर्ण का तथा शुकवर्ण एवं श्वेतवर्ण का ज्वलन नित्य ही मनोवाञ्छित फल देता है।।४।।

नासापुटौ नासारन्ध्रौ। प्रोथो नासामध्यभागः। शिरो मूर्धा। अश्रुपातोऽश्रुणः पातो यत्र। गण्डाधोभागः। नेत्रे चक्षुषी। एतेषामन्यतमस्य रात्रौ निशि ज्वलनं जयाय भवति। पलाशः पलाशवर्णः। ताम्रो लोहितवर्णः। असितः कृष्णः। कर्बुरः शुक्लकृष्णवर्णो व्यामिश्रः। कपोतवर्ण इत्यर्थः। एषां वर्णानां तथा तस्य शुकवर्णस्य सितस्य श्वेतवर्णस्य चैतेषामङ्गानामेकतमे द्वयोर्बहुषु वा ज्वलनं नित्यं सर्वकालं दिने निशायां चेष्टं शोभनं भवति। उक्तं च–

सममन्यत्पदकेसरपुच्छेषु ज्वलनदहनकणधूमाः।
राष्ट्रभयशोकसम्भ्रमसपत्नवक्त्रापमर्दकराः।।
प्राक्फलतुल्यं पृष्ठे जघने वालेषु चैव निर्दिष्टम्।
अन्तःपुरप्रकोपो मेढ्रज्वलने सधूमे वा।।
नित्यं च वालकिरणे दाहज्वालास्फुलिङ्गानाम्।
स्कन्धासनांसदेशे धूमा बन्धाय चरणेषु।।
वक्षोऽक्षिललाटभुजे त्वश्वानां ह्रेषितं च वदनेभ्यः।।
ज्वालोत्पत्तिर्जयदा धूमोत्पत्तिस्त्वभावाय।।
नासापुटाश्रुपातप्रोथशिरोलोचने च रजनीषु।
विजयाय प्रज्वलनं ताम्रासितहरितशवलानाम्।।
विजयाय सर्वदैव हि सुशुक्लशुकवर्णयोर्ज्वलनमेषु।
एवं च यथासम्भवमन्येष्वपि वाहनेषु फलम् ।।इति।।४।।

नासापुट अर्थात् नासिका के दोनों छिद्र, प्रोथ अर्थात् नासिका का मध्यभाग, शिर अर्थात् मूर्धा, अश्रुपात स्थल अर्थात् कपोल का अधः भाग, दोनो नेत्र; इनमें से किसी भी अङ्ग का रात्रि में ज्लवन होना विजयप्रदायक होता है। पलाश के रंग का, ताम्र अर्थात् रक्तवर्ण, असित अर्थात् काला, कर्बुर अर्थात् श्वेत-कृष्ण मिश्रित कपोतवर्ण के समान वर्णों का तथा शुकवर्ण (हरा) का और श्वेतवर्ण का ज्वलन; इनमें से किसी भी एक अथवा दो अथवा अधिक अङ्गों में नित्य अर्थात् रात्रि और दिन के किसी भी समय हो, तब शुभ होता है। जैसा कि कहा गया है–

पैर, पुच्छागुच्छ पर ज्वलन, दहन और धूमकण हों तो राष्ट्र में भय, शोक और संभ्रम पैदा होता है। रिपु से अपमान अथवा पराजय झेलना पड़ता है। यदि जंघे, पीठ तथा बालों पर ज्वलन हो तो भी पूर्वोक्त फल होते हैं। यदि लिङ्गभाग पर ज्वलन

अथवा धूम हो तब अन्त:पुर में अशान्ति होती है। दाह, ज्वलन और स्फुलिङ्ग बालों के अग्रभाग में हो तो नित्य ही, अशान्ति रहती है। कन्धा तथा पीठ और पैर पर धूम हो तब बन्धन होता है। वक्ष, नेत्र, ललाट और भुजा पर हो तब भी वही फल है। वह अश्व यदि मुख से ध्वनि करता हो तथा ज्वाला की उत्पत्ति हो, तब जयप्रदायक कहा गया है।

धूम की उत्पत्ति अभावकारक होती है। रात्रिकाल में नासिका, गंडस्थळ, सिर और नेत्र पर ताम्र, कृष्ण, हरित और मटमैले वर्ण के ज्वलन हों तब विजयकारक होते हैं। सुन्दर श्वेत वर्ण के, शुकवर्ण (हरा) के ज्वलन सर्वदा विजयकारक होते हैं। इसी प्रकार से यथासम्भव अन्य वाहनों का भी विचार करना चाहिए।।४।।

अन्यदपि चेष्टितमाह–

प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनं स्वेदो निमित्ताद्विना
कम्पो वा वदनाच्च रक्तपतनं धूमस्य वा सम्भवः।
अस्वप्नश्च विरोधिनां निशि दिवा निद्रालसध्यानता
सादोऽधोमुखता विचेष्टितमिदं नेष्टं स्मृतं वाजिनाम्।।५।।

अन्य चेष्टाओं को कहते हैं–

भोजन और जल में अरुचि हो जाये, अकारण ही गिरने लगे तथा स्वेद हो और कम्पन अथवा मुख से रक्तश्राव होने लगे अथवा धूम उत्पन्न हो, रात्रि में निद्रा न आवे तथा दिन में निद्रा और आलस्य प्राप्त हो, पेट के नीचे मुखकर देखता रहे, तो इस प्रकार के लक्षण घोड़ों के शुभ नहीं कहे गये हैं।।५।।

प्रद्वेषो यवसेति। यवसस्य तृणादेरम्भसामपां च। प्रद्वेषो विरक्ता। तथा प्रपतनं प्रपातः। स्वेदो धर्मः। निमित्तं कारणम्। तस्माद्विना तद्व्यतिरेकेण। कम्पो वा निमित्ताद्विना। वदनान्मुखाद्वा कर्णादे रक्तस्य शोणितस्य पतनं स्रावः। अस्वप्नश्च विरोधिनां निशीति। निशि रात्रौ विरोधिनां वैरं कुर्वतामस्वप्नो जागरणम्। दिवा दिवसे निद्रालसत्वं ध्यानता चिन्ता। सादो वक्षाधः। अधोमुखाताऽनूर्ध्वनिरीक्षणम्। वाजिनामश्वानामिदं विचेष्टितं चेष्टितं नेष्टमशुभं स्मृतमुक्तम्। उक्तं च–

निद्रानिरोधालसनीलनेत्राः प्रध्यानशून्यस्मृतयो दिनेषु।
निशासु चान्योन्यविरोधनिद्रानष्टास्तुरङ्गा न शिवाय भर्तुः।।इति।।५।।

यवश अर्थात् तृण आदि के खाने और जल-ग्रहण करने में विरक्ति हो जाये, स्वेद अर्थात् पसीना हो तथा अकारण ही कम्पन होने लगे, मुख अथवा कान से रक्तस्राव होता रहे, निद्रा में विरोधी स्वभाव अर्थात् रात्रि में अनिद्रा और दिन में निद्रा तथा आलस्य हो, साद अर्थात् वक्षस्थल के नीचे अधोमुख रहे अर्थात् ऊपर की ओर

न देखे तो घोड़ों की ये चेष्टायें अशुभ कही गयी हैं। जैसा कि कहा गया है–

निद्रा का अभाव, आलस्य, नेत्र का नीलापन, दिन में स्मृति-शून्य होकर शान्त पड़े रहना, रात्रि में निद्रा का त्याग करने वाला घोड़ा अपने स्वामी के लिए कल्याणकारक नहीं होता है॥५॥

अन्यदपि चेष्टितमाह–

आरोहणमन्यवाजिनां पर्याणादियुतस्य वाजिनः।
उपवाह्यतुरङ्गमस्य वा कल्पस्यैव विपन्नशोभना॥६॥

अन्य चेष्टाओं को कहते हैं–

जीन, लगाम आदि से सुसज्जित अश्व यदि किसी अन्य अश्व पर आरूढ़ होने लगे अथवा यात्रा के लिए तत्पर अश्व पर आरूढ़ हो, तब वह आरोग्य एवं सम्पत्ति के लिए शुभ नहीं होता है॥६॥

वाजिनोऽश्वस्य पर्याणादियुतस्य पार्याणसंयुक्तस्य। आदिग्रहणात् पुरुषसहितस्य। अन्यवाजिनामन्यानामरोहणम्। पर्याणादियुतश्चान्योऽश्व आरोहति तन्न शोभनम्। अपवाह्यतुरङ्गगमस्य चेति। यस्मिन्नारुह्य गमनं प्रत्युपवाह्यते तस्योपवाह्यतुरङ्गमस्याश्वस्य कल्पस्यारोग्यस्य विपन्नशोभना नेष्टेति॥६॥

अश्व का पर्याणादि से संयुक्त होकर, यहाँ पर "आदि" शब्द का तात्पर्य अश्वारोहीयुक्त हो, वह अश्व यदि अन्य अश्व पर आरोहण करे अर्थात् पर्याण (जीन) सहित यदि किसी दूसरे घोड़े पर चढ़ता है, तो यह अशुभ माना जाता है। जिस अश्व पर सवार होकर यात्रा की जाती है, उसको प्रत्युपवाह्य कहते हैं, उस अश्व के आरोग्य एवं वृद्धि के लिए शुभ नहीं होता है॥६॥

अधुना ह्रेषितलक्षणमाह–

क्रौञ्चवद्रिपुवधाय ह्रेषितं
ग्रीवया त्वचलया च सोन्मुखम्।
स्निग्धमुच्चमनुनादि हृष्टवद्-
ग्रासरुद्धवदनैश्च वाजिभिः॥७॥

घोड़े के हिनहिनाने का फल कहते हैं–

जिस अश्व का ह्रेषित (हिनहिनाहट) क्रौञ्चपक्षी के समान हो, तब शत्रु का विनाश होता है। यदि अपने कन्धे को ऊपर की ओर स्थिर करे तो वह उन्मुक्त अश्व शत्रुवध का संकेत करता है। प्रसन्न होकर मधुर, उच्चनाद करे तथा मुखभाग ग्रास से

भरा हो, तो इस प्रकार के घोड़े विजयप्रदायक होते हैं॥७॥

क्रौञ्चः पक्षी। यस्य ह्रेषितं शब्दितं क्रौञ्चपक्षिसदृशं तद्रिपुबधाय शत्रुविनाशाय। तथा ग्रीवया कन्धरया त्वचलया स्थिरया च सोन्मुखं सह ऊर्ध्वेन मुखेन वर्तत इति सोन्मुखम्, तदपि रिपुबधायैव स्निग्धं मधुरमुच्चमुच्चैः कृत्वा स्पष्टतरम्। अनुनादि घण्टाशब्दवदनुनदति पश्चाच्छब्दं करोति। हृष्टवत् परितोषयुक्तैर्ग्रासरुद्धवदनैः। ग्रासेन कवलेन रुद्धं वदनं मुखं येषां तैस्थाभूतैस्तद्ध्रेषितं रिपुवधायैव भवति।।७।।

क्रौञ्च एक पक्षी है, जिसके समान ह्रेषित ध्वनि होने पर शत्रु का विनाश होता है। स्थिर कन्धेवाला, ऊर्ध्वमुख अर्थात् सोन्मुख होने पर भी शत्रु-संहारक कहा गया है। स्निग्ध अर्थात् मधुर, ऊँचा तथा स्पष्ट घण्टानाद की भाँति अनुनाद करता हुआ हिनहिनाता है, ग्रास अर्थात् कवल से रुद्ध अर्थात् भरे हुए मुख वाला अश्व हिनहिनाता है, तब शत्रु का वध होता है॥७॥

अन्यदप्याह—

पूर्णपात्रदधिविप्रदेवता-
गन्धपुष्पफलकाञ्चनादि वा।
द्रव्यमिष्टमथवा परं भवेद्-
ध्रेषतां यदि समीपतो जयः।।८।।

और भी कहते हैं-

पूर्णपात्र, दधि, विप्र, देवता, गन्ध, पुष्प, फल तथा सुवर्णादि-पदार्थ अथवा इष्ट-द्रव्य यदि हिनहिनाते हुए घोड़े के समीप स्थित हों, तो जय प्राप्त होती है॥८॥

पूर्णं च तत् पात्रं पूर्णपात्रम्। पात्रं भाजनम्। पूर्णं केनचिच्छुभद्रव्येण सर्षपाक्षततण्डुलकादिकेनेति। दधि क्षीरविकारः। विप्रो ब्राह्मणः। देव एक देवता। गन्धः सुगन्धद्रव्यविशषः। अगुरुकर्पूरकस्तूरिकादिः। पुष्पाणि कुसुमानि। फलं श्रीफलादि। काञ्चनं सुवर्णम्। आदिग्रहणाद् रजतमणिमुक्ताफलादि। अथवा परमन्यदिष्टं शुभद्रव्यं सिद्धार्थगोरोचनादि वा। ह्रेषतां शब्दं कुर्वतामश्वानां यदि समीपतः सन्निकर्षे निकटे भवेत्, तदा जयो भवति।।८।।

यदि पूर्णपात्र, दधि, विप्र, देवता, गन्ध, पुष्प, फल और सुवर्णादि पदार्थ अथवा प्रियद्रव्य ह्रेषित अश्व के समीप हों, तो विजय प्राप्त होता है। पूर्ण अर्थात् अन्नादि से पूरित, पात्र अर्थात् भाजन; ये किसी शुभद्रव्य अर्थात् सरसों, अक्षत, तण्डुलादि ये परिपूर्ण हों, दधि अर्थात् दुग्ध का विकार, ब्राह्मण, देवता एवं सुगन्धादि

द्रव्य-विशेष अर्थात् अगुरु, कर्पूर, कस्तूरी आदि, पुष्प तथा श्रीफलादि फल काञ्चन अर्थात् सुवर्ण "आदि" पद से चाँदी, मणि, मोती आदि अथवा अन्य कोई अभीष्ट शुभ द्रव्य सर्षप, गोरोचन इत्यादि, यदि हिन-हिनाते हुये घोड़े के निकट हों, तो विजय होता है॥८॥

अन्यदप्याह–

भक्ष्यपानखलिनाभिनन्दिनः पत्युरौपयिकनन्दिनोऽथवा।

सव्यपार्श्वगतदृष्टयोऽथवा वाञ्छितार्थफलदास्तुरङ्गमाः॥९॥

और भी कहते हैं–

खाद्य पदार्थ, पेय-पदार्थ, खली इत्यादि प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करे अथवा अपने स्वामी की प्रिय वस्तुओं का हर्षित नेत्रों से अभिनन्दन करे अथवा दक्षिणपार्श्व में दृष्टि रखे, तो ऐसा घोड़ा वाञ्छित अर्थ और फल को देता है॥९॥

भक्ष्यं भक्षणीयं द्रव्यम्। पानं जलम्। खलिनं कविका। एतानि यद्यभिनन्दयन्ति, अथवा पत्युर्भर्तुरौपयिकं यदुपयुज्यते तदभिनन्दयन्ति। अथवा सव्यपार्श्वे आत्मीयदक्षिणपार्श्वे गतदृष्टयो वीक्ष्यमाणाः। एवं विधास्तुरङ्गमा वाञ्छितार्थफलदा वाञ्छितस्याभीष्टस्यार्थस्य फलं ददति। उक्तं च–

इष्टानिष्टव्यञ्जकमतः परं ह्रेषितं समवधार्यम्।

तच्च चलितप्रसारितशिरोधरोद्भूतमिष्टफलम्॥

ग्रासान्तर्वक्त्राणामुच्चैःस्निग्धानुनादि गम्भीरम्।

द्विजपूर्णभाजनेष्टद्रव्यस्त्रग्गन्धसुरमूलैः॥

खलिनान्नापानाद्यर्मस्वाम्युपकरणाभिनन्दिता चैषाम्।

सर्वार्थसिद्धये स्याद् दक्षिणपार्श्वे विलोकयताम्॥इति॥९॥

भक्ष्य अर्थात् भक्षणयोग्य पदार्थ, पान अर्थात् जलादि पेय पदार्थ, खली अर्थात् कविका; इन पदार्थों का अभिनन्दन (ग्रहण) करता है अथवा अपने स्वामी के औपयिक अर्थात् प्रयुक्त पदार्थों का अभिनन्दन करता है अथवा अपने दक्षिण पार्श्व में दृष्टि रखता है, तब इस प्रकार का अश्व मनोभलिषित अर्थ का फल प्रदान करता है। जैसा कि कहा गया है–

इष्ट और अनिष्ट का प्रतिपादन अश्व के ह्रेषित शब्द से समझना चाहिए। यदि अश्व अपने कन्धे को ऊँचा उठाकर हिलाता है, तो इष्टफल का प्रदायक होता है। ग्रास में मुख देकर भोजन करे, मधुर और गम्भीर शब्द करे, तो शुभ होता है। द्विज, पूर्णपात्र, इष्टद्रव्य, माला, गन्ध, देववृक्ष, खली, अन्न, पेय तथा स्वामी के उपकरणों

को अभिनन्दित करे और दक्षिणपार्श्व में अवलोकन करे, तब सभी प्रकार के अर्थों की सिद्धि होती है॥९॥

अधुनाशुभचेष्टिमाह-

वामैश्च पादैरभिताडयन्तो महीं प्रवासाय भवन्ति भर्तुः।

सन्ध्यासु दीप्तामवलोकयन्तो ह्रेषन्ति चेद् बन्धपराजयाय॥१०॥

अब अशुभचेष्टाओं को कहते हैं-

यदि अश्व बायें पैर से भूमि का ताडन करे तो, स्वामी का प्रवास होता है। यदि सायंकाल दीप्त होकर देखे तथा हिनहिनाये तब बन्धन एवं पराजय होता है॥१०॥

महीं भूमिं वामैश्च पादैरपसव्यचरणैरभिताडयन्तो घ्नन्तो भर्तुः पत्युः प्रवासाय भवन्ति। सन्ध्यासु चतसृषु सूर्योदयमध्याह्नास्तमयार्धरात्रिषु। दीप्तां दिशमवलोकयन्तः प्रेक्षमाणा यदि ह्रेषन्ति शब्दं कुर्वन्ति, तदा बन्धपराजयाय भवन्ति। स्वामिनो बन्धनं पराजयं च कुर्वन्ति॥इति॥१०॥

भूमि को बायें पैर से कुरेदता हुआ घोड़ा अपने स्वामी के लिए प्रवास की सूचना देता है। सूर्योदय, मध्याह्न, सायं और रात्रि इन चारों संध्याओं में दीप्त दिशा की ओर देखकर यदि हिनहिनाता है, तब बन्धन एवं पराजय होता है। अर्थात् अश्व के स्वामी को बन्धन तथा पराजय प्राप्त होता है॥१०॥

अन्यदप्याह–

अतीव ह्रेषन्ति किरन्ति वालान्
निद्रारताश्च प्रवदन्ति यात्राम्।
रोमत्यजो दीनखरस्वराश्च
पांशून् ग्रसन्तश्च भयाय दृष्टाः॥११॥

और भी कहते हैं-

जो घोड़ा अत्यधिक हिनहिनाता हो और पूँछ को फटकारता हो तथा निद्रा में निमग्न हो तो यात्रा का संकेतक होता है। जो घोड़ा रोवों को गिराता हो, दीन-हीन अथवा खर-खर शब्द करता हो और मिट्टी खा रहा हो, तो वह भय का सूचक होता है॥११॥

अतीवात्यर्थं ह्रेषन्ति शब्दं कुर्वन्ति, तथा वालान् पुच्छवालान् किरन्ति विक्षिपन्ति। निद्रारताः स्वप्नशीलाश्च यात्रां गमनं प्रवदन्ति। तथा रोमत्याजो रोमाणि त्यजन्त्युत्सृजन्ति। दीनखरस्वराः, दीनस्वनाः क्षामशब्दाः। खरस्वना रूक्षद्ध्वनयः।

पांशून् मृत्तिका ग्रसन्तो भक्षयन्तो भयाय दृष्टाः। स्वामिनो भयमावेदयन्ति। उक्तं च–

सन्ध्यासु दीप्तदिङ्मुखसम्भ्रमगाढप्रनष्टनिद्राश्च।

ह्रेषन्तो भयजनना वधबन्धपराजयकराश्च।।

वक्रीकृतवालधयो दक्षिणपार्श्वानुशायिनो नेष्टाः।

वामचरणैः क्षितितलं घ्नन्तो ज्ञेयाः प्रवासाय।।इति॥११॥

जो अत्यधिक हिनहिनाहट करे तथा पूँछ के बालों को अत्यधिक हिलाता हो और निद्रारत हो, तो यात्रा करने का सूचक होता है। जो घोड़ा अपने रोम अर्थात् रोवों का त्याग करता हो, दीन अर्थात् दुर्बलशब्द अथवा खर अर्थात् रूक्ष (कर्कश) शब्द करता हो और मृत्तिका खाता हो, तो वह भय का निर्देश करता है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के लक्षणों वाला घोड़ा अपने स्वामी के लिए भय का संकेत करता है। जैसा कि कहा गया है–

संध्याकाल में दीप्तदिशा में मुख किया हुआ, चकित और निद्रारहित, हिनहिनाने वाला घोड़ा भय, बन्धन, वध और पराजयकारक होता है। अपने बालों को टेढ़ा कर दक्षिण भाग में सोने वाला घोड़ा शुभ नहीं होता है। बाएँ पैर से भूतल को कुरेदने वाला घोड़ा प्रवास का सूचक होता है॥११॥

अथ शुभनिमित्तान्याह–

समुद्गवद्दक्षिणपार्श्वशायिनः

पदं समुत्क्षिप्य च दक्षिणं स्थिताः।

जयाय शेषेष्वपि वाहनेष्विदं

फलं यथासम्भवमादिशेद् बुधः।।१२।।

शुभ-लक्षणों को कहते हैं–

घुटने को ढँककर दक्षिणभाग में सोने वाला तथा दाहिना पैर आगे कर खड़ा होने वाला घोड़ा विजयप्रदायक होता है। पण्डितजन शेष वाहनों के भी इसी प्रकार से यथासम्भव फल की कल्पना करें॥१२॥

समुद्गवज्जानुनी ढौकयित्वा समुद्गवद्दक्षिणेन सव्येन पार्श्वेण शरीरार्द्धेन स्वप्नशीलाः। तथा सव्यं दक्षिणं पदं चरणं समुत्क्षिप्य भूमाववनाववस्थाप्य च स्थितास्तिष्ठन्ति। एवंभूतास्तुरगाः प्रभोर्जयाय भवन्ति। शेषेष्वपीति। शेषेष्वन्येषु गजकरभादिषु वाहनेष्विदं शुभाशुभं फलं यथासम्भवं यत् सम्भवति; धूमाग्निकणाश्च

न सम्भवन्ति, अन्यत् सम्भवति। तद्वद् बुधः पण्डित आदिशेत् कथयेत्।।१२।।

समुद्गव अर्थात् घुटने को ढँककर दक्षिणपार्श्व अर्थात् शरीर के आधे भाग से शयन करने वाला और दक्षिण पैर को भूमि पर आगे रखकर खड़ा होने वाला घोड़ा स्वामी के लिए जयकारक होता है। अन्य वाहन अर्थात् हाथी, ऊँट आदि का भी शुभाशुभ फल यथासम्भव इसी प्रकार होता है। धूम तथा अग्निकण आदि के फल नहीं होते हैं। परन्तु अन्य फल घटित होते हैं। विद्वान् पण्डित को तदनुसार ही फलादेश करना चाहिए।।१२।।

अथान्यदपि शुभचेष्टितमाह—

आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रतिह्रेषते च।
वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
योऽश्वः स भर्तुरचिरात् प्रचिनोति लक्ष्मीम् ।।१३।।

अन्य शुभचेष्टाओं को कहते हैं—

जो अश्व राजा के आरोहण करते समय विनम्र होता है, यात्रा की दिशा में गमनशील होता है, अन्य घोड़े को देखकर शब्द करता है, अपने दक्षिणभाग को मुख से स्पर्श करता है; इस प्रकार का अश्व अपने स्वामी के लिए शीघ्र ही श्री-सम्पत्ति को प्राप्त कराता है।।१३।।

क्षितिपतौ राज्ञि राजनि वाऽऽरोहति उत्कषति योऽश्वस्तुरगो विनयोपपन्नो नीतिसंयुक्तो भवति, तथा यात्रानुगो यात्रादिगभिमुखः। यां दिशं गच्छति राजा तस्यामेव गच्छति। अन्यतुरगं प्रतिह्रेषते च। अन्यस्मिन् तुरगे ह्रेषिते शब्दं कुर्वन्ति सति प्रतिह्रेषितं करोति। अथवा वक्त्रेण मुखेनात्मपार्श्वं दक्षिणं सव्यं स्पृशति, स भर्तुः प्रभोरचिराच्छीघ्रमेव लक्ष्मीं श्रियं प्रचिनोति वृद्धिं नयति।।१३।।

क्षितिपति अर्थात् राजा या रानी के आरोहण करने पर जो अश्व विनय संयुक्त व्यवहार करता है। यात्रा की दिशा की ओर अभिमुख होता है अर्थात् जिस दिशा में राजा जाने वाला होता है, उसी दिशा में जाता हो। अन्य घोड़े को देखकर प्रतिशभ्द करता हो अर्थात् अन्य घोड़े की हिनहिनाहट को सुनकर स्वयं हिनहिनाता हो अथवा मुख से अपने दक्षिणपार्श्व का स्पर्श करता हो, तो वह स्वामी के लिए शीघ्र ही लक्ष्मी की समृद्धि कराता है।।१३।।

अथाशुनिमित्तान्याह—

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति

न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी।

अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च

शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते।।१४।।

अशुभ लक्षणों को कहते हैं-

बार-बार मूत्र और लीद करता हो, मार खाने पर भी अभीष्टदिशा में नहीं जाता हो, अकारण ही भयभीत रहता हो और आँसू गिराता हो, तो ऐसा अश्व स्वामी के लिए अकल्याणकारक होता है।।१४।।

यस्तुरगोऽश्वौ मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं मूत्रं शकृत् पुरीषं च करोति। ताड्यमानोऽपि कषादिभिर्नानुलोमयायी अनुलोमामभीष्टां दिशं न गमनशीलः। अकार्यभीतः, अकार्यादनिमित्ताद् भीतः। महिषसूकारदिर्भिर्विना भयमाशङ्कते। अश्रुविलोचनोऽ-श्रुपरिपूर्णनयनः। स भर्तुः पत्युः शिवं श्रेयो नाभिधत्ते न ददाति।।१४।।

जो अश्व क्षण-प्रतिक्षण मूत्र और पुरीष (लीद) करता है। कोड़े आदि से प्रताड़ित होकर भी अभीष्ट दिशा में नहीं जाता हो, बिना किसी कारण के ही भयग्रस्त हो अर्थात् भैंस, सूअर आदि के बिना ही भय से आशंकित हो, आँसू से भरा हुआ नेत्र हो, ऐसा घोड़ा अपने पालक स्वामी के लिए कल्याणकारक नहीं होता है।।१४।।

उक्तमिदं हयचेष्टितमत ऊर्ध्वं दन्तिनां प्रवक्ष्यामि।

तेषां तु दन्तकल्पनभङ्गम्लानादिचेष्टाभिः।।१५।।

इस प्रकार हयचेष्टित का विचार किया गया। इसके पश्चात् हाथियों के लक्षणों को कहा जाएगा। हाथियों के दन्त-भंग तथा मलिनादि चेष्टाओं को कहा जाएगा।।१५।।

इदं हयानामश्वानां चेष्टितं कथितम्, अतोऽस्मादूर्ध्वमनन्तरं दन्तिनां गजानां सम्प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि। तेषां तु दन्तकल्पनेन दन्तभङ्गेनास्फोटनेन दन्तानां म्लानत्वेन वैकल्येन चेष्टया चेष्टितेन। आदिग्रहणादन्यैः पार्थिवोपकरणादिभिः फलानि भवन्ति।।१५।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुनेऽश्वेङ्गितं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः।।९२।।

इस प्रकार यहाँ पर अश्वों की चेष्टाएँ कही गयी हैं, इसके अनन्तर हाथियों की चेष्टाओं को कहूँगा। हाथियों के दन्त-भंग तथा उनकी विकलता और चेष्टा के द्वारा तथा राजाओं के अन्य उपरणों से जो फल होते हैं, उनको कहूँगा।।१५।।

।।श्रीभट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में शाकुनान्तर्गत अश्वेङ्गित नामक बानबेंवे

अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।९२।।

❋ ❋ ❋

।।अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः।।

हस्तिचेष्टिताध्यायः

अथ हस्तिचेष्टिं[1] व्याख्यायते।

तत्रादावेव दन्तकल्पनविधानमाह—

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोह्य कल्पयेच्छेषम्।
अधिकमनूपचाराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित्।।१।।

हस्तिचेष्टिताध्याय ९३ की व्याख्या की जाती है।

दाँतों के निर्माण की व्यवस्था बतलाते हैं—

दन्तमूल की परिधि से द्विगुणित लम्बाई का त्यागकर शेषभाग को फल हेतु दाँतों की परिकल्पना करनी चाहिए। अनूपचर अर्थात् जलीय प्रदेशों के हाथियों का कुछ अधिक और पर्वतचारी हाथियों का इससे कुछ न्यूनभाग ग्रहण करना चाहिए।।१।।

मूले परिधिर्मूलपरिधिः। परिधिः पारिमण्डल्यम्। दन्तस्य रदस्य मूले यः परिधिः परिणाहस्तं द्विरायतं द्वौ वारौ द्विगुणमायतं दीर्घं प्रोह्य त्यक्त्वा शेषं कल्पयेत् छिन्द्यात्। एतदुक्तं भवति—दन्तमूलात् पारिमाण्डल्येन सूत्रेण मित्वा तत् सूत्रं द्विगुणं कृत्वा यद्भवति तावत् प्रमाणं दन्तमूलाद् दैर्घ्यं त्यक्त्वा शेषं कल्पयेत्। अधिकमनूपचराणामिति। अनूपो बहूदको देशः। अनूपचराणां हस्तिनां दन्तमूलपरिधिं द्विरायताधिकं प्रोह्य शेषं कल्पयेत्। गिरिचराणां पर्वते सदैव ये चरन्ति तेषां न्यूनं किञ्चिद् दन्तमूलपरिधिं द्विरायतं प्रोह्य शेषं कल्पयेत्। उक्तं च—

दन्तमूलपरिणाहदीर्घतां द्विः प्रमुच्य परतोऽपि कल्पयेत् ।।इति।।१।।

दन्तमूल की परिधि को मूलपरिधि कहते हैं। परिधि का तात्पर्य परिमण्डल अर्थात् वृत्ताकृति है। दन्त के मूल में परिधि की जो चौड़ाई हो, उसकी द्विगुणित लम्बाई के समतुल्य भाग को छोड़कर शेषभाग को कल्पित करे, अर्थात् छेदन करें। इसका तात्पर्य यह है कि दन्तमूल की गोलाई के बराबर जितना सूत्र हो, उसको दुगुना कर, उसके तुल्य दन्तमूल से लम्बा भाग छोड़कर शेषभाग का छेदन करें। अनूप अर्थात् जलाधिक्य प्रदेश। अनूपचर हाथियों के दन्तमूल-परिधि से द्विगुणित से अधिक भाग

---

१. अयमध्यायस्तथैव यथा शय्यासनलक्षणे गजदन्तलक्षणम्। ७८ अध्यायस्य।

छोड़कर शेषभाग को कल्पित (छेदन) करें। गिरिचरों अर्थात् जो सदैव पर्वत पर विचरण करते हैं, उनका इससे कुछ न्यून भाग का त्याग करके अवशिष्ट भाग को काटें। जैसाकि कहा गया है–

दन्तमूल के परिमाण से द्विगुणित दैर्घ्य को छोड़कर, उसके ऊर्ध्वभाग का छेदन करना चाहिए॥१॥

अथ परिकल्पितस्य दन्तस्य लक्षणमाह–

[1]श्रीवत्सवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु ।

छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि।।२।।

अब परिकल्पित दाँत का लक्षण बतलाते हैं–

श्रीवत्स, वर्धमान, छत्र, ध्वज, चामर के सदृश चिह्न यदि दाँत का छेदन करने पर दखाई दें; तो आरोग्य, विजय, धनवृद्धि तथा सौख्य की प्राप्ति होती है॥२॥

श्रीवत्सो वर्धमानः। एतौ चिह्नविशेषौ। छत्रमातपत्रम्। ध्वजः प्रसिद्धः। चामरं वालव्यजनम्। एषामनुरूपेण सदृशेषु चिह्नेषु छेदे दृष्टेषु अवलोकितेष्वारोग्यमरोगित्वं विजयो धनवृद्धिः सौख्यमेतानि भवन्ति।।२।।

श्रीवत्स, वर्धमान; ये दोनों चिह्न-विशेष, छत्र अर्थात् आतपत्र, ध्वज, चामर अर्थात् चँवर; इनके अनुरूप अर्थात् सदृश चिह्न, यदि दाँतों को छेदित करने पर परिलक्षित हों, तो आरोग्य अर्थात् निरोगिता, विजय, धनवृद्धि तथा सुख की प्राप्ति होती है॥२॥

अन्यदप्याह–

प्रहरणसदृशेष जयो नन्द्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः।

लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः।।३।।

और भी कहते हैं–

प्रहरण (शस्त्र) के समान छिद्र होने पर विजय होती है तथा नन्द्यावर्त के समान छिद्र होने पर खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त होता है। लोष्ट (ढेला) के सदृश चिह्न दाँत का छेदन करने पर दिखायी दे, तो पूर्वलब्ध देश की प्राप्ति होती है॥३॥

प्रहरणं खड्गादि। प्रहरणसदृशेषु तदाकारेषु छेदे दृष्टेषु जयो भवति। नन्द्यावर्तश्चिह्नविशेषः। नद्यावर्तसदृशच्छेदे दृष्टे प्रनष्टस्यापहृतस्य देशस्याप्तिर्लाभो भवति। लोष्टे लोष्टसदृशे तु मृत्खण्डाकृतौ लब्धपूर्वस्य देशस्य सम्प्राप्तिर्भवति। पूर्वं लब्धो लब्धपूर्वः। नाममात्रेण लब्धो न हस्तीभूतस्तस्य सम्प्राप्तिर्लाभो भवति।।३।।

---

१. अस्य ग्रन्थस्य ७८ अध्यायस्य २१ श्लोके श्रीवत्स-स्थाने श्रीवृक्ष इति पाठान्तरम्।

प्रहरण अर्थात् तलवार आदि के सदृश आकृति, दाँत का छेदन करने पर दिखायी पड़े, तब जय होती है। नन्द्यावर्त नामक एक प्रकार का चिह्न-विशेष है, तदनुरूप चिह्न छिन्नभाग में दिखायी पड़े, तब प्रनष्ट अर्थात् अपहृत देश का लाभ होता है। लोष्ट अर्थात् मृत्खण्ड की आकृति प्रतीत हो, तब लब्धपूर्व अर्थात् पूर्व में जो प्राप्त हो अर्थात् जो नाममात्र का किञ्चित् भाग हस्तगत हुआ हो और पूर्णतः प्राप्त न हुआ हो, ऐसे देश की प्राप्ति होती है॥३॥

अन्यदप्याह—

स्त्रीरूपेऽश्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः।
कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नश्च दण्डेन॥४॥

और भी कहते हैं—

स्त्री की आकृति होने पर अश्वहानि होती है। भृङ्ग की आकृति होने पर पुत्रप्राप्ति तथा कुम्भाकृति से धनलाभ और दण्डाकृति से यात्रा में व्यवधान आता है॥४॥

स्त्रीरूपे योषिदाकृतौ छेदे दृष्टेऽश्वानां तुरगाणां विनाशः क्षयो भवति।, भृङ्गारो वार्धानी। भृङ्गाराकृतावभ्युत्थिते उत्पन्ने सुतस्य पुत्रस्योत्पत्तिः सम्भवो भवति। कुम्भेन घटसदृशेन निधिप्राप्तिर्निधिलाभो भवति। दण्डेन दण्डाकारेण यात्राविघ्नो गमननिषेधो भवति॥४॥

योषित अर्थात् नारी की आकृति यदि छेदित-दन्त में प्रतीत हो, तो अश्वों का क्षय होता है। भृङ्गार की आकृति उत्पन्न होने पर पुत्रोत्पत्ति की सम्भावना होती है। कुम्भ अर्थात् घड़े के समान आकृति से सम्पत्ति का लाभ होता है। दण्ड के सदृश आकार हो, तो यात्रा में विघ्न अर्थात् यात्रा का निषेध होता है॥४॥

अन्यदप्याह—

कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशित्वम्।
गृध्रोलूकध्वांक्षश्येनाकारेषु जनमरकः॥५॥

और भी कहते हैं—

कृकलास (गिरगिट), वानर और सर्प; इनकी आकृति दन्तछिद्र पर दिखायी पड़े, तब अकाल, रोग तथा शत्रु की अधीनता प्राप्त होती है। गिद्ध, उल्लू, कौवा और बाज की आकृति से जनविनाश होता है॥५॥

कृकलासः प्राणिविशेषः। कपिर्वानरः। भुजङ्गः सर्पः। एतेषु छेदे दृष्टेषु

असुभिक्षं व्याधयः पीडा रिपुवशित्वं शत्रूणां विधेयत्वमिति। गृध्रः, उलूकः। एतौ प्रसिद्धौ पक्षिणौ। ध्वांक्षः काकः। श्येनो वाजिकः। एषामाकारेषु सदृशेषु छेदे दृष्टेषु जनमरको जनानां मरको भवति।।५।।

कृकलास एक प्राणी विशेष है, कपि अर्थात् वानर, अर्थात् साँप; इनकी आकृति यदि दन्तछिद्र में दिखायी पड़े तब असुभिक्ष अर्थात् अकाल, व्याधि और शत्रु की अधीनता होती है। गिद्ध और उलूकः; ये दोनों प्रसिद्ध पक्षी हैं, ध्वाङ्क्ष अर्थात् कौवा, श्येन अर्थात् बाज; इनकी आकृति छेदित दाँत में हो, तब जनता का मरण होता है।।५।।

अन्यदप्याह–

पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत् स्रुते रक्ते।
कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति।।६।।

और भी कहते हैं–

सर्पाकार तथा कबन्ध (धड़) की आकृति दिखलायी पड़े, तो राजा की मृत्यु होती है। यदि रक्तस्राव होने लगे तब जनता पर विपत्ति आती है। कृष्ण, मलिन और विवर्ण हो, तथा दुर्गन्ध हो, तब अशुभ होता है।।६।।

पाशः सर्पाकारः। कबन्धो विच्छिन्नशिराः पुरुषः। तत्सदृशे छेदे दृष्टे नृपमृत्युर्नृपस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं भवति। रक्ते शोणिते स्रुते जनानां विपदापदो भवन्ति। कृष्णे कृष्णवर्णे। श्यावे मलिने। रूक्षे अस्निग्धे। दुर्गन्धे दुष्टगन्धे। छेदे दृष्टे अशुभमनिष्टं भवति। उक्तं च–

श्यावपूतिमलरक्तदर्शनं सर्पसत्त्वसदृशं च पापदम् ।।इति।।६।।

पाश अर्थात् सर्पाकार कबन्ध अर्थात् कटे हुए सिरवाला मानव; इनके समान दन्त का छिन्नप्रदेश दिखायी पड़े तब राजा का मरण होता है। रक्त अर्थात् शोणित के स्रवित होने पर आपदाएँ आती हैं। कृष्णवर्ण, श्याव अर्थात् मलिन वर्ण, रूक्ष अर्थात् विकृतवर्ण तथा दूषित-गन्ध छेदित भाग में उत्पन्न हो, तब अशुभ अर्थात् अनिष्ट होता है। जैसा कि कहा गया है–

श्याव, दुर्गन्धि, मल एवं रक्त तथा सर्प के सदृश आकृति होने पर पाप (अशुभ) फल होता है।।६।।

अथ शुभच्छेदलक्षणमाह–

शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः।

गलनम्लानफलानि च दन्तस्य समानि भङ्गेन।।७।।

शुभछिद्र का लक्षण कहते हैं–

शुक्लवर्ण का 'समतल' सुगन्धियुक्त और चिकना छिद्र शुभकारक होता है। गलन और म्लानता का फल दन्तभङ्ग के समान ही समझना चाहिए।।७।।

शुक्लः। समः सर्वभागेषु तुल्यः। सुगन्धिः शोभनगन्धिः। स्निग्धः सस्नेहः। एवंविधश्छेदः शुभावहः शुभं करोति। उक्तं च–

पार्थिवोपकरणोपमं यदा चिह्नमुद्वहति कल्पिते रदे।

श्रीजयार्थबलवृद्धयस्तदा स्निग्धशुक्लरुचिराश्च शोभनाः।।

गलनम्लानफलानीति। गलनं स्थानस्यैव विशरणं स्रावो वा। म्लानं म्लानता वैवर्ण्यम्। एतेषां यानि फलानि तानि दन्तस्य भङ्गेन स्फोटनेन समानि। यादृशं दन्तभङ्गफलं वक्ष्यमाणं तादृशमपि गलनम्लानफलम्।।७।।

श्वेत, सम अर्थात् सभी भागों में बराबर, सुगन्धित अर्थात् मधुर गन्ध, स्निग्ध अर्थात् चिकनाहट युक्त; इस प्रकार का छिद्र शुभ करने वाला होता है। जैसाकि कहा गया है–

गजदन्त को काटते समय राजा के उपकरणओं के (छत्र, ध्वज, चामर इत्यादि) चिह्न यदि उत्पन्न हों, तब श्री, विजय, अर्थ और बल की वृद्धि होती है। स्निग्ध, शुक्ल तथा रुचिरवर्ण शुभ कहे गये हैं।

गलन अर्थात् दन्तस्थान का झड़ना अथवा स्रवित होना, म्लानता अर्थात् वैवर्ण्यता; इनके फल दन्तभङ्ग के समान ही होते हैं। आगे दन्तभङ्ग के जो फल कहे जायेंगे, उसके सदृश ही गलन और म्लानता का भी फल होता है।।७।।

अन्यच्छुभाशुभमाह–

मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता

देवदैत्यमनुजाः क्रमात् ततः।

स्फीतमध्यपरिपेलवं फलं

शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम्।।८।।

अन्य शुभाशुभ फलों को कहते हैं–

दाँत के मूलभाग, मध्यभाग तथा अन्तिमभाग में क्रमशः देव, दैत्य एवं मनुष्य का स्थान होता है। इनका फल क्रमशः अत्यधिक, मध्यम और अल्प कहा जाता है। इसी क्रम से फल प्राप्ति का काल भी क्रमशः शीघ्र, मध्यम तथा विलम्ब से प्राप्त होता है॥८॥

यथाक्रमं गजस्य दन्तमूले दन्तमध्ये दन्ताग्रे च देवदैत्यमनुजाः क्रमात् स्थिताः। तद्यथा–दन्तमूले देवा व्यवस्थिताः। दन्तमध्ये दैत्याः। दन्ताग्रे मनुजा देवविशेषाः। ततस्तस्माद् भागत्रयात् स्फीतमध्यपरिपेलवं फलं भवति। तत्र मूले वक्ष्यमाणं फलं स्फीतं परिपुष्टं भवति। मध्ये मध्यमं नात्यल्पं नातिबहु। प्रान्ते परिपेलवं स्वल्पम्। तथा शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम्। मूले वक्ष्यमाणं फलं शीघ्रकालेन सप्ताहमध्ये सम्भवति। मध्ये मध्यमेन कालेन मासान्तः। प्रान्ते चिरकालेन मासान्ते सम्भवतीत्यागमविधिः॥८॥

हाथी के दाँत के क्रमानुसार उसके मूल, मध्य एवं अन्त में देव, दैत्य और मनुष्य अवस्थित रहते हैं। यथा–दाँत के मूलभाग में देवस्थान, मध्य में दैत्यस्थान एवं अन्त्य में मनुष्यस्थान होता है। मनुष्य भी यहाँ पर देव-विशेष ही कल्पित है। इन तीनों भागों से फल की कल्पना की जाती है। मूलभाग में फल स्फीत अर्थात् परिपुष्ट (पूर्ण) होता है। मध्यभाग में मध्यमफल अर्थात् न बहुत कम और न बहुत अधिक तथा अन्त्यभाग में परिपेलव अर्थात् स्वल्पफल होता है। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले इनके फल मूलभाग में शीघ्र अर्थात् सप्ताह के मध्य में सम्भव होते हैं। मध्यभाग में मध्यकाल अर्थात् एक मास का समय और प्रान्तभाग में चिरकाल अर्थात् मासोत्तर का समय सम्पादित है, यह परम्परागत शास्त्र का विधान है॥८॥

अत्रैव पुनरपि विशेषमाह–

दन्तभङ्गफलमत्र दक्षिणे भूपदेशबलविद्रवप्रदम्।
वामतः सुतपुरोहितेभयान् हन्ति साटविकदारनायकान्॥९॥

यहाँ पर पुनः विशेषरूप से कहते हैं–

यहाँ पर दाहिने भाग में दन्तभङ्ग का फल तीनों भागों का क्रमशः राजा, राज्य और सेना के लिए उपद्रवकारी होता है। वाम-दन्त के भङ्ग होने पर तीनों भागों में क्रमशः राजकुमार, राजपुरोहित और हाथियों का विनाश होता है। इसी प्रकार वामदन्त में सैन्य रानी और प्रधान नायक का नाश होता है॥९॥

अत्रास्मिन् भागत्रये दन्तभङ्गफलम्। दक्षिणे मूलाद् भग्ने भूपस्य राज्ञो विद्रवप्रदं विद्रवं पलायनभयं ददाति। मध्याद् भग्ने देशश्य जनपदस्य विद्रवप्रदम्। प्रान्तभग्ने बलस्य सेनाया विद्रवप्रदम्। वामतः सुतपुरोहितेभयानिति। वामतो वामे रदे मूलाद्भग्ने सुतं राजपुत्रं हन्ति। मध्याद्भग्ने पुरोहितमाचार्यं हन्ति। अग्रे इभयान् साधनपतीन् हन्ति। तथा साटविकदारनायकान् क्रमेण। वामदन्ते मूलाद्भग्ने साटविकं बलं हन्ति। मध्याद्भग्ने दाराः कलत्रम्। अग्राद्भग्ने नायकान् प्रधानपुरुषान् हन्ति। गलनम्लानफलान्येवमेव ज्ञातव्यानि।।९।।

यहाँ पर तीन भाग में दन्तभङ्ग का फल बतलाते हैं। दन्तमूल से दाहिने भाग के भंग होने पर राजा को पलायन का भय प्रदान करता है। मध्यभाग में भंग होने पर देश अर्थात् जनपद का विप्लव होता है। प्रान्तभाग अर्थात् अग्रभाग में भङ्ग होने पर बल अर्थात् सेना का पलायन करता है। बायें भाग से भङ्ग हो, तो पुत्र, पुरोहित तथा हाथियों को भय प्राप्त होता है। वामदन्त में मूलभाग के भङ्ग होने पर पुरोहित अर्थात् आचार्य का विनाश होता है। अग्रभाग में इभ अर्थात् हाथियों (समृद्धों) का हनन होता है। इसी प्रकार क्रमशः वामदन्त के मूलभाग के भङ्ग होने पर साटविक अर्थात् सैन्यबल का विनाश तथा मध्यभाग के भङ्ग होने पर स्त्री-हानि और अग्रभाग के भङ्ग होने पर नायक अर्थात् प्रधानपुरुष की हानि होती है। गलन तथा म्लानता का फल भी इन भागों का इसके अनुसार ही जानना चाहिए।।९।।

पुनरप्यत्र विशेषफलमाह–

आदिशेदुभयभङ्गदर्शनात् पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम्।
सौम्यलग्नतिथिभादिभिः शुभं वर्धतेऽशुभमतोऽन्यथा वदेत् ।।१०।।

यहाँ पर विशेष-फल कहते हैं–

दोनों दाँतों के भङ्ग होने पर राजा के सम्पूर्ण कुल का क्षय कहना चाहिए। शुभ लग्न अर्थात् शुभ तिथि, नक्षत्रादि हों, तब शुभफल की वृद्धि होती है। इसके विपरीत अशुभफल कहना चाहिए।।१०।।

उभयोर्दन्तयोर्द्वयोर्भङ्गदर्शनात्। भङ्गः स्फोटनं यदि दृश्यते तथा पार्थिवस्य राज्ञः सकलं निःशेषं कुलक्षयं वंशविनाशमादिशेद् वदेत्। निःशेषं नृपकुलं विनश्यति। गलनम्लानफलान्येवमेव। सौम्यलग्नतिथिभादिभिः शुभं वर्धते। सौम्यस्य शुभग्रहस्य लग्नेन सौम्यग्रहाणां लग्नानि वृषमिथुनकर्कटकन्यातुलधन्विमीनाः। येषां शुक्रबुधाक्षीणेन्दुजीवा अधिपतयः। एवं सौम्यलग्नेन सौम्य-तिथिना रिक्तावर्जितः सौम्यस्तिथिः। नन्दाभद्राविजयापूर्णाः सौम्यास्तिथयः। सौम्यं भं नक्षत्रं दारुणोग्रवर्जम्। आदिग्रहणात् सौम्यदर्शनेन लग्नस्य सौम्यसंस्थित्या वा सन्नामदर्शनादिना पूर्णं शुभं

चिह्नं शुभेनोत्पन्नं वर्धते वृद्धिं याति। अशुभमतोऽन्यथा वदेत्। अतोऽस्मादुक्तादन्यथा पापलग्नेन पापसंस्थित्या पापदर्शनेन सदोषतिथिना नक्षत्रेण चाधिकमशुभं पापचिह्नं वर्धते वृद्धिं याति। व्यामिश्रेण व्यामिश्रम्। अशुभेन लग्नादिना वाऽशुभं चिह्नं शुभेन वा शुभं यत्र तत्र व्यामिश्रं वा फलमूह्यमिति।।१०।।

दोनों दाँतों के भङ्ग अर्थात् खण्डित अथवा विदीर्ण होने का फल राजा के सम्पूर्ण कुल का क्षय अर्थात् वंशविनाश बतलावें। भावार्थ यह है कि नि:शेष राजकुल का विनाश होता है। गलन तथा म्लानता का फल भी इसी प्रकार होता है। शुभलग्न, तिथि, नक्षत्रादि से शुभता की वृद्धि होती है। शुभग्रह के लग्न अर्थात् वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, मीन; जिनके शुक्र, बुध, पूर्णचन्द्र और गुरु अधिपति हैं। इस प्रकार शुभलग्न एवं शुभतिथियों से जिनमें रिक्तातिथि न हो। नन्दा, भद्रा, विजया और पूर्णा; ये शुभ तिथियाँ हैं। शुभनक्षत्र अर्थात् दारुण-संज्ञक तथा उग्रसंज्ञक नक्षत्र न हों। आदि पद के ग्रहण से शुभग्रह के दर्शन से शुभलग्न की स्थिति होने पर अथवा शुभनाम के दर्शनादि के द्वारा पूर्ण शुभ-चिह्न के उत्पन्न होने पर शुभफल की वृद्धि होती है। इसके विपरीत होने पर अशुभ कहना चाहिए। इस कथन का अभिप्राय यह है कि पापलग्न हो, पापग्रह स्थित हो, पापग्रह से दृष्ट हो तथा दोषयुक्त तिथि और नक्षत्र हो तब अत्यधिक अशुभ एवं पापचिह्न की वृद्धि होती है। मिश्रित योगों से मिश्रितफल प्राप्त होते हैं। अशुभ लग्नादि के द्वारा अशुभफल तथा शुभलग्नादि से शुभफल मिश्रित-योग से मिश्रित फल की परिकल्पना करें।।१०।।

अधुना दन्तभङ्गस्य विशेषफलमाह–

क्षीरमृष्टफलपुष्पादपेष्वापगातटविघट्टितेन वा।
वाममध्यरदभङ्गखण्डने शत्रुनाशकृदतोऽन्यथा परम्।।११।।

दन्तभङ्ग का विशेष फल कहते हैं–

दुधारू वृक्ष, मीठा फल-फूल वाले वृक्ष को तोड़ते समय अथवा नदी के तट को विघटित करते हुए यदि हाथी के बाँये दाँत का मध्यभाग खण्डित हो जाये, तो शत्रु का विनाश होता है। इसके विपरीत अनिष्टादि फल होते हैं।।११।।

अत्र वामस्यापसव्यस्य रदस्य मध्याद्भङ्गः स्फोटनं खण्डनं भेदनं वा यदि क्षीरवृक्षस्यार्कादेर्घट्टितेन चालनेन भवति। मृष्टफलपादपस्य मधुरफलवृक्षस्य वा चालनेन भवति। पुष्पपादपस्य कुसुमवृक्षस्य वा चालनेनोत्पद्यते, तदा

शत्रुनाशकृच्छत्रुनाशं करोति। आपगातटविघट्टितेन वा आपो गच्छन्ति यासु ता आपगा नद्यस्तासां तटविघट्टितेन तीरचालनेन चोत्पद्यते; तथापि शत्रुनाशं करोति। अतोऽन्यथा परम्, अतोऽस्मादुक्तप्रकाराद् अन्यथा दुष्टवृक्षादिघट्टितेन वामस्य दन्तस्य मूले वाग्रे यो भङ्गः खण्डनं वा तदा शत्रुवृद्धिकृदित्यर्थः। दक्षिणस्य मूलमध्याग्रेष्वपि भङ्गदर्शनाच्छत्रुवृद्धिकृदिति।।११।।

वाम अर्थात् अपसव्य दाँत के मध्य भाग के खण्डन अथवा भेदन हो और वह मदार आदि दुधारू वृक्ष के घर्षण से (उपाटने या तोड़ने से) हो, अथवा मधुर फल वाले वृक्ष के आघात से अथवा फूलदार वृक्ष को तोड़ने से हो तब शत्रु का विनाशकर्ता होता है। जल के मार्ग को आपगा अर्थात् नदी कहते हैं। इस नदी के तट को तोड़ते समय दन्त-भङ्ग हो जाये, तो शत्रु का नाश होता है। इस कथन के विपरीत निषिद्ध वृक्षों को तोड़ने से बाँयें दाँत के मूलभाग में अथवा अग्रभाग में खण्डन हो, तो शत्रु की वृद्धि होती है। दाहिने दाँत के मूलभाग अथवा अग्रभाग में भी टूटन दिखाई पड़े तब शत्रु की वृद्धि होती है।।११।।

अधुना गजेङ्गितमाह—

स्खलितगतिरकस्मात् त्रस्तकर्णोऽतिदीनः
श्वसिति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम्।
द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो
भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक्शकृत्कृत्।।१२।।

हाथी की चेष्टाओं को कहते हैं-

अकस्मात् गतिभङ्ग हो जाये, कान फड़फड़ाने लगे, अत्यन्त दीन (दु:खी) हो जाये, भूमि पर हाथ रखकर (सूँड़) कोमल लम्बी श्वास ले, तत्क्षण अधखुले नेत्रों से अधिक सोता रहे, विपरीत गतिशील हो; इस प्रकार का हाथी भयकारी होता है। अहितकारी पदार्थों का भक्षण करने वाला तथा अनेक बार रक्तसहित मल-त्याग करने वाला, हाथी भी भयप्रदायक होता है।।१२।।

स्खलितगतिरकस्मादिति। अकस्माद्विना निमित्तं स्खलितगतिः, स्खलिता गतिर्यस्य सः। अकस्मात् त्रस्तकर्णो वित्रस्तश्रोत्रः। अतिदीनोऽतीव दैन्यं गतः। श्वसिति मृदु सुदीर्घमिति। पृथिव्यां भूमौ न्यस्तहस्तो विन्यस्तकरो मृदु कृत्वा सुदीर्घं चिरकालं श्वसिति श्वासं विमुञ्चति। द्रुतमुकुलितदृष्टिः, द्रुता चकिता

मुकुलिताऽर्द्धोन्मीलिता वा दृष्टिश्चक्षुषी यस्य सः। स्वप्नशीलो बहुकालं स्वपिति। विलोमो विपरीतगतिः। यत्र प्रेर्यते तत्र न याति। एवंविधो भय-कृद्भयं करोति। तताहितभक्षी, अहितमनिष्टं भक्षयति। अपथ्याशी। नैकशोऽसृक्शकृत्कृत्। नैकशो बहून् वारानसृग्रक्तं शकृत् पुरीषं करोति, तदाऽपि भयकृत्।।१२।।

अकस्मात् अर्थात् बिना किसी कारण के गति में स्खलन हो जाये, अकस्मात् ही कर्ण-विकार उत्पन्न हो, अतीव दैन्य अवस्था को प्राप्त हो, पृथ्वी पर अपना हाथ अर्थात् सूँड़ रखकर उसे मुलायम बनाते हुए अधिक समय तक श्वास छोड़ता रहे, चञ्चल और अधखुले नेत्र हों, जो अधिक समय तक शयन करे, विपरीत गति का अर्थात् जिस दिशा में प्रेरित किया जाये उधर न चले; तो इस प्रकार का हाथी भय उत्पन्न करता है। अहित अर्थात् अनिष्ट वस्तु का (अपथ्य) भक्षण करने वाला, अनेक बार जो रक्त और मल का त्याग करता हो; तब भी वह भयकारी होता है।।१२।।

अधुना शुभचेष्टितमाह—

वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनस्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
र्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्त्रमुन्नाम्य चोच्चैः।
कक्ष्यासन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा
तत्काले वा मदाप्तिर्जयकृदथ रदं वेष्टयन् दक्षिणं च।।१३।।

शुभ-चेष्टाओं को कहते हैं-

वल्मीक, शुष्क वृक्ष, गुल्म (लघु पादप), घास, वृक्ष; इन वस्तुओं को स्वेच्छा से रौंदता हुआ, प्रसन्न नेत्रों वाला, यात्रा की दिशा में शीघ्र गति से अपने मुख को ऊपर ऊठाये हुए यात्रा करे तो शुभ होता है। हौदा कसते समय (पीठ पर आसन बाँधते समय) बार-बार सूँड़ से शीतल जल छोड़े अथवा बादल के समान ध्वनि करे अथवा उस समय मदग्रस्त हो जाये और दाहिने दाँत को वेष्टित करे तब जयकारक होता है।।१३।।

वल्मीकस्थाणुगुल्मेति। एवंविधो गजो जयकृत्, राज्ञो जयं करोति। यदि वल्मीककृतं मृत्स्तूपं मथ्नाति। स्थाणुर्निःशेषशाखाच्छिन्नो वृक्षः शुष्कवृक्षो वा। गुल्म एकमूलः शाखासमूहः। क्षुपं शष्पम्। तरुर्वृक्षः। एतेषामन्यतमं यदि स्वेच्छया आत्मेच्छया मथ्नाति। तथा हृष्टदृष्टिः, हृष्टा दृष्टिर्यस्य सः। यायाद्यात्रानुलोममिति। त्वरितपदगतिः शीघ्रगामी वक्त्रं मुखमुच्चैरुन्नाम्योत्क्षिप्य यात्रानुलोमं यात्रादिशं यायाद् गच्छेत्। तथा कक्ष्यासन्नाहकाले मध्यबन्धनप्रतिवेलायां जनयत्युपादयति

मुहुर्मुहुः पुनः पुनः शीकरं वक्त्रोदककणान् मुञ्चति। बृंहितं घनगर्जितं वा करोति। तत्काले वा मदाप्तिर्मदप्रादुर्भावः। तथा रदं दन्तं दक्षिणं वेष्टयन् करेणालम्बयन् इति।।१३।।

इस प्रकार का हाथी विजय कारक होता है, यदि वह वल्मीक कीड़े द्वारा निर्मित मिट्टी के स्तूप को रौंदता है। स्थाणु अर्थात् शाखा रहित वृक्ष अथवा शुष्क-वृक्ष, गुल्म अर्थात् एक ही मूल में अनेक शाखायें हो, क्षुप अर्थात् घास, वृक्ष; इनमें से किसी को भी यदि वह स्वेच्छा से रौंदता है तथा प्रसन्न दृष्टि वाला हो, यात्रा की दिशा में शीघ्र गमन कर, मुख को ऊँचा उठाकर अभीष्ट दिशा में गमन करे तथा मध्यभाग के बन्धन के समय बार-बार शीकर अर्थात् मुख के जल कणों को, छोड़ता रहे अथवा मेघ के समान गर्जन करे अथवा उसी समय मद उत्पन्न हो जाये तथा दाहिने दाँत को लपेटे तब जयप्रदायक होता है।।१३।।

अन्यदपि चेष्टितमाह–

प्रवेशनं वारिणि वारणस्य
ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य।
ग्राहं गृहोत्वोत्तरणं नृपस्य
तोयात् स्थलं वृद्धिकरं नृभर्तुः।।१४।।

अन्य चेष्टाओं को कहते हैं–

ग्राह (घड़ीयाल) द्वारा यदि हाथी, जल के भीतर ले जाया जाये तब राजा का विनाश होता है। यदि ग्राह को पकड़कर हाथी भूमि पर ला दे, तब राजा के लिए वृद्धिकारक होता है।।१४।।

वारणस्य गजस्य ग्राहेण जलप्राणिना वारिणि जलमध्ये प्रवेशनं नृपस्य राज्ञो नाशाय भवेत् स्यात्। तथा द्विपस्य हस्तिनो जलप्राणिनं नीत्वाऽऽक्रम्य तोयाद् जलात् स्थले उत्तरणं नृभर्तू राज्ञो वृद्धिकरं भवतीति।।१४।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ हस्तिचेष्टितं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।।९३।।

ग्राह (घड़ियाल) जो कि एक जल प्राणी है, उसके द्वारा हाथी जल के मध्यभाग में प्रविष्ट करा दिया जाये तो वह राजा के लिए विनाशकारक होता है। हाथी यदि उस जल-प्राणी ग्राह के ऊपर आक्रमण कर उसको जल के भीतर से खींच कर भूमि पर कर दे तब राजा के लिए वह वृद्धिकारक होता है।।१४।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिताविवृति में शाकुन के अन्तर्गत हस्तिचेष्टित नामक तिरानबेवें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।९३।।

❈ ❈ ❈

।।अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।

वायसविरुताध्यायः

अथ वायसविरुतं व्याख्यायते।

तत्रादावेव प्रविभागप्रदर्शनार्थमाह—

प्राच्यानां दक्षिणतः शुभदाः काकाः करायिका वामाः।
विपरीतमन्यदेशेष्ववधिर्लोकप्रसिद्ध्यैव ।।१।।

वायसविरुताध्याय ९४ की व्याख्या की जाती है।

इनके विभागों को प्रदर्शित करते हैं–

पूर्वदिशा के काक यदि दक्षिणभाग में स्थित हों, तब शुभदायक होते हैं। करायिका वामभाग में शुभ होती है। इसके विपरीत अन्य दिशा में अशुभफल होता है। इन शकुनों की कालावधि लोकपरम्परानुसार जाननी चाहिए।।१।।

प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि भवाः प्राच्याः। तेषां प्राच्यानां दक्षिणतो दक्षिणभागे काका वायसाः शुभदाः। करायिकाः कूटपूर्यः। वामा वामभागस्थास्तेषामेव शुभदाः। अन्यदेशेषु प्राग्देशवर्जितेषु विपरीतं विपर्यस्तम्। काको वामः करायिका दक्षिणेति देशे प्रविभागमाह—अवधिर्लोकप्रसिद्ध्यैव, अवधिः परिच्छित्तिः सा च लोकप्रसिद्ध्यैव लोकप्रसिद्ध्या लोकतो विज्ञेया। यथा इमे जनाः प्राच्याः, इमे दक्षिणाः, इमे पश्चिमाः, इमे उत्तरा इति। आचार्येणापि कूर्मप्रविभागे प्रदर्शिता इति।।१।।

प्राच्य अर्थात् पूर्वदिशा में उत्पन्न पदार्थ को प्राच्य कहते हैं। इस प्राच्यभाग वाले के दक्षिणभाग में वायस अर्थात् कौवे शुभदायक होते हैं। करायिका अर्थात् कूटपूरी वामभाग में स्थित होने पर शुभदायिका होती है। अन्य दिशाओं में अर्थात् उक्त पूर्वादि दिशाओं के विपरीत दिशा में स्थित होने पर जैसाकि कौवे वामभाग में तथा करायिकाएँ दक्षिणभाग में विपरीत (शुभ फल देती हैं। अवधि अर्थात् परिणाम काल वह लोक प्रसिद्धि है, अर्थात् लोक में प्रचलित परम्परा के अनुसार समझना चाहिए। देशों के विभाग भी लोकानुसार जानना चाहिए। जैसा कि ये लोग पूर्वदिशा के हैं, ये लोग पश्चिमदिशा के होते हैं, ये लोग दक्षिणदिशा के हैं तथा ये लोग उत्तरदिशा के हैं; ये सभी विषय लोक से ज्ञात होते हैं। आचार्य ने कूर्माध्याय के अन्तर्गत देशों

के विभाग को प्रदर्शित किया है॥१॥

अथ चेष्टितमाह–

वैशाखे निरुपहते वृक्षे नीडः सुभिक्षशिवदाता।

निन्दितकण्टकिशुष्केष्वसुभिक्षभयानि तद्देशे।।२।।

अब चेष्टाओं को कहते हैं–

वैशाख मास में उत्तम वृक्ष के ऊपर घोंसला होने पर सुभिक्ष तथा कल्याण होता है। निन्दित, कँटीले और सूखे वृक्ष पर घोंसला हो तब अकाल तथा उस देश में भय उत्पन्न होता है॥२॥

वैशाखेमासे निरुपहते निरुपद्रवे वृक्षे तरौ नीड आलयः सुभिक्ष-शिवदाता भवति। सुभिक्षं श्रेयश्च ददाति। निन्दिते कुत्सिते। कण्टकिनि सकण्टके। शुष्के नीरसे वृक्षे। यस्मिन् देशे एतेषु नीडं करोति। तद्देशे असुभिक्षभयानि भवन्ति।।२।।

वैशाखमास में निरुपहत अर्थात् उपद्रवरहित, श्रेष्ठ वृक्ष पर, नीड अर्थात् घोंसला, सुकाल और कल्याणदाता होता है। निन्दित अर्थात् कुत्सित वृक्षों पर जो काँटेदार और नीरस हों, उस पर घोंसला होने से उस स्थान पर अकाल तथा भय उत्पन्न होता है॥२॥

अथ नीडवशेन फलमाह–

नीडे प्राक्शाखायां शरदि भवेत् प्रथमवृष्टिरपरस्याम्।

याम्योत्तरयोर्मध्यात् प्रधानवृष्टिस्तरोरुपरि।।३।।

शिखिदिशि मण्डलवृष्टिर्नैर्ऋत्यां शारदस्य निष्पत्तिः।

परिशेषयोः सुभिक्षं मूषकसम्पच्च वायव्ये।।४।।

नीड के अनुसार फल कहते हैं–

वृक्ष की पूर्वशाखा पर नीड हो तब शरदृतु में प्रथम वृष्टि होती है। पश्चिम दिशा की शाखा पर नीड के होने पर वर्षा ऋतु में वृष्टि होती है। दक्षिणोत्तर दिशा की मध्य शाखा पर नीड होने पर मध्यकाल में वर्षा होती है। वृक्ष के ऊपर नीड के होने से पर्याप्त वर्षा होती है। अग्निकोण की दिशा में नीड होने पर मण्डल वृष्टि तथा नैर्ऋत्य में नीड होने पर शरत्कालीन फसल अच्छी होती है। शेष दिशा अर्थात् ईशान तथा वायव्य में नीड होने पर सुभिक्ष होता है। वायव्यकोण में नीड होने से चूहों की उत्पत्ति अधिक होती है॥३-४॥

नीडे प्राक्शाखायामिति। नीडे आलये तरौ वृक्षे प्राक्शाखायां पूर्वस्यां दिशि

शाखायां कृते शरदि शरत्काले। आश्वयुजकार्तिकयोर्वृष्टिर्वर्षणं भवेत्। अपरस्यां पश्चिमायां दिशि स्थिते नीडे प्रथमवृष्टिर्वर्षासु श्रावणभाद्रपदयोर्वृष्टिर्भवति। याम्योत्तरयोर्दक्षिणसौम्ययोर्दिशि स्थिते नीडे मध्याद् भाद्रपदाश्वयुजयोर्वृष्टिर्भवति। तरोर्वृक्ष-स्योपरि प्रधानशाखायां दिशि स्थिते नीडे प्रधाना प्रधाना श्रेष्ठा चतुर्ष्वपि मासेषु श्रावणादिषु वृष्टिर्भवति।।३।।

नीड अर्थात् पक्षियों का आश्रय, यह यदि वृक्ष की पूर्वदिशा की शाखा पर हो तब शरद्काल में अर्थात् आश्विन और कार्तिक इन दोनों मासों में वर्षा होती है। याम्योत्तर अर्थात् दक्षिण और उत्तरदिशा में नीड अर्थात् घोसला होने पर मध्य अर्थात् भाद्रपद और आश्विन मासों में वर्षा होती है। अपर अर्थात् पश्चिमदिशा में स्थित नीड से वर्षा ऋतु में प्रथमवृष्टि अर्थात् श्रावण और भाद्रपद मासों में वर्षा होती है। वृक्ष के ऊपर मुख्यशाखा में ऊर्ध्वदिशा की ओर नीड हो, तब उत्तम वर्षा अर्थात् श्रावणादि चारों मासों में वर्षा होती है॥३॥

शिखिदिशीति। शिखिदिशि आग्नेयदिशि स्थिते नीडे मण्डलवृष्टिर्भवति। क्वचिद्वृष्टिः क्वचिदवृष्टिः। नैर्ऋत्यां दिशि स्थिते नीडे शारदस्य सस्यस्य निष्पत्तिर्भवति। परिशेषयोर्वायव्यैशान्योः स्थिते नीडे सुभिक्षं भवति वायव्ये कोणे मूषकानां सम्पद् बाहुल्यं भवति।।४।।

शिखि अर्थात् आग्नेयदिशा में स्थित नीड से मण्डल-वृष्टि होती है, अर्थात् कहीं पर वृष्टि और कहीं पर अनावृष्टि होती है। नैर्ऋत्यदिशा में नीड के होने पर शरद्कालीन सस्यों की निष्पत्ति होती है। शेष दिशा वायव्य एवं ईशानदिशा में नीड के होने पर सुभिक्ष होता है। वायव्यदिशा में नीड होने पर मूषकों का आगमन अधिक होता है॥४॥

अथान्यच्चेष्टितमाह–

शरदर्भगुल्मवल्लीधान्यप्रासादगेहनिम्नेषु।
शून्यो भवति स देशश्चौरानावृष्टिरोगार्तः।।५।।

अन्य चेष्टाओं को कहते हैं–

सरपत, कुश, गुल्म, वल्ली, धान्य, देवालय, गृह तथा गड्ढे में यदि कौवे का घोंसला हो, तो वह देश जनशून्य हो जाता है और चोर, अनावृष्टि तथा रोगों द्वारा कष्ट मिलता है॥५॥

शरः प्रसिद्धः। दर्भः प्रसिद्ध एवं। गुल्म एकमूलः शाखासमूहः। वल्ली प्रसिद्धा। धान्य प्रसिद्धम्। प्रासादो देवप्रासादः। गेहं वेश्म। निम्नं श्वभ्रम्। एतेषु

स्थानेषु यत्र काकस्य नीडो भवति स देशः शून्यो भवति। स देशश्चौरानावृष्टिरोगार्तः, चौरैस्तस्करैरनावृष्ट्या अवर्षणेन रोगैर्गदैश्चार्तः पीड़ितो भवति। उक्तं च यात्रायम्–

शस्तो नीडस्तु वैशाखे पादपे निरुपद्रवे।

देशोत्थानं तु वल्मीकचैत्यधान्यगृहादिषु।।इति।।५।।

शर अर्थात् प्रसिद्ध सरपत है। दर्भ को कुश कहते हैं। एक मूल वाला सघन शाखाओं से युक्त गुल्म होता है। वल्ली अर्थात् लता, धान्य (धान), प्रासाद अर्थात् देवालय, गेह अर्थात् घर, निम्न अर्थात् गर्त (गड्ढा); इन स्थानों में यदि कौवे का नीड (घोंसला) होता है, तो वह देश शून्य हो जाता है। वह देश चोरों अर्थात् तस्करों, अवर्षण और रोगों के द्वारा पीड़ित होता है। जैसाकि यात्रा-प्रकरण में कहा गया है–

शान्तस्थान में स्थित वृक्ष के ऊपर, वैशाखमास में निर्मित घोंसला, प्रशस्त होता है। वल्मीक, मन्दिर, धान्य और गृहों पर निर्मित नीड से देश का उत्थान होता है।।५।।

अन्यच्चेष्टितमाह–

द्वित्रिचतुः शावत्वं सुभिक्षदं पञ्चभिर्नृपान्यत्वम्।

अण्डावकिरणमेकाण्डताप्रसूतिश्च न शिवाय।।६।।

अन्य चेष्टाओं को कहते हैं–

दो, तीन अथवा चार बच्चों के होने पर सुभिक्ष होता है। पाँच बच्चों के होने से राजा का परिवर्तन हो जाता है। अण्डे का नष्ट होना तथा एक अण्डे का उत्सर्जन और एक ही प्रसव होना कल्याणकारक नहीं होता है।।६।।

शावः शिशुः। अपत्यमित्यर्थः। द्वित्रिचतुः शावत्वं द्वयोस्त्रयाणां चतुर्णां वा शावकानां भावो द्वित्रिचतुः शावत्वम्। तच्च सुभिक्षदम्। पञ्चभिः शावैर्नृपान्यत्वमन्यस्य राज्यं करोति। द्वितीयो राजा भवतीत्यर्थः। अण्डावकिरणमण्डविक्षेपः। एकाण्डता एकाण्डभावः। अप्रसूतिश्च प्रसवाभावः। एते सर्व एव न शिवाय न श्रेयसे भवन्ति।।६।।

शावक अर्थात् शिशु (चूजा); जब दो, तीन अथवा चार शावकों का जन्म हो, तब सुभिक्ष होता है। पाँच चूजों के उत्पन्न होने से राजा का परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् वर्तमान राजा के स्थान पर कोई दूसरा राजा हो जाता है। अण्डों का अवकिरण

अर्थात् अण्डों का पतन (नष्ट होना), अथवा एक अण्डे का होना तथा प्रसव न होना; ये सभी श्रेयस्कर नहीं होते हैं।।६।।

अथैतेषामेव विशेषमाह–

चौरकवर्णैश्चौराश्चित्रैर्मृत्युः सितैस्तु बह्निभयम्।
विकलैर्दुर्भिक्षभयं काकानां निर्दिशेच्छिशुभिः।।७।।

इनकी विशेषताओं को कहते हैं–

चौरक के वर्ण का काक हो, तो चोरों से भय होता है। विचित्र वर्ण से मृत्यु और श्वेतवर्ण से अग्नि का भय उपस्थित होता है। विकृत अङ्गों वाला कौआ अकाल का भय उपस्थित करता है। शिशु-काक भी अकाल का भय करता है।।७।।

चौरकं गन्धद्रव्यम्। तद्वर्णैः शिशुभिश्चौरास्तस्करा भवन्ति। चित्रैश्चित्रवर्णैर्नानाकारैर्मृत्युर्भवति। सितैः शुक्लैस्तु वह्निभयमग्निभयम्। विकलैर्दुर्भिक्षभयम्। विकलैरङ्गहीनैः काकानां ध्वांक्षाणां शिशुभिर्बालैर्दुर्भिक्षभयं निर्दिशेद् वदेत्। उक्तं च–

काकानां स्रवणे द्वित्रिचतुः शावाः शुभावहाः।
चोरचित्रकश्वेताश्च वर्णाश्चौराग्निमृत्युदाः।।
अण्डावकिरणैर्ध्वांक्ष्या दुर्भिक्षमरकावुभौ।
शावानां विकलत्वे वा निःशावत्वे कृतौ तथा।।इति।।७।।

चौरक एक सुगनिधत द्रव्य है। इसके समान वर्ण वाले शिशुकाक से चोरों अर्थात् तस्करों का भय होता है। चित्रवर्ण अर्थात् अनेक प्रकार के वर्णों से मृत्यु का भय होता है। श्वेतवर्ण से अग्नि का भय तथा अङ्गवैकल्य से दुर्भिक्ष का भय होता है। विकलता अर्थात् विकलाङ्गता से प्रभावित कौवे के द्वारा दुर्भिक्ष का भय कहना चाहिए। जैसा कि कहा गया है–

कौवे का दो, तीन अथवा चार प्रसव शुभकारक होता है। चोर-वर्ण, चित्रवर्ण और श्वेतवर्ण से क्रमशः चोर, अग्नि और मृत्यु की प्राप्ति होती है। कौवे के अण्डे का नष्ट-भ्रष्ट होना दुर्भिक्ष और मृत्यु को देता है। काक-शिशु की विकलाङ्गता अथवा प्रसवहीनता से भी यही फल प्राप्त होता है।।७।।

विशेष व्याख्या–चोर अथवा चोरक नामक सुगन्धित पौधा हरितवर्ण का होता है। सुश्रुत, कल्पस्थान तथा राजनिर्घण्टु में यह वरुण, कुण्ठ, सर्वगन्धा और ससप्रला नाम से वर्णित है।

अन्यदप्याह–

अनिमित्तसंहतैर्ग्राममध्यगैः क्षुद्भयं प्रविरुवद्भिः।
रोधश्चक्राकारैरभिघातो वर्गवर्गस्थैः।।८।।

और भी कहते हैं–

यदि अकारण ही गाँव के बीच में कौवों का झुण्ड हो जाये, और काँव-काँव करने लगे, तो भुखमरी होती है। वृत्ताकार में कौवे बैठे हों, तो उस नगर का अवरोध होता है। पृथक्-पृथक् अनेक झुण्डों में कौवों के बैठने से उस स्थान पर आक्रमण होता है।।८।।

अनिमित्तमकारणं संहतैः समेतैर्ग्राममध्यगैर्ग्राममध्यस्थितैर्वायसैः प्रविरुवद्भिर्वाशितैः क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं भवति। चक्राकारैश्चक्रवत्यारिमण्डल्येन स्थितै रोधः पुररोधो भवति। वर्गवर्गस्थैरकारणसमेतैर्बहुभिः समूहैः स्थितैरभिघात उपद्रवो भवति। उक्तं च–

अकार्यसंहतैर्भेदो रोधश्चक्राकृतिस्थितैः।
वर्गगैश्चाभिघातः स्याद् रिपुवृद्धिश्च निर्भयैः।।इति।।८।।

किसी निमित्त अर्थात् कारण के बिना ही यदि समूहबद्ध कौवें गाँव के बीच में स्थित होकर कर्कश ध्वनि करें, तो क्षुधा का भय अर्थात् दुर्भिक्ष होता है। चक्राकार अर्थात् परिमण्डल (वृत्ताकार) में स्थित कौवों से पुर का अवरोध होता है। अकारण ही समवेत होकर अनेक समूहों में कौवें बैठे हों, तब अभिघात अर्थात् उपद्रव (आक्रमण) होता है। जैसाकि कहा गया है–

अकारण समूहबद्ध होने से परस्पर-विभेद तथा गोलाकार में बैठने से पुरावरोध एवं विभिन्न झुण्डों में बैठने से ग्राम पर आक्रमण और निर्भय होने पर शत्रु की वृद्धि होती है।।८।।

अन्यदप्याह–

अभयाश्च तुण्डपक्षश्चरणविघातैर्जनानभिभवन्तः।
कुर्वन्ति शत्रुवृद्धिं निशि विचरन्तो जनविनाशम्।।९।।

और भी कहते हैं–

निर्भीक होकर कौवें, यदि चोंच, पंख और पञ्जों के आघात से लोगों को पीड़ित करते हैं, तो शत्रु की वृद्धि होती है। तथा रात्रिकाल में यदि कौवें उड़ते हों, तब जनता का विनाश होता है।।९।।

अभया भयरहिताः। तुण्डैश्चञ्चवग्रैः। पक्षैरङ्गरुहैः। चरणविघातैः पादप्रहारैः। जनान् लोकानभिभवन्त पराभवन्त शत्रुवृद्धिं रिपुवृद्धिं कुर्वन्ति। निशि रात्रौ विचरन्तो जनानां लोकानां विनाशं कुर्वन्ति।।९।।

अभय अर्थात् भयरहित होकर तुण्ड अर्थात् चञ्चु के अग्रभाग से, पक्ष अर्थात् पंखों से तथा चरण अर्थात् पञ्जों के प्रहार से लोगों को पराभूत करें, अर्थात् उत्पीड़ित करें, तब शत्रु की वृद्धि होती है। रात्रि में कौवें विचरण करें, तब लोगों का विनाश होता है॥९॥

अन्यदप्याह–

सव्येन खे भ्रमद्भिः स्वभयं विपरीतमण्डलैश्च परात्।
अत्याकुलं भ्रमद्भिर्वातोद्भ्रामो भवति काकैः॥१०॥

और भी कहते हैं–

सव्यक्रम से आकाश में घूमते हुये कौवों के द्वारा स्वजनों से भय होता है। इसके विपरीत अपसव्यक्रम से घूमते रहे, तो शत्रुपक्ष से भय होता है। अत्यन्त व्याकुल होकर यदि कौवें घूमते हों, तब वायुचक्र से विनाश होता है॥१०॥

सव्येन प्रादक्षिण्येन खे आकाशे भ्रमद्भिः काकैर्वायसैः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरा इत्यनेन क्रमेण भ्रमद्भिः स्वेभ्य आत्मीयेभ्यो भयं भवति। विपरीतमण्डलैः पूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिणा इत्यनेन क्रमेण भ्रमद्भिः पराच्छत्रोर्भयं भवति। अत्याकुलं सोद्यमं भ्रमद्भिः काकैर्वातोद्भ्रामो भवत्यनवस्थितिरित्यर्थः। उक्तं च–

पुरसैन्योपरि व्योम्नि व्याकुलैरनिलाद्भयम्।
सव्यमण्डलगैः स्वोत्थमपसव्यैः पराद्भयम्॥इति॥१०॥

सव्य अर्थात् प्रदक्षिणाक्रम से आकाश में घूमते हुए कौवों के द्वारा अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशा के क्रम से घूमते हुये कौवों के द्वारा आत्मीयजनों से भय होता है। विपरीत क्रम अर्थात् पूर्व, उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशा (अपसव्य) के क्रम से घूमते हुए कौवों के द्वारा शत्रु से भय होता है। अत्यन्त व्याकुल अर्थात् व्यथित होकर भ्रमण करने वाले कौवों से वातचक्र का भय अर्थात् अव्यवस्था उत्पन्न होती है। जैसा कि कहा गया है–

नगर और सेना के ऊपर व्याकुल होकर घूमते हुए कौवों से अग्नि का भय होता है। सव्यक्रम से चक्कर लगावें तो स्वपक्ष से तथा अपसव्यक्रम से भ्रमण करें, तब पर-(शत्रु) पक्ष से भय होता है॥१०॥

अन्यदप्याह–

ऊर्ध्वमुखाश्चलपक्षाः पथि भयदाः क्षुद्भयाय धान्यमुषः।
सेनाङ्गस्था युद्धं परिमोषं चान्यभृतपक्षाः॥११॥

और भी कहते हैं–

ऊपर मुख किए हुए चञ्चल पंखों वाले कौवें मार्ग में भय उत्पन्न करते हैं। अन्नों को चुराकर उड़ने वाले कौवें भुखमरी को सूचित करते हैं। सैन्य-सामग्री पर कौवों के बैठने से युद्ध का भय तथा कोयल के समान काले कौवों से चोरी का भय होता है।।११।।

ऊर्ध्वामुखा ऊर्ध्ववदनाः। चलपक्षाः चलिताङ्गरुहाः। पथि भयदाः, अध्वनि भयं ददति। धान्यमुषो धान्यं चोरयन्तः क्षुद्भयाय दुर्भिक्षाय भवन्ति। सेनाङ्गानि पर्याणखलीनप्रभृतीनि तेषु स्थिता युद्धं संग्रामं सूचयन्ति। अन्यभृतः कोकिलः। अन्यभृतस्येव पक्षा येषामतिकृष्णपक्षास्ते परिमोषं चौरभयं कुर्वन्ति। उक्तं च–

युद्धं सेनाङ्गसंस्थेषु मोषकृत् स्वविलेखने।
चरन्निशि विनाशाय दुर्भिक्षं चान्नमोषकृत्।।इति।।११।।

ऊर्ध्वमुख तथा चञ्चल पंखों वाले कौवे मार्ग में भय प्रदान करते हैं। धान्यमुष अर्थात् धान को चुराने वाले कौवे दुर्भिक्ष का कारण होते हैं। सेना के अङ्ग अर्थात् लगाम, रथादि पर स्थित कौवों से युद्ध होने की सम्भावना होती है। अन्यभृत अर्थात् कोयल के समान जिनके अत्यन्त काले पंख हों, ऐसे कौवों से चोर का भय होता है। जैसा कि कहा गया है–

सेना के उपकरणों पर कौवों के स्थित होने से युद्ध तथा अपनी चोंच से भूमिं पर रेखांकन करे तो चोर का भय तथा रात्रि में उसके विचरण करने से विनाश तथा अन्नों के चुराये जाने पर दुर्भिक्ष होता है।।११।।

अन्यदप्याह–

भस्मास्थिकेशपत्राणि विन्यसन् पतिवधाय शय्यायाम्।
मणिकुसुमाद्यवहनने सुतस्य जन्माप्यथाङ्गनायाश्च।।१२।।

और भी कहते हैं–

भस्म, अस्थि, केश और पत्तों को कौवा शय्या पर रखें, तो स्वामी का वध होता है। मणि, पुष्प इत्यादि को शय्या पर बिखेरने वाला कौवा पुत्र का जन्म सूचित करता है। तथा अन्य पदार्थों को शय्या पर रखे, तो कन्या सन्तति का जन्म होता है।।१२।।

शय्यायामास्तरणे। भस्म। अस्थि। केशा मूर्धजाः। पत्रं पर्णम्। एतानि विन्यसन् विक्षपन् पतिवधाय भवन्ति। शय्यायाः यः पतिः स्वामी तस्य। उक्तं च–

तृणभस्मास्थिकेशाश्च शयने स्वामिमृत्युदाः।

मणिकुसुमाद्यवहनन इति। मणिना रत्नेन। कुसुमेन पुष्पेण। आदिग्रहणात् फलेन। यदि शय्यायामवहननं ताडनं करोति, तदा सुतस्य पुत्रस्य जन्म भवति। अन्यथाऽनेन प्रकारेण मणिकुसुमानि विर्जयित्वा तृणकाष्ठादिनाऽवहननं करोति तदाङ्गनायाः स्त्रिया जन्म भवति।।१२।।

भस्म, अस्थि (हड्डी), केश, पत्र अर्थात् पत्ते; इनको फेंकने वाला कौआ पति के वध का सूचक होता है। यहाँ पर उस शय्या के स्वामी के लिए यह फल समझना चाहिए। जैसा कि गया है–

तृण, भस्म, अस्थि और केशों को शय्या पर कौवा फेंकता है, तब स्वामी के लिए मृत्युदायक होता है।

मणि अर्थात् रत्न, कुसुम अर्थात् पुष्प, "आदि" पद से फल का भी ग्रहण करना चाहिए। इनसे यदि शय्या पर अवहनन अर्थात् ताडन करता है, तब पुत्र का जन्म होता है। अन्यथा मणि, कुसुमादि को छोड़कर तृण और काष्ठादि के द्वारा अवहनन (ताडन) करता है, तब कन्या-सन्तति का जन्म होता है।।१२।।

अन्यदप्याह–

पूर्णाननेऽर्थलाभः सिकताधान्यार्द्रमृतकुसुमपूर्वैः।
भयदो जनसंवासाद्यदि भाण्डान्यपनयेत् काकः।।१३।।

और भी कहते हैं–

कौवा यदि बालू, धान्य (अन्न), गीली मिट्टी अथवा पुष्प को चोंच में भरकर ले जा रहा हो, तब धनलाभ होता है। यदि कौवा जन-निवास से किसी पात्र को लेकर उड़े, तब भयदायक होता है।।१३।।

सिकता वालुका। धान्यं प्रसिद्धम्। आर्द्रमृत् सरसा मृत्तिका। कुसुमं पुष्पम्। पूर्वग्रहणात् फलं शाद्वलं च। एतैः पूर्णानने परिपूरितवदने काकेऽर्थलाभो भवति। तथा काको जनसंवासाद् जननिकटाद्यदि भाण्डान्यपनयेदपनयति तदा भयदो भयं ददाति।।१३।।

सिकता अर्थात् बालू, धान्य अर्थात् प्रसिद्ध अन्न, सरसमिट्टी और पुष्प तथा फल अपनी चोंच में भरा हुआ हो, तो अर्थ-लाभ होता है। यदि कौवा व्यक्ति के निकट से पात्रों को ले जाये, तब भयप्रदान करता है।।१३।।

अन्यदप्याह–

वाहनशस्त्रोपानच्छत्रच्छायाङ्गकुट्टने मरणम्।
तत्पूजायां पूजा विष्ठाकरणेऽन्नसम्प्राप्तिः।।१४।।

और भी कहते हैं–

यदि कौवा वाहन, शस्त्र, जूता, छाता और शरीर पर चोंच से प्रहार करें, तब मरण होता है। इन वस्तुओं की विधि-पूर्वक पूजा की जानी चाहिए। कौवा इन वस्तुओं पर विष्ठा करे, तब अन्न की प्राप्ति होती है॥१४॥

वाहनं यानम्। शस्त्रं खड्गादि। उपानत् प्रसिद्धा। छत्रच्छाया आतपत्रच्छाया। अङ्गं शरीरम्। एषां कुट्टने ताडने मरणं भवति। तत्पूजायां तेषामेव वाहनादीनां पूजायां पुष्पादिपूजनेन पूजा भवति। एषामेव विष्ठाकरणे पुरीषकरणे अन्नसम्प्राप्तिर्भोजनलाभो भवति। उक्तं च–

उपानच्छस्त्रयानाङ्गच्छत्रच्छायावकुट्टने।
मृत्युं तत्स्वामिनो ब्रूयात् पूजा स्यात् तत्प्रपूजने।।इति।।१४।।

वाहन अर्थात् यान, तलवार आदि शस्त्र, उपानत् अर्थात् जूता, आतपत्र अर्थात् छाता, शरीर के अङ्ग, इनके कुट्टन अर्थात् इन पर प्रहार से मरण होता है। इन वाहनादिकों का पुष्पादि से पूजन करने पर इनकी पूजा हो जाती है। इनके ऊपर कौवा के विष्ठा करने से अन्न की प्राप्ति अर्थात् भोजन की प्राप्ति होती है। जैसा कि कहा गया है–

जूता, छाता, वाहन और शरीरावयव तथा शस्त्रों पर कौवे द्वारा प्रहार किये जाने से उसके स्वामी की मृत्यु होती है। इनका पूजन करने से ये सभी पूजित हो जाते हैं॥१४॥

अन्यदप्याह–

यद्द्रव्यमुपनयेत् तस्य लब्धिरपहरति चेत् प्रणाशः स्यात्।
पीतद्रव्यैः कनकं वस्त्रं कार्पासिकैः सितै रूप्यम्।।१५।।

और भी कहते हैं–

कौआ जिस वस्तु को लेकर आता है, उस वस्तु का लाभ तथा जिस वस्तु को उठाकर ले जाता है, उस वस्तु की हानि होती है। पीले रंग की वस्तु से तथा स्वर्ण, कपास रुई आदि से वस्त्र और श्वेतवस्तु से चाँदी का लाभ समझें॥१५॥

काको यद्द्रव्यमुपनयेत् समीपे आनयेत् तस्य द्रव्यस्य लब्धिर्भवति। चेद्यदि यद्द्रव्यमपहरति तदा तद्द्रव्यस्य प्रणाशो नाशो भवति। पीतद्रव्यैः कनकं सुवर्णं लभ्यते, अपहृते तदेव नश्यति। एवं सर्वत्र। कार्पासिकैर्वस्त्रमम्बरम्। सितैः

श्वेतवर्णे रूप्यम्। उक्तं च–

हरेदुपनयेद् वापि यद्द्रव्यं वायसोऽग्रतः।

तन्नाशलब्ध्यौ[1] विज्ञेयौ हेम पीते विनिर्दिशेत्।।इति।।१५।।

कौआ जिस पदार्थ को समीप में लाये उस पदार्थ की प्राप्ति होती है। वह जिस पदार्थ का अपहरण कर ले जाता है, उस पदार्थ का "प्रणाश" अर्थात् विनाश होता है। पीलेवर्ण के पदार्थ से सुवर्ण मिलता है। हरण करे तो वही पदार्थ (सुवर्ण) नष्ट हो जाता है। यही क्रम अन्य सभी पदार्थों के लिए भी समझना चाहिए। कपास सम्बन्धी पदार्थ से वस्त्र तथा श्वेत वर्ण के पदार्थ से रूप्य अर्थात् चाँदी जानना चाहिए। जैसा कि कहा गया है–

व्यक्ति के आगे से कौआ जिस वस्तु का हरण करे अथवा लाकर रखे, उस वस्तु का क्रमानुसार विनाश अथवा लाभ समझें। पीली वस्तु से स्वर्ण का ग्रहण करना चाहिए।।१५।।

व्यक्ति के आगे से कौआ जिस वस्तु का हरण करे अथवा लाकर रखे, उस वस्तु का क्रमानुसार विनाश अथवा लाभ समझें। पीली वस्तु से स्वर्ण का ग्रहण करना चाहिए।।१५।।

अन्यदप्याह–

सक्षीरार्जुनवञ्जुलकूलद्वयपुलिनगा रुवन्तश्च।

प्रावृषि वृष्टिं दुर्दिनमनृतौ स्नाताश्च पांशुजलैः।।१६।।

दूध वाले वृक्ष, बेंत-वृक्ष, अशोक-वृक्ष, नदी के दोनों तटों और द्वीप पर बैठकर शब्द करता हुआ कौआ वर्षाऋतु में वृष्टि का सूचक है। वर्षाऋतु से भिन्न काल में यह अनावृष्टि का कारक है। इसी प्रकार वर्षाऋतु में धूलि अथवा जल में स्नान करे तो वर्षा होती है। अन्यथा भिन्न ऋतु में दुर्दिन आने का लक्षण होता है।।१६।।

सह क्षीरेण वर्तते यो वृक्षः स सक्षीरः, अर्जुनः। वञ्जुलः, एतौ वृक्षविशेषौ। एतेषु तथा कूलद्वयपुलिनगा नद्याः कूलद्वये यौ पुलिनौ तयोर्गताः। रुवन्तश्च वाशमानाः। प्रावृषि वर्षासु वृष्टिं कुर्वन्ति। अनृतावन्यस्मिन् ऋतौ वर्षावर्जिते दुर्दिनं दुष्टं दिनं कुर्वन्ति। तथा पांसुभिर्जलैश्चाद्भिः स्नाताः प्रावृषि वृष्टिं कुर्वन्ति। अन्यस्मिन् ऋतौ दुर्दिनमेवेति।।१६।।

दूध (क्षीर) सहित वृक्ष को सक्षीर कहते कहते हैं। अर्जुन और बेंत (वञ्जुल) वृक्ष

---

१. तन्नाशलब्धी विज्ञेये इति गः पु. पाठः।

प्रसिद्ध हैं। इन वृक्षों पर तथा नदी के दोनों तट पर पुलिन अर्थात् बालू का स्थल हो, उन पर शब्द करता हुआ वर्षाऋतु में वर्षा का कारण होता है। वर्षा से भिन्न ऋतु में दुर्दिन अर्थात् कष्टकारी समय लाता है। पांशु अर्थात् धूलि और जल से स्नान करता हुआ वर्षाऋतु में वर्षा कराता है और अन्य ऋतुओं में दुर्दिन ही लाता है॥१६॥

विशेष व्याख्या–

(१) वञ्जुल का अर्थ नदी अथवा तालाब के समीप होने वाला बेंत है जिसकी छड़ी तथा कुर्सी आदि बनती है। इसका अंग्रेजी नाम Willow विलो है। भाव-प्रकाशनिघण्टु में कहा गया है–

"वेतसो नम्रक: प्रोक्तो वानीरो वञ्जुलस्तथा।
अभ्रपुष्पश्च विदुलो रथ: शीतश्च कीर्तित:॥"

(२) पुलिन शब्द का अर्थ जल से उभर कर जो भू-भाग नदी में दृश्य होता है, जिसको द्वीप अथवा टापू कहा जाता है, यही है। अमरकोश ११०.९ में कहा गया है–"तोयोत्थितं तत्पुलिनम्"। त्रिकाण्डशेष में "पुलिनं द्वीपमुच्यते।" अर्थात् पुलिन का अर्थ द्वीप है।

(३) पांशु शब्द का अर्थ धूल होता है। अमरकोश २.८.९८ में कहा गया है– "रेणुर्द्वयो: स्त्रियां धूलि: पांशुर्ना न द्वयो रज:।" इस प्रकार रेणु, धूलि, पांशु और रज शब्द पर्यायवाची हैं। पांशु और पांसु दोनों समानार्थक होते हैं।

अन्यदप्याह–

दारुणनादस्तरुकोटरोपगो वायसो महाभयदः।
सलिलमवलोक्य विरुवन् वृष्टिकरोऽब्दानुरावी च॥१७॥

और भी कहते हैं–

वृक्ष के भीतर खोखले भाग (कोटर) में बैठकर यदि कौआ कठोर शब्द करे तो अत्यधिक भय देता है। जल को देखकर शब्द करे तो वर्षा होती है और मेघ के आने पर बोलने लगे तब भी वर्षा का आगमन होता है॥१७॥

वायसः काकस्तरुकोटरे वृक्षगर्भे स्थितः। कीदृशः? दारुणनादो दारुणः क्रूरो नादः शब्दो यस्य स महाभयदो महद्भयं ददाति। सलिलं जल-मवलोक्य दृष्ट्वा विरुवन् क्रोशन् वृष्टिकरः। अब्दस्य मेघस्यानुरावी पश्चाद्रौति तदा वृष्टिकर एव॥१७॥

वायस अर्थात् कौआ वृक्ष के गर्भ (कोटर) में स्थित होकर शब्द करे। कैसा

शब्द? दारुण अर्थात् क्रूर (कर्कश) शब्द करे, तब वह महान भय देता है। जल को देखकर बोलता हुआ वह वर्षा का कारक होता है। अब्द अर्थात् बादल का अनुरावी अर्थात् मेघ-गर्जना के तत्काल बाद शब्द करने वाला कौवा भी वर्षाकारक होता है।।१७।।

अन्यदप्याह—

दीप्तोद्विग्नो विटपे विकुट्टयन् वह्निकृद्विधुतपक्षः।
रक्तद्रव्यं दग्धं तृणकाष्ठं वा गृहे विदधत्।।१८।।

और भी कहते हैं—

वृक्ष पर दीप्त तथा उद्विग्न और पंख फड़फड़ता हुआ अपने शरीर को नोचता हो, तब अग्निदाह होता है। अथवा लालवस्तु और जले हुए तृण और लकड़ी को घर में रखता है, तब भी अग्निदाह ही होता है।।१८।।

विटपे लतावितानेदीप्तोद्विग्नो दीप्तः सूर्याभिमुख उद्विग्नो दुःखितो विकुट्टयन् चञ्च्या भिन्दम्। विधुतपक्षः चलत्पक्षः। वह्निकृदग्निभयं करोति। गृहे वेश्मनि रक्तद्रव्यं रक्तवर्णद्रव्यं दग्धं तृणं काष्टं वा विदधत् कुर्वद्वह्नि-कृदेव।।१८।।

उक्त च—

रक्तद्रव्यं प्रदग्धं च धान्यं गेहेऽग्निदः स्मृतः।इति।।१८।।

विटप अर्थात् लतावितान पर दीप्त अर्थात् सूर्य के सम्मुख और उद्विग्न अर्थात् दुःखित होकर विकुट्ट अर्थात् चोंच मारता हुआ, विधुतपक्ष अर्थात् पंख फड़फड़ाता है, तब वह अग्निदाह का कारक होता है। घर में लालवर्ण का पदार्थ तथा जलता हुआ तिनका अथवा लकड़ी लाकर रखता है, तो अग्निदाह ही करता है। जैसा कि कहा गया है—

लाल रंग की वस्तु और जलते हुए अन्नकण को लेकर घर में आने पर अग्निदाह का फल कहा गया है।।१८।।

अथ दिक्फलमाह—

ऐन्द्र्यादिदिगवलोकी सूर्याभिमुखो रुवन् गृहे गृहिणः।
राजभयचोरबन्धनकलहाः स्युः पशुभयं चेति।।१९।।

अब दिशाओं के फल कहते हैं—

सूर्याभिमुख होकर पूर्वादिदिशाओं में शब्द करने पर गृहपति को क्रमशः

राजकीय-भय, चोर-भय, बन्धन तथा विवाद और पशुभय होता है॥१९॥

ऐन्द्र्यादिदिगवलोकीति। ऐन्द्र्यादीनां पूर्वादीनां दिशामवलोकयति तच्छीलः। सूर्याभिमुखोऽर्कसम्मुखो गृहे वेश्मनि स्थितो रुवन् शब्दं कुर्वन् गृहिणो गृहस्वामिनो राजभयादीन् दोषान् करोति। ऐन्द्रीं दिशं दीप्तमवलोकयन् निरीक्षयन् गृहे स्थितो विरौति तदा गृहिणो राजभयं करोति। एवमाग्नेय्यां दक्षिणस्यां चौरभयम्। एवं नैर्ऋत्यां पश्चिमायां बन्धनभयं भवति। एवमेव वायव्यामुत्तरस्यां कलहः, पशूनां चतुष्पदानां भयं च। एवमेवैशान्यामिति च। अथवा विदिक्षु सर्वासु पशुभयमिति।।१९।।

ऐन्द्री आदि अर्थात् पूर्वादिदिशाओं को देखता हुआ, सूर्य के सम्मुख होकर घर पर बैठा हुआ कौआ यदि शब्द कर रहा हो, तब गृह-स्वामी को राजभय आदि दोषों का आनयन करता है। दीप्त पूर्वदिशा को देखता हुआ भवन पर स्थित हो, तब गृहपति को राजभय करता है। इसी प्रकार अग्निकोण एवं दक्षिणदिशा में चोरी का भय, नैर्ऋत्यकोण और पश्चिमदिशा में बन्धन (कारागार) का भय और वायुकोण और उत्तरदिशा में कलह का तथा पशुभय होता है। इसी प्रकार ईशानकोण का भी फल (राजभय) समझना चाहिए। अथवा सभी कोणों में पशु भय ही समझें॥१९॥

एवं दीप्तासु दिग्विदिक्षु फलमभिधायाधुना शान्तामाह—

शान्तामैन्द्रीमवलोकयन् रुयाद्राजपुरुषमित्राप्तिः।
भवति च सुवर्णलब्धिः शाल्यन्नगुडाशनाप्तिश्च।।२०।।

दीप्तदिशा-फल के अनन्तर शान्तादिशा का फल—

यदि कौआ शान्ता पूर्वदिशा की ओर देखता हुआ शब्द करे, तब राजपुरुष और मित्र से मिलन होता है। साथ ही स्वर्ण-प्राप्ति, धान्य और मधुर (गुड़) पदार्थ का भोजन मिलता है॥२०॥

शान्तामैन्द्रीं पूर्वां दिशमवलोकयन्नीक्षन् रुयाच्छब्दं करोति तदा राजपुरुषस्य प्राप्तिर्मित्रप्राप्तिश्च भवति। अथवा राजपुरुष एवं मित्रं तस्य प्राप्तिरागमः। तथा सुवर्णस्य काञ्चनस्य लब्धिर्लाभः। शाल्यन्नस्य शालिभक्तस्य गुडाशनस्य गुड-संयुक्तस्य च भोजनस्याप्तिः प्राप्तिर्भवति।।२०।।

शान्ता ऐन्द्री अर्थात् पूर्वदिशा को अवलोकित कर शब्द करे, तब राजपुरुष से मिलन और मित्र से भी मिलन होता है। साथ ही सुवर्ण की प्राप्ति, शाल्यन्न अर्थात् चावल का भात और गुड़ का भोजन मिलता है॥२०॥

अन्यदप्याह—

आग्नेय्यामनलाजीविकयुवतिप्रवरधातुलाभश्च।
याम्ये माषकुलूत्थाभोज्यं गान्धर्विकैर्योगः।।२१।।

और भी कहते हैं–

शान्त अग्निकोण में शब्द होने पर अग्निजीवी, युवती, श्रेष्ठजन और धातु का लाभ होता है। दक्षिणदिशा में उड़द, कुलथी आदि निन्द्य भोज्यपदार्थ की प्राप्ति तथा नृत्य-गीत की मण्डली से मिलन होता है॥२१॥

आग्नेय्यां शान्तां दिशमवलोकयन् यदा रौति तदाऽनलजीविकोऽग्न्युपजीविकः सुवर्णकारादिकः। युवती स्त्री। प्रवरः प्रकृष्टः। धातुः सुवर्णादिकः। एतेषां लाभश्च भवति। याम्ये दक्षिणस्यां दिशि शान्तामवलोकयन् माषकुलूत्थाभोज्यं भवति। गान्धर्विकैर्गेयप्रवीणैश्च सह योगः संयोगो भवति।।२१।।

अग्निकोण की शान्त-दिशा को देखता हुआ यदि काक शब्द करता है, तब स्वर्णकार आदि अग्निजीवी, युवतीस्त्री, प्रमुखव्यक्ति, स्वर्णादि धातु का लाभ होता है। शान्त दक्षिणदिशा को देखता हुआ शब्द करे, तब उड़द, कुलथी आदि अभोज्य पदार्थ मिलता है और गान्धर्विक अर्थात् संगीत विशेषज्ञों के साथ मिलन होता है॥२१॥

अन्यदप्याह—

नैर्ऋत्यां दूताश्वोपकरणदधितैलपललभोज्याप्तिः।
वारुण्यां मांससुरासवधान्यसमुद्ररत्नाप्तिः।।२२।।

और भी कहते हैं–

नैर्ऋत्यकोण में कौआ शब्द करे तब दूत, अश्व के उपकरण, दही, तेल, तिल और भोज्य पदार्थ की प्राप्ति होती है। पश्चिमदिशा में शब्द होने पर माँस, मद्य, आसव, धान्य और समुद्र के रत्नों का लाभ होता है॥२२॥

नैर्ऋत्यां दिशि स्थितः काकः। शान्ता च या दिशा तामवलोकयन् रुयात् तदा दूतस्य। अश्वस्य तुरगस्य। उपकरणानामुपकरणभाण्डानाम्। उपयुज्यते तत् तदुपकरणम्। अश्वोपयोगिभाण्डानाम्। दधि दुग्धविकारः। तैलं तिलतैलम्। पललमर्धपीडितास्तिलाः। भोज्यमशनम्। एषां प्राप्तिर्लाभो भवति। वारुण्यां पश्चिमायां शान्तमवलोकयन् रुयात्। मांसमामिषम्। सुरा वारुणी, आसवं पानम्। अथवा सुरैरासवम्। धान्यं शालयः। समुद्ररत्नानां समुद्रजातानां रत्नानां प्राप्तिर्भवति।।२२।।

नैर्ऋत्य दिशा में स्थित काक जो शान्तदिशा हो, उसको देखता हुआ शब्द करे, तब उपकरण का अर्थात् तत्संबंधी साधन (पात्रों) का अर्थात् अश्वोपयोगी पात्रों का, दही अर्थात् दूध का विकार, तेल अर्थात् तिल का तेल, पलल अर्थात् आधा कूटा हुआ तिल, भोज्य अर्थात् भोजन, इन सभी का लाभ होता है। उपयोग में आने वाली वस्तु को उपकरण कहा जाता है। वरुण अर्थात् पश्चिमदिशा में जो कि शान्त हो, उसको देखता हुआ शब्द करे, तब मांस अर्थात् आमिष, सुरा अर्थात् वारुणी (मद्य), आसव अर्थात् पेय पदार्थ अथवा देवों द्वारा पान किया जाने वाला पेय, धान्य अर्थात् धान के चावल और समुद्र में उत्पन्न होने वाले रत्नों का लाभ होता है॥२२॥

अन्यदप्याह—

मारुत्यां शस्त्रायुधसरोजवल्लीफलाशनाप्तिश्च।
सौम्यायां परमान्नाशनं तुरङ्गाम्बरप्राप्तिः।।२३।।

और भी कहते हैं—

वायव्यकोण में शस्त्र, अस्त्र, कमल, वल्ली (लता) में लगने वाले फल और भोजन की प्राप्ति होती है। उत्तरदिशा में परमान्न अर्थात् खीर का भोजन, घोड़ा और वस्त्र की प्राप्ति होती है॥२३॥

मारुत्यां वायव्यां शान्तामवलोकयन् ब्रूयात्। शस्त्रं लोहम्। आयुधं खड्गादि। सरोजं पद्मम्। वल्लीफलानि कूष्माण्डादीनि। अशनं भोजनम्। एतेषामाप्तिः प्राप्तिर्भवति। सौम्यायामुत्तरस्यां परमान्नाशनं परमान्नं पायसं तदेवाशनम्। तुरङ्गोऽश्वः। अम्बरं वस्त्रम्। एतेषां च प्राप्तिर्भवति।।२३।।

शान्त वायव्यकोण को देखता हुआ कौआ बोलता है, तब अस्त्र अर्थात् लौहास्त्र, आयुध अर्थात् खड्ग आदि, सरोज (कमल-पुष्प), वल्ली-फल अर्थात् कुम्हड़ा, कद्दू आदि, भोजन, इन सभी की प्राप्ति होती है। सौम्य अर्थात् उत्तरदिशा में परमान्न अर्थात् खीर का अशन (भोजन), तुरङ्ग अर्थात् घोड़ा और अम्बर अर्थात् वस्त्र की प्राप्ति होती है॥२३॥

अन्यदप्याह—

ऐशान्यां सम्प्राप्तिर्घृतपूर्णानां भवेदनडुहश्च।
एवं फलं गृहपतेर्गृहपृष्ठसमाश्रिते भवति।।२४।।

और भी कहते हैं—

ईशानकोण में कौआ के शब्द होने से घृतपूर्ण पदार्थ और बैल की प्राप्ति होती है। घर की छत पर बैठा शब्द करे तब भी गृहस्वामी को यही फल होता है॥२४॥

ऐशान्यां दिशि शान्तायां ब्रूयात् घृतपूर्णानां भक्ष्यविशेषणामनडुहो वृषभस्य च सम्प्राप्तिर्लाभो भवेत् स्यात्। एवमनेन प्रकारेण गृहस्य वेश्मनः पृष्ठे समाश्रिते काके गृहपतेर्गृहस्वामिनः फलं भवति॥२४॥

ईशानदिशा शान्त हो और कौआ इसी दिशा में बोले तब घृतपक्व विशिष्ट भोजन तथा अनडुह अर्थात् बैल लाभ होता है। इसी प्रकार से घर के पृष्ठ (छत) पर कौए के स्थित होने पर भी गृहस्वामी को फल मिलता है॥२४॥

गमने कर्णसमश्चेत् क्षेमाय न कार्यसिद्धये भवति।
अभिमुखमुपैति यातुर्विरुवन् विनिवर्तयेद्यात्राम्॥२५॥

यात्रा-काल में कान के समीप कौआ बोले तो शुभकारक है, परन्तु कार्य की सिद्धि नहीं होती है। यदि वह बोलता हुआ ठीक सामने आ जाये, तो यात्रा को स्थगित कर देना चाहिए॥२५॥

चेच्छब्दो यद्यर्थे। गमने यात्रायां यदि कर्णसमो भवति काकः, कर्णप्रदेशे यातुर्गच्छति, तदा क्षेमाय भवति। न कार्यसिद्धये क्षेमं करोति न कार्यसिद्धिं करोति। यदर्थं यात्रा तत्कार्यसिद्धिं न करोति। यातुरभिमुखं संमुखं विरुवन् शब्दं कुर्वन्नुपेत्यागच्छति तदा यात्रा निवर्तयेद्यात्राविघ्नं करोति। उक्तं च—

यातुः कर्णसमो ध्वांक्षः क्षेमे नार्थप्रसाधकः। इति॥२५॥

यहाँ पर "चेत्" शब्द "यदि" शब्द का वाचक है। यात्रा में यदि कौआ कान के समीप आ जाता है अर्थात् यात्री के कान के पास आ जाये, तब वह कल्याणकारी होता है। इससे कल्याण (सुख) तो होता है, परन्तु कार्य-सिद्धि नहीं होती है। अर्थात् जिस उद्देश्य से यात्रा है, उसकी पूर्ति नहीं होती है। यात्री के सम्मुख यदि शब्द करता हुआ आता है, तब यात्रा का निवर्तन अर्थात् यात्रा में विघ्न उपस्थित होता है। कहा भी गया है—

कौआ यदि यात्री के कान के समीप आवे तो वह कल्याण करता है लेकिन अभीष्टकार्य को सिद्ध नहीं करता है॥२५॥

अन्यदप्याह—

वामे वाशित्वादौ दक्षिणपार्श्वेऽनुवाशते यातुः।
अर्थापहारकारी तद्विपरीतोऽर्थसिद्धिकरः॥२६॥

और भी कहते हैं—

कौआ यदि सर्वप्रथम बाँएभाग में शब्द करने के पश्चात् दक्षिणभाग में शब्द करे तो यात्री के धन का अपहरण होता है। विपरीत क्रम से शब्द करने पर कार्य और अर्थ की सफलता होती है॥२६॥

यातुः प्रथममादौ वामभागे वाशित्वा रुतं कृत्वा ततो यदि दक्षिणपार्श्वे वाशते तदाऽर्थस्य धनस्यापहारकारी भवति। तद्विपरीतः पूर्वोक्ताद्विपर्यस्तो दक्षिणपार्श्वे वाशित्वा वामे वाशते तदाऽर्थसिद्धिं करोति।।२६।।

यात्री के पहले वाम-भाग में वाशित अर्थात् शब्द कर फिर दक्षिण-भाग में शब्द करता है तब अर्थ, अर्थात् धन का अपहरण होता है। उक्त क्रम से विपरीत अर्थात् पहले दक्षिणभाग में बोलने के पश्चात् वाम-भाग में आकर बोले तो धन-लाभ कराता है॥२६॥

अन्यदप्याह—

यदि वाम एव विरुवन् मुहुर्मुहुर्यायिनोऽनुलोमगतिः।
अर्थस्य भवति सिद्ध्यै प्राच्यानां दक्षिणश्चैवम्।।२७।।

और भी कहते हैं-

यदि वाम-भाग में ही यात्रा की दिशा में उड़ता हुआ बार-बार बोले तो अर्थसिद्धि करता है। पूर्व और दक्षिण दिशा में भी इसी प्रकार से अर्थ की सिद्धि होती है॥२७॥

यदि वाम एव वामभागे यायिनोऽनुलोमगतिर्यातुः पश्चाद्गमनशीलः स मुहुर्मुहुः पुनःपुनर्विरुयाद् वाशते तदाऽर्थस्य सिद्ध्यै सिद्ध्ये भवति। एवमनेन प्रकारेण प्राच्यानां दक्षिणः काकोऽपीष्यते। तेनैतदुक्तं भवति—दक्षिणे मुहुर्मुहुर्वाशते यायिनोऽनुलोमगतिस्तदेष्यत इति।।२७।।

यदि वाम-भाग में यात्री के अनुलोम अर्थात् पीछे-पीछे आवे और बार-बार शब्द करे तब अर्थ के लिए सिद्धि कारक होता है। इसी प्रकार से पूर्व और दक्षिण के लिए भी कौआ शुभ होता है। इसका अभिप्राय यह है कि यात्री के दक्षिणभाग में उसके यात्रा की दिशा में उड़ता आता है, तब भी वह शुभ होता है॥२७॥

अन्यदप्याह—

वामः प्रतिलोमगतिर्विरुवन् गमनस्य विघ्नकृद्भवति।
तत्रस्थस्यैव फलं कथयति तद्वाञ्छितं गमने।।२८।।

और भी कहते हैं-

यात्री के वामभाग में प्रतिलोमगति अर्थात् सम्मुखदिशा से अपने सम्मुख आकर

शब्द करता है तब यात्रा में विघ्न-कारक होता है। यात्रा में वांछित फल को वहीं पर प्राप्त होना कहता है।।२८।।

वामे यातुर्वामभागस्थः प्रतिलोमगतिर्यायिनोऽभिमुखमागच्छति स च विरुवन् क्रोशन्। गमनस्य यात्राया विघ्नकृद् भवति। गमने यात्रायां यद्वाञ्छितमभिलषितं फलं तत्रस्थस्यैव यातुर्निश्चलस्य कथयति वक्ति।।२८।।

यात्री के वामभाग में स्थित प्रतिलोम-गति अर्थात् उसके सम्मुख शब्द करता हुआ आता है, तब यात्रा में विघ्न करता है। यात्रा में जो अभीष्ट फल होता है, उसको उसी स्थान पर (आगे गये बिना) प्राप्त होना प्रकट करता है।।२८।।

अन्यदप्याह—

दक्षिणविरुतं कृत्वा वामे विरुयाद्यथेप्सितावाप्तिः।

प्रतिवाश्य पुरो यायाद् द्रुतमत्यर्थागमो भवति।।२९।।

और भी कहते हैं—

दक्षिणभाग में बोलने के बाद पुनः वामभाग में बोलता है, तब अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यदि बोलता हुआ आगे की ओर तेजी से उड़ता है, तब अत्यधिक धन-लाभ शीघ्र ही होता है।।२९।।

दक्षिणे यातुर्दक्षिणभागे विरुतं कृत्वा वामे वामभागे विरुयाद्यदि वाशते, तदा यथेप्सितस्य यथाभिलषितस्यार्थस्यावाप्तिर्लाभो भवति। उक्तं च—

वामपार्श्वस्थिताद्याति दक्षिणाद्वापि वामगः। इति।

प्रतिवाश्य शब्दं कृत्वा पुरोऽग्रतो द्रुतं त्वरितं यायाद् याति तदाग्रत एव यातुरत्यर्थस्य महाधनस्यागमो लाभो भवति।।२९।।

यात्री के दक्षिण-भाग में शब्द कर पुनः वामभाग में शब्द करे तब यथेष्ट अभिलषित धन का लाभ होता है। कहा गया है—

"वामभाग से दक्षिण अथवा दक्षिणभाग से वाम-भाग में आता है तो अभीष्ट लाभ होता है।"

प्रतिवाश अर्थात् शब्द कर आगे की ओर तीव्रता से जाता है तब आगे चलकर यात्री को प्रचुर-धन की प्राप्ति होती है।।२९।।

अन्यदप्याह—

प्रतिवाश्य पृष्ठतो दक्षिणेन यायाद् द्रुतं क्षतजकारी।

एकचरणोऽर्कमीक्षन् विरुवंश्च पुरो रुधिरहेतुः।।३०।।

और भी कहते हैं–

यात्री के पीछे से शब्द करता हुआ दक्षिणभाग से होकर तीव्रता से उड़कर चला जाय तो रक्तपात होता है। एक पैर से सूर्य को देखता हुआ शब्द करे तब रक्तपात करता है॥३०॥

पृष्ठतः पश्चात् प्रतिवाश्य दक्षिणेन पार्श्वेन द्रुतं त्वरितं यायाद् गच्छेत् तदा क्षतजकारी क्षतजं रक्त करोति। एकचरण एकपादः, एकेनैव पादेन स्थितोऽर्कमादित्यमीक्षन् पश्यन् विरुवन् शब्दं कुर्वन् पुरोऽग्रतो रुधिरस्य रक्तस्रावस्य हेतुः कारणम्॥३०॥

पीछे से शब्द कर दक्षिण भाग से शीघ्रता से जाये, तब क्षतज अर्थात् रक्तपात करता है। एक ही पैर पर खड़ा होकर सूर्य को देखता हुआ तथा शब्द करता हुआ आगे की यात्रा में रक्त-स्राव का कारण होता है॥३०॥

अन्यदप्याह–

दृष्ट्वार्कमेकपादस्तुण्डेन लिखेद्यदा स्वपिच्छानि।
पुरतो जनस्य महतो वधमभिधत्ते तदा बलिभुक्॥३१॥

और भी कहते हैं–

एक ही पैर पर खड़ा होकर सूर्य को देखता हुआ अपनी चोंच से पंखों को कुरेदे, तब आगे यात्रामार्ग पर किसी महान् की हत्या को वह कौआ सूचित करता है॥३१॥

अर्कमादित्यं दृष्ट्वा अवलोक्य एकपाद एकेनैव पादेन स्थितस्तुण्डेन चञ्च्वा स्वपिच्छान्यात्मीयान्यङ्गरुहाणि यदा बलिभुक् काको लिखेत्, तदा पुरतो महतः प्रधानस्य जनस्य वधं मृत्युमभिधत्ते ददाति॥३१॥

आदित्य अर्थात् सूर्य को देखकर एक ही चरण से स्थित, तुण्ड अर्थात् चोंच से अपने ही पंखों को यदि कौआ कुरेदता हो, तब आगे किसी महान् व्यक्ति की मृत्यु को देता है॥३१॥

अन्यदप्याह–

सस्योपेते क्षेत्रे विरुवति शान्ते ससस्यभूलब्धिः।
आकुलचेष्टो विरुवन् सीमान्ते क्लेशकृद्यातुः॥३२॥

और भी कहते हैं–

हरे-भरे शान्त भू-क्षेत्र पर शब्द करता है, तब फसल सहित भूमि का लाभ

होता है। व्याकुल होकर चेष्टा कर शब्द करे तब सीमान्त में क्लेशकारक होता है।।३२।।

सस्योपेते सस्यसंयुक्ते क्षेत्रे शान्ते काके विरुवति ससस्याया सस्यसंयुक्ताया भुवो भुमेर्लब्धिर्लाभो भवति। सीमान्ते ग्रामसीमान्ते स्थितस्तत्र चाकुलचेष्टः सोद्यमो विरुवन् यातुः क्लेशकृद्भवति।।३२।।

सस्य से संयुक्त खेत में शान्त होकर शब्द करे, तब सस्य-युक्त भूमि का लाभ होता है। सीमान्त अर्थात् गाँव की सीमा के बाहर स्थित होकर व्याकुल चित्त हो शब्द करे, तब यात्री के लिए क्लेशकारक होता है।।३२।।

अन्यदप्याह–

सुस्निग्धपत्रपल्लवकुसुमफलानम्रसुरभिमधुरेषु।
सक्षीराव्रणसंस्थितमनोज्ञवृक्षेषु चार्थसिद्धिकरः।।३३।।

और भी कहते हैं–

चिकने पत्ते, पल्लव, पुष्प, फल, विनत, सुगन्धित, मधुर, दूध वाले, छिद्र रहित और सुन्दर वृक्षों पर स्थित कौआ सिद्धि प्रदान करता है।।३३।।

सुस्निग्धेष्वभक्तेष्वक्षोटादिषु। सुस्निग्धपत्रेषु सुस्निग्धपल्लवेषु च। पत्राणि सामान्यवाचकानि। पल्लवान्यभिनवपत्राणि। कुसुमैः पुष्पैः फलैश्चानम्रेषु विनतेषु। सुरभिषु सुगन्धिषु मधुरेषु सक्षीरेष्वर्कादिषु। अव्रणेषु अच्छिद्रेषु। मनोज्ञेषु चित्ताह्लादकेषु वृक्षेषु स्थितोऽर्थसिद्धिकरोऽर्थानां सिद्धिं साधन करोति।।३३।।

सुस्निग्ध अर्थात् जिसके पत्रादि कटे-फटे न हों, ऐसे चिकने पत्ते और पल्लव हों। पत्रसामान्य अर्थात् सभी पत्ते तथा नूतन पत्तों को पल्लव कहते हैं। कुसुम (पुष्प) और फलों से झुके हों, सुरभि अर्थात् सुगन्धित, मधुर और दूध वाले मदार आदि, व्रण अर्थात् छेद-रहित, मनोज्ञ अर्थात् चित्ताकर्षक, इन वृक्षों पर स्थित काक अर्थ की सिद्धि अर्थात् धनागम का साधन लाता है।।३३।।

अन्यदप्याह–

निष्पन्नसस्यशाद्वलभवनप्रासादहर्म्यहरितेषु।
धन्योच्छ्रमयङ्गल्येषु चैव विरुवन् धनागमदः।।३४।।

और भी कहते हैं–

पकी हुई फसल, दूर्वा, भवन, महल, घर की, छत, हराप्रदेश, शुभस्थान, उन्नतस्थान और मांगलिक (ध्वजादि) स्थानों पर बैठकर शब्द करने वाला काक

धनागम प्रदायक होता है॥३४॥

निष्पन्नसस्येति। निष्पन्नानि सञ्जातानि सुपर्वाणि वा सस्यानि यत्र। शाद्वलैर्दूर्वाभिर्युक्ते भवने गृहे। प्रासादे देवप्रासादे गृहे वा। हर्म्ये गृहपृष्ठे हरिते हरितवर्णे स्थाने, अथवा हरितं विद्यते यत्र एतेषु स्थानेषु तथा धन्ये शुभे शुभ-स्थाने। उच्छ्रये उच्छ्रिते। मङ्गलये प्रशस्ते देशे। एतेषु स्थानेषु काको विरुवन् धनागमदो धनस्य वित्तस्यागमं प्राप्तिं ददाति।।३४।।

निष्पन्न अर्थात् सुसम्पन्न अथवा सुन्दर पर्वों (गाँठों) वाले सस्य (फसल), शाद्वल अर्थात् दूर्वा से युक्त गृह, प्रासाद अर्थात् देवमन्दिर अथवा भवन, हर्म्य अर्थात् गृह-पृष्ठ (छत), हरे रंग का स्थान, अथवा जिस स्थान पर हरा रंग हो, धन्य अर्थात् शुभस्थान पर उच्छ्रय अर्थात् उन्नत (ऊँचा) स्थान, मांगल्य अर्थात् श्रेष्ठ (पवित्र) स्थान, इन स्थानों पर कौआ शब्द करता हुआ धनागम अर्थात् धनलाभ कराता है॥३४॥

गोपुच्छस्थे वल्मीकगेऽथवा दर्शनं भुजङ्गस्य।
सद्यो ज्वरो महिषगे विरुवति गुल्मे फलं स्वल्पम्।।३५।।

गाय की पूँछ पर अथवा बाँबी पर बैठता है, तब सर्प का दर्शन होता है। भैंस के ऊपर बैठने पर शीघ्र ही ज्वर होता है। गुल्म (छोटे-पौधे) पर बैठकर शब्द करे तब अल्प फल मिलता है॥३५॥

गोपुच्छस्थे गोलाङ्गूलस्थिते काकेऽथवा वाल्मीकगे वल्मीककृतमृत्स्तूपगे। भुजङ्गस्य सर्पस्य दर्शनं भवति। महिषगे काके विरुवति सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि ज्वर उत्पद्यते। गुल्म एकमूलः शाखासमूहः, तस्मिन् स्थिते काके विरुवति स्वल्पमत्यल्पं शुभाशुभं फलं ज्ञेयमिति।।३५।।

जब कौआ गाय की पूँछ पर अथवा वल्मीक अर्थात् दीमकों द्वारा निर्मित मिट्टी के ढूह पर बैठकर शब्द करे तब भुजंग अर्थात् सर्प का दर्शन होता है। भैंस पर बैठकर कौए के शब्द करने पर सद्यः अर्थात् उसी दिन ज्वर उत्पन्न होता है। गुल्म अर्थात् जिसके एक ही मूल में अनेक शाखायें होती हैं, उस पर स्थित होकर कौआ शब्द करें, तब बहुत थोड़ा शुभाशुभ फल होता है॥३५॥

अन्यदप्याह—

कार्यस्य व्याघातस्तृणकूटे वामगेऽम्बुसंस्थे वा।
ऊर्ध्वाऽग्निप्लुष्टेऽशनिहते च काके वधो भवति।।३६।।

और भी कहते हैं—

वाम-भाग में तृण-समूह अथवा जल में स्थित हो, तब कार्य की हानि होती है। अग्नि-दग्ध अथवा विद्युत्पात वाले वृक्ष के ऊपर बैठकर कौआ शब्द करे, तब वध (मरण) होता है॥३६॥

वामे वामभागस्थिते काके तत्र च तृणकूटे तृणराशौ स्थिते विरुवति क्रोशति कार्यस्य व्याघातो विनाशो भवति। वामभागे गतेऽम्बुसंस्थे जलस्थे च रुवति कार्यस्य व्याघात एव। ऊर्ध्वाग्निप्लुष्टे ऊर्ध्वभागेऽग्निना दग्धे वृक्षे च स्थिते विरुवति काके वधो भवति॥३६॥

वाम-भाग में कौआ स्थित होता हुआ तृणराशि (तृणकूट) पर बैठकर बोले, तब कार्य का विघात अर्थात् विनाश होता है। वाम-भाग गत कौआ जल पर स्थित होकर बोले तब भी कार्य का नाश होता है। ऊर्ध्व भाग अग्नि-दग्ध हो, इस प्रकार के वृक्ष पर बैठकर बोले, तब वध होता है॥३६॥

अन्यदप्याह–

कण्टकिमिश्रे सौम्ये सिद्धिः कार्यस्य भवति कलहश्च।

कण्टकिनि भवति कलहो वल्लीपरिवेष्टिते बन्धः॥३७॥

और भी कहते हैं–

काँटेदार तथा सौम्य (शुभ) से मिश्रित वृक्ष पर बैठकर शब्द करे तब कार्य की सिद्धि और कलह दोनों होते हैं। केवल काँटेदार वृक्ष से कलह और वल्ली से परिवेष्टित वृक्ष के द्वारा बन्धन होता है॥३७॥

सौम्ये सौम्यवृक्षे सक्षीरे सफले कण्टकिमिश्रे सकण्टके वृक्षे स्थिते काके कार्यस्य सिद्धिर्भवति तत्र च कलहो भवति। तथा काके कण्टकिनि स्थिते कलहो भवति नार्थसिद्धिः। वल्लीभिः परिवेष्टिते वृक्षे बन्धो बन्धनं भवति॥३७॥

सौम्य-वृक्ष अर्थात् दूध और फल वाले वृक्ष अथवा कण्टक-वृक्षों पर बैठा हो, उन पर स्थित काक के द्वारा कार्य की सिद्धि होती है और वहाँ कलह भी होता है। कौआ कण्टकी वृक्ष पर हो, तब विवाद ही होता है, अर्थ की सिद्धि नहीं होती है। लताओं से परिवेष्टित वृक्ष पर बैठा हो, तब बन्धन (कारागार) होता है॥३७॥

अन्यदप्याह–

छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वांक्षे।

पुरतश्च पृष्ठतो वा गोमयसंस्थे धनप्राप्तिः॥३८॥

और भी कहते हैं–

जिसका शीर्षभाग छिन्न (टूटा या कटा) हो, ऐसे वृक्ष पर बैठा हो, तब अंग-भंग होता है। सूखे वृक्ष पर बैठे तो कलह होता है। सम्मुख अथवा पीछे स्थित गोबर पर बैठा हो तब धन-लाभ होता है॥३८॥

छिन्नं कल्पितमग्रं प्रान्तं यस्मिन् वृक्षे तत्रस्थे काकेऽङ्गच्छेदो भवति। तथा ध्वांक्षे काके शुष्कद्रुमसंस्थिते नीरसवृक्षस्थिते कलहो भवति। पुरतोऽग्रतः पृष्ठतः पश्चाद्वा गोमयसंस्थे धनप्राप्तिर्वित्तलाभो भवति।।३८।।

छिन्न अर्थात् कल्पित (टूटा हुआ) अग्र-भाग हो जिस वृक्ष का, उस पर कौए के स्थित होने पर अंगच्छेद होता है। ध्वाँक्ष अर्थात् कौआ के सूखे पेड़ पर स्थित अर्थात् नीरस पेड़ पर होने से कलह होता है। पुरोभाग अर्थात् सामने अथवा पृष्ठभाग अर्थात् पीछे की ओर गोमय (गोबर) पर बैठा हो, तब धन अर्थात् वित्त का लाभ होता है॥३८॥

विशेष व्याख्या—कल्पित शब्द "कृप्+णिच्+क्त" से बना है। अमरकोश में यह प्रयोग नहीं है। "क्लृप् + ल्युट्" से इसका अर्थ संस्कार, छँटाई करना, काटना आदि होता है। द्रष्टव्य, आप्टे का संस्कृत, हिन्दी कोश।

अन्यदप्याह—

मृतपुरुषाङ्गावयवस्थितोऽभिविरुवन् करोति मृत्युभयम्।
भञ्जन्नस्थि च चञ्च्वा यदि विरुवत्यस्थिभङ्गाय।।३९।।

और भी कहते हैं–

किसी शव के अंग पर बैठकर यदि कौआ शब्द करे, तब मृत्यु का भय होता है। हड्डी के टुकड़े को मुख में लेकर शब्द करे, तब अस्थि-भंग होता है॥३९॥

मृतपुरुषाङ्गं मृतकशरीरावयवमन्यद्बाह्वादिकम्। तत्र च स्थितः। शवशरीरे तदवयवस्थितोऽभितः सम्मुखो यातुर्विरुवंश्च मृत्युभयं करोति। अस्थि चञ्च्वा भञ्जन् विदारयन् यदि विरुवति वाशते, तदा यातुरस्थिभङ्गाय भवति।।३९।।

मृतक शरीर के अवयव (अंग) बाहु आदि पर स्थित अर्थात् शव के शरीर के अंगों पर बैठकर बोलता हुआ यात्री के सामने पड़े, तो वह मरण का भय करता है। हड्डी को चोंच से तोड़ता हुआ शब्द करे, तब यात्री के अस्थिभंग का कारण होता है॥३९॥

अन्यदप्याह—

रज्ज्वस्थिकाष्ठकण्टकिनिःसारशिरोरुहानने रुवति।
भुजगगददंष्ट्रितस्करशास्त्राग्निभयान्यनुक्रमशः।।४०।।

और भी कहते हैं–

रस्सी, हड्डी, लकड़ी, काँटा, सारहीन वस्तु और केश मुख में रखकर शब्द करे, तब क्रमशः सर्प, रोग, दाँतवाले जीव, चोर, शस्त्र और अग्नि का भय होता है॥४०॥

रज्जुः प्रसिद्धा। अस्थि काष्ठं कण्टकिः प्रसिद्धः। निःसारा असाराः। शिरोरुहाः केशाः। काके रज्ज्वाद्यानने मुखे गृहीत्वा रुवति सत्यनुक्रमशो यथाक्रमं भुजङ्गादीनां भयानि भवन्ति। तद्यथा–रज्जुमुखे काके विरुवति भुजगस्य सर्पस्य संबंन्धि भयं भवति। अस्थिमुखे गदो रोगः। काष्ठमुखे दंष्ट्रिभयम्। दंष्ट्रिणो वराहादयः, तेभ्यो भयं भवति। कण्टकिमुखे तस्करभयम्। निःसारमुखे शस्त्रभयम्। शिरोरुहमुखे काकेऽग्निभयं भवति। उक्तं च–

काष्ठरज्ज्वस्थिनिः सारकेशकण्टकिभृद्रुवन्।
व्यालाहिव्याधिशस्त्राग्नितस्करेभ्यो भयङ्करः॥इति॥४०॥

रज्जु नाम से प्रसिद्ध रस्सी, अस्थि (हड्डी), कण्टकारी अर्थात् कँटीला, निःसार अर्थात् जिसके भीतर सार (ठोस) न हो (खोखला), शिरोरुह अर्थात् केश; इन पदार्थों को अर्थात् रज्जु आदि पदार्थ को यदि कौआ मुख में लेकर शब्द करता है, तब क्रमशः सर्पादि का भय उत्पन्न होता है। जैसा कि-रस्सी को मुख में लेकर यदि कौआ शब्द करे, तब सर्प से सम्बन्धित भय होता है। हड्डी को मुख में लेने से गद अर्थात् रोग-भय, लकड़ी मुख में हो, तब दंतुल जन्तुओं से भय अर्थात् शूकर आदि से भय, कँटीली वस्तु के मुख में होने से चोर-भय, खोखली वस्तु से शस्त्र-भय और केश को मुख में रखे, तब वह कौआ अग्नि का भय करता है। कहा भी गया है–"काष्ठ, रज्जु, अस्थि, निःसार, केश और कँटीली वस्तु को लेकर कौआ शब्द करे, तब क्रमशः शृंगाल, सर्प, रोग, शस्त्र, अग्नि और चोरों से भय करता है' ॥४०॥

अन्यदप्याह–

सितकुसुमाशुचिमांसाननेऽर्थसिद्धिर्यथेप्सिता यातुः।
पक्षौ धुन्वन्नूर्ध्वानने च विघ्नं मुहुः क्वणति॥४१॥

और भी कहते हैं–

सफेद फूल, अपवित्र वस्तु, माँस को मुख में लेकर कौआ शब्द करे, तो यात्री का मनोरथ सिद्ध होता है। कौआ ऊपर की ओर मुख कर पंखों को फड़फड़ाते हुए शब्द करे, तब शीघ्र ही विघ्न उपस्थित होता है॥४१॥

सितकुसुमं श्वेतपुष्पम्। अशुचि अमेध्यम्। मांसमामिषम्। एतान्यानने मुखे गृहीत्वा यदि क्वणति विरुवति, तदा यातुर्यथेप्सिता यथाभिलषिताऽर्थसिद्धिर्भवति।

पक्षावङ्गरुहौ धुवन् कम्पयंस्तथाभूते काके ऊर्ध्वमुखे च क्वणति मुहुः शीघ्रमेव यात्राविघ्नं करोति।।४१।।

सित-कुसुम अर्थात् श्वेतपुष्प, अशुचि अर्थात् अपवित्र (अमेध्य) वस्तु और माँस (आमिष); इनको मुख में लेकर यदि शब्द करता है, तब यात्रा करने वाले के मनोभिलषित अर्थ की सिद्धि होती है। दोनों पंखों को फड़फड़ाता हुआ (कँपाता हुआ) ऊपर मुखकर शब्द करे, तब अतिशीघ्र ही यात्रा में विघ्न करता है।।४१।।

अन्यदप्याह–

यदि शृङ्खलां वरत्रां वल्लीं वाऽऽदाय वाशते बन्धः।
पाषाणस्थे च भयं क्लिष्टापूर्वाध्विकयुतिश्च।।४२।।

और भी कहते हैं–

यदि कौआ जंजीर, चमड़े की रस्सी अथवा लता लेकर शब्द करता है, तब बन्धन होता है। पत्थर पर बैठा तो भय तथा कोई प्रथम बार नया व्यथित-यात्री मार्ग में मिलता है।।४२।।

यदि शृङ्खलां लोहमयीं वरत्रां चर्ममयीं रज्जुं वल्लीं वाऽऽदाय गृहीत्वा वाशते विरौति, तदा यातुर्बन्धो भवति। पाषाणस्थेऽश्मनि स्थिते काके भयं भवति। क्लिष्टेन क्लेशसंयुक्तेन अपूर्वेण यो न कदापि निर्दिष्टस्तेनाध्विकेन पान्थेन युतिः संयोगो भवति।।४२।।

यदि लोहे की जंजीर, वस्त्र अर्थात् चमड़े की रस्सी अथवा लता को लेकर बोलता है, तब यात्री को बन्धन मिलता है। पाषाण अर्थात् अश्म (पत्थर) पर कौआ स्थित हो तब भय होता है, तथा कष्ट से पीड़ित अपूर्व अर्थात् जो कभी भी न देखा गया हो, इस प्रकार के आध्विक अर्थात् पथिक से मिलन होता है।।४२।।

अन्यदप्याह–

अन्योऽन्यभक्षसंक्रामितानने तुष्टिरुत्तमा भवति।
विज्ञेयः स्त्रीलाभो दम्पत्योर्विरुवतोर्युगपत्।।४३।।

और भी कहते हैं–

कौवे यदि परस्पर एक दूसरे के मुख में भक्ष्य-पदार्थ खिला रहे हों, तब यात्री को पूर्ण सन्तुष्टि मिलती है। यदि काक-दम्पती (काक-काकी) एक साथ शब्द करते हों, तब स्त्री का लाभ समझना चाहिए।।४३।।

अन्योऽन्यं परस्परं भक्षसंक्रामितानने काके भक्षक्षिप्तमुखे यातुरुत्तमा प्रधाना तुष्टिर्भवति। दम्पतयोर्जायापत्योर्युगपत् तुल्यकालं कृत्वा विरुवतोः क्रोशतोः स्त्री-

लाभो योषित्प्राप्तिर्विज्ञेयो विज्ञातव्यः।।४३।।

यदि अन्योन्य अर्थात् परस्पर कौवे एक दूसरे के मुख में भक्ष्य-वस्तु डालते हैं, तब यात्री को उत्तम अर्थात् पर्याप्त संतुष्टि मिलती है। दम्पत्ति अर्थात् पति-पत्नी एक साथ शब्द करते हों, तब स्त्री का लाभ होता है।।४३।।

अन्यदप्याह–

प्रमदाशिरउपगतपूर्णकुम्भसंस्थेऽङ्गनार्थसम्प्राप्तिः।
घटकुट्टने सुतविपद् घटोपहदनेऽन्नसम्प्राप्तिः।।४४।।

और भी कहते हैं–

शिर पर घड़ा चलती हुई स्त्री के घड़े के ऊपर कौआ बैठे तब स्त्री और धन का लाभ होता है। घड़े पर प्रहार करे तब पुत्र पर विपत्ति और घड़े पर विष्टा कर दे, तब अन्न की प्राप्ति होती है।।४४।।

प्रमदा स्त्री, तस्याः शिरउपगतो मूर्ध्नि स्थितो यः पूर्णकुम्भस्तत्रस्थे काकेऽङ्गनार्थसम्प्राप्तिः। स्त्रीलाभोऽर्थप्राप्तिश्च भवति। घटकुट्टने कुम्भताडने सुतविपत् पुत्रमरणं भवति। घटोपहदने कुम्भपुरीषकरणेऽन्नसम्प्राप्तिर्भोजनलाभो भवति।।४४।।

प्रमदा अर्थात् स्त्री के शिर पर जो पूर्णकुम्भ स्थित हो, उस पर कौवे के बैठने से धन की सम्प्राप्ति होती है। स्त्री और धन इन दोनों का लाभ होता है। घट के कुट्टन अर्थात् उस पर प्रहार करने पर पुत्र का मरण होता है। घट के उपहदन अर्थात् घड़े पर पुरीष (विष्टा) करे, तब अन्न अर्थात् भोजन का लाभ होता है।।४४।।

अन्यदप्याह–

स्कन्धावारादीनां निवेशसमये रुवंश्चलत्पक्षः।
सूचयतेऽन्यत्स्थानं निश्चलपक्षस्तु भयमात्रम्।।४५।।

और भी कहते हैं–

कौआ यात्रा-काल में विश्राम-गृह में प्रवेश के समय पंखों को हिलाता हुआ शब्द करता है, तब अन्य स्थान पर निवास करने की सूचना देता है। यदि पंख निश्चल रखे तो मात्र भय को संसूचित करता है।।४५।।

यात्रायां गतो राजा यत्र निवसति स स्कन्धावारः। स्कन्धावारादीनाम्। आदिग्रहणात् प्रवासिनामन्येषामपि जनानां निवेशसमये निवेशनकाले। निवेशनमावासकादीनां रचनम्। तस्मिंश्चलत्पक्षः चलिताङ्गरुहः काको रुवन् शब्दं कुर्वन्। अन्यद् द्वितीयं स्थानं सूचयते कथयति। यथाऽन्यत्र भवद्भिर्वस्तव्यम्।

निश्चलपक्षस्तु रुवन् भयमात्रं सूचयते नान्यत् स्थानम्। तथा च पराशरः–

सेनानिविष्टः सार्थे वा वासो हृष्टो न वाशते।

तस्य देशप्रयातस्य भयमत्रोपजायते।।इति।।४५।।

यात्रा में गया हुआ राजा जिस स्थान पर निवास करता है, उस स्थान को स्कन्धावार कहा जाता है। 'आदि' शब्द से यात्री के साथ ही अन्य लोगों के भी किसी स्थान में प्रवेशसमय अथवा निवेश अर्थात् निवासस्थान के निर्माण-काल में कौआ पंखों को फड़फड़ाता हुआ शब्द करता है, तब वह किसी अन्य दूसरे स्थान में रहने वाले को संसूचित करता है। अभिप्राय यह है कि "यात्री को अन्यत्र अर्थात् दूसरे स्थान पर रहना चाहिए।" निश्चल पक्ष कर शब्द करे तब भयमात्र की सूचना देता है, स्थानपरिवर्तन का नहीं। जैसा कि पराशर ने कहा है–

सेना में अथवा रथियों में प्रवेश कर यदि कौआ चंचल होकर नहीं बोलता है, तब उस देश (स्थान) की यात्रा करने वाले को भय मात्र उत्पन्न होता है।।४५।।

अन्यदप्याह–

प्रविशद्भिः सैन्यादीन् सगृध्रकङ्कैर्विनामिषं ध्वांक्षैः।

अविरुद्धैस्तैः प्रीतिर्द्विषतां युद्धं विरुद्धैश्च।।४६।।

और भी कहते हैं–

कौवे यदि गिद्ध और कंक पक्षियों के साथ बिना मांस लिये सैन्यादि स्थानों में परस्पर झगड़े बिना प्रवेश करें, तब शत्रु-पक्ष से समन्वय होता है। इन पक्षियों में परस्पर कलह हो, तब शत्रुपक्ष से युद्ध होता है।।४६।।

ध्वांक्षैः काकैः। सगृध्रकङ्कैः गृध्रकङ्कसहितैः। विनामिषं मांसं विना। सैन्यादीन् सैन्यपुरग्रामान् प्रविशद्भिस्तैश्च परस्परमविरुद्धैर्विरोधमकुर्वद्भिर्द्विषता शत्रुणा सह प्रीतिर्भवति। तैश्च विरुद्धैः सकलहैर्द्विषता सह युद्धं संग्रामो भवति।।४६।।

कौवे यदि गिद्ध और कंक पक्षियों के साथ बिना मांस के सैन्यादि में अर्थात् सेना की छावनी, नगर अथवा ग्राम में प्रवेश करते हैं तथा परस्पर कलह नहीं करते हैं, तब शत्रुओं के साथ प्रीति होती है। इन पक्षियों के परस्पर कलह किये जाने से शत्रु के साथ युद्ध अर्थात् संग्राम होता है।।४६।।

विशेष व्याख्या–

कङ्क = अमरकोश में नहीं है। यह बक पक्षी 'बगुला' के लिए काव्यों में प्रयुक्त है। 'कह्व' शब्द का पर्याय है। त्रिकाण्डकोष में कहा गया है–

दीर्घजंघो निशैडः स्याद् वकोटः शुक्लवायसः।

कङ्केरुर्दारुबलिभुक् शिखीचन्द्रविहंगमः।।

अन्यदप्याह—

बन्धः सूकरसंस्थे पङ्काक्ते सूकरे द्विकेऽर्थाप्तिः।

क्षेमं खरोष्ट्रसंस्थे केचित् प्राहुर्वधं तु खरे।।४७।।

और भी कहते हैं—

यदि कौआ सूअर पर स्थित हो, तो बन्धन होता है। यदि वह कीचड़ से लिप्त सूअर पर बैठा हो, तब धन का लाभ होता है। गर्दभ अथवा ऊँट पर बैठे तब शुभ होता है। कुछ आचार्य गर्दभ पर बैठने से वध (मरण) कहते हैं।।४७।।

सूकरसंस्थे द्विके काके बन्धो बन्धनं भवति। पङ्काक्ते पङ्केन कर्दमेन लिप्ते सूकरे स्थितेऽर्थाप्तिरर्थलाभो भवति। खरगते गर्दभस्थे। उष्ट्रगते करभस्थे काके क्षेमं भवति। केचित् तु मुनयः खरसंस्थे वधं मरणं प्राहुः कथयन्ति। उक्तं च—

वधबन्धकरः क्रोशन् खरसूकरपृष्ठगः।

पङ्कदिग्धशरीरस्य वराहस्योपरिस्थितः।।

वायसः शस्यते यातुस्तूष्णीभूतो रुवन्नपि।।इति।।४७।।

कौवे को सूअर के ऊपर बैठने पर बन्ध अर्थात् बन्धन (कारागर आदि) होता है। पङ्क अर्थात् कीचड़ से सूअर लिप्त हो, तब अर्थ अर्थात् धन का लाभ होता है। खर अर्थात् गदहा और उष्ट्र अर्थात् ऊँट पर कौवे के बैठने पर क्षेम (कल्याण) होता है। कुछ मुनिगण गदहे पर बैठने से वध अर्थात् मरण कहते हैं। कहा भी गया है—

गदहे और सूअर के पीठ पर बैठकर कौवे के बोलने से वध और बन्धन होता है। कीचड़ से भरे हुए शरीर वाले सूअर पर बैठा हुआ कौआ यदि शब्द करे अथवा मौन हो तब भी दोनों स्थितियों में शुभदायक होता है।।४७।।

विशेष व्याख्या—

"द्विक-शब्द" अमरकोश में नहीं है। यहा 'द्विक' शब्द कौआ (काक) के अर्थ में विवृतिकार द्वारा ग्रहण किया गया है, जो कि मूलार्थ से सुसंगत है।

अन्यदप्याह—

वाहनलाभोऽश्वगते विरुवत्यनुयायिनि क्षतजपातः।

अन्येऽप्यनुव्रजन्तो यातारं काकवद्विहगाः।।४८।।

और भी कहते हैं–

अश्व के ऊपर बैठे हुए कौवे से अश्व का लाभ होता है। अश्व के पीछे-पीछे शब्द करता हुआ चले, तब रक्तपात होता है। अन्य पक्षी भी यदि उसी प्रकार बैठें या अनुगमन करें तो, कौवे के समान ही फल होता है।।४८।।

अश्वगते तुरगस्थे काके विरुवति वाहनानामश्वादीनां लाभो भवति। अनुयायिनि पश्चाद् गम्यमाने काके विरुवति यातुः क्षतजपातो रक्तस्य पातः पतनं भवति। अन्येऽपरे येऽत्रानुक्ता विहगाः पक्षिणस्ते यातारमनुव्रजन्तः पश्चाद् गच्छन्तः काकवद्वायसवज्ज्ञेया ज्ञातव्याः। यथा काकस्य फलं पूर्वमुक्तं तथा तेषामपीति। तथा च काश्यपः–

उलूककङ्कप्लवगा गृध्रश्येनादयश्च ये।
मांसाशिनश्च विहगास्तुल्या वायसचेष्टितैः।।इति।।४८।।

जब अश्व अर्थात् तुरग (घोड़ा) पर बैठा हुआ काक शब्द करे, तब अश्वादि वाहनों का लाभ होता है। यदि वह अनुगमन करे अर्थात् पृष्ठानुयायी हो और शब्द करे, तब यात्रा करने वाले का रक्तपात होता है। अन्य पक्षी, जिनका यहाँ पर उल्लेख नहीं है, वे यदि यात्री का अनुगमन करें, तब कौवे के समान फल करते हैं। जैसा फल कौवे का कहा गया है उसी प्रकार इन अन्य पक्षियों का भी जानना चाहिए। जैसा कि आचार्य काश्यप ने कहा है–

"उल्लू, कङ्क, जलचरी, गिद्ध और बाज आदि जो मांस-भक्षी पक्षी हैं, इनका फल भी कौवे की चेष्टा के समान ही होता है"।।४८।।

अथ विशेषमाह–

द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे यद्यथा समुद्दिष्टम्।
तत्तत् तथा विधेयं गुणदोषफलं यियासूनाम्।।४९।।

कुछ और विशेष कहते हैं–

दिक्चक्र ३२ भागों में विभक्त होता है, उसमें जिस प्रकार से फल का विचार किया गया है, यात्रियों के लिए भी उसी प्रकार से शुभाशुभ फलों का विचार करना चाहिए।।४९।।

दिक्चक्रे दिङ्मण्डले द्वात्रिंशद्भागप्रविभक्ते यद्यत्फलं यथा येन प्रकारेण समुद्दिष्टं कथितं तत्तत् फलं तथा तेनैव प्रकारेण यियासूनां जिगमिषूणां गुणदोषफलं

विधेयं वक्तव्यम्। यथा—प्राच्यां शान्तायां वा शुभचेष्टं पूजाफलं महद्वक्ति। अशुभचेष्टायां मध्यस्थं तस्यामेव दीप्तायां क्रूरचेष्टो नृपाद्भदयम्, एवमन्यास्वपि विज्ञेयम्।।४९।।

दिक्चक्र अर्थात् दिङ्मण्डल चक्र में जो कि ३२ भागों (कोष्ठकों) में विभक्त है, उसमें जो भी फल जिस प्रकार से कथित हैं, उसी प्रकार से यियासु अर्थात् यात्रा की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के लिए भी शुभाशुभ फल कहना चाहिए। जैसा कि-शान्ता पूरबदिशा में अथवा शुभचेष्टा में पूजा का फल श्रेष्ठ कहा गया है। अशुभ चेष्टा में मध्यफल और उसी में दीप्त तथा क्रूर चेष्टा होने पर राजभय होता है। उसी प्रकार से अन्य दिशाओं में भी जानना चाहिए॥४९॥

अथ रुतलक्षणफलमाह—

का इति काकस्य रुतं स्वनिलयसंस्थस्य निष्फलं प्रोक्तम्।
कव इति चात्मप्रीत्यै केति रुते स्निग्धमित्राप्तिः।।५०।।

करेति कलहं कुरुकुरु च हर्षमथ कटकटेति दधिभक्तम्।
केके विरुतं कुकु वा धनलाभं यायिनः प्राह।।५१।।

अब बोलने की ध्वनि का फल कहते हैं–

कौआ अपने घोंसले में 'का' की ध्वनि करे तब उसकी ध्वनि निष्फल होती है। 'कव' ध्वनि आत्म-प्रक्रिया के लिए तथा 'क' ध्वनि प्रिय-मित्र की प्राप्तिकारक होती है॥५०॥

'कर' ध्वनि से कलह, ''कुरु-कुरु' से प्रसन्नता और 'कट-कट' से दही-भात का लाभ होता है। 'के-के' अथवा 'कु-कु' की ध्वनि से यात्रा-कर्ता को धन का लाभ होता है॥५१॥

का इति काकस्य रुतमिति। काकस्य वायसस्य स्वनिलयसंस्थस्य आत्मीयनीडस्थितस्य का-इति यद्रुतं तन्निष्फलं प्रोक्तं कथितम्। तस्य च शुभाशुभं फलं न किञ्चिदित्यर्थः। कव इति रुतं चात्मप्रीत्यै स्वप्रीतये भवति। क-इति रुते स्निग्धस्य वल्लभस्य मित्रस्य सुहृद आप्तिः प्राप्तिर्भवति।।५०।।

का, ध्वनि का अर्थ काक की बोली (रुत) है। कौआ (वायस) यदि अपे निलय अर्थात् घोंसले (नीड) में स्थित होकर 'का' शब्द करे तो, वह निष्फल कहा गया है। अभिप्राय यह है कि उस बोली का कुछ भी शुभाशुभ फल नहीं होता है। 'कव' शब्द आत्म-सन्तुष्टि के लिए होता है। 'क' शब्द से स्निग्ध अर्थात् प्रिय मित्र की प्राप्ति

(आप्ति) होती है।।५०।।

कर-इति रुते कलहः कलिर्भवति। कुरुकुरु च रुते हर्षं भवति। अथशब्दश्चार्थे। कटकटेति रुते दधिभक्तं भोजनं भवति। केके-इति विरुते कुकु-इति विरुते वा यायिनो गच्छतो धनलाभं वित्तप्राप्तिं प्राह कथयति।।५१।।

'कर' ध्वनि से कलह (कलि) होता है। 'कुरु-कुरु' की ध्वनि होने पर प्रसन्नता होती है। 'अथ' शब्द च-(और) का बोधक है। 'कट-कट' की ध्वनि पर दही और भात का भोजन मिलता है। के-के तथा कु-कु की ध्वनि से यात्रा-कर्ता को धन (वित्त) की प्राप्ति कही गयी है।।५१।।

अन्यदप्याह–

खरेखरे पथिकागममाह कखाखेति यायिनो मृत्युम्।
गमनप्रतिषेधिकसा कखला सद्योऽभिवर्षाय।।५२।।

और भी कहते हैं–

'खरे-खरे' की ध्वनि से पथिक का आगमन और 'कखा खा' से यात्री की मृत्यु कही जाती है। 'आ' की ध्वनि से यात्रा का निषेध और और 'कखला' से तत्काल वर्षा की सूचना होती है।।५२।।

खरेखरे इति रुते पथिकस्य पान्थस्यागमो भवति इत्याह कथयति वायसः। कखाखेति–रुते यायिनो मृत्युं मरणमाह। आ–इति रुतं गमनप्रतिषेधिकं गमनविघ्नं करोति। कखला इति रुतं सद्योऽभिवर्षाय सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वर्षतीत्यर्थः।।५२।।

खरे-खरे की ध्वनि पर पथिक के आगमन को कौआ संसूचित करता है। कखाखा की ध्वनि से कौआ यात्री की मृत्यु का संदेश देता है। 'आ' ध्वनि होने पर यात्रा में विघ्न उपस्थित होता है। कखला ध्वनि सद्यः अर्थात् उसी दिन वर्षा कराती है।।५२।।

अन्यदप्याह–

काकेति विघातः काकटीति चाहारदूषणं प्राह।
[१]प्रीत्यास्पदं कवककवेति बन्धमेवं कगाकुरिति।।५३।।

और भी कहते हैं–

'काक' शब्द से आघात तथा 'काकटी' शब्द से दूषित आहार मिलता है।

---

१. प्रीत्या स्वदम्पती कवकव इति पाठान्तरम्।

'कव-कव' की ध्वनि से प्रेम का व्यवहार तथा 'कगाकु' की ध्वनि हो, तब बन्धन होता है।।५३।।

काक-इति विरुते विघातो विनाशो भवति। काकटीति विरुते आहारस्य भोजनस्य दूषणं सदोषत्वं विषादिकेन प्राह कथयेति। कवकव इति रुते प्रीत्यास्पदम्, प्रीत्याः स्नेहस्य आस्पदं स्थानं प्रीत्यास्पदम्। केनचित् सह प्रीतिर्भवति। अन्ये प्रीत्या स्वदम्पती कवकवेति पठन्ति। यथा स्वदम्पती भार्यापती कवकवेति प्रीत्या स्नेहेन कवकवेति रुतं कुर्वतः। एतन्न शोभनम्। यस्माद् गर्गः–

रुते कवकवेति स्यात् प्रस्थिते वायसस्य तु।
अपूर्वप्रीतये तच्च धनलाभाय निर्दिशेत्।।

एवं कगाकु इति रुते बन्धो बन्धनं भवति।।इति।।५३।।

'काक' शब्द के बोलने से विघात अर्थात् विनाश होता है। काकटी शब्द होने पर आहार अर्थात् भोजन में विष आदि का दूषण अर्थात् प्रदूषण होता है। कव-कव की ध्वनि करे तब प्रीत्यास्पद अर्थात् स्नेह का आस्पद अर्थात् स्नेह का स्थान मिलता है। तात्पर्य यह है कि किसी के साथ प्रेम होता है। अन्य आचार्य कव-कव से दम्पत्ती का परस्पर प्रेम कहते हैं। जैसा कि स्वयं पति-पत्नी कव-कव शब्द से प्रस्पर प्रेम को प्रकट करते हैं। परञ्च यह कथन समीचीन नहीं है। क्योंकि गर्गाचार्य ने इस प्रकार कहा है–

यात्रा काल में कौवे के कव-कव शब्द को अपूर्व प्रेम और धन-लाभ के लिए समझना चाहिए। इसी प्रकार कगाकु शब्द से बन्धन होता है।।५३।।

अन्यदप्याह–

करगौ विरुते वर्षं गुडवत् त्रासाय वडिति वस्त्राप्तिः।
कलयेति च संयोगः शूद्रस्य ब्राह्मणैः साकम्।।५४।।

और भी कहते हैं–

कौआ यदि करगौ शब्द करे तब वर्षा, गुड शब्द करे तो भय और वड् शब्द करे तब वस्त्र-लाभ होता है। कलय शब्द होने पर शूद्र का ब्राह्मण के साथ मिलन होता है।।५४।।

करगौ इति रुते वृष्टिर्वर्षणं भवति। गुड इति त्रासाय भयाय भवति। वड् इति रुते वस्त्रप्राप्तिरम्बरलाभः। कलय इति च रुते शूद्रस्य शूद्रजातेर्ब्राह्मणैः साकं सह संयोगो भवति।।५३।।

'करगौ' की बोली निकले तब वृष्टि अर्थात् वर्षा होती है। 'गुड' शब्द हो तो

भयकारक होता है। 'वड्' शब्द होने पर वस्त्र (अम्बर) प्राप्त होते हैं। 'कलय' शब्द होने पर शूद्रजाति का ब्राह्मणों के साथ संयोग होता है।।५४।।

अन्यदप्याह—

कडिति फलाप्तिः फलदा-
हिदर्शनं टड्डिति प्रहाराः स्युः।
स्त्रीलाभः स्त्रीति रुते
गडिति गवां पुडिति पुष्पाणाम्।।५५।।

और भी कहते हैं–

'कड्' शब्द होने पर फल-लाभ तथा शुभ-फलदायक साँप का दर्शन होता है। टड् शब्द से आघात होते हैं। 'स्त्री' शब्द से स्त्री का लाभ, 'गुड्' शब्द से गो-लाभ और पुड् शब्द से पुष्पों का लाभ होता है।।५५।।

कडिति रुते फलाप्तिरभीष्टफलप्राप्तिर्भवति। अथवा फलाप्तिः फल-लाभः। तथा फलदाहिदर्शनं फलप्रदस्याहेः शुभफलप्रदस्य सर्पस्य दर्शनमवलोकनं भवति। अथवा फलाप्तिर्भवति सदाप्तिः। फलप्रदा ततोऽपि विशिष्टतरं फलं लभ्यते। तथाऽहिदर्शनं भवति। टिड्डिति रुते प्रहारा घाताः स्युर्भवेयुः। स्त्री-इति रुते स्त्रीलाभो भवति। गडिति रुते गवां लाभः। पुडिति रुते पुष्पाणां लाभः।।५५।।

कड् शब्द से फलाप्ति अर्थात् मनोभिलषित फल प्राप्त होता है, अथवा फलों का लाभ होता है और फलद अर्थात् शुभ-फल देने वाले सर्प का दर्शन होता है, अथवा फल अर्थात् शुभ की प्राप्ति होती है। फलदा अर्थात् सामान्य फल से भी अधिक विशिष्ट-फल प्राप्त होता है। इस प्रकार के फलदायक सर्प का शुभ-दर्शन होता है। टड् शब्द से प्रहार अर्थात् आघात होते हैं। स्त्री-शब्द से स्त्री का लाभ होता है। गड् शब्द से गायों का लाभ और पुड् शब्द से पुष्पों का लाभ होता है।।५५।।

अन्यदप्याह—

युद्धाय टाकुटाक्विति गुहु वह्निभयं कटेकटे कलहः।
टाकुलि चिण्टिचि केकेकेति पुरं चेति दोषाय।।५६।।

और भी कहते हैं–

कौवे का "टाकुटाक्विति" शब्द युद्धकारक होता है। गुहु शब्द से अग्नि का भय और कटे-कटे शब्द से कलह होता है। टाकुलि, केकेकेति शब्द और चिण्टिचि शब्द पुर के लिए दोषकारक होते हैं।।५६।।

टाकुटाक्विति रुतं युद्धाय संग्रामाय भवति। गुहु-इति रुते वह्निभयमग्निभयं भवति। कटेकटे-इति रुत कलहः। टाकुलि चिण्टिचि केकेकेति पुरं चेति इत्येवं रुतं दोषाय भवति।।५६।।

टाकुटाक्विति शब्द युद्ध अर्थात् संग्राम के लिए होता है, गुहु शब्द से वह्नि अर्थात् अग्नि का भय होता है। कटे-कटे की ध्वनि से कलह (झगड़ा) होता है। टाकुलि, चिण्टिचि, केकेकेति, पुर और चेति शब्द दोषकारक होते हैं।।५६।।

अन्यद् विशेषमाह–

काकद्वयस्यापि सामनमेतत्
फलं यदुक्तं रुतचेष्टिताद्यैः।
पतत्रिणोऽन्येऽपि यथैव काको
वन्याः श्ववच्चोपरिदंष्ट्रिणो ये।।५७।।

और विशेष कहते हैं–

इस प्रकार एक कौवे के शब्द अथवा चेष्टा करने पर जो भी फल कहा गया है, दो कौवे का भी उसी के समान फल होता है। अन्य पक्षियों के फल भी कौवे के समान जानना चाहिए। लम्बे दाँत वाले जंगली पशुओं का फल भी श्वान के समान ही होता है।।५७।।

रुतचेष्टिताद्यैः, रुतेन चेष्टितेनाऽऽसनाद्युपवेशनेन चैकस्य काकस्य यत् फलमुक्तं तत्काकद्वयस्य। अपिशब्दात् त्रयस्य चतुष्कस्य च समानं वाच्यम्। अन्ये येऽत्रानुक्ताः पतत्रिणः पक्षिणस्तेऽपि तेन प्रकारेण ज्ञेयाः वन्या वने भवाः प्राणिनो ये नोक्ता ते श्वावत्सारमेयवत्। ये चोपरिदंष्ट्रिणः सूकरादयस्ते श्वाच्छुनो यत्फलमुक्तं तत् तेषामपि। तथा च पराशरः–

शकुना पुंसनामानो वायसेन प्रकीर्तिताः।
तथैव स्त्रीसनामानः पिपील्याः परिकीर्तिताः।।इति।।५७।।

रुत अर्थात् ध्वनि और चेष्टा अर्थात् भोजन और उपवेशन, इसका फल एक कौवे का जो होता है वही फल दो कौवे का भी कहा गया है। 'अपि' शब्द से तीन और चार आदि संख्या में भी समान फल ही कहना चाहिए, जिनका यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया है, उन पक्षियों का फल उसी प्रकार से समझना चाहिए। वन्य अर्थात् वन में उत्पन्न जिन प्राणियों का उल्लेख यहाँ पर नहीं किया गया है उन सभी का फल श्वान अर्थात् सारमेय (कुत्ता) के समान होता है। जिनके दाँत ऊपर निकले होते हैं ऐसे सुअर आदि जंगली पशुओं के फल कुत्ते के फल के समान होते हैं। जैसा कि पराशर ने कहा है–

पुरुषवाचक जो भी पक्षी हैं उनको कौवे के समान फलप्रदायक कहा गया है, इसी प्रकार स्त्रीवाचक जो भी जीव हैं उनका फल चीटीं के समान समझना चाहिए।।५७।।

अथान्येषु प्राणिषु चेष्टितमाह–

स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो मेघकाले
प्रचुरसलिलवृष्ट्यै शेषकाले भयाय।
मधु भवननिलीनं तत्करोत्याशु शून्यं
मरणमपि च नीला मक्षिका मूर्ध्नि लीना।।५८।।

अन्य प्राणियों की चेष्टायों को कहते हैं–

वर्षा काल में स्थलचारी-प्राणी तथा जलचरजीव अपनी प्रकृति के विपरीत आचरण करें, तब वर्षा अत्यधिक होती है। इससे भिन्न काल में इनका विपरीत आचरण भयकारक होता है। भवन में मधुमक्खी के वास से भवन जन-शून्य हो जाता है। यदि नील-वर्ण की मक्खी सिर पर बैठे तो, मरण भी सम्भावित है।।५८।।

मेघकाले वर्षासमये स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो विपरीतः। स्थळचरा अजादयो जलचारिणः। जलचरा मत्स्यादयः स्थलचारिणो यदा भवन्ति, तदा ते प्रचुरसलिलवृष्ट्यै प्रभूतवृष्टये भवन्ति। शेषकाले वर्षातोऽन्यस्मिन् समये स्थल-सलिलचराणां व्यत्ययो भयाय भवति। मधुशब्देन मधुकर्च्यो मक्षिका उच्यन्ते। मधु भवने स्वयमेव निलीनं संश्लिष्टं तदेव भवनमाशु क्षिप्रं शून्यं निर्जनं करोति। नीला नीलवर्णा मक्षिका मूर्ध्नि शिरसि जन्तोर्लीना श्लिष्टा मरणं मृत्युमपि करोति।।५८।।

मेघ-काल अर्थात् वर्षा-ऋतु में स्थल एवं जलचर का यदि विपरीत स्वभाव हो, अर्थात् बकरे आदि स्थलचारी यदि जल में विचरण करें तथा मछली आदि जलचर जीव, स्थलभाग में आयें, तब ये प्रचुर सलिल अर्थात् पर्याप्त वृष्टि के कारण होते हैं। शेषकाल अर्थात् वर्षा से भिन्नकाल में स्थल एवं जल-चरों के विपरीत आचरण भयप्रद होते हैं। मधु यदि घर (मधुमक्खी का छत्ता) में स्वयं ही आकर सन्निविष्ट हो जाये, तब वह घर शीघ्र ही शून्य अर्थात् निर्जन हो जाता है। नीले रंग की मक्खी सिर पर चिपक जाये तब, मृत्यु भी कर देती है।।५८।।

पिपीलिकाचेष्टितमाह–

विनिक्षिपन्त्यः सलिलेऽण्डकानि

पिपीलिका वृष्टिनिरोधमाहुः।

तरुं स्थलं वापि नयन्ति निम्नाद्

यदा तदा ताः कथयन्ति वृष्टिम्।।५९।।

चींटी की चेष्टा बतलाते हैं-

चींटी यदि अपने अण्डों को जल में ले जाती हो तब वर्षा रुक जाती है। यदि अण्डे सहित नीचे से ऊपर की भूमि पर अथवा पेड़ों पर चढ़तीं हो तब, वे वर्षा होने की सूचना देती है।।५९।।

पिपीलिकाः सलिले जले अण्डकानि विनिक्षिपन्त्यो वृष्टिनिरोधं वृष्ट्यभावमाहुः कथयन्ति। निम्नात् तलात् तरुं वृक्षस्थलमुच्चस्थानं वापि यदि नयन्ति, तदा वृष्टिं वर्षणं कथयन्ति वदन्ति ताः पिपीलिकाः।।५९।।

जब चीटियां जल में अपने अण्डों को रखने लगे तब वृष्टि का निरोध अर्थात् अभाव व्यक्त करती हैं। नीचे के तल से वृक्ष पर अथवा किसी ऊँचे स्थान पर अण्डों को ले जाती हैं, तब वे चीटियाँ वर्षा होने की सूचना देती हैं।५९।।

अथ शकुननिश्चयमाह–

कार्यं तु मूलशकुनेऽन्तरजे तदह्नि

विन्द्यात् फलं नियतमेवमिमे विचिन्त्याः।

प्रारम्भयानसमयेषु तथा प्रवेशे

ग्राह्यं क्षुतं न शुभदं क्वचिदप्युशन्ति।।६०।।

शकुन का निश्चय बतलाते हैं–

मूल आरम्भिक शकुन में यात्रा करनी चाहिए। तत्पश्चात् यात्रा के मध्य होने वाले शकुन का फल उसी दिन मिल जाता है। इस प्रकरण में विवेचित सभी शकुनों के निर्धारित फल अवश्य मिलते हैं। यात्रा के आरम्भ तथा नवीनप्रवेश के समय शकुन का विचार करना चाहिये। छींकना सभी कार्यों में अशुभ होता है। इसको कभी भी ग्रहण नहीं करना चहिए।।६०।।

मूलशकुनः प्रथमशकुनः। तस्मिन् कार्य यात्राकार्यं विन्द्याज्जानीयात्। तस्मिन् शुभे यात्रासिद्धिः, अशुभेरसिद्धिरिति। अन्तरजे तदह्नीति। यातुर्मूलशकुनात् परतो यात्रापरिसमाप्तिं यावत् तदन्तरे मध्ये योऽन्यः शकुनः शुभाशुभो भवति तदन्तरजे तस्मिन्नन्तरजे मध्यजाते तस्य यत् फलं तदह्नि तस्मिन्नेव दिने विन्द्यात्। इमेऽस्मिन्नध्याये शकुना उक्तास्ते नियतं सर्वकालं विचिन्त्याश्चिन्तनीयाः। प्रारम्भे सर्वकर्मणां यानसमये

यात्राकाले तथा प्रवेशे गृहप्रवेशादौ। एतेषु कार्येषु सर्वेषु शकुनाश्चिन्तनीयाः। तथा क्षुतं नासाशब्दः सर्वथाग्राह्यम्। क्षुतं श्रुत्वा न किञ्चित् कार्यमित्यर्थः। यतः क्वचिदपि न शुभदमुशन्ति कथयन्ति। सर्वत्राशुभं क्षुतमिति।।६०।।

मूल-शकुन अर्थात् सर्वप्रथम होने वाले शकुन, इसमें यात्रा-कर्म का विचार करना चाहिए। शुभशकुन में यात्रा की सिद्धि और अशुभ में असिद्धि समझें। यात्री के मूल (प्रथम) शकुन से आरम्भ कर यात्रा की समाप्ति काल के मध्य जो दूसरे शुभाशुभ शकुन होते हैं, उनके जो शुभाशुभ फल हैं, वे उसी दिन हो जाते हैं, यह समझना चाहिए। इस अध्याय में जो शकुन कहे गये हैं, उनका विचार सभी समयों में किया जाना चाहिए। सभी प्रकार के कार्यों के आरम्भ में, यात्रा के समय तथा गृह-प्रवेश आदि प्रवेश के समय; इन सभी कार्यों में शकुन का विचार करना चाहिए। क्षुत अर्थात् नासिका का शब्द (छींक) सदा अग्राह्य है, अर्थात् छींक होने पर कुछ भी न करें। छीक को कहीं भी शुभ नहीं कहा गया है। अर्थात् छींक सभी जगहों पर अशुभ होती है।।६०।।

विशेष व्याख्या–

'क्षुत' शब्द का अर्थ छींकना है। अमरकोश २/६/५२ में कहा गया है–"स्त्री क्षुत् क्षुतं क्षवः पुंसि" अर्थात् क्षुत्, क्षुत और क्षवः; ये तीन शब्दा छिक्का (छींक) के पर्यायवाची हैं।

एतेषामेव शकुनानां प्रशंसार्थमाह–

शुभं दशापाकमविघ्नसिद्धिं
मूलाभिरक्षामथवा सहायान्।
दुष्टस्य संसिद्धिमनामयत्वं
वदन्ति ते मानयितुर्नृपस्य।।६१।।

शकुनों की प्रशंसा में कहते हैं–

शुभ-शकुनों के परिणामस्वरूप कार्य की निर्विघ्न सिद्धि होती है। मूल (मुख्य) पुरुष की रक्षा अथवा सहयोगियों की रक्षा होती है। दुष्टव्यक्ति (शत्रुपक्ष) अनुकूल सिद्ध हो जाता है तथा नैरुज्य प्राप्त होता है। ये फल शकुनों का सम्मान करने वाले राजा को प्राप्त होते हैं।।६१।।

ते शकुना नृपस्य राज्ञो मानयितुं पूजयितुस्तेषां मानयति पूजयति। तस्य

शकुनं वदन्ति कथयन्ति। शुभं शोभनं मूलस्थानम्, तत्राभिरक्षामाभिमुख्येन पालनम्। अथवा पथि गच्छतु सहायान् सार्थकान्। दुष्टस्य दुःसाध्यस्य शत्रोः संसिद्धिं सुखेनाक्लेशेन साधनम्। अनामयत्वं नीरोगत्वमेतत्सर्वं शुभसूचनाद् वदन्ति कथयन्ति।।६१।।

सभी शकुन सम्मान अर्थात् पूजा करने वाले राजा का सम्मान अर्थात् पूजन करते हैं। अर्थात् उसको ही वे शकुन संसूचित करते हैं। शुभशकुन के फल द्वारा अविघ्न अर्थात् रहित होकर कार्यों में सफलता मिलती है। मूल अर्थात् मूलस्थान की अभिरक्षा अर्थात् प्रमुखतया सुरक्षा होती है। अथवा मार्ग में साथ चलने वाले सहकर्मियों की सुरक्षा होती है। दुष्ट अर्थात् दुर्घर्ष शत्रु की, संसिद्ध शत्रु की, संसिद्धि अर्थात् सुखपूर्वक साधनता होती है। अनामय अर्थात् निरोगिता; ये सभी फल शुभ-शकुनों से कहे जाते हैं।।६१।।

अथानिष्टशकुनविरुते दृष्टे यत्कर्तव्यं तदाह—

क्रोशादूर्ध्वं शकुनविरुतं निष्फलं प्राहुरेके
तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत् पञ्च षट् च।
प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोडशैव द्वितीये
प्रत्यागच्छेत् स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः।।६२।।

अशुभ-शकुन के श्रवण अथवा दर्शन के कर्तव्य—

एक कोश से अधिर दूरी पर होने वाले शकुन-शब्द को कुछ आचार्य निष्फल मानते हैं। अशुभ प्रथमशगुन के अवसर पर ११ बार प्राणायाम करें। दूसरी बार अशुभ शकुन उपस्थित हो तब, १६ बार प्राणायाम करें। यदि तीसरी बार अशुभ-शकुन हो तब, अवश्य ही अपने घर को वापस आ जायें।।६२।।

एके आचार्याः काश्यपादयः क्रोशादूर्ध्वं क्रोशादनन्तरं यच्छकुनविरुतं तन्निष्फलं प्राहुरुक्तवन्तः। तथा च काश्यपः—

क्रोशादनन्तरं यत् स्याच्छुभं वा यदि वाऽशुभम्।
निष्फलं तच्च विज्ञेयं शकुनानां विचेष्टितम्।।

एवं क्रोशं यावच्छ्रूयमाणं सफलम्, क्रोशादनन्तरं निष्फलमिति। एतदाचार्यस्य नाभिप्रेतम्। तत्रानिष्टे प्रथमशकुन इति। तत्र तस्मिन् यात्राकाले प्रथम-शकुनेऽनिष्टे अशुभे सति नृपती राजा विहितमना निर्मलचित्तः पञ्च षट् च एकादश प्राणायामान् मानयेत् पूजयेत् कुर्यादित्यर्थः।

अथ प्राणायामलक्षणमाह—

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।

त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते।।

व्याहृतयः सप्त भवन्ति। ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐतपः। ॐसत्यम्। प्रणवः ॐकारः। शिरः आपो ज्योती रसोमृतम्। गायत्री प्रसिद्धा चतुर्विंशत्यक्षरा। आयतप्राणः परित्यक्तश्वासः। त्रिः त्रीन् वारान् पठेत्। अशुभे षोडशैव द्वितीये, द्वितीये शकुने अशुभे षोडश प्राणायामान् मानयेत् पूजयेत्, ततो व्रजेत्। अथ यदि तृतीयः शकुनोऽनिष्टोऽशुभस्तदा स्वभवनमात्मीयगृहं प्रत्यागच्छेत् प्रतीपमागच्छेदिति।।६२।।

।।इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुने वायसविरुतं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः।।९४।।

काश्यपादि एकाधिक आचार्यगण एक कोश की दूरी से अधिक अर्थात् कोश भ की दूरी के पश्चात् जो शकुन के शब्द हों, उनको निष्फल बतलाते हैं। जैसा कि आचार्य काश्यप ने कहा है–

"एक कोश से अधिक दूरी पर जो भी शुभाशुभ-प्रदायक शकुनों की चेष्टायें होती हैं, उनको निष्फल समझना चाहिए"।

इस प्रकार से कोश भर तक सुने जाने वाले शकुन सफल तथा कोश भर के पश्चात् शकुन निष्फल होते हैं। यह आचार्य का अभिमत नहीं है। यात्रा-काल में प्रथमशकुन के अनिष्ट अर्थात् अशुभ होने पर राजा निर्मल मन से पाँच और छः अर्थात् ग्यारह प्राणायामों को करे अर्थात् मानित करे।

प्राणायाम के लक्षण कहते हैं–

"व्याहृति के साथ प्रणव का उच्चारण करते हुए शीर्ष सहित गायत्रीमन्त्र का तीन बार दीर्घश्वाँस के साथ उच्चारण करने को प्राणायाम कहा जाता है।"

सात व्याहृतियाँ हैं। १. ॐ भूः, २. भुवः, ३. ॐ स्वः, ४. ॐ महः, ५. ॐ जनः, ६. ॐ तपः, ७. ॐ सत्यम्। ॐकार को प्रणव कहते हैं। "आपो ज्योती रसोमृतम्"–यह गायत्री का शिर है। २४ अक्षरों वाला गायत्री मन्त्र सुप्रसिद्ध है। आयत-प्राण अर्थात् श्वाँसों को छोड़ना। इसको तीन बार पढ़े। दूसरी बार अशुभ शकुन हो, तब १६ प्राणायामों को करे, तत्पश्चात् यात्रा करे। यदि तीसरा अशुभ अर्थात् अनिष्टसूचक शकुन हो, तब अपने घर को वापस आ जाये अर्थात् उल्टे अपने घर को वापस चल पड़े।।६२।।

।।श्रीभट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में शाकुनान्तर्गत वायसविरुत नामक अध्याय चौरानबें की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।९४।।

❋ ❋ ❋

।।अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।

शाकुनोत्तराध्यायः

अथ शाकुनोत्तरं व्याख्यायते।

दिग्देशचेष्टास्वरवासरर्क्षमुहूर्तहोराकरणोदयांशान्।

चरस्थिरोन्मिश्रबलाबलं च बुद्ध्वा फलानि प्रवदेद्रुतज्ञः।।१।।

शाकुनोत्तर नामक अध्याय ९४ की व्याख्या की जाती है।

दिशा, स्थान, कार्यव्यापार, ध्वनि, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, होरा, करण, लग्न, नवांश तथा चर, स्थिर और मिश्रसंज्ञक राशियों के बलाबल को देखकर ही शकुन-शास्त्र का ज्ञाता शुभाशुभ फलों का आदेश करे।।१।।

दिक् पूर्वाद्याङ्गारिताद्या च। देशः स्थानं शुभमशुभं वा। चेष्टा विहरणं व्यापारः। स्वरः शब्दो दीप्तः शान्तश्च। वासरो दिनम्। ग्रहचारतः शुभमशुभं च। ऋक्षं नक्षत्रं ध्रुवमृदुदारुणक्षिप्रोग्रचरसाधारणम्। मुहूर्तः शिवादिकः। होरा राश्यर्धम्, कालहोराश्च। शुभग्रहस्य सम्बन्धिन्योऽशुभस्य वा। करणं ववादिकरणं शुभमशुभं वा। उदयो लग्नम्। अंशो भागस्तेन द्रेष्काणनवांशद्वादशांशत्रिंशद्भागात्मकः। तथा चरा मेषकर्कटतुलामकराः। स्थिरा वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः। उन्मिश्रा द्विस्वभावाः, ते च मिथुनकन्याधन्विमीनाः। एषां शकुनानां राशीनां च बलाबलं बुद्ध्वा रुतज्ञः शकुनरुतज्ञः फलानि प्रवदेद् ब्रूयादित्यर्थः।।१।।

पूर्वादि (अंगारितादि) दिशाएँ, देश अर्थात् शुभाशुभ स्थान, आङ्गिक चेष्टायें अर्थात् उनका कार्य-व्यापार, दीप्त अथवा शान्तस्वर (शब्द), रविवार आदि दिन, ग्रहगोचर के अनुसार शुभ अथवा अशुभ ग्रह, ध्रुव-मृदु-दारुण-क्षिप्र-चर-उग्र और साधारण संज्ञकनक्षत्र, शिवादिक मुहूर्त, होरा अर्थात् १५ अंशात्मक राशियों का अर्धभाग (सूर्य-चन्द्र का होरा) और काल होरा, शुभ अथवा अशुभ के सूचक, बव आदि, शुभ अथवा अशुभ करण, उदय अर्थात् तात्कालिक लग्न, अंश अर्थात् षड्वर्ग-द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश त्रिंशांश आदि, चर अर्थात् १/४/७/१० राशियाँ तथा स्थिर अर्थात् २.५.८.११ राशियाँ एवं द्विस्वभाव अर्थात् ३.६.९.१२ राशियाँ, इन शकुनों और राशियों के बलाबल को जानकर शकुन-शब्दों का ज्ञाता विद्वान् शुभाशुभ फलों को कहे।।१।।

अथ तद्भेदप्रदर्शनार्थमाह–

द्विविधं कथयन्ति संस्थिताना-

मागामिस्थिरसंज्ञितं च कार्यम्।

नृपदूतचरान्यदेशजाता-

न्यभिघातः स्वजनादि चागमाख्यम् ।।२।।

शकुन के भेदों को कहते हैं–

प्राप्त (उपस्थित) शकुनों का तथा आगामी (भविष्य) और स्थिर (वर्तमान) संज्ञक-काल से, दो प्रकार का भेद करना चाहिए। राजा, गुप्तचर, परदेश से सम्बन्धित उपद्रवों और स्वजनों के आगमन का ज्ञान इनसे करना चाहिए।।२।।

शकुनसंस्थितानमेकदेशसंस्थानां पुंसां द्विविधं द्विप्रकारं कार्यं प्रवदन्ति कथयन्ति। कीदृशम्? आगामि स्थिरसंज्ञितं च। आगाम्येष्यत्। स्थिरं च वर्तमानमतीतं वा। तथान्यानि कार्याणि नृपदूतचारान्यदेशजातानि। नृपो राजा, दूतो गमागमिकः, चरः प्रसिद्धो गूढपुरुषः। अन्यदेशः परदेशः। एभ्यो जातान्युत्पन्नानि कथयन्ति। तथाभिघात उपद्रवः। स्वजनानां बन्धुसुहृदां चागम आगमनं तस्य चागतस्याख्यां नाम कथयन्ति।।२।।

शकुन के लिए उपस्थित व्यक्ति के दो प्रकार के कार्य कहे जाते हैं। कौन से कार्य? आगामी और स्थिरसंज्ञक। आगामी अर्थात् भविष्यकालिक और स्थिर अर्थात् वर्तमान अथवा भूतकालिक। नृप-दूत चरादि कार्यों का भी विचार करें। राजा, दूत अर्थात् सन्देशवाहक, चर अर्थात् गुप्त सूचना देने वाला, अन्यदेश अर्थात् परकीय देश (राज्य) इन सभी से होने वाले उपद्रवों का विचार। स्वजनों अर्थात् बन्धुओं और मित्रों के आगमन को भी इसके अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है।।२।।

अथ स्थिरचराणां ज्ञानमाह–

उद्बद्धसंग्रहणभोजनचौरवह्नि–

वर्षोत्सवात्मजवधाः कलहो भयं च।

वर्गः स्थिरोऽयमुदयेन्दुयुते स्थिरर्क्षे

विद्यात् स्थिरं चरगृहे च चरं यदुक्तम् ।।३।।

स्थिर एवं चर का ज्ञान बतलाते हैं–

उद्बद्धता (जड़ता), संग्रह, भोजन चोर, अग्नि, वर्षा, उत्सव, संतान, वध, कलह और भय; ये सभी स्थिर वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। स्थिर लग्न यदि चन्द्र युक्त हो तथा स्थिर राशि हो; तो निश्चित ही यह स्थिर अर्थात् अद्यतन वर्तमान अथवा पूर्वभूत का विषय है। यदि चर राशि और शकुन हो तो चर अर्थात् भविष्यकाल का विषय कहा जाता है।।३।।

उद्बद्धं संलग्नं तत्रैव संस्थितं गमागमवर्जितम्। संग्रहणं संयोगः केनचित् सह। भोजनमशनम्। चौरास्तस्कराः वह्निरग्निः। वर्षो वर्षणम्। उत्सवो विवाहादिः। आत्मजः पुत्रः। वधो मरणम्। एते। तथा कलहो डमरम्। भयं भीतिश्च। अयं वर्गः स्थिरः। चेच्छब्दोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः। एष वर्गो यदि स्थिर-स्थानेषूत्पन्नः स्थिरस्थानस्थितेन शकुनेन सूचितस्तदा चरसंज्ञः। एदतुक्तं भवति-प्रागुक्तेन चेष्टितन वक्ष्यमाणेनैव यद्येतानि कार्याणि शकुनेन सूचितानि, तदैतानि वृत्तान्युत वैतानि एष्याणीत्येतदर्थमुक्तम्। उदयेन्दुयुते स्थिरर्क्ष इति। यद्येष वर्गः स्थिरो भवति तथोदयलग्ने स्थिरराशिर्भवति। इन्दुयुतं चन्द्रसंयुक्तं स्थिरर्क्षं स्थिरराशिर्भवति, तदैव तत्स्थितं वर्तमानं तस्मिन्नेवाहनि भवति, भूतं वेति विन्द्याज्जानीयात्। चरगृहे लग्ने चरराशाविन्दुसंयुक्ते चरस्थानस्थे च शकुने यदुक्तमुद्बन्धादि तत्सर्वमेव चरं विन्द्यात् पुरस्ताद्भविष्यतीति।।३।।

उद्बद्ध अर्थात् संलग्न–जो कि आवागमन से रहित सुस्थिर हो, संग्रहण अर्थात् किसी के साथ संलग्न, भोजन, चोर (तस्कर), अग्नि, वर्षा, विवाहादि उत्सव कर्म, पुत्र, वध (हत्या)-अथवा मरण, कलह (विवाद) और भय; ये सभी विषय स्थिर-वर्ग के होते हैं। 'चेत्' अर्थात् "यदि" शब्द का प्रयोग इस पद में लुप्त है। स्थिर स्थान में स्थित शकुन के द्वारा ये विषय चरस्थानीय कहे जाते हैं। इसका तात्पर्यार्थ यह है कि पूर्वोक्त तथा आगे कहे जाने वाले शकुनों के द्वारा सूचित होने पर ये सभी विषय 'एष्य' अर्थात् भविष्य में होते हैं। ये सभी वर्ग स्थिर होते हैं, यदि स्थिरराशि का स्थिरलग्न हो। चन्द्रमा स्थिर राशि का हो; तब ये विषय वर्तमानकाल में उसी दिन फलित होते हैं, अथवा कुछ काल पहले भूतकाल में घटित हो चुके होते हैं, यह समझना चाहिए। चरराशि का लग्न हो और चरराशि का चन्द्रमा हो तथा चरस्थानीय शकुन हो; तब पूर्वोक्त बन्धादि सभी विषय चर अर्थात् भविष्य में घटित होने वाले होते हैं।।३।।

अथ स्थिरचरयोर्लक्षणमाह–

स्थिरप्रदेशोपलमन्दिरेषु सुरालये भूजलसन्निधौ च।
स्थिराणि कार्याणि चराणि यानि चलप्रदेशादिषु चागमाय।।४।।

स्थिर एवं चर का लक्षण कहते हैं–

स्थिर प्रदेश-पथरीला स्थान, मन्दिर (गृह), देवालय, भूमि एवं जल के समीप के स्थान होते हैं और इनका स्थिरकाल अर्थात् भूतकाल होता है। चल प्रदेशों में उत्पन्न शकुन, चर अर्थात् भविष्यत्काल में होते हैं।।४।।

स्थिरप्रदेशः स्थिरस्थानम्। निश्चलम्। उपलोऽश्म। मन्दिरं गृहम्। एतेषु

स्थानेषु। सुरालये देवगृहे। भूजलसन्निधौ भूमौ तथा जलसन्निधौ तत्समीपे। एतेषु स्थानेषु शकुनेषु स्थिराणि कार्याणि शुभाशुभानि भवन्ति। ये शकुनाश्चल-प्रदेशादिषु चलेषु स्थिरेषु प्राणिष्वादिग्रहणाच्चलेषु तृणकाष्ठादिषु यानि चराणि, ते आगमायागामिने पक्षावसानानि पुनः पुरस्ताद्भविष्यन्ति।।४।।

स्थिर-प्रदेश अर्थात् गतिहीन स्थान, उपल अर्थात् पत्थर, मन्दिर अर्थात् गृह, सुरालय अर्थात् देवमन्दिर, भूमि एवं जल का समीपवर्ती स्थान; इन स्थानों पर शकुन के होने पर स्थिर कार्यों के शुभाशुभ फल होते हैं। जो शकुन चल प्रदेशों में (आदि शब्द से चल प्राणियों में) होते हैं, वे चर अर्थात् आगामी काल (पक्षान्त) में होते हैं।।४।।

अथ वर्षज्ञानमाह–

आप्योदयर्क्षक्षणदिग्जलेषु
पक्षावसानेषु च ये प्रदीप्ताः।
सर्वेऽपि ते वृष्टिकरा रुवन्तः
शान्तोऽपि वृष्टिं कुरुतेऽम्बुचारी।।५।।

वर्षा का ज्ञान कहते हैं–

जलराशि का लग्न, जलीय-नक्षत्र, जल-मुहूर्त जल की दिशा, जलीय-स्थान, पक्षों के अन्त (१५-३० तिथि) तथा प्रदीप्त शकुन; ये सभी वर्षाकारक होते हैं। जलचारी शकुन ध्वनि करते हों अथवा शान्त हों, तब भी इन योगों से वर्षा होती है।।५।।

आप्योदयाः कर्कटमकरमीनाः। आप्यमृक्षं पूर्वाषाढा शतभिषक् च। आप्यं मुहूर्तं जलसंज्ञं वारुणं च। आप्या दिग्वारुणी यत्र जलं सन्निहितं तज्जलस्थानम्। एतेष्वाप्योदयर्क्षक्षणदिग्जलेषु ये स्थिता उत्पाताः शकुनास्तथा पक्षावसाने अमावस्यायां पौर्णमास्यां वाऽन्ते ये स्थितास्ते च दीप्ता देवदीप्ताः क्रियादीप्ताश्च भूता रुवन्तः क्रोशन्तः सर्वे निशेषा अपि वृष्टिकरा वृष्टिं वर्षणं कुर्वन्ति। अम्बुचारी यः शकुनो जलचरः शान्तोऽप्याप्यादिषु स्थितो वृष्टिं कुरुते।।५।।

जल-लग्न अर्थात् कर्क, मकर और मीन राशियाँ, जलीय-नक्षत्र अर्थात् पूर्वाषाढ़ और शतभिषा नक्षत्र, जलीय मुहूर्त अर्थात् जलसंज्ञक वारुण मुहूर्त, जलीय-दिशा अर्थात् पश्चिम (वारुणी) दिशा, जहाँ पर जल स्थित हो, वे जल स्थान–इन सभी जल-लग्नादि में स्थित दीप्त अर्थात् देवदीप्त और क्रियादीप्त तथा क्रोशमान अर्थात् रोने की ध्वनि करने वाले; ये सभी योग्यवर्षा के कारक होते हैं। जो जलचारी शकुन हैं, वे शान्त रहने पर भी जल-लग्नादि होने पर वर्षा करते हैं।।५।।

अथाग्नेयभयदोषज्ञानमाह–

आग्नेयदिग्लग्नमुहूर्त्तदेशे-
ष्वर्कप्रदीप्तोऽग्निभयाय रौति।
विष्ट्यां यमर्क्षोदयकण्टकेषु
निष्पत्रवल्लीषु च दोषकृत् स्यात्।।६।।

अग्निभयकारक दुर्योगों को कहते हैं-

अग्नि-दिशा (आग्नेयकोण), अग्निलग्न, अग्नि-मुहूर्त, अग्नि-स्थान; इनमें सूर्य से प्रदीप्त शकुन रुदन करता हो, तब अग्नि-भय का कारण होता है। विष्टि अर्थात् भद्राकरण में, यमराशि के लग्न में, कँटीले वृक्षों में, पत्रविहीन वृक्षों और लताओं में शकुन होने पर अग्निदोष उत्पन्न होता है।।६।।

आग्नेयी दिक् पूर्वदक्षिणा। आग्नेयलग्नाः क्रूरराशयः। यथा मेषसिंह-वृश्चिकमकरकुम्भाः। आग्नेयो मुहूर्तोऽग्निनामा। आग्नेयमपि नक्षत्रं कृत्तिकाः। आग्नेयो देशो यत्राग्निरस्ति। एतेषु स्थानेष्वर्कप्रदीप्तः शकुनो विरौति क्रोशति यदि तदाग्निभयाय भवति। विष्ट्यामिति। विष्ट्यां करणे। यमः सौरः। तस्यर्क्षे मकरकुम्भौ। तयोरुदये। तथा कण्टकेषु कण्टकिवृक्षेषु। तथा ष्पित्रासु पत्र-रहितासु वल्लीषु स्थितोऽर्कप्रदीप्तो दोषकृद्दोषं करोति।।६।।

आग्नेयी अर्थात् पूर्व-याम्य दिशा कोण (अग्निकोण) की दिशा, आग्नेय लग्न अर्थात् मेष-सिंह-वृश्चिक-मकर और कुम्भ (ये क्रूरराशियाँ), अग्निसंज्ञक मुहूर्त अर्थात् अग्निमुहूर्त, आग्नेयनक्षत्र अर्थात् कृत्तिकानक्षत्र, जहाँ पर अग्नि विद्यमान हो, वह अग्नि-प्रदेश; इन स्थानों पर सूर्य-प्रदीप्त शकुन शब्द करता हो, तो वह अग्नि-भय का कारक होता है। विष्टि (भद्रा) करण, यम अर्थात् शनि की राशियाँ मकर और कुम्भ; ये उदयलग्न में हों तथा काँटे वाले वृक्षों और बिना पत्ते वाली लताओं पर सूर्यदीप्त शकुन हो, तो वह दोषकारक होता है।।६।।

अथ कलहज्ञानमाह-

ग्राम्यः प्रदीप्तः स्वरचेष्टिताभ्या-
मुग्रो रुवन् कण्टकिनि स्थितश्च।
भौमर्क्षलग्ने यदि नैर्ऋतीं च
स्थितोऽभितश्चेत् कलहाय दृष्टः।।७।।

कलहसूचक शकुन को कहते हैं-

ग्राम्य-शकुन अपने शब्द एवं चेष्टाओं से प्रदीप्त होकर तीव्र ध्वनि करता हुआ कँटीले वृक्ष पर नैर्ऋत्य दिशा (दक्षिण-पश्चिम कोण) में स्थित हो और भौम का लग्न

(१,८) हो, तब वह कलहकारक होता है, ऐसा दखा गया है।।७।।

ग्रामे भवो ग्राम्यः शकुनः, स च स्वरचेष्टिताभ्यां प्रदीप्तः। स्वरेण शब्देन चेष्टया वा प्रदीप्तः। उग्रस्तीव्रो रुवन् क्रोशन्। कण्टकिनि सकण्टके वृक्षे स्थितः। भौमर्क्षे मेषवृश्चिकौ तयोरन्यतमे लग्ने। स च शकुनो यदि नैर्ऋतीं च स्थितो भवति, नैर्ऋत्यां दिशि समवस्थितः। अभितः सम्मुख उभयतश्चेद्यदि वामदक्षिणपार्श्वयोस्तदा स दृष्टोऽवलोकितः कलहाय भवति, कलहं करोति।।७।।

गाँव में उत्पन्न होने वाला ग्राम-शकुन, वह स्वर से अर्थात् अपने शब्दों से तथा चेष्टाओं से प्रदीप्त (उद्दीप्त) होकर काँटा युक्त वृक्ष पर स्थित होकर मंगल के लग्न अर्थात् मेष अथवा वृश्चिक में से किसी भी एक लग्न के उदित होने पर, नैऋत्यकोण की दिशा में स्थित होकर सम्मुख तथा बाएँ और दाहिने देखता हुआ स्थित रहे, तब वह कलह कराता है।।७।।

अथ संग्रहणमाह—

लग्नेऽथवेन्दोर्भृगुभांशसंस्थे
विदिक्स्थितोऽधोवदनश्च रौति।
दीप्तः स चेत् संग्रहणं करोति
१योन्या तया या विदिशि प्रदिष्टा।।८।।

संयोगकारक शकुन बतलाते हैं—

कर्कलग्न हो और शुक्र का नवमांश (तुला) हो तथा शकुन कोण-दिशा में नीचे मुख कर स्थित होता हुआ शब्द करे और दीप्त हो, तब वह स्त्री-संयोग कराता है। "अन्या" अर्थात् परकीया स्त्री से, उस कोण में जो रहती हो, उससे संयोग कराता है।।८।।

अथवा इन्दोर्लग्ने कर्कटे तस्मिंश्च भृगुभांशसंस्थे। भृगोः शुक्रस्य भांशो नवांशको भृगुभांशः। कर्कटस्य तुलनवांशक इत्यर्थः। तस्मिल्लग्नस्थे शकुनो विदिक्स्थितो विदिशमवस्थितः। तत्र चाधोवदनोऽधोमुखश्च विरौति शब्दं करोति। स चेद्यदि दीप्तः स्थानदीप्तः शब्ददीप्तश्च, तदा संग्रहणं संयोगं करोति, कया? स्त्रिया सह। योन्या तया वा विदिशि प्रदिष्टा तस्यां विदिशि यस्या योनिरुत्पत्तिः प्रदिष्टोक्ताः स्त्रीणां विकल्पे बृहती कुमारीत्यादि। तया सह संग्रहणं करोति। केषाञ्चित् पाठः योऽन्योऽनुयायाद्दिशि सम्प्रदिष्टः। तस्यां दिशि अनुपश्चात् सम्प्रदिष्टः सम्यक्प्रेषितो योऽन्योऽपरो यायाद् गच्छेत् तेन सह संयोग इति।।८।।

---

१. योऽन्योऽनुयायाद् दिशि सम्प्रदिष्ट इति पाठान्तरम्।

अथवा दूसरा योग कहते हैं। चन्द्रमा का लग्न अर्थात् कर्क लग्न हो, शुक्र का नवांश अर्थात् तुला का नवांश हो। इस प्रकार का लग्न हो और शकुन विदिशा (कोणदिशा) में स्थित हो तथा नीचे मुखकर शब्द करता हो, एवं वह दीप्त अर्थात् स्थान-दीप्त और शब्द-दीप्त हो, तब संयोग कराता है। किसके साथ? स्त्री के साथ संयोग कराता है। उस कोण की दिशा में जिस प्रकार की योनि की उत्पत्ति पूर्व में कही गई है उस प्रकार की स्त्री से संयोग कराता है। स्त्री के विकल्प में "बृहती कुमारी" का संयोग समझना चाहिए। इसके पाठान्तर का अर्थ करते हुए कहा जाता है कि, जो अनु अर्थात् पश्चात् प्रेषित हो, जो कोई दूसरा व्यक्ति बाद में आवे-उसके साथ संयोग (मिलाप) कराता है।।८।।

विशेष व्याख्या–

'बृहती' शब्द कण्टकारी (भटकटैया) के लिए अमरकोश (२.४.९३) में वर्णित है। शाश्वतकोशकार में क्षुद्रास्त्री का व्यवहार माना है। मेदिनी कोश में क्षुद्रा, नटी और वेश्या अर्थ में यह शब्द ग्राह्य है।

पुनरप्याह–

पुंराशिलग्ने विषमे तिथौ च
दिक्स्थः प्रदीप्तः शकुनो नराख्यः।
वाच्यं तदा संग्रहणं नराणां
मिश्रे भवेत् पण्डकसम्प्रयोगः।।९।।

और भी कहते हैं–

पुरुषसंज्ञक लग्न एवं विषम संख्यक तिथियों में तथा पूर्वादि प्रमुख चार दिशाओं में यदि पुरुषशकुन प्रदीप्त हो, तब पुरुष का संयोग कहना चाहिए। लग्न, तिथि आदि के मिश्रित योग में पण्डक अर्थात् नपुंसक के साथ संयोग कहना चाहिए।।९।।

पुंराशयो मेषादयः षड् विषमा मेषमिथुनसिंहतुलाधन्विकुम्भाः विषमास्तिथयः संख्यया प्रतिपत् तृतीया पञ्चमी सप्तमी नवमी एकादशी त्रयोदशी पञ्चदशी चेति। नराख्यः पुरुषाख्यः शकुनो दिक्स्थितो दिशि पूर्वस्यां दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां वा स्थितः प्रदीप्तश्च यदि भवति तदा नराणां पुरुषाणां वा संग्रहणं संयोगो वाच्यं वक्तव्यम्। मिश्रे भवेत् पण्डकसम्प्रयोगः, पुंराश्यादिषु वर्गे मिश्रे स्थिते पुरुषराशिवर्गे लग्ने समायां तिथौ व्यत्यये वा। विदिक्स्थितः पुरुषः शकुनो विदिक्स्थितः स्त्रीसंज्ञो वा तदा पण्डकसम्प्रयोगो नपुंसकेन सह समायोगो भवति।।९।।

पुरुषराशि अर्थात् छः विषम १,३,५,७,९,११ राशियाँ, विषम तिथि अर्थात् १,३,५,७,९,११,१३,१५ तिथियाँ, नर अर्थात् पुरुष-वाचक शकुन, मुख्य दिशा में स्थित अर्थात् पूर्वदिशा, दक्षिणदिशा, पश्चिमदिशा अथवा उत्तरदिशा में स्थित और प्रदीप्त हो, तब पुरुषों का संयोग कहना चाहिए। पुरुष राश्यादि में मिश्रित हो अर्थात् पुरुषराशि का लग्न और समतिथि हो, अथवा इसके विपरीत हो, विदिक् अर्थात् कोणस्थ दिशाओं में पुरुषशकुन अथवा कोणदिशा में स्त्रीसंज्ञक शकुन हो तब नपुंसक के साथ संयोग होता है।।९।।

विशेष व्याख्या–

पण्डक–इसका अर्थ नपुंसक है। अमरकोश (२.९.३९) में कहा गया है– तृतीया प्रकृतिः शण्ढः क्लीबः पण्डो नपुंसकम्।

पुनरप्याह–

एवं रवेः क्षेत्रनवांशलग्ने
लग्ने स्थिते वा स्वयमेव सूर्ये।
दीप्तोऽभिधत्ते शकुनो विरौति
पुंसः प्रधानस्य हि कारणं तत्।।१०।।

पुनः कहते हैं–

इस प्रकार के योग में रवि-राशि सिंह का लग्न अथवा सिंह का नवमांश हो, अथवा सूर्य स्वयं ही लग्नस्थ हो और दीप्तशकुन शब्द करता हो, तब प्रधानपुरुष का आगमन होता है।।१०।।

पुंराशिवर्ग इति सर्वमनुवर्तते। एवमनेन प्रकारेण रवेरादित्यस्य क्षेत्रनवांशलग्ने। रविक्षेत्रं सिंह एव। तात्कालिकगते रविक्षेत्रे सिंहेऽथवान्यस्मिन् राशौ लग्नगते तत्काले सिंहनवांशके। अथवा स्वयमेव सूर्ये रवौ तात्कालिके लग्ने स्थिते दीप्तः शकुनो विरौति क्रोशते। तदा प्रधानस्य मनुष्यस्य तत्कारणमागमनमभिधत्ते करोति।।१०।।

पुरुषराशि एवं पुरुषवर्ग का यहाँ पर सर्वत्र अन्वय करना चाहिए। इस प्रकार से रवि का क्षेत्र सिंह तात्कालिक लग्न हो, अथवा किसी भी दूसरे लग्न में सिंह का नवमांश चल रहा हो, अथवा सूर्य तात्कालिक लग्न में स्थित हो और दीप्त शकुन ध्वनि करे तब इस योग के कारण प्रधानव्यक्ति का आगमन होता है।।१०।।

अथ प्रकारान्तरेण कर्मणां विधानमाह–

प्रारम्भमाणेषु च सर्वकार्येष्वर्कान्विताद्भाद्गणयेद्विलग्नम्।
सम्पद्विपञ्चेति यथा क्रमेण सम्पद्विपच्चेति तथैव वाच्या।।११।।

प्रकारान्तर से कार्यों का फल विधान कहते हैं–

सूर्यस्थ लग्न (राशि) से, प्रारम्भ किये गये सभी प्रकार के कार्यों के आरम्भ-लग्न तक, गणना करें। सूर्य राशि सम्पत् तथा तत्पश्चात् विपत् इस क्रम से गणना कर कार्य के सम्पत् अथवा विपत् का आदेश करें।।११।।

सर्वकार्येषु सर्वकर्मसु प्रारम्भमाणेषु क्रियमाणेषु अर्कान्विताद् भात्, अर्क आदित्यस्तेनान्वितं युक्तं यद्भं राशिस्तस्मादारभ्य विलग्नराशिं यावद् गणयेदिति सम्पद्विपच्चेति। यस्मिन् राशावर्कः स्थितः स सम्पत्, ततो द्वितीयो विपत्संज्ञः, ततस्तृतीयः सम्पत्संज्ञः। एवं क्रमेण गणयेद्यावल्लग्नराशिम्। येन लग्नप्रारम्भस्तथा तेनैव प्रकारेण कर्मणां सम्पद्विपच्चेति वाच्या। एवं कार्याणां सम्पत्तिर्विपत्तिश्च विज्ञातव्या।।११।।

सभी प्रकार के क्रियमाण कार्यों के प्रारम्भ होने पर सूर्याधिष्ठित राशि से प्रारम्भ कर कार्यारम्भ लग्न तक सम्पत्-विपत् की गणना करें। तात्पर्य यह है कि जिस राशि में सूर्य स्थित हो वह सम्पत् उससे दूसरी राशि विपत्, तीसरी राशि सम्पत् पुनः चौथी राशि विपत् इत्यादि क्रम से लग्नराशि तक गणना करें। जिस लग्न में कार्यारम्भ हो उसके सम्पत् अथवा विपत् क्रम के होने पर, उस कार्य का परिणाम सम्पत् युक्त अथवा विपत् युक्त कहना चाहिए। कार्यों की सम्पत्ति अथवा विपत्ति का ज्ञान इस प्रकार किया जाना चाहिए।।११।।

विशेष व्याख्या–

।।स्पष्टार्थ चक्र।।

सूर्यराशि से	१	२	३	४	५	६
फल	सम्पत्	विपत्	सम्पत्	विपत्	सम्पत्	विपत्
सूर्यराशि से	७	८	९	१०	११	१२
फल	सम्पत्	विपत्	सम्पत्	विपत्	सम्पत्	विपत्

सूर्यराशि से कार्यारम्भ लग्नराशि तक गणना कर एकादि जो भी संख्या आवे उसका फल इस चक्र से ज्ञात करें।

अथागतस्याकृतिज्ञानमाह—

काणेनाक्ष्णा दक्षिणेनैति सूर्ये
चन्द्रे लग्नाद् द्वादशे चेतरेण।
लग्नस्थेऽर्के पापदृष्टेऽन्ध एव
कुब्जः स्वर्क्षे श्रोत्रहीनो जडो वा।।१२।।
क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो विलग्नाद्
यस्मिन् राशौ तद् गृहाङ्गे व्रणोऽस्य।
एवं प्रोक्तं यन्मया जन्मकाले
चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन् विचिन्त्यम्।।१३।।

आगन्तुक की आकृति का ज्ञान बतलाते हैं–

यदि लग्न से बारहवें भाव में सूर्य हो तो दाहिने नेत्र के काने व्यक्ति से संयोग होता है, तथा लग्न से द्वादश स्थान में चन्द्रमा के होने पर पर बाएँ नेत्र से काने व्यक्ति से संयोग होता है। लग्नगत सूर्य पापग्रह से दृष्ट हो, तो अन्धे से संयोग होता है। सूर्य स्वगृही लग्न में हो तब कुबड़े, अन्धे अथवा मूर्ख से संयोग होता है॥१२॥

लग्न से छठे भाव में पापग्रह यदि क्रूरग्रह से दृष्ट हो, तब जिस राशि में छठा भाव हो उस राशि के अङ्ग पर वर्ण का चिह्न कहना चाहिए। कालनर का अंग विभाग कर जन्मकालिक व्रणादि का जो विचार किया जाता है, वही विचार यहाँ पर भी अंगों के लक्षणों हेतु करना चाहिए॥१३॥

काणेनाक्ष्णा दक्षिणेनेति। येन सह संयोगो ज्ञातः स च कीदृगिति। यदि तात्कालिकाल्लग्नात् सूर्य आदित्यो द्वादशे स्थाने स्थितः, स पुरुषो दक्षिणेनाक्ष्णा काण एवाऽऽगच्छति। चन्द्रे लग्नाद् द्वादशे स्थाने स्थिते चेतरेण वामेनाक्ष्णा काण एवेति। अर्थादिवार्कचन्द्रयोर्द्वयोरपि द्वादशयोरन्ध् एव। लग्नस्थेऽर्के प्राग्लग्नस्थिते सूर्ये पापाभ्यां भौमसौराभ्यामीक्षितेऽन्ध एव नेत्रहीनः। स्वर्क्षे सिंहलग्नगते तत्रस्थे चार्के कुब्जः श्रोत्रहीनो वधिरो जडो वा मूर्खः प्रभवति।।१२।।

जिसके साथ संयोग होना है, वह किस प्रकार का होगा यह विचार करते हैं। यदि तात्कालिकलग्न से सूर्य द्वादशस्थान में स्थित हो, तो वह पुरुष दक्षिणनेत्र से काना होता है। चन्द्रमा यदि लग्न से द्वादश स्थान में हो तो वह वाम-नेत्र से काना

होता है। यदि द्वादशस्थान में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, तब अंधा होता है–यह भी तात्पर्यार्थ हैं।, लग्नस्थित सूर्य पापग्रहों अर्थात् मंगल और शनि से दृष्ट हो, तो वह नेत्रहीन होता है। तात्कालिक सिंहलग्न में सूर्य हो, तब वह संयोगी व्यक्ति कुबड़ा, बहरा अथवा जड़ अर्थात् मूर्ख होता है॥१२॥

क्रूरः षष्ठ इति। विलग्नात् स्पष्टलग्नात् षष्ठस्थाने क्रूरः पापग्रहः आदित्याङ्गारकशनैश्चारणामन्यतमो भवति। स च क्रूरदृष्टः पापावलोकितो यदि भवति, तदा तद्गृहाङ्गे। स च षष्ठस्थानस्थो राशिः कालपुरुषस्य यस्मिन् ''कालाङ्गानि वराङ्गम्'' [१]इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तः। तस्मिन्नङ्गे तस्य व्रणो वक्तव्यः। एवमनेन प्रकारेण जन्मकाले जातकसमये यदुक्तं कथितं चिह्नं लक्ष्म रूपमाकारं तत्सर्वमस्मिन् प्रकरणे चिन्त्यं चिन्तनीयम्। यथा–''त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्तथापरैर्मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणैस्तदा भवेत्''[२]। यथा–

सौम्यर्क्षांशे[३] रविजरुधिरौ चेत् सदन्तोऽत्र जातः
कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे।
पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे
सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत् सौम्यदृष्टिः॥
सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने।
धीनवमोदयगैश्च दृकाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात्॥
रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते
नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुद्लोचनः।
व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-
रशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः।
एवमादि। तथानिष्टयोगाध्यायोक्तं सर्वं चिन्तनीयमिति॥१३॥

स्पष्टलग्न से षष्ठभाव में क्रूरग्रह अर्थात् रवि, भौम और शनि में से कोई भी ग्रह हो और वह पापग्रह से देखा जाता हो, तब वह षष्ठ भागवत राशि काल-पुरुष के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है, उस अंग पर उस व्यक्ति को व्रणादि चिह्न होते हैं। इस प्रकार से जातक के जन्मकालिक कालपुरुष के अंगों के अनुसार जिन

---

१. बृहज्जातके १ अध्यायस्य ४ श्लोकः।

२. बृहज्जातके ४ अध्यायस्य १७ श्लोकः।

३. बृहज्जातके ४ अध्यायस्य १८-२० श्लोकाः।

चिन्हादिकों का कथन है, उन सभी का इस प्रकरण में विचार करना चाहिए। जैसा कि "त्रिकोण में बुध स्थित हो तथा अन्य ग्रह निर्बल हों, तब मुख, हस्तादि पर द्विगुणित व्रण का होना कहा गया है।" जैसा कि–

यदि बुध की राशि और बुध के नवमांश में शनि और मंगल हों तब जातक दाँतों सहित पैदा होता है। चन्द्रमा अपनी राशि कर्क का लग्नस्थ हो तथा शनि और मंगल से देखा जाता हो, तब जातक कुबड़ा होता है। मीन लग्न हो और शनि, चन्द्र तथा मंगल से वह दृष्ट हो, तब जातक लंगड़ा होता है। लग्न की सन्धि में पापग्रह तथा चन्द्रमा हो तथा शुभग्रह की दृष्टि उस पर न हो, तब जातक जड़ (मूर्ख) होता है।

मकर अथवा मीन लग्न हो तथा वह शनि, चन्द्र और रवि से दृष्ट हो, तब जातक वामन (छोटा कद वाला) होता है। लग्न से पञ्चम अथवा नवम द्रेष्काण पापयुक्त हो, तब जातक बाँह और कन्धे तथा शिराओं से रहित होता है। सिंहलग्न हो तथा वह रवि-चन्द्र से युक्त हो और वह मंगल तथा शनि से दृष्ट हो, तब वह जातक नेत्रहीन (अन्धा) होता है। शुभाशुभ मिश्रित ग्रहों से दृष्ट होने पर जातक बुद्-बुद् नेत्रों वाला अर्थात् आँख भीचने वाला होता है। व्ययभाव में स्थित चन्द्रमा वामनेत्र का विनाशक तथा व्ययस्थ सूर्य दक्षिण-नेत्र का का विनाशक होता है। ये अशुभ योग शुभग्रहों की दृष्टि होने पर अल्पफल देते हैं, अथवा इनका अशुभफल नहीं होता है।

इस प्रकार के अन्य फल भी जो कि अनिष्टाध्याय में कहे गये हैं, उन सबका विचार करना चाहिए।।१३।।

विशेष व्याख्या–

कालपुरुषाङ्ग विचार 'जातक पारिजात' ग्रन्थ के अनुसार मेषादि राशियों के क्रम से निम्नवत् है–१. शिर, २. मुखभाग, ३ वक्ष, बाहु, ४. हृदय, ४. उदर, कुक्षि, ६. कटि, ७. वस्ति, ८. लिङ्ग, ९. उरू, १०. जानु, ११. जंघा, १२. चरण।

❄ ❄ ❄

यवनेश्वरकृत अक्षरकोश

(अथाऽऽगतस्याख्याज्ञानमचार्यः करोति। तच्चाल्पबहुलं स्वल्पग्रंथं मृदुबुद्धीनाम-गम्यतोऽस्माभिस्तदेव बोधियात्रायां [1]यवनेश्वरकृतश्चाक्षरकोशो व्याख्यायते।

आगन्तुक के विषयवस्तु के ज्ञान को अब आचार्य कहते हैं। यह ज्ञान लघुग्रन्थ अर्थात् संक्षिप्तरूप में मन्दबुद्धि के छात्रों द्वारा बोधगम्य नहीं है। इसको हम 'बोधियात्रा' में यवनेश्वर कृत अक्षरकोश के विषय का यहाँ पर व्याख्या करते हैं।

तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

अतः परं लोकनिरूपितानि
द्रव्येषु नानाक्षरसंग्रहाणि।
इष्टप्रणीतानि विभाजितानि
नामानि केन्द्रक्रमशः प्रवक्ष्ये।।१।।

प्रारम्भ में इसका प्रयोजन कहते हैं—

एतपश्चात् लोक में निरूपित द्रव्यों के निमित्त विविध वर्णों के संग्रह को, जो कि श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा कहा गया तथा विभक्त किया गया है, उसे केन्द्रादि के क्रम से कह रहा हूँ।।१।।

अतोऽस्मात् प्रश्नज्ञानात् परमनन्तरं लोकनिरूपितानि लोकैर्जनैर्निरूपितानि सर्वलोकप्रसिद्धानि द्रव्येषु धातुमूलजीवेषु नानाक्षरेभ्योऽनेकप्रकारवर्णेभ्यः संग्रहो येषां तानि। संग्रह एकीकरणम्। इष्टप्रणीतानि, इष्टैराप्तैर्नारायणार्कवसिष्ठपराशरमयप्रभृतिभिः प्रणीतानि निर्मितानि। विभाजितानि विभागीकृतानि नामानि संज्ञारूपाण्यभिधानानि केन्द्रक्रमशश्चतुष्टयपरिपाट्या प्रवक्ष्ये कथयिष्ये।।१।।

इस प्रश्नज्ञान के अनन्तर लोकप्रसिद्ध धातु, मूल और जीव; इन तीन द्रव्यों से विविध वर्णों द्वारा संग्रह अर्थात् एकीकरण को कहता हूँ। यह इष्ट प्रणीत अर्थात् आप्त पुरुषों—नारायण, सूर्य, वशिष्ठ, पाराशर और मय आदि के द्वारा, निर्मित है। यह विविध क्रमों में विभक्त और विविध संज्ञाओं से निर्दिष्ट तथा केन्द्रादि चतुष्टय (१,४,७,१०) की परम्परानुसार है, जिसको यहाँ कहा जायेगा।।१।।

---

१. यवनेश्वरकृत इति घ. पु. पाठः।

तत्र क्रमज्ञानमाह–

लग्नाम्बुसंस्थास्तनभःस्थितेषु
क्षेत्रेषु ये लग्नगता गृहांशाः।
तेभ्योऽक्षराण्यात्मगृहाश्रयाणि
विन्द्याद् ग्रहाणां स्वगणक्रमेण।।२।।

क्रमज्ञान को बतलाते हैं–

उदयलग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान में स्थित राशियों के गृहांश अर्थात् मेषादि राशियों के नवमांश, जो तात्कालिक लग्नादि में प्राप्त हों, उन राशियों के अंशों में अक्षरों को स्वभवन के अनुसार निर्धारित किया जाता है। सूर्यादि ग्रहों के आत्मगृह अर्थात् स्वराशि को पूर्वपरम्परा के अनुसार ही जानना चाहिए।।२।।

लग्नसंस्थो विलग्नस्थः। अम्बुसंस्थश्चतुर्थस्थानस्थः। अस्तस्थितः सप्तमस्थः। नभःस्थितो दशमस्थः। एतेषु च क्षेत्रेषु राशिषु ये लग्नगता गृहांशाः। गृहाणां राशीनां मेषादीनां येषां नवभागा लग्नगताः प्राग्लग्नादिष्वाश्रितास्तेभ्यो गृहांशेभ्योऽक्षराणि वर्णा आत्मगृहाश्रयाणि–आत्मगृहं स्वभवनमाश्रयः स्थानं येषां तानि विन्द्याद् जानीयात्, ग्रहाणां रव्यादीनां स्वगणक्रमे स्ववर्गपरिपाट्या।।२।।

लग्न अर्थात् तात्कालिक उदयलग्न, अम्बु अर्थात् चतुर्थ भाव, अस्त अर्थात् सप्तम, नभ अर्थात् दशम स्थान–इन स्थानों में स्थित, अर्थात् इनकी राशियों में स्थित मेषादि राशियों के नवमांश ज्ञात करें। लग्नादि में प्राप्त जो राशियों के नवमांश हों, तदनुसार ही अक्षरों अर्थात् वर्णों को आत्मगृह अर्थात् स्वभवन (अपनी राशि) के अनुसार ज्ञात करें। सूर्यादि ग्रहों के गण को अर्थात् स्वभवन (अपनी राशि) के अनुसार ज्ञात करें। सूर्यादि ग्रहों के गण को अर्थात् उनके अपने वर्ण को परम्परानुसार ही समझें।।२।।

अथ ग्रहाणां वर्गानाह–

कवर्गपूर्वान् कुजशुक्रचान्द्रि-
जीवार्कजानां प्रवदन्ति वर्गान्।
यकारपूर्वाः शशिनो निरुक्ता
वर्णास्त्वकारप्रभवा रवेः स्युः।।३।।

ग्रहों के वर्ण को कहते हैं–

कवर्गादिकों में क्रमशः भौम, शुक्र, बुध, गुरु और शनि के वर्ण कहे जाते हैं। यकारादि वर्ण चन्द्रमा के और अकारादि वर्ण रवि के होते हैं।।३।।

कवर्गपूर्वान् कवर्गाद्यान् वर्गान् यथाक्रमेण कुजादीनां ग्रहाणां परिपाट्या प्रवदन्ति मुनयः। तद्यथा—कवर्गः कुजस्य भौमस्य। चवर्गः शुक्रस्य। टवर्गश्चान्द्रेर्बुधस्य। तवर्गो जीवस्य गुरोः। पवर्गोऽर्कजस्य सौरस्य। यकारपूर्वा यकाराद्यष्टौ वर्णाः शशिनश्चन्द्रस्य निरुक्ताः कथिताः। अकारः प्रभव आद्यो येषां वर्णानामक्षराणां ते अकारप्रभवा रवेरर्कस्य स्युर्भवेयु. तद्यथा—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः रवेः। क ख ग घ ङ भौमस्य। च छ ज झ ञ शुक्रस्य। ट ठ ड ढ ण बुधस्य। त थ द ध न गुरोः। प फ ब भ म सौरस्य। य र ल व श ष स ह चन्द्रस्य।।३।।

कवर्गादि वर्गों को क्रमशः भौमादि ग्रहों के लिए परम्परानुसार मुनियों ने निर्देश किया है। जैसा कि कवर्ग मंगल का, च वर्ग शुक्र का, टवर्ग चान्द्रि अर्थात् बुध का तवर्ग गुरु का, प वर्ग शनि का, यवर्ग अर्थात् यकारादि आठ वर्ण चन्द्रमा के और अवर्ग अर्थात् अ आदि स्वरवर्ण सूर्य के कहे गये हैं। यथा—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये सूर्य के वर्ण हैं। भौम का वर्ग—क, ख, ग, घ, ङ। शुक्र का—च, छ, ज, ञ, बुध का—ट, ठ, ड, ढ, ण, गुरु का-त, थ, द, ध, न, शनि का—प, फ, ब, भ, म और चन्द्रमा का—य, र, ल, व, श, ष, स, ह, वर्ग होता है।।३।।

अथ राशिवशेन द्रेष्काणवशेन च नामाक्षरसंख्याज्ञानमाह—

द्रेष्काणवृद्ध्या प्रवदन्ति नाम
त्रिपञ्चसप्ताक्षरमोजराशौ।
युग्मे तु विन्द्याद् द्विचतुष्कषट्कं
नामाक्षराणि ग्रहदृष्टिवृद्ध्या।।४।।

राशि और द्रेष्काण के अनुसार नामाक्षर संख्या कहते हैं—

द्रेष्काण की वृद्धि (प्रथम-द्वितीयादि) के अनुसार विषम-राशि में क्रमशः तीन, पाँच और सात अक्षरों के नाम होते हैं। समराशि के द्रेष्काण में क्रमशः दो, चार और छः अक्षरों के नाम को जानें। ग्रहों की दृष्टि के अनुसार इन नामाक्षरों में वृद्धि होती है।।४।।

द्रेष्काणो राशित्रिभागः। तस्य वृद्ध्या वर्धनेनौजराशौ विषमर्क्षे त्रिपञ्चसप्ताक्षरं नाम। प्रथमे त्र्यक्षरम्, द्वितीये पञ्चाक्षरम्, तृतीये सप्ताक्षरमिति। युग्मे समराशौ लग्नगते प्रथमे द्रेष्काणे द्व्यक्षरं नाम विन्द्याज्जानीयात्। द्वितीये चतुष्कं चतुरक्षरम्। तृतीये षट्कं षडक्षरम्। तानि च नामक्षराणि नामवर्णा ग्रहदृष्टिवृद्ध्या। यतः केन्द्रस्थराशिभिरक्षराण्यानीयन्ते। केन्द्रचतुष्टयस्य प्रस्तुतत्वात् किल योग्यद्वयेनाक्षिप्तमिदं शास्त्रम्। तत्रैकः स्थितियोगः, द्वितीयो दृष्टियोगः। स्थितियोगं परिहृत्य

दृष्टियोगेनानीयन्ते। दृष्टियोगे तु बलाबलविचारः। उक्तं च–

[१]त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमान्यवलोकयन्ति। चरणाभिवृद्धितः।

रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः।।इति।।

एवं ग्रहदर्शनवृद्ध्या नामाक्षराण्यानीयन्ते।।४।।

द्रेष्काण किसी राशि का तृतीय भाग होता है। इसके वृद्धि क्रम से विषमराशि में तीन, पाँच और सात अक्षरों के नाम होते हैं। प्रथम द्रेष्काणभाग में तीन अक्षर, द्वितीय में पाँच अक्षर और तृतीय द्रेष्काणभाग में सात अक्षर होते हैं। युग्म अर्थात् समराशि में लग्न हो, तब प्रथम द्रेष्काण में दो अक्षरों का नाम, द्वितीय द्रेष्काण में चार अक्षर और तृतीय द्रेष्काण में छः अक्षर का नाम जाने। ये नामाक्षर अर्थात् नाम के वर्ण ग्रहों की दृष्टि से वर्धित होते हैं; क्योंकि केन्द्रगत राशियों से अक्षरों का आनयन होता है। केन्द्रचतुष्टय के अनुसार प्रस्तुत यह शास्त्र दो योगों के आधार पर आश्रित है। पहला स्थिति योग और दूसरा दृष्टियोग है। स्थिति-योग को छोड़कर दृष्टियोण का आनयन करते हैं। दृष्टियोग का बलाबल विचार करते हुए कहा गया है–

३-१०, ९-५, ४-८, और ७ की एकादि चरण के वृद्धि क्रम से ग्रहों की दृष्टि होती है। शनि, गुरु और मंगल क्रमशः विशेष वृद्धि से इन भावों को देखते हैं। अन्य ग्रह एकाधिक चरणों से वृद्धि पूर्वक देखते हैं।

इस प्रकार ग्रहों की दृष्टि-वृद्धि के अनुसार नामाक्षरों का आनयन किया जाता है।।४।।

अथ नवांशकवशेन नामाक्षरसङ्ख्याज्ञानमाह–

वर्गोत्तमे द्व्यक्षरकं चरांशे
स्थिरर्क्षभागे चतुरक्षरं तत्।
ओजेषु चैभ्यो विषमाक्षराणि
स्युर्द्विस्वभावेषु तु राशिवच्च।।५।।

नवमांश के अनुसार नामाक्षर संख्या को कहते हैं–

समराशि में चर अंश का वर्गोत्तम हो, तब दो अक्षर का नाम होता है। यदि समराशि में वर्गोत्तम स्थिरांश का हो, तब चार अक्षरों का नाम होता है। विषमराशि के वर्गोत्तम में विषमाक्षर वाले नाम होते हैं। द्विस्वभाव राशि के वर्गोत्तम में राशि के अनुसार ही नामाक्षर की संख्या होती है।।५।।

[२]''वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः'' इति। वर्गोत्तमाख्या नवांशका

---

१. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १३ श्लोकः।

२. बृहज्जातके १ अध्यायस्य १४ श्लोकः।

उक्ताः। अग्रत ओजशब्दकरणादिह समराशावेव ज्ञायते। समराशौ कर्कटो मकरे वा यदा वर्गोत्तमश्चरांशो भवति, तदा द्व्यक्षरं नाम। स्थिरर्क्षभागे स्थिरराशौ वृषसिंहवृश्चिक-कुम्भानामन्यतमे यदा स्थिरांशो वर्गोत्तमो भवति, तदा चतुरक्षरं नाम। ओजेषु विषमराशिषु मेषे तुले वा एभ्यो वर्गोत्तमांशकेभ्यो विषमा क्षराणि स्युर्भवेयुः। एतदुक्तं भवति-यदा विषमराशौ वर्गोत्तमश्चरांशो भवति, तदा विषमाक्षराणि त्रीणि नाम्नि भवेयुः अथ तस्मिन्नेव वर्गोत्तमः स्थिरांशो भवति, तदा विषमाणि पञ्चाक्षराणि नाम्नि भवेयुः। द्विस्वभावेषु राशिवच्च, द्विस्वभावेषु द्विमूर्तिषु लग्नेषु राशिवद्राशितुल्यं स्यात्। एतदुक्तं भवति—द्विस्वभावेषु मिथुनधनुषोरन्यतरे यदि विषमांशको वर्गोत्तमो भवति, तदा त्र्यक्षरं नामेति। अथ द्विस्वभावेषु समो वर्गोत्तमांशो भवति कन्यामीनयोरन्यतरस्तदा चतुरक्षरं नाम षडक्षरं नामवा। यत उक्तम्—

त्रपञ्चसप्ताक्षरमोजराशौ युग्मे तु विन्द्याद् द्विचतुष्कषट्कम्। इति।

वर्गोत्तमांशो यस्मिन् द्रेषकाणभागे स्थितस्तद्वशाद् वाच्यमिति।।५।।

"चरादि गृहों (राशियों) में वर्गोत्तम प्रथम-मध्य-अन्त्य के क्रम से होते हैं"- इस प्रकार बृहज्जातक (२.१३) में कहा गया है। वहाँ पर वर्गोत्तम नवांश का वर्णन है। 'ओज' अर्थात् विषमराशि का कथन श्लोक में आगे आया है, अतः उसके पूर्वपद में समराशि का अध्याहार ज्ञात होता है। समराशि अर्थात् कर्क अथवा मकर में वर्गोत्तम चरराशि का होने पर दो अक्षरों का नाम होता है। स्थिराशि अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों में से किसी भी एक राशि में जब स्थिर अंश का वर्गोत्तम होता है तब चार अक्षरों का नाम होगा। विषमराशि अर्थात् मेष और तुला में से किसी में भी वर्गोत्तमांश हो, तब विषमाक्षर के नाम होते हैं। इस कथन का अभिप्राय यह है कि जब विषमराशि और वर्गोत्तम चरांश का हो तब विषमाक्षर अर्थात् तीन अक्षरों के नाम होते हैं। इसी वर्गोत्तम में स्थिर अंश होते हैं तब विषमाक्षर अर्थात् पाँच अक्षरों के नाम रहेंगे। द्विस्वभाव लग्न में राशि के अनुसार ही नामाक्षर होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि द्विस्वभाव राशियों मिथुन और धनुष में से किसी में भी यदि विषम अंश का वर्गोत्तम होता है, तब तीन अक्षरों का अथवा साथ अक्षरों का नाम होगा। द्विस्वभाव राशि में समराशि का वर्गोत्तम होने पर अर्थात् कन्या और मीन राशि में से किसी राशि का वर्गोत्तम होने पर, चार अक्षरों अथवा छः अक्षरों का नाम रहेगा। जैसा कि कहा गया है-

विषमराशि में ३,५,७ अक्षरों के नाम और समराशि में २,४,६ अक्षरों के नाम को जानना चाहिए।

वर्गोत्तमांश, द्रेष्काण के जिस अंश में हो, तदनुसार ही नामाक्षरों का कथन करें।।५।।

❋ ❋ ❋

अत्रैव विशेषमाह–

द्विमूर्तिसंज्ञे तु वदेद् द्विनाम
सौम्येक्षिते द्विप्रकृतौ च राशौ।
यावान् गणः स्वोदयगोंऽशकानां
तावान् ग्रहः संग्रहकेऽक्षराणाम्।।६।।

यहाँ पर विशेष विचार करते हैं–

द्विस्वभाव संज्ञक राशि होने पर दो नाम कहना चाहिये। यदि यह द्विस्वभाव राशि, बुध ग्रह से दृष्ट हो तब निश्चित ही दो नाम होते हैं। तात्कालिक लग्न के जितने नवमांश बीत चुके हों, उतने ही वर्णों के नाम होते है।।६।।

द्विमूर्तिसंज्ञे द्विस्वभावे राशौ द्विनाम वदेद् ब्रूयात्। द्वे नामनी यस्य। तथा द्विप्रकृतौ द्विस्वभावराशौ सौम्येक्षिते बुधसन्दृष्टे, चशब्दाद् द्विनाम वदेत्। यत्परिमाणस्य यावान् अंशकानां नवभागानां गणः समूहः स्वोदयगः प्रश्नसमयेऽतिक्रान्त-स्तावानेव गणः समूहोऽक्षराणां वर्णानां संग्रहके नाम्नि भवति।।६।।

द्विमूर्तिसंज्ञक अर्थात् द्विस्वभाव राशि होने पर दो नाम कहना चाहिये। अर्थात् उसके दो नाम होते हैं। द्विप्रकृति अर्थात् द्विस्वभावराशि बुध ग्रह से (सौम्येच्छित) दृष्ट होने पर भी दो नाम ही जानना चाहिये। प्रश्नकालिक लग्न के नवमांश के जितने भाग व्यतीत हो चुके हों, उसी भाग (खण्ड) तुल्य अक्षरों अर्थात् वर्णों से निर्मित नाम होता है।।६।।

अथ संयोगाक्षरमाह–

संयोगमादौ बहुलेषु विन्द्यात्
कूटेषु संयोगपरं वदन्ति।
स्वोच्चांशके द्विष्कृतमृक्षयोगाद्
गुर्वक्षरं त वनांशके स्यात्।।७।।

संयुक्त अक्षरों को बतलाते हैं–

विषम राशियों में प्रारम्भ का अक्षर संयुक्त समझें। समराशियों में संयुक्त अक्षर अन्त में होते हैं। लग्न के उच्चांश होने पर राशियों के अनुसार द्वित्व अक्षर होते हैं। लग्न के नवमांश के आधार पर दीर्घाक्षर को जानें।।७।।

बहुलेष्वोजेषु विषमराशिषु नाम्नामादौ प्रथममेव संयोगं संयोगाक्षरं विन्द्याज्जानीयात्। वर्णद्वयसंयोगः संश्लेषः। हलोऽनन्तराः संयोग इति केचित्। बहुभेदाः केचित्। द्विष्कृताः केचिद् गुरवः। केचित् संयोगान्तवद् द्विष्कृताः यथा–यप्पा, वल्ला, यस्सा लस्सा। गुरवो द्वाभ्यां प्राकाराभ्यां भवन्ति। वर्गाक्षरैः स्वतनुना। प्रथमप्रथमैः। तृतीयतृतीयैः। पञ्चमपञ्चमैः।

प्रथमप्रथमैर्यथा–कक्कः, दत्तः, कुट्टः। तृतीयतृतीयैर्यथा–लल्लः, गग्गः, दद्दः, जज्जः। पञ्चमपञ्चमैः–शङ्कः, नण्णः, धम्मः। परतनुना प्रथमद्वितीयैस्तृतीय चतुर्थैश्च। प्रथमद्वितीयैर्यथा–सुक्खः, इच्छः, डित्थः। तृतीयचतुर्थैर्यथा–वाग्घः। दाड्ढः, शुद्धः। एते गुरवः। अन्येषां यथा परतनुना। पञ्चमप्रथमैः पञ्चमद्वितीयैः पञ्चमतृतीयैः पञ्चमचमतुर्थैश्च। एते संयोगा एव। पञ्चमप्रथमैर्यथा–पङ्कः। पञ्चमतृतीयैः पञ्चमचतुथैश्च। एते संयोगा एव। पञ्चमप्रथमैर्यथा–ङ्कः। पञ्चमद्वितीयैर्यथापशङ्खः। पञ्चमतृतीयैर्यथा–शृङ्गम्। पञ्चमप्रथमैः पञ्चमद्वितीयैः पञ्चमतृतीयैः पञ्चमचतुथैश्च। एते संयोगा एव। पञ्चमप्रथमैर्यथा–पङ्कः। पञ्चमद्वितीयैर्यथा–शङ्खः। पञ्चमतृतीयैर्यथा–शृङ्गम्। पञ्चमचतुर्थैर्यथा–सङ्घः। केचिदन्यथा कथयन्ति, यथा–स्वतनुना संयोगास्तेऽपि द्विष्कृता उच्यन्ते। यथा–धम्मः, दत्तः, कक्कः। प्रथमद्वितीयैस्तृतीयचतुर्थैश्च संयोगः। संयोगसंज्ञास्ते गुरव उच्यन्ते। अन्ये ये संज्ञास्ते संयोगा एव न भवन्ति, यथा–धर्मः, वत्सः। आदिसंयोगो यथा–श्रीधरः, क्षीरः, स्मर इति। एवं संयोगमादौ बहुलेषु विन्द्यादिति। कूटेषु संयोगपरं वदन्ति। कूटेषु समराशिषु संयोगपरम्। संयोगः परो यस्मिस्तत्संयोगपरं वदन्ति कथयन्ति तन्नारायणादयः। द्व्यक्षरे नाम्नि यथा–पद्मम्, धर्मः, वत्स इत्येवमादयः। चतुरक्षरे नाम्नि यथा–वसुदत्तः, वसुगुप्त इत्येवमादयः। स्वोच्चांशके द्विष्कृतमिति। स्वश्चासावुच्चांशः स्वोच्चांशः।

अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः।।[1]इति।

तस्मिन् स्वोच्चांशके द्विष्कृतमक्षरं नाम्नि भवति। द्वौ वारौ कृतौ द्विष्कृतौ। कथम्? ऋक्षयोगाद्राशियोगाद्धेतः। अक्षरदाता ग्रहः स्वोच्चांशकस्थो द्विष्कृतमक्षरं करोति। एतदुक्तं भवति–पृच्छालग्ने यदौजराशिस्तदौजाक्षरं द्विष्कृतं भवति, यथा–दरदः दामोदरः। अथ युग्मराशिस्तदा युग्माक्षरं द्विष्कृतं भवति, यथा–देवदेवः। धराधरः। द्व्यक्षरे यथा–कप्पः, यप्पः, वल्ल इत्येवमादयः। गुर्वक्षरं तद्भवनांशके स्यात्। गुर्वक्षरं यस्मिन् नाम्नि तद्गुर्वक्षरम्। तदित्यनेन लग्नं परामृश्यते। तस्य भवनस्यांशकः। तस्मिन्नक्षरे सति गुर्वक्षरं स्याद्भवेत्। अत्र ऋक्षयोगादिभिर्वर्तते। ओजराशौ ओजाक्षरमेव गुर्वक्षरं भवति–कपित्थः, अश्वत्थः। युग्मराशौ युग्माक्षरमेव, यथा–सुक्खः, घग्घः, शुद्धः। चतुरक्षरे शुद्धौदन इत्येवमादयः।।७।।

बहुत से ओज अर्थात् विषम राशियों के होने पर नाम के आदि (प्रथम) में संयुक्त अक्षर को जानना चाहिए। दो वर्णों के संयोग को संश्लेष कहा जाता है। कुछ आचार्य हलन्त वर्ण के अनन्तर आने वाले वर्ण को सम्मिलित रूप में संयुक्त अक्षर कहते हैं। कुछ आचार्य इसके अनेक भेद बतलाते हैं। कतिपय आचार्य द्वित्व को ही संयुक्त कहते हैं। कुछ लोग संयोगान्त के सदृश द्वित्व का विधान करते हैं। जैसा कि–

१. बृहज्जातके १ अध्यायस्य १३ श्लोकः।

यप्पा, वल्ला, यस्सा, लस्सा। गुरु अक्षर दो प्रकार के होते हैं। वर्गाक्षर स्ववर्ण युक्त होते हैं प्रथम वर्ण प्रथम के सदृश, तृतीय वर्ण तृतीय के सदृश तथा पञ्चम वर्ण पञ्चम के सदृश रहते हैं। जैसाकि प्रथम वर्ण प्रथम के सदृश होने पर–कक्क दत्त, कुट्ट। तृतीय वर्ण तृतीय वर्ण के साथ होने का उदाहरण–लल्ल गग्ग, दद्द, जज्ज। पञ्चमवर्ण का पञ्चमवर्ण के साथ होने का उदाहरण–शङ्ङ, नण्ण, धम्म। अन्य वर्णों के साथ प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ वर्णों के साथ द्वितीयवर्ण का संयोग इस प्रकार है–खुक्ख, इच्छ, डित्थ। तृतीय वर्ण का चतुर्थ वर्ण के साथ संयोग का उदाहरण–वाग्घ, दाड्ढ, शुद्ध। ये गुरु वर्ण हैं। अन्य वर्णों से संयुक्त वर्णों का विचार किया जा रहा है। पञ्चम से प्रथम का, पंचम से द्वितीय का, पंचम से तृतीय का तथा पंचम से चतुर्थ का। ये सभी संयुक्त वर्ण हैं। जैसाकि–पञ्चम से प्रथम के संयोग का उदाहरण 'पङ्क' है। पंचम से द्वितीय वर्ण का उदाहरण जैसा कि 'शङ्ख' है। पंचम वर्ण से तृतीयवर्ण का संयोग, जैसाकि–'शृङ्ग'। पंचम वर्ण का चतुर्थ वर्ण के साथ संयोग, जैसा कि–'सङ्घ' है। कुछ विद्वान् इससे भिन्न प्रकार भी कहते हैं। जैसा कि स्ववर्ण से संयुक्त वर्णों को द्वित्व कहते हैं। जैसाकि धम्म, दत्त, कक्क। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्णों के साथ संयोग होता है। संयोग-संज्ञक उन वर्णों को गुरु वर्ण कहते हैं। अन्य वर्णों से कथित वर्णों का संयोग ही नहीं होता है। जैसाकि–धर्म, वत्स। आदि वर्णों का भी संयोग होता है। जैसाकि–श्रीधर, क्षीर, स्मर आदि। इस प्रकार विषम वर्णों का प्रारम्भिक संयोग समझना चाहिये। कूट अर्थात् समराशि में पश्चात् संयोग होता है। नारायण आदि आचार्यों ने परवर्णों में संयोग का अभिकथन किया है। नाम में दो अक्षरों का संयोग इस प्रकार होता है। जैसा कि–पद्म, धर्म, वत्स इत्यादि। चार अक्षरों के नाम में वसुदत्त, वसुगुप्त इत्यादि होते हैं। अपने उच्चांश के द्वित्व को कहते हैं। अपने उच्चांश को स्वोच्चांश कहा जाता है।

जैसा कि बृहज्जातक अध्याय १, श्लोक, सं. १३ में कहा गया है–

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क मीन और तुला, ये राशियाँ क्रमशः सूर्यादि ग्रहों की उच्चराशियाँ हैं। इनका १०, ३, २८, १५, ५, २७ तथा २० अंश परमोच्चांश होता है। इनसे सप्तम राशियों को नीच राशियाँ जानना चाहिये।

इस उच्चांश की स्थिति होने पर नामाक्षर में द्वित्व होता है। दो बार समागत अक्षरों को द्विष्कृत अर्थात् द्वित्व कहते हैं। यह किस प्रकार से ज्ञात होता है। ऋक्ष अर्थात् राशियों के योग से। अक्षर प्रदाता ग्रह यदि अपने उच्चांश में स्थित होता है, तब द्वित्व अक्षर करता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि प्रश्न लग्न में विषम राशि हो तब विषमाक्षर का द्वित्व होता है। जैसाकि दरद, दामोदर। यदि समराशि हो तब युग्माक्षर का द्वित्व होगा। जैसाकि देवदेव, धराधर। दो अक्षरों में यथा-कप्प, यप्प,

वल्ल इत्यादि। गुरु अक्षरों का विचार लग्नांश से किया जाता है। जिस नाम में गुरु अक्षर हो, उसको गुर्वक्षर (दीर्घाक्षर) कहते हैं। 'तद्' शब्द से लग्न को जानना चाहिये। उस नवांश से सम्बद्ध अक्षरों में गुरु अक्षर होता है। यहाँ पर भी राशियों का योग देखना चाहिये। विषम राशि में विषमाक्षर ही गुरु अक्षर होता है। जैसाकि–कपित्थ, अश्वत्थ। युग्मराशि में सम अक्षर का द्वित्व समझना चाहिये जैसाकि–सुक्ख, घग्घ, शुद्ध। चार अक्षर में शुद्धोदन आदि उदाहरण हैं॥७॥

अन्यदपि विशेषमाह–

मात्रादियुक् स्याद् ग्रहयुक्त्रिकोणे
द्रेष्काणपर्यायवदक्षरेषु।
नभोबलेषूर्ध्वमधोऽम्बुजेषु
ज्ञेयो विसर्गस्तु बलान्वितेषु॥८॥

अन्य भी विशेष कहते हैं–

प्रश्न लग्न से त्रिकोण भाव यदि ग्रह युक्त हो, तब मात्रा का संयोग, आदि वर्ण में रहता है। द्रेष्काण के अनुसार अक्षरों का संयोजन रहता है। दशमभाव के बली होने पर ऊर्ध्वमात्रा और चतुर्थभाव के बली होने पर अधोमात्रा तथा सप्तमभाव के बली होने पर विसर्ग का संयोग होता है॥८॥

पृच्छालग्नस्य मेषादेस्त्रिकोणे नवमे पञ्चमे वा स्थाने ग्रहैरादित्यादिभिर्युग्योगो यथा भवति तथा मात्रादियुक् स्यात्। नाम्नो मात्राभिरादौ प्रथमं युग्योगः स्याद्भवेत्। यथा–शिवः। द्रेष्काणपर्यायवदक्षरेष्विति। द्रेष्काणानां पर्यायो द्रेष्काणपर्यायः। प्रसिद्धोच्चारणम्। स यथा भवति तद्वदक्षरेषु मात्रादियोगो भवति। युग्मद्रेष्काणेषु युग्माक्षरेषु मात्रादियोगो भवति। ओजाक्षरेषु यथा–श्रीधरः। युग्मेषु यथा–ईश्वरः। नभोबलेषूर्ध्वमिति। नभसि दशमे स्थाने राशयो ये बलिनस्ते नभोबलिनः। तथा चोक्तम्–

मनुष्यरूपा बलिनो विलग्नाश्चतुष्पदाश्चाक्षरमध्यसंस्थाः।
जलोद्भवाख्या बलिनो जलस्थाः कीटोऽस्तगो, व्योमतले द्विमूर्ताः॥

अथ–

[1]कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम्।
तेषु यथा विहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च॥इति।

तेषु नभोबलेषूर्ध्वमात्राक्षरमुशन्ति कथयन्ति। यथा–श्रीवत्सः, वासुदेवः, वैश्रवणः, शौण्डः। अधोऽम्बुजेष्विति। अम्बुजेषु चतुर्थस्थानेषु बलवत्सु अधोमात्राक्षरं भवति। यथा–सुहिरण्यः, शूरवर्मा। ज्ञेयो विसर्गोऽस्तबलान्वितेष्विति। अस्तबलान्वितेषु सप्तमे

---

१. बृहज्जातके १ अध्यायस्य १७ श्लोकः।

स्थाने बलवति विसर्गो विसर्जनीयो ज्ञेयो ज्ञातव्य:।।८।।

मेषादि प्रश्नलग्न के त्रिकोण अर्थात् नवम और पञ्चम स्थान में सूर्यादि ग्रहों के स्थित होने पर मात्रादि का योग होता है। नाम के प्रथम वर्ण में मात्रा का योग होता है। जैसा कि–शिव। द्रेष्काणों के पर्याय का तात्पर्य प्रसिद्ध उच्चारण है। वह जैसा होता है, उसी प्रकार अक्षरों में मात्रा का योग होता है। युग्म द्रेष्काण होने पर युग्माक्षरों में मात्रा का योग होता है। जैसा कि ईश्वर। ओजाक्षर का उदाहरण है–श्रीधर। नभ अर्थात् दशम स्थान में जो राशि बली हो उसके नभोबली कहते हैं। जैसा कि कहा गया है–

मनुष्य के स्वरूपानुसार बल का विचार किया जाता है। इनमें लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम; ये चार भाव होते हैं। जल (चतुर्थ) में स्थित राशियाँ जलोद्भव हैं और सप्तम में कीट संज्ञक राशियाँ होती हैं। जलोद्भव में द्विस्वभाव राशियाँ बली होती हैं।

जैसाकि बृहज्जातक (१/१०) में कहा गया है–

लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भावों की संज्ञा कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय होती है। इनमें क्रमशः नृराशि, जलराशि, कीटराशि और पशुराशियाँ बली होती हैं।

इनमें दशम भाव के बली होने पर ऊर्ध्वमात्रा युक्त अक्षर का ग्रहण किया जाता है। जैसाकि–श्रीवत्स, वासुदेव, वैश्रवण, शौण्ड। अम्बुज अर्थात् चतुर्थभाव के बली होने पर नामाक्षर में अधोमात्रा होती है। जैसा कि–सुहिरण्य, शूरवर्मा। अस्त बलयुक्त अर्थात् सप्तम भाव के बली होने पर नामाक्षर में विसर्ग का योग समझना चाहिए।।८।।

अन्यदप्याह–

शीर्षोदयेषूर्ध्वमुशन्ति मात्रा-
मधश्च पृष्ठोदयशब्दितेषु।
तीर्यक् च विन्द्यादुभयोदये तां
दीर्घेषु दीर्घामितरेषु चान्याम्।।९।।

और भी कहते हैं–

शीर्षोदय लग्न में ऊर्ध्व मात्रा होती है तथा पृष्ठोदय लग्न में अधोमात्रा होती है। उभयोदय लग्न में तिर्यक् मात्रा तथा दीर्घ लग्न में दीर्घमात्रा तथा इनसे भिन्न लग्न होने पर अन्य मात्राओं को जानना चाहिए।।९।।

शीर्षोदया मूर्धोदया:। तथा चोक्तम्–

शीर्षोदया मानुषसर्वरूपा: ससिंहकीटा यवनैर्निरुक्ता:।
मत्स्यद्वयं तूभयत: प्रवृत्तं पृष्ठेन शेषास्तु सदोदयन्ति।।

तथा च–

[१]गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः
पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ।।इति।।

एवं शीर्षोदयेषु लग्नेषूर्ध्व मात्रामुशन्ति कथयन्ति। यथा–ओ औ। पृष्ठोदयशब्दिता ये राशयस्तेषु पृष्ठोदयसंज्ञितेष्वधो मात्रामुशन्ति कथयन्ति, यथा–उ ऊ। तिर्यक् चेति। उभयोदयो मीनस्तस्मिन् तां मात्रां तिर्यक् च विन्द्याद् जानीयात्। ए ऐ। यथा–देवदेव, ऐन्द्र इत्यादि। दीर्घेषु दीर्घामिति। दीर्घेष्वायतेषु राशिषु। तां मात्रां दीर्घं विन्द्यात्। यथा–आ ई ऊ ए ऐ ओ औ। इतरेष्वन्येषु मध्यह्रस्वेष्वतोऽन्यां परिशिष्टां ह्रस्वामिति। यथा–अ इ उ। अत्र दीर्घाः सिंहकन्यातुलवृश्चिकाः। मध्या मिथुनकर्किधन्विमकराः। ह्रस्वा मेषवृषकुम्भमीनाः। तथा चोक्तम्–

आद्यन्तराश्योरुदयप्रमाणं द्वौ द्वौ मुहूर्तौ नियतं प्रदिष्टम्।
क्रमोत्क्रमाभ्यामतिपञ्चमं स्याच्चक्रार्द्धयोर्विद्ध्युदयप्रमाणम्।।
एवं प्रमाणानि गृहाणि बुद्ध्या ह्रस्वानि मध्यानि तथायतानि।
चक्राङ्गभेदैः सदृशीकृतानि मार्गप्रमाणान्यपि कल्पयन्ति।।इति।।

तथा च–

[२]पूर्वार्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तत्। इति।।९।।

शीर्षोदय अर्थात् मूर्धोदय है। जैसा कि कहा गया है–

शीर्षोदयराशि मनुष्य के स्वरूपवाली होती हैं, जिनमें सिंह और कर्क भी सम्मिलित हैं। यह यवनाचार्यों ने कहा है। मीन राशि को उभयोदय कहा जाता है। शेष सभी राशियाँ पृष्ठोदय होती हैं।

इसी को बृहज्जातक १/१० में कहा गया है–

वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन, मकर; इनको रात्रिबली कहा जाता है। इनमें से मिथुन को छोड़कर सभी पृष्ठोदय और दिन में बली होती हैं। मीन को उभयोदय तथा उभय बली कहा जाता है। शेष राशियाँ सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ; ये दिनबली और शीर्षोदय हैं। मिथुन रात्रिबली है।

इस प्रकार शीर्षोदय लग्न में ऊर्ध्वमात्रा होती है। जैसा कि ओ, औ। पृष्ठोदय संज्ञक राशियों में अधोमात्रा कही गयी है। जैसा कि उ तथा ऊ। उभयोदय मीन राशि है। इसमें तिर्यक् मात्रा जाननी चाहिये। जैसाकि ए, ऐ, तथा देवदेव, ऐन्द्र इत्यादि।

---

१. बृहज्जातके १ अध्यायस्य १० श्लोकः।

२. बृहज्जातके १ अध्यास्य १९ श्लोकः।

दीर्घ राशियों में अर्थात् आयत राशियों में दीर्घ मात्रा समझनी चाहिये। जैसा कि–आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। इससे भिन्न अन्य मध्य ह्रस्वों में अन्य परिशेष में ह्रस्व मात्रा होती है। जैसाकि अ, इ, उ। इनमें सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक; ये दीर्घ हैं। मिथुन, कर्क, धनु और मकर; इनको मध्य राशि कहते हैं। मेष, वृष, कुम्भ और मीन ह्रस्व राशियाँ हैं।

जैसाकि कहा गया है–

राशियों के प्रारम्भ से अन्त तक दो मुहूर्त का काल नियत किया गया है। क्रम तथा उत्क्रम विधि से पंचम पर्यन्त छः राशियों का उदयमान जानना चाहिए। इस प्रकार राशियों के मान को जानकर ह्रस्व, मध्य और आयत (दीर्घ) का विचार किया जाता है। एक चक्र अर्थात् बारह राशियों के विभेद से इनके मार्गों के प्रमाण की कल्पना करें।

जैसा कि बृहज्जातक १/१९ में कहा गया है–

राशिचक्र के पूर्वार्धभाग में जिनविषयों का विचार किया जाता है, उनमें चतुर्थ से दशमपर्यन्त दो भाग होते हैं।

अत्रैव विशेषमाह–

प्राग्लग्नतोयास्तनभःस्थितेषु
भेष्वंशकेभ्योऽक्षरसंग्रहः स्यात्।
क्रूरोऽक्षरं हन्ति चतुष्टयस्थो
दृष्ट्यापि मात्रां च त्रिकोणगो वा।।१०।।

यहाँ पर कुछ विशेष कहते हैं–

प्रथम लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम में स्थित राशियों के नवमांश के अनुसार अक्षरों का संकलन होता है। केन्द्र में स्थित पापग्रहों से अक्षर की हानि होती है। त्रिकोण में स्थित अथवा त्रिकोण पर दृष्टि होने से भी मात्रा की हानि होती है।।१०।।

प्राग्लग्नं विलग्नम्। तोयसंज्ञश्चतुर्थः। अस्तः सप्तमः। नभः संज्ञो दशमः। एतेषु स्थानेषु स्थिता राशयः। भशब्देन राशय उच्यन्ते। तेषु भेषु तथाभूतेष्वेव येंऽशका नवभागास्तेभ्योऽक्षरसंग्रहो वर्णसमुच्चयो नाम्नि स्यात्। क्रूरोऽक्षरमिति। क्रूरः पापो ग्रहश्चतुष्टयस्थः केन्द्रस्थोऽक्षरं वर्णं हन्त्यपहरति। स एव क्रूरस्त्रिकोणगो दृष्ट्या दर्शनेनापि मात्रां हन्ति। नवपञ्चमे त्रिकोण इति। अपिशब्दः समुच्चये। वाशब्दो विकल्पे।।१०।।

प्राग्लग्न अर्थात् प्रथमलग्न, तोय अर्थात् चतुर्थलग्न, अस्त अर्थात् सप्तमलग्न, नभ अर्थात् दशमलग्न; इन स्थानों में स्थित राशियों में जो नवमांश प्राप्त हों उनके द्वारा अक्षर संग्रह अर्थात् नाम के वर्णों का विचार करना चाहिए। यहाँ पर मूल श्लोक

में कथित 'भ' शब्द से राशियों का उल्लेख है। यदि पापग्रह चारों केन्द्र स्थानों में रहते हैं तो वर्ण की हानि होती है। ये ही पापग्रह त्रिकोणस्थान में स्थित होकर अथवा दृष्टिपात कर मात्रा का हरण करते हैं। नवम और पञ्चम स्थान को त्रिकोण कहा जाता है। यहाँ पर 'अपि' शब्द समुच्च तथा 'वा' शब्द विकल्प के अर्थ में प्रयुक्त है॥१०॥

अन्यद्विशेषमाह–

शुभग्रहस्तूर्जितवीर्यभागी
स्थानांशतुल्याक्षरदः स चोक्तः।
पश्यन् स्थितः केन्द्रत्रिकोणयोर्वा
स्वोच्चेऽपि वर्णद्वयमात्मभागे॥११॥

और भी विशेष कहते हैं–

शुभग्रह के द्वार ऊर्जा और बल का लाभ होता है। स्वस्थान में स्थित राशि के नवमांश तुल्य अक्षरों का अभिधान किया जाता है। केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित अथवा देखता हुआ अथवा अपनी उच्चराशि में स्थित शुभग्रह दो अक्षर देता है॥११॥

शुभग्रहः सौम्यः। तुशब्दः समुच्चये। स चोर्जितमतीव वीर्यं भजति तच्छीलः। ऊर्जितवीर्यभागी। स च स्थानांशतुल्याक्षरदः। यस्मिन् स्थाने यावत्संख्यांशे नवभागे स्थितस्तत्तुल्याक्षराणि ददाति। एवं तत्तुल्याक्षरद उक्तः कथितः। पश्यन् स्थित इति। अथवा स एव शुभग्रह ऊर्जितवीर्यभागी केन्द्रेषु त्रिकोणयोर्नवपञ्चमयोर्वा स्थितः पश्यन्नवलोकयन्। स्वोच्चे आत्मीयोच्चराशौ वा स्थितः पश्यन्नात्मभागे स्वे नवांशके स्थितः पश्यन् वर्णद्वयमक्षरद्वयमपि ददाति। अपिशब्दो विकल्पार्थः॥११॥

सौम्य अर्थात् शुभग्रह ओजस्वित और वीर्यवान होता है। वह अपने स्थान के नवमांशतुल्य अक्षर को देता है। जिस स्थान में अर्थात् राशि में स्थित हो, उसके नवमांशतुल्य अक्षर देता है। इस प्रकार वह नवमांशतुल्य अक्षरों का दाता कहा गया है। अथवा वही शुभग्रह ऊर्जित वीर्यभागी होकर अथवा उसको देखता हुआ अथवा अपनी उच्चराशि में स्थित होकर अथवा स्वनवांश में स्थित, दृष्ट दो वर्णों को अर्थात् दो अक्षरों को प्रदान करता है। यहाँ पर 'अपि' शब्द विकल्पार्थ का वाचक है॥११॥

अन्यद्विशेषमाह–

क्षेत्रेश्वरे क्षीणबलेंऽशके च
मात्राक्षरं नाशमुपैति तज्जम्।
असम्भवेऽप्युद्भवमेति तस्मिन्
वर्गाद्यमुच्चांशयुजीशदृष्टे॥१२॥

और भी विशेष कहते हैं–

यदि लग्नेश निर्बल होकर हीन नवांश में हो, तो वह मात्रा और अक्षर की हानि करता है। यदि वही लग्न स्वामी और नवांश निर्बलता में असम्भव (बल हीन का असम्भव अर्थात् बली) हो और उच्च स्थित नवांश स्वामी से देखा जाता हो तो मात्राक्षर की उत्पत्ति होती है।।१२।।

क्षेत्रेश्वरे लग्नस्वामिनि क्षीणबले परिक्षीणवीर्ये क्षीणांशके क्षीणनवभागे तज्जं मात्राक्षरं नाशमुपैति। मात्रा चाक्षरं च तन्मात्राक्षरम्। तस्माज्जातम् उत्पन्नं तज्जम्। नाशमुपैति क्षयं प्राप्नोति। असम्भवेऽपीति। तस्मिन्नेव क्षीणेश्वरे क्षीणबलांशके चासम्भवे तस्य मात्राक्षरस्य नाश उद्भवमेत्युद्भवति लभते। किं वर्गाद्यं वर्गप्रथमम्, तस्मिन्। कीदृशे? उच्चांशयुजि उच्चस्थे तथेशदृष्टे स्वामिनावलोकिते।।१२।।

क्षेत्रेश्वर अर्थात् लग्नेश के क्षीणबल होने पर क्षीणांश अर्थात् क्षीण नवमांश होने पर, उससे उत्पन्न मात्रा और अक्षर का विनाश करता है। मात्रा और अक्षर के योग को मात्राक्षर कहा गया है। उससे उत्पन्न को 'तज्ज' कहा गया है। यहाँ पर नाश शब्द का अर्थ क्षय (न्यूनता) समझना चाहिये। इस प्रकार से निर्बल ग्रह और उसका क्षीण नवांश के असम्भव (बली) होने पर उसके मात्राक्षर का नाश उत्पन्न होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वर्गाद्य अर्थात् वर्ग का प्रथम अक्षर का उद्भव होता है। यदि उच्चनवमांश हो और वह अपने स्वामी से देखा जाता हो।।१२।।

अनिश्चयीकरणमाह–

केन्द्रे यथास्थानबलप्रकर्षं
क्षेत्रस्य तत्क्षेत्रपतेश्च बुद्ध्वा
कार्योऽक्षराणामनुपूर्वयोगो
मात्रादिसंयोगविकल्पना च ।।१३।।

अनिश्चय का विचार करते हैं–

केन्द्रे में स्थित राशियों के स्थान तथा उनका बल एवं राशीश को ज्ञात करे। तदनुसार अक्षरों का संयोजन और उसमें मात्रा का विचार करे।।१३।।

केन्द्र लग्नचतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमे। क्षेत्रस्य राशेः। तत्क्षेत्रपतेश्च तत्स्वामिनः। यथास्थानबलप्रकर्षम्, स्थानं च बलं च स्थानबले तयोः प्रकर्षं उत्कृष्टता। स्थानबलेन प्रथमो लभ्यते, दृष्टिबलेन द्वितीयादयः। एवं बुद्ध्वा ततोऽक्षराणां वर्णानामनुपूर्वयोगः। अनुपूर्वेण अनुक्रमेण योगः संयोगः कार्यः कर्तव्यः। तथा मात्रादिसंयोगविकल्पना च कार्या। मात्रा आदिर्यस्य स मात्रादिसंयोगस्तस्य विकल्पना संयोगविकल्पना आदिसंयोगोऽन्तसंयोगश्च। एतदुक्तं भवति–अधोमात्रा ऊर्ध्वमात्रास्तिर्यङ्मात्राश्च संयोगविकल्पनया कार्याः।।१३।।

केन्द्र अर्थात् १,४,७,१० स्थान, क्षेत्र अर्थात् राशि, क्षेत्रपति अर्थात् उनके स्वामी ग्रह के स्थान और बल अर्थात् उनकी श्रेष्ठता का विचार करते हुये दृष्टि का विचार करे। स्थानबल से प्रथम तथा दृष्टिबल से द्वितीय आदि वर्णों का विचार होता है। इस प्रकार से समझकर वर्णों का आनुपूर्विक संयोजन करे। तथा मात्राओं के संयोग की भी कल्पना करनी चाहिये। मात्रादि संयोग की विकल्पना अर्थात् संयोजन की कल्पना अर्थात् आदि में जो संयोग हो और अन्त में जो संयोग हो। इसका अभिप्राय यह है कि अधोमात्रा, ऊर्ध्वमात्रा और तिर्यक्मात्रा के संयोजन की परिकल्पना करें।।१३।।

अथांशकक्रमेण राशीनामक्षराण्याह–

तत्रादिराश्यादिचतुर्विलग्न-
माद्यंशकादिक्रमपर्ययेण
ग्रहांशकेभ्यः स्वगणाक्षराणा-
मन्वर्थने प्राप्तिरियं विधार्या।।१४।।

अंशक्रमानुसार राशियों के अक्षरों को कहते हैं–

आदि राशि (मेष) से चार केन्द्रस्थ राशियों के नवमांश, क्रमानुसार ग्रहों के अंशों के आधार पर अपने वर्ग के अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करने का विचार करे।।१४।।

तत्र तस्मिन्नामानयने। आदिराश्यादि। आदिराशिर्मेषस्तदादि तत्प्रथमं यच्चतुर्विलग्नं मेषकर्कितुलामकराख्यं तस्याद्यंशकादिक्रमपर्ययेण, प्रथमनवांशकपरिपाट्या ग्रहांशकेभ्यो नवग्रहभागेभ्यः स्वगणाक्षराणां स्ववर्गकथितवर्णानाम्,[1]"कवर्गपूर्वान् कुजशुक्रचान्द्रिजीवार्कजानाम्" इत्यनेन विहितानामन्वर्थने प्राप्तिर्निष्पत्तिरियं विधार्या कर्तव्या।।१४।।

अब नाम ज्ञात करने का प्रकार बतलाते हैं आदि राशि अर्थात् मेष राशि; इससे आरम्भ कर जो चार केन्द्रस्थ लग्न १, ४, ७, १० होंगे। उनके प्रथम अंश के क्रम से ग्रहांश अर्थात् नवग्रहों के अंशानुसार स्ववर्ग के कथित वर्णों का विचार करे। जैसाकि इसी अध्याय के तृतीय श्लोक में कहा गया है–कवर्गादि अक्षरों का भौम, शुक्र, बुध, गुरु और शनि से विचार किया गया है। इसके अनुसार ही नामाक्षरों को जानने का प्रयत्न करें।।१४।।

अथादिराश्यादिक्रमेण वर्णानाह–

मेषे ककारो हिबुके यकार-
स्तुले चकारो मकरे पकारः।
मेषे छकारो हिबुकेऽप्यकार-
स्तुले खकारो मकरे फकारः।।१५।।

---

१. अस्यैवाध्यायस्य ३ श्लोकः।

अब राशियों के क्रम से वर्णों को कहते हैं–

मेष राशि के प्रथम नवांश में ककार, चतुर्थ में यकार, सप्तम तुला में चकार, दशम नवांश मकर में पकार, इसी क्रम में मेष में छकार, कर्क में यकार, तुला में खकार और मकर में फकार होता है।।१५।।

मेषे लग्ने केन्द्रस्था मेषकर्कितुलमकरा भवन्ति। एत एव स्वांशेनोदयं कुर्वन्ति। तत्र मेषस्य प्रथमो नवांशो मेष एव तस्य स्वामी भौमः। मेषस्य प्रथमनवांशकत्वाद्भौमवर्गात् प्रथममक्षरं ककारमापतति। हिबुके चतुर्थे कर्कटकस्तस्य स्वामी चन्द्रः, तस्यापि प्रथमनावांशकोदयत्वाच्चन्द्राद्यवर्गात् प्रथमं वर्गाक्षरं यकारमापतति। सप्तमस्थाने तुलो भवति। तस्य स्वामी शुक्रः। तत्प्रथमनवमांशत्वाच्छौक्रवर्गात् प्रथममक्षरं चकारमापतति। दशमस्थाने मकरो भवति। तस्य स्वामी शनैश्चरः तत्प्रथमनवांशकोदयत्वाच्छनैश्चरात् पवर्गात् प्रथममक्षरं पकारमापतति। अत एवोक्तम्–

मेषे ककारो हिबुके यकारस्तुले चकारो मकेर पकारः।

एवं द्वितीयादिष्वंशकेषु स्वामिविहतवर्गक्रमगणनयांशकतुल्यं वर्णं ग्राह्यम्। मृदुबुद्धिप्रबोधनायास्माभिः किञ्चित् क्रियते। तत्र मेषद्वितीयनवांशकस्य शुक्रोऽधिपतिस्तद्वर्गाद् द्वितीयमक्षरं छकारमापतति। कर्कटकद्वितीयस्य सूर्योऽधिपतिस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरमकारमापतति। तुलद्वितीयस्य भौमोऽधिपतिस्तद्वर्गाद् द्वितीयमक्षरं खकारमापतति। मकरद्वितीयनवांशकस्य सौरोऽधिपतिस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं फकारमापतति। अत एवोक्तम्–

मेषे छकारो हिबुकेऽप्यकारस्तुले खकारो मकरे फकारः।।इति।।१५।।

यदि मेषलग्न हो तब केन्द्र में मेष, कर्क, तुला और मकर राशियाँ स्थित होती हैं। इसलिए ये अपने अंश से आरम्भ होती हैं। मेष का प्रथम नवांश मेष ही होता है और उसका अधिपति भौम होता है। मेष के प्रथम नवांश होने के कारण भौम के वर्ग से प्रथम अक्षर ककार आता है। चतुर्थ भाव में कर्क रहता है। जिसका स्वामी चन्द्रमा, इसके भी प्रथम नवांश का उदय होने के कारण चन्द्रमा का आद्य वर्ग का प्रथम अक्षर यकार प्राप्त होता है। सप्तमस्थान में तुला राशि होती है। इसका स्वामी शुक्र होता है। इसका प्रथम नवमांश शुक्र के वर्ग का प्रथम अक्षर चकार होता है। दशमस्थान में मकर होता है। जिसका स्वामी शनि है। इसके प्रथम नवांश का आरम्भ मकर से होता है और उसके स्वामी शनि के पवर्ग का प्रथम अक्षर पकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

मेष में ककार, कर्क में यकार, तुला में चकार तथा मकर में पकार होता है।

इसी प्रकार द्वितीय आदि नवमांशों में होता है। उनके स्वामी ग्रहों के निर्धारित वर्ग के क्रमानुसार गणना करने पर अंश तुल्य वर्ण का ग्रहण करना चाहिए। कोमल

बुद्धि वाले को समझने हेतु मेरे द्वारा और स्पष्ट किया जा रहा है। यहाँ पर मेष का दूसरे नवमांश का स्वामी शुक्र है। उसके वर्ग से दूसरा वर्ण छकार आता है। कर्क राशि के द्वितीय नवमांश का स्वामी सूर्य होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर यकार प्राप्त होता है। तुला के द्वितीय नवमांश का स्वामी मंगल है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार होता है। मकर राशि के द्वितीय नवांश का अधिपति शनि है। जिसके वर्ग का द्वितीय अक्षर फकार होता है। इसलिए कहा गया है–

मेष में छकार, कर्क में यकार, तुला में खकार तथा मकर में फकार होता है॥१५॥

अन्वेष्यवप्याह–

मेषे टकारो हिबुके ठकार-
स्तुले तकारो मकरे थकारः।
मेषे तु रेफो हिबुके जकार-
स्तुले बकारो मकरे गकारः॥१६॥

अन्य वर्णों में भी कहते हैं–

मेष में टकार, कर्क में ठकार, तुला में तकार, मकर में थकार होता है। पुनः मेष में रकार, कर्क में जकार, तुला में बकार और मकर में गकार होता है॥१६॥

मेषे तृतीयनवांशकस्य बुधोऽधिपतिस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं टकारमापतति। कर्कटतृतीयनवांशकस्य बुध एवाधिपतिस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं ठकारमापतति। तुलतृतीयनवांशकस्य जीवोऽधिपतिस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं तकारमापतति। मकर-तृतीयनवांशकस्य जीवोऽधिपतिस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं थकारमापतति। अत एवोक्तम्–

मेषे टकारो हिबुके ठकारस्तुले तकारो मकरे थकारः।

मेषस्य चतुर्थनवांशकाधिपतिश्चन्द्रस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं रेफमापतति। कर्कटतुर्थनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं जकारमापतति। तुलस्य चतुर्थनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं बकारमापतति। मकरस्य चतुर्थनवांशाधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं गकारमापतति। अत एवोक्तम्–

मेषे तु रेफो हिबुके जकारस्तुले बकारो मकरे गकारः॥इति॥१६॥

मेष के तृतीय नवमांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर टकार आता है। कर्क के तृतीय नवमांश का स्वामी बुध है। इसके वर्ग का द्वितीय अक्षर ठकार होता है। तुला के तृतीय नवमांश का स्वामी गुरु होता है। इसके वर्ग का प्रथम अक्षर तकार प्राप्त होता है। मकर के तृतीय नवांश का अधिपति गुरु होता है। इसके वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

मेष में टकार, कर्क में ठकार, तुला में तकार और मकर में थकार होता है।

मेष के चतुर्थ नवांश का स्वामी चन्द्रमा है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर रकार होता है। कर्क के चतुर्थ नवांश का स्वामी शुक्र है और उसके वर्ग का तृतीय अक्षर जकार है। तुला के चतुर्थ नवांश का स्वामी शनि है। जिसके वर्ग का तीसरा अक्षर बकार होता है। मकर के चतुर्थ नवमांश का स्वामी मंगल है। और उसके वर्ग का तीसरा अक्षर गकार प्राप्त होता है। इसलिए कहा गया है–

मेष में रकार, कर्क में जकार, तुला में बकार तथा मकर में गकार होता है॥१६॥

अन्वेष्यप्याह–

आकारमाद्येऽम्बुगते घकार-
मस्ते भकारं मकरे झकारम्।
लग्ने डकारं हिबुके दकार-
मस्ते धकारं मकरे ढकारम्।।१७।।

अन्य नवांशो का भी कहते हैं–

मेष में आकार कर्क में घकार, तुला में भकार और मकर में झकार होता है। पुनः लग्न (मेष) में डकार, कर्क में दकार अस्त (तुला) में धकार और मकर में ढकार होता है॥१७॥

मेषे पञ्चमनवांशकस्याधिपतिः सूर्यस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरमाकारमापतति। कर्कटे पञ्चमनवांशकाधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं घकारमापतति। तुले पञ्चमनवांशकस्य सौरोऽधिपतिस्तद्वर्गाच्चतुर्थमक्षरं भकारमापतति। मकरे पञ्चमनवांशकस्य शुक्रोऽधिपतिस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं झकारमापतति। अत एवोक्तम्–

आकारमाद्येऽम्बुगते घकारमस्ते भकारं मकरे झकारम्।

मेषे षष्ठनवांशकस्य बुधोऽधिपतिस्तदीयवर्गात् तृतीयवर्गात् तृतीयमक्षरं डकारमापतति। कर्कटके षष्ठनवांशाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं दकारमापतति। तुले षष्ठनवांशाधिपतिर्जीव एव तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं धकारमापतति। मकरे षष्ठनवांशाधिपतिर्बुधस्तदीवर्गाच्चतुर्थमक्षरं ढकारमापतति। अतएवोक्तम्–

लग्ने डकारं हिबुके दकारमस्ते धकारं मकरे ढकारम् ॥इति १७॥

मेष के पञ्चम नवांश का स्वामी सूर्य होता है, जिसके वर्ग का द्वितीय अक्षर आकार होता है। कर्क के पञ्चम नवांश का स्वामी मंगल है। इसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर घकार होता है। तुला के पञ्चम नवांश का स्वामी शनि है और उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर भकार प्राप्त होता है। मकर के पञ्चम नवमांश का स्वामी शुक्र है और उसके

वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार होता है। इसलिए कहा गया है–

मेष में आकार, कर्क में धकार, तुला में भकार तथा मकर में झकार होता है।

मेष के षष्ठ नवांश का स्वामी बुध है और उसके वर्ग का तृतीय अक्षर डकार होता है। कर्क के षष्ठ नवमांश का स्वामी ग्रह गुरु होता है। इसके वर्ग का तृतीय अक्षर दकार होता है। तुला के षष्ठ नवमांश का स्वामी गुरु होता है और उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर धकार होता है। मकर के षष्ठ नवमांश का स्वामी बुध है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर ठकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

लग्न में डकार, कर्क में दकार, तुला में धकार और मकर में ठकार होता है॥१७॥

अन्येष्वप्याह–

लग्ने ञकारो हिबुके मकार-
स्तुले ङकारो मकरे लकारः।
लग्ने ककारो हिबुके पकार-
स्तुले चकारो मकरे इकारः॥१८॥

अन्य अंशों में भी कहते हैं–

लग्न (मेष) में ञकार, हिबुक (कर्क) में मकार, तुला में ङकार और मकर में लकार होता है। पुनः लग्न में ककार, कर्क में पकार, तुला में चकार तथा मकर में इकार होता है॥१८॥

मेषस्य सप्तनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं ञकारमापतति। कर्कटस्य सप्तनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं मकारमापतति। तुलस्य सप्तन-वांशकाधिपतिभौमस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं ङकार-मापतति। मकरस्य सप्तनवांशकाधि-पतिश्चन्द्रस्तद्वर्गात् तृतीयमक्षरं लकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने ञकारो हिबुके मकारस्तुले ङकारो मकरे लकारः।

मेषस्याष्टमनवांशकाधिपतिभौमस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरं ककारमापतति। कर्कटस्याष्ट-मनवांशकाधिपतिः सौरस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरं पकारमापतति। तुलस्याष्टमनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरं चकारमापतति। मकरस्याष्टमनवांशकाधिपतिः सूर्यस्तद्वर्गात् तृतीयमक्षरमिकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने ककारो हिबुके पकारः। इत्यादि॥१८॥

मेष के सातवें नवांश का स्वामी शुक्र होता है, तथा उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर ञकार होता है। कर्क के सातवें नवांश का स्वामी शनि है। इसके वर्ग का पाँचवाँ अक्षर मकार होता है। तुला के सातवें नवांश का स्वामी भौम है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर

ङकार होता है। मकर के सातवें नवांश का स्वामी चन्द्रमा है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर लकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

लग्न में ञकार, चतुर्थ में मकार, तुला में ङकार तथा मकर में लकार होता है।

मेष के आठवें नवांश का अधिपति मंगल होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर ककार होता है। कर्क के आठवें नवांश का स्वामी शनि है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर पकार होता है। तुला के आठवें नवांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर चकार होता है। मकर के आठवें नवांश का अधिपति सूर्य होता है तथा उसके वर्ग का तृतीय अक्षर इकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

लग्न में ककार, चतुर्थ में पकार इत्यादि ॥१८॥

अन्येष्वप्याह–

लग्ने नकारो हिबुके तकार-
स्तुले णकारो मकरे टकारः।
इत्येतदुक्तं चरसंज्ञकस्य वक्ष्ये
स्थिराख्यस्य चतुष्टयस्य।।१९।।

और अंशों में भी कहते हैं–

लग्न अर्थात् मेष लग्न के नवम नवमांश का वर्ण नकार, कर्क का तकार, तुला का णकार और मकर का टकार होता है। चरसंज्ञक (१, ४, ७, १०) राशियों का वर्णाक्षर विचार कहा गया है। स्थिरसंज्ञक राशियों (२,५,८,११) का विचार आगे किया जायेगा।।१९।।

मेषस्य नवमनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं नकारमापतति। कर्कटस्य नवमनवांशाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं तकारमापतति। तुलस्य नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं णकारमापतति। मकरस्य नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरं टकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने नकारो हिबुके तकारस्तुले णकारो मकरे टकारः। इत्यादि

इत्येतदुक्तमिति। इत्यनेन प्रकारेणैतदुक्तम्। तच्चरसंज्ञकस्य चतुष्टस्य। स्थिरसंज्ञकस्य वृषसिंहवृश्चिककुम्भाख्यस्येदानीं वक्ष्ये कथयिष्ये।।१९।।

मेष के नवम नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार होता है। कर्क के नौवें नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर तकार होता है। तुला के नौवें नवमांश का अधिपति बुध होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार होता है। मकर के नवम नवमांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर टकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

लग्न में नकार, कर्क में तकार, तुला में णकार तथा मकर में टकार होता है। इत्यादि।

इस प्रकार से उपर्युक्त कथन है, जो चर संज्ञक चार राशियों से सम्बन्धित है। स्थिरसंज्ञक वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियों का अभिकथन आगे किया जायेगा।।१९।।

अधुना तदेवाह–

वृषे फकारो हिबुके खकारः कीटे वकारो नृघटे छकारः।
आद्यांशकेभ्यो मतिमान् विदध्यादनुक्रमेण स्थिरसंज्ञकेषु।।२०।।

अब स्थिरराशियों के अंशों को कहते हैं–

वृषराशि के प्रथम नवांश में फकार, चतुर्थ सिंह राशि का खकार, वृश्चिक, राशि का वकार और कुम्भराशि का छकार वर्ण होता है। इसी प्रकार प्रथम नवमांश के अगले नवमांश का वर्णविचार विद्वद् वर्ग क्रमानुसार ज्ञात करे।।२०।।

स्थिरसंज्ञा वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः। ते च यथासङ्ख्यं मकरमेषकर्कटतुलेभ्य उदयं यान्ति। वृषस्य प्रथमनवांशको मकरस्तत्स्वामी सौरस्तदीयद्वितीयमक्षरं फकारमापतति। सिंहस्य प्रथममनवांशको मेषस्तत्स्वामी भौमस्तदीयाद्वर्गाद् द्वितीयमक्षरं खकारमापतति। वृश्चिकस्य प्रथमनावांशकः कर्कः तस्य स्वामी चन्द्रस्तदीयाद्य वर्गाच्चतुर्थमक्षरं वकारमापतति। कुम्भस्य प्रथमनवांशकस्तुलस्त्स्वामी शुक्रस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं छकारमापतति। अत एवोक्तम्–

वृषे फकारो हिबुके खकारः कीटे वकारो नृघटे छकारः।

एवं स्थिरसंज्ञकेषु स्थिरराशिषु मतिमान् पण्डित आद्यांशकेषु प्रथमनवांशकेष्वनुक्रमेण परिपाट्या विदध्यात् कारयेत्।।२०।।

वृष-सिंह-वृश्चिक और कुम्भराशियाँ स्थिरसंज्ञक है। इनमें क्रमशः मकर, मेष, कर्क और तुला राशियाँ प्रथम नवमांश में उदित होती हैं। वृषभ राशि का प्रथम नवमांश मकर है। जिसका स्वामी शनि होता है, इसका द्वितीय अक्षर फकार होता है। सिंह की प्रथम नवमांश राशि मेष है। इसका स्वामी मंगल होता है। इसके वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार प्राप्त होता है। वृश्चिक का प्रथम नवमांश कर्क राशि है, जिसका स्वामी चन्द्रमा है, और इसके आद्य वर्ग का चतुर्थ अक्षर वकार होता है। कुम्भ के प्रथम नवमांश की राशि तुला है। जिसका स्वामी शुक्र है और उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में फकार, कर्क में खकार, वृश्चिक में वकार और कुम्भ में छकार होता है।

इस प्रकार स्थिरसंज्ञक राशियों में बुद्धिमान् पण्डित आद्यांश अर्थात् प्रथम नवमांश के आधार पर क्रमानुसार वर्णज्ञान का विचार करें।।२०।।

अथान्येष्वाह–

लग्ने बकारो हिबुके जकार
ईकारमस्तेऽम्बरगे गकारः।
वृषे थकारो हिबुके टकारः
कीटे डकारो नृघटे दकारः।।२१।।

अन्य अंशों में भी कहते हैं–

वृष लग्न में वकार, सिंह में जकार, वृश्चिक में ईकार और कुम्भ में गकार होता है। वृष के तृतीय नवमांश में थकार, हिबुक (सिंह) में टकार, वृश्चिक में डकार तथा कुम्भ में दकार होता है।।२१।।

वृषद्वितीयनवांशकस्य सौरः स्वामी तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं बकारमापतति। सिंहद्वितीनवांशकस्य स्वामी शुक्रस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं जकारमापतति। वृश्चिकद्वितीयनवांशकस्य स्वामी सूर्यस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरमीकारमापतति। कुम्भस्य द्वितीयनवांशकस्वामी भौमस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं गकाररमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने बकारो हिबुके जकार ईकारमस्तेऽम्बरगे गकारः।

वृषतृतीयनवांशकस्वामी जीवस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं थकारमापतति। सिंहस्य तृतीयनवांशकस्वामी बुधस्तद्वर्गात् प्रथममक्षरं टकारमापतति। वृश्चिकस्य तृतीयनवांशकस्वामी बुधस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं डकारमापतति। कुम्भस्य तृतीयनवांशकस्वामी जीवस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं दकारमापतति। अत एवोक्तम्–

वृषे थकारो हिबुके टकारः कीटे डकारो नृघटे दकारः। इति।।२१।।

वृष के द्वितीय नवांश का स्वामी शनि होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर बकार होता है। सिंह के द्वितीय नवांश का स्वामी शुक्र है। उसके वर्ग का तीसरा अक्षर जकार होता है वृश्चिक के द्वितीय नवांश का स्वामी सूर्य है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर ईकार होता है। कुम्भ के द्वितीय नवांश का स्वामी भौम है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर गकार होता है। इसीलिए कहा गया है–

लग्न में बकार, सिंह में जकार, वृश्चिक में ईकार तथा कुम्भ में गकार होता है।

वृष के तृतीय नवांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार होता है। सिंह के तृतीय नवांश का स्वामी बुध है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर टकार होता है। वृश्चिक के तृतीय नवांश का स्वामी बुध है। उसके वर्ग का तीसरा अक्षर डकार होता है। कुम्भ के तृतीय नवांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर दकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में थकार, सिंह में टकार, वृश्चिक में डकार तथा कुम्भ में दकार होता है।।२१।।

अन्येष्वाह–

वृषे घकारो हिबुके शकारः
कीटे झकारो नृघटे भकारः।
लग्ने जकारो हिबुके उकारः
कीटे ङकारो नृघटे मकारः।।२२।।

अन्य अंशों में कहते हैं–

वृष लग्न के चतुर्थ नवमांश में घकार, हिबुक चतुर्थ अर्थात् सिंह में शकार, वृश्चिक में झकार तथा कुम्भ में भकार होता है। वृषराशि के पञ्चम नवमांश में जकार, सिंह में उकार, वृश्चिक में डकार और कुम्भ में मकार होता है।।२२।।

वृषस्य चतुर्थनवांशकाधिपो भौमस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं घकारमापतति। सिंहस्य चतुर्थनवांशकाधिपतिश्चन्द्रस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं शकारमापतति। वृश्चिकस्य चतुर्थनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं झकारमापतति। कुम्भस्य चतुर्थन-वांशकाधिपतिः सौरस्तदीवर्गाच्चतुर्थमक्षरं भकारमापतति। अतएवोक्तम्–

वृषे घकारो हिबुके शकारः कीटे झकारो नृघटे भकारः।

वृषस्य पञ्चमनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं जकारमापतति। सिंहस्य पञ्चमनवांशकाधिपतिः सूर्यस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरमुकारमापतति। वृश्चिकस्य पञ्चमनवांशकाधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं ङकारमापतति। कुम्भस्य पञ्चमन-वांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं मकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने जकारो हिबुके उकारः कीटे ङकारो नृघटे मकारः ।।इति।।२२।।

वृष के चतुर्थ नवांश का स्वामी मंगल है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर धकार होता है। सिंह के चतुर्थ नवांश का अधिपति चन्द्रमा है। उसके वर्ग का पञ्चम वर्ण शकार होता है। वृश्चिक के चतुर्थ नवांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार होता है। कुम्भ के चतुर्थं नवांश का स्वामी शनि है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर भकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में घकार, सिंह में शकार, वृश्चिक में झकार तथा कुम्भ में भकार होता है।

वृष के पञ्चम नवांश का स्वामी शुक्र है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर जकार होता है। सिंह के पञ्चम नवांश का स्वामी सूर्य होता है। उसके वर्ग का पञ्चम वर्ण उकार होता है। वृश्चिक के पञ्चम नवांश का स्वामी मंगल है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर ङकार होता है। कुम्भ के पञ्चम नवांश का अधिपति शनि होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर मकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में जकार, सिंह में उकार, वृश्चिक में ङकार तथा कुम्भ में मकार होता

है।।२२।।

अन्येष्वप्याह–

लग्ने ढकारोऽथ जले णकार-
श्चास्ते धकारोऽम्बरगे नकारः।
वृषे षकारो हिबुके चकारः।
कीटे पकारो नृघटे ककारः।।२३।।

अन्य अंशों में कहा गया है–

वृष लग्न के छठे नवमांश में ढकार, सिंह (जल) में णकार, वृश्चिक में धकार तथा कुम्भ में नकार होता है। वृष के सप्तम नवमांश में षकार, सिंह में चकार, वृश्चिक में पकार और कुम्भ में ककार होता है।।२३।।

वृषस्य षष्ठनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं ढकारमापतति। सिंहस्य षष्ठनवांशाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं णकारमापतति। वृश्चिकस्य षष्ठनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं धकारमापतति। कुम्भस्य षष्ठनवांशाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं नकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने ढकारोऽथ जले णकारश्चास्ते धकारोऽम्बरगे नकारः।

वृषस्य सप्तमनवांशकाधिपतिचन्द्रस्तदीयर्गात् षष्ठमक्षरं षकारमापतति। सिंहस्य सप्तनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीय वर्गात्, प्रथममक्षरं चकारमापतति। वृश्चिकस्य सप्तमनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं पकारमापतति। कुम्भस्य सप्तमनवांशकाधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं ककारमापतति। अत एवोक्तम्–

वृषे षकारो हिबुके चकारः कीटे पकारो नृघटे ककारः। इति।।२३।।

वृष के षष्ठ नवांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ वर्ण ढकार होता है। सिंह के षष्ठ नवांश का अधिपति बुध है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार होता है। वृश्चिक के षष्ठ नवांश का स्वामी बृहस्पति होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ वर्ण धकार होता है। कुम्भ के षष्ठ नवांश का स्वामी गुरु है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष–लग्न में ढकार, सिंह में णकार, वृश्चिक में धकार तथा कुम्भ में नकार होता है।

वृष के सातवें नवांश का स्वामी चन्द्रमा है। उसके वर्ग का षष्ठ वर्ण षकार होता है। सिंह के सातवें नवांश का अधिपति शुक्र होता है। उसके वर्ग का प्रथम वर्ण चकार होता है। वृश्चिक के सातवें नवांश का स्वामी शनि होता है। उसके वर्ग का प्रथम वर्ण पकार होता है। कुम्भ के सातवें नवांश का अधिपति मंगल है। उसके वर्ग का प्रथम

अक्षर ककार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में षकार, सिंह में चकार, वृश्चिक में पकार तथा कुम्भ में ककार होता है॥२३॥

अन्येष्वप्याह–

ऊकारमाहुर्वृषभे जले ख-
मस्ते फकारो नृघटे छकारः।
अन्त्ये वृषे टं तमुशन्ति सिंहे
थं सप्तगे ठं प्रवदन्ति कुम्भे॥२४॥

अन्य अंशों में कहा गया है–

वृष लग्न के अष्टम नवमांश में ऊकार, सिंह में खकार, वृश्चिक में फकार और कुम्भ में छकार होता है। वृष लग्न के अन्तिम नवमांश में टकार, सिंह में थकार, तथा कुम्भ में ठकार कहा गया है॥२४॥

वृषस्याष्टमनवांशकाधिपतिः सूर्यस्तदीयवर्गात् षष्ठमक्षरमूकारमापतति। सिंहस्याष्टमनवांशकाधपतिभौमस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं खकारमापतति। वृश्चिकस्याष्टमनवांशकाधिपतिः शनिस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं फकारमापतति। कुम्भस्याष्टमनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं छकारमापतति। अत एवोक्तम्–

ऊकारमाहुर्वृषभे जले खमस्ते फकारो नृघटे छकारः।

वृषस्य नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं टकारमापतति। सिंहस्य नवमनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं तकारमापतति। वृश्चिकस्य नवमनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं थकारमापतति। कुम्भस्य नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं ठकारमापतति। अत एवोक्तम्–

अन्त्ये वृषे टं तमुशन्ति सिंहे थं सप्तगे ठं प्रवदन्ति कुम्भे। इति॥२४॥

वृष के आठवें नवांश का स्वामी सूर्य होता है। उसके वर्ग का षष्ठ वर्ण ऊकार होता है। सिंह के आठवें नवांश का स्वामी भौम है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार होता है। वृश्चिक के आठवें नवांश का अधिपति शनि है। उसके वर्ग का द्वितीय वर्ण फकार होता है। कुम्भ के आठवें नवांश का स्वामी शुक्र है उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर छकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में ऊकार, सिंह में खकार, वृश्चिक में फकार तथा कुम्भ में छकार होता है।

वृष के नवमांश का अधिपति बुध होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर टकार होता है। सिंह के नवम नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर तकार होता है। वृश्चिक के नवम नवांश का स्वामी गुरु है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर

थकार होता है। कुम्भ के नवम नवमांश का स्वामी बुध है। उसके वर्ग का द्वितीय वर्ण ठकार होता है। इसलिए कहा गया है–

वृष में टकार, सिंह में तकार, वृश्चिक में थकार तथा कुम्भ में ठकार होता है॥२४॥

अथ द्विस्वभावेष्वाह–

द्विमूर्तिसंज्ञे मिथुने जकारः
षष्ठे बकारः प्रथमांशके स्यात्।
धनुर्धरेऽस्तोपगते गकारो
मीनद्वये चाम्बरगे सकारः।।२५।।

अब द्विस्वभाव लग्नो में कहते हैं–

द्विस्वभाव संज्ञक मिथुन लग्न के प्रथम नवांश में जकार, कन्या में बकार, धनु में गकार और मीन राशि में सकार होता है॥२५॥

द्विमूर्तिसंज्ञा मिथुनकन्याधन्विमीना। तुलमकरमेषकर्कटेभ्य उदयं यान्ति। मिथुनस्य प्रथमनवांशकस्तुलस्तस्य स्वामी शुक्रस्तदीयाच्चवर्गात् तृतीयमक्षरं जकारमापतति। कन्यायाः प्रथमनवांशको मकरस्तस्य स्वामी सौरस्तदीयात् पवर्गात् तृतीयमक्षरं बकारमापतति। धनुषः प्रथमनवांशको मेषस्तस्य स्वामी भौमस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं गकारमापतति। मीनस्य प्रथमनवांशकः कर्कटस्तस्य स्वामी चन्द्रस्तदीयवर्गात् सप्तममक्षरं सकारमापतति। अत एवोक्तम्–

द्विमूर्तिसंज्ञे मिथुने जकारः षष्ठे बकारः प्रथमांशके स्यात्।
धनुर्धरेऽस्तोपगते गकारो मीनद्वये चाम्बरगे सकारः।इति।।२५।।

मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशियाँ द्विस्वभाव संज्ञक हैं। इनमें क्रमशः तुला, मकर, मेष और कर्क राशियाँ प्रथम नवांश में उदित होती हैं। मिथुन राशि का प्रथम नवांश तुला है जिसका स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर जकार होता है। कन्या का प्रथम नवांश मकर होता है, जिसका स्वामी शनि है। उसका वर्ग प वर्ग है, जिसका तृतीय अक्षर बकार होता है। धनु का प्रथम नवमांश मेष होता है, जिसका स्वामी भौम है। उसके वर्ग का तृतीय वर्ण गकार होता है। मीन का प्रथम नवांश कर्क होता है, जिसका स्वामी चन्द्रमा है। उसके वर्ग का सातवाँ अक्षर सकार होता है। इसलिए कहा गया है–

द्विस्वभावसंज्ञक मिथुन राशि में जकार और कन्या में बकार प्रथम नवमांश में होता है। उसके सप्तम में स्थित धनुराशि में गकार एवं दशमस्थ मीन रशि का सकार वर्ण होता है॥२५॥

अन्येष्वप्याह–

लग्ने घकारो हिबुके भकार-
श्चास्ते झकारोऽम्बरमध्यगे ई
लग्ने दकारो हिबुके धकार-
मस्ते डकारं विदुरम्बरे ढम्।।२६।।

अन्य अंशों में कहते हैं–

मिथुन लग्न के द्वितीय नवमांश में घकार एवं हिबुक अर्थात् उससे चतुर्थ कन्या राशि में भकार और सप्तम धनु राशि में झकार तथा दशमस्थ मीन राशि में ईकार होता है। पुनः मिथुन लग्न के तृतीय नवमांश में दकार, कन्या में धकार, धनु में डकार और मीन में ढकार होता है॥२६॥

मिथुनस्य द्वितीयनवांशस्वामी भौमस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं घकारमापतति। कन्याया द्वितीयनवांशकस्वामी सौरस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं भकारमापतति। धन्विनो द्वितीयनवांशकस्वामी शुक्रस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं झकारमापतति। मीनस्य द्वितीयनवांशकस्वामी सूर्यस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरमीकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने घकारो हिबुके भकारश्चास्ते झकारोऽम्बरमध्यगे ई।

मिथुनतृतीयनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं दकारमापतति। कन्यातृतीयनवांशकपतिर्जीवस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं धकारमापतति। धन्विन-स्तृतीयनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं डकारमापतति। मीनस्य तृतीयनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गाच्चतुर्थमक्षरं ढकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने दकारो हिबुके धकारमस्ते डकारं विदुरम्बरे ढम्। इति।।२६।।

मिथुन के द्वितीय नवांश का स्वामी मंगल होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर घकार होता है। कन्या का चतुर्थ वर्ण भकार होता है। धनु के द्वितीय नवांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर झकार होता है। मीन के द्वितीय नवांश का स्वामी सूर्य है। उसके वर्ग का चतुर्थ वर्ण ईकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में घकार, कन्या में भकार, धनु में झकार तथा मीन में ईकार होता है।

मिथुन के तृतीय नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर दकार होता है। कन्या के तृतीय नवांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ वर्ण धकार होता है। धनु के तृतीय नवमांश का स्वामी बुध है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर डकार होता है। मीन के तृतीय नवमांश का अधिपति बुध होता है। उसके वर्ग का चतुर्थ अक्षर ढकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में दकार, कन्या में धकार, धनु में डकार तथा मीन में ढकार होता

है।।२६।।

अन्येष्वाह–

लग्ने मकारो हिबुके ङकार-
श्चास्ते हकारोऽम्बरगे ञकारः।
लग्ने पकारो जलगे चकार
ऐकारमस्तेऽम्बरगे ककारः।।२७।।

अन्य अंशों में कहते हैं–मिथुन लग्न के चतुर्थ नवमांश में मकार, कन्या में ङकार, सप्तमस्थ धनु में हकार और दशमस्थ मीन में ञकार होता है। पुनः मिथुन लग्न के पञ्चम नवमांश में पकार, कन्या में चकार, धनु में ऐकार और मीन में ककार होता है।।२७।।

मिथुनस्य चतुर्थनवांशकस्वामी सौरस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं मकारमापतति। कन्यायाश्चतुर्थनवाशंकस्वामी भौमस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं ङकारमापतति। धन्विनश्च-तुर्थनवांशकाधिपतिश्चन्द्रस्तदीयवर्गादष्टममक्षरं हकारमापतति। मीनस्य चतुर्थनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं ञकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने मकारो हिबुके ङकारश्चास्ते हकारोऽम्बरगे ञकारः।

मिथुनस्य पञ्चमनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं पकारमापतति। कन्यायाः पञ्चमनवांशकाधिपति; शुक्रस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं चकारमापतति। धनुषः पञ्चमनवांशकाधिपतिः सूर्यस्तदीयवर्गादष्टममक्षरमैकारमापतति। मीनस्य पञ्चमनवांश-काधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं ककारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने पकारो जलगे चकार ऐकारमस्तेऽम्बरगे ककारः। इति।।२७।।

मिथुन के चतुर्थ नवमांश का स्वामी शनि होता है। उसके वर्ग का पञ्चमाक्षर मकार होता है। कन्या के चतुर्थ नवांश का स्वामी भौम है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर ङकार होता है। धनु राशि के चतुर्थ नवांश का अधिपति ग्रह चन्द्रमा है। उसके वर्ग का षष्ठ अक्षर हकार होता है। मीन के चतुर्थ नवांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर ञकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में मकार, कन्या में ङकार, धनु में हकार तथा मीन में ञकार होता है।

मिथुन के पञ्चम नवांश का अधिपति शनि ग्रह होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर पकार होता है। कन्या राशि के पञ्चम नवांश का अधिपति शुक्र होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर चकार होता है। धनुराशि के पञ्चम नवांश का अधिपति सूर्य है। उसके वर्ग का अष्टम वर्ण ऐकार होता है। मीन के पञ्चम नवांश का स्वामी भौम है। उसके वर्ग का प्रथम वर्ण ककार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में पकार, कन्या में चकार, धनु में ऐकार तथा मीन में ककार होता है।।२७।।

अन्येष्वाह–

प्राग्लग्नगे नं जलगे णमाहु-
रस्तं गते टं नभसि स्थिते तम्।
प्राग्लग्नगे खं जलगे यमाहु-
रस्तं गते छं नभसि स्थिते फम्।।२८।।

अन्य नवमांशो को कहा जा रहा है–

मिथुन के षष्ठ नवमांश का पञ्चम अक्षर नकार, कन्या में णकार, धनु में टकार और मीन का तकार होता है। इसी प्रकार मिथुन के सप्तम नवमांश में खकार, कन्या में यकार, धनु में छकार और मीन में फकार होता है।।२८।।

मिथुनस्य षष्ठनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं नकारमापतति। कन्यायाः षष्ठनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् पञ्चममक्षरं णकारमापतति। धन्विनः षष्ठनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं टकारमापतति। मीनस्य षष्ठनवांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं तकारमापतति। अत एवोक्तम्–

प्राग्लग्नगे नं जलगे णमाहुरस्तं गते टं नभसि स्थिते तम्।

मिथुनस्य सप्तमनवांशकाधिपतिर्भौमस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं खकारमापतति। कन्यायाः सप्तमनवांशकाधिपतिश्चन्द्रस्तदीयवर्गात् प्रथममक्षरं यकारमापतति। धन्विनः सप्तमनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं छकारमापतति। मीनस्य सप्तमनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं फकारमापतति। अत एवोक्तम्–

प्राग्लग्नगे खं जलगे यमाहुरस्तं गते छं नभसि स्थिते फम्। ।।२८।।

मिथुन के छठे नवांश का अधिपति गुरु होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर नकार होता है। कन्या राशि के षष्ठ नवमांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का पञ्चम अक्षर णकार होता है। धनु राशि के षष्ठ नवमांश का अधिपति बुध है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर टकार होता है। मीन के षष्ठ नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का प्रथम वर्ण तकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में नकार, कन्या में णकार, धनु में टकार तथा मीन में तकार होता है।

मिथुन के सप्तम नवमांश का स्वामी भौम होता है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर खकार होता है। कन्या के सप्तम नवमांश का अधिपति चन्द्रमा होता है। उसके वर्ग का प्रथम अक्षर यकार होता है। धनु के सप्तम नवमांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का द्वितीय वर्ण छकार होता है। मीन राशि के सप्तम नवमांश का अधिपति

शनि होता है। उसके वर्ग का द्वितीय वर्ण फकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में खकार, कन्या में यकार, धनु में छकार तथा मीन में फकार होता है।।२८।।

अन्येष्वाह–

लग्ने जमोकारमथाम्बुसंस्थे गमस्तसंस्थे विदुरम्बरे बम्।
ठं लग्नगेऽन्त्ये हिबुकाश्रिते डं थमस्तगे दं नभसि स्थिते वै।।२९।।

अन्य अंशों में कहते हैं–

मिथुन लग्न के अष्टम नवमांश में जकार, कन्या में ओकार धनु में गकार तथा मीन में बकार होता है। इसी प्रकार मिथुन लग्न के अन्तिम नवांश में ठकार तथा उससे चतुर्थ कन्या में डकार, सप्तम धनु में थकार एवं दशम मीन में दकार होता है।।२९।।

मिथुनस्याष्टमनवांशकाधिपतिः शुक्रस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं जकारमापतति। कन्याया अष्टमनवांशकाधिपतिः सूर्यस्तदीयवर्गान्नवममक्षरमोकारमापतति। धन्विनोऽष्टमनवांशकाधिपति- भौमस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं गकारमापतति। मीनस्याष्टमनवांशकाधिपतिः सौरस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं बकारमापतति। अत एवोक्तम्–

लग्ने जमोकारमथाम्बुसंस्थे गमस्तसंस्थे विदुरम्बरे बम्।

मिथुनस्य नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं ठकारमापतति। कन्याया नवमनवांशकाधिपतिर्बुधस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं डकारमापतति। धन्विनो नवमन- वांशकाधिपतिर्जीवस्तदीयवर्गाद् द्वितीयमक्षरं थखारमापतति। मीनस्य नवमनवांशकाधिपति- र्जीवस्तदीयवर्गात् तृतीयमक्षरं दकारमापतति। अत एवोक्तम्–

ठं लग्नगेऽन्त्ये हिबुकाश्रिते डं थमस्तगे दं नभसि स्थिते वै। इति।।२९।।

मिथुन के आठवें नवांश का स्वामी शुक्र होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर जकार होता है। कन्या राशि के आठवें नवांश का स्वामी सूर्य होता है। उसके वर्ग का नवम अक्षर ओकार होता है। धनुराशि का अष्टम नवमाशं का स्वामी सूर्य होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर गकार होता है। मीन राशि के अष्टम नवमांश का स्वामी शनि होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर बकार होता है। इसलिए कहा गया है–

लग्न में जकार, कन्या में ओकार, धनु में जकार तथा मीन में बकार होता है।

मिथुनराशि के नवम नवमांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर ठकार होता है। कन्या राशि के नवम नवमांश का स्वामी बुध होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर डकार होता है। धनु राशि के नवम नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का द्वितीय अक्षर थकार होता है। मीन राशि के नवम नवमांश का स्वामी गुरु होता है। उसके वर्ग का तृतीय अक्षर दकार होता है। इसलिए कहा गया है–

मिथुन लग्न में ठकार, कन्या में डकार, धनु में थकार तथा मीन में दकार होता है॥२९॥

अत्र प्रविभागमाह–

एवं विकल्पोऽक्षरसंग्रहोऽयं
नाम्नां निरुद्दिष्टविधान उक्तः।
सर्वेषु लग्नेषु च केचिदेव-
मिच्छन्ति पूर्वोक्तविधानवत् तु॥३०॥

इन अंशों के विभाग बतलाते हैं–

इस प्रकार वर्णाक्षरों के संकलन हेतु संकल्पना की गयी है। जिसका नामाक्षर ज्ञात करने का विधान बतलाया गया है। कतिपय आचार्य पूर्वोक्त विधान के अनुसार ही मेषादि सभी लग्नों में विचार करना चाहते हैं॥३०॥

एवमनेनानन्तरोक्तेन प्रकारेण विकल्पो विकल्पना यस्याक्षरसंग्रहस्य वर्णसंघातस्य सोऽयं नाम्नामभिधानानां निर्विशेषेणोद्दिष्टमुक्तं विधानं विधिर्येन। उक्तः कथितः सर्वेष्वखिलेषु लग्नेषु मेषादिषु राशिषु केचिदाचार्या एवमनेन प्रकारेणेच्छन्ति वाञ्छन्ति। पूर्वोक्तविधानवत् तु। पूर्वोक्तेन प्रागुद्दिष्टेन विधानेन तुल्यं वर्तत इति पूर्वोक्तविधानवत्। मेषे ककार इत्यादिनेति॥३०॥

इस प्रकार उपर्युक्त विधि को विकल्पित कर जिन अक्षरों के संकलन का निर्देश किया गया है, नामाक्षरों के निर्णय हेतु यह विशिष्ट विधि अभिकथित है। सभी लग्नों में अर्थात् मेषादि राशियों में कतिपय आचार्य इसी विधि से विचार करना चाहते हैं। विधि वही है, जो इसके पूर्व कही गयी है। जैसाकि मेषलग्न में ककार इत्यादि का उल्लेख है॥३०॥

अत्रैव नामानयने प्रकारान्तरमाह–

केन्द्राणि वा केन्द्रगतांशकैः स्वैः
पृथक् पृथक् संगुणितानि कृत्वा।
त्रिकृद्विभक्तं विदुरक्षरं तत्
क्षेत्रेश्वरस्यांशपरिक्रमस्वम्॥३१।

यहाँ पर नाम ज्ञात करने के लिए प्रकारान्तर कहते हैं–

केन्द्र में स्थित चार राशियों तथा केन्द्रगत उन राशियों के अपने-अपने नवमांश के अनुसार पृथक्-पृथक् संकलित कर विचार किया जाता है। चर-स्थिर-द्विस्वभाव; इन तीन प्रकार की राशियों के अनुसार अक्षरों का विचार किया जाता है। जिनमें राशिपति तथा उसके नवमांशपति के आधार पर नामाक्षर निश्चित होते

हैं॥३१॥

मेषादयः पृच्छालग्ना द्वादश तेषां त्रयो भेदाश्चरस्थिरद्विस्वभावाख्याः। तत्र चरा मेषकर्कितुलमकराः। स्थिरा वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः। द्विस्वभावा मिथुन कन्याधन्विमीनाः। मेषादिषु चतुर्षु मध्याद्यन्तमारभ्य पृच्छा भवति। तत आरभ्य चराणि चत्वारि केन्द्राणि भवन्ति राश्यादिष्विति।

अथ स्थिरेषु वृषादिषु चतुर्षु मध्याद्यन्तमारभ्य पृच्छा भवति। तत आरभ्य स्थिराणि चत्वारि केन्द्राणि भवन्ति।

अथ द्विस्वभावेषु मिथुनादिषु चतुर्ष्वपि मध्याद्यन्तमारभ्य पृच्छा भवति। तत एवारभ्य द्विस्वभावानि चत्वारि केन्द्राणि भवन्ति, नान्यानि। केन्द्राणि च लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि। वाशब्दो भावान्तरोक्तविकल्पप्रदर्शनार्थः। मेषे ककार इत्येतच्चक्रं प्रागुक्तं प्रदर्शितम् ।

वा केन्द्रगतांशकैः स्वैरिति। केन्द्रेषु चतुर्षु ये गताः समवस्थिता अंशका नवभागास्तैरात्मीयैः पृथक् पृथक् प्रत्येकं संगुणितानि संहतानि कृत्वा विधाय। एतदुक्तं

मे	बृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
क	फ	ज	प	ख	ब	च	व	ग	प	छ	स
छ	ब	घ	अ	ज	भ	ख	ई	झ	फ	ग	ई
ट	थ	द	ठ	ट	ध	त	ड	ड	थ	द	ढ
र	घ	म	ज	श	ङ	ब	झ	ह	ग	भ	ञ
आ	ञ	प	घ	उ	च	भ	ङ	ऐ	झ	म	क
ड	ढ	न	द	ण	ण	ध	ध	ट	ढ	न	त
ञ	ष	ख	म	च	य	ङ	प	छ	ल	क	फ
क	ऊ	ज	प	ख	ओ	च	ठ	ग	इ	छ	ब
न	ट	ठ	त	त	ड	ण	थ	थ	ट	ठ	द

भवति—केन्द्रस्थितं राशिं मेषादिकं नवांशैर्नवभिर्विभज्य यद्‌भवति तावत्सङ्ख्यमङ्कं संस्थाप्योदित नवांशकैः स्वैर्गुणयेत्। ततस्तत्केन्द्रचतुष्टयं त्रिकृता त्रिकृत्या भक्तं कार्यम्। त्रयाणां कृद्वर्गस्त्रिकृद् नव इत्यर्थः। तया विभक्तं विभाजितम्। तदक्षरं वर्णं विदुर्जानते। यल्लब्धं तदक्षरम्। कस्य? क्षेत्रेश्वरस्य राश्यधिपतेः। अंशपरिक्रमेण नवांशपरिपाट्या स्वमात्मीयम्। अयमभिप्रायोऽत्र त्रैराशिकात्मकः। यदि नवभिर्नवभिर्नवाक्षराणि लभ्यन्ते तदेभिर्नवांशकैः कत्यक्षराणीति। चरेषु चतुर्ष्वपि केन्द्रेषु सर्वेषां भौमादीनां षणनवांशा भवन्ति। तैश्चैतावत एव संगुण्य षडक्षराणि भवन्ति। एष्वेव केन्द्रेषु सर्वेषां स्ववर्गाक्षराणि परिपाट्या भवन्ति। प्रथमनवांशके स्ववर्गे प्रथममक्षरं, द्वितीये द्वितीयं, तृतीये तृतीयमेतावता

चरकेन्द्रचतुष्टये। सप्तमे द्वितीयम्। अष्टमे तृतीयं। नवमे चतुर्थम्। दशमे पञ्चमम्। एकादशे पुनर्निवृत्य स्ववर्गात् प्रथमम्। द्वादशे द्वितीयम्। अर्कचन्द्रयोस्तु चतुर्थे चतुर्थं, पञ्चमे पञ्चमं, षष्ठे षष्ठम्। एतावता स्थिरे केन्द्रचतुष्टये समाप्ते द्विमूर्तिकेन्द्रचतुष्टये त्रयोदशे तृतीयं चतुर्दशे चतुर्थं पञ्चदशे पञ्चमम्। षोडशे पुनर्निवृत्य स्ववर्गात् प्रथमं सप्तदशे द्वितीयमष्टादशे तृतीयमिति। अर्कचन्द्रयोस्तु सप्तमे सप्तमम्। अष्टमे अष्टमम्। नवमे नवमम्। चन्द्रस्य पुनर्निवृत्य नवमं स्ववर्गवर्णेभ्यः प्रथममक्षरमिति।।३१।।

मेषादि प्रश्न लग्न बारह होते हैं। इनके चर, स्थिर और द्विस्वभावसंज्ञक तीन भेद माने गये हैं। १, ४, ७, १० लग्न को चर, २,५,८,११ को स्थिर तथा ३, ६, ९, १२ को द्विस्वभाव लग्न कहा जाता है। मेषादि चार लग्नों में मध्य, आदि और अन्त्य क्रम से प्रश्न होते हैं। उससे प्रारम्भकर चरराशि की चार राशियाँ केन्द्र में स्थित होती हैं।

इसी प्रकार वृषादि चार स्थिर राशियों में मध्य, आदि और अन्त्य का विचार किया जाता है। प्रथम से आरम्भ कर चार स्थिर राशियाँ केन्द्रगत रहती हैं।

मिथुनादि चार द्विस्वभाव राशियों में भी मध्य, आदि और अन्त्य का विचार किया जाता है। प्रथम से आरम्भ कर द्विस्वभाव की चार राशियाँ केन्द्रगत होती हैं। इनसे भिन्न कोई अन्य राशि नहीं होती है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम को केन्द्र कहते हैं। यहाँ पर मूल में 'वा' शब्द भावान्तर कहने के लिए विचारार्थ उक्त है। जैसा कि मेष में ककारादि का चक्र पहले ही प्रदर्शित किया जा चुका है।

केन्द्र की चार राशियों में प्राप्त अंश अर्थात् नवमांश, उनके अनुसार पृथक्-पृथक् से संगुणित अर्थात् संकलन किया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि केन्द्र में स्थित मेषादि राशियों का नौ से विभाजित जो नवमांश भाग होता है, उस संख्या के तुल्य अंक को स्थापित कर उसमें उदित अपने नवमांश का गुणन किया जाता है। तत्पश्चात् केन्द्र चतुष्टय को त्रिगुणित करे। तीन का त्रिगुणित अर्थात् तीन का वर्ग नौ होता है। इसके द्वारा विभक्त अर्थात् विभाजित है, जो लब्धि होती है, तत्संख्यक वर्ण को जानना चाहिये। वह वर्ण क्षेत्रेश्वर अर्थात् राशीश का होता है। अंशों के अर्थात् नवमांश के क्रम से इनका अपना वर्ण होता है। यहाँ पर त्रैराशिक गणित से विचार करना चाहिये। यदि नौ-नौ अंशों में नौ अक्षर प्राप्त होते हैं, तब प्राप्त नवांशों में कितने अक्षर प्राप्त होंगे? चर लग्न के चारों केन्द्रों में भौमादि सभी ग्रहों के छः नवांश होते हैं। उनसे उतने ही छः अक्षर प्राप्त होते हैं, इन केन्द्रों में भौमादि सभी ग्रहों के जिन-जिन केन्द्रों में जितने नवमांश उपलब्ध होते हैं, उन सभी केन्द्रों में उनके वर्गाक्षर क्रमशः होते हैं। प्रथम नवमांश में अपने वर्ग का प्रथम अक्षर, द्वितीय नवमांश में द्वितीय अक्षर तथा तृतीय नवमांश में तृतीय अक्षर, चरराशिस्थ चारों केन्द्रों में प्राप्त

होते हैं, सप्तम में द्वितीय, अष्टम में तृतीय, नवम में चतुर्थ, दशम में पञ्चम तथा एकादश में पुनः प्रत्यावर्तित होकर अपने वर्ग का प्रथम अक्षर और द्वादश में द्वितीय अक्षर होता है। सूर्य और चन्द्रमा का चतुर्थ में चतुर्थ वर्ण, पञ्चम में पञ्चम तथा षष्ठ में षष्ठ वर्ण होता है। यह स्थिर लग्न के चारों केन्द्रों में कहा गया है। स्थिर राशि के समाप्त होने पर द्विस्वभाव के चारों केन्द्रों में तेरहवीं आवृत्ति में तृतीय, चतुर्दश में चतुर्थ और पन्द्रहें में पञ्चम होता है। सोलहवीं आवृत्ति में पुनः अपने वर्ग से प्रथम, सप्तदश में द्वितीय और अट्ठारहवें में तृतीय होता है। सूर्य-चन्द्रमा का सप्तमभाव में सप्तम राशि, अष्टम में आठवीं और नवम में नौवी राशि होती है। चन्द्रमा का पुनः पुनरावर्तित होकर नवम अपने वर्ग का प्रथमाक्षर होता है॥३१॥

संचिन्तितप्रार्थितनिर्गतेषु नष्टक्षतस्त्रीरतिभोजनेषु।
स्वप्नर्क्षचिन्तापुरुषादिवर्गेष्वेतेषु नामान्युपलक्षयेत॥३२॥

इनके प्रयोजन को प्रदर्शित करते हैं–

सञ्चित पदार्थ, प्रार्थितवस्तु, निर्गत (यात्रा) आदि प्रकरण, नष्ट वस्तु, आघात, स्त्री-भोग, भोजन, स्वप्न, नक्षत्र-विचार, चिन्ता और पुरुष-समूह के विचार हेतु पूर्वोक्त नवमांश के द्वारा नाम ज्ञात किया जाता है॥३२॥

संचिन्तितं मनसा पदार्थानां परिकल्पनम्। प्रार्थितं वाचोक्तम्। इदं सम्पद्यतामिति। निर्गतं निर्गमनम्। नष्टं दृष्टिविषयादपहृतं यद्वस्तु। क्षतं हिंसितम्। स्त्रीरतिरुत्तमादिस्त्रिया सह रमणम्। भोजनमाहारविशेषो मांसादि। एतेषु पदार्थेषु। तथा स्वप्नं सुप्तस्य स्वप्नावस्थायां नानाप्रकारवस्तुदर्शनम्। ऋक्षं नक्षत्रं तज्ज्ञानम्। चिन्ता मनसा परिकल्पनम्। पुरुषादिः, पुरुषो नर आदिर्येषाम्। आदिग्रहणात् स्त्रीनपुंसकयोर्ग्रहणम्। पुरुषादीनां वर्गेषु समूहेषु एतेषु नामान्यभिधानान्युपलक्षयेत विन्द्यात्। कथम्? यथासंख्यं केन्द्रचतुष्टयस्य प्रस्तुतत्वात्। अत्र यथासंख्यं प्रदर्श्यते। लग्नादारभ्य सञ्चिन्तितनामान्युपलक्षयेत्। चतुर्थादारभ्य प्रार्थितनामान्युपलक्षयेत्। सप्तमादारभ्य निर्गतनामान्युपलक्षयेत्। दशमादारभ्य नष्टनामा–न्युपलक्षयेत्। पुनर्निवृत्य लग्नादारभ्य क्षतनामान्युपलक्षयेत्। चतुर्थादारभ्य स्त्रीनामान्युपलक्षयेत्। सप्तमादारभ्य रतिनामान्युपलक्षयेत्। दशमादारभ्य भोजननामान्युपलक्षयेत्। पुनर्निवृत्य लग्नादारभ्य स्वप्ननामान्युपलक्षयेत्। चतुर्थादारभ्य ऋक्षनामान्युपलक्षयेत्। सप्तमादारभ्य चिन्तानामान्युपलक्षयेत्। दशमादारभ्य पुरुषादिनामान्युपलक्षयेदिति भद्रम्॥

रचिताक्षरकोशस्य टीका शिष्यहितावहा।
भट्टोत्पलेन सुस्पष्टा श्लोकैः खाङ्गाश्विसम्मितैः॥इति ॥३२॥

संचिन्तित अर्थात् मन में किन्हीं वस्तुओं की कल्पना करना, प्रार्थित अर्थात् वाणी से याचितवस्तु यथा–यह करना चाहिए। निर्गत अर्थात् यात्रा अथवा किसी वस्तु का चला जाना। नष्ट अर्थात् आँखों से ओझल हुई कोई वस्तु, क्षत अर्थात् हिंसा और

आघात, स्त्रीरति अर्थात् उत्तम स्त्री के साथ संभोग, भोजन अर्थात् मांसादि आहार विशेष; इन विषयों में विचार किया जाता है। तथा सुप्त अर्थात् निद्रावस्था में विविध प्रकार की वस्तुओं को देखना। ऋक्ष अर्थात् नक्षत्र विषयकज्ञान, चिन्ता अर्थात् मन की परिकल्पनाएँ, पुरुषादि अर्थात् पुरुष सहित स्त्री एवं नपुंसक वर्ग का समाहार, पुरुषादि के समूहों में इनके नामों को जाने। किस प्रकार से? यथाक्रम से केन्द्र के चारों स्थानों का विचार कर। इनको क्रमानुसार ज्ञात करने का विचार प्रस्तुत करते हैं। लग्न से आरम्भ कर सञ्चित नामों का विचार करें। चतुर्थ से आरम्भ कर प्रार्थित वस्तुओं के नाम को ज्ञात करें। सप्तम से आरम्भ कर निर्गत वस्तु का नाम ज्ञात करे। दशम से आरम्भ कर नष्ट वस्तु का नाम जाने। पुनः लग्न से आरम्भ कर आघातक का नाम ज्ञात करे। चतुर्थ से आरम्भकर स्त्री के नाम को ज्ञात करे। सप्तम से आरम्भ कर सम्भोग का ज्ञान करे। दशम से आरम्भ कर भोज्य पदार्थ के नाम का ज्ञान करे। पुनः लग्न से आरम्भ कर निद्रा को ज्ञात करे। चतुर्थ से आरम्भ कर नक्षत्र के नाम को समझे। सप्तम से आरम्भ कर चिन्ताओं को, दशम से आरम्भ कर पुरुषादि के नामों को ज्ञात कर ले। इस प्रकार सभी का कल्याण हो।

अक्षर कोश की विरचित यह टीका, शिष्यों के हितार्थ आचार्य भटोत्पल के द्वारा, सुस्पष्ट श्लोकों के माध्यम से ७६० शकाब्द में पूर्ण की गयी।।३२।।

एवमेव गतेऽक्षरकोशे आगतस्य नामानयनमाह–

द्व्यक्षरं चरगृहांशकोदये
नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे।
नामयुग्ममपि च द्विमूर्तिषु
त्र्यक्षरं भवति चास्य पञ्चभिः।।१४।।

पूर्वोक्त अक्षरकोश में समागत नामों में कहते हैं–

चरलग्न और चर नवांश में आगन्तुक या प्रश्न कर्ता के दो अक्षर का नाम तथा स्थिर लग्न और स्थिर नवमांश में चार अक्षर का नाम होता है। द्विस्वभाव राशिके लग्न और नवमांश में दो नाम होते हैं। उनमें एक तीन अक्षर का और दूसरा पाँच अक्षर का होता है।।१४।।

यस्मिन् तस्मिन् राशौ लग्नगते चरगृहांशकोदये तत्कालं तस्य चरराश्यंशको लग्नगतो भवति, तदा तस्यागन्तुः प्रष्टुर्वा द्व्यक्षरं नाम। लग्ननवांशयोर्भेदे यो बलवांस्तद्वशान्नाम। एवं स्थिरलग्ने स्थिरनवांशकोदये च चतुरक्षरं नाम। द्विमूर्त्तिषु द्विस्वभावेषु लग्नगतेषु तन्नवांशकेषु चास्य नामयुग्मं नामद्वितयं भवति। तत्रैकं नाम त्र्यक्षरम्। द्वितीयं पञ्चभिरक्षरैर्भवति। एवं चरलग्ने चरांशके विज्ञेयम्।।१४।।

किसी भी राशि में चर नवमांश लग्न में हो अर्थात् चर नवमांश लग्नगत हो,

तब आगन्तुक अथवा प्रश्नकर्ता का नाम दो अक्षरों का होता है। लग्न और नवमांश में भेद होने पर उनमें से जो बली हो तदनुसार नाम होगा। इसी प्रकार स्थिर लग्न और स्थिर नवमांश प्राप्त हो, तब चार अक्षरों का नाम होता है। द्विस्वभाव लग्न एवं द्विस्वभाव नवमांश होने पर दो नाम होते हैं। उनमें से एक नाम तीन अक्षरों का तथा दूसरा नाम पाँच अक्षरों का होता है। इसी प्रकार चरलग्न और चरनवमांश का विचार करना चाहिए।।१४।।

अथ नामवर्णानयनमाह–

काद्यास्तु वर्गाः कुजशुक्रसौम्य–
जीवार्कजानां क्रमशः प्रदिष्टाः।
वर्णाष्टकं यादि च शीतरश्मे-
रवेरकारात् क्रमशः स्वराः स्युः।।१५।।
नामानि चाग्न्यम्बुकुमारविष्णु-
शक्रेन्द्रपत्नीचतुराननानाम्।
तुल्यानि सूर्यात् क्रमशो विचिन्त्य
द्वित्र्यादिवर्णैर्घटयेत् स्वबुद्ध्या।।१६।।

नामाक्षर ज्ञान के लिए कहते हैं–

'क' आदि वर्गों के क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, गुरु और शनि ग्रह स्वामी कहे गये हैं। यकार आदि आठ वर्ण चन्द्रमा के होते हैं। तथा अकारादि सभी स्वर वर्ण सूर्य के माने गये हैं।।१५।।

सूर्यादि ग्रहों के अनुसार नामाक्षरों तथा उनके पर्यायवाची शब्दों का विचार करना चाहिये। यथा-सूर्य के लिए अग्निवाचक शब्दों के पर्याय, चन्द्रमा के लिए जलवाचक शब्दों के पर्याय, मंगल के लिये कुमार अर्थात् का कार्तिकेय के पर्यायवाची नाम, बुध के लिये विष्णुवाचक पर्याय, गुरु के लिए इन्द्रवाचक और शुक्र के लिए इन्द्राणीवाचक तथा शनि के लिए चतुरानन (ब्रह्मा) के पर्यायवाची नामों का विचार करना चाहिए। सूर्यादि ग्रहों का क्रमशः विचार करते हुये दो, तीन आदि वर्णों का अपनी बुद्धि के अनुसार संकल्पना करें।।१६।।

काद्यास्तु इति। ककाराद्या वर्गाः कुजादीनां भौमादीनां क्रमशः परिपाट्या उक्ताः। तद्यथा–कवर्गः कुजस्य। चवर्गः शुक्रस्य। टवर्गः सौम्यस्य बुधस्य। तवर्गो जीवस्य गुरोः। पवर्गोऽर्कजस्य सौरस्य। यादि यकारादिवर्णाष्टकं शीतरश्मेश्चन्द्रस्य। रवेरादित्यस्याकारात् प्रभृति क्रमशो द्वादश स्वराः स्युर्भवेयुः। प्रयोजनम्–चतुर्षु लग्नादिषु केन्द्रेषु ये तत्कालं नवांशकाः समुद्गताः, तेषां येऽधिपतयो ग्रहास्तेषां ये वर्गा

उक्तास्तैर्वर्गैरंशकगणनया प्राग्वदक्षरकोशाभिहितं प्राग्वद्वर्णमुत्पाद्य तैर्वर्णैस्तस्य नामोत्पादनीयमिति। अत एव मेषे ककार इत्यादिकस्याक्षरचक्रस्य न्यासः प्रदर्शितः, किन्तु तत्रस्थो ग्रहो वर्गोत्तमस्व—राशिद्रेष्काणनवांशोच्चवक्रस्थितो भवति, तदायुर्दायगणनावद् द्वित्रिगुणत्वमक्षराणां कार्यम्। द्वित्रिगुणत्वे सकृद् त्रिगुणमिति च। वर्गोत्तमादिवर्जितोऽन्यतः स्थितः पापोऽक्षरं हन्ति। एवं स्वरान् व्यञ्जनानि च संगृह्य ततो नामरचना। लग्नकेन्द्रादारभ्याक्षरक्रमेणोर्ध्वा—धोभागयोजनां कृत्वा नामरचनायै लग्नकेन्द्रस्य तनुत्वात् प्राधान्यात् प्रथमं तद्वर्णं नाम्नि योजनां कृत्वा नामरचनायै लग्नकेन्द्रस्य तनुत्वात् प्राधान्यात् प्रथमं तद्वर्णं नाम्नि योजयेत्। ततश्चतुर्थोत्पन्नान्, ततः सप्तमजान्, ततो दशमजानिति। अथवाकेन्द्रांशक-स्वामिबलवशादिति। अन्ये एवमक्षरानयनं व्याचक्षते-यथाऽर्कस्य राशौ सार्धलिप्ताशते भुक्ते स्ववर्गादिकैकमक्षरं भवति। चन्द्रस्य पञ्चविंशत्यधिके शतद्वयभुक्ते एकैकमक्षरं स्ववर्गाद् भवति। अन्येषां लिप्ताशतद्वयेनैकैकमक्षरं भवति। द्वित्रिगुणत्वं नामानीति। आदित्ये लग्नपतावंशपतौ वाऽग्निपर्यायस्तस्य नाम लग्नांशकपयोर्वलाधिक्यात्। एवं चन्द्र अम्बुपर्यायः। कुजः कुमारपर्यायः। कुमारः कार्तिकेयः। बुधो विष्णुपर्यायः। बृहस्पतिः शक्रपर्यायः। शक्र इन्द्रः। शुक्र इन्द्रपत्नीपर्यायः। इन्द्रपत्नी शची। सौरश्चतुराननपर्यायः। चतुराननश्चतुर्मुखो ब्रह्मा। सूर्यादादित्यात् प्रभृत्येषां तुल्यानि सदृशानि नामानि क्रमशः परिपाट्या विचिन्त्य विचार्य द्वित्र्यादिवर्णैर्वर्णद्वयेन वर्णत्रयेण वर्णचतुष्टयेन वर्णपञ्चकेन वा स्वबुद्ध्यात्मीयया बुद्ध्या नाम घटयेदुत्पादयेत्। एतदुक्तं भवति-द्व्यक्षरादिकं नाम बहुभिवर्णैर्लब्धैः स्वबुद्ध्योत्तरमध्याधरक्रमेण विचार्याऽऽपादिकं नाम घटयेत्। बलिनो ग्रहस्याक्षरमुत्तरम्। मध्यबलस्य मध्यगतम्। बलहीनस्याधो योज्यम्। अनेन न्यायेन नामानयनं कार्यमिति।।१५-१६।।

ककारादि वर्ग भौमादि ग्रहों के लिए क्रमशः कहे गये हैं। यथा—मंगल का कवर्ग, शुक्र का चवर्ग बुध का टवर्ग, जीव अर्थात् गुरु का त वर्ग और शनि का पवर्ग, यादि अर्थात् य + आदि, यकारादि आठ वर्ण शीतरश्मि चन्द्रमा के होते हैं। सूर्य के अकारादि १२ स्वर क्रमशः होते हैं। अब इनकी उपयोगिता बताते हैं—लग्नादि चारों केन्द्र स्थानों में जो तात्कालिक नवमांश होते हैं, उनके जो नवमांशस्वामी ग्रह हैं। उनके लिए उपर्युक्त वर्गों से नवमांश गणनानुसार पूर्वकथित अक्षरकोश में निर्धारित पूर्ववत् वर्णो का संकलन करे। उन संकलित वर्णों के माध्यम से उसके नाम की संरचना करनी चाहिए। इसीलिए मेष में ककार इत्यादिक अक्षरचक्र का विन्यास प्रदर्शित किया गया है। परञ्च, वहाँ पर स्थित ग्रह वर्गोत्तम, स्वराशि, स्वद्रेष्काण, स्वनवांश, स्वोच्च और वक्री अवस्था में स्थित होता है। अतः आयुष्य गणना के सदृश अक्षरों को द्विगुणित और त्रिगुणित समझे। दो या तीन से गुणित करने पर एक

---

१. लघुजातके ७ अध्यायस्य २ श्लोकः।

बार ही त्रिगुणित कर लें। वर्गोत्तमादि से रहित ग्रह तथा विपरीत स्थिति में प्राप्त पापग्रह अक्षरों की हानि करता है। इस प्रकार से स्वरवर्णों और व्यञ्जनवर्णों को संकलित् कर नामाक्षरों की रचना करे। केन्द्रस्थित लग्न से आरम्भ कर अक्षरों के क्रम से ऊर्ध्वभाग और अधोभाग का संयोजन कर नाम रचना के निमित्त लग्नकेन्द्र के तनु अर्थात् प्रधान होने के कारण उसके वर्ण को ही नाम का प्रथमाक्षर बनाये। तत्पश्चात् चतुर्थ भाव से प्राप्त वर्ण, उसके बाद सप्तम भाव से प्राप्त अक्षर और इसके बाद दशमभाव से प्राप्त अक्षर समझे। अथवा नवमांशस्वामी के बलानुसार विचार करे। कतिपय विद्वान् नामाक्षरों के ज्ञान हेतु भिन्न प्रकार बतलाते हैं। यथा–सूर्य की राशि में २५० कला का भोग होने पर अपने वर्ग का १-१ अक्षर होता है। चन्द्रमा का २२५ कला भुक्त हो जाने पर १-१ अक्षर अपने वर्ग का प्राप्त होता है। अन्य ग्रहों के लिए दो कलाओं पर १-१ अक्षर प्राप्त होता है। नामाक्षरों में द्विगुणित एवं त्रिगुणित का विचार करते हैं। सूर्य के लग्नेश एवं नवमांशेश के अनुसार अग्नि के पर्यायवाची शब्दों के नाम, इसमें लग्न एवं नवमांश के बलाधिक्य के अनुसार विचार करें। इसीप्रकार चन्द्रमा से जलशब्द के पर्यायवाचक, मंगल से कुमार अर्थात् कार्तिकेय का पर्यायवाचक, बुध से विष्णु का पर्यायवाचक, बृहस्पति से शक्र अर्थात् इन्द्र का पर्यायवाचक, शुक्र से इन्द्र-पत्नी अर्थात् 'शची' का पर्यायवाचक और शनि से चतुरानन का पर्यायवाची शब्द लिखे। चतुरानन शब्द से चतुर्मुख ब्रह्मा का ग्रहण किया जाता है। सूर्य से (आदित्य) प्रभृति इन ग्रहों के सदृश नामों को क्रमानुसार विचार कर दो, तीन आदि वर्णों के अर्थात् २,३,४, ५ आदि वर्णों का नाम अपनी बुद्धि के अनुसार विरचित करे। इसका अभिप्राय यह है कि दो अक्षरों का नाम यदि वर्णों से उपलब्ध होता हो, तब स्वविवेक से आरम्भ, मध्य का आधार निर्धारित कर नाम की रचना करे। बली ग्रह का अक्षर अन्त में तथा मध्यबली का मध्य में और निर्बल ग्रह का द्योतक स्वर वर्ण अधोमात्रा के रूप में प्रयुक्त करे। इस प्रकार से नाम ज्ञात करने का कार्य करे॥१५-१६॥

अथ तेषामेवागतनाम्नां वयोज्ञानमाह–

वयांसि तेषां स्तनपानबाल्य-
व्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः।
अतीववृद्धा इति चन्द्रभौम-
ज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम्।।१७।।

प्राप्त नामवाले की अवस्था ज्ञात करने हेतु कहते हैं–

चन्द्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, गुरु, सूर्य और शनि ग्रहों के अनुसार क्रमशः

शिशु, बाल्य, ब्रह्मचर्य, युवा, मध्य, वृद्ध, और अत्यधिक वृद्ध अवस्था उपलब्ध नामाक्षर वाले व्यक्ति की होती है॥१७॥

तेषां लब्धनाम्नां सर्वग्रहेभ्यश्चन्द्रे बलवत्यंशकपतौ लग्नपतौ वा स्तनपानं वयः। शिशुरित्यर्थः। एवं भौमे बाल्यं वर्षद्वयाद्वर्षषट्कं यावत्। बुधे व्रतस्थितो ब्रह्मचारी। आसप्तमात् षोडशवर्षः। शुक्रे यौवनोपेतस्त्रिंद्वर्षं यावत्। जीवे मध्यः पञ्चाशद्वर्षः। अर्के सूर्ये वृद्धोऽशीतिवर्षः। शनैश्चरेऽतीववृद्धः शतवार्षिक इति॥१७॥

इस प्रकार से प्राप्त नाम वाले का सभी ग्रहों में चन्द्रमा के बली होने पर चाहे वह नवमांशेश अथवा लग्नेश हो, तब उसकी अवस्था स्तनपान करने वाले शिशु की रहती है। इस प्रकार मंगल में बाल्यावस्था अर्थात् दो वर्ष से छः वर्ष के मध्य की अवस्था होती है। बुध में व्रत में स्थित ब्रह्मचारी के समान सातवर्ष से सोलह वर्ष के अन्तर्गत होती है। शुक्र में यौवनावस्था, तीस वर्ष पर्यन्त की होती है। गुरु में मध्यावस्था, पचास वर्ष की समझनी चाहिए। अर्क अर्थात् सूर्य में वृद्ध अर्थात् अस्सी वर्ष की अवस्था रहती है। शनि में अतिवृद्ध अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त की अवस्था समझे॥१७॥

वराहमिहिरचार्यरचिते शाकुनार्णवे।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रेऽर्थाप्तये विवृतिप्लवम्॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शाकुनोत्तरं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५॥

वराहमिहिराचार्य विरचित शाकुनशास्त्र रूपी महासागर में उपलब्ध अर्थों को प्राप्त करने वाले जिज्ञासुओं के लिये आचार्य उत्पल द्वारा यह विवृति नाम की नौका प्रस्तुत की गयी है।

श्री भटोत्पल विरचित संहिताविवृति में शाकुनोत्तर नामक अध्याय पञ्चानवे पूर्ण हुआ॥९५॥

सम्पूर्ण शाकुनाध्याय समाप्त

□□

पाकाध्यायः

अथ पाकाध्यायो व्याख्यायते। अध्यायसङ्ख्या-९६

तत्रादावेव ग्रहाणां चारोक्तफलस्य पाककालज्ञानमाह–

पक्षाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्त्रोक्तः।
आदर्शनाच्च पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण।।१।।
षड्भिः सितस्य मासैरब्देन शनेः सुरद्विषोऽब्दार्धात्।
वर्षात् सूर्यग्रहणे सद्यः स्यात् त्वाष्ट्रकीलकयोः।।२।।
त्रिभिरेव धूमकेतोर्मासैः श्वेतस्य सप्तरात्रान्ते।
सप्ताहात् परिवेषेन्द्रचापसन्ध्याभ्रसूचीनाम्।।३।।

पाकाध्याय नामक छियानवे अध्याय की व्याख्या।

आरम्भ में ग्रहचार के फलों के परिपाककाल को बतलाते हैं–

सूर्य का फल प्रत्येक पन्द्रह दिनों में, चन्द्रमा का एक मास में, भौम का वक्त्रोक्तानुसार (भौमचार प्रकरणोक्तानुसार), बुध का उदितकाल तक, बृहस्पति का एक वर्ष में, शुक्र, का छः मास में, शनि का एक वर्ष में, चन्द्रग्रहण में राहु का छः मास में, सूर्य ग्रहण का एक वर्ष में; त्वष्टा नामक ग्रह-तामस और कीलक का तत्काल, धूमकेतु का तीन मास में, श्वेतकेतु का सात रात में तथा सूर्य-चन्द्र के परिवेष, इन्द्रधनुष, सन्ध्या और अभ्रसूची का फल सात दिन में होता है।।१-३।।

पक्षाद् भानोरिति। भानोरादित्यस्य यत् फलमर्कचारोक्तं शुभमशुभं वा तत् पक्षात् पञ्चदशभिर्दिनैर्भवति। एवं सोमस्य मासिको मासप्रमाणमस्य मासिको मासेन भवति। अङ्गारकरस्य भौमस्य वक्त्रोक्तो वक्त्रे कथितः। यथा–[1]"तद्वक्त्रमुष्णमुदये पीडाकर-मग्निवार्तानाम्", "दूषयति रसानुदये"[2] "[3]व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये", "[4]तत्कालं मुखरोगम्" इति, "तदनुवक्रे दस्युगणेभ्यः पीडाम्" इति। अन्यदपि नक्षत्राश्रितं यत्फलं तदेवमेव यस्मिन् वक्रे तन्नक्षत्रं पठ्यते। उदयर्क्षादनन्तरं तस्य नक्षत्रस्य तद्वक्रोक्तसमःपाककाल इति परिशेषनक्षत्राणां नक्षत्रपाककालमिति

---

१. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य –अ. ६/१–भौमचार
२. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य ,, ६/२ ,,
३. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य ,, ६/३ ,,
४. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य – ६/४ ,,
५. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य – ६/५ ,,

आगमविदः। बुधस्यादर्शनात् पाकः सूर्यमण्डलान्निर्गतो यावत्कालो दृश्यते तावानेव तस्य पाकः। जीवस्य बृहस्पतेर्वर्षेण पाकः।।१।।

रविचार में वर्णित सूर्यग्रहका शुभ अथवा अशुभफल पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिनों में होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा का मासिक अर्थात् एकमास के प्रमाण का होता है। अङ्गारक अर्थात् मंगल का वक्त्र विचार के प्रकरण में कहा जा चुका है। यथा-वक्त्र के उष्ण उदय होने पर 'अग्निजीवी लोग पीड़ित होते है।' 'उदयकाल में मंगल रसपदार्थों का विनाश करता है।' '१३ अथवा १४ नक्षत्र में अस्त के समय सर्पमुख होकर परिपाक करता है।' 'उसी समय मुखरोग होता हैं।' 'अनुवक्र होने पर तस्करों से पीड़ित करता है'। अन्य भी जो नक्षत्रादिक फल कहे गये हैं, उनको भी जिस नक्षत्र में वक्त्र होते हैं, उनको बतलाया गया है। उदयनक्षत्र के पश्चात् उस नक्षत्र का जो वक्रोक्त पाककाल कहा गया है, उसको समझे। शेष नक्षत्रों का नक्षत्रपाककाल भी शास्त्रकार इसी प्रकार समझते हैं। बुध के प्राय: अदृष्ट रहने के कारण वह सूर्यमण्डल (प्रभाव) से निकल कर जितने समय तक देखा जाता है, उतने ही काल में उसका फलपाक होता है। गुरु का फलपाक एकवर्ष में कहा गया है।।१।।

षड्भिः सितस्य मासैरिति। सितस्य शुक्रस्य स्वचारे यदुक्तं फलं [१]वीथिमण्डल-नक्षत्राश्रितं तस्य षड्भिर्मासैः पाकः। अब्देन वर्षेण शनेः सौरस्य। सुरद्विषो राहोश्चन्द्रस्य ग्रहणे अब्दार्धात् षड्भिर्मासैः पाकः। अब्देन वर्षेण शनेः सौरस्य। सुरद्विषो राहोश्चन्द्रस्य ग्रहणे अब्दार्धात् षड्भिर्मासैः पाकः। सूर्यग्रहणेऽर्कोपरागे वर्षात् फलम्। ''सतमस्कं[२] पर्व विनेति यस्त्वष्टा नाम'' ग्रह उक्तस्तस्य त्वष्टुस्तामसकीलकानां च सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि पाकः स्याद् भवेत्।।२।।

शुक्र के चार में जो फल बतलाया गया है-'वीथिमण्डल नक्षत्रों पर आश्रित होता है। उसका फलपाक छ: महीनों में कहा गया है। शनि का फलपाक अब्द अर्थात् एक वर्ष में होता है। सुरद्विष अर्थात् राहु का चन्द्रग्रहण में अब्दार्ध अर्थात् छ: मास में फलपाक होता है। सूर्यग्रहण में एक वर्ष में फलपाक कहा जाता है। ग्रहण के बिना सतमस्क आदि त्वष्टा नामक जो ग्रह तामस, कीलक आदि कहे गये हैं, उनका तत्काल उसी दिन फलपाक हो जाता है।।२।।

त्रिभिरेवेति। धूमकेतोस्त्रिभिरेव मासैः फलं पच्यते। श्वेतस्य श्वेतकेतोश्च सप्तरात्रान्ते

---

१. द्रष्टव्यान्यस्य ग्रन्थस्य –अ. ९/८-३६ शुक्रचार

२. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य – ३/६ आदित्यचार

३. द्रष्टव्यान्यस्य ग्रन्थस्य – ९/८-३६ शुक्रचार

४. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य –३/६ आदित्यचार।

सप्तभिर्दिनैः। परिवेषः सूर्याचन्द्रमसोः। इन्द्रचापम्। सन्ध्याफलम्। अभ्रसूची। एषां सर्वेषां सप्ताहात् फलमिति।।३।।

धूमकेतु का तीन मास में फल का परिपाक हो जाता है। श्वेतकेतु का सात दिनों में होता है। सूर्य-चन्द्रमा का परिवेष (बिम्ब के परितः वृत्ताकार) इन्द्रधनुष, सन्ध्याकाल, मेघसूची; इन सभी का फलपाक एक सप्ताह में होता है॥३॥

अन्येष्वप्याह–

शीतोष्णविपर्यासः फलपुष्पमकालजं दिशां दाहः।
स्थिरचरयोरन्यत्वं प्रसूतिविकृतिश्च षण्मासात्।।४।।

अन्य पदार्थों का कहते हैं–

शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में परिवर्तन, ऋतु से भिन्न फल और पुष्प की उत्पत्ति, दिग्दाह, स्थिर और चर पदार्थों में वैपरीत्य होना, विकृत प्रसव आदि का फलपाक छः मास में होता है॥४॥

शीतोष्णविपर्यासः। उष्णकाले शीतता शीतकाले तूष्णता। अथवा स्वभावशीतगतस्य वस्तुन उष्णता, स्वभावोष्णस्य शीतता। फलं पुष्पं वा अकालजम् अनृतावुत्पन्नम्। दिशां दाहो दिग्दाहः। स्थिरचरयोरन्यत्वं विपर्ययः; स्थिरस्य वृक्षादेश्चरता, चतुष्पदादेरचलत्वम्। प्रसूतिविकृतिरतिप्रसवविकारश्च। षण्मासात् पच्यत इत्यर्थः।।४।।

शीतोष्ण की विपरीतता का अर्थ है कि जब ग्रीष्मकाल में शीतलता हो और शीतकाल में उष्णता हो। अथवा स्वाभाविक शीतल वस्तु में उष्णता आ जाये और स्वभाविक उष्ण पदार्थ में शीतलता हो जाये, तब विपरीत स्वभाव समझना चाहिये। फल-पुष्प अपने ऋतुकाल के विपरीत काल में उत्पन्न हों, दिशाओं में दाह अर्थात् दिग्दाह हो, स्थिर और चर पदार्थों में विपरीत काल में उत्पन्न हों, दिशाओं में दाह अर्थात् दिग्दाह हो, स्थिर और चर पदार्थों में विपरीत आचरण दृष्टिगत हो। यथा वृक्षादि स्थिर पदार्थों में गतिशीलता तथा चतुष्पद पशुओं में जड़ता दृष्टिगोचर हो, प्रसूति विकृति अर्थात् सामान्य से अधिक संख्या में एक साथ प्रसव होना; इन सभी का छः मास में फल परिपाक होता है॥४॥

अन्येष्वप्याह–

अक्रियमाणककरणं भूकम्पोऽनुत्सवो दुरिष्टं च।
शोषश्चाशोष्याणां स्रोतोऽन्यत्वं च वर्षार्धात्।।५।।

अन्य पदार्थों का विचार करते हैं–

बिना किये गये किसी कार्य का हो जाना, भूकम्प, उत्सवहीनता, दुष्टकर्म का होना, न सूखने योग्य का सूख जाना, जलधारा का विपरीत दिशा में प्रवाहित होना; इन सभी का फलपाक छः महीने में होता है॥५॥

अक्रियमाणकस्याप्राप्तचारस्य करणम्। अथवा यत्किञ्चित् कर्म कर्ता न करोति स्वयमेव कर्तुमायाति तदक्रियमाणकर्मकरणम्। अथवा यन्न कदाचित् कृतमकस्मात् क्रियते तदप्यक्रियमाणककरणम्। भूकम्पः क्षितिचलनम्। अनुत्सवः प्राप्तोत्सवस्याकरणम्। दुरिष्टं दुष्टमतीवाशोभनं यदरिष्टमनभिमतं वा यत्। अशोष्याणां सरः प्रभृतीनां शोषः। स्रोतसां नदनदीनामन्यत्वं प्रतीपगमनम्। ह्रदादीनामन्यत्वं शोषो जलाधिक्यं वा। वर्षार्धात् षण्मासात् पच्यते।।५।।

अक्रियमाण अर्थात् असम्पादित कार्य का होना। अथवा जिस कर्म को कर्ता किया ही न हो अपितु स्वयमेव होने लगे, भूकम्प अर्थात् भूचाल, अनुत्सव अर्थात् प्राप्त उत्सवकाल में विरति, दुरिष्ट अर्थात् दुष्ट तथा अत्यधिक अभद्र हो अथवा जो दुष्ट कर्म अपने मन से स्वीकृत न हो, अशोष्य अर्थात् नदी-तालाब आदि का सूख जाना, स्रोत अर्थात् नदी-नालों का विपरीत प्रवाहित होना, नदी-तालाबों का सूख जाना अथवा अत्यधिक जल से भर जाना; इन सभी का फलपाक छः मास में होता है।।५।।

अन्येष्वप्याह–

स्तम्भकुसूलार्चानां जल्पितरुदितप्रकम्पितस्वेदाः।
मासत्रयेण कलहेन्द्रचापनिर्घातपाकाश्च।।६।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

स्तम्भ (खम्भा), मिट्टी के पात्र, देव-प्रतिमा का बोलना-रोना-काँपना-पसीजना, कलह, इन्द्र धनुष और मेघ-निर्घात; इन सभी का फलपाक तीन मास में होता है।।६।।

स्तम्भः प्रसिद्धः। कुसूलं मृन्मयं यत्रान्नादिकं स्थाप्यते। अर्चा प्रतिमा। एतासां जल्पितं सम्भाषणं रुदितमश्रुविमोचनम्। प्रकम्पितं चलनम्। स्वेदो घर्मः। एते सर्वे मासत्रयेण पच्यन्ते। तथा कलहः। इन्द्रचापम्। निर्घातः। एतेषां च पाको मासत्रयेण परिपच्यते। इन्द्रचापस्य पूर्वं सप्ताहात्[१] फलमुक्तम्। सप्ताहाद्यदि न परिपच्यते तदा मासत्रयेणेति।।६।।

स्तम्भ अर्थात् खम्भा प्रसिद्ध वस्तु है। कुसूल अर्थात् मिट्टी के वे पात्र जिनमें अन्नादि रखे जाते हैं। अर्चा अर्थात् देव प्रतिमा; इन सभी का बोलना, रोना अर्थात् अश्रु बहाना, प्रकम्पित अर्थात् स्थान परिवर्तन करना, स्वेद अर्थात् घाम से पसीजना; इन सभी का तीन मास में फलपाक होता है। कलह, इन्द्रधनुष और निर्घात अर्थात् मेघों का परस्पर टकराना; इन सभी का फलपाक तीन महीने में होता है। इसके पूर्व इन्द्रधनुष का फलपाक सात दिनों में कहा गया है। परन्तु यहाँ पर तीन महीने में

---

१. द्रष्टव्योऽस्यैवाध्यायस्य ३ श्लोकः।

फलपाक का अभिप्राय यह है कि यदि सात दिनों में फलपाक न हो तब तीन महीने में समझना चाहिये॥६॥

अन्येष्वप्याह–

कीटाखुमक्षिकोरगबाहुल्यं मृगविहङ्गविरुतं च।
लोष्टस्य चाप्सु तरणं त्रिभिरेव विपच्यते मासैः।।७।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

कीड़े-मकोड़े, चूहा, मक्खी, और सर्पों की बहुलता, पशु-पक्षियों का निरन्तर ध्वनि करना और ठोस ढेले का जल पर तैरना; इन सभी का फलपाक तीन मास में होता है॥७॥

कीटः कृमिः। आखुर्मूषकः। मक्षिका प्रसिद्धा। उरगाः सर्पाः। एषां बाहुल्यं प्रभूतता। मृगाणां मृगजातीनाम्। विहङ्गानां पक्षिणां च विरुतम्। लोष्टस्य मृन्मयस्य चाप्सु जले तरणं मज्जनं त्रिभिरेव मासैर्विपच्यते।।७।।

कीट अर्थात् कीड़े, आखु अर्थात् चूहा, मक्खी जो सर्वविदित है। उरग अर्थात् सर्प इनकीं बहुलता हो तथा मृग अर्थात् पशु जाति, विहङ्ग अर्थात् पक्षियों की ध्वनि और मिट्टी के ढेले का जल के ऊपर संचरण; इन सभी का फलपाक तीन महीने में होता है॥७॥

अन्येष्वप्याह–

प्रसवः शुनामरण्ये वन्यानां ग्रामसम्प्रवेशश्च।
मधुनिलयतोरणेन्द्रध्वजाश्च वर्षात् समधिकाद्वा।।८।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

कुत्ते का वन में पैदा होना, जङ्गली प्राणियों का गाँव में प्रवेश करना, मधुमक्खियों का छत्ता, तोरण और इन्द्रध्वज; इन सभी का एक वर्ष में अथवा उससे अधिक समय में फलपाक होता है॥८॥

शुनां सारमेयाणामरण्ये निर्जने प्रसवः, वन्यानां सत्त्वानां ग्रामे सम्प्रवेशः। मधुनिलयो माक्षिकस्थानम्। तोरणं प्रसिद्धम्। इन्द्रध्वज इन्द्रयष्टिः। एते सर्व एव वर्षात् परिपच्यन्ते समधिकाद्वा।।८।।

कुत्ता (सारमेय) का अरण्य अर्थात् निर्जन प्रदेश में प्रसव होना। जङ्गली जानवरों का गाँव में प्रवेश करना, मधुमक्खी का छत्ता (मधु निलय), तोरण अर्थात् दरवाजे का अलङ्करण और इन्द्रध्वज; इन सभी का एक वर्ष में अथवा उससे भी अधिक काल में फलपाक होता है॥८॥

अन्येष्वप्याह–

गोमायुगृध्रसंघा दशाहिकाः सद्य एव तूर्यरवः।
आक्रुष्टं पक्षफलं वल्मीको विदरणं च भुवः।।९।।

अन्य भी विषयों में कहते हैं–

सियार तथा गिद्ध-समूह का फलपाक दस दिनों में होता है। तुरही की ध्वनि का फलपाक तत्काल होता है। शाप का फलपाक पन्द्रह दिनों में होता है तथा वल्मीक अर्थात् चींटियों के घर का स्वयमेव फूट जाने का फलपाक एक पक्ष में होता है।।९।।

गोमायुः शृगालः। गृध्रणां संघाः समूहाः। एते दशाहिका दशभिर्दिनैः पच्यन्ते। तूर्यरवः तूर्यशब्दः। अनाहतस्य स्वयमेव शब्दः। आहतस्य विस्वनत्वं वा सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि पच्यते। आक्रुष्टं शपमानं पक्षफलं पक्षेण पच्यते। तथा वल्मीको गृहादुत्पन्नो भुवो भूमेर्विदरणं स्फोटनं च पक्षेण पच्यते।।९।।

गोमायु अर्थात् सियार, गिद्धों का समूह, इनका फलपाक दस दिनों में होता है। तूर्य अर्थात् तुरही का स्वर अर्थात् जो बिना बजाये ही स्वयं बजने लगे अथवा बजाने पर भी जो न बजे; इसका फलपाक तत्काल उसी दिन होता है। आक्रुष्ट अर्थात् शापित वचन, इसका फलपाक पन्द्रह दिनों का होता है तथा बल्मीक गृह अर्थात् चींटियों द्वारा निर्मित मिट्टी का ढूह; इनके टूटने-फूटने का फलपाक पन्द्रह दिनों में होता है।।९।।

अहुताशप्रज्वलनं घृततैलवसादिवर्षणं चापि।
सद्यः परिपच्यन्ते मासेऽध्यर्धे च जनवादः।।१०।।

आग के बिना ही किसी वस्तु का जल जाना और घी-तेल-चर्बी आदि की वर्षा का फलपाक तत्काल होता है। जनापवाद (जनश्रुति) का फलपाक डेढ़ मास में होता है।।१०।।

अहुताशप्रज्वलनमनग्निज्वलनम्। घृतवर्षणम्। तैलवर्षणम्। वसावर्षणम्। आदिग्रहणाद् मांसरक्तान्नपानपुष्पफलपर्णमृत्तिकापाषाणवर्षणं च। एते सर्वे सद्य एव तस्मिन्नहनि परिपच्यन्ते। जनवादो जनैरपवादोऽध्यर्धेन मासेन सार्धेन परिपच्यते।।१०।।

किसी वस्तु का अग्नि के बिना ही प्रज्ज्वलित होना, घी की वर्षा, तेल की वर्षा, वसा अर्थात् चर्बी की वर्षा होना। यहाँ पर आदि शब्द से मांस, रक्त, अन्नपान; पुष्प-फल-पत्ता-मिट्टी और पत्थर की वर्षा होना; इन सभी का तत्काल उसी दिन फलपाक होता है। जनवाद अर्थात् जनता में प्रचारित वार्ता का फलपाक, अर्ध सहित एक मास अर्थात् डेढ़ मास में होता है।।१०।।

अन्येष्वप्याह–

छत्रचितियूपहुतवहबीजानां सप्तभिर्भवति पक्षैः।
छत्रस्य तोरणस्य च केचिन्मासात् फलं प्राहुः।।११।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

छत्र (छाता), यज्ञवेदिका, याज्ञिक काष्ठ, अग्नि और बीजों में उत्पन्न विकार के फल का सात पक्ष में परिपाक होता है। कतिपय आचार्य छत्र और तोरण का एक मास में फलपाक कहते हैं।।११।।

छत्रमातपत्रम्। चितिर्यज्ञचितिः। यूपो याज्ञिकः। हुतवहोऽग्निः। बीजानि प्रसिद्धानि यान्युप्यन्ते। एतेषां सर्वेषां यद्वैकृतं तत् सप्तभिः पक्षैः सार्धैस्त्रिभिर्मासैः पच्यते। केचिन्मुनयश्च छत्रस्य तोरणस्य च मासात् फलं प्राहुरुक्तवन्तः। तथा च गर्गः–

चितियूपहुताशेषु फलं पक्षैस्तु सप्तभिः।
आतपत्रफलं मासात् तोरणस्यैवमस्त्विति।।इति।।११।।

छत्र अर्थात् छाता (आतपत्र), चिति अर्थात् यज्ञवेदिका, यूप अर्थात् यज्ञ कराने वाला याज्ञिक, हुतवह अर्थात् अग्नि और बीज; जिसको बोआ जाता है; इन सभी में जो विकृति उत्पन्न होती है। उनका साढ़े सात पक्ष अर्थात् साढ़े तीन मास में फल परिपाक होता है। कुछ मुनिगण छत्र और तोरण का एक मास में फलपाक कहते हैं। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है–

यज्ञवेदिका, याज्ञिक और अग्नि में उत्पन्न विकारों का सात पक्ष में फलपाक होता है, तथा छाता और तोरण के विकार का एक मास में फल मिलता है।।११।।

अन्येष्वप्याह–

अत्यन्तविरुद्धानां स्नेहः शब्दश्च वियति भूतानाम्।
मार्जारनकुलयोर्मूषकेण सङ्गश्च मासेन।।१२।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

परस्पर विरुद्ध प्राणियों में प्रेमभाव तथा आकाश में जीवों का शब्द होना, और बिल्ली तथा नेवले का चूहे के साथ वास करने का फलपाक एक मास में होता है।।१२।।

अत्यधिकविरुद्धानामतिशत्रूणां च प्राणिनां स्नेहः प्रीतिः परस्परम्। वियत्याकाशे भूतानां प्राणिनां शब्दः। मार्जारस्य विडालस्य। नकुलः प्रसिद्धस्तस्य च। मूषकेण सङ्गो युतिः। मासेन पच्यते।।१२।।

अतिविरुद्ध परस्पर शत्रुता का भाव रखने वाले जीवों में प्रीति उत्पन्न हो जाये। वियत् अर्थात् आकाश में जीवों के शब्द सुनाई पड़े और मार्जार अर्थात् विडाल

(बिलाव) और नकुल का चूहे के साथ संगति होने लगे, तब इन विकारों का फलपाक एक मास में होता है॥१२॥

अन्येष्वप्याह–

गन्धर्वपुरं मासाद्रसवैकृत्यं हिरण्यविकृतिश्च।
ध्वजवेश्मपांशुधूमाकुला दिशश्चापि मासफलाः।।१३।।

अन्य वस्तुओं में भी कहते हैं–

आकाश में गन्धर्व नगर का दृष्टिगोचर होना एक विकार है। जिसका फलपाक एक मास में होता है। रस पदार्थ में विकार, स्वर्ण में विकार, ध्वज-विकार, भवन-विकार और सभी दिशाओं में धूलि तथा धूयें का व्याप्त होना; इन सभी विकारों का एक मास में फलपाक होता है॥१३॥

गन्धर्वपुरं गन्धर्वनगरं मासात् पच्यते। रसादीनां मधुरादीनां वैकृत्यं विकारः। हिरण्यस्य सुवर्णादिकस्य च विकृतिर्विकारोऽन्यवर्णत्वम्। ध्वजस्य पताकाया भङ्गो वा वेश्मनो गृहस्य च विकारः। पांशुना रजसा धूमेन चाकुला व्याप्ता दिशः। सर्व एते मासफला मासेन पच्यन्ते।।१३।।

गन्धर्व गन्धर्वपुर अर्थात् आकाश में उत्पन्न गन्धर्वनगर का फलपाक एक मास में होता है। मधुर आदि रसों में विकार होना, हिरण्य अर्थात् सुवर्ण आदि वस्तुओं में विकार अर्थात् अन्य विकृत वर्ण का हो जाना, ध्वज अर्थात् पताका का खण्डित होना वेश्म अर्थात् गृह में उत्पन्न विकार, दिशाओं का पांशु अर्थात् धूलि और धूम (धूँआ) से परिव्याप्त हो जाना, इन सभी का फलपाक एक मास में होता है॥१३॥

अथाश्विन्यादीनां पाककालज्ञनमाह–

नवैकैकाष्टदशैकषट्त्रिकत्रिकसङ्ख्यमासपाकानि।
नक्षत्राण्यश्विनिपूर्वकाणि सद्यः फलाश्लेषा।।१४।।

अश्विनी आदि नक्षत्रों का फलपाक कहते हैं–

अश्विनी से पुष्य तक के आठ नक्षत्रों के योगतारा में उत्पात हो, तो क्रम से नौ, एक, आठ, दश, एक, छः, तीन और तीन मास में तथा आश्लेषा तत्काल फल देता है॥१४॥

नक्षत्राण्यश्विनिपूर्वकाणि। अश्विनी पूर्वं येषां तानि माससङ्ख्यपाकानि। तद्यथा– अश्विन्या योगताराया उपसर्गेण नवभिर्मासैः पाकः। एकेन मासेन भरण्याः। अष्टाभिः कृतिकायाः। दशभी रोहिण्याः, एकेन मासेन मृगशिरसः। षड्भिरार्द्रायाः। त्रिभिः पुनर्वसोः। त्रिभिरेवपुष्यस्य। आश्लेषा सद्यः फला। तस्मिन्नेवाहनि फलपाकं करोति।।१४।।

अश्विनी से आरम्भ कर क्रमशः नवादि मासों में फलपाक कहे गये हैं। यथा

अश्विनी नक्षत्र के योगतारा में विकार होने में नौ मास में फलपाक होता है। भरणी नक्षत्र का एक मास में, कृत्तिका नक्षत्र का आठ मास में, रोहिणी नक्षत्र का दस मास में, मृगशिरा नक्षत्र का एक मास में, आर्द्रा नक्षत्र का छः मास में, पुनर्वसु का तीन मास में, पुष्य का तीन मास में तथा आश्लेषा का सद्यः अर्थात् तत्काल फलपाक होता है।।१४।।

अथ मघादीनां नक्षत्राणां फलपाकमाह–

पित्र्यान्मासः षट् षट् त्रयोऽर्द्धमष्टौ च त्रिषडेकैकाः।

मासचतुष्केऽषाढे सद्यः पाकाभिजित्तारा।।१५।।

मघादि नक्षत्रों का फलपाक कहते हैं–

मघा से मूल तक के दस नक्षत्रों के योगतारा में उत्पात हो तो क्रम से एक, छः, छः, तीन, आधा मास, आठ, तीन, छः, एक, एक मास में, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ का फल चार मास में, अभिजित नक्षत्र का फल तत्काल प्राप्त होता है।।१५।।

पित्र्यं मघा। मघाया योगतारकोपसर्गे मासेन पाकः। पूर्वफल्गुन्याः षड्भिः। उत्तरफल्गुन्याश्चषड्भिरेव। हस्तस्य त्रिभिः। चित्राया अर्धमासेन पक्षेण। अष्टभिः स्वातेः। त्रिभिर्विशाखायाः। षड्भिरनुराधायाः। एकेन ज्येष्ठायाः। एकेन मूलस्य। अषाढे द्वे पूर्वोत्तराषाढे मासचतुष्के चतुर्भिर्मासैस्तयोः पाकः। अभिजित्तारा सद्यः पाका तस्मिन्नेवाहनि पाकं करोति।।१५।।

पित्र्य अर्थात् मघा नक्षत्र के योग तारा में उत्पात होने पर एक मास में फलपाक होता है। पूर्वा फाल्गुनी का छः मास में, उत्तराफाल्गुनी का छः मास में, हस्त का तीन मास में, चित्रा का आधा मास अर्थात् एक पक्ष में, स्वाती का आठ मास में, विशाखा का तीन मास में, अनुराधा का छः मास में, ज्येष्ठा का एक मास में, मूल का एक मास में, पूर्वाषाढ़ एवं उत्तराषाढ़, इन दोनों का चार मास में फलपाक होता है। अभिजित् नक्षत्र का तत्काल पाक अर्थात् उसी दिन फलपाक हो जाता है।।१५।।

अथ श्रवणादीनां पाककालज्ञानमाह–

सप्ताष्टावध्यर्द्धं त्रयस्त्रयः पञ्च चैव मासाः स्युः।

श्रवणादीनां पाको नक्षत्राणां यथासङ्ख्यम्।।१६।।

श्रवण आदि नक्षत्रों का फलपाक कहते हैं–

श्रवण से रेवती तक के छः नक्षत्रों के योगतारा में उत्पात हो, तो क्रम से सात, आठ, डेढ़, तीन, तीन और पाँच मास में फलपाक होता है।।१६।।

यथाक्रमेण श्रवणादीनां नक्षत्राणां पाकः। तद्यथा–सप्तभिर्मासैः श्रवणस्य

पाकः। अष्टभिर्धनिष्ठायाः अध्यर्धेन सार्धेन मासेन शतभिषजः। त्रिभिः पूर्वायाः। त्रिभिरुत्तरायाः। पञ्चभी रेवत्याः। एवमनेन क्रमेण श्रवणादीनां नक्षत्राणां पाकः।

अत्र पाकाध्याये येषामुत्पातानां पाको नोक्तस्तेषां भूकम्पाध्याये उक्तः। यथा–

[1]पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात्।

सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः।।इति।।१६।।

अद्भुते दृष्टे शान्त्यादिकं कृत्वाऽप्यद्भुतशान्तिं नयेत्; अन्यथा पाकभेदो भवत्येतज्ज्ञापयितुमाह–

श्रवण आदि नक्षत्रों का क्रम से फलपाक बतलाते हैं। जैसाकि श्रवण का सात मास में फलपाक होता है। धनिष्ठा का आठ मास में, शतभिषा का अध्यर्ध अर्थात् डेढ़ मास में, पूर्वभाद्रपद एवं उत्तरभाद्रपद का तीन-तीन मासों में और रेवती नक्षत्र का पाँच मास में फलपाक होता है। इस प्रकार श्रवणनक्षत्र से आरंभ कर रेवती नक्षत्र पर्यन्त नक्षत्रों का फलपाककाल कहा गया।

इस पाकाध्याय में जिन उत्पातों का पाककाल नहीं कहा गया है, उनका भूकम्पाध्याय में वर्णन है। यथा–

अङ्गस्फुरण आदि उपद्रवों में जिसका फलाफल नहीं कहा गया है, वह यदि वायव्यमण्डल में हो तो दो मास में, आग्नेय मण्डल में हो तो तीन पक्ष (डेढ़ मास) में, इन्द्र मण्डल में हो तो सात दिन में और वारुण मण्डल में हो तो उसी दिन फल देता है।।१६।।

अद्भुत विकार के प्रकट होने पर शान्ति-विधानों से अद्भुत-शान्ति करनी चाहिये।

पाकभेदों भवत्येतज्ज्ञापयितुमाह–

निगदितसमये न दृश्यते चे-
दधिकतरं द्विगुणे प्रपच्यते तत्।
यदि न कनकरत्नगोप्रदानै-
रुपशमितं विधिवद् द्विजैश्च शान्त्या।।१७।।

अन्यथा काल ज्ञात करने हेतु कहते हैं–

यदि पूर्वोक्त समय में फल दिखायी न दे तो उससे द्विगुणित तुल्य काल में अधिक फल होता है। परन्तु ब्राह्मणों के द्वारा सुवर्ण, रत्न और गोदान आदि शान्ति करने से शान्त नहीं होने पर भी द्विगुणित काल में फल होता है।।१७।।

निगदितसमये यथोक्तकाले चेद्यदि न दृश्यते पाकस्तदा तस्मात् पाकोऽधिकतरं

---

१. द्रष्टव्योऽस्यैव ग्रन्थस्य भूकम्पलक्षणाध्याये श्लोकः २७.

द्विगुणे काले प्रपच्यते पाकमायाति। यदि कनकप्रदानेन सुवर्णदानेन, रत्नानां मणीनां प्रदानेन, गवां धेनूनां प्रदानेन। एतैस्तथा द्विजैर्ब्राह्मणैश्च विधिवत् शान्त्या नोपशमितम् तदाऽधिकतरमतीवाधिकं काले समये। यस्याद्भुतस्य काल उक्तस्तस्मिन् द्विगुणे तत् प्रपच्यते पाकमायातीति।।१७।।

इति श्रीमभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पाकाध्यायो नाम षण्णवतितमोऽध्यायः।।९६।।

पूर्वोक्त समय में यदि फलपाक न दिखायी पड़े, तब उसका फलपाक अधिकतर द्विगुणित काल में फलपाक होता है। यदि स्वर्णदान, रत्नदान, गोदान से और ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् शान्तिकर्म करने से उत्पातों का उपशमन नहीं होता हो तो तब उससे प्राय: द्विगुणित काल में उन अद्‌भुत उत्पातों का फलपाक पूर्ण होता है॥१७॥

श्री भट्टोत्पलविरचित संहिताविवृति में पाकाध्याय नामक छानबे अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥९६॥

❑❑

अथ नक्षत्रकर्मगुणाध्यायो व्याख्यायते।।९७।।

तत्रादावेवाश्विन्यादीनां तारकाप्रमाणज्ञानमाह–

शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्तुपञ्चवसुपक्षाः।
विषयैकचन्द्रभूतार्णवाग्निरुद्राश्विवसुदहनाः।।१।।
[1]भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंशच्चेति तारकामानम्।
क्रमशोऽश्विन्यादीनां कालस्ताराप्रमाणेन।।२।।
नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत्।
दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः।।३।।

आरम्भ में अश्विन्यादि नक्षत्रों के तारों की संख्या बतलाते हैं–

अश्विनी आदि नक्षत्रों के तारों की संख्या क्रमशः ३, ३, ६, ५, ३, १, ५, ३, ६, ५, ८, २, ५, १, १, ५, ४, ३, ११, २, ८, ३, ५, १००, २, ८, ३२ होती है॥१-२॥

विवाहदायक नक्षत्र में जो शुभाशुभ फल हो सकता है, वह तारा संख्या के वर्ष संख्या में कहना चाहिये। ज्वरादि रोग उत्पन्न होने वाले नक्षत्र में तारा की संख्या के प्रमाण में दिनों की संख्या होती है॥३॥

शिखिगुणेति। शिखिनोऽग्नयस्त्रयोऽश्विन्यास्तारकाप्रमाणम्। गुणास्त्रयः

---

१. भूतशरपक्षवसव इति पाठान्तरम्।

सत्त्वरजस्तमांसि भरण्यास्तारकाप्रमाणम्। रसाः षड्मधुरादयः कृत्तिकायाः। इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि पञ्च रोहिण्याः। अनलास्त्रयोऽग्नयो मृगशिरसः। शशी चन्द्र एक आर्द्रायाः।विषया शब्दादयः पञ्च पुनर्वसोः। गुणास्त्रयस्तिष्यस्य। ऋतवः, शिशिरादयः षडाश्लेषायाः। पञ्च मघायाः। वसवोऽष्टौ पूर्वफल्गुन्याः। पक्षौ द्वौ उत्तरफल्गुन्याः। विषयाः पञ्च हस्तस्य। एकश्चित्रायाः। चन्द्र एक एव स्वातेः। भूतानि पञ्च विशाखायाः। अर्णवाः समुद्राश्चत्वारोऽनुराधायाः। अग्नयस्त्रयो ज्येष्ठायाः। रुद्रा एकादश मूलस्य। अश्विनौ' द्वौ पूर्वाषाढायाः। वसवोऽष्ट उत्तराषाढायाः। दहना अग्नयस्त्रयः श्रवणस्य। भूतानि पञ्च पृथिव्यादीनि धनिष्ठायाः। शतं शतभिषजः। केचिच्छराः पञ्चेति पठन्ति। पक्षौ द्वौ पूर्वभद्रपदायाः। वसवोऽष्ट उत्तरभद्रपदायाः। द्वात्रिंशद् रेवत्याः। इत्येवंप्रकारं तारकामानम्। नक्षत्राणामेषां च क्रमशः परिपाट्या ताराप्रमाणेन तत्संख्यया कालो ज्ञेयश्चेत्याह– नक्षत्रजमुद्वाह इति। उद्वाहे विवाहे नक्षत्रस्य यत् फलं सदसच्छुभमशुभं वा तारकामितस्तारकासंख्यैरब्दैर्वर्षैर्वक्तव्यम्। यथा–''मृगशिरसि मघायाम्'' इति। यथा– ''बहुसुख सुतदासीवित्तसौभाग्ययुक्ता'' इति। यत् फलं सच्छोभनं तदार्द्राद्ये भचतुष्टये नेति। सदसत्फलं शुभं दुष्टं तत्तारकामितैस्तार-कासंख्यैरब्दैर्भवति। दिवसैर्ज्वरस्य नाश इति। तारकामितैर्दिवसैर्ज्वरस्योत्पन्नस्य नाशो वाच्यो वक्तव्यः। इति तारकामानम्।।१-३।।

।। नक्षत्रताराबोधक चक्र ।।

नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
तारा सं.	३	३	६	५	३	१	५	३	६
नक्षत्र	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
ता.सं.	५	८	२	५	१	१	५	४	३
नक्षत्र	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू.भा.	उ.भा.	रेवती
ता.सं.	११	२	८	३	५	१००	२	८	३२

शिखी अर्थात् अग्नि की संख्या ३ तारे अश्विनी नक्षत्र के होते हैं। भरणी के तारे ३ होते हैं। गुण शब्द से सत्त्व-रज-तम नामक त्रिगुण की संख्या ३ होती है। कृत्तिका के रस अर्थात् ६ मधुरादि संख्या तुल्य प्रमाण है। श्रोत्र आदि ५ इन्द्रियों की संख्या तुल्य रोहिणी के तारे हैं। मृगशिरा के अनल संख्या तुल्य ३ तारे, आर्द्रा के चन्द्रतुल्य १ तारा, शब्दादि विषयों के तुल्य ५ तारे पुनर्वसु के, पुष्य के गुणवाचक ३ तारे, आश्लेषा के शिशिरादि ऋतु संख्यक ६ तारे, मघा के ५ तारे, पूर्वाफाल्गुनी के वसु अर्थात् ८ तारे, उत्तराफाल्गुनी के पक्ष अर्थात् २ तारे, हस्त के विषयसंख्यक ५ तारे, चित्रा का १ तारा, स्वाती का भी १ तारा, विशाखा के पञ्चमहाभूत संख्यक ५ तारे, अनुराधा के अर्णव अर्थात् समुद्र संख्यक ४, ज्येष्ठा के ३ और मूल के ११ तारे

हैं।पूर्वाषाढ़ के अश्विनी कुमार संख्यक २ तारे, उत्तराषाढ़ के वसु संख्यक ८ तारें, श्रवण के दहन अर्थात् अग्नि तुल्य ३ तारे, धनिष्ठा के पृथ्वी आदि महाभूतों के तुल्य ५ तारे, शतभिषा के १०० तारे होते हैं। कतिपय आचार्य शतभिषा के शर तुल्य ५ तारे कहते हैं। पूर्वभाद्रपदा के पक्ष तुल्य २ तारे, उत्तर-भाद्रपदा के वसु तुल्य ८ तारे, रेवती के ३२ तारे होते हैं। इस प्रकार से तारों की संख्या कही गयी है। इन नक्षत्रों का क्रमानुसार तारा प्रमाण तुल्य काल की संख्या जाननी चाहिये। यथा-उद्वाह अर्थात् विवाह दायिक नक्षत्र का जो शुभ अथवा अशुभफल होगा, वह उस नक्षत्र के तारा संख्या के तुल्य वर्षों में फलित होना कहना चाहिये। जैसा कि मृगशिरा और मघानक्षत्र के सम्बन्ध में कहा गया है–"विविधसुख, सन्तान, दासी, धन और सौभाग्य से युक्त" नारी होती है। इस प्रकार से यह शुभफल होता है। तथा आर्द्रा से चार नक्षत्रों में शुभफल नहीं होता है। इस प्रकार से शुभफल अथवा अशुभ (दुष्ट) फल उन नक्षत्रों के तारा संख्या के तुल्य वर्षों में होता है। तारा-संख्या तुल्य दिनों में, उत्पन्न ज्वर का उपशमन कहना चाहिये। इस प्रकार तारे का मान सप्रयोजन कहा गया॥१-३॥

।। नक्षत्रस्वामीबोधक चक्र ।।

नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
देवता	अश्विनी कु.	यम	अग्नि	ब्रह्मा	चन्द्र	रुद्र	आदित्य	गुरु	सर्प
नक्षत्र	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
देवता	पितर	भग	अर्यमा	रवि	त्वष्टा	वायु	इन्द्राग्नी	मित्र	इन्द्र
नक्षत्र	मूल	पू.षा.	उ. षा.	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू. भा.	उ.भा.	रेवती
देवता	राक्षस	जल	विश्वेदेव	विष्णु	वसु	वरुण	अजपाद	अहिर्बुध्न्य	पूषा

अभिजित नक्षत्र के देवता ब्रह्मा माने गये हैं।

अथ नक्षत्रदेवता आह–

अश्वियमदहनकमलजशशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः।
योन्यर्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनशक्राग्निमित्राश्च ॥४॥
शक्रो निर्ऋतिस्तोयं विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरुणः।
अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम्॥५॥

नक्षत्रों के देवता बतलाते हैं–

अश्विनी आदि नक्षत्रों के अधिपति देवता क्रमशः कहे जा रहे हैं। जैसा कि १. अश्विनी नक्षत्र के अश्विनीकुमार, २. भरणी के यमदेव, ३. कृतिका के अग्निदेव,

४ रोहिणी के कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, ५. मृगशिरा के शशि अर्थात् चन्द्रमा, ६ आर्द्रा के शूलधारी रुद्रदेव, ७ पुनर्वसु के आदित्य, ८ तिष्य अर्थात् पुष्यनक्षत्र के जीव अर्थात् गुरु, ९ आश्लेषा के फणी अर्थात् नागदेव, १० मघा के पितृदेव, ११ पूर्वाफाल्गुनी के योनि अर्थात् भगदेव, १२ उत्तर-फाल्गुनी के (सूर्य/पितर) अर्यमादेव, १३ हस्त के दिवाकर, १४ चित्रा के त्वष्टादेव, १५ स्वाती के पवनदेव, १६ विशाखा के शक्राग्नि अर्थात् इन्द्राग्नि, १७ अनुराधा के मित्रदेव (सूर्य), १८ ज्येष्ठा के इन्द्रदेव, १९ मूल के निर्ऋती अर्थात् राक्षस, २० पूर्वाषाढ़ा के तोय अर्थात् वरुण देव, २१ उत्तराषाढ़ा के विश्व देव, २२ अभिजित् के ब्रह्मा, २३ श्रवण के विष्णु, २४ धनिष्ठा के वसुदेव, २५ शतभिषा के जलाधिपति वरुणदेव, २६ पूर्व भाद्रपदा के अजपाद अथवा अजैकपाद (सूर्य विशेष), २६ उत्तरभाद्रपदा के अहिर्बुध्न्य (सूर्यविशेष) २८ रेवती नक्षत्र के पूषा (सूर्यविशेष), देवता कहे गये हैं।।४-५।।

अश्वियमदहनेति। अश्व्यादीनां क्रमेण भानां नक्षत्राणामीश्वराः। तद्यथा– अश्विनावश्विन्याः। यमो भरण्याः दहनोऽग्निः कृत्तिकायाः। कमलजो ब्रह्मा रोहिण्याः। शशी चन्द्रो मृगशिरसः। शूलभृद्रुद्र आर्द्रायाः। आदित्यः पुनर्वसोः। जीवो बृहस्पतिस्तिष्यस्य। फणी सर्प आश्लेषायाः। पितरो मघायाः। योनिर्भगः पूर्वफल्गुन्याः। अर्यमा उत्तरफल्गुन्याः। दिनकृदादित्यो हस्तस्य। त्वष्टा चित्रायाः। पवनो वायुः स्वातेः। शक्राग्नी इन्द्राग्नी विशाखायाः। मित्रोऽनुराधायाः। शक्र इन्द्रो ज्येष्ठायाः। निर्ऋती राक्षसो मूलस्य। तोयं जलं पूर्वाषाढायाः। विश्वे देवा उत्तराषाढायाः। ब्रह्माऽभिजितः। हरिर्विष्णुः श्रवणस्य। वसुर्धनिष्ठायाः। वरुणोऽपाम्पतिः शतभिषजः। अजपादोऽजैकपात् पूर्वभद्रपदायाः। अहिर्बुध्न्य उत्तरभद्रपदायाः। पूषा रेवत्याः। चशब्दः समुच्चये। इत्येवं प्रकारा भानां नक्षत्राणामीश्वराः स्वामिनो नक्षत्रदेवताः।।४-५।।

अधुना ध्रुवाणि नक्षत्राणि तैश्च यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि चाह–

त्रीण्युत्तराणि तेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात्।
अभिषेकशान्तितरुनगरधर्मबीजध्रुवारम्भान् ।।६।।

ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों तथा उनके कार्यों को कहते हैं–

तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्र को ध्रुव नक्षत्र कहते हैं। इनमें अभिषेक, शान्ति-कर्म, वृक्ष, नगर, धर्मकृत्य तथा बीज-वपन का आरम्भ करना चाहिये।।६।।

तेभ्यो नक्षत्रेभ्यस्त्रीण्युत्तराणि उत्तरफल्गुनी उत्तराषाढोत्तरभाद्रपदा तथा रोहिण्यः। एतानि नक्षत्राणि चत्वारि ध्रुवाणि स्थिराणीत्यर्थः। तैश्च ध्रुवैः किं तत्? अभिषेको नृपादेः। शान्तिः शान्तिकमुत्पातप्रतीकारः। तरुर्वृक्षस्तस्य रोपणम्। नगरं पत्तनं तत्प्रतिष्ठादि। धर्मो धर्मक्रिया। बीजं बीजवपनम्। अन्येषां ध्रुवाणां स्थिराणां कर्मणामारम्भान् कुर्यादिति। तथा च पराशरः–

चत्वारो हि चतुष्का ध्रुवो मृदुर्दारुणस्तथा क्षिप्रः।
उग्राणि पञ्च, पञ्च चराणि साधारणे द्वे च।।

चत्वारि खलु नक्षत्रेषु ध्रुवाणि भवन्ति। प्राजापत्यं त्रीण्युत्तराणि। तेषु पुरनगरग्रामकाननोपवनभवनानि। वेशनतरुकुसुमबीजवपनस्थिरनिधिनिधानकृषिधनगोऽश्वमित्रसंग्रहणस्नपनालङ्करणपत्न्युद्वहनचरणाभिगमननृपतिनायकाभिषेकमन्त्रेज्याव्रतिनियमायुष्यपौष्टिकशान्तिकधान्यान्यन्यानि स्थिराणि कारयेत्। ऋणधनप्रयोगपथगमनमद्यवैरक्षौराणि च वर्जयेत्।।६।।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपदा तथा रोहिणी; ये चारों नक्षत्र ध्रुव अर्थात् स्थिर कहे गये हैं। इन ध्रुवनक्षत्रों में क्या करना चाहिये? राजाओं का राज्याभिषेक, उत्पातों के शमन हेतु शान्तिकर्म तरु अर्थात् वृक्ष का रोपण, नगर (पत्तन) की स्थापना, धार्मिक कृत्य और बीजबोना तथा अन्य प्रकार के स्थिर कर्मों का आरम्भ करना चाहिये। जैसा कि पराशर मुनि ने कहा है–

चार-चार नक्षत्रों वाले ध्रुव, मृदु, दारुण तथा क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र होते हैं। पाँच-पाँच नक्षत्र उग्र और चरसंज्ञक तथा साधारण संज्ञक दो नक्षत्र होते हैं।

चार नक्षत्र ध्रुव संज्ञक होते हैं। उनमें रोहिणी और तीनों उत्तरों का ग्रहण किया गया है। उन नक्षत्रों में पुर, नगर, ग्राम, वन, उपवन, भवन बीज-वपन, स्थायी निधि, सम्पत्ति, कृषि, धन, गाय, घोड़ा, मित्र-संग्रह, स्नान, अलङ्करण, पत्नी-ग्रहण, शरणागति, राजा और सेनानायकों का अभिषेक, मन्त्र ग्रहण, यज्ञ, व्रत, नियम, आयुष्य कर्म, पौष्टिक एवं शान्ति कर्म, धान्य संग्रह आदि स्थिर कार्यों को करना चाहिये। इन नक्षत्रों में ऋण लेना धन का व्यवहार, यात्रा, मद्य-सेवन, शत्रु-कर्म और क्षौर कार्यों को नहीं करना चाहिये।।६।।

अथ तीक्ष्णानि नक्षत्राणि तैर्यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि चाह–

मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिद्ध्यन्ति।
अभिघातमन्त्रवेतालबन्धवधभेदसंबन्धाः।।७।।

तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र एवं उनके कार्यों को कहते हैं–

मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा और आश्लेषा; ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण संज्ञक हैं। इनमें आघात कार्य, मन्त्रप्रयोग, वेताल-साधन, बन्धन, वध तथा भेदनीति के कार्य सिद्ध होते हैं।।७।।

मूलं प्रसिद्धम्। शिवाधिपमार्द्रा। शक्राधिपं ज्येष्ठा। भुजगाधिपं सर्पदैवत्यमाश्लेषा। एतानि नक्षत्राणि तीक्ष्णानि दारुणानीत्यर्थः। तेषु तीक्ष्णेषु सिद्ध्यन्ति। के ते? अभिघात उपद्रवः। मन्त्रो मन्त्रसाधनप्रयोगः। वेताल वेतालोत्थापनादिकर्म। बन्धो बन्धनम्। वधस्ताडनम्। भेदः पृथक्करणं श्लिष्टयोर्द्वयोः। संबन्धो राजकुल आवेदनम्। एते

सिद्ध्यन्ति। तथा च पराशरः—

"चत्वारि नक्षत्रेषु दारुणानि भवन्ति। आर्द्रा श्लेषा ज्येष्ठा मूलमित्येतेष्वरिनगर-स्कन्धावारावरोधनमथ नरेन्द्राभिघातयुद्धकलहकूटसाहसोपधानभेदवञ्चनविवादचौर्यानृत-शपथकितवच्छलनपणयन्त्रायुधग्रहणकरदर्शनाभिचारगदवियोगवधभृत्यनिग्रहचतुष्पददमनभटनियोगान्। विशेषतो मूले मूलकर्म। रुद्रर्क्षेषु पीडनवपनधान्यतरुकुसुमबीजवेश्मप्रवेस्थिरनिधिनियोगांश्च कारयेत्। सर्वेषु च सर्वं दारुणं कर्म"।।७।।

मूलनक्षत्र, शिवाधिपत्य वाला आर्द्रानक्षत्र, इन्द्र का नक्षत्र ज्येष्ठा, सर्पाधिपत्य का आश्लेषानक्षत्र; ये सभी तीक्ष्ण और दारुण (भयंकर) होते हैं। अभिघात अर्थात् उपद्रव, मन्त्र अर्थात् मन्त्र साधन के प्रयोग, वेताल-कर्म अर्थात् वेताल उत्थापन (भूत जगाना) आदि कर्म, बन्ध अर्थात् बन्धन (कारागार भेजना) वध अर्थात् मारना, भेद अर्थात् दो के मध्य विद्वेष उत्पन्न करना, सम्बन्ध अर्थात् राजकुलों की पारस्परिक सन्धि; ये सभी कार्य इनमें सिद्ध होते हैं। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है—

सभी नक्षत्रों में चार नक्षत्र दारुण होते हैं। आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा और मूल। इन चार नक्षत्रों में शत्रु-नगर का घेराव, शत्रु अवरोध, राजा का अभिघात, युद्ध, कलह, कूटनीति, साहसकर्म, आसन भेद, ठगना, विवाद, चोरी करना, झूठी शपथ खाना, कपट कर्म, छलना, व्यापार, यन्त्र एवं शस्त्रों का ग्रहण, दर्शन, अभिचार कर्म, रोग दूर करना (शल्य क्रिया), वध, सेवक-ग्रहण, पशु को वश में करना, योद्धाओं का संग्रह करना चाहिये। इन सभी नक्षत्रों में सभी प्रकार के दारुण कर्म विहित हैं।।७।।

अथोग्राणि नक्षत्राणि तैश्च यत् कर्म कर्तव्यं तच्चाह—

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनाशशाठ्येषु।
योज्यानि बन्धविषदहनशस्त्रघातादिषु सिद्ध्यै।।८।।

उग्र नक्षत्रों को तथा उनमें क्रियमाण कार्यों को कहते हैं—

तीनों पूर्वा, भरणी और मघा ये पाँच नक्षत्र उग्रसंज्ञक हैं। इनमें बन्धन, विष कर्म, अग्नि-दाह और शस्त्र-प्रहार आदि उग्र कर्म सिद्ध होते हैं।।८।।

पूर्वत्रयं पूर्वफल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वभद्रपदा इति। भरणी। पित्र्यं मघा। एतानि पञ्च नक्षत्राण्युग्राणि भवन्ति। तानि चोत्सादे उत्सादने। परस्यार्थादीनां नाशे। शाठ्ये शठभावे च। एतेषु कार्येषु योज्यानि। तथा बन्धे बन्धने। विषे शत्रूणां विषप्रयोगे। दहनेऽग्निदाहे। शस्त्रे शस्त्रप्रहरणे। घाते मारणे। आदिग्रहणादन्येषूपद्रवकरणेषु ज्वरातीसारोत्पादनेषु सर्वकर्मसु सिद्ध्यै सिद्ध्यर्थं योज्यानि प्रयोक्तव्यानि। तथा च पराशरः—

"पञ्च नक्षत्रेषूग्राणि भवन्ति। मघा भरणी त्रीणि पूर्वाणीति। एषु भटचौरगुल्मपुरुष-दूताकार-शौक्ल्यशाठिकक्षुद्रान् स्थापयेत्। तथा निभृतनियमनप्रणाधिसम्प्रयोग-

वैरोत्थानकलहकोला-हलसम्प्रहारवञ्चनविवादान्यद्रव्यहरणान्यदारगमनद्यूताभिसार-विलप्रवर्तनयुद्धयोद्धायुधग्रहणकरदर्शनारम्भाणि। नगरग्रामजनपदपुराभिघातयन्त्रोपकरण-दुर्गक्रियाणां परायिकप्रयोगान्। युद्धसंग्रामाभियोगेषु प्रथममरयोऽभिहन्तव्या इत्यादिषु विषप्रयोगानलविसर्गाभिचारं कारयेत्। विशेषतः पित्र्येपितृ पिण्डसम्प्रदानकोष्ठागार-विविधाकारनिधानानि। भाग्ये सौभाग्यकस्यावरणानि आप्ये जलवाहसुरासवकूपनदीवाह-कुल्याखननानि। सर्वेषु सर्वमुग्रं च''।।८।।

तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वभाद्रपदानक्षत्र तथा भरणी और पित्र्य अर्थात् मघानक्षत्र; ये पाँच नक्षत्र उग्रसंज्ञक होते हैं। इन नक्षत्रों में उत्सादन अर्थात् उच्छेद अर्थात् दूसरों की सम्पत्ति को विनष्ट करना। शठता का भाव इत्यादि कार्यों में इनका उपयोग करना चाहिये। बन्ध अर्थात् बन्धन कर्म (बाँधना), विष-प्रदान अर्थात् शत्रुओं पर विष का प्रयोग करना, दहन अर्थात् अग्निदाह, शस्त्रप्रहार अर्थात् दहन अर्थात् अग्निदाह, शस्त्रप्रहार अर्थात्' मृत्यु देना (मारण) आदि शब्द से ध्वनित होता है कि उपद्रवकारी अन्य कार्यों में भी, ज्वर-अतिसार उत्पन्न करने वाले सभी कार्यों को सफल करने हेतु इनका प्रयोग करना चाहिए। जैसा कि महर्षि पराशर ने कहा है–

मघा, भरणी और तीनों पूर्वा; ये पाँच नक्षत्र उग्र संज्ञक होते हैं। इन नक्षत्रों में मल्ल युद्ध, चौरकर्म, सिपाही, सन्देशवाहक, शुल्काधिकारी (चुंगी लेने वाला), कपटी और अधम की स्थापना करनी चाहिये। तथा निभृत अर्थात् गोपन, नियन्त्रण, अनुग्रह करना, शत्रुता करना, कलह, कोलाहल, ठगना, विवाद, दूसरे के धन का अपहरण, परस्त्रीगमन, जूआ खेलना, गुप्तमिलन, सुरंग खोदना, युद्ध करना, योद्धा और शस्त्रों का संग्रह, संरक्षण और दर्शन करना। नगर-ग्राम-जनपद और पुर पर चढ़ाई करना, आयुध-उपकरणों का प्रयोग। युद्ध, संग्राम और अभिलाञ्छित होने पर सर्वप्रथम शत्रुओं का वध करना चाहिये। इसके लिए विष का प्रयोग, अग्निप्रयोग एवं मान्त्रिक अभिचारों का प्रयोग करना चाहिये। विशेषतः मघा नक्षत्र में पितरों के लिए पिण्डदान, कोषागार तथा विविध प्रकार के धन संग्रह के योग्य भवनों का निर्माण करे। पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्र में सौभाग्य वस्तुओं का गोपन, आप्य अर्थात् पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में जल-प्रवाह, मदिरा तथा आसव, कूप, नदी, तालाब आदि का खनन करना चाहिये। इस प्रकार उग्र नक्षत्रों में इन कार्यों को करना चाहिये।।८।।

विशेष व्याख्या–

(१) गुल्म = सैन्यदल, अमरकोश २-४-९ "अप्रकाण्डेस्तम्बगुल्मौ" की व्याख्या में लिखा है–गुल्म रक्षायाम्, गुल्मः सेनाघट्टभिदोः सैन्यरक्षण रुग्भिदोः। इसका तात्पर्य सैन्य दल में भेद उत्पन्न करने वाला "गुप्तचर" है।

(२) प्रणधिः=चार, गूढ पुरुष,

अ. को. २-८-१३-यथार्हवर्णः, प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः। चारश्च गूढपुरुषः।

(३) निभृत = विनीत। नितरामभारि। विनीतस्तु निभृते। विभूतविनीत प्रश्रिताः समाः अमरकोश ३-१-२५.

अथ क्षिप्राणि नक्षत्राणि तैश्च यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि चाह–

लघु हस्ताश्विनपुष्याः पण्यरतिज्ञानभूषणकलासु।
शिल्पौषधयानादिषु सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि।।९।।

क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र एवं उसमें विहित कर्म–

हस्त, अश्विनी, पुष्य; ये लघुसंज्ञक नक्षत्र हैं। ये नक्षत्र पण्य (विक्रय), रति, ज्ञान (शास्त्र प्रारम्भ), भूषण, कला (चित्र, गीत, वाद्य एवं नृत्य), शिल्पकर्म, औषध (द्रव्य प्रयोग), यान (यात्रा) आदि कर्म सिद्ध करने वाले होते है।।९।।

हस्तः प्रसिद्धः। आश्विनमश्विनी। पुष्यस्तिष्यः। केचिदभिजिदत्रेच्छन्ति। एतन्नक्षत्रत्रयं चतुष्टयं वा लघु क्षिप्रमित्यर्थः। एतानि पण्ये विक्रये। रतौ पुंरतौ। ज्ञाने शास्त्रारम्भे। भूषणे अलङ्करणे। कलासु चित्रगीतवाद्यनृत्यादिषु। शिल्पकर्मणि तक्षककर्मलोहकारकर्मादौ। औषधे द्रव्यप्रयोगे। याने यात्रायाम्। आदिग्रहणादृणग्रहणे धनप्रयोगे च। एतेषु कार्येषु सिद्धिकराण्युक्तानि। तथा च पराशरः–

"चत्वारि नक्षत्राणि क्षिप्राणि भवन्ति। हस्तः पुष्योऽभिजिदश्विनमित्येतेषु विविधपण्यविक्रयधनप्रयोगगोऽश्वाश्वतरखरकरभदमनस्कन्धावारबलारसार्थनिर्याणदूतचर-सम्प्रेषणाध्वगमनयजनयाजनाध्ययनाध्यापनशिल्पारम्भध्वजपताकातपत्रवालव्यजनसमु-च्छ्रयस्नपनगजग्रहणारोहणभैषज्यरक्षोग्रगदगदौषधग्रहणधारणानि सर्वाण्येव चात्र क्षिप्राणि कर्मादि कारयेत्"।।९।।

हस्त, आश्विन अर्थात् अश्विनी, पुष्य तथा कुछ आचार्यों के मत से अभिजित् ये चार नक्षत्र पण्य अर्थात् विक्रय, रति अर्थात् पुरुष-स्त्री संयोग, ज्ञान अर्थात् किसी शास्त्र का आरम्भ करना, आभूषण धारण करना, चित्र-गीत-वाद्य-नृत्य आदि कलाकर्म, काष्ठकर्म, लौह कर्म आदि शिल्पकर्म, द्रव्यादि युक्त औषधियों का प्रयोग, यात्राकार्य, आदि शब्द से ऋण लेना तथा धन का प्रयोग-का अर्थ ग्राह्य है। ये सभी कार्य इन नक्षत्रों में सिद्धिकारक होते हैं। जैसा कि महर्षि पराशर ने कहा है–

हस्त, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी; ये चार नक्षत्र क्षिप्रसंज्ञक होते हैं। इनमें विविध प्रकार के क्रय-विक्रय, धन-व्यवहार, गाय, घोड़ा, खच्चर, गर्दभ, हाथी इनका दमन, कन्धे के बल से कार्य करने वाले वृषभादि के कार्य, सैन्य-शक्ति, रथ-प्रेषण, राजदूत गुप्तचर को भेजना, मार्ग गमन, यजन करना, यज्ञ कराना, अध्ययन-अध्यापन, शिल्पकर्म का आरम्भ, ध्वज, पताका छत्र-चँवर का उत्थापन, स्नान,

हाथी का ग्रहण और आरोहण, औषधिकर्म, रक्षणकर्म, उग्ररोग और रोगशामक औषधि का ग्रहण तथा धारण; ये सभी प्रकार के कार्य क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र में करना चाहिए।।९।।

अथ मृदूनि नक्षत्राणि तैश्च यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि चाह–

मृदुवर्गोऽनूराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे।
सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि।।१०।।

मृदुसंज्ञक नक्षत्र और उसमें विहित कर्म–

अनुराधा, चित्रा, रेवती, मृगशिरा; ये नक्षत्र मृदुसंज्ञक है। ये सब मित्र, सुरत-क्रिया, वस्त्र, भूषण, मङ्गल कार्य और गाने में शुभ हैं।।१०।।

अनूराधा। चित्रा। पौष्णं रेवती। ऐन्दवं मृगशिरः। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि मृदुवर्गः। तानि च मित्रार्थे मित्रवरणार्थं श्रवणादिप्रयोगे। सुरतविधौ सुरतकर्मणि। वस्त्रेषु वस्त्रकर्मादिषु। भूषणेष्वलङ्करणेषु। मङ्गलेषु विवाहोपनयन चूडाकरणेषु। गीते च। एतेषु च कर्मसु च हितानि श्रेष्ठानि। तथा च पराशरः–

''चत्वारि नक्षत्रेषु मृदूनि भवन्ति। मृगशिरश्चित्रानूराधा रेवतीत्येतेषूपनयनचूड़ाकरणगोदानादिव्रतनियमजप्यस्वस्त्ययनवहनवपनविस्मापनकौतुकमङ्गलयज्ञवाहनाध्ययनाध्यापनकन्यावरणपाणिग्रहणधनप्रयोगान् गुरुनरेन्द्राणां वाद्यगीतनृत्ताभिनयालापहास्योद्यानहर्षपरिवर्धनान्यारभेत। मणिरजतालङ्कराम्बरधारणकरणसंग्रहणविक्रयशिल्पप्रयोगगमनप्रयोगसुहृत्संबन्धिबान्धवसंबन्ध्यान्यायुष्यपौष्टिकधर्मार्थकामयुक्तानि सर्वाण्येव चात्र नयनाञ्जनसौभाग्यविचित्रचित्राणि विशेषतः सर्वेषु सर्वाणि मृदूनि कर्माणि कारयेत्।।१०।।

अनुराधा, चित्रा, पौष्ण अर्थात् रेवती, ऐन्दव अर्थात् मृगशिरा; ये चार नक्षत्र मृदुसंज्ञक हैं। इनमें मित्र-वरण, कीर्तन आदि का श्रवण, सुरतिविधि अर्थात् सुरत कर्म, वस्त्र-निर्माण, आभूषण-धारण, विवाह-उपयन-चूडाकरण (मुण्डन) आदि माङ्गलिक कार्य तथा गीत-गायन सम्बन्धी, ये सभी कार्य कल्याणकारी और श्रेष्ठ होते हैं। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

मृगशिरा-चित्रा-अनुराधा और रेवती; ये चार नक्षत्र मृदु (कोमल) होते हैं। इन नक्षत्रों में उपनयन (यज्ञोपवीत), चूडाकरण (मुण्डन), गोदान आदि दान, व्रतारम्भ, नियम, जप, स्वस्त्ययन (शान्ति पाठ) वहन (ढोना), बीज-वपन, आश्चर्यकारी कृत्य, इन्द्रजाल, माङ्गलिक कार्य, यज्ञ, वाहन, अध्ययन-अध्यापन, कन्यावरण, पाणिग्रहण, धन का व्यवहार, गुरु एवं राजा सम्बन्धी कार्य, वाद्य-गीत-नृत्य-अभिनय-आलाप-हास्य-उद्यान-हर्ष-सम्बर्धन कार्यों का आरम्भ करे। मणि (रत्न) रजत (चाँदी), अलङ्कार, वस्त्र का धारण एवं संग्रहण, विक्रय, शिष्यकर्म, यात्रा कर्म, मित्र, सम्बन्धी-बान्धव तथा अन्य सम्बन्धों को, आयुवर्धक पौष्टिक, धर्म-अर्थ-काम

सहित सभी कार्य तथा नेत्राञ्जन, सौभाग्य, विशिष्ट चित्रकर्म इस प्रकार से सभी मृदु अर्थात् कोमल कार्यों को करना चाहिये॥१०॥

विशेष व्याख्या—मूल श्लोक में 'अनूराधा' शब्द है। विवृति में भी अनूराधा ही प्रयुक्त है। सम्प्रति सभी ग्रन्थों में 'अनुराधा' शब्द ही प्रचलित है। व्युत्पत्ति सिद्ध शब्द अनुराधा ही युक्तियुक्त है। अनु + राध्नोति साधयति कार्याणि = राध् + अच् + टाप्।

अथ साधारणे नक्षत्रे ताभ्यां यानि च कर्माणि कारयेत्, तथा चराणि नक्षत्राणि तैश्च यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि चाह–

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि।
श्रवणत्रयमादित्यानिले च चरकर्मणि हितानि॥११॥

साधारण तथा चरसंज्ञक नक्षत्रों में विहित कार्यों को कहते हैं–

कृत्तिका, विशाखा; ये मृदुतीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र हैं। ये मिश्रितफल करने वाले हैं। अर्थात् इनमें मृदु, दारुण; दोनों को करे। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति; ये पाँच नक्षत्र चरसंज्ञक हैं। ये चरकार्य में शुभ हैं॥११॥

हौतभुजं कृत्तिका। हुतं भुङ्क्ते हुतभुगग्निः। हुतभुज इदं हौतभुजम्। तस्येदमित्यण्।[1] तद्धितेष्वचामादेरिति वृद्धिः।[2] तच्च सविशाखं विशाखासहितम्। एतन्नक्षत्रद्वयं मृदुतीक्ष्णं मृदुसाधारणमित्यर्थः। तच्च विमिश्रफलकारि विमिश्रफलं करोति। मृदूनि दारुणानि च कर्माणि कुर्यादित्यर्थः। तथा च पराशरः—

"द्वे नक्षत्रे साधारणे भवतः—कृत्तिका विशाखेति। तयोर्मृदूनि दारुणानि कर्माणि कुर्यात्। धातूत्पादनावर्तनभाण्डागारविपणिपण्योपकरणानि। यज्ञेष्टिदहनोपतापनेक्षुघृतविपाचनं वृषभोत्सर्गपशुसङ्कलनदमनान्यारभेत। सर्वप्रहरणानि कारयेत्। ग्रामशिविरपुरव्रजननगर-व्युत्पथबन्धम्। विशाखायां विशेषेणेक्षुवृक्षबीजलताकुसुमानि वापयेत्।"।

श्रवणत्रयमिति। श्रवणत्रयं श्रवणं धनिष्ठा शतभिषगिति। आदित्यं पुनर्वसुः। आनिलं स्वातिः। ते आदित्यानिले च। एतानि पञ्चनक्षत्राणि। तानि च चरकर्मण्यस्थिरे कर्मणि हितानि प्रशस्तानि। तथा च पराशरः।

"पञ्च नक्षत्राणि चराणि भवन्ति-स्वातिः पुनर्वसुः श्रवणं धनिष्ठा शतभिषगिति। एतेषु कुञ्जरमृगमहिषतुरगखरकरभगवां समावहनानि। विशेषेण पुनर्वसौ पुनर्भूर्गमनं विटकरणम्। वारुणे सुरासवन्धानसरःसरित्सेत्वौषधविधानानि। सर्वेषु विशेषेण सर्वं चरकर्म कुर्यात्"॥११॥

हौतभुज अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र; जो हुत पदार्थ, हवनीय द्रव्य को खाता है। वह

---

१. पाणिनिव्याकरणस्य ४/३/१२० सूत्रम्।
२. पाणिनिव्याकरणस्य ७/२/११७ सूत्रम्।

हुतभुक् अर्थात् अग्नि। हुतभुज जिसका स्वामी हो उसको हौतभुज कहते हैं। यहाँ पर अण् प्रत्यय है। तद्धित में अत् की आदि वृद्धि होकर हुत शब्द का हौत शब्द बना है। विशाखा सहित ये दो नक्षत्र मृदु तीक्ष्ण अर्थात् मृदु साधारण कहे गये हैं। ये मिश्रित फल करते हैं। अर्थात् इनमें मृदु और दारुण (भयंकर); दोनों प्रकार के कार्य होते हैं। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

दो नक्षत्र साधारण होते हैं–कृत्तिका और विशाखा। इनमें मृदु और दारुण कर्म करने चाहिये। धातुओं का उत्पादन, पिघलाना, भण्डार गृह तथा क्रय-विक्रय के उपकरण यज्ञ, इष्ट, दहन, उपतापन, इक्षुरस एवं घृत का परिपाक, वृषोत्सर्ग, पशुसंग्रह, तथा पशुदमन कार्यों को करे। सभी प्रकार के शस्त्रों का निर्माण करे। ग्राम-शिविर-पुर-व्रज-नगर में बाँध बाँधने का कार्य करे। विशाखा नक्षत्र में विशेष रूप से ईख बोना तथा वृक्ष लगाना और बीज वपन, लता तथा कुसुम (पुष्प) का आरोपण करना चाहिये।

श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात् श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा, आदित्य अर्थात् पुनर्वसु, अनिल अर्थात् स्वाती; इस प्रकार ये पाँच नक्षत्र होते हैं। इनमें चरकार्य अर्थात् जो स्थिर न हों वे प्रशस्त हितकारक होते हैं। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा, ये पाँच नक्षत्र चरसंज्ञक होते हैं। इन नक्षत्रों में हाथी-मृग-महिष-अश्व-गदर्भ-ऊँट-वृषभ का संग्रहण करना चाहिये। विशेष रूप से पुनर्वसु नक्षत्र में विधवा विवाह और कामुकता सम्बन्धी कार्य करे। शतभिषा नक्षत्र में मद्य तथा आसव का निर्माण, नद-नदी-सेतु तथा औषधि कर्मों को करे। विशेष रूप से इन नक्षत्रों में चरकर्म करना चाहिये।।११।।

विशेष व्याख्या–पुनर्भू संस्कार किसी स्त्री का एक बार विवाह हो जाने के बाद पुनः द्वितीय विवाह को कहा जाता है। जैसाकि याज्ञवल्क्य (१/६७) ने कहा है। "अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः।"

(१) विट शब्द जार अथवा उपपति के लिए प्रयुक्त होता है। एक पति के रहते हुए दूसरा पति 'जार' अथवा 'विट' कहा जाता है। द्रष्टव्य-मातङ्गलीला ८/८, शिशुपालवध महाकाव्य ४/४८.

अथ क्षौरनक्षत्राण्याह–

हस्तत्रयं मृगशिराः श्रवणत्रयं च
पूषाश्विशक्रगुरुभानि पुनर्वसुश्च।
क्षौरे तु कर्मणि हितान्युदये क्षणे वा
युक्तानि चोडुपतिना शुभतारया च।।१२।।

क्षौर कर्म में विहित नक्षत्र

हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुष्य, पुनर्वसु इन नक्षत्रों में अथवा इन नक्षत्रों के उदयकाल मे या इन नक्षत्रों के देवता सम्बन्धी मुहूर्त के उदय में चन्द्र और तारा के अनुकूल रहने पर क्षौर कर्म करना चाहिये।।१२।।

हस्तात् प्रभृति नक्षत्रत्रयम्—हस्तः, चित्रा, स्वातिः, मृगशिराः। श्रवणत्रयं श्रवणात् प्रभृति नक्षत्रत्रयम्—श्रवणं घनिष्ठा शतभिषगिति। पूषभं रेवती। अश्विभमश्विनी। शक्र इन्द्रस्तद्भं ज्येष्ठा। गुरुभं तिष्यम्। एतानि। तथा पुनर्वसुश्च। एतानि नक्षत्राणि क्षौरे क्षुरकर्मणि तु हितानि शस्तानि। उदये च यथा, मेषलग्नोदये यावन्मेषस्य त्रयोदशत्रिंशद्भागतः सविंशतिलिप्ता उदयं यान्ति, तावदश्विनीनक्षत्रमुदयं याति। तत्परतो यावत् तावन्त एव भागा उदयं यान्ति, तावद्भरणीत्यनेन न्यायेन सर्वेषामुदयो योज्यः। तस्मिन्नुदये विहितानि। क्षणे च क्षणस्योदये। क्षणो मुहूर्तः। येन नक्षत्रेण क्षुरकर्म क्रियते तस्य या देवता तन्नामा यो मुहूर्तस्तस्योदये। यथा हस्तदेवता सूर्यस्तन्नामा यो मुहूर्तस्तस्योदये मित्रपूष्णोरुदये वेत्यादि। तद्यथा मुहूर्ता यात्रायामुक्ताः—

[1]शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरञ्चिपङ्कजप्रभवाः।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि।।
रुद्राजाहिर्बुध्न्याः पूषा दस्रान्तकाग्निधातारः।
इन्द्वदितिगुरुहरिरवित्वष्टृनिलाख्याः क्षणा रात्रौ।।
अह्नः पञ्चदशांशो रात्रेश्चैवं मुहूर्त इति।
स च विज्ञेयस्तज्ज्ञैश्छायायन्त्राम्बुभिर्युक्त्या।।इति।

तानि च नक्षत्राणि यद्युडुपतिना चन्द्रेण शोभनेन जन्मतृतीयषष्ठसप्तमदशमैकादशानामन्यतमेन युक्तानि भवन्ति तदा चन्द्रानुकूल्यं च भवति। शुभतारया च। तारा यदि शुभाऽनुकूला सम्पत्क्षेमसाधकमैत्राणामन्यतमा भवति। एतदुक्तं भवति—यदि चन्द्रानुकूल्यं तारानुकूल्यं च भवति तदेति।।१२।।

हस्त से लेकर तीन नक्षत्र हस्त, चित्रा, स्वाती तथा मृगशिरा। इसी प्रकार श्रवण से तीन नक्षत्र श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती; अश्विनीनक्षत्र, शक्र अर्थात् इन्द्र उनका नक्षत्र ज्येष्ठा, गुरु का नक्षत्र तिष्य (पुष्य) तथा पुनर्वसु नक्षत्र; ये नक्षत्र क्षौरकर्म (चूड़ाकरण आदि) में विहित एवं प्रशस्त हैं, नवमांश लग्न के अनुसार इन नक्षत्रों का जब उदय हो, उस समय भी क्षौरकर्म विहित है। यथा मेषलग्न के उदय होने पर १३ अंश २० कला तक चतुर्थखण्ड रहेगा। यह चन्द्रमा का नवमांश होगा। तब तक अश्विनी नक्षत्र का उदय माना जायेगा। उसके बाद इसी क्रम से उन्हीं अंशों के मान

---

१. द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य अ. ४२ श्लोक सं. १२ विवृतौ इदं वचनं कुत्रचित् पाठान्तररूपम्।

के भरणी आदि अन्य नक्षत्रों का उदयकाल भी समझना चाहिये। जिस नक्षत्र का उदयकाल हो उसमें उसके विहित कर्म होते हैं। इसी प्रकार क्षण अर्थात् मुहूर्त के उदय पर भी विचार करना चाहिये। क्षण शब्द का अर्थ मुहूर्त है। जिन नक्षत्रों में क्षौर कर्म विहित है, उनके देवता वाचक जो मुहूर्त हो, उसके उदयकाल में क्षौरकर्म शुभ हैं, सूर्य के नाम से जब कोई मुहूर्त उदित हो तब क्षौर कर्म करना चाहिये। यथा मित्र और पूष्ण सूर्यवाचक मुहूर्त हैं। जैसाकि यात्रा प्रकरण में मुहूर्तों के नाम बतलाये गये हैं।

दिन के पन्द्रह मुहूर्तों के स्वामी क्रमशः १ शिव २ भुजग ३ मित्र ४ पितृ ५ वसु ६ जल ७ विश्व ८ विरञ्चि ९ पद्मयोनि १० इन्द्राग्नि ११ इन्द्र १२ निशाचर १३ वरुण १४ अर्यमा १५ योनि होते हैं। रात के पन्द्रह मुहूर्तों में क्रमशः १ रुद्र २ अज ३ अहिर्वुध्न्य ४ पूषा ५ दस्र ६ अन्तक ७ अग्नि ८ धाता ९ इन्दु १० अदिति ११ गुरु १२ हरि १३ रवि १४ त्वष्ट्रा १५ अनिल; ये स्वामी होते हैं। मुहूर्त एवं काल का ज्ञान दिन में छायायन्त्र से तथा रात में जलयन्त्र से किया जाता है।

ये नक्षत्र यदि शुभचन्द्रमा से अर्थात् १,३, ६, ७, १० तथा एकादश स्थानों में से कहीं भी स्थित हो, तब चन्द्रमा की अनुकूलता होती है। शुभतारा होने पर भी अर्थात् सम्पत् तारा, क्षेमतारा, साधकतारा और मैत्रतारा; इनमें से कोई भी तारा हो, तो अनुकूल तारा मानी जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा की अनुकूलता तथा तारा की अनुकूलता हो, तब विहित कर्म करना चाहिए।।१२।।

अत्र क्षुरकर्मणि परिशेषार्थमाह–

न स्नातमात्रगमनोन्मुखभूषिताना-
मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम्।
सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कतिथौ च रिक्ते
क्षौरं हितं [1]न नवमेऽह्नि न चापि विष्ट्याम्।।१३।।

स्नान करने के बाद, यात्रा (युद्धादि यात्रा) के समय, अलंकृत होने पर, तेल उबटन आदि लगाने के बाद, भोजन के पश्चात्, युद्धकाल में, आसन रहित होकर, सन्ध्या के समय, रात में, मंगल और रविवार को, रिक्ता (४,९,१४) तिथि में, पूर्व कृत क्षौर दिन से नौवें दिन तथा भद्राकाल में क्षौर करना कल्याणप्रद नहीं होता है।।१३।।

स्नातमात्रस्य कृतस्नानस्य क्षौरं न हितं न शस्तम्। गमनोन्मुखस्य गन्तुं प्रवृत्तस्य क्षौरं न हितम्। तथा भूषितस्यालङ्कृतस्य। अभ्यक्तस्य तैलादिना कृताभ्यङ्गस्य। भुक्तस्य कृताहारस्य। रणकाले सङ्ग्रामसमये। निरासनस्य आसनरहितस्य। तेषां क्षौरं न हितं न शोभनम्। तथा सन्ध्याकाले सन्ध्यासमये। सन्ध्यालक्षणं प्रागेवोक्तम्–

[2]अर्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।
तावत् सन्ध्याकालः।।....इति।

१. न च नवेऽह्नि न चापि विष्ट्यामीति पाठान्तरम्।

२. द्रष्टव्ययोऽस्य ग्रन्थस्य अध्याय सं. ३०/१ श्लोकः।

निशायां रात्रौ। शनिकुजार्कवारे—शनिवारे शनैश्चरवारे, कुजवारे भौमवारे, अर्कवारे आदित्यवारे च। केचिदप्यर्कबारे नेच्छन्ति। तिथौ च रिक्ते, चतुर्थी नवमी चतुर्दशी चेति रिक्ता तिथिः। तस्यां क्षौरं न हितम्। नवमेऽह्नि नवमे दिवसे न कार्यम्। विष्ट्यां करणे क्षौरं हितं न। नवमेऽह्नि न चापि विष्ट्यामित्यत्र केचिदन्यथा व्याख्यानं कुर्वन्ति। नवमदिवसग्रहणमत्यन्तनिषेधार्थम्। चतुर्थ्यां चतुर्दश्यामपि कार्यातिपत्तौ कर्तव्यं क्षुरम्, न नवम्याम्। तथा। च-न नवम्यङ्गारकवर्जमिति लोकवचनं प्रदर्शयन्ति। एतेन तिथौ च रिक्ते इत्यनेनैव गतार्थत्वाद् व्यासमहर्षिणा चतुर्थ्याद्या निषिद्धा, नवमी सामान्यनिषेधेनापि न निषिद्धा। तथा चाह—

चतुर्थीं चैव षष्ठीं च अष्टमीं च चतुर्दशीम्।
तथा पञ्चदशीं चैव ब्रह्मचारी भवेत् सदा।।
श्मश्रुकर्मशिरोऽभ्यङ्गमञ्जनं दन्तधावनम्।
पर्वस्वेतानि यः कुर्याल्लक्ष्मीस्तत्र न तिष्ठति।।

एतच्च यद्याचार्यस्य निषेध आधिक्येनाभ्युपगतं स्यात्, तदा रिक्तातिथि निर्देशं न कृतं स्यात्। एतावद्वक्तव्यं नवम्यामिति। तत्रापि परे चकारेण पाठान्तरं कृत्वा न च नवेऽह्नि न चापि विष्ट्यामिति प्रतिपद्दिवसमेव नेच्छन्ति। नवं च तदहो नवाहस्तस्मिन् नवेऽह्नि। तन्त्रान्तरोक्तं च निदर्शनं पठन्ति—

क्षौरं न निशि न भुक्ते न पक्षसन्धौ न जन्मनक्षत्रे।
न प्रसवनोपवासे न देवपितृकार्ययोरन्तः।।

अत्र रिक्ताग्रहणं नास्ति। तथा च पराशरोक्तम्—

"प्रतिपत्षष्ठ्योर्विवाहक्षेत्रासववास्तुबीजवपनमित्रधनसङ्ग्रहाभिषेकसत्रादि-स्थिरमिष्टमनिष्टमध्वाध्यापनमध्ययनं क्षुरकर्मेति"। तथा च लोके वचनम्—"प्रतिपत्सु न वापयेत्" इति। यद्याचार्येण नवदिवसग्रहणे प्रतिपन्निषिद्धा तदा षष्ठ्या सहास्य को विरोधो येन न निषेधः कृत इति। वयं तत्र ब्रूमः—यत्र क्षौरे कृते अनायुष्यं भवति तन्निषिद्धम्, न शेषम्। तथा च—"क्षौरं न निशि न भुक्ते न पक्षसन्धौ" इत्यनन्त-रोक्तश्लोकस्यानन्तरश्लोकः—

सन्ध्यायामशुभे चन्द्रे विष्ट्यां सोमदिनोदये।
क्षुरकर्म कृतं विन्द्यादनायुष्यकरं नृणाम्।।

नवमदिसवग्रहणेनापि क्षौरदिवसनवमदिवसो निषिद्धः। कथमेतदवगम्यत इति। उच्यते, आचार्येण प्रदेशान्तरेण प्रदर्शितम्—

राज्ञां कार्यं पञ्चमे पञ्चमेऽह्नि क्षौरर्क्षे वा श्मश्रु तस्योदये तु।

त्यक्ता तारा सप्तमी च त्रिपूर्वा यात्राकाले नैव कार्यं न युद्धे।।

तत्रानन्तरोक्तानन्तरश्लोकः—

मासादूर्ध्वमनायुष्यमधः पक्षान्न सम्पदः।

पञ्चमे पञ्चमे वाऽपि राज्ञः क्षौरं प्रशस्यते।।

तथा च वैदिकैः पठ्यते—

पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यम्। आयुष्यं क्षौरपर्यायः। प्रति प्रति आयुष्यं प्रत्यायुष्यम्। पञ्चमे पञ्चमे दिवसे कर्तव्यम्। क्षौरदिवसात् पञ्चमे दिवसे यदि क्षौरं न कृतं ततस्तस्मात् प्रथमदिवसाद् दशमे दिवसे क्षौरं कर्तव्यम्। न नवमदिवसे। अस्मिन्नेवार्थे स्पष्टतरः श्लोकः—

क्षौरं राज्ञः सदा शस्तं पञ्चमे पञ्चमे दिने।

क्षौराहान्नवमे त्वह्नि नेष्टमात्ययिकेष्वपि।।

तथा च गृहप्रवेशादिष्वपि नवमदिवसो निषिद्धः। गृहप्रवेशदिवसान्नवमदिवसे निर्गमनं न कुर्यात्। तन्त्रान्तरे पठ्यते—

निर्गमान्नवमे त्वह्नि प्रवेशं चात्र वर्जयेत्।

शुभनक्षत्रयोगेऽपि प्रवेशाद्वापि निर्गमम्।।इति।

तस्मात् क्षौराहान्नवमेऽह्नि क्षौरं न कर्तव्यमिति स्थितमेतत्।।१३।।

क्षौरकर्म के अन्य विशेष बातों को कहते हैं—

स्नान कराने के पश्चात्, कहीं गमन करने के समय, तेल लगाने के अनन्तर, युद्ध के अवसर पर, आसन के बिना, सन्ध्यासमय, रात्रि समय, शनि-मंगल-रविवार के दिन, रिक्ता तिथि, नौवें दिन तथा विष्टिकरण; इनमें क्षौर करना शुभ नहीं होता है।।१३।।

स्नान करने के पश्चात् क्षौर कर्म हितकारी नहीं होता है। यात्रा के लिये प्रवृत्त व्यक्ति को भी क्षौर नहीं कराना चाहिए तथा अलंकार आदि धारण करने (सुसज्जित होकर) के पश्चात् क्षौर न करे। तैलादि अभ्यङ्ग लगाकर, भोजन करने के पश्चात्, युद्ध के समय, आसन पर बैठे बिना, क्षौर कर्म हितकारक अर्थात् शुभ नहीं होता है। सन्ध्या के समय भी क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये। सन्ध्याकाल का लक्षण पहले ही कहा जा चुका है-

(अध्याय ३० श्लोक १)

अर्द्धास्त सूर्य बिम्ब के बाद आकाश में नक्षत्रगण भली-भाँति नहीं दिखायी देने तक सायंसन्ध्या होती है।

रात्रि के समय, शनिवार, भौमवार और रविवार को क्षौरकर्म न करे। कतिपय आचार्य रविवार का निषेध नहीं करते हैं। रिक्ता तिथि ४, ९, १४, को क्षौर कर्म निषिद्ध है। इनमें क्षौरकर्म नहीं होता है। नौवें दिवस को भी क्षौरकर्म निषिद्ध है। विष्टिकरण में क्षौरकर्म शुभ नहीं होता है। नौवें दिन तथा विष्टि में क्षौरकर्म हेतु कतिपय आचार्य अन्यथा मन्तव्य प्रकट करते हैं। नौवें दिन का ग्रहण अतिशय वर्जित है। चतुर्थी और चतुर्दशी में आवश्यक होने पर क्षौरकर्म किया जा सकता है, परन्तु नवमी तिथि में कथमपि नहीं। जैसाकि नवमी तिथि और मंगलवार विहित नहीं है, इस लोक वचन का उल्लेख किया जाता है। इससे रिक्तातिथि में निषेध वचन कह देने से ही समाधान हो जाता है। महर्षि व्यास ने चतुर्थी आदि तिथियों का निषेध किया है परन्तु नवमी का सामान्यतया निषेध होने पर भी निषिद्ध नहीं माना है। जैसा कि कहते हैं–

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा में ब्रह्मचारी होकर रहना चाहिये। क्षौर कर्म, अभ्यंग, मंजन, दन्तधावन; इन कर्मों को इन पर्वतिथियों में जो करता है, उसके घर लक्ष्मी नहीं रहती है।

यदि आचार्य वराहमिहिर इन सभी का निषेध करते तब रिक्ता तिथि का निर्देश यहाँ पर नहीं होता। नवमी के सम्बन्ध में यही कहना है। तथापि परवर्ती चकार के द्वारा पाठान्तर न नौवें दिन और न भद्रा में यह अभिप्राय है, प्रतिपदा तिथि का नहीं। नौवे दिन को नवाह कहा जाता है। उस नौवें दिन को क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये। जैसाकि अन्य शास्त्रों में इसका निर्देश मिलता है–

रात में तथा भोजन करने पर, दो पक्षों के सन्धिकाल में, जन्मनक्षत्र में, प्रसव-सूतक होने पर, व्रतोपवास में तथा देवकार्य और पितृकार्य के अन्त में क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये।

यहाँ पर रिक्तातिथि का ग्रहण नहीं किया गया है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

प्रतिपदा और षष्ठीतिथि में विवाह, कृषिकर्म, आसव उतारना, वास्तुकर्म, बीजवपन, मित्र एवं धनसंग्रह, अभिषेक, सत्र (यज्ञीय अवधि जो प्राय: १३ से १०० दिन तक होने वाले यज्ञों में पायी जाती है) स्थिर, इष्ट, अनिष्ट, यात्रा, अध्यापन, अध्ययन और क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार लोकवचन भी प्राप्त होता है कि "प्रतिपदातिथि को बीज वपन नहीं करना चाहिये।" यदि आचार्य के द्वारा नवमदिन का ग्रहण कर प्रतिपदा तिथि का निषेध किया गया है, तब षष्ठी तिथि के साथ इसका कैसा विरोध किया गया है। जिससे इसका निषेध नहीं किया गया। इसके लिये हमारा कथन है कि इस तिथि में क्षौर करने से आयु की हानि होती है। उसका निषेध किया गया है। अन्य तिथियों का नहीं। जैसाकि "क्षौरकार्य रात्रि में,

भोजनोपरान्त और पक्षसन्धि में नहीं करना चाहिये।" इस श्लोक के आगे के श्लोक में इस प्रकार कहा गया है–

सन्ध्याकाल में, चन्द्रमा के अशुभ होने पर, भद्रा में, सोमवार के दिन होने वाले क्षौरकर्म करने से प्राणी की आयु का विघात होता है।

नवम दिवस के ग्रहण से भी क्षौर का नवमदिवस निषिद्ध होता है। इसका ज्ञान कैसे होता है? इस सम्बन्ध में कहते हैं। आचार्य ने अन्य स्थलों पर इसको प्रस्तुत किया है–

राजा क्षौरकर्म तथा श्मश्रुकर्तन दिन से पाँचवें-पाँचवें दिन करे। अशुभ तारा, सप्तमीतिथि, तीनों पूर्वानक्षत्र, यात्राकाल तथा युद्ध में भी क्षौरकर्म न करे।

इसके अनन्तर कहा गया श्लोक इस प्रकार है–

एक मास के पश्चात् अनायुष्यकारक, पक्षसन्धि में सम्पत्तिनाश एवं पाँचवें-पाँचवें दिन राजा का क्षौर कर्म शुभ होता है।

जैसा कि वैदिकों द्वारा कहा जाता है–

"पाँचवें और दसवें दिन क्षौरकर्म आयुष्यकारक होता है।" आयुष्यशब्द क्षौर शब्द का पर्यायवाचक है। प्रति-प्रति आयुष्य को प्रत्यायुष्य कहा गया है। पाँचवें-पाँचवें दिन क्षौरकर्म करना चाहिये। क्षौर कर्म सम्पन्न होने के दिन से पाँचवें दिन यदि और किसी कारणवश नहीं किया जा सका तब उस प्रथम क्षौरदिवस से दसवें दिन क्षौर करना चाहिये, न कि नवें दिन। इसी अर्थ को प्रतिपादित करते हुये स्पष्टरूप से कहा गया है–

राजा का क्षौरकर्म पाँचवें-पाँचवें दिन शुभ होता है। कृत क्षौरदिवस से नौवें दिन अत्यावश्यक होने पर भी क्षौर कर्म नहीं करना चाहिये।

इसके साथ ही गृहप्रवेश आदि भी नौवें दिन निषिद्ध होता है। गृह प्रवेश के दिन से नौवें दिन निर्गमन (यात्रा) नहीं करना चाहिये। अन्य शास्त्र में कहा गया है–

निर्गमन से नौवें दिन गृह प्रवेश यहाँ पर निषिद्ध माना गया है।

शुभ नक्षत्र एवं शुभयोग के होने पर भी गृह प्रवेश के पश्चात् नौवें दिन यात्रा (निर्गमन) नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार कृत क्षौरदिवस से नौवे दिन क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये, यह अभिमत स्थिर हो गया।।१३।।

अथ सर्वनक्षत्रेषु क्षुरकर्माह–

नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते च विवाहकाले मृतसूतके च।
बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म भेषु।।१४।।

अब सभी नक्षत्रों में क्षौरकर्म का विचार करते हैं-

राजाज्ञा होने पर, ब्राह्मण की सहमति से, विवाहकाल में, मृतक सूतक होने पर, कारागार से मुक्त होने पर, यज्ञ की दीक्षा में; सभी नक्षत्रों में क्षौरकर्म शुभ होता है॥१४॥

नृपाज्ञया राजाज्ञया। ब्राह्मणानां द्विजानां च सम्मतेऽभिमते। विवाहकाले उद्वाहसमये। मृतसूतके मृतस्य सूतको मृतसूतकस्तस्मिन्। बद्धस्य मोक्षे बन्धनमोक्षे। क्रतुषु यज्ञेषु। दीक्षणासु दीक्षासु। एतेषु कालेषु, सर्वेषु निःशेषेषु भेषु नक्षत्रेषु क्षुरकर्म शस्तं शोभनमित्यर्थः।।१४।।

राजाज्ञा से, ब्राह्मणों अर्थात् द्विजों की सहमति होने पर, विवाहकाल में, मृत्यु के बाद जो मृतसूतक लगने पर, कारागार में निरुद्ध व्यक्ति के मुक्त होने पर, क्रतु अर्थात् यज्ञ में, दीक्षाकाल में; इन सभी अवसरों पर सम्पूर्ण नक्षत्रों में क्षौरकर्म प्रशस्त अर्थात् शुभ होता है॥१४॥

अथ संस्कारनक्षत्राण्याह-

सावित्रपौष्णानिलमैत्रतिष्यत्वाष्ट्रे तथा चोडुगणाधिपर्क्षे।
संस्कारदीक्षाव्रतमेखलादि कुर्याद् गुरौ शुक्रबुधेन्दुयुक्ते।।१५।।

अब संस्कार के नक्षत्रों को कहते हैं-

हस्त, रेवती, स्वाती, अनुराधा, पुष्य, चित्रा, मृगशिरा; इन नक्षत्रों में तथा शुक्र, बुध, चन्द्र, गुरु; इन वारों में संस्कार, दीक्षा, उपनयन, मौञ्जी आदि कार्यों को करना चाहिये॥१५॥

सावित्रं हस्तः। पौष्णं रेवती। अनिलं स्वातिः। मैत्रमनुराधा। तिष्यः पुष्यः। त्वाष्ट्रं चित्रा। उडुगणाधिपर्क्षे मृगशिरसि। उडुगणो नक्षत्रसमूहस्तस्याधिपश्चन्द्रस्तद्दैवत्ये। एत- स्मिन्नक्षत्रगणे किं कुर्यादित्याह-संस्कारो नामकरणादि। दीक्षा यज्ञदीक्षा। व्रतं व्रतबन्धः। मेखला मौञ्जी। आदिग्रहणात् क्षुरकर्मविद्याग्रहणम्। गुरौ जीवे। कैर्ग्रहैर्युक्त इति शुक्रेण, बुधेन, इन्दुना चन्द्रेण च युक्ते। एतेषां दिनेष्वित्यर्थः।।१५।।

सावित्र अर्थात् हस्त नक्षत्र, पौष्ण अर्थात् रेवती, अनिल अर्थात् स्वाती, मैत्र अर्थात् अनुराधा, तिष्य अर्थात् पुष्य, त्वाष्ट्र अर्थात् चित्रा, नक्षत्राधिपति चन्द्रमा का नक्षत्र मृगशिरा। उडुगण अर्थात् नक्षत्रसमूह उसका अधिपति चन्द्रमा जिसका देवता है, वह नक्षत्र (मृगशिरा)। इन नक्षत्रों में क्या करना चाहिये? इसका समाधान करते हुये कहते हैं-नामकरण आदि संस्कारों को करना चाहिये। दीक्षा अर्थात् यज्ञदीक्षा, व्रत अर्थात् उपनयन मौञ्जी-बन्धन, आदि शब्द से क्षौरकर्म और विद्याग्रहण का भी विचार करना चाहिये। गुरु अर्थात् जीवग्रह के साथ शुक्र, बुध और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा से युक्त होने पर। अर्थात् इन शुभग्रहों के शुभदिन में उक्त संस्कारों को करना

चाहिये॥१५॥

अधुना सर्वकर्मणां लग्नशुद्धिमाह–

शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैः पापैस्त्रिषष्ठायगै-
र्लग्ने केन्द्रगतेऽथवा सुरगुरौ दैत्येन्द्रपूज्येऽपि वा।
सर्वारम्भफलप्रसिद्धिरुदये राशौ च कर्तुः शुभे
सग्राम्यस्थिरभोदये च भवनं कार्यं प्रवेशोऽपि वा॥१६॥

सभी कर्मों हेतु लग्न शुद्धि का विचार करते हैं–

लग्न से द्वादश, केन्द्र तथा अष्टम गृह में शुभग्रह हों तथा तृतीय, षष्ठ और एकादश में पाप ग्रह हों लग्न या केन्द्र में बृहस्पति अथवा शुक्र हो तो सब कार्यों की सिद्धि होती है। तथा कर्मकर्ता की जन्म राशि, ग्राम्यराशि अथवा स्थिर राशि लग्न में हो; तो गृह निर्माण और गृह प्रवेश शुभ होता है॥१६॥

शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैरिति। द्वादशे प्रसिद्धम्। केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि। नैधनगृहमष्टमस्थानम्। एतैः शुद्धैः सौम्यग्रहाधिष्ठितैः पापग्रहवियुतैः। तथा पापैः पापग्रहैरादित्याङ्गारकशनैश्चरैस्त्रिषष्ठायगैः तृतीयषष्ठेकादशस्थानस्थितैः। सुरगुरुर्जीवः, तस्मिन् लग्ने स्थितेऽथवा केन्द्रगते; वा दैत्यन्द्रपूज्येऽपि दैत्यानामिन्द्रा दैत्येन्द्रा दैत्यप्रधानाः, तेषां पूज्यो गुरुः शुक्रः, तस्मिन् लग्नगते केन्द्रगते वा। एवंविध उदये लग्ने सर्वारम्भाणां सर्वकार्यप्रारम्भाणां फलेऽभिमते प्रसिद्धिर्भवति। तथा च कर्तुः कर्मकर्तृ राशौ लग्ने शुभे जन्मलग्नस्य राशेः सर्वानुकूल्ये अनष्टमद्वादशे। तथा सग्राम्यस्थिरभोदये, ग्राम्या मेषमिथुन-कन्यातुलधन्विकुम्भाः स्थिरराशयः, ते च सग्राम्याः। यतः सिंहवृश्चिकौ स्थिरावपि न ग्राम्यौ। एतेषु यथोक्तेषु सग्राम्यस्थिरभेषु राशिषूदयं प्राप्तेषु भवनं गृहं कार्यं विधेयम्। प्रवेशोऽपि वा गृहप्रवेशोऽपि वा कार्यः। तथा च यवनेश्वरः–

लग्नेषु जीवैन्दवभार्गवेषु पश्यत्सु चैतेषु गृहर्क्षमंशम्।
राशावथो वा विचरे गृहस्थे गृहांशयोर्वा भृगुनन्दनेन्द्वोः॥
जलाशये वा गृहमागतेंऽशे गृहे स्वनाथाश्रितलक्षिते वा।
चन्द्रे शुभस्थे च शुभानि विन्द्याद् वास्तुप्रवेशादिनिवेशनानि। इति॥१६॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्रकर्मगुणो
नाम सप्तनवतितमोध्यायः॥९७॥

द्वादशवाँ भाव तथा केन्द्र १, ४, ७, १० स्थान मृत्युगृह अर्थात् अष्टम स्थान; इनके शुद्ध होने पर अर्थात् शुभग्रह से युक्त तथा पापग्रह से रहित होने पर। पापग्रह अर्थात् सूर्य, मंगल और शनि ३, ६, ११ स्थानों में अवस्थित हो; तब सुर गुरु अर्थात् बृहस्पति लग्न में स्थित हो अथवा केन्द्रस्थ हो अथवा दैत्यों के इन्द्र अर्थात्

दैत्यों में प्रधान (इन्द्र) का गुरु अर्थात् शुक्र, यह जब लग्नस्थ अथवा केन्द्रस्थ हो। इस प्रकार के उदय लग्न में सर्वारम्भ अर्थात् सभी कार्यों का प्रारम्भ करने पर अभिमत फल की प्राप्ति होती है। कर्ता अर्थात् उस कर्म को करने वाले की राशि अथवा जन्मलग्न की राशि सर्वथा अनुकूल हो तथा अष्टम और द्वादश स्थान ग्रह रहित हों। तथा कर्मकर्ता की जन्मराशि, ग्राम्यराशि अथवा स्थिरराशि का लग्न हो। मेष-मिथुन-कन्या-तुला और कुम्भ; ये स्थिर एवं ग्राम्य राशियाँ हैं। सिंह और वृश्चिक राशि स्थिर हैं परन्तु ग्राम्य नहीं हैं। इन कथित ग्राम्य सहित स्थिर राशियों के उदित होने पर गृह कार्य करना चाहिये। इनमें प्रवेश अर्थात् गृह प्रवेश भी करना चाहिये। जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

लग्नराशि गुरु-चन्द्र तथा शुक्र से दृष्ट हो तथा इनकी राशि, नक्षत्र एवं नवमांश हो। वा ये चरराशि में न हों, गृहपति तथा गृह के नवमांश में शुक्र और चन्द्रमा हो तो जलाशयकर्म यदि गृह के नवमांश में उसका स्वामी हो, अथवा उससे दृष्ट हो, चन्द्रमा शुभ हो; तब वास्तुप्रवेश-वास्तु स्थापन आदि कार्य करना चाहिये।।१६।।

श्री भटोत्पलविरचित संहिताविवृति में नक्षत्रकर्मगुणाध्याय नामक सत्तानबें अध्याय की हिन्दी व्याख्यापूर्ण हुई।।९७।।

❑❑

अथ तिथिकर्मगुणाध्यायो व्याख्यायते

कमलजविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुजगाः।
धर्मेशसवितृमन्मथकलयो विश्वे च तिथिपतयः।।१।।
पितरोऽमावस्यायां संज्ञासदृशाश्च तैः क्रियाः कार्याः।
नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णा च तास्त्रिविधाः।।२।।
यत् कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत् कार्यम्।
करणमुहूर्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतासदृशम्।।३।।

तिथियों के स्वामी तथा नन्दादि विचार–

प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी क्रमशः १ ब्रह्मा २ विधाता ३ विष्णु ४ यम ५ चन्द्र ६ कार्तिकेय ७ इन्द्र ८ वसु ९ सर्प १० धर्म ११ रुद्र आदित्य १३ कामदेव १४ कलि १५ विश्वेदेव; ये शुक्लपक्ष के स्वामी होते हैं। कृष्णपक्ष की तिथियों में भी चतुर्दशी पर्यन्त ये ही अधिपति होते हैं। अमावस्या के स्वामी पितर होते हैं। इन तिथियों में संज्ञातुल्य कार्य करने चाहिये। नन्दा, भद्रा, विजया, रिक्ता, पूर्णा; ये तिथियाँ तीन प्रकार की होती हैं। जिस नक्षत्र में जो कार्य बतलाये गये हैं, वह उस नक्षत्र के देवता की तिथि में करना चाहिये। जिस नक्षत्र में जो कार्य कहे गये हैं,

उनको उस नक्षत्र के देवता के करण में भी करना चाहिये॥१-३॥

कमलजेति। कमलजादयः प्रतिपदादीनां तिथीनां पतयः कमलजो ब्रह्मा प्रतिपद्यधिपतिः। विधाता द्वितीयस्याम्। हरिर्विष्णुस्तृतीयस्याम्। यमश्चतुर्थ्याम्। शशाङ्कश्चन्द्रमाः पञ्चम्याम्। षड्वक्त्रः कुमारः षष्ठ्याम्। शक्र इन्द्रः सप्तम्याम्। वसवोऽष्टम्याम्। भुजगः सर्पो नवम्याम्। धर्मो दशम्याम्। ईशो रुद्र एकादश्याम्। सविता आदित्यो द्वादश्याम्। मन्मथः कामस्त्रयोदश्याम्। कलिश्चतुर्दश्याम्। विश्वेदेवाः पञ्चदश्यां पौर्णमास्यामित्यर्थः। एवं शुक्लपक्षे।।

कृष्णपक्षे एतास्वेव तिथिषु एत एवाधिपतयः, किन्तु पितरोऽमावस्यायाम्। अमावास्यायां पितरः। तैस्तिथिस्वामिभिः संज्ञासदृशा नामतुल्याः क्रियाः कार्याः। यथा प्रतिपदि ब्रह्मकर्म विवाहादि। द्वितीयस्यां भवननिवेशादि। तृतीयस्यां चौलकरणदमनादि। चतुर्थ्यां शत्रुमथनादि। पञ्चम्यां वमनौषधिपौष्टिकादि। षष्ठ्यां मित्रसंग्रहाभिषेकादि। सप्तम्यां शकटयानक्रियाध्वगमनादि। अष्टम्यामायुधग्रहणदुर्गोपकरणादि। नवम्यां परविघातमारणादि। दशम्यां धर्मब्राह्मणतर्पणादि। एकादश्यां स्थिरचरसौम्यमृदुकर्मादि। द्वादश्यामग्न्याधानादि। त्रयोदश्यां मित्रकरणकामानुसेवादि। चतुर्दश्यां विषरसप्रयोगादि। पञ्चदश्यां पितृतर्पणादि। तथा च पराशरः—

"तिथयस्तु नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा मासा मित्रा महाबलोग्रसेना सुधन्वा सुनन्दा यमा जयोग्रा सिद्धिरिति। तासु कर्माणि। प्रतिपत्षष्ठ्योर्विवाहक्षेत्रासव-वास्तुबीजवपनमित्रधनसंग्रहाभिषेकसत्रादि स्थिरमिष्टमनिष्टमध्वाध्यापनमध्ययनं क्षुरकर्मेति। द्वितीयसमप्तमीत्रयोदशीषु पत्युद्वहनभवनशयनशकटयानक्रियाध्वगमनाम्बरालङ्कार-धारणशिल्पभैषज्यस्वत्त्ययनपौष्टिकव्रतायुष्याणि। विशेषतो मित्रायां मित्रकर्मनृपतिशासन-सन्धानानि। तृतीयायां बलकरणदमनानि। प्रतिपदि द्वितीयायां चतुर्थ्यामपि विषमथनदमनबन्धानि चारभेदकवाटाभियोगाग्निविषसम्प्रयोगक्रियोग्रोग्रसेनयोश्च। पञ्चमीदशम्येकादशीषु भवनशयन-स्वस्त्ययनौषधपौषिटकसुभगाध्वगमनकेदारव्यवहार-भूषणकन्यावरणोद्वहनस्थिरचरसौम्यमृदुकर्माणि। एकादश्यां स्त्रीभृत्यनिग्रहा विशेषेण। अष्टम्यां बलोपकरणदर्शनायुधग्रहणदुर्गोपकरणावरणपरिखाभिखननकेदारव्यवहारभूषण-कन्यावरणोद्वहनस्थिरचरसौम्यगुप्तिकरणानि। द्वादश्यां स्थिरचरकर्माग्न्याधानयज्ञोपन-यननिधि-निधानपाणिग्रहणानि। पञ्चदश्यां पितृ यज्ञदेवगोगुरुवल्युपवासेष्टिक्रियाः प्रशस्यन्ते। अपि च, ब्रह्मामरमन्त्रिजनार्दनयमसोमकुमारमुनिवसुपिशाचीधर्मरुद्ररविकामरुद्रपितर-स्तिथिदेवाः।"

नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णा चेति। ताश्च तिथयो नन्दाद्यास्त्रिविधास्त्रिप्रकाराः, यथा—प्रतिपन्नन्दा, द्वितीया भद्रा, तृतीया विजया, चतुर्थी रिक्ता, पञ्चमी पूर्णा। एवं षष्ठ्याद्या एकादशाद्याश्च।

यत् कार्यमिति। नक्षत्रे यत् कार्यमुक्तं तस्यां या देवता सा यस्यां तिथौ देवता भवति तस्यामपि तदेव कर्म कार्यम्। यथा–रोहिण्या यत्कार्यमुक्तं तस्या या देवता ब्रह्मा तद्दैवत्यायां प्रतिपदि तदेव कार्यं कर्तव्यम्। एवं यदभिजिति तद्द्वितीयस्याम्। श्रवणे तृतीयस्याम्। भरण्यां चतुर्थ्याम्। मृगशिरशि पञ्चम्याम्। कृत्तिकासु षष्ठ्याम्। ज्येष्ठासु सप्तम्याम्। हस्ते द्वादश्याम्। पूर्वफल्गुन्यां त्रयोदश्याम्। श्लेषायां चतुर्दश्याम्। उत्तराषाढायां पञ्चदश्याम्। मघास्वमावस्यायामिति। तथा च गर्गः–

नन्दा प्रतिपदित्युक्ता प्रशश्ता ध्रुवकर्मसु।
ज्ञानस्य च समारम्भे प्रवासे च विगर्हिता।।
नाद्यादत्र तपः कुर्यात् पुष्टिसौभाग्यमेव च।
जन्म चात्रोत्तमं विन्द्यात् स्वयंभूर्देवता यतः।।
भद्रेत्युक्ता द्वितीया तु शिल्पिव्यायामिनां हिता।
आरम्भे भेषजानां च प्रवासे च प्रवासिनाम्।।
आवाहांश्च विवाहांश्च वास्तुक्षेत्रगृहाणि च।
पुष्टिकर्मकरश्रेष्ठा देवता च बृहस्पतिः।।
बलेत्युक्ता तृतीया तु बलसम्पच्च कारयेत्।
गोऽश्वकुञ्जरभृत्यानां दमनं मानसानि च।।
कुर्यादासवकर्माणि बीजान्यपि च वापयेत्।
बलकर्मारभेतैव विष्णुं विन्द्याच्च दैवतम्।।
रिक्ता प्रोक्ता चतुर्थी च क्षुद्रकर्म प्रयोजयेत्।
गोग्रहं दारुणं कुर्यात् कूटशास्त्रं समारभेत्।।
अत्र सम्मारणं कुर्यादभिघाताश्रयाणि च।
ध्रुवसेनाबधं कुर्याद्यमं विन्द्याच्च दैवतम्।।
पूर्णा च पञ्चमी प्रोक्ता प्रशस्ता ध्रुवकर्मणि।
नवान्नाग्रहणानां च शयनासनवेश्मनाम्।
जन्मक्षेत्रविभूषार्था व्यवहारौषधिक्रिया।
प्रशान्तं पौष्टिकं कर्म सोमं विन्द्याच्च दैवतम्।
षष्ठी मासा तिथिर्नाम प्रशस्ता ध्रुवकर्मसु।
क्षेत्रारम्भं गृहं कुर्याद् देवतायतनानि च।।
कारयेत् संक्रमद्वारगोपुराद्यालयानि च।
आधानं च न कर्तव्यं कुमारश्चात्र दैवतम्।।

सप्तमी मित्रनामा तु मित्रकार्याध्रुवाणि च।
कुर्याद्राज्ञो ध्वजं छत्रमासनं शयनानि च।।
रत्नानि मणिमुक्तादिवस्त्र्याण्याभरणानि च।
कारयेद् भूषणाद्यांश्च देवाः सप्तर्षयस्तथा।।
महाबलाष्टमी चैव कुर्याद् बालनिदर्शनम्।
अधिकारान् प्रयुञ्जीत यन्त्राकारधनूंषि च।।
कुर्याच्च नगरे गुप्तिं सुरङ्गान् परिखास्तथा।
हस्त्यश्वांश्च प्रयुञ्जीत वसवश्चात्र दैवतम्।
उग्रसेना तु नवमी बन्धने बधबन्धने।
अमित्रदमनार्थे च हिता शत्रुवधाय च।।
अध्वानं च न गच्छेत् प्रोष्यं न प्रविशेद् गृहम्।
संहरेत विषादीनि रुद्राणी चात्र दैवतम्।
सुधन्वा दशमीं प्राह ध्रुवं विन्द्याद्यशस्करम्।
कूपान् खनेन्नदीश्चैव कूपं पुष्करणीयुतम्।।
आरामान् नगरीश्चैव क्षेत्राणि च गृहाणि च।
पुण्यशालां सभां कुर्याद्धर्म विन्द्याच्च दैवतम्।।
सुनन्दैकादशीमाह ध्रुवं विन्द्यान्महानसम्।
निवेशनगरग्राम-यज्ञविप्रसभास्तथा।।
स्त्रीषु चोग्रं प्रवर्तेत दासकर्मकरेषु च।
गूढार्थं न प्रयुञ्जीत कामशत्रुश्च देवता।।
द्वादशीं तु यमामाह ध्रुवं विन्द्याद्यशस्करम्।
मङ्गल्यान्यत्र कुर्वीत चूडोपनयनानि च।।
कोष्ठागाराणि कुर्वीत निधानं च निधापयेत्।
ऋणं चात्र न गृह्णीयादादित्यश्चात्र देवता।।
जया त्रयोदशीमाह कर्तव्यं कर्म शोभनम्।
वस्त्रमाल्यमलङ्कारविप्राण्याभरणानि च।।
सौभाग्यकरणं स्त्रीणां कन्यावरणमेव च।
मुण्डनं युग्मवसनं कामं विन्द्याच्च देवताम्।।
उग्रां चतुर्दशीं विन्द्याद्दारुणान्यत्र कारयेत्।
बन्धनं रोधनं चैव घातनं च विशेषतः।।
पूर्वाभिहननं चैव दारुणं बधघातनम्।
ग्रामसेनावधं कुर्याद् विन्द्याद्रुद्रोऽत्र देवताम्।।

अमावस्या तु सिद्धार्था पितृयज्ञोऽत्र शस्यते।
देवकार्याणि कुर्वीत गोकुलं तु निवेशयेत्।।
पुरोहिताय वरणं कुर्याद् यज्ञक्रियां तथा।
बलिं चैवोपहारांश्च पितरश्चात्र देवता।।
कल्याणी पौर्णमासी तु देवकर्माधिकारिणी।
विप्रकार्येऽग्निकार्ये च गवां घोषे निवेशयेत्।।
राज्ञः पुरोहितं कुर्याद् यज्ञानि विविधानि च।
शुभं कर्म च कर्तव्यं सोमं विन्द्याच्च देवताम्।।इति।

करणमुहूर्त्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतासदृशं कार्यं सिद्धिकरम्। येन नक्षत्रेण यत् कार्यमभिहितं तस्य नक्षत्रस्य या देवता सैव यस्य करणस्य तस्मिंस्तत् कार्यम्। यथा ज्येष्ठायां यत् कार्यमभिहितं तद्बवेऽपि कर्तव्यम्। यतस्तस्य देवता शक्रः। एवं रोहिण्यां वालवस्य। अनुराधायां कौवलस्य। उत्तरफल्गुन्यां तैतिलस्य। गरस्य ज्येष्ठायाम्। श्रवणे वणिजः। विष्टेर्भरण्याम्। श्लेषायां शकुनेः। रोहिण्यां चतुष्पदस्य। नागस्य पुनराश्लेषायाम्। स्वातौ किंस्तुघ्नस्येति। तथा च पराशरः—

"शकुनौ शकुनिग्रहणप्रहरणभृत्ययोद्धृयुद्धोपकरणक्रियाः सर्वमुग्रं कुर्यात्। चतुष्पदे नृपतिविजयाभिषेकपितृदेवधर्मक्रियाचतुष्पददानानि। नागे सलिलोपकरणावेशनप्रवेशागदगदौषधधारणानि। किंस्तुघ्ने सुरगुरुतीर्थव्रतदीक्षाभिगमनस्नपनानि। ववे मणिकनकरजतालङ्कारवास्तुक्रियाभिप्रायाणासवकुसुमगन्धाधिकाराणि। वालवे व्रतोपवासनियमसत्रयज्ञद्विजगुरुसेवनानि। कौलवे पुरक्षेत्रलेख्यगन्धगान्धर्वपितृदेवधर्मक्रियाः। तैतिले निष्कर्मसाहसद्यूतयुद्धाभिषेकमङ्गलव्रतदीक्षागृहप्रवेशाः। गरे दारूद्यानवनाधिकारिकोपभोगा वैवाहिकादिकरणानि। वणिजि वणिक्प्रयोगाध्ययनशिल्पसंबन्धार्थाभिवादनवलिकर्मविधिभिर्यद्यथारभ्यते क्रिया काचित्। विष्ट्यां न किमपि समृद्धिमेति बीजमिव यथोषरप्राप्तम्" इति।

एवं मुहूर्तेष्वित्यपि। यस्मिन् नक्षत्रे यत् कार्यमुक्तं तस्य नक्षत्रस्य या देवता तस्या यो मुहूर्तस्तस्मिंस्तदेव कार्यं कर्तव्यम्। यथाऽऽर्द्रायां यत् कार्यं क्रियते तच्छिवे मुहूर्तेऽपि कार्यम्। यतस्तयोरेका देवता रुद्रः। एवं श्लेषायां भुजगे। अनुराधायां मित्रे। मघायां पितरि। धनिष्ठायां वसौ। पूर्वाषाढायां जले। उत्तराषाढायां विश्वे। अभिजिति विरञ्चौ। रोहिण्यां पङ्कजप्रभवे। विशाखायामिन्द्राग्नौ। मूले नैर्ऋते। शतभिषजि वारुणे। उत्तरफल्गुन्यामर्यम्णि। पूर्वफल्गुन्यां भाग्ये। पूर्वभद्रपदायामजैकपादे। उत्तरभद्रपदायामहिर्बुध्न्ये। रेवत्यां पूषणि। अश्विन्यां दस्रे। भरण्यामन्तके। कृत्तिकायामाग्नेये। मृगशिरसीन्दौ। पुनर्वसौ अदितौ। पुष्ये गुरौ। श्रवणे हरौ। हस्ते रवौ। चित्रायां त्वष्टरि। स्वातावनिलाख्ये। उक्तं च—

---

१. द्रष्टव्यमस्य ग्रन्थस्य अ. ४२ श्लोकः१२ विवृतौ इदं वचनं कुत्रचित् पाठान्तररूपम्।

[१]शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरञ्चिपङ्कजप्रभवाः।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि।।
रुद्राजाहिर्बुध्न्याः पूषा दस्रान्तकाग्निधातारः।
इन्द्वदितिगुरुहरिरवित्वष्ट्रनिलाख्याः क्षणा रात्रौ।
अह्नः पञ्चदशोंऽशो रात्रेश्चैवं मुहूर्त इति।
स च विज्ञेयस्तज्ज्ञैश्छायायन्त्राम्बुभिर्युक्त्या।।
नक्षत्रतत्क्षणानां परिघातादीश्वरैः समं चिन्त्यम्।
फलमपि तदेव दृष्टं गर्गाद्यपराशरश्लोकैः।
अहोरात्रं च सम्पूर्णं चन्द्रनक्षत्रयोजितम्।
तन्नक्षत्रमुहूर्ताश्च समकर्मगुणाः स्मृताः।।इति।।

तथा च पराशरः-

"रौद्रमितमैत्रसाधनसारभटात्मसहवैश्वदेवाभिजिद्रोहिणीन्द्रबलजयपित्र्यभाग्यवरुणनैर्ऋताग्नेययाम्यगन्धर्वध्यानपदराक्षसेन्द्राग्नेयप्राजापत्याश्विनेन्द्रब्रह्मगुरुसावित्र्यवैष्णवपौष्णाः। तेषां यत्समानदैवतनक्षत्रं तन्नक्षत्रवत् कर्माण्यारभेत। विशेषोपदेशमुपदेश्यामः-तत्र श्वेतमैत्रात्मसहरोहिणीषु रोहिणीव सर्वं साधनम् इष्टिव्रताधानाध्ययनानि। सारभटे अभिचारवधवादान्। अभिजितिसर्वकर्माणि। बले नृपतिबलसमारम्भाः। जयेऽन्नप्रमाणम्। गन्धर्वे गान्धर्वरतिविवाहाः। ध्यानपदेऽभिषेकभूषणमङ्गल्यानि। सन्ध्ययोस्तु पूर्वाऽग्निदेवता पश्चिमा रौद्री तयोर्न किञ्चित् कर्मारम्भो नान्यत्र नियमात् प्रयतमुपतिष्ठन्नोपासीत। पश्चिमायां विशेषतश्चाग्नौ न प्रविशेन्नाश्नीयान्न मैथुनमभिगच्छेत्"।।१-३।।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा आदि तिथियों के कमलज आदि देवता स्वामी होते हैं। प्रतिपदातिथि के कमलज अर्थात् ब्रह्मा अधिपति हैं। द्वितीया के विधाता, तृतीया के हरि अर्थात् विष्णु, चतुर्थी के यमराज, पञ्चमी के शशांक अर्थात् चन्द्रमा, षष्ठी के कुमार कार्तिकेय, सप्तमी के शक्र अर्थात् इन्द्र, अष्टमी के वसु नवमी के भुजग अर्थात् सर्प, दशमी के धर्मराज, एकादशी के ईश अर्थात् रुद्र, द्वादशी के सविता अर्थात् आदित्य (सूर्य), त्रयोदशी के मन्मथ अर्थात् कामदेव, चतुर्दशी के कलिदेव तथा पञ्चदशीतिथि अर्थात् पूर्णिमा के विश्वेदेव अधिपति हैं।

कृष्णपक्ष की तिथियों के भी ये ही स्वामी होते हैं, किन्तु अमावस्या तिथि के स्वामी पितृगण होते हैं। इन तिथियों में इन तिथि स्वामियों के नामानुसार विहित कार्यों को करना चाहिये। जैसे कि प्रतिपदा में ब्रह्मा का कर्म विवाह आदि करना चाहिये। द्वितीया में गृहारम्भ आदि, तृतीया में चूडाकरण तथा पशुदमन आदि, चतुर्थी तिथि में शत्रुदमन आदि, पञ्चमी में वमनकारी औषधि एवं पौष्टिकादि कर्म, षष्ठी में

मित्रसंग्रह तथा अभिषेक आदि, सप्तमी में शकट, यान क्रिया (गाड़ी से सम्बन्धित), यात्रा आदि, अष्टमी में शस्त्र संग्रह तथा दुर्ग से सम्बन्धित संसाधन आदि, नवमी में शत्रु विघात एवं मारण, दशमी में धार्मिक कार्य एवं ब्राह्मण भोजनादि, एकादशी में स्थिर-चर-सौम्य-मृदु (कोमल) कर्म, द्वादशी में अग्न्याधान एवं अग्नि सम्बन्धी कार्य, त्रयोदशी में मैत्रीकार्य एवं कामोपभोग, चतुर्दशी में विष एवं रासायनिक प्रयोग, पूर्णिमा में पितृतर्पण आदि। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

मास में नन्दा भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा तिथियाँ होती हैं। मित्रा-महाबला-उग्रसेना-सुधन्वा-सुनन्दा-यमा-जया-उग्रा तथा सिद्धि संज्ञक मास होते हैं। इन तिथियों में विहित कार्यों को कहते हैं। प्रतिपदा एवं षष्ठीतिथि में विवाह, कृषि, आसव, वास्तु, बीजवपन, मित्रकार्य, धनसंग्रह, राज्याभिषेक, यज्ञादि स्थिर कर्म, स्थिर अथवा अनिष्ट कर्म, यात्रा, अध्ययन-अध्यापन तथा क्षौर कर्म करना चाहिये। द्वितीया, सप्तमी एवं त्रयोदशी तिथियों में पाणिग्रहण, भवन, शयन, शकटादि से यात्रा क्रिया मार्ग गमन, वस्त्रालंकार धारण, शिल्पकर्म, चिकित्सा कर्म, शान्तिकर्म, पौष्टिककर्म, व्रतारम्भ एवं आयुष्य वृद्धि के कार्यों को करना चाहिये। विशेषतया मित्र अर्थात् अनुराधानक्षत्र मे मित्रकर्म, राज्य शासन, लक्ष्यसन्धान आदि कर्म शुभ होते हैं। तृतीयातिथि में शौर्य प्रदर्शन एवं शत्रुदमन आदि कार्य, प्रतिपदाद्वितीया और चतुर्थीतिथियों में विषकर्म, शत्रुदमन और दुष्टबन्धन, गुप्तचर, फूट डालना, दरवाजा लगाना, किसी पर अभियोग लगाना, अग्नि और विष का प्रयोग, उग्रक्रिया और सैनिकों में उग्रता लाना। पञ्चमी-दशमी एवं एकादशी तिथियों में भवन, शयन, शान्तिकर्म, औषधिकर्म, पौष्टिककर्म, सौभाग्यकर्म, मार्गगमन, कृषिकर्म, आभूषणधारण, कन्यावरण, विवाह तथा स्थिर-चर-सौम्य एवं मृदु कर्मों को करना चाहिये। एकादशी तिथि को विशेषरूप से स्त्री एवं सेवक का नियन्त्रण करना चाहिये। अष्टमी में शौर्य सामग्रियों का प्रदर्शन, शस्त्रग्रहण, दुर्ग सामग्री, आच्छादन, परिखा अर्थात् खाई का निर्माण, कृषिकर्म, अर्थ व्यापार, आभूषण, कन्यावरण स्थिर-चर-सौम्य कार्यों के साथ ही गोपनीय कार्यों को करना चाहिये। द्वादशी तिथि में स्थिर एवं चर कर्म अग्न्याधान, यज्ञ, उपनयन, धन-सम्पत्ति और पाणिग्रहण कर्म विहित हैं। पूर्णिमा तिथि में पितृ कर्म, यज्ञ, देव, पशु, गुरु, लतारोपण, उपवास, यागकर्म प्रशस्त होते हैं। तिथियों के क्रमशः देवता कहे गये हैं–ब्रह्मा, गुरु, जनार्दन, यम, चन्द्रमा, कुमार कार्तिकेय, मुनि, वसु, पिशाची, धर्म, रुद्र, सूर्य, काम, रुद्र तथा पितृगण।

ये तिथियाँ नन्दा आदि के भेद से तीन प्रकार की होती हैं। अर्थात् नन्दादि में तीन-तीन तिथियाँ होती हैं। जैसाकि प्रतिपदा नन्दा, द्वितीया भद्रा, तृतीया विजया, चतुर्थी रिक्ता, पञ्चमी पूर्णातिथि होती है। इसी प्रकार षष्ठी एवं एकादशी को

नन्दासंज्ञक समझना चाहिये।

नक्षत्रों में जो करणीय कार्य कहे गये हैं। इनके जो देवता हैं, वे जिस तिथि से सम्बन्धित हों, उसमें उन कार्यों को करना चाहिये। यथा-रोहिणी नक्षत्र में जो कार्य कहे गये हैं। उस नक्षत्र के देवता ब्रह्मा होते हैं। उस देवता से सम्बन्धित तिथि प्रतिपदा में वह कार्य करना चाहिये। इसी प्रकार अभिजित् नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है। वह द्वितीयातिथि में, श्रवणनक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह तृतीया तिथि में, श्रवणनक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह तृतीयातिथि में, भरणी में जो कार्य कहा गया है वह चतुर्थी तिथि में, मृगशिरानक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह पञ्चमी तिथि में, कृत्तिका नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह षष्ठी तिथि में, ज्येष्ठा नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह सप्तमी तिथि में, हस्तनक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह द्वादशी में, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह त्रयोदशी तिथि में, आश्लेषानक्षत्र जो कार्य कहा गया है वह चतुर्दशी तिथि में, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह चतुर्दशी तिथि में उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह पञ्चदशी (पूर्णिमा) तिथि में तथा मघा नक्षत्र में जो कार्य कहा गया है वह अमावस्या तिथि में करना चाहिए। जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है–

प्रतिपदा तिथि की नन्दासंज्ञा होती है। इसमें ध्रुवसंज्ञक कर्म, ज्ञान का आरम्भ एवं प्रवास करना निषिद्ध है। इसमें भोजन नहीं करना चाहिये, तप, पौष्टिक एवं सौभाग्यकारी कर्म करना चाहिये। इसमें जन्म शुभ कहा गया है, क्योंकि इसी दिन स्वयं-भू देवता का जन्म हुआ था। द्वितीया तिथि की भद्रा संज्ञा होती है। इसमें शिल्पियों एवं व्यायाम करने वालों का कल्याण होता है। औषधि एवं प्रवास का आरम्भ करना, आह्वान, विवाह, वास्तु, खेत तथा गृह सम्बन्धी कार्य, पौष्टिक, दास, देवता तथा गुरु से सम्बन्धित कृत्य करना श्रेष्ठ होता है। तृतीयातिथि बलवती कही गयी है। इसमें बलसम्वर्धन का कार्य करना चाहिये। इसमें वृष-अश्व और कुञ्जर आदि पशुओं का दमन, और मानसिक कार्य करे। आसव कर्म, बीज वपन, शक्ति सम्वर्धन का आरम्भ करे। तृतीय तिथि के देवता विष्णु हैं। चतुर्थी तिथि को रिक्ता कहा जाता है। इसमें क्षुद्र अर्थात् तुच्छ कर्म करना चाहिये। पशुओं को अधीन करना, कठोर कार्य और कूटनीति का आरम्भ करे। इसमें मारण, अभिघात, अपने अधीन करना, स्थिर सेना का संहार करना चाहिये। इस तिथि के यमदेवता अधिपति हैं। पञ्चमी तिथि को पूर्णा कहते हैं। यह स्थिर कार्यों के लिये प्रशस्त है। इसमें नूतन अन्न का ग्रहण, शयन-आसन-गृह-जातकर्म-कृषिकर्म-अलंकरण-धन व्यवहार-औषधि कर्म तथा शान्तिकर्म और पौष्टिक कर्म करे। सोम अर्थात् चन्द्रमा इसके देवता होते हैं। षष्ठी तिथि की मासा संज्ञा है, जो स्थिर कर्म में प्रशस्त होती है। इसमें कृषि कार्य का आरम्भ, गृह-कार्य,

देवालय से सम्बन्धित कार्य, पराक्रम, द्वार, गोपुर आदि के कार्य करना चाहिये। इसमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये। कुमार कार्तिकेय इसके देवता होते हैं। सप्तमी तिथि मित्र संज्ञक है। इसमें मित्रता के कार्य, स्थिर कार्य, राजकार्य, ध्वज-छत्र-आसन-शयन-रत्न-मणि-मुक्ता-वस्त्र-अलंकार तथा आभूषण आदि कार्यों को करना चाहिये। इसके देवता सप्तर्षिगण होते हैं। अष्टमीतिथि महाबला होती है। इसमें बच्चों की देखरेख, अपने अधिकार का प्रयोग, यन्त्र-निर्माण एवं धनुष की संरचना, नगर में गुप्त सुरंग एवं खाई खोदना, हाथी और घोड़े का प्रयोग करना। इसके देवता वसु होते हैं। नवमी तिथि उग्रसेना संज्ञक है। इसमें बाँधना तथा शत्रुसंहार के लिए प्रशस्त है। इस तिथि में यात्रा नहीं करनी चाहिये। न किसी को भेजना चाहिये और न ही गृह प्रवेश करना चाहिये। विषादि का संग्रह करना चाहिये। रुद्राणी इसकी देवता है। दशमी तिथि को सुधन्वा कहते हैं। यह स्थिर तिथि है। इसमें यश प्राप्त होता है। कूप एवं नदी का खनन, कूप सहित पोखरे का निर्माण, उद्यान-नगर क्षेत्र-गृह-यज्ञशाला एवं सभा का निर्माण करना चाहिये। इसके देवता धर्म हैं। एकादशी तिथि को सुनन्दा कहते हैं। इसको भी स्थिर समझना चाहिये। इसमें पाकशाला, गृहस्थापन, नगर-ग्राम-यज्ञ-ब्राह्मण सभा करे। स्त्रियों तथा सेवक-कर्मचारियों के प्रति उग्र रहे। गम्भीर कार्यों को न करे। इसके देवता भगवान शिव होते हैं। द्वादशी तिथि को यमा कहते हैं। यह तिथि यश:करी होती है। इसमें चूडाकर्म, उपनयन आदि माङ्गलिक कार्य करना चाहिये। भण्डारगृह का निर्माण तथा निधि को स्थापित करे। इस तिथि में ऋण नहीं लेना चाहिये। इसके देवता भगवान भास्कर होते हैं। त्रयोदशी तिथि को जया कहते हैं। इसमें उत्तम कार्य करने चाहिये। वस्तु, हार, अलंकार, ब्राह्मण का सत्कार करना चाहिये। स्त्रियों का सौभाग्य-अलङ्करण तथा कन्या का वरण शुभ होता है। मुण्डन संस्कार, युग्मवस्त्र का धारण करे। इसके देवता भगवान कामदेव हैं। चतुर्दशी तिथि उग्रासंज्ञक है। इसमें क्रूरकर्म करना चाहिये। इसमें किसी को बाँधना शत्रु-अवरोध तथा शत्रु-संघात प्रशस्त होता है। सम्मुख आगत शत्रु का संहार, क्रूरतापूर्वक वध तथा प्रहार करना, ग्राम सेना का हनन करना चाहिये। इसके देवता भगवान रुद्र होते हैं। अमावस्यातिथि को सिद्धार्था कहते हैं। इसमें पितृयज्ञ प्रशस्त होता है। इसमें देवकार्य तथा गोशाला में प्रवेश करे। पुरोहित का वरण, याज्ञिक क्रिया, बलि तथा तन्निमित्त उपहार समर्पित करे। इसके देवता पितृगण होते हैं। पूर्णमासी को कल्याणी कहा जाता है। यह देवकर्म के लिए अधिकृत तिथि है। यह विप्र तथा अग्नि से सम्बन्धित कार्यों के लिये उत्तम है। इसतिथि पर गाय का गोशाला में प्रवेश करावे। राजा सम्बन्धित, पुरोहित सम्बन्धित तथा विविध प्रकार के यज्ञादि शुभ कर्मों को करना चाहिये। इसके देवता सोम (चन्द्रमा) होते हैं।

करणमुहूर्तों में भी कार्य सिद्ध, होते हैं। अर्थात् करण के देवता सदृश जो कार्य होते हैं, वे सिद्धिप्रदायक कहे गये हैं। जिस नक्षत्र में जो कार्य विहित हैं। उस नक्षत्र का जो देवता हो, उसके सदृश करण के देवता होने पर वह कार्य करना चाहिये। उदाहरणार्थ ज्येष्ठा नक्षत्र में जो कार्य (तीक्ष्ण-दारुण आदि)। कहे गये हैं। उनको बवकरण में करने चाहिये। क्योंकि इन दोनों के देवता, शक्र (इन्द्र) हैं। इसी प्रकार रोहिणी नक्षत्र के कार्य बालव में, अनुराधा के कौलव में, उत्तराफाल्गुनी के तैतिल में और ज्येष्ठा नक्षत्र के कार्य गरकरण में, श्रवणनक्षत्र के कार्य वणिजकरण में, भरणी के कार्य विष्टि (भद्रा) करण में, आश्लेषा के कार्य शकुनीकरण में, रोहिणी के चतुष्पदकरण में, पुन: आश्लेषा के कार्य नागकरण में और स्वाती नक्षत्र के कार्य किंस्तुघ्न करण में करने चाहिये। इसी प्रकार महर्षि पराशर ने कहा है–

शकुनीकरण में पक्षीग्रहण, प्रहार, सेवक, योद्धा तथा युद्धोपकरण-निर्माणकार्य आदि सभी कठोर कर्मों को करे। चतुष्पदकरण में राजा पर विजय प्राप्ति राज्याभिषेक और पितर तथा देवता सम्बन्धी धार्मिक कार्य, पशुदान श्रेष्ठ होता है। नागकरण में जलोपकरण नौका आदि का सज्जीकरण, प्रवेश, रोगमुक्ति तथा रोगग्रस्त व्यक्ति का औषधि सेवन आदि कार्य करे। किंस्तुघ्नकरण में देव-गुरु-तीर्थ-व्रत-दीक्षा से सम्बन्धित यात्रा, स्नानकर्म करे। बवकरण में रत्न-सुवर्ण-चाँदी-अलंकार-वास्तुक्रिया-युद्धयात्रा-आसव-कुसुम तथा सुगन्धिनिर्माण से सम्बन्धित कार्य करे। वालवकरण में व्रत-उपवास-नियम (शौचसन्तोष आदि)-सत्र (सावधि यज्ञ) यश, विप्र तथा गुरु की सेवा करे। कौलव करण में उपनगर, कृषि क्षेत्र, लेखनकार्य, गन्ध (चन्दन आदि) संगीत विद्या, पितृ-देव एवं धार्मिक कार्य करे। तैतिलकरण में निष्क्रमण संस्कार, चौरकर्म, जूआ, युद्ध, अभिषेक, मंगलकार्य, दीक्षाग्रहण तथा गृह प्रवेश करना चाहिये। गरकरण में काष्ठ, उद्यान, वन और अधिकार का उपभोग एवं विवाहादि शुभकार्यों को करना चाहिये। वणिजकरण में व्यापार-व्यवहार, अध्ययन, शिल्पसम्बन्धी वार्ता, अभिवादन, बलिकर्म, विधिसंगत जो भी कार्य हो उनका आरम्भ करना चाहिये। विष्टिकरण अर्थात् भद्रा में कोई भी कार्य सफल नहीं होता है। जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीजवपन विफल होता है।

जिस नक्षत्र में जो विहित कार्य कहे गये हैं। उस नक्षत्र के जो देवता हों, वह जिस मुहूर्त में प्राप्त हों, उसमें उस नक्षत्र-सम्बन्धी कार्य, को करना चाहिये। उदाहरण–आर्द्रा नक्षत्र में जो कार्य किया जाता है, वह शिव मुहूर्त नक्षत्र में जो कार्य किया जाता है, वह शिव मुहूर्त में भी किया जाना चाहिये। क्योंकि इन दोनों के देवता एक ही भगवान रुद्र हैं। इसी प्रकार आश्लेषानक्षत्र के कार्य भुजग मुहूर्त में, अनुराधा

नक्षत्र के मित्र में, मघानक्षत्र के पितृमुहूर्त में, धनिष्ठानक्षत्र के वसु में, पूर्वाषाढ़ानक्षत्र के जलमुहूर्त में, उत्तराषाढ़ानक्षत्र के विश्वेदेव में, अभिजित् नक्षत्र के विरञ्चिमुहूर्त में, रोहिणीनक्षत्र के पंकजप्रभवमुहूर्त "ब्रह्म" में, विशाखानक्षत्र के इन्द्राग्निमुहूर्त में, मूलनक्षत्र के निर्ऋति मुहूर्त में, शतभिषा के वरुण मुहूर्त में, उत्तराफाल्गुनी के अर्यमामुहूर्त में, पूर्वाफाल्गुनी के भाग्यमुहूर्त में, पूर्वाभाद्रपदा के अजैकपादमुहूर्त में, उत्तरभाद्रपदा के अहिर्बुध्न्यमुहूर्त में, रेवती के पूषा में, अश्विनी के दस्रमुहूर्त में, भरणी के अन्तकमुहूर्त में, कृत्तिका के अग्निमुहूर्त में, मृगशिरा के, इन्दु (चन्द्र) महूर्त में, पुनर्वसु के अदिति मुहूर्त में, पुष्य के गुरु मुहूर्त में, श्रवण के हरि मुहूर्त में, हस्त के रविमुहूर्त में, चित्रानक्षत्र के त्वष्टामुहूर्त में तथा स्वातीनक्षत्र के अनिलमुहूर्त में करने चाहिये। जैसाकि कहा गया है–

दिन के पन्द्रह मुहूर्तों के स्वामी क्रमशः १ शिव, २ भुजग, ३ मित्र, ४ पितृ, ५ वसु, ६ जल, ७ विश्व, ८ विरञ्चि, ९ पद्मयोनि, १० इन्द्राग्नि, ११ इन्द्र, १२ निशाचर, १३ वरुण, १४ अर्यमा, १५ योनि होते हैं। रात्रि के पन्द्रह मुहूर्तों में क्रमशः १ रुद्र, २ अज ३ अहिर्बुध्न्य, ४ पूषा, ५ दस्र, ६ अन्तक, ७ अग्नि, ८ धाता, ९ इन्दु, १० अदिति, ११ गुरु, १२ हरि, १३ रवि, १४ त्वष्टा, १५ अनिल स्वामी होते हैं। दिनमान के पञ्चदशांश का एक दिवामुहूर्त तथा रात्रिमान के पञ्चदशांश का एक रात्रिमुहूर्त होता है। मुहूर्त एवं काल का ज्ञान दिन में छायायन्त्र से तथा रात्रि में जलयन्त्र के द्वारा किया जाता है। नक्षत्र तथा मुहूर्तों के एक साथ स्वामी की एकरूपता हो तब इन दोनों का फल एक ही समान देखा गया है। जिसको गर्ग, पराशरादि ने स्वीकार किया है। अहोरात्र के पूर्णमान में चन्द्रनक्षत्र, और मुहूर्त के स्वामी एक ही हों वह उस नक्षत्र के समान गुणों वाले कर्म में सिद्धिप्रद कहा गया है, जैसाकि महर्षि पराशर कहते हैं–

१ रौद्र, २ मित, ३ मैत्र, ४ साधन, ५ सारभट, ६ आत्मसह, ७ वैश्वदेव, ८ अभिजित्, ९ रोहिणी, १० इन्द्र, ११ बल, १२ जय, १३ पितृ, १४ भाग्य, १५ वरुण; ये दिवामुहूर्त होते हैं। रात्रि के पन्द्रह मुहूर्त क्रमशः १ नैर्ऋत, २ आग्नेय, ३ याम्य, ४ गन्धर्व, ५ ध्यानपद, ६ राक्षसेन्द्र, ७ आग्नेय, ८ प्राजापत्य, ९ अश्विन, १० इन्द्र, ११ ब्रह्म, १२ गुरु, १३ सावित्र्य, १४ वैष्णव, १५ पौष्ण कहे गये हैं। इन मुहूर्तों के देवता के समान ही जिस नक्षत्र के देवता हों। तब उस नक्षत्र में विहित कार्यों को उन मुहूर्तों में सम्पादित करे। यहाँ पर विशिष्ट उपदेश को प्रस्तुत करते हैं– श्वेत, मैत्र, आत्मसह, रोहिणी मुहूर्तों में रोहिणी नक्षत्र में करणीय सभी कार्यों को करना चाहिये। जैसाकि यज्ञ-व्रत-आधान तथा अध्ययनादि। सारभटमुहूर्त में अभिचारी

क्रिया, वध तथा वाद-विवाद आदि। अभिजित् मुहूर्त में सभी प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं। बल-मुहूर्त में सैन्यबल का समारोह, जयमुहूर्त में अन्न-संग्रह, गन्धर्वमुहूर्त में संगीत विद्या-काम-विवाह, ध्यानपदमुहूर्त में राज्याभिषेक-आभूषण आदि मांगलिककृत्य करने चाहिये। दोनों सन्ध्याओं के अर्थात् प्रात:सन्ध्या के अग्निदेवता तथा सायं सन्ध्या के रौद्रदेवता होते हैं। इनमें किसी प्रकार का कोई शुभाशुभ कर्म का आरम्भ नहीं करना चाहिये किसी अन्य स्थल पर इस प्रकार का नियम नहीं है। जैसा कि कहा गया है–सद्य: जाग्रत होकर उपासना न करे। सायं सन्ध्या में विशेषकर अग्नि में प्रवेश न करे अर्थात् अग्नि सम्बन्धी कार्य न करे, भोजन न करे तथा मैथुन कर्म से दूर रहे॥१-३॥

तिथि स्वामियों की तुलनात्मक सारिणी

तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८
बृहत्सं.	ब्रह्मा	विधाता	विष्णु	यम	चन्द्र	कुमार	इन्द्र	वसु
पराशर	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	मासा	मित्रा	महाबला
गर्ग	नन्दा	भद्रा	बला	रिक्ता	पूर्णा	मासा	मित्रा	महाबला
मुहूर्त चिन्तामणि	अग्नि	ब्रह्मा	गौरी	गणेश	अहि	कार्तिकेय	रवि	शिव
तिथि	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	३०
बृ.सं.	अहि	धर्म	रुद्र	रवि	काम	कलि	विश्व	पितर
पराशर	उग्रसेना	सुधन्वा	सुनन्दा	यमा	जया	उग्रा	सिद्धि	–
गर्ग	उग्रसेना	सुधन्वा	सुनन्दा	यमा	जया	उग्रा	कल्याणी	सिद्धार्था
मु.चि.	दुर्गा	यम	विश्वदेव	विष्णु	काम	शिव	शशी	–

श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिताविवृति में तिथिकर्म गुणाध्याय नामक ९८ अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

□□

अथ करणगुणाध्यायो व्याख्यातो अध्यायः ९९

तत्रादावेव सप्त चलकरणानि भवन्ति, तेषां नामान्यधिपतींश्चाह–

बवबालवकौलवतैतिलाख्यगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम्।
पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः।।१।।

आरम्भ में सात चलकरणों के नाम एवं स्वामी का निरूपण करते हैं–

१ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर ६ वणिज ७ विष्टि; ये सात चलकरण हैं। इनके क्रमशः १ इन्द्र, २ ब्रह्मा, ३ मित्र, ४ अर्यमा, ५ भूमि, ६ लक्ष्मी, ७ यम स्वामी हैं॥१॥

ववादीनां करणानामिन्द्रादयः सयमाः पतयः स्वामिनः, तद्यथा–बवस्येन्द्रोऽधिपतिः। बालवस्य कमलजो ब्रह्मा। कौलवस्य मित्रः। तैतिलाख्यस्यार्यमा। गरस्य भूर्भूमिः। वणिजस्य श्रीर्लक्ष्मीः। विष्टेर्यमः।।१।।

बवादि करणों के इन्द्रादि यम सहित अधिपों का वर्णन किया जा रहा है। जैसाकि बव के स्वामी इन्द्र, बालव के स्वामी कमलज अर्थात् ब्रह्मा, कौलव के मित्र, तैतिल नामक करण के अर्यमा, गरकरण के भू अर्थात् भूमि, वणिज के श्री अर्थात् लक्ष्मी तथा विष्टिकरण के यमराजदेव अधिपति होते हैं॥१॥

अथ स्थिरकरणानां नामान्यधिपतींश्चाह–

कृष्णचतुर्दश्यर्धाद् ध्रुवाणि शुकनिश्चतुष्पदं नागम्।
किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृषफणिमारुताः पतयः।।२।।

स्थिर करणों के नाम एवं उनके स्वामी–

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण होता है। ये चार स्थिरकरण हैं। इनके स्वामी क्रमशः कलि, वृष, सर्प और वायु हैं॥२॥

कृष्णचतुर्दशीद्वितीयार्द्धादारभ्य ध्रुवाणि स्थिराणि करणानि शकुन्यादीनि भवन्ति, तद्यथा–कृष्णचतुर्दश्यामपरभागे शकुनिः। चतुष्पदनागावमावस्यायाम्। किंस्तुघ्नः प्रतिप्रपूर्वभागे। एतानि स्थिराणि मासेन सकृदेव भवन्ति। प्रतिपद्यपरभागे ववः। बालवकौलवौ द्वितीयस्याम्। तैतिलगरौ तृतीयायाम्। वणिग्विष्टी चतुर्थ्याम्। पुनरपि बवबालवौ पञ्चम्याम्। अतः करणे द्वे प्रतिदिनं यावदष्टमीपूर्वभागे विष्टिः। अपरभागे बवः। नवम्यां वालवकौलवौ, दशम्याः तैतिलाख्यगरौ। एकादश्यां वणिग्विष्टी। द्वादश्यां बवबालवौ। त्रयोदश्यां कौलवतैतिलौ। चतुर्दश्यां गरवणिजौ। पौर्णमास्यां प्राग्भागे विष्टिः। अपरे बवः। ततः प्रतिपदादि प्रत्यहं द्वे द्वे करणे यावत् तृतीयायामपरभागे विष्टिः। अपरे बवः ततः प्रतिपदादि प्रत्यहं द्वे द्वे करणे यावत् तृतीयायामपरभागे

विष्टिः। ततः क्रमेण करणषट्कम्। सप्तम्यां प्राग्भागे विष्टिः ततो बवादिकरणषट्कं यावत् त्रयोदशीम्। चतुर्दशीपूर्वभागे विष्टिः। अपरभागे शकुनिरिति। एवमेतानि चलकरणानि मासमध्ये प्रत्येकमष्टौ वारान् भवन्ति। स्थिरकरणानि मासेन सकृदेव। नियताः पतय इति। तेषां शकुनिचतुष्पदनागकिं-स्तुघ्नानां यथाक्रमेण कलिवृषफणिमारुताः पतयो भवन्ति, तद्यथा—शकुनेः कलिः। चतुष्पदस्य वृषः। नागस्य फणी सर्पः। किंस्तुघ्नस्य मारुतो वायुः।।२।।

कृष्ण चतुर्दशी के उत्तरार्ध से आरम्भ कर शकुनि आदि स्थिरकरण होते हैं। जैसाकि कृष्णपक्ष की चतुदर्शी तिथि के अपरभाग अर्थात् आधी तिथि बीत जाने पर शकुनिकरण का उदय होता है। अमावस्या के पूर्वभाग में चतुष्पदकरण तथा उत्तरभाग में नाग तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्नकरण होता है। एक मास के अन्तर्गत ये स्थिकरण एक बार ही आते हैं। प्रतिपदा के अपरभाग में बवकरण, द्वितीया तिथि में बालव और कौलव, तृतीया में तैतिल और गर, चतुर्थी में वणिक् और विष्टिकरण होते हैं। पुनः पञ्चमी तिथि में बव और बालव। इस प्रकार अष्टमीतिथि के पूर्व भागतक प्रतिदिन दो-दो करण विष्टि सहित होते हैं। पुनः अष्टमी तिथि के उत्तरार्ध में बवकरण, नवमीतिथि में बालव एवं कौलव, दशमी में तैतिल और गर एकादशी तिथि में वणिक् और विष्टि, द्वादशीतिथि में बव एवं बालव, त्रयोदशी में कौलव एवं तैतिल, चतुर्दशी में गर और वणिज तथा पूर्णिमा के पूर्वार्ध में विष्टिकरण होता है। पूर्णिमातिथि के उत्तरभाग में बवकरण होता है। तत्पश्चात् प्रतिपदादि तिथियों में प्रतिदिन दो-दो करण तथा तृतीया के उत्तरभाग में विष्टिकरण रहता है। इसीक्रम से चतुर्थी, पंचमी, षष्ठीतिथि में भी दो-दो करण होंगे। सप्तमी के पूर्वभाग में विष्टिकरण तत्पश्चात् बवादि छः करण त्रयोदशी पर्यन्त होते हैं। चतुर्दशी के पूर्वभाग में विष्टिकरण तथा अपरभाग में शकुनिकरण होता है। इस प्रकार चलकरण एकमास के अन्तर्गत आठ बार आते हैं। चारों स्थिर करण मास में एक बार आते हैं। इन शकुनि, चतुष्पद, नाग किंस्तुघ्नसंज्ञक स्थिर करणों के क्रमशः कलि, वृष, फणि और मारुत स्वामी होते हैं। यथा-शकुनि, के कलि, चतुष्पद के वृष, नाग के फणि अर्थात् सर्प तथा किंस्तुघ्न के मारुत अर्थात् वायुदेव अधिपति होते हैं।२।।

अथैतैर्यत् कर्तव्यं तदाह—

कुर्याद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टकानि
धर्मक्रियाद्विजहितानि च बालवाख्ये।
सम्प्रीतिमित्रवरणानि च कौलवे स्युः
सौभाग्यसंश्रयगृहाणि च तैतिलाख्ये।।३।।

कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे
वणिजि ध्रुवकार्यवणिग्युतयः।
न हि विष्टिकृतं विदधाति शुभं
परघातविषादिषु सिद्धिकरम्।।४।।

चरकरणों का फल–

बवकरण में शुभ, चर, स्थिर एवं पुष्टि कार्य शुभ होते हैं। बालवकरण में धर्म क्रिया तथा ब्राह्मणों का हित साधन शुभ होता है। कौलव करण में प्रीति, मित्र, एवं कन्यावरण करना शुभ है। तैतिल करण में सौभाग्य, संश्रय तथा गृहसम्बन्धी कार्य करना शुभ है। गरकरण में खेती, बीज और आश्रम सम्बन्धी कार्य शुभदायक हैं। वणिजकरण में स्थिर कार्य, वाणिज्य और युति (संयोग) सम्बन्धी कार्य करना शुभ है। विष्टिकरण में किया हुआ कोई भी कार्य शुभ नहीं होता है। किन्तु केवल शत्रुओं का नाश, विष आदि का प्रयोग तथा अग्निदाह आदि कार्य सिद्धिदायक होते हैं। ।।३-४।।

कुर्याद्बव इति। ववे ववाख्ये-करणे। शुभानि प्रशस्तानि यानि धर्मादीनि कार्याणि। तथा चराणि स्वल्पकालसाध्यानि क्षिप्रोपयोगीनि। स्थिराणि कालान्तरस्थायीनि। तथा पौष्टिकानि शरीरपुष्टिं यानि जनयन्ति। तानि कुर्यात्। वालवाख्ये धर्मक्रिया धर्मसमायुक्ताः क्रियाः। तथा द्विजानां ब्राह्मणानां च हितान्यनुकूलानि कार्याणि। सम्प्रीतिः केनचित् स्नेहः। मित्रं सुहृत्। वरणं कन्यावरणम्। एतानि च कार्याणि कौलवे स्युर्भवेयुः। सौभाग्यं सुभगत्वं येन कर्मणा सर्वजनवाल्लभ्यं भवति तत्सौभाग्यम्। संश्रयः कश्चित् प्रधानजनः संश्लिष्यते। गृहं भवनम्। एतानि तैतिलाख्ये कार्याणि।।३।।

कृषि बीजेति। कृषिः कर्षणम्। बीजानि प्रसिद्धानि यान्युप्यन्ते। गृहाश्रयजम्। गृहं वेश्म आश्रित्य यज्जायत उत्पद्यते। एतानि सर्वाणि गरे कार्याणि। ध्रुवाणि स्थिराणि यानि कार्याणि। वाणिज्यम्। युतिः केनचित् सह संयोगः। एतान्येव वणिजि कार्याणि। विष्टिकृतं न हि शुभं श्रेयस्करं फलं विदधाति करोति; केवलं पराणां शत्रूणां घाते निपाते विषादिषु विषप्रयोगेऽग्निदाहादौ च सिद्धिकरम्।।४।।

बवसंज्ञककरण में शुभ अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक कार्यों को करना चाहिये। साथ ही इसमें चरकर्म अर्थात् थोड़े समय में पूर्ण होने वाले आवश्यक कर्म और स्थिर कर्म अर्थात् कालान्तर में पूर्ण होने वाले स्थायी कार्य एवं पौष्टिक कर्म अर्थात् शरीर को संपुष्ट करने वाले (शक्तिवर्धक) कार्यों को करना चाहिये। बालव संज्ञककरण में धार्मिक क्रियाओं को तथा ब्राह्मणों के हितकारक अनुकूल कार्यों को करना चाहिये।

कौलव करण में किसी के साथ प्रेम-व्यवहार; मित्रता के कार्य, कन्यावरण के कार्य करने चाहिये। सौभाग्यकर्म अर्थात् जिस कार्य के द्वारा सभी लोगों का स्नेह तथा सम्मान मिलता है, संश्रय अर्थात् किसी प्रमुख व्यक्ति का आश्रय और भवन से सम्बन्धित कार्यों को तैतिलकरण में करना चाहिये॥३॥

कृषि कर्म (खेत जोतना), बीज बोना, गृहाश्रय अर्थात् गृह सम्बन्धी कार्य; इन सभी कार्यों को गरकरण में करना चाहिये। ध्रुव अर्थात् स्थिर कार्य, वणिक् कार्य अर्थात् व्यापार आदि, युति अर्थात् किसी के साथ संयोग; इन कार्यों को वणिजकरण में करना चाहिये। विष्टिकरण में किया गया कोई भी कार्य शुभफलप्रदायक नहीं होता है। यह केवल पर अर्थात् शत्रुओं के संहार, विष आदि के प्रयोग तथा अग्निदाह आदि दुष्ट कर्मों को सिद्ध करता है॥४॥

तथा स्थिरकरणैर्यत् कर्तव्यं तदाह–

कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मूलानि मन्त्रास्तथा
गोकार्याणि चतुष्पदे द्विजपितॄनुद्दिश्य राज्यानि च।
नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः
किंस्तुघ्ने शुभमिष्टिपुष्टिकरणं मङ्गल्यसिद्धिक्रियाः॥५॥

स्थिरकरणों में करणीय कार्यों को कहते हैं–

शकुनिकरण में पौष्टिक कार्य, औषधि सेवन आदि, मौलिक और मन्त्रसाधन सम्बन्धी कार्य करना शुभ होता है। चतुष्पद करण में गाय, ब्राह्मण, पितर और राज्य सम्बन्धी कार्य करना शुभ है। नागकरण में स्थावर, दारुण, हरण और दौर्भाग्य सम्बन्धी कार्य करना शुभ होता है। तथा किंस्तुघ्नकरण में धर्म, इष्टि, पुष्टि, मंगल और सिद्धिक्रिया सम्बन्धी कार्य करना शुभ होता है॥५॥

कार्यं पौष्टिकमिति। पौष्टिकं शरीरपुष्टिकरम्। औषधं यद्व्याधिविनाशायोपयुज्यते। आदिग्रहणादन्यौषधादीनां ग्रहणं पचनं पाचनम्। मूलानि मूलकर्माणि। मूलानां ग्रहणं रोपणं भक्षणं च। तथा मन्त्रा मन्त्रसाधनानि। एतत् सर्वं शकुनौ कार्यम्। गोकार्याणि गवां संबन्धीनि यानि, कार्याणि शुभं ग्रहणं दानेन तत्पालनं च। तथा द्विजान् ब्राह्मणान् पितॄनुद्दिश्य तदर्थं यानि, तानि चतुष्पदे कार्याणि। राज्यानि राजकार्याणि। स्थावरं स्थावराश्रयं कार्यम्। दारुणानि क्रूराणि च यानि कार्याणि परोपतापकरणानि। हरणं परधनदारस्थावरादीनाम्। दौर्भाग्यकर्माणि दुर्भगत्वं सर्वजनद्वेष्यं यैरवाप्यते तानि नागे कार्याणि। शुभं धर्मसंयुक्तं कर्म। इष्टयः पुत्र-काम्यादयः। पुष्टिकरणं शरीरपोषणम्। मङ्गल्यानि विवाहादीनि। सिद्धिक्रिया याभिः क्रियाभिरेते सिद्ध्यन्ति। सर्वमेतत् किंस्तुघ्ने कार्यम्। तथा च गर्गः–

आद्यं तु शकुनिर्नाम रात्रौ कृष्णचतुर्दशी।
आदानग्रहणे चैवमिष्टमत्र पलायनम्।।
योधानां शकुनानां च ग्रहणं पोषणं तथा।
चिकित्सा चैव युद्धं च सर्वमेतत् प्रशस्यते।।
ततश्चतुष्पदं नाम कृष्णपञ्चदशी दिवा।
चतुष्पदानां सर्वेषां कर्मारम्भेषु शस्यते।
पितॄंश्च पूजयेदेव प्रेतकार्यं च कारयेत्।
नष्टं दृष्टिपथाल्लब्धं ब्रूयादत्र न संशयः।।
नागं तु करणं रात्रौ कृष्णपञ्चदशी भवेत्।
तत्रावमर्दसाध्यानि प्रसह्य हरणानि च।।
भेदनानि च कर्माणि मूलानि च फलानि च।
कर्माणि चोदनीयानि सर्वाण्येव प्रकल्पयेत्।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किंस्तुघ्नं करणं ध्रुवम्।
तत् तु शुक्लप्रतिपदि दिवसे प्रतिपद्यते।।
तस्मिन् दिव्यानि कार्याणि वैश्वदेवमथानलम्।
प्राजापत्यं च यत् कर्म सर्वमत्र प्रयोजयेत्।।
इत्येतानि निबद्धानि ध्रुवाणि करणानि च।
अतः परं प्रवक्ष्यामि ववान्यन्यानि सप्त वै।।
ववं च वालवं चैव कौलवं तैतिलं तथा।
गराख्यं वणिजं चैव विष्टिर्ज्ञेया तु सप्तमी।।
ववे तु ध्रुवकर्माणि क्षिप्राण्यपि च कारयेत्।
निर्याणे च प्रवेशे च तद्धि सर्वार्थसाधकम्।।
बालवं ब्राह्मणानां तु सर्वारम्भेषु शस्यते।
अनारम्भोऽत्र वर्णानां शेषाणामिति निश्चयः।।
मित्रयुक्तं च यत् कर्म यच्च स्यात् सिद्धिकारणम्।
स्थावराणि च सर्वाणि कौलवे सम्प्रयोजयेत्।।
तैतिलेन च कर्तव्यं राजद्वारिकमेव यत्।
अलङ्कारांश्च विविधान् सर्वाधिकरणानि च।।

गरादिना च कर्तव्यं कर्म गृहसमुद्भवम्।
कृषिं प्रवेशं वस्तूनां ग्रहणं क्षेत्रकर्मणाम्।।
सर्वकार्याणि वणिजि विवादोत्थानि कारयेत्।
पण्यविक्रयणं चैव शस्त्रारम्भं च कारयेत्।।
विष्टिर्नामेह करणं येन कर्म न कारयेत्।
यत्नेनापि कृतं कर्म भवत्यल्पफलोदयम्।।इति।।५।।

पौष्टिक कर्म शक्ति सम्वर्धक कार्य को कहते हैं। रोगशमनकारी द्रव्य को औषधि कहते हैं। औषधि शब्द से द्रव्यों के परिपाक का ग्रहण होता है। मूल शब्द से औषधीय वनस्पतियों के रोपण और सेवन कार्य का ग्रहण किया जाता है। साथ ही मन्त्रों का साधन भी शकुनिकरण में करना चाहिये। गो कार्य अर्थात् पशुओं से सम्बन्धित कार्य अर्थात् पशुओं का ग्रहण दान एवं पालन तथा ब्राह्मणों एवं पितरों के उद्देश्य से किये जाने वाले कार्यों को चतुष्पदकरण में करना चाहिये। राजकार्य, स्थायी आश्रम, दारुण कर्म अर्थात् क्रूरकर्म, जिससे दूसरों को कष्ट होता है, हरण अर्थात् दूसरे के धन-स्त्री-सम्पत्ति का हरण, दुर्भाग्यकर्म अर्थात् जिससे सभी लोगों को ईर्ष्या उत्पन्न हो; इन सभी कार्यों को नागकरण में करना चाहिये। शुभ कर्म अर्थात् धर्मयुक्त कार्य, इष्टि अर्थात् पुत्रकाम्य आदि यज्ञ, पुष्टिकरण अर्थात् शरीर का पोषण, विवाहादि मांगलिक कर्म, सिद्धिकारक सिद्धिकर्म; इन सभी को किंस्तुघ्नकरण में करना चाहिये। जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है–

शकुनि नामक प्रथम स्थिरकरण कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि (उत्तरभाग) में होता है। इस करण में आदान-प्रदान तथा पलायन करना चाहिये। इस करण में सैनिकों और पक्षियों का ग्रहण तथा पोषण शुभ होता है। चिकित्सा कर्म एवं युद्ध कार्य इसमें सिद्ध होते हैं। तत्पश्चात् चतुष्पदनामक करण अमावस्या के पूर्वार्ध में होता है। इसमें सभी प्रकार के पशुओं से सम्बन्धित कार्य प्रशस्त होते हैं। पितरों का पूजन तथा प्रेतकर्म इसी करण में करना चाहिये। इसकरण में नष्ट पदार्थ प्रकट होकर प्राप्त हो जाता है। नागकरण कृष्णपक्ष की अमावस्या के उत्तरार्ध में होता है। इस करण में मर्दन (शत्रुमर्दन) कर्म तथा बलात् अपहरण करना प्रशस्त होता है। भेदन कर्म, फल-मूल से सम्बद्ध कार्य तथा सभी प्रकार के उत्तेजक कार्यों को करना चाहिये। तत्पश्चात् किंस्तुघ्न नामक स्थिरकरण शुक्लपक्ष की प्रतिपदातिथि के पूर्वार्ध में होता है। इसमें दिव्य कार्य, वैश्वदेव, अग्निकार्य तथा प्राजापत्य यज्ञादि कर्म को इस करण में करना चाहिये। इस प्रकार से स्थिरकरण के कार्यों को कहा गया है।

अब बवादि सात चलकरणों के कार्यों को कहा जायेगा। बव-बालव-कौलव-तैतिल-गर-वणिज और विष्टि; ये सात करण होते हैं। बवकरण में स्थिरकार्य तथा क्षिप्रकार्य होते हैं। इसमें यात्रा और प्रवेश करना सिद्धिप्रद होता है। बालवकरण विप्रकार्यों के लिए, सभी प्रकार के कार्यों का आरम्भ करने के लिए शुभ होता है। शेष वर्णों को लिए कार्यारम्भ नहीं करना चाहिये। कौलव करण में मित्रों से सम्बन्धित सभी प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं। इसमें सभी स्थायी कार्य सम्पादित करे। तैतिलकरण में राजकर्म, अलंकार एवं अपने अधिकार का प्रयोग करना विहित होता है। गरकरण में गृह सम्बन्धी कार्य, कृषिकार्य, गृहप्रवेश, वस्तु-संग्रह तथा कृषि कर्म करना चाहिये। वणिजकरण में विवाद से सम्बन्धित सभी कार्यों को करे। इस करण में क्रय-विक्रय तथा शस्त्रप्रयोग का आरम्भ करे। विष्टि नामक करण में कोई भी कार्य न करे। बहुत सावधानीपूर्वक किया गया कार्य भी अत्यल्पफल देता है।।५।।

अथ कर्णवेधनक्षत्राण्याह–

लाभे तृतीये च शुभैः समेते पापैर्विहीने शुभराशिलग्ने।
वेध्यौ च कर्णावमरेज्यलग्ने पुष्येन्दुचित्राहरिपौष्णभेषु।।६।।

कर्णवेध के नक्षत्रों को बतलाते हैं–

लग्न से ग्यारहवें और तीसरे भाव में शुभग्रह हों, शुभग्रह की राशि लग्न में हो, पापग्रह से रहित होकर लग्न बृहस्पति से युत हो तथा पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, श्रवण और रेवती नक्षत्रों में कर्ण वेध शुभ होता है।।६।।

लाभस्थानमेकादशम्। तृतीयं प्रसिद्धम्। लाभे तृतीये च स्थाने शुभैः शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैः। समेते संयुक्ते। शुभराशिलग्ने पापैर्विहीने। शुभा राशयो वृषमिथुनकन्यातुलाधन्विमीनाः। शुक्लपक्षे कर्कटश्च। एतेषामन्यतमे लग्ने। पापैः पापग्रहैरादित्याङ्गारकशनैश्चरैर्विहीने रहिते। अमरेज्यो बृहस्पतिस्तस्मिन् लग्ने लग्नगते। कर्णावत्र वेध्यौ वेधनार्हौ। एवं लग्नशुद्धिमभिधायाधुना नक्षत्राण्याह–पुष्येन्दुचित्राहरि–पौष्णभेष्विति। पुष्यस्तिष्यः। इन्दुर्मृगशिरः। चित्रा। हरिः श्रवणः। पौष्णभं रेवती। एतेषु नक्षत्रेषु कर्णौ वेध्याविति।।६।।

लाभस्थान अर्थात् एकादश और तृतीय स्थान में शुभग्रह अर्थात् बुध, गुरु और शुक्र संयुक्त हों। शुभराशि का लग्न हो जो पापग्रह से रहित हो। शुभ राशियों में वृष-मिथुन-कन्या-तुला और मीन की गणना होती है। शुक्लपक्ष में कर्कराशि को भी शुभ माना जाता है। इनमें से कोई भी शुभलग्न विद्यमान हो। रवि-मंगल और शनि; ये पाप ग्रह माने गये हैं। इन पापग्रहों से रहित लग्न हो। अमरेज्य अर्थात् गुरु उस लग्न में स्थित हो, तब वर्णवेध कर्म करना चाहिये। इस प्रकार लग्नशुद्धि का

विचार कर अब विहित नक्षत्रों को कहते हैं–पुष्य (तिष्य), मृगशिरा (इन्दु), चित्रा, हरि अर्थात् श्रवण और पौष्ण अर्थात् रेवती; इन नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ होता है।।६।।

विशेष व्याख्या–बृहत्संहिता के अनुसार पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, श्रवण और रेवती; ये पाँच नक्षत्र कर्णवेध में विहित हैं। मुहूर्तचिन्तामणि के संस्कार प्रकरण श्लोक सं. २४ में श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, हस्त, अश्विनी, पुष्य; इन १० नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ है। पीयूषधारा टीका में श्रीपति, नारद और गर्ग के वचन भी द्रष्टव्य हैं।

इदानीं संक्षेपेणावसरप्राप्तं विवाहपटलमाह–

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघा-
हस्तस्वातिषु षष्ठतौलिमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः।
सप्ताष्टान्त्यबहिःशुभैरुडुपतावेकादशद्वित्रिगे
क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे।।७।।
दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते चारानुकूले रवौ
चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः।
त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिं च रिक्तां तिथिं
क्रूराहायनपौषचैत्रविरहे लग्नांशके मानुषे।।८।।

अथ विवाह मुहूर्त को कहते हैं–

रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती-मृगशिरा-मूल-अनुराधा-मघा-हस्त और स्वाती नक्षत्रों में, कन्या-तुला और मिथुन लग्नों में, सप्तम अष्टम और द्वादश स्थानों से भिन्न स्थानों में शुभग्रह हो, एकादश-द्वितीय अथवा तृतीय स्थानों में चन्द्र हो, तृतीय षष्ठ और एकादश में पापग्रह हो तथा षष्ठ में शुक्र और अष्टम में मंगल न हो तो विवाह शुभ होता है। वर-कन्या दोनों में किसी एक की राशि से दूसरे की राशि दूसरी-नवमी और आठवीं न हो अर्थात् द्विर्द्वादश-नवपञ्चम और षडाष्टक राशि से रहित राशि हो, सूर्य चारानुकूल (तृतीय-षष्ठ-दशम अथवा एकादश स्थान में स्थित) हो, सूर्य-मंगल-शनि या शुक्र से रहित अथवा दो पापग्रहों के मध्य में चन्द्रमा न हो तथा व्यतिपात और वैधृतियोग, विष्टिकरण, रिक्तातिथि, पाप वार, क्रूरायन (दक्षिणायन), चैत्र और पौषमास; इन सबों को छोड़कर मानुष लग्न (द्विपदसंज्ञक लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या और तुला) में विवाह शुभ होता है।।७-८।।

रोहिण्युत्तररेवतीति। रोहिणी। उत्तरत्रयम्। उत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदा चेति। रेवती। मृगशिरः। मूलम्। अनुराधा। मघा। हस्तः स्वातिः। एतेषु नक्षत्रेषु पाणिग्रहो

विवाहः कार्यः। तथा षष्ठतौलिमिथुनेषूद्यत्सु। षष्ठः कन्या। तौली तुलः। मिथुनः प्रसिद्धः। एतेषूद्यत्सूदयं गच्छत्सु लग्नतां प्राप्तेष्वित्यर्थः। उक्तं च–

हस्तोत्तरास्वातिमघानुराधाप्राजेशपौष्णेन्दवनैर्ऋतेषु।
उद्वाहसौभाग्यसुखानि कन्या प्राप्नोति शेषैः सुतभर्तृशोकम्॥
कन्यातुलावन्मिथुनेषु साध्वी शेषेष्वसाध्वी धनवर्जिता च।
अन्येषु भेषु द्विपदांश इष्टः कन्यादिलग्नेषु न चान्त्यभागः॥इति॥

एतानि नक्षत्राणि लग्नानि चाभिधाय ग्रहकुण्डलिकामाह–सप्ताष्टान्त्यबहिःशुभैरिति। शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैः। सप्ताष्टान्त्यबहिः स्थितैः। सप्तममष्टममन्त्यं च द्वादशस्थानं बहिःकृत्वा वर्जयित्वान्यत्र स्थितैः। लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठनवमदशमैकादशस्थानेषु स्थितैरित्यर्थः। उडुपतौ चन्द्रे एकादशद्वितीयतृतीयस्थानानामन्यतमस्थानगते। क्रूरैः पापग्रहैरादित्या-ङ्गारशनैश्चरैः। त्र्यायषडष्टगैः। त्रिस्तृतीयम्। आयमेकादशम्। षडष्टके षष्टाष्टमस्थाने प्रसिद्धे। एतेषु स्थानेषु एतैः संस्थितैः पापैः, न तु भृगौ षष्ठे सौम्यत्वाच्छुक्रस्य षष्ठे शुभं फलं प्रागभिहितं तस्यानेन प्रतिषेधः कार्यः। कुजेऽष्टमे च। उक्तं च–

सौम्यान् व्ययास्तनिधनेष्वरिभे च शुक्रं
हित्वा स्थितस्त्रिधनलाभगतः शशाङ्कः।
पापास्त्रिषड्निधनलाभगता विवाहे
हित्वाऽष्टमं क्षितिजमिष्टफलानि दद्युः॥इति॥७॥

अथ कन्याकुमारयोः परस्परमानुकूल्यमाह–दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहित इति। दम्पत्योर्जायापत्योः। द्विर्द्वादशनवमपञ्चमाष्टषष्ठराशिभी रहिते वर्जिते। परस्परं यदि द्विर्द्वादशे नवमञ्चमे षष्ठाष्टमे न भवतः। एकाराशी तृतीयैकादशराशी चतुर्थदशमराशी सप्तमराशी भवतस्तदा कार्य इत्यर्थः। उक्तं च–

त्रिकोणषष्ठाष्टधनव्ययेषु पापप्रदानं शुभमन्यभेषु।

चारानुकूले रवौ। रवावादित्ये चारानुकूले चारस्य जन्मराशेस्तृतीयषष्ठदशमैकादश-स्थानानामन्यतमस्थ इत्यर्थः। कन्यायाश्चन्द्रे गोचरानुकूले। उक्तं च–

गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य।
तिग्मकिरणं च पुसां शैषेरबलैरपि विवाहः॥

अथ समागमफलं प्रदर्शयति-चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुत इति। अर्क आदित्यः। कुजोऽङ्गारकः। आर्किः सौरः। शुक्रो भार्गवः। एतैर्वियुते रहिते चन्द्रे। एतेषामन्यतमेन सह मार्गस्थो यदि न भवति। अर्थादेव बुधगुरुयुक्तश्चन्द्रमाः शुभः। उक्तं च–

नान्यैः समेतः शुभकृच्छशाङ्कः केषाञ्चिदिष्टो बुधजीवयुक्तः॥इति। मध्येऽथवा

पापयोः। पापग्रहयोर्मध्येऽन्तश्चन्द्रो यदि न भवति। उक्तं च–

मध्ये पापग्रहयोः पाणिग्रहणे शशी न सौख्यकरः।
तस्माद्यत्नात् चन्द्रः कन्यायाः सुस्थितो देयः॥

एकः पापश्चन्द्राद् द्वितीयेऽन्यो द्वादशे यदि भवति तदा स पापयोर्मध्यगतो भवति। त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनमिति, यस्मिन् दिने व्यतिपातो भवति। तद् व्यतिपातदिनम्। यस्मिन् दिने वैधृतिर्भवति तद्वैधृतिदिनम्। एवं व्यतिपातवैधृतिदिनं त्यक्त्वा विहाय। उक्तं च–

न वैधृतिदिने कुर्याद्व्यतीपातयुतेऽहनि।

विष्टिं करणं रिक्तां च तिथिं चतुर्थीं नवमीं चतुर्दशीं च त्यक्त्वा विहाय। उक्तं च–
रिक्तासु च न कर्तव्यं न विष्टिदिवसे तथा।

क्रूराहायनेति। क्रूरस्याहः क्रूराहः पापग्रहवासरः। तस्मिन् पापदिने न कर्तव्यम्। अर्थादेव शुभग्रहदिने कर्तव्यम्। उक्तं च–

आग्नेयग्रहवासरेषु कलहः प्रीतिस्तु सत्सूत्तमा।
केचित् स्थैर्यमुशन्ति सौरदिवसं चन्द्रे ससापत्न्यकम्॥इति।

क्रूरमयनं दक्षिणायनम्। तत्र न कार्यम्। उत्तरायणेऽर्थादेव कार्यम्। उक्तं च–

उत्तरां भजमानेन काष्ठां वै सप्तसप्तिना।
चतुर्णामपि वर्णानां विवाहः श्रेष्ठ उच्यते॥

पौषचैत्रविरह इति। पौषमासं चैत्रं च वर्जयित्वा पौषचैत्रयोर्न कार्यः। नन्वत्र पौषो दक्षिणायने भवति; दक्षिणायननिषेधात् पौषस्यापि निषेधं प्राप्नोति। तत्किमर्थमुक्तं पौषविरह इति। अथोच्यते, अयमभिप्राय आचार्यस्य। यथा दक्षिणायनेऽपि कार्तिकमार्गशीर्षयोः कर्तव्यः। उत्तरायणे सिद्धेऽपि विवाहविधौ चैत्रो न कार्यः। तथा च–

माघफाल्गुनवैशाखा ऐन्द्रसौम्यानलास्तथा।
षडेते पूजिता मासाश्चातुर्वर्ण्येऽपि नित्यशः॥
एषूढा सुभगा साध्वी पुत्रिणी धर्मवत्सला।
धनिनी देवभक्ता च यथासङ्ख्यं प्रकीर्तिता॥
आषाढचैत्रपौषाश्च नभस्यः श्रावणस्तथा।
कुत्सिताः सर्ववर्णानां विवाहेषु मनीषिभिः॥
आषाढे नष्टशौचा तु खला सन्तानवर्जिता।
वैशाखे सर्वसामान्या चैत्रे चातृप्तमैथुना॥

पौषे भर्तृविहीना स्यान्नभस्येऽपि च दुर्भगा।
एवमाश्वयुजोढा तु श्रावणे तु मृतप्रजा।।

लग्नांशके मानुषे। द्विपदाख्ये मिथुनकन्यातुलानामन्यतमे कार्यः। अनेनैतत् प्रतिपादितं भवति–यथा सर्व एव राशयो द्विपदनवांशकोदयगताः पाणिग्रहणे शस्ताः। तस्मिंश्च मानुषांशके स्वामिदृष्टे। उक्तं च–

द्विपदभवनं प्राप्तो योंऽशः शुभाऽन्यगृहोदये।
द्विपदभवनेष्वप्यन्यांशा भवन्त्यशुभावहाः।।

तथा च–

विलग्नांशः स्वनाथेन यद्युद्वाहे न दृश्यते।
पुंविनाशस्ततोऽस्तांशो यद्येवं योषितस्ततः।।

लग्नांशकादस्तांशकस्यापि स्वामिदृष्टिर्विधेयेति।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावृत्तौ तिथिकरणगुणो नामैकोनशततमोऽध्यायः।।९९।।

रोहिणी, तीनो उत्तरा अर्थात् उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वाती; इन ११ नक्षत्रों में पाणिग्रहण संस्कार अर्थात् विवाहकर्म करना चाहिये। कन्या, तुला और मिथुन लग्न के उदित होने पर अर्थात् इनमें से किसी एक लग्न में विवाह श्रेष्ठ होता है। जैसाकि कहा गया है–

हस्त, उत्तरात्रय, स्वाती, मघा, अनुराधा, रोहिणी, रेवती और मृगशिरानक्षत्रों में विवाह होने से कन्या सुख और सौभाग्य प्राप्त करती है। इससे भिन्न नक्षत्रों में पति और पुत्रशोक प्राप्त होता है। कन्या, तुला और मिथुन लग्नों में कन्या साध्वी रहती है। तथा शेष लग्नों में असाध्वी और धनहीना होती है। अन्य लग्नों में द्विपदसंज्ञक नवमांश अभीष्ट होता है। कन्या आदि लग्नों में भी अन्तिम नवमांश शुभ नहीं रहता है।

इन कथित नक्षत्रों तथा लग्नों का निर्धारण कर विवाहकालिक ग्रहकुण्डली का विचार करते हैं। शुभ ग्रह अर्थात् बुध-गुरु-शुक्र ७,८,१२, स्थानों के बाहर अर्थात् इनसे भिन्न स्थानों में स्थित हों। उडुपति अर्थात् चन्द्रमा २,३,११ स्थानों में से किसी भी स्थान में हो। सूर्य-मंगल और शनि; ये क्रूरग्रह अर्थात् पापग्रह ३,११,६,८ स्थानों में स्थित हों। शुक्र छठें स्थान में शुभ नहीं होता है। यद्यपि शुभग्रह होने के कारण

पूर्वोक्त शुभफल का इस वाक्य से निषेध किया गया है। इसी प्रकार मंगलपापग्रह होने के कारण भी अष्टमस्थान में निषिद्ध है। जैसाकि कहा गया है–

शुभग्रह ७,८ और १२ स्थानों में तथा शुक्र षष्ठ स्थान में वर्जित है तथा, २,३,११ स्थान में चन्द्रमा शुभ होता है। इसी तरह से पापग्रह ३,६,८,११ स्थानों में शुभ होते हैं। अष्टम स्थान को छोड़कर मंगल शुभफल देता है।।७।।

अब वर-कन्या के परस्पर अनुकूल स्थिति को कहते हैं–दम्पति अर्थात् पति-पत्नी। दम्पति का परस्पर एक की राशि से दूसरे की राशि २-१२, ९-५, ६-८ न हो। इसका अभिप्राय यह है वर-कन्या की एक ही राशि हो, परस्पर तृतीय-एकदश राशि हो, अथवा परस्पर नवम-पञ्चमराशि हो, अथवा परस्पर चतुर्थ-दशम राशि हो अथवा परस्पर एक सात राशि हो; तब विवाह करना चाहिये। जैसाकि कहा गया है-

नवपञ्चम, षडाष्टक, द्विर्द्वादश; इन स्थानों में परस्पर वर-कन्या की राशि होने पर अशुभफल प्राप्त होता है। तथा इनसे भिन्न राशि होने पर शुभफल प्राप्त होता है।

रवि अर्थात् सूर्य का गोचर स्थान अनुकूल होना चाहिये। अर्थात् पुरुष की जन्मराशि से गोचर का रवि ३,६,१०,११; इन स्थानों में से किसी भी स्थान में हो। कन्या के लिये गोचर का (तात्कालिक) चन्द्रमा अनुकूल होना चाहिये। जैसाकि कहा गया है–

कन्या के लिये चन्द्रमा का गोचरीय शुद्धि प्रयत्नपूर्वक विचार कर ले। पुरुष के लिये सूर्य का गोचरीयबल आवश्यक है। शेष ग्रह निर्बल हों तब भी विवाह करना चाहिये।

चन्द्रमा से संयुक्त ग्रह का विचार करते हैं। चन्द्रमा को सूर्य, मंगल, शनि और शुक्र से वियुक्त होना चाहिये। अर्क अर्थात् सूर्य, कुज अर्थात् मंगल, आर्कि अर्थात् शनि, शुक्र अर्थात् भार्गव; इनसे चन्द्रमा वियुत अर्थात् रहित हो अर्थात् इनमें से किसी ग्रह के साथ चन्द्रमा न हो। अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा बुध और गुरु से संयुक्त हो तब शुभ होता है। जैसाकि कहा गया है–

चन्द्रमा किसी भी ग्रह से युक्त होकर शुभकारक नहीं होता है। कतिपय आचार्यों के मत से बुध और गुरु से संयुक्त होने पर शुभदायक कहा गया है। चन्द्रमा का दो पापग्रहों के मध्य में स्थित होना शुभ नहीं होता है। जैसाकि कहा गया है–

दो पापग्रहों के मध्य में स्थित चन्द्रमा विवाहकाल में शुभकारक नहीं होता है। अतएव कन्या की जन्मराशि से चन्द्रमा का स्थान शुभदायक विचारना चाहिये।

चन्द्रमा से एक पापग्रह द्वितीय स्थान में तथा कोई दूसरा पापग्रह यदि द्वादशस्थ हो, तो इस स्थिति में वह पापग्रह के मध्य माना जाता है। व्यतिपात और वैधृतियोगों का भी परित्याग करना चाहिये। जिस दिन व्यतिपात होता है, उसको व्यतिपात दिन तथा जिस दिन वैधृतियोग होता है उसको वैधृतिदिन कहा जाता है। इस वैधृति और व्यतिपात के दिन का परित्याग करना चाहिये। जैसा कि कहा गया है–

वैधृति और व्यतिपात जिस दिन हो, उस दिन शुभकार्य न करे।

विष्टि अर्थात् भद्राकरण, रिक्ता अर्थात् ४, ९, १४ तिथि; इनको भी त्याग देना चाहिये। कहा गया है रिक्तातिथियों में तथा विष्टिकरण में शुभकर्म न करे।

क्रूराह अर्थात् पापग्रह का दिन। किसी पापग्रह के दिन मांगलिक कार्य नहीं करने चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि शुभग्रह के दिन में ही विवाह आदि शुभकर्म करे। जैसाकि कहा गया है–

पापग्रह के दिनों में कलह होता है, तथा शुभग्रह के दिनों में परस्पर प्रेम होता है। कतिपय आचार्य शनिवार को स्थायित्व तथा सोमवार को सापत्न्य (सौत) का होना बतलाते हैं।

क्रूर अयन अर्थात् दक्षिणायन में विवाह नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उत्तरायण में करना चाहिये। जैसा कि कहा गया है–

सप्तसप्तिन अर्थात् सूर्य जब उत्तराकाष्ठा अर्थात् उत्तर अयन में हो तब चारों वर्णों का विवाह श्रेष्ठ कहा गया है।

पौषमास और चैत्रमास का त्यागकर विवाह करना चाहिये। पौषमास दक्षिणायन में ही होता है। तब दक्षिणायन के निषेध से पौष का भी निषेध स्वतः हो जाता है। फिर यहाँ पर पौषमास को त्याज्य कहने का क्या औचित्य है? अब आचार्य के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं। जिस प्रकार दक्षिणायन में भी कार्तिक मास और मार्गशीर्ष मास का ग्रहण किया जाता है और उत्तरायण होने पर भी चैत्रमास में विवाह नहीं ग्राह्य है। जैसाकि–

माघ-फाल्गुन-वैशाख-जेठ आषाढ़ और मार्गशीर्ष; ये छः मास चारों वर्णों के लिये अनुमोदित तथा सर्वमान्य होते हैं। इन मासों में विवाहिता नारी सौभाग्यवती, साध्वी पुत्रिणी, धर्मप्रिया, धनी तथा देवभक्त होना क्रमशः कही गयी है। आषाढ़, चैत्र पौष, भाद्रपद और श्रावण; ये मास सभी वर्णों के विवाहार्थ कुत्सित माने गये हैं। आषाढ़ मास में कन्या अपवित्रा, दुष्टा तथा सन्तानहीन होती है। वैशाखमास में सर्वसामान्य तथा चैत्रमास में संभोग क्रिया में अतृप्त रहती है। पौषमास में पति से

रहित और भाद्रपदमास में दुर्भाग्यशालिनी होती है। आश्विन मास में भी यही फल होता है। श्रावणमास में विवाहिता कन्या मृतवत्सा होती है।

मानुष लग्नांश का तात्पर्य द्विपद राशि है। मिथुन, कन्या और तुला; इनकी द्विपदसंज्ञा है। इनमें से किसी भी लग्न में विवाह करना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि सभी राशियों में जब द्विपद राशि का नवमांश, उदित हो, तब पाणिग्रहण कर्म प्रशस्त होता है। इस मानुषांश अर्थात् द्विपदांश को भी उसका स्वामी देख रहा हो, तब वह प्रशस्त होता है। जैसाकि कहा गया है–

द्विपद राशि से भिन्न लग्न भी द्विपद राशि के नवमांश में शुभ होता है। यदि द्विपद लग्न हो तथा द्विपद से भिन्न नवमांश हो, तब वह अशुभ का एक कहा गया है। और भी कहते हैं–

यदि लग्न की नवमांश राशि अपने स्वामी ग्रह से दृष्ट न हो, तब पुरुष (वर) का विनाश होता है। इसी प्रकार यदि सप्तमभाव का नवमांश अपने स्वामी से दृष्ट न हो, तब कन्या का विनाश होता है।

लग्नांश से सप्तम भाव का भी उसके स्वामी ग्रह से दृष्ट होना आवश्यक माना गया है॥८॥

श्री भट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति में तिथिकरणगुण नामक निन्यानबे अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥९९॥

❑❑

१. अयमध्यायो बृहज्जातकेऽपि।

अथ[1] नक्षत्रजातकाध्यायो व्याख्यायते-१००

तत्रादावेवाश्विनीभरण्योर्जातस्य स्वभावमाह–

प्रियभूषणः स्वरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च।
कृतनिश्चयसत्यारुग्दक्षः सुखितश्च भरणीषु।।१।।

आरम्भ में अश्विनी और भरणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव कहते हैं–

जिस मनुष्य का जन्म अश्विनी नक्षत्र में होता है वह अलंकार का स्नेही, सुन्दर, सभी का प्रिय, सर्वकार्य करने में निपुण और बुद्धिमान होता है। भरणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक जिस कार्य को प्रारम्भ करता है उसको सिद्ध करनेवाला, सत्यवादी, निरोगी, चतुर और सुखी होता है।।१।।

प्रियभूषणोऽलङ्करणवल्लभः। स्वरूपः शोभनाकृतिः। सुभगः सर्वजनवल्लभः। दक्षःशीघ्रकारी। मतिमान् बुद्धिमान्। अष्टाङ्गबुद्धियुक्तः।

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।।इति।

एवंविधोऽश्विनीजातो भवति। तारकापेक्षया च बहुवचनम्। तथा च पराशरः–

विज्ञानवानरोगो भिषक् प्रदातार्थभृत्यवनितेशः।
दक्षः क्षितिपतिसेवी जातः स्यादाश्विने शूरः।

कृतनिश्चय इति। कृतनिश्चयः कार्याणामन्तगः। सत्यः सत्यवाक्। अरुक् स्वच्छेदहः। दक्षः शीघ्रकारी। सुखितः सञ्जातसुखः। एवंविधो भरणीषु जातो भवति। तथा च पराशरः–

धीरः क्रूरोऽनृतवाक् परवित्तहरो नरश्चपलबुद्धिः।
बहुशत्रुपुत्रभृत्यो याम्ये प्रियमांसमद्यश्च।।इति।।१।।

प्रियभूषण अर्थात् आभूषण का प्रेमी, स्वरूप अर्थात् सुन्दर आकृतिवाला सुभग अर्थात् सर्वप्रिय, दक्ष अर्थात् शीघ्रता से काम करने वाला, बुद्धिमान अर्थात् सभी आठ प्रकार से बुद्धि सम्पन्न।

सेवा करना, श्रवण करना तथा किसी विषय को ग्रहण कर उसका धारण करना, तर्क-वितर्क के द्वारा पदार्थ का सम्यक् ज्ञान करना और तात्विक ज्ञान को समझना; ये सभी बुद्धि के गुण होते हैं।

इस प्रकार से अश्विनी में उत्पन्न व्यक्ति बुद्धिमान होता है। अश्विनीनक्षत्र के तारों की संख्या के सापेक्ष बहुवचन का प्रयोग किया गया है। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

विज्ञानी, निरोगी, चिकित्सक, दानी, धनी, सेवक, स्त्री से युक्त रहता है।

अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न जातक कुशल, राजा का सेवक और साहसी होता है।

कृत निश्चय अर्थात् किसी कार्य को प्रयत्न-पूर्वक सम्पन्न करना, सत्य अर्थात् सत्यभाषी, अरुक् अर्थात् निरोग शरीर वाला, दक्ष अर्थात् शीघ्रता से काम करने वाला, सुखी अर्थात् जिसको सर्वविध सुख हो; इस प्रकार के गुणों से युक्त भरणी नक्षत्र का जातक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है-

धीर, क्रूर, मिथ्याभाषी, पराये धन का हरण करने वाला, चंचल, अनेकशत्रु, पुत्र और सेवकों वाला, मांस और मद्य का प्रेमी, भरणी नक्षत्र का जातक होता है।।१।।

अथ कृतिकारोहिण्योजार्तस्य स्वरूपमाह-

बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः।
रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियंवदः स्थिरः स्वरूपश्च।।२।।

कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव बतलाते हैं-

कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न जातक बहुत भोजन करने वाला, दूसरे की स्त्रियों के साथ रमण करने वाला, तेजस्वी तथा विख्यात होता है। रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक सत्यवादी, पवित्र, प्रियवादी, स्थिर बुद्धि वाला तथा सुन्दर रूपवाला होता है।।२।।

बहुभुक्, यःप्रभूतं भुङ्क्ते। परदाररतः परस्त्रीषु रतः। तेजस्वी सहिष्णुः। विख्यातः कीर्तियुक्तः। एवंविधः कृत्तिकासु जातो भवति। तथा च पराशरः-

धर्ममतिर्बहुवित्तः स्वाध्यायाभिजनरूपसम्पन्नः।
अकृपणमतिः शशियुते जातः स्यादग्निदैवत्ये।।

रोहिण्यामिति। सत्यः सत्यवाक्। शुचिः शास्त्रोक्तशौचानुष्ठानपरो धनाद्यलुब्धश्च। प्रियंवदोऽभिमतवक्ता। स्थिर एकमतिः। स्वरूप शोभनाकृतिः। एवंविधो रोहिण्यां जातो भवति। तथा च पराशरः-

सुतधनपशुमान् विद्वान् दाता धीरोऽल्पवाक् स्थिरमतिश्च।
वृषभगतिस्तेजस्वी प्राजापत्ये नरो जातः।।इति।।२।।

बहुभुक् अर्थात् प्रचुर भोजन करने वाला, परदाररत अर्थात् दूसरों की स्त्रियों में रमण करने वाला, तेजस्वी अर्थात् सहनशील और विख्यात अर्थात् यशस्वी; कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न जातक इस प्रकार का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है-

धार्मिक, धनी, अध्ययनशील, सुन्दर स्वरूपवान, दानी; इन गुणों से युक्त कृत्तिका नक्षत्र का जातक होता है।

रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक सत्यवादी, शुचि अर्थात् शास्त्रानुसार जीवनयापन करनेवाला, और धनसंग्रह आदि कार्यों में निर्लोभी, प्रियंवद अर्थात् अनुकूल बोलने

वाला, स्थिर अर्थात् एक निश्चयी तथा सुन्दर आकारवाला होता है। जैसा कि आचार्यपराशर ने कहा है–

रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न जातक सन्तान, धन और पशुओं से युक्त, विद्वान्, ज्ञाता, धीर, मितभाषी तथा स्थिर बुद्धि का होता है। यह शीघ्रगामी और तेजस्वी रहता है॥२॥

अथ मृगशिरआर्द्रयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी।
शठगर्वितचण्डकृतघ्नहिंस्रपापश्च रौद्रर्क्षे॥३॥

मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप कहते हैं–

मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न जातक चञ्चल, चतुर, भयभीत, पटु, उत्साही, धनी तथा भोगी होता है। आर्द्रानक्षत्र में उत्पन्न जातक शठ, अभिमानी, दूसरों के कृत्यों का नाशक, जन्तुओं का वध करने वाला तथा पापी होता है॥३॥

चपलोऽनेकमतिः। चतुरो दक्षः भीरुर्भयार्तः। पटुः प्रवक्ता। उत्साही सोद्यमः। धनी धनवान्। भोगी भोगसंयुक्तः। एवंविधो मृगशिरसि जातो भवति। तथा च पराशरः–

अतिशीलरूपदृष्टः सौम्यमतिः सोद्यमः श्रुतिरहस्यः।
चपलमतिः सुविनीतो जातः स्यादिन्दुदैवत्ये॥

शठगर्वितेति। शठः परकार्यविमुखः। गर्वितो मानी। चण्डः प्रकोपनः। कृतघ्नो निरुपकारशीलः। हिंस्रः क्रूरः। पापः पापसमेतः। एवंविधो रौद्रर्क्षे आर्द्रायां जातो भवति। तथा च पराशरः–

रौद्रः क्रूरः क्रोधी परदारार्थापहारशीलश्च।
वाग् निष्ठुरोऽतिधीरो जातः स्याद् रुद्रदैवत्ये॥ इति॥३॥

चपल अर्थात् चंचल बुद्धि, चतुर अर्थात् कार्य में दक्ष, भीरु अर्थात् डरपोक, पटु अर्थात् कुशल वक्ता, उत्साही अर्थात् क्रियाशील, धनवान, भोगयुक्त आदि गुणों से मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

चन्द्रमा के स्वामित्व वाले मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न जातक शीलवान, रूपवान, बुद्धिमान्, सक्रिय, वेदविद्, चंचलचित्त और नम्र होता है।

शठ अर्थात् परकार्य से विमुख, गर्वित अर्थात् अभिमानी, चण्ड अर्थात् क्रोधी, कृतघ्न अर्थात् किये गये उपकार को न मानने वाला, हिंसक, और पापकर्मी स्वभाव का आर्द्रानक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

रौद्र, क्रूर, क्रोधी परस्त्री तथा परधन लोलुप, कटुभाषी, अतिधीर अर्थात् गम्भीर स्वभाव, आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है॥३॥

अथ पुनर्वसुजातस्य स्वरूपमाह–

दान्तः सुखी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक् पिपासुश्च।
अल्पेन च सन्तुष्टः पुनर्वसौ जायते मनुजः।।४।।

पुनर्वसुनक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप कहते हैं–

पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न जातक इन्द्रियों को वश में रखने वाला, सुखी, सुन्दर स्वभाव वाला, दुर्बुद्धि, रोगी, तृष्णा से युक्त और थोड़े में प्रसन्न होने वाला होता है।।४।।

दान्तो दमसंयुक्तो जितेन्द्रियः। सुखी सुखितः। सुशीलः शोभनचरित्रः। दुर्मेधा दुष्टमतिः। रोगभाग् रोगपीड़ितः। पिपासुस्तृषार्तः। अल्पेन स्तोकमात्रेण सन्तुष्टो हृष्टः। एवंविधो मनुष्यः पुनर्वसौ जायत उत्पद्यते। तथा च पराशरः–

क्षयवृद्धिभावनायां यशांसि विदिशो भवन्ति कृच्छ्राणि।
व्याधिबहुलो बहुसुतः पुनर्वसौ जायते मनुजः।।इति।।४।।

दान्त अर्थात् इन्द्रियों का दमन करने वाला जितेन्द्रिय, सुखी, सुशील, दुर्मेध अर्थात् दुर्बुद्धियुक्त, रोग से पीड़ित, पिपासु अर्थात् अधिक प्यास लगने वाला, अल्पलाभ से ही सन्तुष्ट रहने वाला; इस प्रकार का स्वभाव पुनर्वसुनक्षत्र में उत्पन्न हुये व्यक्ति का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

हानि और लाभ के चिन्तन में संलग्न, सभी दिशाओं में यशस्वी, व्याधियुक्त दुर्बल शरीर तथा अनेक सन्तानों वाला पुनर्वसुनक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति होता है।।४।।

अथ तिष्यश्लेषयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी धर्मसंश्रितः पुष्ये।
शठसर्वभक्ष्यपापः कृतघ्नधूर्तश्च भौजङ्गे।।५।।

पुष्य और आश्लेषानक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप बतलाते हैं–

पुष्यनक्षत्र में उत्पन्न जातक शान्त प्रकृति वाला, सभी का प्रिय, पण्डित, धनी और धर्म से युक्त होता है। आश्लेषा में उत्पन्न जातक शठ, खाद्य और अखाद्य सब कुछ खाने वाला, पापी, उपकारक कृत्यों का नाशक, धूर्त होता है।।५।।

शान्तात्मा जितेन्द्रियः। सुभगः सर्वजनप्रियः। पण्डितः शास्त्रवित्। धनी वित्तवान्। धर्मसंश्रितो धार्मिकः। एवंविधः पुष्ये जातो भवति। तथा च पराशरः–

द्युतिकान्तिसत्त्वयुक्तो बहुश्रुतो दारदासधनचेष्टः।
विपुलकुलवंशकर्ता वक्ता पुष्ये नरो जातः।।

शठः परकार्यविमुखः। सर्वभक्ष्यः सर्वभक्षकः। पापःपापसमेतः विमुखः कृतघ्नो दुर्जनः। धूर्तः परवञ्चकः। एवंविधो भौजङ्गे श्लेषायां जातो भवति।

तथा च पराशरः–

स्वल्पगतिर्जिह्माक्षः क्रूरः क्रोधी नरः सदामर्षः।
दाता हन्ता भोक्ता सार्पे जातो बहुव्यसनः।।इति।।५।।

शान्तात्मा अर्थात् जितेन्द्रिय, सुभग सबका प्रिय, पण्डित अर्थात् शास्त्रों का ज्ञाता, धनी, धार्मिक, इस प्रकार का स्वरूप पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

प्रकाशमान स्वरूप, सात्विकता से युक्त, अनेक शास्त्रों का पण्डित, स्त्री-सेवक एवं धन के लिये प्रयत्नशील, उत्तम वंश को चलाने वाला तथा कुशलवक्ता, पुष्यनक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है।

शठ अर्थात् परकार्यहन्ता, सर्वभक्षी अर्थात् सभी प्रकार का आहार लेने वाला, पाप अर्थात् पाप कर्मों में संलग्न, कृतघ्न अर्थात् परोपकार को न मानने वाला दुर्जन, धूर्त अर्थात् दूसरों को ठगने वाला; इस प्रकार का स्वभाव आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

मन्दगति, कुटिलनेत्र, क्रूर, क्रोधी, घमंडी, दानशील, हिंसक, व्यसनी और भोगी स्वभाव, आश्लेषानक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति का होता है॥५॥

अथ मघापूर्वफल्गुन्योर्जातस्य स्वरूपमाह–

बहुभृत्यधनी भोगी सुरपितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये।
प्रियवाग् दाता द्युतिमानटनो नृपसेवको भाग्ये।।६।।

मघा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न जातकों का स्वरूप बतलाते हैं–

मघानक्षत्र में उत्पन्न जातक अनेक सेवकों वाला, धनी, भोगी, देवता और पिता का भक्त तथा उद्यमशील होता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न जातक मृदुभाषी, दयालु, कान्तिमान, यायावर और राजसेवक होता है॥६॥

बहुभृत्यः प्रभूतपरिवारः। बहुधनी अतिवित्तः। भोगी भोगसंयुक्तः। सुराणां देवानां पितृणां च भक्तः पूजाकरः। महोद्यमो महोत्साहः। एवंविधः पित्र्ये मघायां जातो भवति। तथा च पराशरः–

पितृभक्तः क्रोधवशो मात्रा पितृयज्ञसत्रयाजी च।
द्विचतुष्पद्मित्राढ्यो बह्वरिमित्रो नरः पित्र्ये।।

प्रियवागिति। प्रियवागभिमतवक्ता। दाता दानशीलः। द्युतिमान् कान्तियुक्तः। अटनः परिभ्रमणशीलः। नृपसेवको राजधनतत्परः। एवंविधो भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां जातो भवति। तथा च पराशरः–

बहुभाग्योऽल्पापत्यः सुभगः प्रियदर्शनो नरोऽल्पधनः।

नातिप्रबुद्धबुद्धिः परभाग्यविभुर्भवति भाग्ये।।इति।।६।।

बहुभृत्य अर्थात् प्रचुर परिवारवाला, बहुधनी अर्थात् अनेक प्रकार के धन से सम्पन्न, भोगी अर्थात् भोग्य पदार्थों में संलग्न, सुर अर्थात् देवता और पितरों का भक्त, महोद्यम अर्थात् अधिक उत्साह से सक्रिय रहने वाला; यह स्वभाव मघानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

पिता का भक्त, क्रोधी, माता-पिता के निमित्त यज्ञ करने वाला, मानव-पशु एवं मित्रों से युक्त तथा अनेक शत्रुओं का भी मित्र, इसप्रकार के स्वभावाला मघानक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति होता है।

प्रियवाग् अर्थात् समयानुकूल बोलने वाला, दाता अर्थात् दानपरायण, द्युतिमान् अर्थात् दीपित मुखमण्डल वाला, अटन अर्थात् भ्रमणशील, नृपसेवक अर्थात् राजकीय कार्यों में तत्पर; इस प्रकार के स्वभाव का जातक भाग्य अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न होता है। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

भाग्यशाली, अल्प सन्तान, सर्वप्रिय, प्रियदर्शी, अल्पधनी, सामान्य बुद्धिवाला तथा दूसरे के भाग्य से ऐश्वर्यशाली पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है; ।।६।।

अथोत्तरफल्गुनीहस्तयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

सुभगो विद्याप्तधनो भोगी सुखभाग् द्वितीयफल्गुन्याम्।
उत्साही धृष्टः पानपोऽघृणी तस्करो हस्ते।।७।।

उत्तराफल्गुनी तथा हस्तनक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप–

उत्तराफाल्गुनी में उत्पन्न जातक सर्वप्रिय, विद्वान्, धनी, भोगी और सुखी होता है। हस्तनक्षत्र में उत्पन्न जातक उत्साही, धृष्ट, मद्यप, क्रूर और तस्कर होता है।।७।।

सुभगः सर्वजनप्रियः। विद्याप्तधनो विद्ययाऽऽप्तं धनं वित्तं येन। भोगी भोगवान्। सुखभाक् सुखी। एवंविधो द्वितीयफल्गुन्यामुत्तरफल्गुन्यां जातो भवति। तथा च पराशरः–

हयगजरथप्रयायी दाता भोक्ता विहाररतिशीलः।
मृदुवाग्गीतरतिः स्यादार्यम्णे मानवो विद्वान्।।

उत्साही धृष्ट इति। उत्साही सोद्यमः। धृष्टः प्रगल्भः। पानपः पानसक्तः। अघृणी निर्दयः। तस्करश्चौरः। एवंविधो हस्ते जातो भवति। तथा च पराशरः–

उपचितकरचरणभुजो बहुविधधनधान्यताग्रणीः सेर्ष्यः।
धर्मार्थकामभागी हस्ते सुतवान् नरो जातः।।इति।।७।।

---

१. कृपालुरिति पाठान्तरम्।

सुभग अर्थात् सर्वप्रिय, विद्याप्तधन अर्थात् विद्या के माध्यम से धन प्राप्त करने वाला, भोगी और सुखी; यह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

हाथी, घोड़ा और रथ से यात्रा करनेवाला, दाता, भोगी, भ्रमणशील, कामी, मधुरभाषी, संगीत प्रेमी तथा विद्वान्; यह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव है।

उत्साही अर्थात् उद्यमशील, धृष्ट अर्थात् निर्भीक, पानप अर्थात् मदिरापान में आसक्त, अघृणी अर्थात् निर्दयी और तस्कर अर्थात् चोर स्वभाव वाला हस्त नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि महर्षि पराशर ने कहा है–

हस्त नक्षत्र में उत्पन्न जातक के हाथ और पैर लम्बे होते हैं। अनेक प्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण, ईर्ष्यालु, धर्म-अर्थ और काम का उपभोग करने वाला तथा सन्तानवान होता है।।७।।

अथ चित्रास्वात्योर्जातस्य स्वरूपमाह–

चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च चित्रायाम्।
दान्तो वणिक् [1]तृषालुः प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ।।८।।

चित्रा नक्षत्र में उत्पन्न जातक अनेक रंग के वस्त्रों एवं मालाओं को धारण करने वाला, सुन्दर नेत्र और शरीर वाला होता है। स्वाती नक्षत्र में उत्पन्न जातक इन्द्रियों को वश में रखने वाला, व्यापार करने वाला, दयालु, प्रियभाषी तथा धर्म के आश्रय में रहने वाला होता है।।८।।

चित्राणि नानाप्रकाराणि अम्बराणि वस्त्राणि माल्यानि च धारयति। सुलोचनाङ्गः शुभलोचने अक्षिणी अङ्गान्यवयवानि च यस्य। एवंविधश्चित्रायां जातो भवति। तथा च पराशरः–

वेदार्थशास्त्रकुशलः पशुमानत्यन्तशिल्पकर्मा च।
चित्राक्षश्चित्रायां सुभगश्च नरस्त्रिपुत्रश्च।।

दान्तो वणिगिति। दान्तो जितेन्द्रियः। वणिक् क्रयविक्रयकुशलः। तृषालुस्तृषार्तस्तृषां न सहते। अन्ये कृपालुर्दयालुरितीच्छन्ति। प्रियवागाभिमतवक्ता। धर्माश्रितो धर्मपरः। एवंविधः स्वातौ जातो भवति। तथा च पराशरः–

बहुजनभर्ता वक्ता त्रिवर्गभोक्ता प्रियो महोत्साहः।
वामाचारोऽल्परिपुः स्वातौ जातः कुलाग्र्यश्च।।इति।।८।।

चित्र अर्थात् अनेक वर्णों वाले अम्बर अर्थात् वस्त्रों को एवं मालाओं को धारण करने वाला, सुन्दर नेत्रों वाला तथा आकर्षण अङ्गों वाला; इस प्रकार का स्वरूप

चित्रानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

वैदिक शास्त्रों में दक्ष, पशुधन से युक्त, उत्तम शिल्पकर्मी, बहुवर्णी नेत्रों वाला, सर्वप्रिय तथा स्त्री एवं पुत्रसम्पन्न जातक चित्रा नक्षत्र में उत्पन्न होता है।

दान्त अर्थात् जितेन्द्रिय, वणिक् अर्थात् व्यापारी, तृषालु अर्थात् अधिक प्यास लगने वाला अर्थात् पिपासु, पाठान्तर के अनुसार 'कृपालु' अर्थात् दयालु, प्रियवाग् अर्थात् समयोचित वक्ता, धर्माश्रित अर्थात् धर्म परायण; इस प्रकार का स्वभाव स्वाती नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि महर्षि पराशर कहते हैं।

जनों का स्वामी, वक्ता, त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) का भोगी, सुन्दर, उत्साही वाममार्गी, थोड़े शत्रुओं वाला, अपने कुल में श्रेष्ठ; ऐसा स्वभाव स्वतीनक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है॥८॥

अथ विशाखानुराधयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

ईर्षुर्लुब्धो द्युतिमान् वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु।
आढ्यो विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु॥९॥

विशाखा और अनुराधानक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप कहते हैं–

विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न जातक दूसरों की उन्नति में मत्सर, कान्तिमान, वाक्पटु तथा कलहप्रिय होता है। अनुराधानक्षत्र में उत्पन्न जातक धनवान, परदेश में रहने वाला, क्षुधा से पीड़ित तथा भ्रमणशील होता है॥९॥

ईर्षु परद्विट् मत्सरः। लुब्धो लोभाभिभूतः। द्युतिमान् कान्तियुक्तः। वचनपटुः सम्भाषणदक्षः। कलहकृत् कलहशीलः। एवंविधो विशाखासु जातो भवति।

तथा च पराशरः–

श्रीमानीज्याभिरतः प्राज्ञोऽनुपसाधुकृत् कृतार्थपतिः।
तीक्ष्णोऽभिमानयुक्तश्चैन्द्राग्नौ ख्यातकीर्तिश्च॥

आढ्य इति। आढ्य ईश्वरः। विदेशवासी परदेशनिवसनशीलः। क्षुधालुः क्षुधां बुभुक्षां न सहते। अटनः परिभ्रमणशीलः। एवंविधोऽनुराधासु जातो भवति। तथा च पराशरः–

स्थिरमित्रस्तेजस्वी सुतवानत्यन्तसौख्यभागी च।
ज्ञातिष्वग्र्योऽर्थपरो जातः स्याद् मित्रदैवत्यै॥इति॥९॥

ईषु अर्थात् दूसरे से द्वेष करने वाला, लुब्ध अर्थात् लोभग्रस्त, द्युतिमान, अर्थात् सुन्दर कान्ति वाला वचनपटु अर्थात् वार्तालाप में निपुण, झगड़ालू यह स्वभाव विशाखानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

श्रीसम्पन्न, यज्ञकर्ता, बुद्धिमान, परोपकारी, धनी, मेधावी, स्वाभिमानी और

यशस्वी स्वभाव का विशाखानक्षत्र में उत्पन्नजातक होता है।

आढ्य अर्थात् धन-सम्पन्न, परदेश में निवास करने वाला क्षुधालु अर्थात् भूख से पीड़ित, अटन अर्थात् यायावर; इस प्रकार का स्वभाव अनुराधानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसा कि आचार्य पराशर ने कहा है–

दृढ़ मित्रता वाला, तेजस्वी, सन्ततिवान, अत्यन्त सुखी, कुल में श्रेष्ठ और धनी; यह, स्वभाव अनुराधानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है॥९॥

अथ ज्येष्ठामूलयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

ज्येष्ठासु न बहुमित्रः सन्तुष्टो धर्मकृत् प्रचुरकोपः।
मूले मानी धनवान् सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी॥१०॥

ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव कहते हैं–

ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न जातक अधिक मित्रों से रहित, सन्तुष्ट, धर्म करने वाला और अधिक क्रोध करने वाला होता है। मूलनक्षत्र में उत्पन्न जातक मानी, धनवान सुखी, हिंसा कर्म से रहित, बुद्धि वाला तथा भोगी होता है॥१०॥

न बहुमित्रः स्वल्पसुहृत्। सन्तुष्टः सन्तोषशीलः। धर्मकृद्धर्मानुरतः। प्रचुरकोपः क्रोधशीलः। एवंविधो ज्येष्ठासु जातो भवति। तथा च पराशरः–

ज्ञातिषु गुणेषु राजसु पूजां प्राप्नोति नाशयति शत्रून्।
तेजोऽधिकोऽर्थभागी जातः स्यादिन्द्रदैवत्ये॥

मूले मानी धनवानिति। मानी गर्वितः। धनवान् वित्तवान्। सुखी सुखितः न हिंस्रोऽक्रूरः। स्थिर एकमतिः। भोगी भोगवान्। एवंविधो मूले जातो भवति। तथा च पराशरः–

धनधान्याढ्यो दाता परवित्तहरो नरः कलहशीलः।
क्रूरः परोपतापी मूले मूलोपजीवी च॥इति॥१०॥

अधिक मित्रों का अभाव, सन्तोष करने वाला, धार्मिक कार्यों में अनुरक्त, तथा प्रचुरकोप अर्थात् अधिक क्रोध करने वाला; यह स्वभाव ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न जातक अपने कुल में तथा अपने गुणों के द्वारा राजाओं द्वारा पूजित होता है। शत्रुओं का संहार करता है। तेजस्वी तथा धनी होता है।

मूलनक्षत्र में उत्पन्न जातक अभिमानी और धनवान होता है। सुखी और अहिंसक, दृढ़ बुद्धिवाला तथा भोगी होता है। जैसा कि आचार्य पराशर ने कहा है–

---

१. मानी इति पाठान्तरम्।

मूलनक्षत्र में उत्पन्न जातक धन-धान्य से सम्पन्न, दयालु, पराये धन का अपहर्ता, कलहशील, क्रूर, दूसरों को कष्ट देने वाला, फल-मूल का सेवन करने वाला होता है॥१०॥

अथ पूर्वाषाढोत्तराषाढयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

इष्टानन्दकल[1]त्रो वीरो दृढ़सौहृदश्च जलदेवे।
वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च॥११॥

पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव कहते हैं–

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न जातक अपने अभीष्ट आनन्द को देने वाली स्त्री से युक्त, अभिमानी तथा घनिष्ठ मित्रों से युक्त होता है। उत्तराषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न जातक विशेष विनम्रस्वभाव वाला, धार्मिक, बहुत से मित्रों से युक्त, दूसरे द्वारा किये गये उपकार को मानने वाला तथा सबका प्रिय होता है॥११॥

इष्टं वल्लभं सानन्दं कलत्रं भार्या यस्य। वीरः सङ्ग्रामशूरः। केचिद् मानी गर्वीतीच्छन्ति। दृढसौहृदः स्थिरमित्रः। एवंविधो जलदेवे पूर्वाषाढायां जातो भवति। तथा च पराशर–

सलिलपथकर्मसिद्धः क्लेशसहिष्णुः परस्य दारेच्छुः।
नित्यमकल्पशरीरः प्रियमद्यः पूर्वषाढासु॥

वैश्वे विनीत इति। विनीतो विनयोपेतः। धार्मिको धर्मपरः। बहुमित्रः प्रभूतसुहृत्। कृतज्ञः प्रत्युपकारनिरतः। सुभगः सर्वजनप्रियः। एवविधो वैश्वे उत्तराषाढायां जातो भवति। तथा च पराशरः–

यानोद्यानवनरतिः प्रवाससुरतीर्थसाधुसेवी च।
बहुशिल्पार्थः प्रियवाग् जातः स्याद् वैश्वदेवे च॥११॥

इष्ट अर्थात् मनोनुकूल आनन्द को प्रदान करने वाली कलत्र अर्थात् पत्नीवाला, वीर अर्थात् युद्ध करने वाला; कतिपय आचार्य मानी अर्थात् अहंकारी कहते हैं। दृढ़ मित्रता वाला; इस प्रकार के स्वभाव का जातक पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

जलयान कर्म में कुशल, दुःखों को सहने वाला, परस्त्रीगामी, निरोग शरीर वाला और मद्यपायी; यह स्वभाव पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है।

वैश्व अर्थात् उत्तराषाढ़ नक्षत्र में उत्पन्न जातक विनम्र, धर्मपरायण, अनेक मित्रों वाला, कृतज्ञ अर्थात् परोपकार को मानने वाला तथा सुभग अर्थात् सर्वप्रिय होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

वाहन, उद्यान तथा वन में विचरण करने वाला, प्रवासी, देवता-तीर्थ एवं

साधुओं की सेवा करने वाला, विविध शिल्पों का ज्ञाता, मधुरभाषी; इस प्रकार के स्वभाव वाला जातक उत्तराषाढ़ में उत्पन्न होता है॥११॥

अथ श्रवणधनिष्ठयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

श्रीमान् श्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः।
दाताऽऽढ्यशूरगीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः॥१२॥

श्रवण तथा धनिष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव कहते हैं–

श्रवणनक्षत्र में उत्पन्न जातक श्रीमान् पण्डित, उदार स्त्री से युत, धनी तथा विख्यात होता है। धनिष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक दानी, धनी, गीत-वाद्यादि का प्रेमी तथा लोभी होता है॥१२॥

श्रीमानीश्वरः श्रुतवाक् पण्डितः। उदारदार उदारेषु दारः। अथवोदारा दारा यस्य। उदारा दातारः। धनान्वितो धनसंयुक्तः। ख्यातः कीर्तियुक्तः। एवं श्रवणे जातो भवति। तथा च पराशरः–

ज्ञातिश्रेष्ठो धनवान् दानरुचिर्भवति दक्षिणो दक्षः।
नित्यमरोगशरीरः श्रवणे हतशत्रुपक्षश्च॥

दाताऽऽढ्यशूरेति। दाता दानशीलः। आढ्य ईश्वरः, शूरः सङ्ग्रामप्रियः, गीतप्रियो स्वरगीतरतिः। धनलुब्धा वित्तलोभाभिभूतः। एवंविधो धनिष्ठासु जातो भवति। तथा च पराशरः–

धनधान्यसञ्चयानामीशः स्यान्नृपतिसत्कृतो यज्वा।
अक्लेशभाग् जितरिपुः श्रविष्ठयाभीष्टतारश्च॥इति॥१२॥

श्रीमान् अर्थात् सम्पन्न, श्रुतवाक् अर्थात् वेद पण्डित, उदारदार अर्थात् स्त्रियों के प्रति दयालु अथवा जिसकी स्त्री उदार हो अथवा उदार होकर दान देने वाला, धनान्वित अर्थात् धन से सम्पन्न और विख्यात यशस्वी; इस प्रकार के लक्षणों वाला श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

श्रवणनक्षत्र में उत्पन्न जातक कुल में श्रेष्ठ, धनी, दानी, दयालु, कुशल, निरोग और शत्रुदल का संहारक होता है।

दाता अर्थात् दान परायण, आढ्य अर्थात् धनी, शूर अर्थात् संग्रामप्रिय, गीतप्रिय अर्थात् शास्त्रीयस्वर-सन्धान का प्रेमी और धनका लोभी; इस प्रकार का स्वरूप धनिष्ठानक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

धनिष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक धन-धान्य का संग्रह करने में कुशल, राजा से सम्मानित, यज्ञकर्ता, सुखी और शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला और भाग्यवान्

होता है॥१२॥

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदयोर्जातस्य स्वरूपमाह–

स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषक्सु दुर्ग्राह्यः।
भद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनपटुरदाता च॥१३॥

शतभिषा तथा पूर्वभाद्र पदनक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वरूप कहते हैं–

शतभिषानक्षत्र में उत्पन्न जातक स्पष्टवादी, अनेक व्यसनों में आसक्त, शत्रुओं का विनाशक, साहसी एवं कष्टपूर्वक किसी के वश में आने वाला होता है। पूर्वभाद्रपदनक्षत्र में उत्पन्न जातक दुःखी चित्तवाला,स्त्री के वशीभूत रहने वाला, धनी, पण्डित तथा कृपण होता है॥१३॥

स्फुटवाग् निष्ठुरभाषी। व्यसनी भूषणादिव्यसनोपेतः। रिपुहा शत्रुहर्ता। साहसिकः असमीक्षितवीर्यवान् दुर्ग्राह्यो दुराराध्यः। एवंविधः शतभिषक्सु जातो भवति। तथा च पराशरः–

परदारमद्यसेवी क्लेशसहो वारुणे नरो धीरः।
स्थिरसञ्चयः स्थिरसुहृद्भिषक्क्रियापण्डितो रोगी॥

भद्रपदास्विति। उद्विग्नो दुःखितः। स्त्रीजितधनः स्त्रिया जितं धनं यस्य स्त्रीभिर्वा। पटुः प्रवक्ता। अदाता च लुब्धः। एवंविधो भद्रपदासु जातो भवति। तथा च पराशरः–

दारुणकर्मा क्रोधी निशाचरस्तीक्ष्णविक्रमश्चपलः।
विषमः प्रसह्य हन्ता प्राक्प्रोष्ठपदे भवति जातः॥इति॥१३॥

स्फुटवाग् अर्थात् कठोर बोलने वाला, व्यसनी अर्थात् आभूषण वस्त्रादि का प्रेमी, शत्रुहन्ता, साहसी अर्थात् बिना विचारे शक्तिप्रयोग करने वाला, दुर्ग्राह्य अर्थात् कठिनाई से किसी की बात मानने वाला; इस प्रकार के लक्षणों वाला शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

शतभिषानक्षत्र में उत्पन्न जातक परदार अर्थात् दूसरे की स्त्री तथा मद्य अर्थात् सुरा का सेवन करने वाला, क्लेश को सहन करने वाला, धैर्यवान, स्थायी सम्पत्तिवाला, घनिष्ठ मित्रतावाला, आयुर्वेदशास्त्र का ज्ञाता तथा रोगी होता है।

पूर्वभाद्रपदनक्षत्र में उत्पन्न जातक उद्विग्न अर्थात् दुःखित, स्त्रीजितधन अर्थात् जिसका धन स्त्रियों के द्वारा जीत लिया जाता है, पटु अर्थात् प्रवक्ता, कृपण तथा लोभी स्वभाव का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

भयंकर कर्मों को करने वाला, क्रोधी, रात्रि में विचरण करने वाला, क्रूर, पराक्रमी और चंचल, दुर्हन्ता; इस प्रकार का स्वभाव पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है॥१३॥

अथोत्तरभद्रपदारेवत्योर्जातस्य स्वरूपमाह–

वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीयासु।
सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरः शुचिरर्थवान् पौष्णे।।१४।।

उत्तरभाद्रपद तथा रेवतीनक्षत्र में उत्पन्न जातक का स्वभाव कहते हैं–

उत्तरभाद्रपदानक्षत्र में उत्पन्न जातक वक्ता, सुखी, सन्ततिवान, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला तथा धार्मिक होता है। रेवतीनक्षत्र में उत्पन्न जातक सम्पूर्ण अङ्गों से युक्त, सबका प्रिय, वीर, पवित्र तथा धनवान होता है।।१४।।

वक्ता सम्भाषणदक्षः। सुखी सुखभाक् प्रजावान् पुत्रपौत्रदौहितृसंयुक्तः। जितशत्रुर्जिताः शत्रवो रिपवो येन। धार्मिको धर्मरतः एवंविधो द्वितीयासूत्तरासु जातो भवति। तथा च पराशरः–

नृपसत्कृतो बहुसुतः प्रदानशीलो जले सततभीरुः।
ईज्याध्ययनरतिः स्यादाहिर्बुध्न्ये नरो जातः।।

सम्पूर्णाङ्ग इति सम्पूर्णाङ्गोऽविकलावयवः। सुभगः सौभाग्ययुक्तः। शूरः सङ्ग्रामप्रियः। शुचि; शौचयुक्तः परस्वाद्यलुब्धः। अर्थवान् धनोपेतः। एवंविधः पौष्णे रेवत्यां जातो भवति। तथा च पराशरः–

सर्वार्थभुक् प्रदाता प्रवासनिरतो विशुद्धकुलशीलः।
गोमाननल्पपुत्रः पौष्णे विद्वान् नरो जातः।।इति।[1]१४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्रजातकं
नाम शततमोऽध्यायः।।१००।।

वक्ता अर्थात् वार्तालाप में निपुण, सुखी, प्रजावान अर्थात् पुत्र-पौत्र, दौहित्र आदि से युक्त जितशत्रु अर्थात् शत्रुओं को जीतने वाला तथा धार्मिक अर्थात् धर्मकार्य में निरत रहने वाला; इस प्रकार का स्वभाव उत्तरभाद्रपद नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

राजाओं द्वारा सम्मानित, बहुत से पुत्रों वाला, दान देने वाला, सदैव भयभीत रहने वाला, यज्ञ करने वाला, अध्ययनशील; इस प्रकार का स्वभाव उत्तरभाद्रपद नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है।

सम्पूर्णाङ्ग अर्थात् अविकल अवयवों वाला जिसके समस्त अङ्ग-प्रत्यंग पूर्ण हों), सुभग अर्थात् भाग्यवान, शूर अर्थात् युद्धप्रिय, शुचि अर्थात् पवित्रता से युक्त, दूसरे के धन का अलोभी, धनी; इस प्रकार का स्वभाव पौष्ण अर्थात् रेवती नक्षत्र में उत्पन्न जातक का होता है। जैसाकि आचार्य पराशर ने कहा है–

---

१. बृहज्जातकस्य १ अध्याये ४ श्लोकः।

सर्वार्थ भोगी, दानी, प्रवास करने वाला, श्रेष्ठ कुल एवं विचार का, गोपालक, अनेक सन्तानवाला और विद्वान्, रेवती नक्षत्र में उत्पन्न जातक होता है॥१४॥

श्रीभट्टोत्पल विरचित संहिताविवृति में नक्षत्रजातक नामक १००वें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥१००॥

❑❑

अथ राशिविभागो व्याख्यायते १०१

तत्रादावेव मेषवृषयोर्नक्षत्रजातप्रविभागमाह–

अश्विन्योऽथ भरण्यो बहुलापादश्च कीर्त्यते मेषः।
वृषभो बहुलाशेषं रोहिण्योऽर्धं च मृगशिरसः॥१॥

राशिविभाग नामक १०१ अध्याय की हिन्दी व्याख्या की जाती है–

आरम्भ में मेष और वृष राशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

अश्विनी के चार पाद, भरणी के चार पाद तथा कृत्तिका का आद्य पाद मेष राशि तथा कृत्तिका के शेष तीनपाद, रोहिणी के चार पाद तथा मृगशिरा नक्षत्र के प्रथम दो पाद वृषराशि हैं॥१॥

अश्विन्यः सकलाः पादचतुष्टयम्। अथशब्दश्चार्थे। भरण्यः सकला एव पादचतुष्टयम् बहुला कृत्तिका। तस्याश्चतुर्थमंशम्। एष मेष इति मेषराशिः कीर्त्यते कथ्यते। अत्र नक्षत्र चतुष्पादम्। पादमृक्षद्वयं राशिर्भवति। एवं नक्षत्र-नवपादाः प्रत्येकस्य राशेः प्रमाणम्। उक्तं च[1]–"मेषाश्विप्रथमा नवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयः" इति। बहुलाशेषं कृत्तिकापादत्रयम्। रोहिणी सकला। अर्धं मृगशिरसो मृगशिरसः पादद्वयं वृषभो राशि; कीर्त्यते॥१॥

अश्विनीक्षत्र के सकल अर्थात् चारों पाद, यहाँ पर 'अथ' शब्द 'च' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। और भरणी के सकल अर्थात् चारों पाद, बहुला अर्थात् कृत्तिकानक्षत्र का चतुर्थ भाग अर्थात् प्रथमपाद; ये मेष राशि के मान कहे गये हैं। एक नक्षत्र के चार पाद होते हैं। दो नक्षत्रों और एक पाद की एक राशि होती है। इस प्रकार नक्षत्रों के नौ पाद (चरण) की एक राशि होती है। कहा गया है–अश्विनीनक्षत्र के प्रथम चरण से आरम्भकर नौ चरणों की मेषराशि होती है। शेष राशियाँ भी नौ-नौ चरणों की होती हैं। बहुला अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र का अवशिष्ट तीन चरण सम्पूर्ण रोहिणी और मृगशिरा का पूर्वार्द्ध दो चरण मिलकर वृष राशि होती है॥१॥

---

१. बृहज्जातकस्य १ अध्याये ४ श्लोकः।

अथ मिथुनकर्कटयोर्नक्षत्रविभागमाह–

मृगशिरसोऽर्धं रौद्रं पुनर्वसोरंशकत्रयं मिथुनः।

पादश्च पुनर्वसुतस्तिष्यः श्लेषा च कर्कटकः।।२।।

मिथुन तथा कर्कराशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

मृगशिरानक्षत्र के शेष दो चरण, आर्द्रा के चार चरण तथा पुनर्वसु के प्रथम तीन चरण मिथुन राशि तथा पुनर्वसु का शेष एक चरण, पुष्य के चार चरण तथा आश्लेषा के चार चरण कर्क राशि के होते हैं॥२॥

मृगशिरसोऽर्धं पादद्वयम्। रौद्रमार्द्रा सकला। पुनर्वसोरंशकत्रयम्। एष मिथुनराशिः। पादश्चेति। पुनर्वसुतः पुनर्वसोः पादः, तिष्यः सकलः। श्लेषा च सकला। एष कर्कटराशिः।।२।।

मृगशिरा नक्षत्र के उत्तरार्ध दो चरण, रौद्र अर्थात् आर्द्रानक्षत्र के सकल अर्थात् सम्पूर्ण चारों चरण तथा पुनर्वसु नक्षत्र के प्रथम तीन चरण; ये मिथुनराशि के नव चरण होते हैं। पुनर्वसु का अन्तिमचरण, तिष्य अर्थात् पुष्यनक्षत्र के चार चरण तथा आश्लेषनक्षत्र के चार चरण; ये कर्क राशि के कहे गये हैं॥२॥

सिंहकन्ययोर्नक्षत्रविभागमाह–

सिंहोऽथ मघा पूर्वा च फल्गुनीपाद उत्तरायाश्च।

तत्परिशेषं हस्तश्चित्राद्यर्धं च कन्याख्यः।।३।।

सिंह और कन्या राशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

मघा के चार, पूर्वाफाल्गुनी के चार चरण तथा उत्तरफाल्गुनी का प्रथमचरण सिंह राशि का होता है। उत्तराफाल्गुनी के शेष तीन चरण, हस्त के चार चरण तथा चित्रानक्षत्र के पूर्वार्ध दो चरण कन्या राशि के होते हैं।।३।।

मघा सकला। पूर्वा च फल्गुनी सकला। उत्तरायाश्च पादः इति सिंहः। तत्परिशेषमिति। तदित्युत्तरायाः परामर्शः। तत्परिशेषमुत्तरापादत्रयम्। हस्तः सकलः। चित्राया अर्धं प्रथमं पादद्वयम्। इति कन्याराशिः॥३॥

मघानक्षत्र के चार चरण, पूर्वाफोल्गुनी के चार चरण तथा उत्तराफाल्गुनी का प्रथम चरण; ये सिंह राशि का तथा तद्शब्द से उत्तरानक्षत्र अवगम्य है। इसलिये तत्परिशेष का तात्पर्य है-

उत्तराफाल्गुनी के अवशिष्ट तीन चरण, हस्तनक्षत्र के चार चरण तथा चित्रा के प्रथम दो चरण; ये कन्या राशि के होते हैं॥३॥

अथ तुलावृश्चिकयोर्नक्षत्रविभागमाह–

तौलिनि चित्रान्त्यार्धं स्वातिः पादत्रयं विशाखायाः।

अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा।।४।।

तुला तथा वृश्चिकराशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

चित्रा के उत्तरार्ध के दो चरण, स्वाति के चार चरण तथा विशाखा के आद्य तीन चरण तुलाराशि के होते हैं। विशाखा का अन्तिम चरण, अनुराधा के चार चरण तथा ज्येष्ठानक्षत्र के चार चरण वृश्चिक राशि के हैं।।४।।

चित्राया अन्त्यमर्धं पश्चिमं पादद्वयम्। स्वातिः सकला। विशाखायाः पादत्रयम्। एतत्तौलिनि तुले स्थितम्। विशाखायाः पश्चिमः पादः। अनुराधा सकला। तथा तयान्विता संयुक्ता ज्येष्ठा सकलैव। एतदलिनि वृश्चिके।।४।।

चित्रा नक्षत्र के अन्त्यमर्ध अर्थात् उत्तरार्ध के दो चरण, स्वाति के चार चरण, विशाखा के तीन चरण; ये तुलाराशि के होते हैं। विशाखा नक्षत्र का अन्तिम चरण, अनुराधा के चारों चरण तथा ज्येष्ठा नक्षत्र के चारों चरण मिलकर वृश्चिक राशि होती है।।४।।

अथ धन्विमकरयोर्नक्षत्रविभागमाह–

मूलमषाढा पूर्वा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी।
मकरस्तत्परिषेशं श्रवणः पूर्वं धनिष्ठार्धम्।।५।।

धनु तथा मकराशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

मूलनक्षत्र के चार चरण, पूर्वाषाढ़ के चार चरण तथा उत्तराषाढ का एक चरण धनुराशि का होता है। उत्तराषाढ़ के तीन चरण, श्रवण के चार चरण तथा धनिष्ठा के प्रथम दो चरण मकर राशि के होते हैं।।५।।

मूलं सकलम्। अषाढा पूर्वा सकलैव। उत्तरांशकः प्रथम आद्यपादः। एष धन्वी। मकरस्त्परिशेषमिति। तदित्युत्तरायाः परामर्शः। तत्परिशेषमुत्तरापादत्रयमन्त्यम्। श्रवणः सकलः। पूर्वं धनिष्ठार्धम्। धनिष्ठाया आद्यं पादद्वयम्। एष मकरः।।५।।

मूलनक्षत्र के चारों चरण, पूर्वाषाढा के चारों चरण तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का प्रथम अर्थात् आदि चरण; ये धनु राशि के हैं। तत्शब्द से उत्तराषाढनक्षत्र अभिप्रेत है। उसका शेष भाग अर्थात् उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्तिम तीन चरण, श्रवण के चार चरण तथा धनिष्ठा के पूर्वार्ध दो चरण; ये मकर राशि के होते हैं।।५।।

अथ कुम्भमीनयोर्नक्षत्रविभागमाह–

कुम्भोऽन्त्यधनिष्ठार्धं शतभिषगंशत्रयं च पूर्वायाः।
भद्रपदायाः शेषं तथोत्तरा रेवती च झषः।।६।।

कुम्भ तथा मीनराशि के नक्षत्रों का विभाग बतलाते हैं–

धनिष्ठा के उत्तरार्ध के दो चरण, शतभिषा के चार चरण तथा पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र के प्रथम तीन चरण कुम्भ राशि तथा पूर्वाभाद्रपद का अवशेष एक चरण

उत्तराभाद्रपद के चार चरण तथा रेवती के चार चरण मीन राशि के होते हैं॥६॥

धनिष्ठायामन्त्यमर्धं पश्चिमं पादद्वयम्। शतभिषक् सकला। पूर्वाया अंशत्रयमाद्यं पादत्रयम्। एषः कुम्भः। भद्रपदायाः शेषमिति। शेषमिति। भद्रपदायाः पूर्वभद्रपदायाः शेषमेकमंशम्। तथोत्तरा सकला। रेवती च सकलैव। एषः झषो मीन इति।।६।।

धनिष्ठानक्षत्र का उत्तरार्ध दो चरण, शतभिषा के चार चरण तथा पूर्व भाद्रपदनक्षत्र के आरम्भ के तीन चरण मिलकर कुम्भराशि होती है। भाद्रपदा का शेष अर्थात् पूर्वभाद्रपदनक्षत्र का अन्तिम चरण उत्तरभाद्रपद के चार चरण तथा रेवती नक्षत्र के चारों चरण मिलाकर मीन राशि होती है॥६॥

अथैतदेव संक्षेपेणाह–

अश्विनीपित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः।
विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम्।।७।।

अब इसका संक्षिप्त सूत्र बतलाते हैं–

अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्र के प्रथम चरण से आरम्भ होकर क्रमशः मेष, सिंह और धनुराशि प्रारम्भ होती है। तथा विषम नक्षत्र से एक-एक चरण वृद्धि करके समाप्त होती है॥७॥

मेषादयश्चत्वारः। सिंहादयश्चत्वारः। हयादयश्चत्वार एव। अश्विन्यादौ मेषस्यादि। पित्र्यादौ सिंहस्यादि। मूलादौ हयादि धनुषः प्रारम्भः। ते च यथोत्तरं पादवृद्ध्या स्थिताः। विषमर्क्षात् तृतीयपञ्चमसप्तमनवमनक्षत्राद्यथोत्तरं पादवर्धनेन स्थिताः। निवर्तन्ते निवृत्तिं यान्ति। यथा कृत्तिका गणनया अश्विन्यादितृतीयनक्षत्रम्। तत्प्रथमपादे मेषस्य निवृत्तिः समाप्तिः। मृगशिरो गणनया पञ्चमः। तत्पादद्वये वृषस्य निवृत्तिः। पुनर्वसुगर्णनया सप्तमः। तत्पादत्रये मिथुनस्य निवृत्तिः। श्लेषा गणनया नवमः। तत्पादचतुष्टये कर्कटस्य निवृत्तिः। एवं सिंहधनुषोर्योज्यमिति।।७।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ राशिविभागो नामैकशततमोऽध्यायः॥१०१॥

मेषादि चार, सिंहादि चार तथा धनु आदि चार' इन बारह राशियों में अश्विनी के प्रथम चरण से मेषराशि का आरम्भ होता है। मघानक्षत्र के प्रथमचरण से सिंहराशि का आरम्भ होता है। मूलनक्षत्र के प्रथम चरण से हय अर्थात् धनुराशि का आरम्भ होता है। ये सभी उत्तरोत्तर चरण वृद्धि के क्रम से होते हैं। विषम नक्षत्र अर्थात् ३,५,७,९ से उत्तरोत्तर एक-एक चरण की वृद्धि होती है। इस क्रम से इनकी निवृत्ति अर्थात् पूर्णता होती है। यथा–अश्विनीनक्षत्र से आरम्भकर गणना करने पर कृत्तिका तृतीयनक्षत्र है। कृत्तिका के प्रथम चरण में मेष राशि की निवृत्ति अर्थात् समाप्ति होती

है। क्रम गणना के अनुसार मृगशिरा पंचम नक्षत्र है। उसके दो चरण पर वृष राशि की समाप्ति होती है। अश्विन्यादि गणना क्रम में पुनर्वसु सप्तम नक्षत्र है। इसके तृतीय चरण पर मिथुन राशि की समाप्ति होती है। इसी क्रम गणना में श्लेषानक्षत्र नवम नक्षत्र है। इसके चतुर्थ चरण पर कर्कराशि की समाप्ति होती है। इसी विधि से सिंह और धनुषराशि के नक्षत्रों की भी योजना करनी चाहिये॥७॥

श्रीभट्टोत्पल विरचित संहिताविवृति में राशि विभाग नामक
१०१ वें अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

❑❑

अथ प्रसङ्गागतं विन्ध्यवासिकृतं विवाहपटलं व्याख्यायते—१०२

तत्रादावेव लग्नस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह—

मूर्तौ करोति दिनकृद्विधवां कुजश्च।
राहुर्विपन्नतनयां रविजो दरिद्राम्।
शुक्रः शशाङ्कतनयश्च गुरुश्च साध्वी-
मायुःक्षयं प्रकुरुतेऽथ विभावरीशः॥१॥

लग्न में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं—

यदि विवाहकालिक लग्न में सूर्य या मंगल बैठा तो विधवा, राहु हो तो मृतवत्सा, शनि हो तो दरिद्र; शुक्र, बुध अथवा गुरु बैठा हो, तो साध्वी तथा चन्द्रमा हो, तो नष्ट आयु वाली कन्या होती है॥१॥

दिनकृदादित्यो मूर्तौ वैवाहिके लग्ने स्थितो विधवां मृतभर्तृकां कन्यकां करोति। कुजोऽङ्गारकश्चशब्दाद्विधवामेव करोति। राहुः सैहिकेयो विपन्नतनयां मृतपुत्रां करोति। रविजो दरिद्रां निर्धनाम्। शुक्रो भार्गवः। शशाङ्कतनयो बुधः। गुरुश्च जीवः। एते साध्वीं सच्छीलां कुर्वन्ति। विभावरी रात्रिः, तस्या ईशश्चन्द्रः। आयुषो जीवितस्य क्षयं विनाशं प्रकुरुते॥१॥

दिनकृत् अर्थात् सूर्य विवाह कालिक लग्न में स्थित हो, तो कन्या विधवा, अर्थात् मृतपतिका होती है। कुज अर्थात् मंगल भी लग्नस्थ हो, तो विधवा बनाता है। लग्नस्थ राहु कन्या को मृतवत्सा बनाता है। रविज अर्थात् शनि के होने से निर्धनता रहती है। शुक्र, शशांकतनय अर्थात् बुध और गुरु; ये तीन ग्रह लग्नस्थ होकर, सुशीला बनाते हैं। विभावरी अर्थात् रात्रि उसका स्वामी (ईश) चन्द्रमा आयु का विनाश करता है॥१॥

अथ द्वितीयस्थानस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह—

कुर्वन्ति भास्करशनैश्चरराहुभौमा
दारिद्र्यदुःखमतुलं नियतं द्वितीये।
वित्तेश्वरीमविधवां गुरुशुक्रसौम्या
नारीं प्रभूततनयां कुरुते शशाङ्कः।।२।।

द्वितीय भाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं-

यदि विवाहकाल में लग्न से द्वितीय भाव में सूर्य, शनि, राहु या मंगल बैठा हो तो सदैव दारिद्र्य दुःख से युत; गुरु, शुक्र अथवा बुध हो तो धनवती, वैधव्यरहित तथा चन्द्रमा हो, तो अधिक सन्तान वाली स्त्री को करता है॥२॥

द्वितीये लग्नाद् द्वितीयस्थाने। भास्करः आदित्यः। शनैश्चरः सौरिः। राहुः सैहिकेयः। भौमोऽङ्गारकः। अतुलमक्षमं दारिद्र्यं दुःखं विगतधनेन क्लेशं नियतं सर्वकालं कुर्वन्ति। गुरुर्बृहस्पतिः। शुक्रः। सौम्यो बुधाः। वित्तेश्वरीं धनस्य स्वामिनीम् अविधवां जीवद्भर्त्तृकां च कुर्वन्ति। शशाङ्कश्चन्द्रः। नारीं कन्यां प्रभूततनयां बहुप्रजां कुरुते।।२।।

वैवाहिक लग्न के द्वितीयभाव में स्थित सूर्य, शनि, राहु और मंगल सदैव अत्यधिक दरिद्रताजन्य दुःख अर्थात् धनहीनता का क्लेश देता है। गुरु, शुक्र और बुध; ये धन की स्वामिनी और जीवितपतिका करते हैं। चन्द्रमा द्वितीय भाव का स्त्री को अधिक सन्ततिवती करता है॥२॥

अथ तृतीयस्थानस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह-

सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रबुधास्तृतीये
कुर्युः सदा बहुसुतां धनभागिनीं च।
व्यक्तां दिवाकरसुतः सुभगां करोति
मृत्युं ददाति नियमात् खलु सैहिकेयः।।३।।

तृतीयभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं-

यदि विवाह काल में लग्न से तृतीय भाव में सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र अथवा बुध हो तो अधिक सन्तानवाली और धन से युत होती है। शनि हो, तो कीर्ति से युत और सुभगा तथा राहु हो, तो निश्चय ही मृत्यु को पाने वाली स्त्री होती है॥३॥

तृतीये तृतीयस्थाने स्थिताः। सूर्य आदित्यः। इन्दुश्चन्द्रः। भौमोऽङ्गारकः। गुरुर्जीवः। शुक्रः। बुधः। एते सदा सर्वदा बहुसुतां प्रभूतपुत्राम्, धनभागिनीं च वित्तान्वितां कन्यकां कुर्युः। दिवाकरसुतः सौरिः। व्यक्तां कीर्तियुक्ताम्। सुभगां भर्तृवल्लभां च करोति। सैहिकेयो राहुः, नियमान्निश्चयान्मृत्युं मरणं ददाति खलुशब्दश्चार्थे वाक्यालङ्कारे वा।।३।।

तृतीय स्थान में स्थित सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु, शुक्र और बुध; ये सदैवं अनेक सन्तानवान, धनवान बनाते हैं। दिवाकरसुत अर्थात् शनि व्यक्त अर्थात्

यशस्वी और पति का प्रिय बनाते हैं। सैहिकेय अर्थात् राहु निश्चय ही मृत्यु प्रदान करता है। यहाँ पर 'खलु' शब्द 'च' (और) अर्थ में अथवा वाक्यालंकार में प्रयुक्त है॥३॥

अथ चतुर्थस्थानस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह–

स्वल्पं पयः स्रवति सूर्यसुते चतुर्थे
दौर्भाग्यमुष्णकिरणः कुरुते शशी च।
राहुः सपत्नमपि च क्षितिजोऽल्पवित्तं
दद्याद्भृगुः सुरगुरुश्च बुधश्च सौख्यम्।।४।।

चतुर्थभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

जिसके विवाह लग्न में चतुर्थ स्थान में शनि हो उसके स्तनों से बहुत थोड़ा दूध निकलता है। सूर्य या चन्द्र हो तो भाग्यरहित, राहु हो तो सौत (सौतिन) वाली, मंगल हो तो अल्प धनवाली तथा शुक्र, बृहस्पति या बुध हो तो सुख भोगने वाली स्त्री होती है॥४॥

अथ चतुर्थस्थाने। सूर्यसुते शनैश्चरे। स्वल्पं स्तोकम्। पयः क्षीरं स्रवति। उष्णकिरणः सूर्यो दौर्भाग्यं दुर्भगत्वं कुरुते। शशी च चन्द्रो दौर्भाग्यमेव कुरुते। राहुः सपत्नं शत्रुं करोति। सापत्न्यं करोतीत्यर्थः। क्षितिजोऽङ्गारकोऽल्पवित्तं स्वल्पधनं करोति। भृगुः शुक्रः। सुरगुरुर्जीवः। बुधश्च। सौख्यं दद्यात् ।।४।।

विवाह लग्न से चौथे भाव में स्थित सूर्यपुत्र अर्थात् शनि हो तो स्त्री के स्तनों से अत्यल्प दूध निकलता है। उष्णकिरण अर्थात् सूर्य स्थित हो तो भाग्यहीन बनाता है तथा शशि भाग्य हीन ही करता है। राहु सपत्न अर्थात् शत्रुता लाता है। अथवा सौतिन वाली बनाता है। मंगल अविस्थत हो तो अल्पधनवाली बनाता है। शुक्र, गुरु तथा बुध हो तो स्त्री सुख भोगने वाली होती है॥४॥

अथ पञ्चमस्थानस्थितानां सर्वग्रहणां फलान्याह–

नष्टात्मजां रविकुजौ खलु पञ्चमस्थे
चन्द्रात्मजो बहुसुतां गुरुभार्गवौ च।
राहुर्ददाति मरणं शनिरुग्ररोगं
कन्याविनाशमचिरात् कुरुते शशाङ्कः।।५।।

पञ्चमभभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

जिसके विवाह में लग्न से पंचम स्थान में सूर्य हो या मंगल हो तो उसकी संतान मर जाती है। बुध, गुरु तथा शुक्र हो तो बहुत सन्तान, राहु हो तो मृत्यु, शनि हो तो कठोर रोग तथा चन्द्रमा हो तो शीघ्र कन्या का नाश करता है॥५॥

रविरादित्यः। कुजोऽङ्गारकः। एतौ पञ्चमस्थौ लग्नात् पञ्चमस्थाने स्थितौ नष्टात्मजां मृतापत्यां कन्यकां कुरुतः। खलुशब्द आगमद्योतनार्थः। चन्द्रात्मजो बुधो बहुसुतां प्रभूतपुत्रां करोति। गुरुर्बृहस्पतिः। भार्गवः शुक्रः। एतावपि चशब्दाद् बहुसुतामेव कुरुतः। राहुर्मरणं ददाति। शनिः सौरिः। उग्रं तीव्रं रोगं गदं ददाति। शशाङ्कश्चन्द्रोऽचिराच्छीघ्रमेव कन्याया विनाशं कुरुते करोति।।५।।

सूर्य और मंगल; ये दोनों लग्न से पञ्चम स्थान में हों तब स्त्री को मृतवत्सा बनाते हैं। यहाँ पर 'खलु' शब्द शास्त्रपरम्परा का द्योतक है। चन्द्रात्मज अर्थात् बुध प्रचुर सन्तान देता है। गुरु और शुक्र भी पर्याप्त सन्तान प्रदान करते हैं। राहु मृत्यु देता है, और शनि भयंकर व्याधि देता है। चन्द्रमा शीघ्र ही उस कन्या का विनाश करता है।।५।।

अथ षष्ठस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह-

षष्ठाश्रिताः शनिदिवाकरराहुजीवाः
कुर्युः कुजश्च सुभगां श्वसुरेषु भक्ताम्।
चन्द्रः करोति विधवामुशना दरिद्रा-
मृद्धां शशाङ्कतनयः कलहप्रियां च।।६।।

षष्ठभाव में स्थित सभी ग्रहों के फल बतलाते हैं-

विवाह काल में लग्न से षष्ठभाव में शनि, सूर्य, राहु, गुरु अथवा मंगल हो, तो श्वसुर की सेवा करने वाली, चन्द्र हो तो विधवा, शुक्र हो तो निर्धन तथा बुध हो तो धन से युत और कलह कारिणी स्त्री होती है।।६।।

शनिः सौरिः दिवाकर आदित्यः। राहुः सैहिकेयः। जीवो बृहस्पतिः। एते षष्ठाश्रिताः षष्ठस्थानस्थाः। कुजश्चाङ्गारकः षष्ठस्थानस्थ एव। सुभगां भर्तृवल्लभां श्वशुरेषु च भक्तां कन्यकां कुर्युः। चन्द्रः शशी विधवां मृतभर्तृकां करोति। उशनाः शुक्रो दरिद्रां निर्धनां करोति। शशाङ्कतनयो बुधः। ऋद्धां सधनां कलहप्रियां च करोति।।६।।

शनि, सूर्य, राहु और गुरु तथा मंगल; ये सभी विवाह लग्न से षष्ठभाव में स्थित हों, तो कन्या पतिप्रिया और ससुर की भक्त होती है। चन्द्रमा विधवा बनाता है। उशना अर्थात् शुक्र निर्धन करता है। चन्द्रमा का पुत्र बुध, धन-सम्पन्न और कलहकारिणी बनाता है।।६।।

अथ सप्तमस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह-

सौरारजीवबुधराहुरवीन्दुशुक्राः
कुर्युः प्रसह्य खलु सप्तमराशिसंस्थाः।

---

१. सुभगामिति पाठान्तरम्।

वैधव्यबन्धनवधक्षयमर्थनाश-
व्याधिप्रवासमरणानि यथाक्रमेण।।७।।

सप्तम भाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं-

विवाह काल में लग्न से सप्तम भाव में शनि, मंगल, गुरु, बुध, राहु, सूर्य, चन्द्र अथवा शुक्र हो तो क्रमशः विधवा, बन्धन, विनाश, धननाश, व्याधि, प्रवास, तथा मृत्यु करता है।।७।।

सौरादयः सप्तमस्थानस्था यथाक्रमं प्रसह्यात्यर्थं वैधव्यादीन् दोषान् कुर्वन्ति। तद्यथा—शनैश्चरः सप्तमे स्थितो वैधव्यं करोति। आरोऽङ्गारको बन्धनम्। जीवो बृहस्पतिर्वधं मरणम्। बुधः क्षयं विनाशं करोति। राहुरर्थनाशं वित्तक्षयम्। रविरादित्यो व्याधिम्। इन्दुश्चन्द्रः प्रवासं देशान्तरगमनम्। शुक्रो मरणम्। एवं सप्तमस्था यथाक्रमेण परिपाट्या कुर्युः। खलुशब्दोऽत्रागमद्योतनार्थः।।७।।

शनि आदि सभी ग्रह विवाह लग्न से सप्तम स्थान में स्थित होकर वैधव्य आदि दोषों को प्रसह्य अर्थात् प्रभूत रूप से क्रमशः करते हैं। यथा-सप्तमभाव में शनि स्थित होकर वैधव्य दोष उपस्थित करता है। आर अर्थात् मंगल बन्धन देता है। गुरु मृत्यु प्रदान करता है। बुध क्षय अर्थात् विनाश करता है। राहु धन का क्षय करता है। सूर्य रोग उत्पन्न करता है। चन्द्रमा प्रवास अर्थात् अन्य प्रदेशों में भ्रमण कराता है। तथा सप्तमस्थ शुक्र से मृत्यु होती है। इस प्रकार ये सभी ग्रह क्रमानुसार सप्तमस्थ होकर अपना फल देते हैं। यहाँ पर 'खलु' शब्द शास्त्रपरम्परा का द्योतक है।।७।।

अथाष्टमस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह-

स्थानेऽष्टमे गुरुबुधौ नियतं वियोगं
मृत्युं शशी भृगुसुतश्च तथैव राहुः।
सूर्यः करोत्यविधवां १ सरुजां महीजः
सूर्यात्मजो धनवतीं पतिवल्लभां च।।८।।

अष्टमभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं-

विवाहकाल में लग्न से अष्टम भाव में गुरु या बुध हो तो पति से वियोग; चन्द्र, शुक्र या राहु हो तो मृत्यु, सूर्य हो तो सौभाग्यवती, मंगल हो तो रुग्णा तथा शनि हो तो धन से युत तथा पतिवल्लभा बनाता है।।८।।

गुरुर्जीवः। बुधश्च। एतौ लग्नादष्टमस्थानस्थितौ नियतं सर्वकालं निश्चितं वा वियोगं जायापत्योः कुरुतः। शशी चन्द्रो भृगुसुतः शुक्रश्च मृत्युं मरणं करोति। तथैव तेनैव प्रकारेण राहुर्मृत्युं करोति। सूर्य आदित्योऽविधवां जीवद्भर्तृकां करोति। महीजोऽङ्गारकः सरुजां पीडितदेहां करोति। केचित् सुभगां भर्तृवल्लभामिति पठन्ति। सूर्यात्मजः

सौरिः। धनवतीं वित्तान्विताम्। पतिवल्लभां भर्तृप्रियां च करोति।।८।।

गुरु और बुध; ये दोनों ग्रह विवाह लग्न से अष्टम स्थान में स्थित होकर अर्थात् सर्वदा के लिये अथवा कुछ नियत वर्षों के लिए पति-पत्नी में वियोग कराते हैं। शशि अर्थात् चन्द्रमा तथा भृगुपुत्र शुक्र मृत्यु कारक होता है। इसी प्रकार राहु भी मृत्यु देता है। सूर्य सौभाग्यवती अर्थात् जीवितपतिका बनाता है। महीज अर्थात् मंगल शरीर को रोग से पीड़ित करता है। कतिपय आचार्य सुभगा अर्थात् पति प्रिया बतलाते हैं। सूर्यपुत्र शनि कन्या को धन से परिपूर्ण और पतिवल्लभा बनाता है॥८॥

अथ नवमस्थानस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह–

धर्मे स्थिता भृगुदिवाकरभूमिपुत्रा
जीवश्च धर्मनिरतां शशिजस्त्वरोगाम्।
राहुश्च सूर्यतनयश्च करोति बन्ध्यां
कन्याप्रसूतिमटनां कुरुते शशाङ्कः।।९।।

नवमभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

नवम स्थान में स्थित होकर सूर्य, मंगल और गुरु धर्मनिष्ठ बनाते हैं। बुध स्वस्थ रखथा है। राहु और शनि बन्ध्या बनाते हैं। चन्द्रमा कन्या सन्तति और भ्रमणशील बनाता है॥९॥

भृगुः शुक्रः। दिवाकर आदित्यः। भूमिपुत्रोऽङ्गारकः। जीवो बृहस्पतिश्च। एते सर्व एव धर्मे नवमस्थाने स्थिता धर्मनिरतां कन्यकां कुर्युः। शशिजो बुधः। अरोगां कल्याणीं करोति। राहुः सैंहिकेयः। सूर्यतनयः सौरिः। एतौ बन्ध्यामपुत्रां कुरुतः। शशाङ्कश्चन्द्रः कन्याप्रसूतिं कन्याजनयित्रीम्। अटनां भ्रमणशीलां च करोति।।९।।

भृगु अर्थात् शुक्र, भूमिपुत्र मंगल और गुरु धार्मिक कार्यों में तत्पर रखते हैं। शशिज अर्थात् बुध रोगरहित कल्याणी बनाता है। राहु और सूर्यपुत्र शनि; ये दोनों बन्ध्या अर्थात् पुत्रहीन बनाते हैं। शशांक अर्थात् चन्द्रमा से कन्या प्रसवित्री रहती है और वह भ्रमणशील भी रखता है॥९॥

अथ दशमस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह–

राहुर्नभःस्थलगतो विधवां करोति
पापे रतां दिनकरश्च शनैश्चरश्च।
मृत्युं कुजोऽर्थरहितां कुलटां च चन्द्रः
शेषा ग्रहा धनवतीं सुभगां च कुर्युः।।१०।।

दशमभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

दशम स्थान में राहु के होने से कन्या विधवा होती है। सूर्य और शनि पापी

बनाते हैं। मंगल मृत्यु देता है। चन्द्रमा कुलटा एवं धनहीन बनाता है। शेष ग्रह धनवती और सौभाग्यवती बनाते हैं।।१०।।

नभ:स्थलं दशमस्थानम्। नभः स्थलगतो राहुर्विधवां मृतभर्तृकां करोति। दिनकर आदित्यः पापे रतां पापकर्मणि सक्तां करोति। शैनैश्चरः पापरतामेव। कुजोऽङ्गारको मृत्युं मरणं करोति। चन्द्रोऽर्थरहितां दरिद्रां कुलटां बन्धकीं च करोति। शेषा बुधबृहस्पतिशुक्रा धनवतीं वित्तान्वितां सुभगां भर्तृवल्लभां च कुर्युः।।१०।।

नभस्थल अर्थात् दशमस्थान, इसमें स्थित राहु विधवा अर्थात् मृतपतिका बनाता है। दिनकर अर्थात् सूर्य पापकर्म में आसक्त रखता है। शनि भी पापनिरत ही करता है। कुज अर्थात् मंगल मृत्यु (मरण) देता है। चन्द्रमा धनहीन और कुलटा (बन्धकी) बनाता है। शेष ग्रह बुध, गुरु और शुक्र दान से परिपूर्ण और सुभग अर्थात् पति की प्रियतमा बनाते हैं।।१०।।

अथैकादशस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह–

आये रविर्बहुसुतां सधनां शशाङ्कः
पुत्रान्वितां क्षितिसुतो रविजो धनाढ्याम्।
आयुष्मतीं सुरगुरुः शशिजः समृद्धां
राहुः करोत्यविधवां भृगुरर्थयुक्ताम्।।११।।

एकादश भाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

एकादश भाव में सूर्य अनेक सन्तति वाली, चन्द्रमा धनवती, मंगल पुत्रवती और शनि धनाढ्या बनाता है। गुरु आयुष्ययुक्ता, बुध धनसम्पन्ना, राहु जीवितपतिका और शुक्र धनवती बनाता है।।११।।

आये एकादशस्थाने रविरादित्यो बहुसुतां प्रभूतपुत्रां कन्यकां करोति। शशाङ्कश्चन्द्रः सधनां वित्तान्विताम्। क्षितिसुतोऽङ्गारकः पुत्रान्वितां सुतसंयुक्ताम्। रविजः सौरो धनाढ्यामीश्वरीम्। सुरुगुरर्जीव आयुष्मतीं चिरजीविनीम्। शशिजो बुधः समृद्धां सधनाम्। राहुरविधवां जीवद्भर्तृकाम्। भृगुः शुक्रोऽर्थयुक्तां सधनां करोति।।११।।

एकादश भाव में स्थित आदित्य अर्थात् सूर्य प्रचुर पुत्रयुक्ता बनाता है। शशांक अर्थात् चन्द्रमा सधना अर्थात् सम्पत्तियुक्त बनाता है। क्षितिसुत अर्थात् मंगल पुत्रसन्ततिवान बनाता है। रविज अर्थात् शनि धनाढ्य अर्थात् धनसम्पन्न, सुरुगुरु बृहस्पति आयुष्मती अर्थात् दीर्घायुषी बनाता है। शशिज अर्थात् बुध समृद्ध अर्थात् धनयुक्त बनाता है। राहु अविधवा अर्थात् जीवितपतिका और शुक्र अर्थयुक्ता अर्थात् धनवती बनाता है।।११।।

विशेष व्याख्या–(१) कुलटा = कुलस्य अटा, विविध कुलों में भ्रमण करने

वाली दुश्चरित्रा स्त्री। बन्धकी=पुंश्चल्या स्याच्च बन्धकी। बध्नाति मनोऽत्र। बन्ध बन्धने। इसके ८ पर्याय शब्द हैं–पुंश्चली चर्षणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी।

स्वैरिणी पांशुला च स्यात्–(अ. को. २/६/१०)

(२) सैंहिकेय=राहु। सिंहिकाया अपत्यम्। पर्याय शब्द हैं–

तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तदः।

अमरकोश १/३/२६

अथ द्वादशस्थितानां सर्वग्रहाणां फलान्याह–

अन्ते गुरुर्धनवतीं दिनकृद्दरिद्रां
चन्द्रो धनव्ययकरीं कुलटां च राहुः।
साध्वीं भृगुः शशिसुतो बहुपुत्रपौत्रां
पानप्रसक्तहृदयां रविजः कुजश्च।।१२।।

द्वादशभाव में स्थित सभी ग्रहों का फल बतलाते हैं–

द्वादश स्थान में गुरु हो तो धनवती, सूर्य हो तो निर्धन, चन्द्रमा हो तो बहुत खर्च करने वाली, राहु हो तो कुलटा, शुक्र हो तो साध्वी, बुध हो तो बहुत पुत्रों वाली और शनि अथवा मंगल हो तो मद्य आदि पान करने वाली स्त्री होती है।।१२।।

अन्ते द्वादशस्थाने गुरुर्जीवो धनवतीं सधनां कन्यकां करोति। दिनकृदादित्यो दरिद्रां निर्धनाम्। चन्द्रः शशी धनव्ययकरीमर्थक्षयकरीम्। राहुः कुलटां बन्धकीम्। भृगुः शुक्रः साध्वीं सच्छीलाम्। शशिसुतो बुधो बहुपुत्रपौत्रां प्रभूतसुतां प्रभूतपौत्राम्। रविजः शनैश्चरः पानप्रसक्तहृदयां पाने प्रसक्तमनुरतं हृदयं यस्याः। कुजोऽङ्गारकश्चशब्दात् पानप्रसक्तहृदयामेव।।१२।।

अन्त में अर्थात् द्वादश स्थान में स्थित गुरु के होने पर कन्या धनवती होती है। दिनकृत् अर्थात् सूर्य दरिद्र बनाता है। चन्द्रमा धन का अपव्यय अर्थात् अधिक व्ययशीला बनाता है। राहु कुलटा अर्थात् चरित्रहीना (बन्धकी) बनाता है। शुक्र शीलवती, सदाचारिणी बनाता है। चन्द्रपुत्र बुध प्रचुर पुत्रों और पौत्रों से युक्त करता है। रविपुत्र शनि पानप्रसक्त हृदय अर्थात् मद्यपान में आसक्त चित्त बनाता है। कुज अर्थात् मंगल भी मदिरापान में आसक्त ही बनाता है।।१२।।

अथ गोधूलिप्रशंसार्थमाह–

गोपैर्यष्ट्याहतानां खुरपुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते
सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुलधनसुतारोग्यसौभाग्यकर्त्री।

---

१. अयमध्यायो वराहमिहिरकृतो न। अतोऽत्राध्यायसंख्या द्व्यधिकशततमतुल्या न समुचिता। सर्वपुस्तकेषूपलब्धत्वादस्माभिरुपन्यस्ता।

तस्मिन् काले न चर्क्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः
ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं गोरजस्तु।।१३।।

गोधूलिवेला की प्रशंसा में कहते हैं–

दिनान्त (सायं सन्ध्या) में ग्वालों के द्वारा यष्टि से ताड़ित गायों के खुरों से खण्डित धूलि, सुन्दरियों (स्त्रियों) के विवाह में अत्यधिक धन, पुत्र, आरोग्य और सौभाग्य को करने वाली होती है। उस गोधूलि समय में नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न और योग का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये। पुरुषों के सुख के लिये वह काल कहा गया है। यह गायों से उत्पन्न धूलि सब दुष्कृतों का नाश करने वाली होती है॥१३॥

अथ गोधूलिप्रशंसावशाद् गोपशब्दो व्यवह्रियते। गोपैर्गोपालकैर्यष्ट्या लगुडेनाहतानां ताडितानां गवां खुरपुटैः पादाग्रैर्या दलिता खण्डिता धूली रजो दिनान्ते सूर्यास्तमयकाले सा उद्वाहे विवाहे सुन्दरीणां विपुलं विस्तीर्णं धनं वित्तं सुतान् पुत्रानारोग्यमरोगत्वं सौभाग्यं भर्तृवाल्लभ्यं करोति। तस्मिन् सन्ध्यासमये न चर्क्षं नक्षत्रं, नच तिथिर्नन्दादिकाः, न करणं ववादि, नच योग आनन्दादिक उपयुज्यते। सुखार्थं पुंसां पुरुषाणां स कालः ख्यात उक्तः। उत्थितमुद्भूतं गोरजो गोधूलिर्दुरितानि दुष्कृतानि शमयत्युपशान्तिं नयति। तेन हेतुना न किञ्चित् तत्रोपयुज्यत इति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ विन्ध्यवासिकृतं
[1]विवाहटलं नाम द्विशततमोऽध्यायः।।१०२।।

गोधूलिकाल की प्रशंसा के प्रसंग में यहाँ पर गोप शब्द का व्यवहार किया गया है। गोप अर्थात् गोपालक; इनकी यष्टि अर्थात् दण्ड (लगुड़) से प्रताड़ित होने पर गायों के पादाग्र खुरों के द्वारा खण्डित धूलि कण से युक्त जो दिनान्त अर्थात् सूर्यास्तकाल, उसको गोधूलिकाल कहा जाता है। इस काल में विवाह करने पर कन्याओं को प्रचुर धन, सन्तान, आरोग्य, सौभाग्य और पति का प्रेम प्राप्त होता है। इस शुभ सन्ध्याकाल में ऋक्ष अर्थात् नक्षत्र और नन्दादि तिथियाँ, ववादि करण और आनन्दादि योगों के विचार की आवश्यकता नहीं होती है। यह समय पुरुषों के सुख हेतु उपयुक्त होता है। गोचरण से उठी हुई धूल सभी प्रकार के अनिष्टों को दूर करती है। इस कारण यहाँ पर किसी नक्षत्रादि का प्रयोजन नहीं है॥१३॥

श्रीभट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में विन्ध्यावासीकृत विवाहपटल नामक १०२ अध्याय की हिन्दी व्याख्यापूर्ण हुई।

❑❑

अथ ग्रहगोचराध्यायो व्याख्यायते। १०३ तमोऽध्यायः।

तत्राचार्यः शिष्यजनवत्सलतया लाघवेन छन्दसां लक्षणमन्तर्भूतं करोति। तेषां च प्रस्तारविधौ गुरुलघुसंज्ञाविज्ञानेन विना न किञ्चिद् ज्ञायते। आचार्येण ग्रन्थविस्तरभयात् प्रसिद्धत्वाच्च लक्षणं नोक्तम्। तदस्माभिर्गुरुलघूनां लक्षणं प्रदर्श्यते। तथा-

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुश्च तथादिलघुर्यः।

जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

अत्र व्याख्या—मस्त्रिगुरुः, यत्र यत्र मकारग्रहणं भविष्यति तत्र तत्र त्रिगुरुः प्रस्तारः। नकारस्त्रिलघुः। भकार आदिगुरुः। आदौ गुरुरन्ते लघुद्वयम्। तथा यकार आदिलघुः आदौ लघुरन्ते गुरुद्वयम्। जो जकारो गुरुमध्यगतः मध्यगुरुराद्यन्तयोर्लघुद्वयम्। रलमध्यः, रेफो मध्यलघुराद्यन्तयोर्गुरुद्वयम्। सोन्तऽगुरुः, सकार आदौ लघुद्वयमन्ते गुरुः। तकारोऽन्तलघुः, आदौ तस्य गुरुद्वयमन्ते लघुरिति।

न्यासः-

म ऽऽऽ, न ।।।, भ ऽ।।, य ।ऽऽ, ज ।ऽ।, र ऽ।ऽ, स ।।ऽ, त ऽऽ। अत्राप्यपरेयं परिभाषा। अ, इ, उ, ऋ, ऌ- सामान्यव्यञ्जनानि कादीनि लघवस्ते चर्जवः प्रस्तार्याः। आ ई ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। एते गुरवः कुटिलाश्च प्रस्तार्याः। पादान्ते स्थितो लघुरपि गुरुतां याति। वक्ष्यत्याचार्यः-

[1]प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्तबाह्ये व्यवस्थितः।

स याति गुरुतामिति।

यस्य वर्णस्य संयोगाक्षरः परः स गुरुर्भवति। प्रस्तारे गुरुर्लघुर्वाङ्गुष्ठपर्वप्रमाणः कार्यः।

ग्रहगोचर नामक १०३ अध्याय की हिन्दी व्याख्या

यहाँ पर आचार्य वराहमिहिर ने शिष्यों के कल्याणार्थ सरलतापूर्वक छन्दों के लक्षणों को अन्तर्निहित कर श्लोकों की संरचना की है। छन्दों का जब प्रस्तार किया जाता है, तब गुरुसंज्ञक एवं लघुसंज्ञक वर्णों के ज्ञान के बिना कुछ भी नहीं ज्ञात हो सकता। आचार्य वराहमिहिर ने ग्रन्थ के विस्तार के भय से तथा इन लक्षणों के प्रसिद्ध होने के कारण उनके विषय में नहीं कहा है। अतएव आचार्य भट्टोत्पल के द्वारा गुरु और लघु वर्णों के लक्षण प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसा कि-

मगण में तीन गुरु होते हैं, तथा नगण में तीन लघु वर्ण होते हैं। भगण में आदि वर्ण गुरु तथा यगण में आद्यवर्ण लघु होता है। जगण में मध्य गुरु तथा रगण में मध्य लघु, सगण में अन्त्यगुरु तथा तगण में अन्त्य लघु होता है।

इसको व्याख्यायित करते हैं-मस्त्रिगुरु का तात्पर्य यह है कि जहाँ पर भी मगण

का ग्रहण किया जायेगा, वहाँ पर प्रस्तार में तीनों वर्ण गुरु होंगे। नकार अर्थात् नगण में तीन लघु, भगण में प्रथम गुरु अर्थात् आदि वर्ण गुरु तथा अन्त के दोनों वर्ण लघु होंगे। यकार में आदि लघु होता है। अर्थात् आदि में लघु तथा अन्त में दो वर्ण गुरु होते हैं। जकार (जगण) में गुरु वर्ण मध्यगत रहता है। अर्थात् मध्यवर्ण गुरु तथा आदि और अन्त के दोनों वर्ण लघु होते हैं। रगण में मध्यवर्ण लघु होता है अर्थात् रगण का मध्य वर्ण लघु तथा उसके आदि और अन्त्य के दोनों वर्ण गुरु होते हैं। सगण का अन्तिम गुरु होता है, अर्थात् सगण का आदि दो वर्ण लघु तथा अन्तिमवर्ण गुरु होता है। तगण का अन्तिम लघु होता है, अर्थात् आदि के दो वर्ण गुरु तथा अन्तिम वर्ण लघु होता है।

न्यास–

मगण ऽऽऽ, नगण ।।।, भगण ऽ।।, यगण ।ऽऽ, जगण ।ऽ।, रगण ऽ।ऽ, सगण ।।ऽ, तगण ऽऽ।; प्रयोग के लिये यह भी एक परिभाषा है। अ इ, उ, ऋ, ऌ ये स्वरवर्ण तथा ककारादि साधारण व्यञ्जनवर्ण लघु होते हैं। इनको ऋजु अर्थात् सरल सीधी रेखा से प्रदर्शित करना चाहिये। आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः; ये दीर्घस्वर गुरु वर्ण माने गये हैं। इनको कुटिल अर्थात् अवग्रह चिह्न ऽ से प्रदर्शित किया जाता है। पद के अन्त में स्थित लघु वर्ण भी गुरु वर्ण माना जाता है। जैसाकि आचार्य ने कहा है–

जो वर्ण स्वाभाविक लघु कहा गया है। वह भी वृत्त अर्थात् छन्द के अन्त में, बाह्य भाग में स्थित होकर गुरु वर्ण परिगणित होता है।

जिस वर्ण के बाद में संयुक्ताक्षर हो वह वर्ण गुरु होता है। प्रस्तार अर्थात् छन्द रचना को प्रदर्शित करने में गुरु अथवा लघु चिह्न (ऽ।) को अंगूठे के पर्व के तुल्य लम्बा बनाना चाहिये।

तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह–

प्रायेण सूत्रेण विनाकृतानि प्रकाशरन्ध्राणि चिरन्तनानि।
रत्नानि शास्त्राणि च योजितानि नवैर्गुणैर्भूषयितुं क्षमाणि।।१।।

बिना धागे में गूँथे हुये प्रकटित छिद्र वाले पुराने रत्न, नूतन धागे में योजित करने से प्रायः अलंकृत करने में समर्थ होते हैं। उसी प्रकार सूत्रों से वर्जित अर्थात् पद-बन्धों से रहित, दोष सम्प्राप्त पुरातन शास्त्र भी नवीन सूत्र (छन्दोबद्ध) से योजित होकर सुशोभित हो जाते हैं।।१।।

प्रायेण बाहुल्येन रत्नानि मणिविशेषाणि सूत्रेण विनाकृतानि वर्जितानि प्रकाशरन्ध्राणि प्रकटच्छिद्राणि चिरन्तनानि पुरातनानि च यानि, तानि नवैर्गुणैरभिनवैः सूत्रैर्योजितानि प्रोतानि, विभूषयितुमलङ्कर्तुं क्षमाणि योग्यानि भवन्ति। एवं शास्त्राणि सूत्रेण अक्षररचना-

वृत्तबन्धेन विनाकृतानि, वर्जितानि, प्रकाशरन्ध्राणि प्रकटदोषाणि, चिरन्तनानि पुरातनानि चिरन्तनत्वाद् जातापशब्दानि। अपशब्दत्वाच्च प्रकाशरन्ध्राणि तथाभूतानि च तानि नवैर्गुणैरभिनवैः सद्वस्तुभिर्द्रव्यवृत्तबन्धैर्योजितानि वचनस्थापितानि, भूषयितुं क्षमाणि योग्यानि भवन्ति, नान्यथेत्यर्थः।।१।।

प्रायेण अर्थात् अधिकतर रत्नविशेष सूत्र के बिना अर्थात् बिना गूँथे हुये प्रकाशरन्ध्र अर्थात् स्पष्ट छिद्र वाले, जो चिरन्तन अर्थात् प्राचीन होते हैं, वे नवीन गुणों अर्थात् नये धागों से गूँथे जाने पर विभूषित करने के योग्य अर्थात् अलंकृत करने के योग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार शास्त्र भी अक्षररचना स्वरूप छन्दबद्धता के बिना सुस्पष्ट दोषों वाले प्राचीन (अपशब्दों से युक्त), अपशब्द के कारण प्रकटित दोषों वाले शास्त्र, नवीन गुणों अर्थात् शुद्ध विषय एवं नवीन छन्दरचना से युक्त होकर शोभा के योग्य हो जाते हैं, अन्यथा नहीं॥१॥

अधुना गोचरस्य कारणं मुखचपलार्ययाऽऽह–

प्रायेण गोचरो व्यवहार्योऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि।
नानावृत्तैरार्या मुखचपलत्वं क्षमध्वं नः।।२।।

अब गोचर के कारण को मुखचपला आर्याछन्द में कहते हैं–

बहुधा इस संसार में ग्रहगोचर का व्यवहार किया जाता है। इसलिए अनेक छन्दों के द्वारा उसके फलों को कहता हूँ। विद्वज्जन हमारे मुख चापल्य को क्षमा करें।।२।।

प्रायेण बाहुल्येन गोचरो ग्रहगोचरो व्यवहार्यो व्यवहरणाय शीलमस्य व्यवहार्यः। यः कश्चित् लोके ग्रहसंस्थां पृच्छति। अतोऽस्माद्धेतोस्तत्फलानि गोचरफलानि वक्ष्यामि कथयिष्यामि। नानावृत्तैर्विचित्रैर्वृत्तबन्धैः सम्पाद्य। आर्याः साधवः पण्डिता अस्माकं मुखचपलत्वं बहुभाषित्वं क्षमध्वं सहत–इत्यर्थः। आर्याणामग्रे मुखचपलत्वमयोग्यमतः क्षम्यतामिति। मुखचपलेयमार्या।।२।।

अस्या लक्षणं व्याख्यायते। तत्र चार्यालक्षणेन विना तस्या लक्षणमुपदेष्टुं न युज्यते, तस्मादार्यालक्षणं तावद् व्याख्यायते–

द्व्यान्तान्तरादिगुरुभिः सोदिधिलैः सप्तभिर्गणैर्गुरुणा।
आर्याधरं नात्रायुजि जः षष्ठोऽयं नलघुको वा॥

आर्या मात्राभिः परिमीयन्ते। पथ्यादीनामार्याणां त्रिंशन्मात्राः पूर्वमर्धं भवति। अपरं सप्तविंशतिः। चतुर्भिर्लघुभिर्गणो भवति। द्वौ गुरू यस्य द्विगुरुः। अन्तेऽवसाने गुरुर्यस्यासावन्तगुरुः। अन्तरगुरुर्मध्यगुरुः। आदौ गुरुर्यस्यासावादिगुरुः। तैर्गणैः। कीदृशैः? सोदधिलैः, उदधिसमसंख्याश्चत्वारो ला लघवो यस्य स उदधिलः, सह उदधिसंख्येन लेन गणेन वर्तन्ते इति सोदधिलाः। तैः सोदधिलैरुक्तविकल्पैः। चतुर्भिलघुभिरित्यर्थः।

एवमेष पञ्चविकल्पो गणस्तन्न्यास उक्त:-ऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।।, तै: सप्तभिर्गणैर्गुरुणा चाष्टमेनार्धगणेनार्याणां पथ्यादिकानां पूवमर्धं प्रथमदलं भवति। नात्रास्यामार्यायामयुजि प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमगणस्थानेषु जो गणश्च भवति। षष्ठोऽयं तु जकारो भवति। अथ वा षष्ठो गणो नलघुको यो नलघूं भजते जकाराभावात्। अन्यदप्याह-

ले लात् पदं द्वितीयात् प्रथमात् परकेऽथ विषमयुजि चरमे।
षष्ठो लोऽग्रेऽन्त्ये त्रिषु पादो भवति भवति तु पथ्या।।

ले सर्वलघौ षष्ठे गणे सति द्वितीयाल्लात् पदं कार्यम्। प्रथमात् परक इति। षष्ठात् परकै: सप्तमगणे सर्वलघौ प्रथमाल्लात् पदं कार्यम्। षष्ठस्थानान्ते यति: कार्येत्यर्थ:। अथ विषमयुजि चरमे। पश्चादर्धे विषमयुजि पञ्चमस्थानभाजि ले सति प्रथमाक्षरमारभ्य पदं विधेयम्। षष्ठो ल इति पश्चिमेऽर्धे षष्ठो गण एकलघुरेव कार्य:। अग्रेऽन्त्ये च त्रिषु गणेषु यदि पादो यतिर्भवेत् तदा पथ्यानाम्न्यार्या भवतीत्यार्याद्वयस्यार्थ:। द्वयान्तान्तरादिगुरुभिरित्यस्य न्यास:। ले लात् पदमित्यस्य पथ्याया न्यासश्च प्रसिद्ध:।

।।।।	।।।।	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	।।ऽ	।।ऽ
ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	।।।।	ऽऽ	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ
।।ऽ	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।।	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
।ऽ।	ऽऽ	ऽऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।।।	।।।।	।ऽ।
ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	।।ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
।ऽ।	।।।।	।।।।	।।।।	।ऽ।	।।।।	।।।।	।ऽ।
।।ऽ	ऽ।।	।।ऽ	।।।।	।।ऽ	ऽ।।	ऽऽ	ऽऽ
ऽ	ऽ।	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

एवमादय:।

अथविपुलाचपलयोर्लक्षणम्-

विपुला तु याऽन्यथा पादभाग् जकारौ द्वितीयकचतुर्थौ।
गुरुमध्यगौ भवेतां भवेत् तदा सर्वतश्चपला।।

पथ्यातो याऽन्यथा पादं भजते त्रिषु गणेषु यस्या यतिर्नास्तीत्यर्थ:, सा विपुला, यत्र तु जकारौ मध्यगुरुगणौ द्वितयीकचतुर्थौ द्वितीयस्थाने चतुर्थे च स्थिथौ तौ च गुरुमध्यगौ गुर्वोर्मध्यगौ भवेतां स्याताम्। सर्वतोऽर्धद्वयेऽपि तदा चपला भवति।

न्यास:-

	ज		ज				
।।ऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	ऽ
	ज		ज				
ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	ऽऽ	।	ऽऽ	ऽ

अथ मुखचपलाया लक्षणम्–

अर्धे यदग्रिमे लक्षणं भवेत् केवले तु चपलायाः।
मुखचपलाऽसौ गदिता शेषे पूर्वोक्तलक्षणिका।।

चपलाया अग्रिमे प्रथमेऽर्धे केवले च एकस्मिन्नेव लक्षणमुक्तं जकारौ द्वितीयकचतुर्थकौ गुरुमध्यगौ भवेतामित्यर्थः। तथाभूतं प्रथमे यदि भवेत् स्यात् शेषे पश्चिमे त्वर्धे पूर्वोक्तलक्षणिका पूर्वोक्तं सामान्यार्यालक्षणं भवति। तदाऽसावार्या मुखचपला गदितोक्ता। न्यासः प्रसिद्धः। एवमियं मुखचपलार्येति।

प्रायः अर्थात् अधिकांशतः ग्रहगोचर का व्यवहार होता है। लोक में कोई भी ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है। इसलिए ग्रहगोचर के फलों को यहाँ पर कहा जायेगा। यह अनेक प्रकार के वृत्त अर्थात् छन्दोबन्ध के माध्यम से कहा जायेगा। आर्य अर्थात् सज्जन पण्डितगण मेरी चपलता को अर्थात् बहुभाषिता को क्षमा करेंगे। श्रेष्ठ विद्वानों के सामने वाणी की चपलता उचित नहीं होती है, इसलिये विद्वज्जन क्षमा करें। यह श्लोक मुखचपला आर्याछन्द में निबद्ध है।।२।।

इसका लक्षण बतलाते हैं। आर्याछन्द के लक्षण को उपस्थित किये बिना उसके सम्बन्ध में उपदेश करना उचित नहीं है। इसलिये आर्याछन्द के लक्षण को कहा जा रहा है–

दो गुरु (ऽऽ), अन्त्य गुरु (।।ऽ), अन्तरगुरु (।ऽ।) और आदि (ऽ।।) गुरु के अनन्तर चार लघु गण (।।।।); इस प्रकार से सात गणों के साथ अष्टम गुरु संहित आर्याछन्द का प्रथम अर्धपाद बनता है। इसके अयुज (विषम) पाद (१,३,५,७) में जगण (।ऽ।) नहीं होता है।

आर्या छन्द में मात्राओं की गणना की जाती है। पथ्यादि आर्या के पूर्वार्ध में तीस मात्रा तथा उत्तरार्ध में सत्ताइस मात्रा होती है। चार लघु मात्रा का एक गण होता है। दो गुरु मात्रा को द्विगुरु कहा जाता है। अन्त में गुरु होने पर अन्तगुरु कहा जाता है। दो मात्राओं के मध्य में स्थित गुरु को मध्यगुरु कहते हैं। आदि में गुरु होने पर आदिगुरु होता है। ये गण किस प्रकार के होते हैं? सोदधिला अर्थात् उदधि (सागर), तुल्य संख्या ४ लघु जिसमें होते हैं, उस गण को सोदधिला कहा गया है। इन सोदधिलगण अर्थात् ४ लघु मात्राओं का यह गण होता है। इस प्रकार पाँच प्रकार के गणों से यह छन्द बनता है। इसका न्यास इस प्रकार है- ऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।।, इस प्रकार सात गुरु गणों से तथा आठवें अर्ध गण (लघु) द्वारा पथ्यादि आर्या का प्रथमार्ध होता है। इस आर्याछन्द में विषम अर्थात् १, ३, ५, ७ गणों में जगण नहीं होता है। षष्ठगण में जगण रहता है। अथवा न लघुक अर्थात् जगण के अभाव में लघु नहीं होता है। और भी कहते हैं–

षष्ठ लघु होने पर द्वितीय लघु से पद करना चाहिए। षष्ठ के पश्चात् सप्तम गण में सभी लघु होने पर प्रथम लघु से पद करें। विषम पद पञ्चम स्थान में लघु होने पर प्रथमाक्षर से आरम्भकर पद करें। षष्ठभाग में एक लघु करें। इसके अनन्तर और अन्त के तीन में यदि पाद (यति) हो तब वह पथ्या-आर्याछन्द होता है।

ले अर्थात् षष्ठ गण में सम्पूर्ण लघु होने पर द्वितीय लघु से पद करना चाहिये। अर्थात् प्रथम लघु के पश्चात्। षष्ठ के अनन्तर सप्तम गण में सम्पूर्ण लघु होने पर प्रथम लघु से पद बनाना चाहिये। अभिप्राय यह है कि षष्ठ स्थान के अन्त में यति (विराम) होती है। विषम पद अर्थात् उत्तरार्ध के पञ्चम स्थान में लघु होने पर प्रथमाक्षर से प्रारम्भकर पद निर्मित होता है। षष्ठ 'ल' अर्थात् लघु रखना चाहिये। अन्तिम तीन गणों में यदि पाद और यति हो तब पथ्यासंज्ञक आर्या होती है। दो, अन्त, अन्तर, तथा आदि गुरु से सम्बन्धित, सूत्र का न्यास प्रदर्शित किया जा रहा है। 'ले लातपद' इस सूत्र में पथ्या आर्या का न्यास प्रसिद्ध है।

विशेष व्याख्या–विवृति मे स्थापित न्यास द्रष्टव्य है कुल आठ कोष्ठकों में ऊपर से नीचे की ओर विभिन्न क्रम में मात्राओं का न्यास किया गया है। प्रत्येक कोष्ठक में ३० मात्राएँ हैं। इनकी गणना का उदाहरण प्रस्तुत है–

।।।।	ऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	ऽऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽ	मात्रा चिह्न
४	४	४	४	४	४	४	२	मात्रा संख्या

एक ऋजु रेखा (।) लघु (ह्रस्व) मात्रा कहलाती है। जो कि एक मात्रा का द्योतक है। अवग्रह सदृश कुटिल आकृति (ऽ) गुरु (दीर्घ) मात्रा कही जाती है। दीर्घ में दो मात्रा होती है। इस विधि से न्यास के प्रत्येक कोष्टक में ३० मात्रा होती है।

विपुला और चपला आर्या का लक्षण कहते हैं–

जिस आर्या में पथ्या छन्द से भिन्न पद हो उसको विपुला आर्या कहा जाता है। जिस आर्या के द्वितीय और चतुर्थ स्थान में जगण हो और इन दोनों जगण के मध्य में दो गुरु हों; उसको चपला आर्या कहा जाता है।

पथ्या छन्द से भिन्न स्वरूप में जिस आर्या का पाद बनता है। अर्थात् तीन गणों के अन्त में यति न हो उसको विपुला आर्या कहा जाता है। जिस आर्या के द्वितीय और चतुर्थ स्थान में जगण स्थित हो तथा इनके मध्य में दो गुरु हों तो चपला आर्या होती है। इस आर्या के प्रथमार्ध तथा उत्तरार्ध में ये लक्षण घटित होते हैं।

२. विशेष-व्याख्या–

छन्दोमञ्जरी में विपुला का लक्षण है–

"संलघ्य गणत्रयमादिमं शकलयोर्द्वयोर्भवति पादः।

यस्यास्तां पिङ्गलनागा विपुलमिति समाख्याति।।"

द्वयोः शकलयोरुभयोरपि अर्धयोः आदिमं प्राग्भवे गणत्रयं संलघ्य विहाय पादो भवति।

न्यास–ऽऽ ऽऽ ।।ऽ, इसमें ४-४ मात्रा के तीन गण हैं।

चपला–"दलयोर्द्वितीयतुर्यौ गणौ जकारौ तु यत्र चपला सा।"

दलयोः द्वयोरप्यर्धयोः द्वितीयचतुर्थौ गणौ जकारौ जगणौ स्याताम्।

न्यासः–द्वितीय-।ऽ।, चतुर्थ ।ऽ।

मुखचपलाआर्या का लक्षण कहते हैं–

जिस आर्या का प्रथम अर्धभाग 'चपला आर्या' के समान हो और दूसरा सामान्य 'आर्या' के समान हो, उसे मुखचपला आर्या कहते हैं।

चपला आर्या के अग्रिम अर्थात् प्रथमार्ध का जो लक्षण कहा गया है–द्वितीय और चतुर्थ में जगण हों तथा दोनों जगण के मध्य में दो गुरु हों; इस प्रकार प्रथम प्रथमार्ध हो। शेष उत्तरार्ध में पूर्वोक्त लक्षण वाली सामान्य आर्या का लक्षण होता है। इस प्रकार आचार्य ने मुखचपला का लक्षण कहा है। इस मुखचपला आर्या के लक्षण का न्यास प्रसिद्ध है।

अथात्मनो नम्रतां प्रदर्शयंस्तद्द्वारेण च जघनचपलार्यामाह–

माण्डव्यगिरं श्रुत्वा न मदीया रोचतेऽथवा नैवम्।
साध्वी तथा न पुंसां प्रिया यथा स्याज्जघनचपला।।३।।

अपनी नम्रता को प्रदर्शित करते हुये जघनचपला आर्या छन्द में कहते हैं–

जिन्होंने माण्डव्य आचार्य की वाणी सुनी है, उनको मेरी वाणी अच्छी नहीं लगेगी। अथवा इस तरह कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि अपनी साध्वी स्त्री उस प्रकार पुरुषों को प्रिय नहीं लगती जिस प्रकार जघनचपला (असाध्वी=वेश्या) प्रिय होती है।।३।।

माण्डव्यस्य संबन्धिनीं गिरं वाचं श्रुत्वाऽऽकर्ण्य मदीया वाग् न रोचते, न प्रतिभाति विदुषाम्। तथा च माण्डव्यः–

सर्वेऽप्याकाशवासाः स्फटिकविसलताशङ्खकार्पासभासा-
स्ते लग्नं वर्द्धयन्तो नरपतितिलकं तं समुत्पादयन्ति।
यत्सेनोत्तालवाजिव्रजखुरजरजोव्याप्तमालोक्य विम्बं
मुच्यन्ते प्रेयसीभिर्दुरनुभवनिशाशङ्कया चक्रवाकाः।।
कौपैरन्यत्र मुक्ताविचकिलधवलो रोहिणीप्राणनाथः

सर्वैः संवीक्ष्यमाणः खवलयनिलयैस्तं समुत्पादयेद्धि।
नीतं यस्य प्रगाढैर्घनमलिनमपि श्वेतिमानं यशोभि-
र्विभ्राणा शम्भुशङ्कां मधुमथनमहो मन्दमालिङ्गति श्रीः।।इति।।

अथ नैव मदीयैवं वाग्रोचते। पुंसां पुरुषाणां साध्वी सच्छीला स्वस्त्री प्रिया प्रियालापा न भवति, यथा जघनचपला असाध्वी वेश्या प्रिया। अनेनाभिप्रायेण मदीया नीरसापि रोचत एव। इयमार्या जघनचपला। तल्लक्षणम्–

पूर्वार्धं पूर्वसमं चपलाया लक्षणं निरवेशषम्।
पाश्चात्त्यमर्धमाश्रित्य वर्तते जघनचपला सा।।

अत्र व्याख्या–यत्र पूर्वार्धं पूर्वसमं सामान्यार्यार्धतुल्यं द्व्यान्तान्तरादिगुरुभिरित्या-दिलक्षणोपेतं प्रथमदलं पाश्चात्त्यं पुनर्द्वितीयमर्धं चपलाया संबन्धि लक्षणं निरवशेषं सकलमाश्रित्य संगृह्य वर्तते तिष्ठति। जकारौ द्वौ द्वितीयकचतुर्थौ गुरुमध्यगौ भवेतामिति। जघनचपला सा। सा जघनचपलार्या। न्यासः प्रसिद्धः।।३।।

माण्डव्य आचार्य द्वारा कथित वाणी को सुनकर मेरा कथन विद्वानों को रुचिकर नहीं लगेगा। जैसा कि आचार्य माण्डव्य ने कहा है–

सर्वव्यापी आकाश का वसन, स्फटिक मणि, कमलनाल से उत्पन्न तन्तु, शंख और कपास, इनकी कान्ति के सदृश राजा के मस्तक पर सुशोभित तिलक निर्मलता को उत्पन्न कर रहा है। जिसकी सेना के उन्मत्त अश्वों की गति से खुर के द्वारा उत्पन्न धूलिकणों से आकाश व्याप्त हो रहा है। जिसको देखकर रात्रि की आशंका से प्रेमिकाओं द्वारा चक्रवाल दूर कर दिये जाते हैं। वृश्चिकराशि से भिन्न राशि में रोहिणीपति चन्द्रमा मोती के समान उज्ज्वल हो जाता है। आकाशमण्डल में स्थित उस चन्द्रमा को देखने वाले सभी लोगों में उज्ज्वलता उत्पन्न हो जाती है। सघन मेघों से जिसमें मलिनता आ जाती है तथापि आपके (राजा के) यश की उज्ज्वलता और भी अधिक धवलित हो रही है। इस उज्ज्वलता को देखकर भगवान शिव के प्रकट होने की आशंका से भीत होकर भगवती लक्ष्मी भगवान विष्णु का शिथिल आलिंगन करने लगती है।

यहाँ पर मेरी वाणी रुचिकर नहीं होगी। क्योंकि पुरुषों को साध्वी अर्थात् शीलवती अपनी स्त्री प्रिय नहीं होती है, जैसी कि जघनचपला अर्थात् असाध्वी वेश्यास्त्री होती है। इस अभिप्राय से मेरी नीरसवाणी भी सज्जनों को रुचिकर लगेगी। यह जघनचपला नामक आर्या छन्द है। इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है–

जो प्रथमार्ध में 'आर्या' के सदृश तथा द्वितीयार्ध में 'चपला' के समान हो उसको जघनचपला आर्या कहते हैं।

इसकी व्याख्या करते हैं-जिसका पूर्वार्ध पूर्व के सदृश अर्थात् सामान्य आर्या के अर्ध तुल्य द्वयान्तरादि लक्षणों से युक्त हो और पाश्चात्य अर्थात् द्वितीयार्ध चपला सम्बन्धी पूर्ण लक्षणों से निर्मित हो अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ के मध्य में दो गुरु हों; उसको जघनचपलाआर्या समझना चाहिये। इस जघन-चपलाआर्या का न्यास सर्वविदित (प्रसिद्ध) है।।३।।

विशेष व्याख्या–(१) कौर्पि वृश्चिक राशि और अष्टम का पर्याय है। अल्पमष्टमं वृश्चिककौर्पि कीटाः-जातकपारिजात १/६

२. विचकिल = चमेली, मदनवृक्ष, आप्टेकोश। मदन = धतूरा, अ.को २/४/७८.

कनकं हेम्नि पुंसि स्यात् किंशुके नागकेसरे।

धत्तूरे काञ्चनारे च कालीये चाम्पकेऽपि च (इति मेदिनी)।।

अधुना शार्दूलविक्रीडितेन सर्वग्रहाणां गोचरफलं संक्षेपेण दर्शयन्नाह–

सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ।
सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सूर्योऽप्युपान्ते शुभाः
शुक्रः सप्तमषड्दशर्क्षसहितः शार्दूलवत् त्रासकृत्।।४।।

सभी ग्रहों का संक्षिप्त गोचरफल शार्दूल विक्रीडितछन्द में प्रदर्शित करते हैं–

जन्म राशि से छठीं, तीसरी या दशवीं राशि में सूर्य; तीसरी, दशवीं, छठी, सातवीं या पहली राशि में चन्द्रमा; सातवीं, नववीं, दूसरी अथवा पाँचवी राशि में गुरु; छठवीं या तीसरी राशि में मंगल और शनि; छठवीं, दूसरी, चौथी दशवीं या आठवीं राशि में बुध तथा ग्यारहवीं राशि में सभी ग्रह शुभ होते हैं। सातवीं, छठी और दशवीं राशि में स्थित शुक्र सिंह की तरह भयदायक होता है। यह शार्दूलविक्रीडितछन्द में विरचित पद है।।४।।

सूर्य आदित्यः। षट् त्रिदशस्थितः, यस्य जन्मराशेः षष्ठतृतीयदशमस्थो गोचरेण शुभः। अर्थादेव परिशेषस्थानेष्वशुभः। त्रिदशषट् सप्ताद्यगश्चन्द्रमाः, चन्द्रमास्तृतीयस्थाने दशमे, षष्ठे, सप्तमे, आद्ये जन्मनि, च गतः स्थितः शुभः। शेषेष्वशोभनः। जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतः, जीवो बृहस्पतिः सप्तमे स्थाने नवमे द्वितीये पञ्चमे च गतः प्राप्तः शुभः। शेषेष्वशुभः। वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ, वक्रोऽङ्गारकः। अर्कजः शनैश्चरः। एतौ षट्त्रिगौ षष्ठतृतीयस्थानप्राप्तौ शुभौ। अन्यस्थानेष्वशुभाविति। सौम्यः षड्द्विचतुर्दश-शाष्टमगतः, सौम्यो बुधः, षष्ठद्वितीयचतुर्थदशमाष्टमस्थानगतः शुभः। शेषेष्वशुभः। सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः। अन्त्यस्य द्वादशस्य समीपमुपान्त्यमेकादशस्थानम्। तत्राप्युपान्ते सर्व एव सूर्यादयः शुभाः। शुक्रः सप्तमषड्दशर्क्षसहित इति। शुक्रः सप्तमे स्थाने,

षष्ठे दशमे ऋक्षे दशमे राशौ सहितः स्थितः शार्दूलवत् सिंहवत् त्रासकृद् भयं कोरति। यथा सिंहो दर्शनादेव भयं जनयति, तद्वदेतेषु स्थानेषु स्थितः, शुक्रः, अथदिवान्यस्थानेषु स्थितः शुक्रः शुभ इति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्–

म्सौ ज्सौ तौ गुरुकं च सूर्यतुरगैः शार्दूलविक्रीडितम्।

अत्र मस्त्रिगुरुः। सोऽन्तगुरुः। जो गुरुमध्यगतः। सः पुनरन्तगुरुः। अन्तलघुस्तः। द्वौ तकारौ। अन्ते गुरुश्च। सूर्या द्वादश। तुरगा अश्वाः सप्त। अस्य सूर्यतुरगैर्द्वादशभिः सप्तभिश्च, यतिर्भवति॥४॥

न्यासः–	म	स	ज	स	त	त	गु
	ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ

सूर्य जिस जातक की जन्मराशि में गोचर से ६, ३, १० स्थान में स्थित हो; तब शुभफल दायक होता है। इसका अर्थ यह है कि शेष सभी स्थानों में अशुभफल देता है। चन्द्रमा जन्मराशि से ३, १०,६, ७, १ स्थानों में स्थित होकर शुभफल देता है। शेष स्थान में अशुभफल समझना चाहिये। जीव अर्थात् गुरु २,५,७,९ स्थानों में होने पर शुभफलदायक तथा शेष स्थानों में अशुभ फलदायक होता है। वक्र अर्थात् मंगल, अर्कज अर्थात् शनि; ये दोनों तृतीय तथा षष्ठ स्थानों में होकर शुभफल देते हैं। शेष सभी स्थानों में इनका अशुभफल होता है। सौम्य अर्थात् बुध, २,४,६,८,१० स्थानों में शुभफल तथा शेष स्थानों में अशुभफल देता है। सभी ग्रह उपान्त में शुभ करते हैं। अन्त्य स्थान अर्थात् द्वादश स्थान के समीप उपान्त अर्थात् एकादशस्थान होता है। सूर्यादि सभी ग्रह उपान्त (एकादशभाव) में शुभकारक होते हैं। शुक्र ६,७,१० ऋक्ष अर्थात् राशि में स्थित होकर शार्दूल अर्थात् सिंह के समान त्रास अर्थात् भय देता है। जिस प्रकार सिंह के दर्शनमात्र से भय उत्पन्न हो जाता है। उसी प्रकार इन स्थानों में स्थित शुक्र जातक को भयभीत रखता है। अर्थात् अन्य स्थानों में शुभदायक होता है। यह श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में विरचित है।

शार्दूल विक्रीडित का लक्षण–

मगण अर्थात् तीन गुरु, सगण अर्थात् अन्त्यगुरु, जगण अर्थात् मध्यगुरु, सगण अन्त्य गुरु, दो तगण अर्थात् दोनों के अन्त्य लघु और अन्त में गुरु। इसमें सूर्य अर्थात् द्वादश और तुरग अर्थात् सात; इन दोनों वर्णों पर यति होती है॥४॥

विशेष–न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

---

१. मनसि च न सुखमिति पाठान्तरम्।

इदानीमाचार्यः पृथक् पृथग् विस्तरेण गोचरफलं चिकीर्षुस्तत्रादावेवार्कस्य जन्मद्वितीयतृतीयचतुर्थस्थानेषु गोचरफलं स्रग्धरावृत्तेनाह–

जन्मन्यायासदोऽर्कः क्षपयति विभवान् कोष्ठरोगाध्वदाता
वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति१ च न सुखं वञ्चनां दृग्रुजं च।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदा कल्यकृच्चारिहर्ता
रोगान् दत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगविघ्नम्।।५।।

अब आचार्य विस्तारपूर्वक गोचरफल बतलाने की कामना से पृथक्-पृथक् फल का विचार करेंगे। प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ स्थानगत सूर्य का गोचरफल स्रग्धरा छन्द में कहते हैं–

यदि सूर्य जन्म राशि में हो तो उपद्रव, धन-हानि, उदररोग तथा मार्ग में भ्रमण; द्वितीय राशि में हो तो धन का विनाश, दुःखी, सभी कार्यों का नाश तथा नेत्र रोग करता है तृतीयराशि में हो तो स्थान लाभ, धन समूह से युत, रोगदाता और शत्रु का विनाशक होता है चतुर्थराशि में सूर्य हो तो रोग देता है। वह माला को धारण करने वाली स्त्री के उपभोग में बार-बार विघ्न उत्पन्न करता है। यह स्रग्धरा छन्द है।।५।।

अर्क आदित्यो जन्मनि जन्मराशौ आयासमुपद्रवं ददाति। विभवानैश्वर्यान् क्षपयति नाशयति। कोष्ठरोगाध्वदाता, कोष्ठरोगं हृदयरोगमुदरामयमध्वानं च ददाति। वित्तभ्रंशं द्वितीय इति। द्वितीयस्थाने वित्तभ्रंशं धननाशं दिशति ददाति। न सुखं, सुखं च न ददाति। केचिन्मनसि च न सुखं पठन्ति। वञ्चनामुपशमनं सर्वकार्याणाम्। दृग्रुजं नेत्रपीडां च दिशति। स्थानप्रप्तिं तृतीय इति। तृतीये स्थानप्राप्तिं स्थानलाभं तथा धननिचयमुदा कल्यकृत्, धनस्य वित्तस्य निचयः समूहः, तेन या मुद्धर्षस्तया कल्यमरोगित्वं करोति। अरिहर्ता शत्रुघाती च भवति। रोगान् दत्ते चतुर्थ इति। चतुर्थस्थाने रोगान् गदान् दत्ते ददाति। मुहुः क्षणं क्षणं स्रग्धराभोगविघ्नं जनयति उत्पादयति। स्रजं मालां धारयतीति स्रग्धरा स्त्री तस्या भोगे उपभोगे पीडित्वाद्विघ्नं जनयति। स्रग्धरावृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्–

म्रौ भ्नौ याश्च त्रयः स्युः स्वरमुनितरुगैः स्रग्धरा स्याद्विरामैः।

अत्र मस्त्रिगुरुः। रो लमध्यः। भ आदिगुरुः। नः सर्वलघुः। य आदिलघुः। ते च त्रयो यकराः। स्वराः समस्ताः सप्त मुनयस्तुरगाश्च सप्त एतैर्विरामैर्यतिभिः स्रग्धरा स्याद् भवेत्।।५।।

अर्क अर्थात् सूर्य जन्मराशि में हो तब आयास अर्थात् उपद्रव देता है। विभव अर्थात् ऐश्वर्य का विनाश करता है। कोष्ठरोग अर्थात् हृदयरोग और उदरोग करता है।

तथा यह अध्वान अर्थात् भ्रमण कराता है। द्वितीय स्थान में स्थित वित्तभ्रंश अर्थात् धन का नाश करता है, और सुख नहीं देता है। कतिपय आचार्य मानसिक सुख का अभाव बतलाते हैं। सभी प्रकार के कार्यों की हानि करता है। दृग्-रुज अर्थात् नेत्रों को पीड़ित करता है। तृतीय स्थान में स्थित सूर्य स्थान का लाभ तथा धनसंग्रह सम्बन्धी उत्कर्ष के कारण कल्य अर्थात् निरोगिता दिलाता है, तथा शत्रुओं का संहारक होता है। चतुर्थ स्थान में स्थित सूर्य अनेक रोगों को उत्पन्न करता है। बार-बार स्रग्धरा के भोग में विघ्न उत्पन्न, करता है। स्रज अर्थात् माला को धारण करने वाली स्त्री को स्रग्धरा कहते हैं। इस स्रग्धरा स्त्री के भोग में विघ्न उत्पन्न करता है। यह श्लोक स्रग्धरा छन्द में विरचित है।

स्रग्धरा छन्द का लक्षण–

इसके आरम्भ में मगण अर्थात् तीन गुरु अक्षर, पुनः रगण अर्थात् मध्य लघु, तत्पश्चात् क्रमशः भगण अर्थात् आदि गुरु, नगण अर्थात् सर्व लघु,. यगण अर्थात् आदि लधु, ये यगण तीन बार होते हैं। इनमें सर्वत्र सात-सात वर्णों पर विराम (यति) होने पर स्रग्धरा छन्द समझना चाहिये।।५।।

न्यासः–	म	र	भ	न	य	य	य
	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽ।।	।।।	।ऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

विशेष व्याख्या–

१. स्रग्धरा के प्रत्येक पाद में २१ वर्ण होते हैं।

२. 'कल्य' शब्द का अर्थ प्रभात, उषा-काल तथा निरोगिता है।

अमरकोश २/६/५६.

वर्तो निरामयः कल्य उल्लाघो निर्गतो गदात्।
कल्यं प्रभाते मधुनि सज्ये दक्षे निरामये।

अथ पञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमेषु फलं सुवदनावृत्तेनाह–

पीडाः स्युः पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगारिजनिताः
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपून् शोकांश्च नुदति।
अध्वानं सप्तमस्थो जठरगदभयं दैन्यं च कुरुते।
रुक्त्रासौ चाष्टमस्थे भवति सुवदना न स्वापि वनिता।।६।।

पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टमस्थ रवि का गोचरफल सुवदनावृत्त में कहते हैं–

यदि सूर्य जन्मराशि से पञ्चमराशि में हो तो रोग और शत्रुजनित बहुत प्रकार की पीड़ा; षष्ठ में हो तो रोग, शत्रु और शोक का नाश; सप्तम में हो तो मार्ग में भ्रमण, उदर के रोग का भय तथा दुःख देता है। अष्टम में हो तो रोग और भय होता

है। तथा अपनी स्त्री भी सुवदना, अच्छी तरह सुन्दरी नहीं लगती है। यह पद्य सुवदनाछन्द में है॥६॥

पीडाः स्युरिति। पञ्चमस्थे पञ्चमस्थानस्थिते सवितर्यादित्ये बहुशो बहुप्रकारा रोगारिजनिता रोगजनिताः शत्रुजनिताश्च शत्रुभिरुत्पादिताः पीडा व्यथाः स्युर्भवेयुः। षष्ठेऽर्क इति। षष्ठे स्थानेऽर्कः सूर्यो रोगान् हन्ति नाशयति; रिपून् शत्रूंश्च क्षपयति विनाशयति; शोकान् चित्तसन्तापांश्च नुदति प्रेरयति नाशयतीत्यर्थः। अध्वानं सप्तमस्थ इति। सप्तमस्थोऽर्कोऽध्वानं कुरुते। तथा च जठरगदभयम्, जठरमुदरम्, गदो रोगः, जठररोगभयम्। दैन्यं दीनतां च कुरुते। रुक्त्रासौ चाष्टमस्थ इति। अष्टमस्थेऽर्के रुकत्रासौ रोगभये भवतः। स्वापि वनिता आत्मीयापि स्त्री सुवदना शोभनमुखी सस्नेहा न भवति। वृत्तमिदं सुवदना। तल्लक्षणम्—

म्रौ भ्नौ य्भौ ल्गौ मुनिव्योमगरसविरतिः ख्याता सुवदना।

अत्र मस्त्रिगुरुः। रो लमध्यः। भ आदिगुरुः। नस्त्रिलघुः। यकार आदिलघुः। भ आदिगुरुः। अन्ते लघुगुरू। मुनयः सप्त। व्योमगाः सप्त। रसाः षट्। एतैर्विरतिर्विरामो यतिर्यस्याः सा सुवदना कथिता इति॥६॥

न्यासः—	म	र	भ	न	य	भ	ल	गु
	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽ।।	।।।	।ऽऽ	ऽ।।	।	ऽ

सविता अर्थात् सूर्य के पञ्चमस्थान में स्थित होने पर विविध प्रकार के रोगजनित तथा शत्रुजनित उपद्रवों से पीड़ा होती है। छठे स्थान में स्थित सूर्य रोगों का हनन अर्थात् विनाश करता है और शत्रुओं को भी विनष्ट करता है, शोक अर्थात् चित्त के अन्तः कष्टों का नुद अर्थात् विनाश करता है। सप्तमस्थ रवि अध्वान अर्थात् पथ-भ्रमण कराता है, और यह जठर अर्थात् उदर का गद अर्थात् रोग उत्पन्न करता है। तथा दीनता लाता है। अष्टमस्थ रवि रोग तथा भय करता है। अपनी स्त्री सुवदना अर्थात् सुमुखी होती हुई भी स्नेहशीला नहीं रहती है। यह श्लोक सुवदना छन्द में विरचित है—

सुवदनाछन्द का लक्षण—

आरम्भ में मगण अर्थात् तीन गुरु, पुनः रगण अर्थात् मध्य लघु, पुनः भगण अर्थात् आदि गुरु, तत्पश्चात् क्रमशः नगण अर्थात् तीन लघु, यगण अर्थात् आदि लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु तथा अन्त में लघु-गुरु वर्ण होते हैं। इसमें ७,७,६ पर यति अर्थात् विराम होता है। यह सुवदनाछन्द का लक्षण है॥६॥

विशेष—सुवदनावृत्त का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ नवमैकादशद्वादशस्थानस्थेऽर्के फलं सुवृत्तयाऽऽह—

रवावापद्दैन्यं रुगिति नवमे वित्तचेष्टाविरोधो
जयं प्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसिद्धिं क्रमेण।

जयस्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं
सुवृत्तानां चेष्टा भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम्।।७।।

नवम-दशम-एकादश-द्वादशस्थ रवि का गोचरफल सुवृत्ताछन्द में कहते हैं।

गोचर का नवमस्थ रवि विपत्ति-दीनता, रोग देता हुआ आर्थिक प्रयत्नों का विरोधी होता है। दशमस्थ होकर असंभव विजय दिलाता है और क्रमिक रूप से कार्यो को सिद्ध कराता है। एकदाश स्थानस्थ होकर जय, भूमि, प्रतिष्ठा, समृद्धि और रोग का नाश करता है। द्वादशस्थ रवि उत्तम आचरण वाले को सफलता देता है। परञ्च शेष सभी के लिए विफलता देता है।।७।।

रवावापदैन्यमिति। रवावादित्ये नवमे नवमस्थानस्थे आपदार्तिर्दैन्यं दीनता। रुग्रोगः। वित्तस्य धनस्य चेष्टया क्रियया विरोधो विघ्नो भवति। इतिशब्दः प्रकाराय। जयं प्राप्नोत्युग्रमिति। दशमगृहगे दशमस्थानस्थेऽर्के जयं विजयमुग्रं कठिनं प्राप्नोति लभते। क्रमेण परिपाट्या कर्मसिद्धिं कार्याणां निष्पत्तिम्। जयस्थानमिति। एकादशे जयं विजयं स्थानं स्थानलाभं मानं पूजां विभवमैस्वर्यं रोगनाशं गदोपशमनं च प्राप्नोति। सुवृत्तानामिति। द्वादशे सूर्ये सुवृत्तानां शोभनं वृत्तं शीलं येषां तेषां चेष्टा क्रिया सफला फलसंयुक्ता भवति। तथा चोक्तम्–

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो विनश्यते।।इति।।

नेतरेषाम्। दुर्वृत्तानां चेष्टा सफला न भवति। वृत्तमिदं सुवृत्ता। तल्लक्षणम्–

यमौ न्सौ रौ गश्चेद् द्विरसमुनिभिः स्याद्विरामैः सुवृत्ता।

य आदिलघुः। मस्त्रिगुरुः। नस्त्रिलघुः। सोऽन्तगुरुः। रलमध्यः। द्वौ रेफौ। सोऽन्ते गुरुः। द्वे यती रसैः षड्भिर्भवतः। तृतीया मुनिभिः सप्तभिः। एतैर्विरामैः सुवृत्ता स्याद् भवेत्। अन्येषां मेघविस्फूर्जिता।

न्यासः–	य	म	न	स	र	र	गु
	।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ

तथा च यनवेश्वरः–

हृद् रोगशोकाध्वविवाहदैन्यक्रोधक्षयव्याधिभयार्तिदोषान्।
स्थाने शशाङ्कस्य रविः करोति व्यर्थश्रमोद्वेगमपि द्वितीये।।
तृतीयसंस्थो धनमानधर्मस्थानासनप्रीतिसुखप्रदोऽर्कः।
चतुर्थगस्तु क्षतजप्रवृत्तिर्ज्वरामयो भेदविवादकारी।।
नृपावमर्दात्मजबन्धुशोकव्याधिप्रदः पञ्चमसंस्थितोऽर्कः।।
आरोग्यसौख्यारिविनाशहर्षख्यातिक्रियासिद्धिकरश्च षष्ठः।।

जामित्रसंस्थो रुधिरप्रवृत्तिर्ज्वरक्लमाजीर्णविषाध्वकारी।
सूर्योऽष्टमे स्त्रीसुतबन्धुदुःखव्याधिप्रदोपद्रवमृत्युकृत् स्यात्॥
दैन्यस्थितिभ्रंशगुरुस्वबन्धुप्रद्वेषकृत् स्यान्नवमाश्रितोऽर्कः।
मेषूरणस्थो द्विचतुष्पदस्त्रीहिरण्यरौप्याम्बरलाभकर्ता॥
एकादशे स्थानयशः प्रहर्षमिष्टाशनारोग्यसुखप्रदोऽर्कः।
स्थाने निरुक्तं शशिनो विधिज्ञैः क्रियाफलाघातकृदन्त्यराशौ॥इति॥७॥

रवि अर्थात् सूर्य नवम स्थान में हो, तब आपदा अर्थात् विपत्ति, दैन्य अर्थात् दीनता, रुज अर्थात् रोग देता हुआ धनार्जन के प्रयत्न में विघ्नकारक होता है। दशम स्थान में स्थित सूर्य कठिनतापूर्वक विजय प्रदान करता है। क्रमशः कार्यों को निष्पादित करता है। एकादश स्थान में स्थित सूर्य विजय, स्थानलाभ, सम्मान तथा ऐश्वर्य के साथ ही रोगों का शमन करता है। द्वादश स्थान में स्थित सूर्य सुवृत्त अर्थात् सच्चरित्र लोगों की क्रियाओं को सफल करता है। जैसाकि कहा गया है-

शुभ आचार में संयुक्त, प्रतिदिन आत्मोत्थान में प्रयत्नशील, यज्ञ तथा हवन करने वाले सज्जनों का अनिष्टफल समाप्त हो जाता है।

अन्य लोगों का अर्थात् दुश्चरित्रों की क्रियायें सफल नहीं होती हैं। यहाँ पर सुवृत्ताछन्द है।

सुवृत्ताछन्द का लक्षण-

यगण अर्थात् आदि लघु, मगण अर्थात् तीन गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, रगण अर्थात् मध्य लघु, दो बार तथा अन्त में गुरु वर्ण होता है। इसमें २, ६ और ७ वर्णों पर यति (विराम) होती है। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह मेघविस्फूर्जितछन्द का लक्षण है।

विशेष—सुवृत्ताछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसा कि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है-

चन्द्रराशि से प्रथम स्थान में स्थित गोचरीय सूर्य हृदयरोग, शोक, भ्रमण, विवाह, दरिद्रता, क्रोध, हानि, रोग और भय सम्बन्धी दोषों को देता है। द्वितीय स्थान में स्थित रवि निरर्थक श्रम तथा मनोद्वेग देता है। तृतीय स्थान में स्थित सूर्य धन, सम्मान, धर्मकार्य, स्थान प्राप्ति, पद, प्रेम और सुख को प्रदान करता है। चतुर्थस्थान में स्थित रवि व्रण, ज्वर, विभेद और विवाद को उत्पन्न करता है। पञ्चमस्थान में स्थित सूर्य राज-हानि, पुत्र एवं बन्धु का शोक तथा रोगदायक होता है। षष्ठस्थ रवि निरोग, सुखी, शत्रुविनाशक, प्रसन्नता, कीर्ति और कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है। सप्तम स्थान का सूर्य व्रणकारी, ज्वर, थकान, अपच, विषदोष तथा मार्ग में

भ्रमणकारी बनाता है। गोचरीय अष्टम रवि अपनी पत्नी, पुत्र तथा बन्धुजनों से दुःखित रखता है। यह रोगप्रदायक, उपद्रव और मृत्युकारक होता है। नवमस्थ सूर्य दीनता, स्थान नाश, गुरु और बन्धुओं में द्वेष उत्पन्न करता है। दशमस्थान में स्थित रवि मनुष्य, पशु, स्त्री, सुवर्ण, रजत तथा वस्त्रों का लाभ कराता है। एकादशस्थान में स्थित सूर्य पद, प्रतिष्ठा, प्रसन्नता, अभिलषित भोजन, स्वास्थ्य एवं सुखप्रदायक होता है। द्वादशभावस्थ रवि कर्मफलों में विघ्न उपस्थित करता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रज्ञ विद्वानों ने चन्द्रराशि से सूर्य की स्थिति के अनुसार विचार किया है।।७।।

अथ चन्द्रमसो जन्मद्वितीयतृतीयचतुर्थस्थस्य फलं शिखरिण्याऽऽह–

शशी जन्मन्यन्नप्रवरशयनाच्छादनकरो
द्वितीये मानार्थान् ग्लपयति सविघ्नश्च भवति।
तृतीये वस्त्रस्त्रीधनविजयसौख्यानि लभते
चतुर्थेऽविश्वासः शिखरिणि भुजङ्गेन सदृशः।।८।।

चन्द्रमा का प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ स्थान का फल शिखरिणी छन्द में कहते हैं–

जन्मराशि का चन्द्र, भोजन-शयन का उत्तम प्रबन्ध कराता है। द्वितीय स्थानगत, धन-सम्मान की हानि के साथ ही विघ्नदायक होता है। तृतीय स्थान का चन्द्र, वस्त्र स्त्री-धन-शत्रुपर विजय तथा सुख देता है। चतुर्थस्थ चन्द्रमा, सर्प के समान भय तथा अविश्वास उत्पन्न करता है।।८।।

शशी जन्मनीति। शशी चन्द्रः। जन्मनि जन्मराशौ स्थितः। अन्नप्रवराणि प्रधानानि शयनानि आस्तरणानि आच्छादनानि वस्त्राणि करोति। द्वितीय इति। द्वितीये स्थाने मानं पूजा। अर्था धनादयः। तान् ग्लपयति नाशयति। सविघ्नो विघ्नुयक्तश्च भवति। तृतीय इति। तृतीये स्थाने वस्त्राण्यम्बराणि स्त्री योषित् धनं वित्तं विजयो विशेषेण जयः सौख्यं सुखभावः। तानि च लभते प्राप्नोति। चतुर्थे चन्द्रे अविश्वासः, विश्वासो न भवति; अपि तु सर्वस्मादाशङ्का जायते। कीदृशोऽविश्वासः? शिखरिणि भुजङ्गेन सदृशः, शिखरिणी पर्वते भुजङ्गेन सर्पेण हेतुना यथा विश्वासो जनानाम्। यस्मिन् पर्वतस्थाने सर्पो भवति तत्र न कस्यचिद्विश्वासो भवतीति। शिखरिणीवृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्–

यमौ न्सौ भो ल्वन्ता रसहरविरामा शिखरिणी।

य आदिलघुः। मस्त्रिगुरुः। न स्त्रिलघुः। सोऽन्तगुरुः। भ आदिगुरुः। लघुगुरू अन्ते। रसाः षट्। हरा रुद्रा एकादश। एतैर्विरामो यस्याः सा शिखरिणी।।८।।

न्यासः–	य	म	न	स	भ	ल	गु
	।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।	ऽ

शिखरिणीछन्द के द्वारा प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थगत चन्द्रमा का फल कहते हैं–

शशि अर्थात् चन्द्रमा जन्म राशि में स्थित होकर श्रेष्ठ अन्न एवं शय्या को प्रदान करता है। द्वितीयस्थ चन्द्र मान अर्थात् पूजा, अर्थ अर्थात् धन-सम्पत्ति का ग्लपन अर्थात् विनाश करता है, और अनेक प्रकार के विघ्नों से युक्त रखता है। तृतीय स्थान में स्थित चन्द्रमा के द्वारा वस्त्र, स्त्री, धन और शत्रु विजय के द्वारा श्रेष्ठ सुख प्राप्त होता है। अर्थात् इन वस्तुओं को प्राप्त कराता है। चतुर्थस्थ चन्द्रमा में अविश्वास अर्थात् विश्वास का अभाव और सभी लोगों से भय उत्पन्न होता है। यह अविश्वास किस प्रकार का होता है? जिस प्रकार शिखर अर्थात् पर्वत पर रहने वाले भुजङ्ग अर्थात् सर्प (पहाड़ी साँप) से लोगों में अविश्वास रहता है। तात्पर्य यह है कि पर्वत पर जिस स्थान पर सर्प होता है, वहाँ पर कोई भी विश्वास नहीं करता है। यह शिखरिणी छन्द है।

शिखरिणी छन्द का लक्षण–

यगण अर्थात् आदि लघु, मगण अर्थात् तीन गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु और अन्त में लघु-गुरु वर्ण होते हैं। रस अर्थात् छः, हर अर्थात् एकादश वर्णों पर जिसका विराम (यति) होता है। वह शिखरिणीछन्द है॥८॥

विशेष–शिखरिणीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अधुना पञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमस्थस्य चन्द्रमसः फलं मन्दाक्रान्तयाऽह–

दैन्यं व्याधिं शुचमपि शशी पञ्चमे मार्गविघ्नं
षष्ठे वित्तं जयनति सुखं शत्रुरोगक्षयं च।
यानं मानं शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं
मन्दाक्रान्ते फणिनि हिमगौ चाष्टमे भीर्न कस्य॥९॥

मन्द्राक्रान्ताछन्द के द्वारा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशिगत चन्द्रमा का फल कहते हैं–

चन्द्रमा जन्म राशि से पंचम स्थान का दीनता, रोग, शोक तथा यात्रा में विघ्न करता है। षष्ठ स्थान का धन तथा सुख देकर शत्रु और रोग का शमन करता है। सप्तमस्थ चन्द्र, वाहन, सम्मान, शयन, भोजन एवं धन का लाभ देता है। अष्टम चन्द्र, मन्दगामी सर्प के समान होता है, सर्वतः भय देता है॥९॥

---

१. सम्प्रति ज्योतिषे लोकशब्देन त्रयो गृह्यन्ते।

दैन्यं व्याधिमिति। शशी चन्द्रः पञ्चमे स्थाने स्थितो दैन्यं दीनतां व्याधिं पीडां शुचं शोकम्। अपि तथा मार्गे पथि विघ्नमसिद्धिं जनयत्युत्पादयति। षष्ठ इति। षष्ठे स्थाने वित्तं धनं सुखं च जनयति। तथा शत्रूणामरीणां रोगाणां गदानां च क्षयं विनाशं जनयति। यानं मानमिति। सप्तमे यानं वाहनं मानं पूजां शयनं शय्याऽशनं भोजनं वित्तलाभं धनप्राप्तिं च जनयति। मन्द्राक्रान्त इति। अष्टमे हिमगौ चन्द्रे फणिनि सर्पे मन्दाक्रान्ते। मन्दमप्रयत्नं कृत्वाक्रान्तो गृहीतो यः सर्पः स कस्य भीर्भयं न करोत्यपि तु सर्वस्यैव। अष्टमे चन्द्रे मन्दाक्रान्ते च फणिनि भयं भवतीत्यर्थः। वृत्तमिदं मन्दाक्रान्ता। तल्लक्षणम्—

मन्दाक्रान्ता मभनततगा गः समुद्रर्तुलोकैः।

मस्त्रिगुरुः। भ आदिगुरुः। नः सर्वलघुः। तोऽन्तलघुः। द्वौ यत्र तकारौ। अन्ते गुरुद्वयम्। समुद्राश्चत्वारः। ऋतवः षट्। लो [1]का भूर्लोकादयः सप्त। एतैर्विरामैर्मन्दाक्रान्ता॥९॥

न्यासः–	म	भ	न	त	त	गु
	ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ

पञ्चम स्थान में स्थित चन्द्रमा दैन्य अर्थात् निर्धनता, रोगकष्ट और शुच अर्थात् शोक देता है। यह मार्ग अर्थात् यात्रा में विघ्न और असफलता को उत्पन्न करता है। षष्ठ स्थान में स्थित चन्द्रमा धन और सुख लाता है तथा शत्रुओं और रोगों का क्षय करता है। सप्तमस्थ चन्द्रमा यान अर्थात् वाहन, मान-सम्मान, शय्या, अशन अर्थात् भोजन और धनलाभ कराता है। अष्टमस्थ हिमगु अर्थात् चन्द्रमा फणि अर्थात् सर्प के मन्दाक्रान्त सदृश भय उत्पन्न करता है। मन्द,अर्थात् अनायास जो आक्रान्त अर्थात् आक्रमण कर देता है, वह सूर्य किसके लिये भयकारक नहीं, होता है? अर्थात् सभी के लिये भयदायक होता है। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा के अष्टमस्थ होने पर अनायास आक्रामक सर्प के समान भय होता है। यह मन्दाक्रान्ताछन्द है।

मन्दाक्रान्ताछन्द का लक्षण—

मगण अर्थात् तीन गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु, तगण अर्थात् अन्त्य लघु, दो बार तथा अन्त्य में गुरु; समुद्र अर्थात् चार, ऋतु अर्थात् छः, सात पृथ्वी आदि लोक अर्थात् सात वर्णों पर विराम होता है। यह मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण है॥९॥

विशेष—मन्दाक्रान्ता छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

नवमदशमद्वादशस्थचन्द्रमसः फलं वृषभचरितेनाह–

नवमगृहगो बन्धोद्वेगश्रमोदररोगकृद्
दशमभवने चाज्ञाकर्मप्रसिद्धिकरः शशी।
उपचयसुहृत्संयोगार्थप्रमोदमुपान्त्यगो
वृषभचरितान् दोषानन्त्ये करोति च सव्ययान्॥१०॥

नवम, दशम, एकादश तथा द्वादशस्थ चन्द्रमा का फल वृषभचरितछन्द में कहते हैं–

गोचर में नवम चन्दन, बंधन, उद्वेग, श्रम तथा उदररोग देता है। दशमस्थ होकर प्रमुख तथा उत्तम कार्य देता है। वह एकादश का धन, मित्र, और वित्त देता है। द्वादशस्थ चन्द्र पशु से हानि और व्यय कराता है॥१०॥

नवमगृहग इति। शशी चन्द्रमा नवमगृहगः। जन्मराशेर्नवमस्थानप्राप्तो बन्धो बन्धम्। चलवृत्तिरुद्वेगः। श्रमः खेदः। उदररोगान् जठररोगांश्च करोति। दशमभवन इति। उपचयसुहृदिति। उपान्त्यग एकादशस्थः। उपचयोऽर्थानाम्। सुहृत्संयोगी मित्रसमागमः। अर्थानां धनानां प्रमोदो हर्षम्। एतान् करोति। वृषभ-चरितान् इति। अन्त्ये द्वादशे स्थाने वृषभचरितान् दोषान्। वृषभस्य बलीवर्दस्येव चरितं स्वरूपं येषां दोषाणां दुःखानाम्। स्वखुरेण भूमिताडनात् स्ववक्षोहननम्। भूमेर्मृद्विदारणात् स्वविषाणोपघात इत्यादिकम्। अथवा वृषभेण चरितानुत्पादितान् दोषान् शृङ्गाणां हननेन खुराभिघातेन चोपतापान्। तांश्च सव्ययान् व्ययेनार्थक्षत्या युक्तान् करोति। वृषभचरितं वृत्तम्। एतल्लक्षणम्–

वृषभचरितं न्सौ म्रौ स्लौ गो रसोदधिसप्तकैः।

नस्त्रिलघुः। सोऽन्तगुरुः। मस्त्रिगुरुः। रलमध्यः। सोऽन्तगुरुः। लघुगुरू अन्ते। रसा षट्। उदधयश्चत्वारः। सप्त प्रसिद्धाः। एतैर्विरामैर्वृषभचरितम्। अन्येषां हरिणी।

न्यासः–	न	स	म	र	स	ल	गु
	।।।	।।ऽ	ऽऽऽ	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

तथा च यवनेश्वरः–

स्वस्थानगो भोजनगन्धमाल्यनारीसुहृद्वस्त्ररतिप्रदः स्यात्।
चन्द्रो द्वितीयर्क्षगतस्तु तस्माद् बहुव्ययायासविवादकारी॥
तृतीयगो वस्त्रहिरण्ययोषित्सुहृद्यशोभोजनदो हिमांशुः।
स्वबन्धुपीडधननाशजानि कुर्वीत दुःखानि चतुर्थसंस्थः॥
धनक्षयाजीर्णरुगध्वदैन्यविक्षोभकृत् पञ्चमगः शशाङ्कः।
शत्रुक्षयारोग्यसुखार्थसिद्धिं स्निग्धागमप्रीतिकरश्च षष्ठः॥
जामित्रगः स्त्रीजनबन्धुशय्याहिरण्यभोज्याम्बरदः शशाङ्कः।
क्षुड्व्याधिचिन्ताकलहार्थनाशो मृत्युक्षयोपद्रवदोऽष्टमस्थः॥
धनक्षयारिव्ययमानभङ्गरोगादिकारी नवमः शशाङ्कः।
मेषुरणस्थो बहुमानहर्षचेष्टाफलौदार्यविरोधकारी॥
एकादशः स्निग्धविवाहशय्यास्त्रीभोजनप्राप्तिसुखार्थकारी।

निशाकरो द्वादशगस्तु दैन्यमालस्यमीर्ष्यापचयं च कुर्यात् ।।इति।।१०।।

शशि अर्थात् चन्द्रमा जन्म राशि से नवम स्थान में स्थित हो तब बन्ध अर्थात् बन्धन, मन की चंचलता से उद्वेग, परिश्रम से कष्ट, उदररोग तथा अपचयरोग करता है। दशमभाव में स्थित चन्द्रमा आज्ञा-प्रधान प्रभुत्व, कार्यसिद्धि में साधनयुक्त करता है। उपान्त्य अर्थात् एकादश स्थान में स्थित चन्द्रमा धन का उपचय (वृद्धि) और मित्रों से मिलन तथा धनागम से मन को आनन्दित करता है। अन्त्य, अर्थात् द्वादश स्थान में स्थित चन्द्रमा वृषभ के आचरण सदृश दोषों को करता है। वृषभ (बलीवर्द) के आचरण के सदृश दोष अर्थात् दुःखों को करता है। अपने खुर से भूमि का प्रताड़न, अपने वक्ष का स्वयं हनन तथा भूमि को विदारित करने के फलस्वरूप अपने विषाण अर्थात् सींग को क्षतिग्रस्त करना, आदि दोष उत्पन्न करता है। अथवा वृषभ द्वारा किये गये शृङ्गों का आघात तथा खुर से चोटिल हो कर कष्टों को प्राप्त करता है। यहाँ पर वृषभ का अभिप्राय साँड़ है। यह आर्थिक अपव्यय से हानि कराता है। यह वृषभचरित छन्द है।

वृषभचरित छन्द का लक्षण–

नगण अर्थात् तीन लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, मगण अर्थात् तीन गुरु, रगण अर्थात् मध्य लघु, सगण अर्थात् अन्त्यगुरु तथा अन्त में लघु गुरु होता है। रस अर्थात् छः, उदधि अर्थात् चार तथा सात वर्णों पर यति होने से यह वृषभचरित छन्द निर्मित होता है। अन्य आचार्यों ने इसको हरिणी छन्द कहा है।

विशेष–इस छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने भी कहा है–

प्रथमस्थान में स्थित चन्द्रमा भोजन, सुगन्धपदार्थ, माला, स्त्री, मित्र, वस्त्र और सुरतिदायक होता है। द्वितीय स्थान में स्थित चन्द्रमा अधिक व्ययकारी, श्रम तथा विवाद को उपस्थित करता है। तृतीयस्थान का चन्द्रमा वस्त्र, सुवर्ण, स्त्री, मित्र, यश और भोजन देता है। चतुर्थ स्थान में स्थित चन्द्रमा अपने कुटुम्ब को पीड़ा, सम्पत्ति का विनाश और विविध दुःखों को देता है। पञ्चममस्थ चन्द्रमा, धनहानि, अपचयरोग मार्ग-कष्ट, दीनता और उद्वेगकारक होता है। षष्ठस्थान में स्थित चन्द्रमा, शत्रु पर विजय, आरोग्य, सुख, धन प्राप्ति, सुन्दर पदार्थों का आगमन और प्रीतिकारक वस्तु को प्रदान करता है। सप्तमस्थ चन्द्रमा स्त्री, बन्धु, शय्या, सुवर्ण, भोज्य पदार्थ और नूतन वस्त्रों को देता है। अष्टम स्थान का चन्द्रमा क्षुधा, रोग, चिन्ता, कलह, धन-हानि, मृत्यु, हानि और उपद्रव उपस्थित करता है। नवमस्थ चन्द्रमा धन-हानि, शत्रु,

---

१. द्रष्टव्याऽस्यैवाध्यायस्य ३४ श्लोकटीका।

व्यय, प्रतिष्ठा की हानि और रोगों को उत्पन्न करता है। दशमस्थान का चन्द्रमा सम्मान, प्रसन्नता, अभीष्ट सिद्धि और दयालु स्वभाव तथा विरोध कराता है। एकादश स्थान का चन्द्रमा प्रिय पदार्थ, विवाह, शय्या, स्त्री, भोजन, सुख और धन का कारक होता है। द्वादशस्थ चन्द्रमा दीनता, आलस्य, ईर्ष्या और अपव्यय कराता है॥१०॥

अथ भौमस्य जन्मद्वितीयगतस्य फलमुपेन्द्रवज्रयाऽऽह–

कुजेऽभिघातः प्रथमे द्वितीये नरेन्द्रपीडाकलहारिदोषैः।

भृशं च पित्तानलचौररोगैरुपेन्द्रवज्रप्रतिमोऽपि यः स्यात्॥११॥

प्रथम तथा द्वितीय स्थानगत मंगल का फल उपेन्द्र वज्रा छन्द में कहते हैं–

जन्मराशिस्थ भौम अनेक उपद्रव करता है। द्वितीय स्थानगत राजपीड़ा, कलह, शत्रुता और पित्त, अग्नि, चोर तथा रोगों से विष्णु के तुल्य व्यक्ति को भी अत्यधिक पीड़ित करता है॥११॥

कुजे भौमे जन्मराशिगते अभिघात उपद्रवो भवति। द्वितीये कुजे नरेन्द्रपीडा राजपीडा। कलहारिदोषैः, कलहदोषः। शत्रुदोषः। एतैः। तथा पित्तेन धातुदोषेण। अनलेनाग्निना। चौरैस्तस्करैः। रोगैर्गदैश्च। भृशमत्यर्थम्। उपघातः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। उपेन्द्रवज्रप्रति-मोऽपि, उपेन्द्रो नारायणः, तत्प्रतिमस्तत्सदृशः। वज्रं कुलिशम्, तत्प्रतिमोऽपि यदि स्याद्भवेत् तथाप्युपघातो भवतीति। वृत्तमिदमुपेन्द्रवज्रा। तल्लक्षणम्–

उपेन्द्रवज्रा तु जतौ जगौ गः।

जो गुरुमध्यगतः तोऽन्तलघुः। पुनरपि जकारः। अन्ते गुरुद्वयम्॥११॥

न्यासः–	ज	त	ज	गु
	।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ

चन्द्रमा से प्रथमराशि (जन्म राशि) में स्थिर गोचर का मंगल हो तो अभिघात होता है। द्वितीय स्थान में स्थित मंगल राजपीड़ा, कलह से कष्ट तथा शत्रु से कष्ट देता है। पित्त सम्बन्धी धातु का उपद्रव, अनल अर्थात् अग्नि से, चोर अर्थात् तस्करों से और रोगों से अत्यन्त पीड़ित करता है। यदि व्यक्ति उपेन्द्र अर्थात् भगवान् नारायण के प्रतिम अर्थात् सदृश तथा वज्र (कुलिश) के सदृश भी हो, तब भी उसको आघात पहुँचता है। यह उपेन्द्रवज्राछन्द है।

उपेन्द्रवज्राछन्द का लक्षण–

जगण अर्थात् मध्यगुरु, तगण अर्थात् अन्त्य लघु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में दो गुरु हो तो, उपेन्द्रवज्राछन्द समझना चाहिये॥११॥

विशेष–इस छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ तृतीयस्थभौमस्य फलमुपजात्याऽऽह–

तृतीयगश्चौरकुमारकेभ्यो
भौमः सकाशात् फलमादधाति।
प्रदीप्तिमाज्ञां धनमौर्णिकानि
धात्वाकराख्यानि किलापराणि।।१२।।

तृतीय स्थानगत मंगल का फल उपजातिछन्द में कहते हैं–

तृतीय स्थानगत भौम चोर एवं कुमार-वय के व्यक्तियों से फल प्रदान करता है। मुख-कान्ति तथा स्वामित्व, धन, ऊनी वस्त्र, धातु पदार्थ और अन्य प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता है।।१२।।

तृतीयगो भौमः। चौरेभ्यस्तस्करेभ्यः। कुमारकेभ्योऽष्टवर्षेभ्यः। सकाशाद्धेतोः। फलमादधाति करोति। प्रदीप्तं कान्तिम्। आज्ञामादेशम् प्रभुत्वं धनं वित्तम्। और्णिकानि कम्बलादयः। धात्वाकराख्यानि। धातवः सुवर्णादीनि। तेषामाकर उत्पत्तिस्थानम्। धात्वाकर इत्याख्या येषां तानि। अपराण्यन्यानि। आदधाति। किलशब्द आगमार्थः। अपराण्यन्यानि वृत्तानि। उपजातिकाख्येत्यर्थः। यतः सा सम्मिश्रा उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रपादैर्मिश्रैर्भवति। तल्लक्षणम्–

अनन्तरापादितलक्ष्मशोभौ पादौ भवेतां विविधैर्विकल्पैः।
यासामिमौ श्रव्ययतिप्रपञ्चौ स्मृताः स्मृतीशैरुपजातयस्ताः।।

यासां पादावनन्तरापादितलक्ष्मशोभौ। अनन्तरमापादितमुक्तं यद् लक्ष्म लक्षणम्।[१] तौ जो गुरू चेद्भवतीन्द्रवज्रा। उपेन्द्रवज्रा तु जतौ जगौ गः। अनयोर्यल्लक्षणमापादितमुक्तम्। तेन लक्षणद्वयेन शोभा चारुता ययोः पादयोस्तौ तथाभूतौ पादौ भवेतां स्याताम्। इमौ च पादौ श्रव्ययतिप्रपञ्चौ श्रव्यःकर्णसुखजनको यतिप्रपञ्चो यतिविस्तारो ययोस्तौ तथाभूतौ। तत् स्मृतीशैः पण्डितैः स्मरणं स्मृतिः। तस्या ईशाः स्वामिनः तैः। ता उपजातय इति स्मृता उक्ताः।।१२।।

न्यासः–	ज	त	ज	गु
	।ऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ
	त	त	ज	गु
	ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ

जन्म राशि से तृतीय स्थान में स्थित मंगल चोर अर्थात् तस्करों से, कुमार अर्थात् अष्टवर्षीय बालकों द्वारा फल प्राप्त कराता है। प्रदीप्त अर्थात् कान्तिमान मुखमण्डल, आज्ञा अर्थात् आदेश देने में समर्थ स्वामित्व, धन (वित्त) और कम्बल आदि ऊनी वस्त्र, सुवर्णादि धातु तथा उनकी खदानें उपलब्ध कराता है। यह अन्य धातुओं को भी देता है। यहाँ पर 'किल' शब्द शास्त्र परम्परा का सूचक है। यह उपजाति संज्ञक छन्द है। इसको उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा छन्दों का सम्मिश्रण समझना

चाहिये।

उपजातिछन्द का लक्षण–

एक चरण के अनन्तर अन्य चरणों में विविध विकल्पों के साथ सुशोभित, कर्णप्रिय यति से युक्त, रचना को शास्त्रकारों ने उपजाति छन्द कहा है।

जिस श्लोक के दो चरण एक दूसरे से भिन्न रूप में सुशोभित हो। इन्द्रवज्रा का लक्षण-दो तगण, जगण तथा दो गुरु है। तथा उपेन्द्रवज्रा का लक्षण जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु है। इन दोनों के लक्षणों से संयुक्त होकर जो शोभा प्राप्त होती है, तथा श्रव्य अर्थात् कर्णप्रिय और यति (विराम) से युक्त विन्यास होता है, इस प्रकार के छन्द को स्मृतीश अर्थात् विद्वज्जन उपजाति छन्द कहते हैं। स्मृति का तात्पर्य स्मरण है और उसके ईश अर्थात् स्वामी को स्मृतीश (शास्त्रज्ञ) कहा जाता है॥१२॥

विशेष–इस छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ चतुर्थस्थस्य भौमस्य फलं प्रसभेनाह–

भवति धरिणजे चतुर्थगे ज्वरजठरगदासृगुद्भवः।
कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात् प्रसभमपि करोति चाशुभम्।।१३।।

चतुर्थस्थानगत मंगल का फल प्रसभच्छन्द में कहते हैं–

गोचर से चतुर्थ स्थान में भौम हो; तब ज्वर, उदर-रोग, रक्तज रोग उत्पन्न होते हैं। दुष्टजनों के कुसंग से आकस्मिक अनिष्ट होने लगते हैं॥१३॥

यदि मंगल चतुर्थ राशि में स्थित हो तो ज्वर, उदर रोग, रक्त विकार तथा निन्दित पुरुष के साथ समागम से दृढ़तापूर्वक अशुभ करता है। यह प्रसभछन्द है॥१३॥

धरणिजे भौमे चतुर्थगे। ज्वरो रोगविशेषः। जठरगद उदररोगः। असृग् रक्तम्। एषामुद्भाव उत्पत्तिर्भवति। तथा कुपुरुषः कुत्सितः पुरुषः। तज्जनितात् तदुत्पन्नात् सङ्गमात् संयोगात् प्रसभं प्रसह्य बलात्कारादेवाशुभमभद्रं करोति। वृत्तमेतत् प्रसभम्। तल्लक्षणम्–

प्रसभमपि ननौ रलौ गुरुः।

नस्त्रिलघुः। द्वौ नकारो। रलमध्यः। लघुगुरू अन्ते॥१३॥

न्यासः–	न	न	र	ल	गु
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

धरणिज अर्थात् मंगल, चतुर्थ स्थान में गया हो तब ज्वर, जठर अर्थात् उदर का रोग, असृग् अर्थात् रक्तविकार की उत्पत्ति होती है। तथा कुपुरुष अर्थात् दुष्ट पुरुष

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "तच्चेन्द्रवंशा प्रथमाक्षरे गुरौ"।

से प्राप्त समागम से अर्थात् बलात्कार के द्वारा अभद्र अर्थात् अशुभ अवसर उपस्थित करता है। यह प्रसभच्छन्द है।

प्रसभ छन्द का लक्षण–

दो नगण अर्थात् तीन-तीन लघु, रगण अर्थात् मध्य लघु तथा अन्त में लघु-गुरु हो तो प्रसभछन्द समझना चाहिए।।१३।।

विशेष–प्रसभछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ पञ्चमस्थस्य भौमस्य फलं मालत्याऽऽह–

रिपुगदकोपभयानि पञ्चमे
तनयकृताश्च शुचो महीसुते।
द्युतिरिपि नास्य चिरं भवेत् स्थिरा
शिरसि कपेरिव मालती यथा।।१४।।

पञ्चम स्थानगत मंगल का फल मालतीछन्द में कहते हैं–

गोचर का पंचम मंगल शत्रु, रोग, क्रोध और भय देता है। संतान-शोक देता है। शरीर का तेज उसी प्रकार स्थिर नहीं रहता है, जिस प्रकार वानर के सिर पर मालती की माला।१४।।

महीसुते भौमे पञ्चमस्थे। रिपुः शत्रुः। गदो रोगः। कोपः क्रोधः। भयं भीतिः। एतानि भवन्ति। तनयकृता पुत्रकृताश्च शुचः शोका भवन्ति। अस्य जन्तोर्द्युतिरपि शरीरकान्तिरपि स्थिरा स्थायिनी चिरं बहुकालं च न भवति। यथा कपेर्वानरस्य शिरसि मूर्धनि। मालती पुष्पविशेषः। स्थिरा न भवति, चापल्यात्। वृत्तमिदं मालती। अस्या लक्षणम्–

[१]नजजरकैरपि मालती मता।

नस्त्रिलघुः। जो गुरुमध्यः। द्वौ जकारौ। रलमध्यः। एतैर्मालती मताऽभिमता।।१४।।

न्यासः–	न	ज	ज	र
	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

महीसुत अर्थात् मंगल पञ्चमस्थान में स्थित हो, तब रिपु अर्थात् शत्रु, गद अर्थात् रोग, क्रोध तथा भय उत्पन्न होता है। सन्तान के द्वारा उत्पन्न शोक को भी झेलना पड़ता है। इस जातक की द्युति अर्थात् शरीर की कान्ति बहुत समय तक स्थिर नहीं रहती है। जिस प्रकार कपि अर्थात् वानर के सिर पर मालती संज्ञक पुष्प विशेष उसकी चञ्चलता के कारण स्थिर नहीं रहता है। यह मालती छन्द है।।१४।।

मालती छन्द का लक्षण–

नगण अर्थात् तीन लघु, दो जगण अर्थात् मध्यगुरु दो बार तथा अन्त मे रगण

अर्थात् मध्य लघु हो तो मालतीछन्द समझना चाहिये।

विशेष–मालती छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

विशेष व्याख्या–"माँ लक्ष्मीं ललति" अर्थात् जो लक्ष्मी को आवेष्टित करता उस पुष्प विशेष का नाम मालती है। इसी को जातिपुष्प तथा चमेली का फूल भी कहा जाता है। सुमनापुष्प के नाम से भी यह प्रसिद्ध है। यथा–अमरकोष २/४/७२.

'सुमना मालती जातिः'।

अथ षष्ठस्थस्याङ्गारकस्य फलमपरवक्त्रेणाह–

रिपुभयकलहैर्विवर्जितः सकनकविद्रुमताम्रकामगः।
रिपुभवनगते महीसुते किमपरवक्त्रविकारमीक्षते।।१५।।

षष्ठ स्थानगत मंगल का फल अपरवक्त्र छन्द में कहते हैं–

जन्मराशि से षष्ठ स्थान में मंगल हो तो शत्रुभय और कलह से रहित, सुवर्ण, प्रवाल और ताँबे का लाभ होता है। तथा उसको क्या दूसरे मनुष्य के मुखविकार को देखना पड़ता है? कभी नहीं। यह अपरवक्त्रा छन्द है।।१५।।

महीसुते भौमे रिपुभवनगते षष्ठस्थानस्थे। रिपुः शत्रुः। भयं भीतिः। कलहो विरोधः। एतैर्विवर्जितो रहितः। कनकस्य कनकेन सुवर्णेन सहितस्य विद्रुमस्य प्रवालस्य ताम्रस्य शुल्बस्य चागमो लाभो भवति। एवंविधे सति नरोऽपरस्यान्यस्य वक्त्रविकारं मुखविकृतिं किमीक्षते किमिति पश्यति; अपि तु न पश्यतीत्यर्थः। अत्याढ्यत्वात्। वृत्तमिदमपरवक्त्रम्। तल्लक्षणम्–

ननरलगयुतौ नजौ जरौ भवति सदा परवक्त्रमीदृशम्।

नस्त्रिलघुः। द्वौ नकारौ। रलमध्यः। लघुगुरू। एतैर्युक्तौ। नजौ जरौ। नकारस्त्रिलघुः। जो गुरुमध्यः। द्वौ जकारौ। रलमध्यः। एवंविधं सदा सर्वकालमपरवक्त्रं भवति।।१५।।

न्यासः–	न	न	र	ल	गु
	॥।	॥।	ऽ।ऽ	।	ऽ
	न	ज	ज	र	
	॥।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	

महीसुत अर्थात् मंगल षष्ठस्थान में स्थित हो तब शत्रु-भय और कलह से विवर्जित अर्थात् मुक्त रहता है। कनक अर्थात् सुवर्ण से युक्त, विद्रुम अर्थात् प्रवाल (मूँगा) एवं शुल्ब अर्थात् ताँबा का लाभ प्राप्त कराता है। इस प्रकार की स्थिति रहने पर क्या वह व्यक्ति किसी दूसरे का वक्त्रविकार अर्थात् मुख विकार को देखता है? अर्थात् वह किसी के मुखविकार को नहीं देखता है। तात्पर्य यह है कि वह स्वयं

अपनी सम्पन्नता के कारण परमुखापेक्षी नहीं होता है।

अपरवक्त्राछन्द का लक्षण—दो नगण अर्थात् तीन लघु दो बार, रगण अर्थात् मध्य लघु, लघु, गुरु। नगण अर्थात् तीन लघु, दो जगण अर्थात् मध्य गुरु दो बार तथा रगण अर्थात् मध्य लघु हो तो अपरवक्त्राछन्द समझना चाहिये।।१५।।

विशेष—अपरवक्त्राचन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

विशेष व्याख्या—अपरवक्त्र छन्द का लक्षण प्रस्तुत करते हुये आचार्य भट्टोत्पल ने पाद-भेद का उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः विषम पद (१,३) में न-न-र-ल-गु तथा सम (२,४) पद में न-ज-ज-र गण होते हैं। जैसा कि विवृति के न्यास से स्पष्ट है। छन्दोमञ्जरी में इसका लक्षण स्पष्टतया उपस्थापित है-

अयुजि ननरला गुरुः समे,
तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।।

अथ सप्तमाष्टमनवमस्थस्य भौमस्य फलं विलम्बितगतिनाह–

कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत् सप्तमे
क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षपितवित्तमानोऽष्टमे।
कुजे नवमसंस्थिते परिभवार्थनाशादिभि-
र्विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्लमैः।।१६।।

सप्तम, अष्टम और नवम स्थानगत मंगल का फल विलम्बितगति छन्द में कहते हैं–

यदि मंगल जन्म राशि से सप्तम स्थान में हो तो स्त्री के साथ विरोध, नेत्ररोग तथा उदररोग होता है। अष्टम में हो तो निकलते हुए रुधिर से विवर्ण शरीर, धन और मान का नाश होता है। जिसके नवम में मंगल हो वह पराभव, अर्थ नाश आदि से शरीर में निर्बलता तथा धातुओं के क्षय से मन्दगति वाला हो जाता है। यह विलम्बितगति छन्द है।।१६।।

कलत्रकलहाक्षिरुगिति। कुजे भौमे सप्तमे कलत्रं भार्या तेन सह कलहो विरोधः। अक्षिरुक् चक्षुष्पीडा। जठररोग उदररोगः। एतान् करोति। क्षरत्क्षतजरुक्षित इति। अष्टमे अष्टमस्थे भौमे। क्षरत् स्रवत् क्षतजं रक्तं तेन रूक्षितो विवर्णीकृतः। क्षपितवित्तमानः। वित्तं धनं मानं पूजा ते क्षपिते नष्टे यस्य। कुजे नवमसंस्थित इति। कुजे भौमे नवमस्थानस्थे परिभवैरभिभवनैः। अर्थनाशैर्वित्तक्षयैः। आदि ग्रहणात् पीडाभिः। एवमादिभिर्दोषैः। तथा अबलत्वेन निष्प्रामाणाण्यत्वेन देहस्य शरीरस्य।

---

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा"।

तथा धातूनां क्लमेन ग्लानत्वेन।

वसासृग्मांसमेधोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

एतैर्विलम्बितगतिर्भवति। विलम्बिता विघ्निता गतिर्गमनं यस्य। अशक्तित्वात्। वृत्तमिदं विलम्बितगतिः। तल्लक्षणम्–

विलम्बितगतिर्जसौ जसयलैर्गयुक्तैर्भवेत्।

जो गुरुमध्यगतः। सोऽन्तगुरुः। पुनरपि जकारसकारौ। यकार आदिलघुः। अन्ते लघुगुरू। एतैर्विलम्बितगतिः।।१६।।

न्यासः:–	ज	स	ज	स	य	ल	गु
	।ऽ।	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।ऽऽ	।	ऽ

मंगल सप्तम स्थान में हो तब कलत्र अर्थात् पत्नी के साथ कलह होता है। अक्षिरुक् अर्थात् नेत्रपीड़ा और जठर अर्थात् उदर का रोग करता है। अष्टमस्थान में मंगल के होने पर क्षरत् अर्थात् स्रवित रक्त के कारण व्यक्ति विकृत वर्ण का हो जाता है। क्षपित वित्त अर्थात् धन और मान-सम्मान नष्ट हो जाता है। नवम-स्थान में गया हुआ मंगल परिभव अर्थात् पराजय और धननाश करता है। 'आदि' शब्द से इनसे सम्बन्धित अन्य दोषों को भी समझना चाहिये। इसके (मंगल के) निर्बल होने के कारण शरीर का और धातुओं का क्षय होने से कष्ट होता है।

वसा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र; ये सात प्रकार की धातुयें शरीरगत होती हैं।

इनसे विलम्बित अर्थात् विघ्नपूर्ण गति अर्थात् यात्रा (गमन) होती है। इससे उसका असमार्थ्य सिद्ध होता है। यह श्लोक विलम्बित-गतिसंज्ञक छन्द में विरचित है।

विलम्बितगतिछन्द का लक्षण–

जगण अर्थात् मध्य गुरु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, यगण अर्थात् आदि लघु तथा अन्त में लघु गुरु हो तो विलम्बितगति छन्द समझना चाहिये।।१६।।

अथ दशमैकादशस्थस्य कुजस्य फलं पुष्पिताग्रयाऽऽह–

दशमगृहगते समं महीजे
विविधधनाप्तिरुपान्त्यगे जयश्च।
जनपदमुपरि स्थितश्च भुङ्क्ते
वनमिव षट्चरणः सुपुष्पिताग्रम्।।१७।।

यदि जन्म राशि से दशम स्थान में मंगल हो तो मध्यम फल तथा एकादशस्थान में हो तो अनेक प्रकार के धन की प्राप्ति होती है। वह पुष्पित अग्रभाग वाले वृक्षों से युत वन में भ्रमर की तरह लोगों में प्रधान होकर भोग करता है। यह सुपुष्पिताग्रा

(पुष्पिताग्रा) छन्द है॥१७॥

महीजेऽङ्गारके दशमगृहगते दशमस्थानं प्राप्ते। समं न शुभं नाप्यशुभं फलम्। उपान्त्यगे एकादशस्थे विविधानां नानाप्रकारणां धनानां वित्तानामाप्तिः प्राप्तिश्च भवति। उपरि मूर्ध्नि सर्वेषां जनानां प्राधान्येन स्थितो जनपदं लोकान् भुङ्क्तेऽश्नाति उपजीवति। यथा सुपुष्पिताग्रं वनं षट्चरणो भ्रमर उपरि स्थितो भुङ्क्ते। शोभनं कृत्वा पुष्पितानि सञ्जातकुसुमानि अग्राणि प्रान्तानि यस्मिन् वने। वृत्तमिदं सुपुष्पिताग्रम्। तल्लक्षणम्–

भवति जगति नौ ततश्च रो यो नजसहितैर्जरगैश्च पुष्पिताग्रा।

नस्त्रिलघुः। द्वौ नकारौ। ततः परमनन्तरं रलमध्यः। य आदिलघुः। पुनर्नकारः। जो गुरुमध्यः। आभ्यां सहितैर्जरगैः। जो गुरुमध्यः। रलमध्यः। अन्ते गुरुः। एतैर्जगति सुपुष्पिताग्रा भवति।।१७।।

न्यासः–	न	न	र	य	
	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽऽ	
	न	ज	ज	र	गु
	।।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

महीज अर्थात् मंगल दशम स्थान में होकर समफल अर्थात् शुभाशुभ से रहित होता है। उपान्त्य अर्थात् एकादश स्थान का मंगल विविध प्रकार की धन-सम्पत्ति को देता है। सभी लोगों की मूर्धा अर्थात् शीर्ष पर प्रधान पुरुष के रूप में स्थित होकर लोगों का उपभोग करता है। वह सुन्दर पुष्पित अग्रभाग वाले वन में षट्चरण अर्थात् भ्रमर द्वारा भोग किये जाने के समान, भोग करता है। शोभायमान समुत्पन्न पुष्प के अग्रभाग चतुर्दिक् हों, इस प्रकार के वन में भ्रमर के भोग करने के सदृश यह भोगता है। सुपुष्पिताग्रछन्द (पुष्पिताग्रा) है।

पुष्पिताग्राछन्द का लक्षण–

दो नगण अर्थात् दो बार तीन लघु, रगण अर्थात् मध्य लघु, यगण अर्थात् आदि लघु, नगण अर्थात् तीन लघु, जगण दो बार अर्थात् मध्यगुरु दो बार, रगण अर्थात् मध्य लघु तथा अन्त में गुरु हो तो पुष्पिताग्राछन्द समझना चाहिये॥१७॥

विशेष–पुष्पिताग्राछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ द्वादशस्थस्य भौमस्य फलमिन्द्रवंशयाऽऽह–

नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते
सन्ताप्यतेऽनर्थशतैश्च मानवः।
स्त्रीकोपपित्तैश्च सनेत्रवेदनै–
र्योऽपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः।।१८।।

द्वादश स्थानगत मंगल का फल इन्द्रवंशा छन्द में कहते हैं–

जिसकी जन्म राशि से व्ययस्थान में मंगल हो वह इन्द्र के वंश में उत्पत्ति के गर्व से युत होने पर भी अनेक प्रकार के व्यय, अनेक प्रकार के उपद्रव, स्त्री के ऊपर क्रोध, पित्त और नेत्र रोग से पीड़ित होता है। अर्थात् श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न मनुष्य भी अनेक प्रकार के व्यय आदि से पीड़ित होता है। यह इन्द्रवंशा छन्द है॥१८॥

महीसुते भौमे द्वादशगे मानवः पुरुषो नानाप्रकारैर्व्ययैरर्थक्षतिभिरनर्थशतैश्चोपद्रवैर्बहुभिः सन्ताप्यते सोपतापं क्रियते। स्त्रीकोपैः स्त्रियां कोपैः। पित्तेन च। एतैःस्त्रीकोपपित्तैः। सनेत्रवेदनैश्चक्षुष्पीडासहितैरपि मानवः सन्ताप्यते। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। इन्द्रवंशाभिजनेनापि गर्वितः। इन्द्रवंशः कुलम्। इन्द्रवंशोऽभिजनः। पूर्ववंशो यस्य तेन यो गर्वितः साभिमानः सोऽपि सन्ताप्यते, किमुतान्ये। वृत्तमिदमिन्द्रवंशा। तल्लक्षणम्–

[१]ताविन्द्रवंशा जरसंहितौ मता।

तोऽन्तलघुः। तौ द्वौ। तकारौ जरसंहितौ जो गुरुमध्यः रलमध्यः। तौ जरसहितौ जराभ्यां संयुक्तौ इन्द्रवंशाभिमता।

न्यासः–	त	त	ज	र
	ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ।ऽ

तथा च यवनेश्वरः–

नृपानलव्यालविषाग्निशस्त्रव्याध्यर्थनाशी क्षयभङ्गकारी।
भौमः शशिस्थानगतो द्वितीये त्वनर्थसूयामिषवञ्चनाकृत्॥
ऐश्वर्यमानद्युतिहर्षकारी तृतीयसंस्थोऽन्नसुवर्णदश्च।
चतुर्थगस्तूदररुग्जरासृक्प्रवृत्तिनिर्वेदकरो धराजः॥
सुतार्थनाशक्षतवैरमोषव्याधिप्रदः पञ्चमराशिसंस्थः।
षष्ठे कुजेऽरिक्षयमानहर्षप्रख्यापनारोग्यसमृद्धिकारी॥
जामित्रसंस्थो धनमित्रनाशक्लेशोदराक्ष्यामयरोगकृत् स्यात्।
भौमेऽष्टमे रुग्विषशत्रुशस्त्रक्षतक्षयोपद्रवदैन्यकारी।
शस्त्रक्षत्ताक्षेमसुवर्णनाशखेदाध्वकारी नवमो महीजः।
मेषूरणे व्याध्यरिशस्त्रचौरव्रणार्तिकृत् सिद्धिकरश्च पश्चात्॥
मानात्मजाज्ञाक्षितिताम्रहेमद्युतिप्रदो रुद्रपदेऽरिजिच्च।
स्त्रीविग्रहोद्वेजनपादरोगस्वप्रावभङ्गश्रमदः कुजोऽन्त्ये॥इति॥१८॥

महीसुत अर्थात् मंगल के द्वादश स्थान में होने पर मनुष्य विविध प्रकार के व्यय, धन हानि और सैकड़ों प्रकार के उपद्रवों से सन्ताप प्राप्त करता है। स्त्री के क्रोध से तथा पित्त की वृद्धि से और नेत्रपीड़ा से वह पीड़ित होता है। 'अपि' शब्द सम्भावना

---

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "स्वागता रनभगैर्गुरुणा च"।

वाचक है। इन्द्रवंश अर्थात् इन्द्र के कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी अर्थात् जिसके पूर्वज इन्द्र के वंश के हों, इस अभिमान से युक्त व्यक्ति भी सम्पीडित रहता है। फिर अन्य कुलोत्पन्न व्यक्ति का क्या कहना? यह इन्द्रवंशासंज्ञक छन्द है।

इन्द्रवंशाछन्द का लक्षण–

तगण दो बार अर्थात् दो बार अन्त्य लघु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में रगण अर्थात् मध्य लघु हो तो इन्द्रवंशाछन्द समझना चाहिए।

विशेष–इन्द्र वंशाछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

चन्द्रराशि से प्रथम स्थान में स्थित मंगल राजा, अग्नि, सर्प, विष की अग्नि, शस्त्र, व्याधि तथा धन के द्वारा कष्ट देता है। यह धनहानि और मानभंग कराता है। द्वितीय स्थान में स्थित मंगल अनर्थ, ईर्ष्या, आहार आदि की वञ्चना करता है। तृतीय स्थान में स्थित मंगल ऐश्वर्य, सम्मान, कान्ति और प्रसन्नता देता है और अन्न तथा सुवर्ण प्रदान करता है। चतुर्थस्थान का मंगल उदररोग, वार्धक्य, रक्तस्राव आदि से पीड़ित करता है। पञ्चम स्थान में स्थित मंगल सन्तान और धन का नाश, दुर्घटना, वैर,चोरी तथा रोग देता है। षष्ठस्थान में स्थित मंगल शत्रु-संहार, सम्मान, प्रसन्नता, प्रतिष्ठा, आरोग्य और उन्नति देता है। सप्तमस्थ मंगल धन और मित्र का विनाश, दुःख तथा उदर और नेत्ररोग देता है। अष्टमस्थ मंगल रोग, विष, शत्रु, शस्त्राघात से विघ्न लाता है। तथा दीनता लाता है। नवमस्थ मंगल शस्त्राघात, अमंगल, सुवर्ण-हानि, दुःख और परिभ्रमण कराता है। दशम स्थान में स्थित मंगल रोग, शत्रु, शस्त्र, चौर और व्रण देता है। अन्त में कार्य सिद्धि करता है। एकादश स्थान में स्थिति मंगल सम्मान, सन्तान, राज्य, भूमि, ताम्र और सुवर्ण-सदृश कान्ति देता है। द्वादशस्थ मंगल स्त्री-विवाद, व्याकुलता, पैर का रोग, दुःस्वप्न, मानभङ्ग और क्लेश कारक श्रम कराता है॥१८॥

अथ बुधस्य फलानि विवक्षुस्तत्र जन्मराशिस्थस्यास्य फलं स्वागतयाऽऽह–

दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैर्बन्धनैः सकलहैश्च हृतस्वः।
जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन् स्वागतेऽपि कुशलं न शृणोति॥१९॥

जन्मराशिगत बुध का फल स्वागताछन्द में कहते हैं–

जिसकी जन्म राशि में बुध हो वह मनुष्य कठोर वाणी, चुगलखोरी, शत्रुता और पारस्परिक भेद से नष्ट धन वाला होता है। तथा उसके शुभागमन में भी कुशलवार्ता कोई नहीं सुनता। यह स्वागता छन्द है॥१९॥

---

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः"।

जन्मगे जन्मराशिस्थे शशिसुते बुधे। दुष्टवाक्यैरप्रियाभिधायिभिर्वाक्यैर्वचनैः पैशुन्येन सूचकत्वेन अहितेन विप्रियेण भेदेन पृथक्करणेन। एतैर्दोषैः। तथा बन्धनैः। किंभूतैः? सकलहैः कलहयुक्तैश्च। हृतस्वोऽपहृतधनो भवति। पथि गच्छन् अध्वनि व्रजन् स्वागतेऽपि स्वागतं शोभनमागतं तस्मिन्नपि कुशलं न शृणोति। न तस्य स्वागतेऽपि कुशलवार्ता भवति, किं पुनः फलत इति। वृत्तमिदं स्वागता, तल्लक्षणम्–

[१]स्वागता रनभगैर्गुरुतोऽन्ते।

रलमध्यः। नस्त्रिलघुः। भ आदिगुरुः। गुरुश्च। पुनरपि गुरुरन्ते। एतैः स्वागता भवति।।१९।।

न्यासः–	र	न	भ	गु	गु
	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	ऽ	ऽ

जन्मग अर्थात् जन्मराशि में स्थित शशिसुत अर्थात् चन्द्रमा का पुत्र बुध स्थित हो तब दुष्ट वाक्य अर्थात् अप्रिय कटु शब्दों से, पिशुनता अर्थात् चुगल खोरी के द्वारा, कष्टकारी विभेद से कष्ट मिलता है। तथा बन्धन, विवाद, धनहानि तथा धनापहरण होता है। मार्ग में चलता हुआ स्वागत के अवसर पर भी कुशलता सुनने को नहीं मिलती है। अर्थात् स्वागत में भी कोई कुशलवार्ता नहीं करता है। पुनः उसके आगे प्राप्तव्य फल का क्या विचार किया जाये। यह स्वागता छन्द है।

स्वागताछन्द का लक्षण–

रगण अर्थात् मध्य लघु, नगण अर्थात् तीन लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु तथा अन्त में दो बार गुरु वर्ण हो तो स्वागताछन्द समझना चाहिये।।१९।।

विशेष–स्वागताछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ द्वितीयतृतीयस्थानस्थस्य बुधस्य फलं द्रुतपदेनाह–

परिभवो धनगते धनलब्धिः सहजगे शशिसुते हृदयाप्तिः।
नृपतिशत्रुभयशङ्कितचित्तो द्रुतपदं व्रजति दुश्चरितैः स्वैः।।२०।।

द्वितीय और तृतीय स्थानगतबुध का फल द्रुतपदछन्द में कहते हैं–

यदि जन्म राशि से द्वितीय स्थान में बुध हो तो पराजय तथा धन का लाभ, तृतीयस्थान में हो तो मित्र का लाभ कराने वाला होता है। राजा और शत्रु के भय से शङ्कित होकर अपने दुश्चरित्रों के कारण भागने वाला होता है। यह द्रुतपद छन्द है।।२०।।

धनगते द्वितीयस्थानस्थे शशिसुते बुधे। परिभवोऽसम्मानो भवति। सहजगे तृतीयस्थानस्थे बुधे सुहृदयाप्तिर्मित्रलाभो भवति। स्वैरात्मीयैर्दुश्चरितैः। नृपति-

---

१. छन्दोमञ्जर्यामपीदमेव।

शत्रुभयशङ्कितचित्तः। नृपति राजा। शत्रुररिः। तद्भयैः शङ्कितं सञ्जातशङ्कं चितं मनो यस्य। तथाभूतो द्रुतपदं त्वरितपदं व्रजति गच्छति। सापराधत्वात् सभयत्वाच्च। वृत्तमेतद् द्रुतपदम्। तल्लक्षणम्–

द्रुतपदं नभझयैः कथितं तत्।

नस्त्रिलघुः। भ आदिगुरुः। जो गुरुमध्यः। आदिलघुर्यः। एतैर्द्रुतपदमेतद् वृत्तं कथितम् ॥२०॥

न्यासः–	न	भ	ज	य
	।।।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽऽ

धन अर्थात् द्वितीय स्थान में स्थित बुध के द्वारा परिभव अर्थात् पराजय (असम्मान) होता है। तृतीय स्थान में स्थित बुध मित्र लाभ कराता है। अपने दुराचरण के कारण राजा और शत्रु से भय के साथ ही मन सदैव भयभीत रहता है। इस स्थिति में वह भाग-दौड़ करता रहता है। क्योंकि वह अपराधबोध से भयाक्रान्त होता है। यह द्रुतपद छन्द है।

द्रुतपदछन्द का लक्षण–नगण अर्थात् तीन लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में यगण अर्थात् आदि लघु वर्ण हो तो द्रुतपदछन्द समझना चाहिए॥२०॥

विशेष व्याख्या–द्रुत पद के लक्षण में आचार्य ने नगण, भगण, जगण और यगण का पाठ किया है। जबकि छन्दोमञ्जरी में श्री गंगादास ने नगण, भगण, नगण, यगण का क्रम रखा है। तृतीय गण नगण और जगण की भिन्नता प्राप्त होती है। जैसाकि छन्दोमञ्जरी में द्रुत पद का लक्षण निम्नलिखित है–

द्रुतपदं भवति नभनयाश्चेत्।

न	भ	न	य
।।।	ऽ।।	।।।	।ऽऽ

विशेष–द्रुतपदछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ चतुर्थपञ्चमस्थस्य बुधस्य फलं रुचिरयाऽऽह–

चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो
धनागमो भवति च शीतरश्मिजे।
सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहो

---

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "त्रयाशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयम्"।

२. कुथास्तरणं च इति पाठान्तरम्।

३. छन्दोमञ्जर्यां तु "दोधकमिच्छति भत्रितयादगौ"।

निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम्।।२१।।

चतुर्थ-पञ्चमस्थ बुध का फल रुचिराछन्द में कहते हैं–

यदि जन्म राशि से चतुर्थ स्थान में बुध हो तो अपने जन और बन्धुओं की वृद्धि तथा धन की प्राप्ति कराता है। पञ्चमस्थान में हो तो पुत्र तथा पत्नी के साथ कलह एवं अपने उद्वेग के कारण सुन्दरी स्त्री का भी उपभोग नहीं करने देता है। यह रुचिराछन्द है।।२१।।

चतुर्थगे शीतरश्मिजे चन्द्रपुत्रे बुधे। स्वजनकुटुम्बवृद्धः स्वजना आत्मीय जनाः। कुटुम्बा ज्ञातयः एषां वृद्धयः। धनागमश्च भवति। सुतस्थिते पञ्चमस्थानस्थिते बुधे। तनयकलत्रविग्रहः। तनयाः पुत्राः। कलत्रं भार्या। तैः सह विग्रहः कलहः। रुचिरां शोभनामपि स्त्रियं रामां न निषेवते नोपभुङ्क्ते। सोद्वेगत्वात्। वृत्तमिदं रुचिरा। तल्लक्षणम्–

जभौ[1]सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।

जो गुरुमध्यः। भ आदिगुरुः। सोऽन्तगुरुः। पुनर्जकारः। अन्ते गुरुः। इत्येवंप्रकारः। चतुर्ग्रहैः। चतुर्थवर्णैर्नवमवर्णैश्च विरामः।।२१।।

न्यासः–	ज	भ	स	ज	गु
	।ऽ।	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ

शीतरश्मिज अर्थात् चन्द्रपुत्र बुध चतुर्थ स्थान में स्थित हो तब अपने आत्मीयजनों का तथा कुटुम्ब, परिवार का उन्नयन होता है। साथ ही धनार्जन भी होता है। पञ्चमस्थान में स्थित बुध, पुत्र तथा पत्नी के साथ विग्रह अर्थात् कलह कराता है। सुन्दरी कामिनी स्त्री का भी उपभोग नहीं कर पाता है, क्योंकि वह स्वयं उद्विग्न रहता है। यह रुचिरा छन्द है।

रुचिरा छन्द का लक्षण–

जगण अर्थात् मध्य गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में गुरु हो तो रुचिराछन्द समझना चाहिये।।२१।।

विशेष–रुचिराछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ षष्ठसप्तमाष्टमस्थस्य बुधस्य फलं प्रहर्षण्याऽऽह–

सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः।
मृत्युस्थे जयसुतवस्त्रवित्तलाभा नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षणीयम्।।२२।।

षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम स्थानगत बुध का फल प्रहर्षणी छन्द में कहते हैं–यदि बुध जन्मराशि से छठी राशि में हो तो सौभाग्य, विजय तथा उन्नति कराता है। सातवीं राशि में हो तो विवर्णता एवं कलह कराता है। आठवीं राशि में हो तो विजय, पुत्र वस्त्र तथा धन का लाभ एवं हर्षित करने वाली निपुणता का लाभ कराता है। यह

१. छान्दोमञ्जर्याम् ''वेदैरन्ध्रैम्तौ'' यसना मत्तमयूरम्''।

प्रहर्षणी छन्द है॥२२॥

षष्ठे षष्ठस्थाने ज्ञो बुधः। सौभाग्यं सर्वजनवाल्लभ्यम्। विजयं विशेषजयम्। अथशब्दः पादपूरणे। उन्नतिं। शत्रूणामजितत्वं च कुरुते। सप्तमे सप्तमस्थाने। ववैर्ण्यं विवर्णताम्। अतीवात्यर्थम्। कलहं विरोधं च करोति। मृत्युस्थेऽष्टमस्थानस्थे। जयः। सुताः पुत्राः। वस्त्राण्यम्बराणि। वित्तं धनम्। एतेषां लाभा भवन्ति। मतिप्रहर्षणीयम्। येन बुद्धेः प्रहर्षमुत्पद्यते तथाभूतं नैपुण्यं कलासु सूक्ष्मदर्शितत्वं भवति। प्रहर्षणीयं वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—

म्नौ ज्रौ गस्त्रिकदशकैः प्रहर्षणीयम्।

मस्त्रिगुरुः। नस्त्रिलघुः। जोगुरुमध्यः। रलमध्यः। अन्ते गुरुः। त्रिकदशकैर्विरामः, त्रिभिर्दशभिश्च यतिर्यस्य तत् प्रहर्षणीयम्॥२२॥

न्यासः—	म	न	ज	र	गु
	ऽऽऽ	।।।	।ऽ।	ऽ।ऽ	ऽ

षष्ठ स्थान में ज्ञ अर्थात् बुध सौभाग्य अर्थात् सर्वजनप्रियता दिलाता है। विजय उन्नति तथा शत्रुओं में अजेय बनाता है। यहाँ पर 'अथ' शब्द पादपूर्ति के लिये है। सप्तमस्थ बुध विवर्ण अर्थात् कुरूप बनाता है। यह अत्यधिक विरोध उत्पन्न करता है। अष्टमस्थ बुध विजय, सन्तान-लाभ, वस्त्रलाभ तथा धन का लाभ कराता है। जिस कार्य से प्रसन्नता मिलती है, उस प्रकार के कला-कर्म में निपुणता दिलाता है। यह प्रहर्षणी छन्द है—

प्रहर्षणीछन्द का लक्षण—मगण अर्थात् तीन गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, रगण अर्थात् मध्यलघु हो तथा अन्त में एक गुरु हो तो प्रहर्षणीछन्द समझना चाहिये॥२२॥

विशेष—प्रहर्षणीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ नवमदशमस्थस्य बुधस्य फलं दोधकेनाह—

विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुहा धनदश्च।
सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद् गृहदोऽथ२कथां स्तरणं च॥२३॥

नवम तथा दशमस्थानगत बुध का फल दोधकछन्द में कहते हैं—

बुध यदि नवम स्थान में स्थित हो तो विघ्नकारक, दशवीं राशिगत हो तो शत्रुनाशक, धन देने वाला एवं स्त्री, शय्या, स्त्री के शयन का सुन्दर गृह, ऐतिहासिक वार्ता तथा सुन्दर बिछौना प्रदान करता है। यह दोधक छन्द है॥२३॥

नवमस्थानस्थः शशिपुत्रो बुधो विघ्नकरः सर्वकार्याणां विघ्नं करोति। कर्मगतो दशमस्थानस्थो रिपुहा शत्रुहर्ता धनदश्च भवति। सप्रमदं सस्त्रीकं शयनं शय्यां च

१. छन्दोमञ्जर्यामपीदमेव।

२. छन्दोमञ्जर्याम्। "अयुजि प्रथमेन विवर्जिता। द्रुतविलम्बिता हरिणप्लुता"।

विधत्ते ददाति। तद्गृहदः, तस्याः प्रमदाया यद्गृहं वेश्म तद्ददाति। अथशब्दश्चार्थे। कथां चैतिहासिकां ददाति। स्तरणं शय्यापृष्ठं च ददाति। केचित् कुथास्तरणमितीच्छन्ति। कुथो वारणकम्बलस्तदेवास्तरणम्। वृत्तमेतद्दोथकम् । तल्लक्षणम्–

भौ तु भगौ गिति दोथकमेतत्।

भ आदिगुरुः द्वौ भकारौ। पुनर्भकारः। अन्ते गुरुद्वयम्॥२३॥

न्यासः–	भ	भ	भ	गु
	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽऽ

चन्द्रपुत्र बुध नवम स्थान में स्थित होकर सभी कार्यों के लिये विघ्नकर होता है। कर्मस्थान दशम में स्थित होकर शत्रुनाशक और धन प्रदायक होता है। यह स्त्री सहित शय्या प्रदान करता है। यह स्त्री को गृह को भी प्रदान करता है। यहाँ पर 'अथ' शब्द 'च' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त है। यह पौराणिक आख्यानों का श्रवण करने का अवसर देता है। अस्तरण अर्थात् शय्या का उत्तम आच्छादन (बिछौना) देता है। कतिपय आचार्यों ने पलंग का गद्दा प्राप्त होना बतलाया है। 'कुथ' शब्द का अर्थ श्रेष्ठ कम्बल का बिछौना होता है। यह दोथक छन्द है।

विशेष व्याख्या–अमरकोष २/४/१६६ के अनुसार 'कुथ' शब्द कुश का पर्यायवाची है। यथा–'कुश कुथो दर्भः पवित्रम्'। 'कुथ' शब्द का मेदिनीकोष में कम्बल अर्थ किया गया है।

छन्दोमञ्जरी ग्रन्थ में 'दोथक' संज्ञक छन्द है। इसका लक्षण भी उपर्युक्त दोथक के सदृश ही है। द्रष्टव्य छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक का श्लोक सं. ११.

दोथक छन्द का लक्षण–दो भगण अर्थात् दो बार आदि गुरु, पुनः भगण अर्थात् पुनः एक बार आदि गुरु तथा अन्त में दो गुरु हों तो दोथक छन्द समझना चाहिए॥२३॥

विशेष–दोथक छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथैकादशद्वादशस्थस्य बुधस्य फलं मालिन्याऽऽह–

धनसुतसुखयोषिन्मित्रवाहाप्तितुष्टि-
स्तुहिनकिरणपुत्रे लाभगे मृष्टवाक्यः।
रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे
न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम्॥२४॥

एकादश तथा द्वादश स्थानगत बुध का फल मालिनीछन्द में कहते हैं–

यदि बुध जन्मराशि से ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो धन, पुत्र, सुख, स्त्री, मित्र तथा वाहन की प्राप्ति कराने वाला होता है। मधुरभाषी होता है। यदि बारहवें

---

१. छन्दोमञ्जर्यामिदं तामरसम्, तल्लक्षणं च "इह वद तामरसं नजजा यः"।

स्थान में बुध अवस्थित हो तो शत्रु, अनादर तथा रोग से पीड़ित होता है। माला को धारण करने वाली स्त्री के समागम का सुख भोगने के लिये समर्थ नहीं होता है। यह मालिनी छन्द है॥२४॥

तुहिनकिरणश्चन्द्रः। तस्य पुत्रो बुधः। तस्मिन् लाभगे एकादशस्थानस्थे। धनं वित्तम्। सुताः पुत्राः। सुखं चित्तनिवृत्तिः। योषत् स्त्री। मित्रं सुहृत्। वाहो वाहनम्। एतेषामाप्तिर्लाभः। तुष्टिश्चित्तहर्षः। तथा मृष्टवाक्यः शुभवचनश्च भवति। द्वादशस्थे बुधे। रिपुभिः शत्रुभिः परिभवैरसम्मानैः, रोगैर्गदैश्च पीडितोऽर्दितः। मालिनीयोगसौख्यं परिभोक्तुं न सहति। माला विद्यते यस्याः सा मालिनी स्त्री। तथा योगः संयोगः। उद्योगादुद्योगसौख्यं परिभोक्तुं न सहति न शक्नोति, अशक्तत्वात्। वृत्तमेतन्मालिनी। तल्लक्षणम्–

वसुमुनिविरतिश्चेन्मालिनी नौ मयौ यः।

नस्त्रिलघुः। द्वौ नकारौ। मस्त्रिगुरुः। य आदिलघुः। द्वौ यकारौ। वसवोऽष्टौ मुनयः सप्त। एतैर्विरामो भवति।

न्यासः–	न	न	म	य	य
	।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

तथा च यवनेश्वरः–

स्थाने शशाङ्कस्य शशाङ्कसूनुः सौभाग्यविद्यामतिमानहर्ता।
द्वितीयसंस्थस्त्वपवादशोकस्वैरक्रियामन्वतिदैन्यकारी॥
तृतीयगो बन्धुविरोधरोधव्यापत्तिकर्ता द्रविणस्य सौम्यः।
चतुर्थगो मानगुणप्रशंसाप्रमोदयोषिद्धनलाभकारी॥
नैष्ठान्यमुद्वेगमनर्थचर्यां कुर्याद् बुधः पञ्चमगोऽरतं च।
षष्ठे विवृद्धिं मनसः प्रहर्षमुत्साहलाभोपचयं करोति॥
जामित्रगश्चान्द्रिरनिष्टमार्गसन्तापदैन्याद्रुचिरोधकारी।
स्यादष्टमस्थो विविधोपकारी बुद्धिप्रसादस्थितिसौख्यकर्ता॥
भङ्गापवादाध्वपरिश्रमान्तरायापकारी नवमर्क्षसंस्थः।
क्रियाप्रसिद्धिं दशमेऽर्थलाभं विस्रब्धमानं च बुधो ददाति॥
एकादशे मानचतुष्पदस्त्रीचित्तार्थसौभाग्यविनोदकर्ता।
बुधोऽन्त्यराशौ विचरंश्च कुर्यादुद्वेजनं कार्यपरिश्रमं च॥ इति॥२४॥

तुहिनीकरण अर्थात् चन्द्रमा का पुत्र बुध, लाभ अर्थात् एकादशस्थान में स्थित हो तब धन, पुत्र, सुख (मन की निश्चिन्तता) स्त्री, मित्र, वाहन की प्राप्ति, मानसिक सन्तुष्टि तथा मधुरभाषी होता है। द्वादशस्थ बुध के रहने पर शत्रुओं के साथ पराजय

१. छान्दोमञ्जर्याम् "मो गो नी गो भ्रमरविलसिता"।

का अपमान और रोग (गद) से पीड़ित होता है। वह मालाधारिणी स्त्री के भोग को प्राप्त नहीं कर पाता है। मालावाली स्त्री को मालिनी कहा जाता है, उसके साथ प्रयत्न करने पर भी असामर्थ्य के कारण उसका परिभोग नहीं कर पाता है यह मालिनी छन्द है।

मालिनीछन्द का लक्षण–नगण दो बार अर्थात् तीन लघु दो बार, मगण अर्थात् तीन गुरु तथा यगण दो बार अर्थात् दो बार आदि लघु वर्ण हो तो मालिनीछन्द समझना चाहिये।

विशेष–मालिनीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

जन्मराशि में स्थित बुध सौभाग्य, विद्या, बुद्धि और प्रतिष्ठा का अपहरण करता है। द्वितीयस्थ बुध जनापवाद, शोक, स्वच्छन्द कार्यों के द्वारा निर्धनता लाता है। तृतीयस्थ बुध पारिवारिक विरोध, कार्यावरोध और धन-अर्जन में विपत्तिकारक होता है। चतुर्थस्थ बुध सम्मान, गुणों की प्रशंसा, आनन्द तथा स्त्रीदान का लाभ कराता है। पञ्चमस्थ बुध निष्ठा में परिवर्तन, उद्वेग तथा अनर्थकारी आचरण कराता है। षष्ठस्थ बुध समुन्नति, मन की प्रसन्नता, उत्साह और लाभ में वृद्धि करता है। सप्तमस्थ बुध कुमार्ग, दु:ख और निर्धनता के कारण अभीष्ट कार्यों में विरोध करता है। अष्टमस्थ बुध विविध प्रकार से कल्याण करने वाला, बुद्धि, प्रसन्नता और स्थायित्व का सुख देता है। नवमस्थ बुध मानभंग, जनापवाद, कठिन यात्रा, विघ्न तथा अमंगलकारी होता है। दशमस्थ बुध कार्य की प्रशंसा, धनलाभ और आकस्मिक प्रतिष्ठा देता है। एकादशस्थानगत बुध; सम्मान, स्त्री, पशु, मानसिक और आर्थिक सुख, सौभाग्य तथा आनन्द प्रदाता होता है। द्वादश स्थानगत बुध मनोद्वेग तथा कार्य में कठिन परिश्रम कराता है॥२४॥

अथ जीवस्य फलमाह। तत्रादौ जन्मराशिगतस्य द्वितीयस्थस्य च फलं भ्रमरविलसितयाऽऽह–

जीवे जन्मन्यपगतधनधीः
स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः।
प्राप्यार्थेऽर्थान् व्यरिरपि कुरुते
कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम्॥२५॥

गुरु का गोचरफल कहा जा रहा है–

---

१. **छन्दोमञ्जरी में 'भ्रमरविलसित' छन्द का लक्षण कुछ भिन्न है। उसमें मगण, मगण, नगण, नगण और अन्त गुरू के होने पर भ्रमरविलसित छन्द होता है। द्वितीय स्तबक, श्लोक सं ७.**

प्रथम तथा द्वितीय स्थानगत गुरु का फल भ्रमरविलसिता छन्द में कहते हैं–

जिसकी जन्मराशि में गुरु हो उसके धन और बुद्धि का नाश, स्थान का नाश एवं विविध प्रकार के विरोधों से युत होता है। जिसके द्वितीय स्थान में गुरु हो वह धनों को प्राप्त करके शत्रुरहित होकर स्त्री के मुखकमल पर भ्रमर की तरह विलास करता है। यह भ्रमरविलसिताछन्द है॥२५॥

जीवे बृहस्पतौ जन्मनि जन्मराशिव्यवस्थिते। पुरुषोऽपगतधनधीर्भवति। अपगतं नष्टं धनं वित्तं धीर्बुद्धिश्च यस्य। स्थानभ्रष्टः स्वस्थानाच्च्युतः। बहुकलहयुतः प्रभूतविरोधैर्युतः समतेश्च भवति। अर्थे द्वितीयस्थाने अर्थान् धनानि प्राप्य लब्ध्वा व्यरिरपि विगतशत्रुरपि कान्तास्याब्जे कान्ता वल्लभा तस्या आस्यं मुखम्। तदेवाब्जं पद्मम्। तत्र भ्रमरवत् षट् पदवद्विलसितं क्रीडां कुरुते परिचुम्बत इत्यर्थः। वृत्तमेतद् भ्रमरविलसितम्। तल्लक्षणम्–

[१]मो भ्नौ ल्गान्ताभ्रमरविलसिता।

मस्त्रिगुरुः। भ आदिगुरुः। नस्त्रिलघुः। लघुगुरू अन्ते। भ्रमरविलसिता॥२५॥

न्यासः–	म	भ	न	ल	गु
	ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	।	ऽ

जब गुरु जन्मराशि में स्थित हो तब धन और बुद्धि विनष्ट होती है। वह स्थानभ्रष्ट अर्थात् पदच्युत हो जाता है, तथा अनेक प्रकार के विवादों से घिर जाता है। द्वितीय स्थान का गुरु धन को प्राप्त कराता है तथा शत्रुरहित बनाता है। स्त्री के मुखकमल पर भ्रमर के सदृश परिचुम्बन करता है। यह भ्रमरविलसित छन्द है।

भ्रमरविलसिताछन्द का लक्षण–मगण अर्थात् तीन गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु तथा अन्त में एक लघु, गुरु वर्ण हो तो भ्रमरविलसिताछन्द समझना चाहिये॥२५॥

विशेष–भ्रमरविलसिता छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य।

अथ तृतीयस्थानसथस्य चतुर्थस्थस्य च गुरोः फलं मत्तमयूरेणाह–

स्थानभ्रंशात् कार्यविघाताच्च तृतीयेऽ-

नेकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे।
जीवे शान्तिं पीडितचित्तश्च स विन्देद्
नैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे॥२६॥

तृतीय तथा चतुर्थ स्थानगतगुरु का फल मत्तमयूरछन्द में कहते हैं–

---

१. छन्दोमञ्जर्यामस्य ''वेदैरन्ध्रैर्म्तौ यसना मत्तमूरम्''।

२. छन्दोमञ्जर्यामपीदमेव।

जिसके तृतीय स्थान में गुरु अवस्थित हो वह स्थाननाश तथा कार्यों के विनाश से पीड़ित चित्तवाला होता है। चतुर्थ स्थानगत गुरु विविध प्रकार के क्लेश एवं बन्धुओं से पीड़ित चित्तवाला बनाता है। उसके न तो गाँव में, न मतवाले मयूरों से युत वन में शान्ति मिलती है। यह मत्तमयूर छन्द है पूर्ववत् चतुर्थ वर्णों पर यति होती है।।२६।।

तृतीयस्थानस्थे जीवे गुरौ। स्थानभ्रंशात् स्वस्थानव्ययात् कार्याणां विघातान्नाशाच्च पीडितचित्तो भवति। चतुर्थे जीवे अनेकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैः स्वजनोत्पादितैः पीडितचित्तो व्यथितमनाः। नैव ग्रामे पुरादौ नापि वनेऽरण्ये। किंविशिष्टे? मत्ता मयूरा यस्मिन् तथाभूते। शान्ति विश्रामं स विन्देल्लभते। वृत्तमेतन्मत्तमयूरम्। तल्लक्षणम्–

[१]म्तौ य्सौ गान्तं सैव यतिर्मत्तमयूरम्।

मस्त्रिगुरुः। तोऽन्तलघुः। ब आदिलघुः। सोऽन्तगुरुः। अन्ते गुरुः। सैव पूर्वोक्ता यतिश्चतुर्ग्रहैरिति।।२६।।

न्यासः–	म	त	य	स	गु
	SSS	SSI	ISS	IIS	S

चन्द्रराशि से तीसरे स्थान में स्थित गुरु स्थानध्वंश अर्थात् अपने स्थान से च्युत होने से तथा स्वीकृत कार्यों के नष्ट होने से विह्वलचित्त वाला होता है। चतुर्थस्थ गुरु अनेक प्रकार के दुःखों के साथ पारिवारिक लोगों के उपद्रव से मानसिक व्यथा को प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति न केवल गाँव और पुर में अपितु अरण्य (जंगल) में भी शान्ति नहीं प्राप्त करता है। भले ही उस जंगल में मतवाले मयूर विलासमग्न हों। यह मत्तमयूर छन्द है।

मत्तमयूरछन्द का लक्षण–मगण अर्थात् तीन गुरु, तगण अर्थात् अन्त्य लघु, यगण अर्थात् आदि लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु तथा अन्त में एक गुरु वर्ण हो तो मत्तमयूरछन्द समझना चाहिये पूर्ववत् चतुर्थ वर्णों पर यति होती है।।२६।।

विशेष–मत्तमयूरछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ पञ्चमस्थस्य गुरोः फलं मणिगुणनिकरेणाह–

जनयति च तनयभवनमुपगतः
परिजनशुभसुतकरितुरगवृषान्।
सकनकपुरगृहयुवतिवसनकृ-
न्मणिगुणनिकरकृदपि विबुधगुरुः।।२७।।

पञ्चमस्थानगत गुरु का फल मणिगुणनिकर छन्द में कहते हैं–

---

१. छन्दोमञ्जर्याम्। ''अयुजि प्रथमेन विवर्जिता। द्रुतविलम्बिता हरिणप्लुता''।

गुरु पञ्चम स्थान में स्थित हो तो परिजन, धर्मादि, पुत्र, हाथी, घोड़ा और वृषभ का लाभ होता है, तथा सुवर्ण, नगर, गृह, स्त्री, वस्त्र एवं मणियों के समूहों का लाभ होता है। यह मणिगुणनिकर छन्द है॥२७॥

विबुधा देवाः। तेषां गुरुर्जीवः। तनयभवनं पञ्चमस्थानमुपगतः प्राप्तः। परिजनः परिचारजनः। शुभ धर्मादि। सुताः पुत्राः। करिणो गजाः। तुरगा अश्वाः। वृषा बलीवर्दाः। एतान् जनयति ददातीत्यर्थः। सकनकेति। कनकेन सुवर्णेन युक्तानि। पुरं नगरम्। तत्र गृहं वेश्म। युवतिः स्त्री। वसनान्यम्बराणि च। एतानि करोति। मणीनां रत्नानाम्, गुणानां विद्याशौर्यादीनां निकरः समूहस्तं करोति। वृत्तमेतन्मणिगुणनिकरः। तल्लक्षणम्–

[१]वसुमुनियतिरिति मणिगुणनिकरः।

वसवोऽष्टौ। मुनयः सप्त। एतैर्विरामैः त्रयोदशलघवः। अन्ते लघुगुरू॥२७॥

न्यासः– ला ल गु

|||||||||||| | ऽ

विबुध गुरु अर्थात् बृहस्पति पञ्चमस्थान में स्थित हो तब परिजन अर्थात् परिचारक, शुभ धार्मिक कर्म, पुत्रों, करि अर्थात् हाथियों, तुरग अर्थात् घोड़े, वृषभ; इन सबका लाभ कराता है। सुवर्ण से युक्त, पुर (नगर), भवन, युवती स्त्री, वसन अर्थात् वस्त्र; इसका लाभ कराता है। यह मणि अर्थात् वस्त्र, इनका लाभ कराता है। यह मणि अर्थात् रत्नों, विद्या-पराक्रम आदि पदार्थों को देता है। यह मणिगुणनिकर छन्द है।

मणिगुणनिकरछन्द का लक्षण–इस छन्द में सप्तम एवं अष्टम वर्णों पर यति (विराम) होती है। तेरह लघु वर्णों के पश्चात् अन्त में लघु और गुरु होने पर मणिगुणनिकर छन्द होता है॥२७॥

विशेष व्याख्या–इस छन्द की विशेष व्याख्या छन्दोमञ्जरी के "शशिकला" छन्द से होती है। जिसमें १४ लघु वर्णों के अनन्तर एक गुरु वर्ण होता है। शशिकला छन्द १५ वर्णों का–"गुरुनिधनमनुलघुरिह शशिकला"-चरण होते हैं। शशिकला में आठ और सात वर्ण पर यति करने से मणिगुणनिकरछन्द होता है।

विशेष–मणिगुणनिकर छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ षष्ठगतस्य गुरोः फलं हरिणप्लुतेनाह–

न सखीवदनं तिलकोज्ज्वलं
न च वनं शिखिकोकिलनादितम्।
हरिणप्लुतशावविचित्रितं
रिपुगते मनसः सुखदं गुरौ॥२८॥

---

१. छन्दोमञ्जर्यामपीदमेव।

षष्ठ स्थानगत गुरु का फल हरिणप्लुत छन्द में कहते हैं–

यदि षष्ठ स्थानगत बृहस्पति हो तो उसके घर की प्रियतमा का मुख तिलक से उज्ज्वल नहीं होता है। साथ ही मोरों और कोयलों से शब्दायमान, मृगों के कूदने-फाँदने से तथा हरिण-शावकों से सुशोभित वन भी उसके मन को आनन्ददायक नहीं लगता है। यह हरिणप्लुत छन्द है॥२८॥

गुरौ जीवे रिपुगते षष्ठस्थानसंश्रिते सखीवदनमालीवक्त्रं तिलकोज्ज्वलं तमालपत्रोपशोभितं मनसश्चेतसो न सुखदं सुखं न ददाति। न च वनमरण्यमुपवनं शिखिकोकिलनादितम्। शिखिभिर्मयूरैः। कोकिलैः परभृतैः। नादितं कृतशब्दम्। हरिणप्लु– तैर्मृगाणां प्लवनैः। हरिणशावैः, हरिणशिशुभिश्च। विचित्रतं रम्यम्। मनसश्चेतसः। सुखदं सुखं ददाति। वृत्तमेतद्धरिणप्लुतम्। तल्लक्षणम्–

[१]त्रिसकारचितैर्भवतो लगौ।
नभभरैश्च गणैर्हरिणप्लुतम्॥

सोऽन्तगुरुः। सकारत्रितयम्। त्रिसकारचितैश्च परात्परतो लगौ लघुगुरू भवत एकपादे। द्वितीये नस्त्रिलघुः। भ आदिगुरुः। द्वौ भकारौ। रलमध्यः। एतैर्गणैर्हरिणप्लुतम् ॥२८॥

न्यासः–	स	स	स	ल	गु
	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।	ऽ
	न	भ	भ	र	
	।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।ऽ	

गुरु जब रिपु षष्ठ स्थान में स्थित हो तो सखी (प्रियतमा) का मुखमण्डल चन्दन-तिलक से उज्ज्वल तमालपत्र के सदृश सुशोभित होने पर भी तब मन को सुख नहीं देता है और न ही मयूर और कोयल के शब्दों से गुञ्जायमान, हरिण-शावकों से युक्त रमणीय अरण्य भी मन को आनन्दित कर पाता है। यह हरिणप्लुत छन्द है।

हरिणप्लुत छन्द का लक्षण–सगण तीन बार अर्थात् अन्त्य गुरु तीन बार, तथा अन्त में लघु गुरु एक चरण में हो। तथा द्वितीय चरण में नगण अर्थात् तीन लघु, दो भगण अर्थात् दो बार आदि गुरु तथा अन्त में रगण अर्थात् मध्य लघु हो तो हरिणप्लुत छन्द समझना चाहिये॥२८॥

विशेष व्याख्या–छन्दोमञ्जरी के तृतीयस्तबक के सूत्र तीन में हरिणप्लुत का लक्षण इससे भिन्न कहा गया है यथा ल ल, भ, भ, र, न, भ, भ, र गणों वाला पद हरिणप्लुत माना गया है।

अथ सप्तमगस्य गुरोः फलं ललितपदेनाह–

त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं
धनमशनं कुसुमान्युपवाह्यम्।
जनयति सप्तमराशिमुपेतो
ललितपदां च गिरं धिषणां च।।२९।।

सप्तम स्थानगत गुरु का फल ललितपद छन्द में कहते हैं–

गुरु सप्तम स्थानगत हो तो शय्या, सुरत-भोग, धन, भोजन, पुष्प, वाहन, ललित पदवाली वाणी तथा बुद्धि करता है। यह ललितपद संज्ञक छन्द है।।२९।।

त्रिदशगुरुर्जीवः। सप्तमराशिमुपेतः प्राप्तः। शयनं शय्याम्। रतिभोगं सुरतभोगम्। धनं वित्तम्। अशनं भोजनम्। कुसुमानि पुष्पाणि। उपवाह्यमश्वादिकं जनयति ददाति। गिरं वाचं ललितपदाम्, ललितानि च पदानि सुप्तिङन्तानि यस्यास्तथाभूतां धिषणां बुद्धिं च जनयति। ललितपदं वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्–

[1]ललितपदं नजयैर्भवतीह।

नस्त्रिलघुः। जो गुरुमध्यः। पुनरपि जकारः। य आदिलघुः। एतैर्ललितपदं भवति।।२९।।

न्यासः–	न	ज	ज	य
	।।।	।ऽ।	।ऽ।	।ऽऽ

त्रिदश गुरु अर्थात् देव गुरु बृहस्पति सप्तम स्थान में होकर शय्या, रतिभोग अर्थात् संभोग, धन, अशन अर्थात् भोजन, पुष्प, उपवाह्य अर्थात् अश्वारोहण आदि देता है। लालित्ययुक्त पद बन्ध जिसमें सुबन्त, तिङन्त आदि का समुचित प्रयोग हो सके; उस प्रकार की बुद्धि उत्पन्न करता है। यह ललितपदछन्द है।

ललितपदछन्द का लक्षण–नगण अर्थात् तीन लघु, दो जगण अर्थात् मध्य गुरु दो बार तथा अन्त में यगण अर्थात् आदि लघु वर्ण हो तो ललितपद छन्द समझना चाहिये।।२९।।

विशेष व्याख्या–छन्दोमञ्जरी (छन्द-ग्रन्थ) में ललितपद संज्ञक छन्द नहीं है। विवृति में वर्णित ललितपद का लक्षण छन्दोमञ्जरी के 'तामरस' छन्द (स्तबक २ सूत्र १३) के सदृश है।

अथाष्टमनवमस्थस्य गुरोः फलं शालिन्याऽऽह–

बन्धं व्याधिं चाष्टमे शोकमुग्रं
मार्गक्लेशान् मृत्युतुल्यांश्च रोगान्।

---

१. छन्दोमञ्जर्यामिदं तामरसं–'इह तद तामरसं नतजा यः।''

नैपुण्याज्ञापुत्रकर्मार्थसिद्धिं
धर्मे जीवः शालिनीनां च लाभम्।।३०।।

अष्टम तथा नवम स्थानगत गुरु का फल शालिनी छन्द में कहते हैं—

यदि जन्मराशि से अष्टम स्थान में गुरु हो तो बन्धन, पीड़ा, कठोर, शोक, मार्ग में क्लेश तथा मृत्युसम रोग करता है। नवम स्थान में गुरु हो तो सभी कार्यों में निपुणता, आदेश, पुत्र, कार्य, धन की प्राप्ति एवं धान्ययुत भूमि का लाभ करता है। यह शालिनी छन्द है।।३०।।

जीवो बृहस्पतिरष्टमे स्थाने। बन्ध्यं बन्धनम्। व्याधिं पीडाम्। उग्रं तीव्रम्। शोकं दुःखम्। मार्गे पथि। क्लेशान् कृच्छ्रान्। मृत्युतुल्यान् मरणसमांश्च रोगान् गदांश्च करोति। धर्मे नवमे नैपुण्यं सर्वकार्याणाम् आज्ञां प्रभुत्वम् पुत्राणां सुतानां कर्मणां कार्याणामर्थानां वित्तानां च सिद्धिं करोति। शालयो विद्यन्ते यासु ताः शालिन्यः। अत्रानुक्तमपि भूमिग्रहणं विज्ञायते। सस्ययुक्तानां भूमीनां लाभं करोतीत्यर्थः। अथवा स्वगुणैर्याः स्त्रियः शालन्ते श्लाघन्ते तासां लाभं करोति। शालिनीवृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—

[१]मात् तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

मस्त्रिगुरुः। तोऽन्तलघुः। पुनस्तकारः, अन्तगुरुद्वयम्। वेदैश्चतुर्भिर्लोकैः सप्तभिर्विरामौ भवतः, सा शालिनी।।३०।।

यथा न्यासः—	म	त	त	गु
	ऽऽऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ

जीव अर्थात् गुरु अष्टम स्थान में स्थित हो तब बन्ध अर्थात् बन्धन, व्याधि (रोग), उग्र शोक, यात्रा-कष्ट और मृत्युतुल्य (मरण सदृश) रोगों को देता है। धर्म अर्थात् नवम स्थान में सभी कार्यों तथा धनलाभ को पूर्ण करता है, जिसमें शालिधान्य विद्यमान् हो। यहाँ पर उल्लेख न होने पर भी भूमि का ग्रहण करना चाहिये। अभिप्राय यह है कि धान्य युक्त भूमिका लाभ होता है। अथवा जो स्त्रियाँ अपने गुणों से प्रशंसित होती हैं, उनका लाभ कराता है। यह शालिनी छन्द है।

शालिनीछन्द का लक्षण—

मगण अर्थात् तीन गुरु, दो तगण अर्थात् दो बार अन्त्य लघु तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होने पर शालिनी छन्द समझना चाहिए। इसमें चतुर्थ तथा सप्तम वर्णों पर यति (विराम) होता है।।३०।।

विशेष—शालिनीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अधुना दशमैकादशद्वादशस्थस्य गुरोः फलं रथोद्धतयाऽऽह—

स्थानकल्यधनहा दशर्क्षग-

स्तत्प्रदो भवति लाभगो गुरुः।
द्वादशेऽध्वनि विलोमदुःखभाग्
याति यद्यपि नरो रथोद्धतः।।३१।।

दशम, एकादश तथा द्वादश स्थानगत गुरु का फल रथोद्धताछन्द में कहते हैं-

दशम स्थान में गुरु हो तो स्थान, आरोग्य तथा धननाशक होता है। एकादश स्थानगत बृहस्पति स्थान, आरोग्य एवं धन प्रदान करने वाला होता है। द्वादश स्थानगत गुरु हो, तब रथ पर आरूढ़ मनुष्य भी मार्ग में कुपथ-गमन के कारण दुःख भोगता है। यह रथोद्धताछन्द है।।३१।।

गुरुर्जीवो दशर्क्षगो दशमस्थानगतः। स्थानहा स्थानहन्ता। कल्यहा आरोग्यहन्ता। धनहा वित्तहा वित्तहन्ता भवति। लाभगः, एकादशगतस्तत्प्रदः। तदिति स्थानादीनां परामर्शः। तान्येव ददाति। स्थानकल्यधनप्रदो भवति। द्वादशे जीवे। अध्वनि पथि विलोमदुःखभाग् विलोमेन अपथि गमनेन दुःखं भजत। नरः पुरुषो यद्यपि रथोद्धतो याति रथेनोद्धतेनोपयुक्तेन यद्यपि गच्छति, तथापि विलोम-दुःखभाग् भवति। वृत्तमेतद्रथोद्धता। तल्लक्षणम्—

रो नरौ लगुयुता रथोद्धता।

रलमध्यः। नस्त्रिलघुः। पुनरपि रेफः। लघुगुरू अन्ते।

न्यासः-	र	न	र	ल	गु
	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ

तथा च यवनेश्वरः-

मोहार्थनाशस्थितिमानभङ्गग्रामाध्वरुग् जातिविरोधवैरान्।
गुरुः शशिस्थानगतः करोति स्थानात्मजाज्ञाधनदो द्वितीये।।
गुरुस्तृतीये स्वजनार्थनाशक्रियावधाध्वश्रमवञ्चनाकृत्।
विमानसेष्टापचयापवादबन्धुक्षयोद्वेगकरश्चतुर्थे।।
भृत्याम्बरस्थानसुवर्णमानपुत्रप्रदः पञ्चमगोऽरिजिच्च।
षष्ठे गुरुर्बन्धुविवादवैरत्रासप्रचेष्टाफलहानिकारी।।
जामित्रगः स्त्रीवसनान्नपानसौमुख्यसुस्फीतकलाध्वकर्ता।
जीवोऽष्टमस्थो वधभङ्गबन्धव्याधिश्रमानर्थविवादकारी।।
करोति जीवो नवमे सुतस्त्रीभूस्थानमानार्थसमृद्धिमग्र्याम्।
मेषूरणस्थोऽक्षिरुगिष्टहानिश्लेष्मामयायाससुतान्तकारी।।

---

१. छन्दोमञ्जर्यां तु "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः"।

एकादशे भूभवनात्मजस्त्रीहिरण्यधान्याम्बरवाहनानाम्।
दाता गुरुर्द्वादशगोऽथ चन्द्राद्विदेशचर्याश्रमशोककारी॥इति॥३१॥

गुरु दशर्क्षग अर्थात् दशम स्थान में गया हुआ हो; तब वह स्थानहानि, कल्य अर्थात् स्वास्थ्य की हानि और धन की हानि करता है। एकादश स्थानगत गुरु पूर्वोक्त पदार्थों को अनुकूल देता है। वह स्थान प्रदायक, आरोग्यप्रदायक और धनप्रदायक होता है। द्वादश स्थानगत गुरु अध्व अर्थात् मार्ग में विपरीत भ्रमण का दु:ख देता है। मनुष्य रथारूढ़ होकर यात्रा करता हुआ भी विपरीतगमन (मार्ग-विभ्रम) का दु:ख पाता है। यह रथोद्धताछन्द है।

रथोद्धताछन्द का लक्षण—रगण अर्थात् मध्य लघु, नगण अर्थात् तीन लघु, पुन: रगण तथा अन्त में लघु और गुरु वर्ण होते हैं।

विशेष—रथोद्धताछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

इसी प्रकार आचार्य यवनेश्वर ने भी कहा है—

चन्द्रराशि में स्थित गुरु मतिभ्रम, धननाश, स्थान एवं मान का भंग, ग्राम और मार्ग का रोग, जाति-विरोध तथा शत्रुता देता है। द्वितीय स्थान में स्थित गुरु स्थानलाभ, सन्तान लाभ, स्वामित्व तथा धनप्रदायक होता है। तृतीय स्थानगत गुरु स्वजनों तथा धन का नाश, कार्य-हानि, मार्गश्रम और वञ्चना देता है। चतुर्थस्थ गुरु मनस्ताप, अभीष्ट-हानि, अपवाद, बन्धु-हानि और उद्विग्नता लाता है। पञ्चमस्थ गुरु सेवक, वस्त्र, पद, सुवर्ण, सम्मान एवं सन्तान प्रदायक होता है। तथा यह शत्रु पर विजय दिलाता है। षष्ठस्थ गुरु पारिवारिक कलह, शत्रुता, सन्त्रास, और प्रयत्न का फल अनुकूल नहीं देता है। सप्तमस्थ गुरु स्त्री, वस्त्र, खान-पान, प्रमुख कार्यों में वृद्धि, कलाकारिता और यात्रा प्रदायक होता है। अष्टम स्थान का गुरु मृत्यु, मानभंग, बन्धन, रोग, श्रम और अनावश्यक निरर्थक विवाद करता है। नवमस्थ गुरु पुत्र, पत्नी, भूमि, पद-प्रतिष्ठा और उत्तम धन-समृद्धि लाता है। दशमस्थ गुरु नेत्र रोग, अभीष्ट-हानि, कफजरोग, परिश्रम तथा सन्तान की हानि कराता है। एकादश स्थानगत गुरु भूमि, भवन, सन्तान, स्त्री, सुवर्ण, अन्न, वस्त्र तथा वाहन प्रदान करता है। द्वादशस्थ गुरु विदेश-गमन और अपने स्थान में शोक उत्पन्न करता है॥३१॥

अथ शुक्रस्य गोचर:। तत्रादावेवास्य जन्मगतस्य फलं विलासिन्याऽऽह—

प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः स्मरोपकरणैः
सुरभिमनोज्ञगन्धकुसुमाम्बरैरुपचयम्।
शयनगृहासनाशनयुतस्य चानुकुरुते

---

१. छन्दोमञ्जर्यामस्य प्रमाणिका नाम, तल्लक्षणं च "प्रमाणिका भरौ लगौ"।

समदविलासिनीमुखसरोजषट्चरणताम् ।।३२।।

शुक्र का गोचर फल जन्मराशिगत शुक्र का फल विलासिनी छन्द में कहते हैं–

जन्म राशि में स्थित शुक्र कामदेव के उपकरणों (शयन, भूषण, आच्छादन, अनुलेपन, गीत, वाद्य एवं नृत्यों), चित्ताह्लादक, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प और वस्त्र से लाभ कराता है। वह शय्या, आसन और भोजन से युत पुरुष को मद्यपान से मतवाली विलासिनी स्त्री के मुखकमल पर भ्रमरत्व का अनुभव कराता है। यह विलासिनीछन्द है।।३२।।

भृगुसुतः शुक्रः। प्रथमगृहोपगो जन्मराशिगः। स्मरोपकरणैः कामोपकरणैः। शयनभूषणाच्छादनानुलेपनैर्गीतवाद्यनृत्यैः। तथा सुरभिभिः सुगन्धैः, मनोज्ञैश्चित्ताह्लादकैः। गान्धैर्गन्धद्रव्यैः। कुसुमैः पुष्पैः। अम्बरैर्वस्त्रैश्च उपचयं लाभं करोति। शयनेनास्तरणेन। गृहेण वेश्मनाऽऽसनेन पर्यङ्केणाशनेन भोजनेन च युतौ भवति। एवंविधस्य शयनगृहासनाशनयुतस्य पुंसः समदविलासिनीमुखसरोजषट्चरणतामनुकुरुते। समदा या विलासिनि मद्यपानेन समदा प्रमत्ता। तस्या मुखसरोजे वदनारविन्दे षट्चरणतां भ्रमरत्वमनुकुरुते विदधाति। परिचुम्बनादिकमनुददातीत्यर्थः। वृत्तमेतद्विलासिनी। तल्लक्षणम्–

[१]भवति विलासिनी यदि नजौ भजौ भलगुरू।

नस्त्रिलघुः। जो मध्यगुरुः। भ आदिगुरुः। पुनर्जकारः। पुनर्भकारः। अन्ते लघुगुरू।।३२।।

न्यासः–	न	ज	भ	ज	भ	ल	गु
	।।।	।ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	।	ऽ

भृगुसुत अर्तात् शुक्र प्रथमगृह अर्थात् जन्मराशिस्थ, स्मर अर्थात् कामदेव के उपकरणों शयन-आभूषण-बिस्तर-सुगन्ध लेपन-गीत-वाद्य-नृत्य तथा सुरभित सुगन्ध, चित्त को आह्लादित करने वाले सुगन्धित द्रव्यों और अम्बर अर्थात् वस्त्रों का लाभ कराता है। शयन अर्थात् बिछौना, उत्तम गृह, आसन, पलंग और भोजन से युत करता है। इस प्रकार शयन-गृह-आसन और भोज्य पदार्थ से युक्त पुरुष को मदयुक्ता स्त्री, जो मदपान से प्रमत्त हो, उसके मुखकमल पर षट्चरणता अर्थात् भ्रमरत्व का सादृश्य उपस्थित करता है। तात्पर्य यह है कि वह प्रमत्ता स्त्री के परिचुम्बनादि का अवसर पाता है। यह विलासिनी छन्द है।

विलासिनीछन्द का लक्षण–इस छन्द में नगण अर्थात् तीन लघु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु, पुनः जगण एवं भगण तथा अन्त में लघु और गुरु वर्ण होते हैं।।३२।।

विशेष–विलासिनीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

---

१. **छन्दोमञ्जर्यां तु "स्यादिन्द्रवजा यदि तौ जगौ गः"।**

अथ द्वितीयस्थस्य शुक्रस्य फलं वसन्ततिलकेनाह–

शुक्रे द्वितीयगृहगे प्रसवार्थधान्य–
भूपालसन्नतकुटुम्बहितान्यवाप्य ।
संसेवते कुसुमरत्नविभूषितश्च
कामं वसन्ततिलकद्युतिमूर्धजोऽपि।।३३।।

द्वितीय स्थानगत शुक्र का फल वसन्ततिलक छन्द में कहते हैं–

द्वितीय स्थान में शुक्र हो तो सन्तान, धन, धान्य, राजप्रियता एवं बन्धुओं से हित कार्यों को प्राप्त करके पुष्प और रत्नों में विभूषित होकर वसन्ततिलक वृक्ष के पुष्प के सदृश अतिश्वेत बाल (केश) होने पर भी कामदेव की सेवा करता है। यह वसन्ततिलक छन्द है॥३३॥

शुक्रे द्वितीयगृहगे द्वितीयस्थानस्थे। प्रसवोऽपत्यम्। अर्थो धनम्। धान्यं शालयः। भूपालसन्नतः। भूपालो राजा सन्नतः सम्यग् नतः प्रह्वो भवति। राजवाल्लभ्यम्। कुटुम्बेभ्यो हितम्। एतान्यवाप्य प्राप्य। कुसुमैः पुष्पैः। रत्नैर्मणिभिश्च। विभूषितोऽलङ्कृतः। कामं मैथुनं संसेवते। कीदृशः? वसन्ततिलकद्युतिमूर्धजोऽपि, वसन्ततिलको वृक्षस्तस्य पुष्पमतीव श्वेतवर्णं भवति। वसन्ततिलकसदृशी द्युतिः कान्तिर्मूर्धजेषु यस्य। अनभिप्रेतकामोऽपि कामं संसेवते। जरार्दितोऽपि स्त्रीष्वनुरतो भवतीत्यर्थः। वृत्तमेतद्वसन्ततिलकम्। तल्लक्षणम्–

[१]तभौ जौ वसन्ततिलकं गुरुकद्वयं चेत्।

तोऽन्तलघुः। भ आदिगुरुः। जो गुरुमध्यः। जगारद्वयम्। अन्ते गुरुद्वयम् ॥३३॥

न्यासः–	त	भ	ज	ज	गु
	ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽऽ

द्वितीय स्थान में शुक्र के होने पर प्रसव अर्थात् सन्तान, अर्थ (धन), धान्य आदि अन्न से परिपूर्ण तथा राजा सन्नत अर्थात् साधुभाव से विनम्र व्यवहार करता है। अभिप्राय यह है कि राजस्नेह मिलता है। पारिवारिक अनुकूलता होती है। इन सभी वस्तुओं को प्राप्त करता हुआ पुष्पों और रत्नों से विभूषित होकर रतिसुख का आनन्द लेता है। किस प्रकार का? वसन्ततिलक वृक्ष के अतीव श्वेतवर्ण के पुष्प के समान श्वेत केशों से युक्त, वह काम-सामर्थ्य न होने पर भी मैथुन का सेवन करता है। अर्थात् जराग्रस्त वह पुरुष, स्त्रियों में अनुरक्त रहता है। यह वसन्ततिलक छन्द है।

वसन्ततिलक छन्द का लक्षण–तगण अर्थात् अन्त्य लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु, दो जगण अर्थात् मध्य गुरु दो बार तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होने पर

---

१. वृत्तरत्नाकरे "अनवसिता न्यौ भगौ गुरुरन्ते"।

२. छन्दोमञ्जर्याम् "प्रतिमाक्षरा सजससैः कथिता"।

वसन्ततिलक छन्द की रचना होती है।।३३।।

विशेष—वसन्ततिलक छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ तृतीयचतुर्थस्थस्य शुक्रस्य फलमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

आज्ञार्थमानास्पदभूतिवस्त्रशत्रुक्षयान् दैत्यगुरुस्तृतीये।
दत्ते चतुर्थश्च सुहृत्समाजं रुद्रेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम्।।३४।।

तृतीय चतुर्थस्थ शुक्र का फल इन्द्रवज्राछन्द में कहते हैं–

तृतीय स्थान गत शुक्र प्रभुत्व, धन, मान, स्थान, समृद्धि, वस्त्र एवं शत्रु का विनाश करता है। चतुर्थ स्थानगत शुक्र मित्रों के साथ समागम शिव, इन्द्र और वज्र की भाँति शक्ति प्रदान करता है। यह इन्द्रवज्रा छन्द है।।३४।।

दैत्यगुरुः शुक्रः। तृतीये स्थाने आज्ञा प्रभुत्वम्। अर्थं धनम्। मानं पूजाम्। आस्पदं स्थानम्। भूतिं समृद्धिम्। वस्त्रमम्बरम्। शत्रुक्षयं रिपुविनाशम्। दत्ते ददाति। चतुर्थश्चतुर्थस्थानस्थश्च। सुहृद्भिर्मित्रैः समाजं संयोगम्। तथा रुद्रप्रतिमां महेश्वरतुल्यामिन्द्रप्रतिमां शक्रतुल्यां वज्रप्रतिमां कुलिशप्रतिमां शक्तिं सामर्थ्यं च ददाति। वृत्तमेतदिन्द्रवज्रा। तल्लक्षणम्–

[1]तौ जो गुरू चेद्भवतीन्द्रवज्रा।

तोऽन्तलघुः। द्वौ तकारौ। जो गुरुमध्यः। अन्ते गुरुद्वयम् ।।३४।।

न्यासः–	त	त	ज	गु
	ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽऽ

दैत्यगुरु अर्थात् शुक्र तृतीय स्थान में होकर आज्ञा अर्थात् प्रभुत्व शक्ति, धन, सम्मान, आस्पद अर्थात् पदप्राप्ति, भूति अर्थात् समृद्धि, वस्त्र तथा शत्रुओं का विनाश करता है। चतुर्थस्थ शुक्र मित्रों के साथ समागम तथा रुद्रप्रतिम अर्थात् भगवान शिव के समान, इन्द्रप्रतिम अर्थात् इन्द्र के तुल्य और वज्रप्रतिम अर्थात् वज्र संज्ञक अस्त्र के समान शक्ति प्रदान करता है। यह इन्द्रवज्राछन्द है।

इन्द्रवज्राछन्द का लक्षण—दो तगण अर्थात् अन्त्य लघु दो बार, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होने पर इन्द्रवज्राछन्द निर्मित होता है।।३४।।

अथ पञ्चमस्थस्य शुक्रस्यानवसितयाऽऽह–

जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम्।
सुतधनलब्धिं मित्रसहायाननवसितत्वं चारिबलेषु।।३५।।

पञ्चमस्थ शुक्र का फल अनवसिताछन्द में कहते हैं–

---

१. छन्दोमञ्जर्याम् "प्रतिमाक्षरा सजससैः कथिता"।

पञ्चम स्थानगत शुक्र अत्यधिक सन्तोष, बन्धुओं की प्राप्ति, पुत्र और धन का लाभ तथा शत्रु के सैन्यों में अनवस्थिति (आकुलता) उत्पन्न करता है। यह अनवसिता छन्द है॥३५॥

शुक्रः पञ्चमसंस्थः पञ्चमस्थानसंस्थो गुरुपरितोषं जनयति उत्पादयति। गुरवः परितुष्टा भवन्तीत्यर्थः। बन्धुजनाप्ति बन्धुजनप्राप्तिम्। सुतानां पुत्राणां धनानां वित्तानां लब्धि प्राप्तिम्। मित्राणि सहायान् सार्थिनंश्च लभते। अरिबलेषु शत्रुसैन्येषु अनवसितत्व-मनवस्थितिं च जनयत्युत्पादयति। शत्रूणामभावो भवतीत्यर्थः। अनवसिता-वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—

[१]अनवसिता न्यौ भगौ च यदि स्यात्।

नस्त्रिलघुः। य आदि लघुः। भ आदिगुरुः। अन्ते गुरुद्वयम्॥३५॥

न्यासः–	न	य	भ	गु
	।।।	।ऽऽ	ऽ।।	ऽऽ

पञ्चमस्थान में स्थित शुक्र गुरुजनों में सन्तोष उत्पन्न करता है। अर्थात् गुरुजन सन्तुष्ट होते हैं। बन्धु-बान्धवों की प्राप्ति होती है। सुत अर्थात् पुत्रों और धन की उपलब्धि रहती है। मित्रों और सहायकों की प्राप्ति होती है। अरिबल अर्थात् शत्रु की सेनाओं में अनवसितत्व अर्थात् अनवस्था (व्याकुलता) उत्पन्न करता है। भावार्थ यह है कि शत्रुओं का अभाव हो जाता है। यह अनवसिताछन्द है।

अनवसिताछन्द का लक्षण—नगण अर्थात् तीन लघु, यगण अर्थात् आदि लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु तथा अन्त में दो गुरु वर्ण होने पर अनवसिताछन्द समझना चाहिये॥३५॥

विशेष—अनवसिताछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ षष्ठसप्तमाष्टमस्थस्य शुक्रस्य फलं लक्ष्म्याऽऽह—

षष्ठो भृगुः परिभवरोगतापदः
स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमोऽशुभम्।
यातोऽष्टमं भवनपरिच्छदप्रदो
लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः॥३६॥

षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम स्थानगत शुक्र का फल लक्ष्मीछन्द में कहते हैं–

षष्ठ राशिगत शुक्र अनादर, रोग और सन्ताप प्रदान करता है। सप्तम स्थानस्थ

१. **छन्दोमञ्जर्याम्। "वसुयुगविरतिर्नौ म्यौ पुटोऽयम्।"**

शुक्र स्त्री सम्बन्धी अनिष्ट करता है। अष्टम राशिगत शुक्र, गृह और वस्त्र देने वाला तथा लक्ष्मीवती स्त्री का लाभ कराने वाला होता है। यह लक्ष्मी छन्द है॥३६॥

भृगुः शुक्रः। षष्ठः षष्ठस्थानस्थः। परिभवोऽसम्मानम्। रोगो गदः। तापः सन्तापः। एतान् ददाति। सप्तमः स्त्रीहेतुकं योषिन्निमित्तमशुभमनिष्टं जनयत्यु त्पादयति। अष्टमं यातः प्राप्तो भवनपरिच्छदप्रदः, भवनं गृहम्, परिच्छदः परिवार एतौ प्रददाति। लक्ष्मीः श्रीर्विद्यते यस्याः सा लक्ष्मीवती। सः पुरुषो लक्ष्मीवतीं स्त्रियमुपनयति प्राप्नोति। वृत्तमेतल्लक्ष्मीः। तल्लक्षणम्—

लक्ष्मीरियं तभसजगैरुदाहृता।

तोऽन्तलघुः। भ आदिगुरुः। सोऽन्तगुरुः। जो गुरुमध्यः। अन्ते गुरुः। एतैरुदाहृता॥३६॥

न्यासः—	त	भ	स	ज	गु
	ऽऽ।	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ

भृगु अर्थात् शुक्र छठे स्थान में स्थित होकर परिभव अर्थात् अनादर, रोग एवं सन्ताप देता है। सप्तमस्थ शुक्र स्त्री से सम्बन्धित अनिष्टफल को उत्पन्न करता है। अष्टमस्थ शुक्र भवन का परिच्छद अर्थात् गृह का विपुल परिसर देता है। श्री अर्थात् लक्ष्मी से युक्त लक्ष्मीवती स्त्री, वह पुरुष इस प्रकार की लक्ष्मीवती स्त्री को प्राप्त करता है। यह लक्ष्मी छन्द है।

लक्ष्मीछन्द का लक्षण—तगण अर्थात् अन्त्य लघु, भगण अर्थात् आदि गुरु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा अन्त में गुरु वर्ण रहता है, तो लक्ष्मीछन्द निर्मित होता है॥३६॥

विशेष—लक्ष्मीछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ नवमदशमस्थस्य शुक्रस्य फलं प्रमिताक्षरयाऽऽह—

नवमे तु धर्मवनितासुखभाग्
भृगुजेऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत्।
दशमेऽवमानकलहान् नियमात्
प्रमिताक्षराण्यपि वदन् लभते॥३७॥

नवम तथा दशम स्थानगत शुक्र का फल प्रमिताक्षरा छन्द में कहते हैं—

जिसके नवम स्थान में शुक्र हो वह धर्म, स्त्री और सुख भोगने वाला तथा धन

१. छन्दोमञ्जर्याम् "वाणश्चैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ"।

और वस्त्रों से युत होता है। जिसके दशमराशिगत शुक्र हो वह मनुष्य परिमित भाषण करने पर भी अपमान और कलह को प्राप्त करता है। यह प्रमिताक्षरा छन्द है।।३७।।

नवमे नवमस्थानगते भृगुजे शुक्रे। धर्मस्य वनितानां स्त्रीणां सुखस्य च भागी भवति। तथार्थनिचयो धनसमूहो वस्त्रनिचयोऽम्बरसमूहश्च भवेत्। दशमे शुक्रे अवमानं पराभवः। कलहा विरोधाः। एतान् नियमान्निश्चयाल्लभते। स पुरुषो वदन्नपि जल्पन्नपि अर्थितया प्रमितानि स्वल्पानि अक्षराणि वर्णान् लभते, न बहुवक्तृतां लभत इत्यर्थः। वृत्तमेतत् प्रमिताक्षरा। तल्लक्षणम्—

[१]प्रमिताक्षरा सजयुतावथ सौ।

सोऽन्तगुरुः। जो गुरुमध्यः ताभ्यां युक्तौ द्वौ सकारौ।।३७।।

न्यासः—	स	ज	स	स
	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।।ऽ

भृगुज अर्थात् शुक्र नवम स्थानगत हो तब धार्मिक तथा स्त्री सम्बन्धी सुख का अवसर मिलता है। अर्थनिचय अर्थात् प्रभूत धन और पर्याप्त वस्त्रों का लाभ होता है। दशमस्थ शुक्र से अवमान अर्थात् असम्मान, कलह अर्थात् विरोध; ये नियम से अर्थात् निश्चित ही मिलते हैं। वह व्यक्ति बोलता हुआ भी याचक के समान प्रमित अर्थात् थोड़े शब्द ही बोल पाता है। तात्पर्य यह है कि उसको बहुत बोलने का अवसर नहीं मिलता है। यह प्रमिताक्षराछन्द है।

प्रमिताक्षराछन्द का लक्षण—सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु तथा दो सगण अर्थात् दो बार अन्त्य गुरु वर्ण हों, तो प्रमिताक्षराछन्द की रचना होती है।।३७।।

विशेष—प्रमिताक्षराछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथैकादशद्वादशस्थस्य शुक्रस्य फलं स्थिरेणाह—

उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्धनान्नगन्धदः।
धनाम्बरागमोऽन्त्यगः स्थिरस्तु नाम्बरागमः।।३८।।

एकादश तथा द्वादशस्थानगत शुक्र का फल स्थिरछन्द में कहते हैं—

एकादश राशि में स्थित शुक्र मित्र, धन, अन्न तथा सुगन्ध द्रव्य देने वाला होता है। द्वादश स्थानगत शुक्र धन और वस्त्रों का लाभ कराने वाला होता है, तथापि वस्त्र का लाभ स्थिर नहीं रखता है। यह स्थिर छन्द है।।३८।।

भृगोः सुतः शुक्रः। उपान्त्यगः। अन्त्यस्य समीपमुपान्त्यमेकादशम्। तत्र यदा गतः। सुहृन्मित्रम्। धनं वित्तम्। अन्नमशनम्। गन्धाः सुगन्धद्रव्याणि। एतान् ददाति। अन्त्यगा द्वादशस्थानगतः। धनाम्बरागमः। धनं वित्तम्। अम्बरं वस्त्रम्। एतयोरागमो

लाभः। अम्बरागमः स्थिरो न भवति। अम्बरमपह्रियत इति। वृत्तमेतत् स्थिरम्। तल्लक्षणम्–

[१]लगौ स्थिरः प्रकीर्तितः।

लगौ लघुर्गुरुर्लघुर्गुरुरिति यत्र क्रमेण संस्थितम्।

न्यासः–	ल	गु	ल	गु	ल	गु	ल	गु
	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ

तथा च यवनेश्वरः–

हिरण्यनारीरजतार्थविद्यासुताम्बरस्थानचतुष्पदानाम् ।
लाभं शशिस्थानमुपेत्य शुक्रः कुर्याद् द्वितीये तु वराङ्गनाप्तिम्।।
मित्रान्नवस्त्रात्मजमानहर्षस्थानाङ्गनारोग्यकरस्तृतीये ।
शुक्रश्चतुर्थे धनपत्निपुत्रमित्रेष्टभोज्याम्बरगन्धदः स्यात्।।
सुहृत्सुतोद्भूतिगुणप्रवृत्तिख्यातिप्रदः पञ्चमगोऽर्थदश्च।
षष्ठे भृगुर्दैन्यविवादरोगद्वेषोद्भवान् मानवधांश्च कुर्यात्।।
जामित्रसंस्थो भृगुजस्तृषाध्वस्त्रीहेतुकोद्वेगकुमित्रदः स्यात्।
स्त्रीसौख्यविख्यापनमानहर्षप्रियागमाच्छादनदोऽष्टमस्थः।।
सुहृद्गुरुस्त्रीधनधर्मविद्यायशोगुणाप्तिं नवमर्क्षसंस्थः।
करोति शुक्रो दशमे सबन्धुसम्प्रीतिचेष्टाफलमानविघ्नान्।।
एकादशे स्त्रीशयनान्नपानभूषारतिस्वेदगृहार्थकारी।
भृग्वात्मजो द्वादशगस्तु चन्द्राद् भोग्यप्रदो वस्त्रविनाशकृच्च।।इति।।३८।।

भृगु सुत अर्थात् शुक्र उपान्त्य अर्थात् अन्त्य द्वादशस्थान के समीप, एकादशस्थान में स्थित हो तब सुहृत् अर्थात् मित्र, धन, अन्न अर्थात् भोजन और सुगन्धित द्रव्यों का लाभ देता है। अन्त्य अर्थात् द्वादश स्थान पर स्थित शुक्र धन और अम्बर अर्थात् वस्त्र का लाभ कराता है। वस्त्र का लाभ स्थायी नहीं होता है। क्योंकि उसमें चोरी आदि कटने-फटने की सम्भावना बनी रहती है। यह स्थिरछन्द है।

स्थिरछन्द का लक्षण–लघु-गुरु के क्रम से चार बार लघु तथा चार बार गुरु वर्ण हो तो स्थिरछन्द की रचना होता है।

विशेष–स्थिरछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

चन्द्रराशि से प्रथम स्थान में स्थित शुक्र सुवर्ण, नारी, रजत, धन, विद्या, सन्तान, वस्त्र, पद और पशुओं का लाभ कराता है। द्वितीय स्थान में स्थित शुक्र से

उत्तम स्त्रियों का लाभ होता है। तृतीय स्थान में स्थित शुक्र मित्र, अन्न, वस्त्र, स्वास्थ्य का प्रदायक होता है। चतुर्थ स्थान में स्थित शुक्र धन, पत्नी, पुत्र, मित्र, अभीष्ट भोजन, वस्त्र और सुगन्धित द्रव्यों को देता है। पञ्चमस्थ शुक्र मित्र सन्तानोत्पत्ति, गुणोत्कर्ष और प्रसिद्धि प्रदान करता है। षष्ठस्थ शुक्र निर्धनता, विवाद, रोग, विद्वेष भाव और मान-हानि कराता है। सप्तमस्थ शुक्र व्यर्थ लालसा, व्यर्थ भ्रमण, स्त्री के निमित्त व्याकुलता और कुत्सित मित्रों का साथ करता है। अष्टमस्थ शुक्र स्त्री, सुख, कीर्ति, सम्मान, प्रसन्नता, प्रियजनों का आगमन और मनोनुकूल शय्या प्रदान करता है। नवमस्थ शुक्र मित्र, गुरु, स्त्री, धन, धर्म, विद्या, यश तथा शुभ गुणों का विस्तार करता है। दशमस्थ शुक्र, बन्धु सहित सबका सद्भाव एवं अपने प्रयत्नों तथा सम्मान के कार्यों में संकट उपस्थित कराता है। एकादशस्थ शुक्र स्त्री, शय्या, भोजन, पान, वस्त्र, कामसुख, भवन और धन देता है। जन्मकालिक चन्द्रराशि से द्वादशभाव में शुक्र जब स्थित हो, तब धनोपभोग होता है और वस्त्रों का विनाश हो जाता है॥३८॥

अथ सौरस्य मोचरः। तत्रास्य जन्मराशिस्थस्य फलं[1] तोटकेनाह–

प्रथमे रविजे विषवह्निहतः स्वजनैर्वियुतः कृतबन्धुवधः।
परदेशमुपैत्यसुहृद्भवनो विमुखार्थसुतोऽटकदीनमुखः॥३९॥

जन्मराशिगत शनि का गोचरफल तोटक छन्द में कहते हैं–

जिसके जन्म राशि में शनि हो वह विष तथा अग्नि से पीड़ित, बन्धुओं से रहित, बन्धु का वध करने वाला, परदेश में जाने वाला, मित्र तथा गृह से रहित, धन और पुत्र से रहित, भ्रमणशील तथा दीन मुख होता है॥३९॥

रविजे शनैश्चरे। प्रथमे जन्मगते। विशेष गरलेन। वह्निऽग्निना च। हतः पीड़ितः स्वजनैर्बन्धुभिर्वियुतो रहितः। कृतबन्धुवधः कृतो बन्धुर्वधो येन। परदेशमुपैत्यपगच्छति। कीदृशश्च तत्र? असुहृद्भावनः, अविद्यमानाः सुहृदो मित्राणि भवनं गृहं च यस्य। तथा विमुखार्थसुतोऽटकदीनमुखः, विमुखो नष्टमुखः। विगतार्थो निर्धनः। विगतसुतः पुत्ररहितः। अटकः परिभ्रमणशीलः। दीनमुखो म्लानवदनः। अटकश्चासौ दीनमुखश्चेति। वृत्तमेतत् तोटकम्। तल्लक्षणम्–

अथ तोटकमब्धिसकारचितम् ।
सोऽन्तगुरुः। अब्धिसङ्ख्यैश्चतुर्भिः सकारैश्चितं रचितम्॥३९॥

न्यासः– स स स स
ıız ıız ıız ıız

रविज अर्थात् शनि, चन्द्र राशि में यदि स्थित हो तब विष और अग्नि से पीड़ित

---

१. छन्दोमञ्जर्यामपीदमेव।

करता है। स्वजनों से वियोग और बन्धुओं का वध होता है। परदेश में पलायन होता है। किस प्रकार से? जिस भवन में सद्भावयुत मित्र न हो उस प्रकार के गृह में। तथा विमुख अर्थात् मुख विरुद्ध, विगतार्थ अर्थात् धनहीन, विगतसुत, सन्तानहीन, अटक अर्थात् भ्रमणशील और दीनमुख अर्थात् मलिन मुखवाला बनाता है यह तोटक छन्द है।

तोटकछन्द का लक्षण—चार सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, वर्ण, चार बार आये तो तोटक छन्द की रचना होती है॥३९॥

विशेष—तोटकछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ द्वितीयस्थस्य सौरस्य फलं वंशपत्रपतितेनाह–

चारवशाद् द्वितीयगृहगे दिनकरतनये
रूपसुखापवर्जिततनुर्विगतमदबलः।
अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु भव-
त्यम्ब्विव वंशपत्रपतितं न बहु न च चिरम्॥४०॥

द्वितीय स्थानगत शनि का फल वंशपत्रपतितछन्द में कहते हैं–

जिस मनुष्य के चारवश जन्मराशि से द्वितीय स्थान में शनि स्थित होता है। वह रूप एवं सुख से रहित शरीर वाला, अहंकार रहित तथा बलहीन होता है। अन्य गुणों द्वारा धन को इकट्ठा करने पर भी वंशपत्र पर पतित जलबिन्दु की भाँति वह (धन) पर्याप्त नहीं होता और चिरकाल तक नहीं ठहरता है। यह वंशपत्रपतितछन्द है॥४०॥

दिनकरतनये शनैश्चरे। चारवशाच्चारक्रमेण। द्वितीयगृहगे द्वितीयस्थानगते। रूपसुखापवर्जिततनुः, रूपेण सुवेषेण सुखेन चापवर्जिता तनुः शरीरं यस्य सः। तथा विगतमदबलः, विगतं नष्टं मदो दर्पं बलं वीर्यं च यस्य। अन्यगुणै-रपरैर्विद्यादिकैर्गुणैः कृतमर्जितं वसुचयं धनसमूहो यदि भवति तदपि खलु न बहु प्रभूतं पर्याप्तम् न च चिरं चिरकालं भवति। खलुशब्दः समुच्चये। यथाऽम्बु जलं वंशपत्रपतितं न बहु भवति, न च चिरकालं तिष्ठति। वृत्तमेतद्वंशपत्रपतितम्। तल्लक्षणम्–

[१]दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः।

भ आदिगुरुः। रलमध्यः। नस्त्रिलघु. पुनर्भकारनकारौ। अन्ते लघुगुरू। एतैर्वंशपत्रपतितम्। दिक्शब्देन दश। मुनयः सप्त। एतैर्विरामौ॥४०॥

न्यासः–	भ	र	न	भ	न	ल	गु
	ऽ।।	ऽ।ऽ	।।।	ऽ।।	।।।	।	ऽ

दिनकरतनय अर्थात् शनि ग्रह गतिक्रम से द्वितीय स्थान में अवस्थित हो जाये

तब वह रूप अर्थात् सुन्दर वेष तथा सुख से रहिततनु अर्थात् शरीर को करता है। तथा विगतमदबल अर्थात् नष्ट अहंकार तथा बल से हीन करता है। अन्य गुण अर्थात् दूसरे विद्या आदि गुणों के द्वारा अर्जित व सुचय अर्थात् धनसमूह यदि होता भी है तो वह प्रभूत अर्थात् पर्याप्त और चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता है। 'खलु' शब्द यहाँ पर समुच्चय बोधक है। वह धन उसी प्रकार से चिरकाल तक नहीं टिकता है जिस प्रकार से वंशपत्र (बाँस के पत्ते) पर गिरा हुआ जल बहुत अर्थात् पर्याप्त नहीं होता है तथा न ही चिरकाल तक ठहरा रहता है। यह वंशपत्रपतित छन्द है।

वंशपत्रपतितछन्द का लक्षण—भगण अर्थात् आदि गुरु, रगण अर्थात् मध्य लघु, नगण अर्थात् तीन लघु तथा पुनः क्रमशः भगण और नगण और अन्त में लघु गुरुवर्ण हो तो वंशपत्रपतितछन्द की रचना होती है। इसमें दश तथा सात वर्णों पर यति (विराम) होती है।।४०।।

विशेष—वंशपत्रपतितछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ तृतीयस्थस्य सौरस्य फलं ललितेनाह—

सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते
दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषाश्वकुञ्जरखरान् ।
सद्मविभूतिसौख्यममितं गदव्युपुरमं
भीरुरपि प्रशास्त्यधिरिपूंश्च वीरललितैः।।४१।।

तृतीयस्थ शनिफल ललित-पद में कहते हैं—

जिसके तृतीय स्थान में शनि हो वह धन, भृत्य, परिवार, ऊँट, भैंस, घोड़ा, हाथी, गदहा, घर, ऐश्वर्य, सौख्य सहित आरोग्यता को प्राप्त करता है। वह डरपोक होने पर भी वीर चरित्रों के द्वारा प्रबल शत्रु को भी अपने वश में कर लेता है।।।४१।।

सूर्यसुते शनैश्चरे। तृतीयगृहगे तृतीयस्थानस्थे धनानि वित्तानि लभते प्राप्नोति। दासाः कर्मकराः। परिच्छदाः परिवाराः। उष्ट्राः करबाः। महिषाः प्रसिद्धाः। अश्वास्तुरगाः। कुञ्जरा हस्तिनः। खरा गर्दभाः। एतान् प्राप्नोति। सद्म गृहम्। विभूतिरैश्वर्यम्। सौख्यममितमतिप्रभूतम्। गदानां रोगाणां व्युपरमं विनाशः। एतदपि लभते। स पुरुषो भीरुरपि भयार्तोऽपि वीरललितैर्वीराणां ललितैश्चरितैः। अधिरिपून् महाशत्रून् प्रशास्ति स्वायत्ते यान् कुरुते। वृत्तमेतल्ललितम्। तल्लक्षणम्—

[१]स्याद्भारना रनौ च गुरु नाम सात्र ललिता।

भ आदिगुरुः। रलमध्यः। नस्त्रिलघुः। पुना रेफनकारौ। अन्ते गुरुः। सा वृत्तजातिः। अत्रास्मिन् छन्दसि ललिता नाम स्याद् भवेत् ।।४१।।

न्यासः— भ र न र न गु

ऽ।। ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ ।।। ऽ

सूर्यपुत्र अर्थात् शनि तृतीय स्थानस्थ होने पर धन का लाभ कराता है। दास अर्थात्, नौकर, परिवार, ऊँटों, भैंसों, घोड़ों, हाथियों, गदहों; इन सभी की प्राप्ति कराता है। सद्म अर्थात् गृह, विभूति अर्थात् ऐश्वर्य, अत्यधिक सौख्य, तथा गद अर्थात् रोगों का व्युपरम अर्थात् विनाश; इनका लाभ प्राप्त करता है। वह मनुष्य भयाक्रान्त होने पर भी वीरों के ललित अर्थात् चरित्रों के द्वारा अधिरिपु अर्थात् महाशत्रुओं को अपने अधीन कर लेता है। वह ललिताछन्द है।।

ललिताछन्द का लक्षण—भगण अर्थात् आदि गुरु, रगण अर्थात् मध्य लघु, नगण अर्थात् तीन लघु पुनः रगण तथा नगण। अन्त में गुरु वर्ण हो तो ललिताछन्द समझना चाहिये।।४१।।

विशेष—ललिताछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ चतुर्थस्य सौरस्य फलं भुजङ्गप्रयातेनाह—

चतुर्थं गृहं सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते
सुहृद्वित्तभार्यादिभिर्विप्रयुक्तः ।
भवत्यस्य सर्वत्र चासाधु दुष्टं
भुजङ्गप्रयातानुकारं च चित्तम्।।४२।।

चतुर्थ स्थानगत शनि का फल भुजंगप्रयातछन्द में कहते हैं—

जिसके जन्मराशि से चतुर्थ स्थानगत शनि हो वह मित्र, धन, स्त्री आदि से रहित होता है। तथा उसका चित्त सर्वत्र असाधु, दुष्ट भुजङ्ग (सर्प) के प्रयात (गमन) का अनुकरण करने वाला (अत्यन्त कुटिल) होता है। यह भुजङ्ग प्रयातछन्द है।।४२।।

सूर्यपुत्रे सौरे चतुर्थगृहं वेदस्थानमभ्युपेते प्राप्ते। सुहृद्भिर्मित्रैः। वित्तेन धनेन। भार्यया स्त्रिया। आदिग्रहणात् पुत्रैर्बन्धुभिश्च। एतैर्विप्रयुक्तो रहितो भवति। अस्य नरस्य चित्तं मनः। सर्वत्र सर्वस्मिन्नेव। असाध्वशोभनम्। दुष्टं पापादिष्वनुरतम्। भुजङ्गप्रयातानुकारं च भवति। भुजङ्गस्य सर्पस्य प्रयातं गमनमनुकरोति। अतिकुटिलचित्तो भवतीत्यर्थः। वृत्तमेतद् भुजङ्गप्रयातम्। तल्लक्षणम्—

[१]भुजङ्गप्रयातं [२]चतुर्भिर्यकारैः।

य आदिलघुः। चतुर्भिर्यकारैर्भुजङ्गप्रयातं भवति।।४२।।

न्यासः— य य य य
।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

सूर्यपुत्र अर्थात् शनि चतुर्थस्थानस्थ हो तो सुहृद् अर्थात् मित्रों, वित्त अर्थात्

---

१. छन्दोमञ्जर्याम् ''वाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ''।

धन, स्त्री आदि अर्थात् पुत्र और बन्धुओं; इन सबसे विप्रयुक्त अर्थात् रहित होता है। ऐसे मनुष्य का चित्त अर्थात् मन सर्वत्र असाधु अर्थात् अप्रिय, दुष्ट जो कि पापकर्म में अनुरक्त हो। वह भुजङ्ग अर्थात् सर्प के प्रयात अर्थात् गाति का अनुगमन करता है। भावार्थ यह कि वह अति कुटिलचित्त अर्थात् वह व्यक्ति दुष्ट हृदय का होता है। यह भुजङ्ग प्रयातछन्द है।

भुजङ्गप्रयातछन्द का लक्षण—यगण अर्थात् आदि लघु वर्ण, चार बार प्रयुक्त हों तो भुजङ्ग प्रयातछन्द समझना चाहिये।।४२।।

विशेष—भुजङ्गप्रयातछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ पञ्चमषष्ठस्थस्य सौरस्य फलं पुटयाऽऽह—

सुतधनपरिहीणः पञ्चमस्थे
प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे।
विनिहतरिपुरोगः षष्ठयाते
पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम्।।४३।।

पञ्चम तथा षष्ठ स्थानगत शनि का फल पुटाछन्द में कहते हैं—

जिसकी जन्मराशि से पञ्चम स्थान में शनि हो वह पुत्र तथा धन से रहित तथा अत्यधिक कलह से युक्त होता है। यदि षष्ठ स्थानगत शनि हो तो शत्रु से रहित, निरोग तथा सुन्दर ओठों से युक्त स्त्री के मुख का पान करने वाला होता है। यह पुटा छन्द है।।४३।।

अर्कपुत्रे शनैश्चरे। पञ्चमस्थे सुतस्थानप्राप्ते। सुतैः पुत्रैः। धनैर्वित्तैश्च परिहीणो रहितः। प्रचुरेण प्रभूतेन कलहेन विरोधेन च युक्तः। षष्ठयाते षष्ठस्थानस्थे विनिहतरिपुरोगः, विनिहता नष्टा रिपवः शत्रवो रोगा गदाश्च यस्य। तथाभूती वनितास्यं स्त्रीमुखं पिबत्यास्वादयति। कीदृशम्? श्रीपुटोष्ठम्, श्रीर्लक्ष्मीः पुटा संश्लिष्टा लग्ना ओष्ठयोर्दन्तच्छ-दयोर्यस्मिन् मुखे तच्छ्रीपुटोष्ठम्। वृत्तमेतत् पुटा। तल्लक्षणम्—

[१]वसुजलधिविरामौ नौ पुटा म्यौ।

नस्त्रिलघुः। द्वौ नकारौ। मस्त्रिगुरुः। यश्चादिलघुः। वसवोऽष्टौ। जलधयश्चत्वारः। एतैर्विरामौ।।४३।।

न्यासः—	न	न	म	य
	।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ

सूर्यपुत्र शनि, पञ्चम स्थान में स्थित हो तब सन्तान तथा धन से विहीन होता

१. छन्दोमञ्जर्याम् ''वाणाश्चैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ''।

है। अत्यधिक कलह अर्थात् विरोध से संयुक्त होता है। षष्ठस्थानगत शनि शत्रुओं और रोगों से विनिहत अर्थात् विहीन रहता है। इस प्रकार वह स्वस्थ रहता हुआ वनिता अर्थात् स्त्री के मुख का पान अर्थात् आस्वादन करता है। किस प्रकार? श्री अर्थात् लक्ष्मी के संलग्न जो ओष्ठ हों, उस प्रकार के मुख का रसपान करता है। यह पुटाछन्द हैं।

पुटाछन्द का लक्षण—नगण अर्थात दो बार तीन लघु, मगण अर्थात् तीन गुरु तथा अन्त में यगण अर्थात् आदि लघु वर्ण हो तो पुटाछन्द की रचना होती है। इसमें आठवें तथा चौथे वर्ण पर विराम (यति) होता है॥४३॥

विशेष—पुटाछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ सप्तमाष्टमनवस्थस्य सौरस्य फलं वैश्वदेव्याऽऽह—

गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च
हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः।
तद्वद्धर्मस्थे वैरहृद्रोगबन्धै—
र्धर्मोऽप्युच्छिद्येद् वैश्वदेवीक्रियाद्यः॥४४॥

सप्तम, अष्टम तथा नवम स्थानगत शनि का फल वैश्वदेवीछन्द में कहते हैं— जिसके जन्मराशि से सप्तम या अष्टम स्थानस्थ शनि हो, वह मार्ग में भ्रमण करता है। तथा वह स्त्री, पुत्र से हीन और दीन चेष्टा से युत रहता है। नवम स्थानगत शनि हो तो भी पूर्ववत् फल होता है। तथा शत्रु और हृदयरोग से उसका वैश्वदेवी क्रिया आदि धर्म नष्ट होता है। यह वैश्वदेवीछन्द है॥४४॥

सप्तमस्थानस्थे शनैश्चरे। अध्वानं गच्छति पथि व्रजति। अष्टमे शनैश्चरे चशब्दादध्वानमेव गच्छति। हीनो वर्जितः। स्त्रीपुत्रैर्भार्यासुतैः। दीनचेष्टश्च भवति। दीना चेष्टा क्रिया यस्य। धर्मस्थे नवमस्थानस्थे। तद्वत् तेनैव प्रकारेण। गच्छत्यध्वानं हीनः स्त्रीपुत्रैर्दीनचेष्टश्च भवति। वैरैर्द्वेषैः। हृद्रोगैर्जठरगदैः। बन्धैर्बन्धनैश्च। वैश्वदेवीक्रियाद्यः, वैश्वदेवी क्रिया आद्या प्रथमा यस्मिन् तथाभूतो धर्मोऽप्युच्छिद्येन्नश्यति। वैश्वदेवी वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—

[१]मौ यौ पञ्चाश्वैर्वैश्वदेवीति नाम्ना।

मस्त्रिगुरुः। द्वौ मकारौ। आदिलघुः। द्वौ यकारौ। पञ्चभिः। अश्वैश्च सप्तभिः। एतैर्विरामौ भवतः॥४४॥

न्यासः—	म	म	य	य
	ऽऽऽ	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ

सप्तम स्थान में शनि स्थित हो तब मार्ग में भ्रमण अर्थात् यात्रा की अधिकता होती है। अंष्टमस्थानगत शनि मार्ग भ्रमण ही कराता है। यह अर्थ 'चकार' शब्द से

१. छन्दोमञ्जर्यामियं वातोर्म्मी, तल्लक्षणम् 'वातोमीयं गठिता म्भौ तगौ गः''।

ध्वनित है। वह स्त्री, पुत्र से हीन अर्थात् रहित और दीन चेष्टाओं वाला अर्थात् दीन-हीन कर्मों वाला हो जाता है। नवमस्थान में स्थित शनि इसी प्रकार का फल देता है। अर्थात् मार्ग भ्रमण स्त्री पुत्रों से हीन और दैन्यभाव से पीड़ित रहता है। वह वैर अर्थात् द्वेष, हृदयरोग अर्थात् उदररोग, और बन्धन के द्वारा वैश्वदेवी सम्बन्धी धार्मिक कार्यों से उच्छेद अर्थात् नाश को प्राप्त होता है। यह वैश्वदेवी छन्द है।

वैश्वदेवी छन्द का लक्षण—दो मगण अर्थात् तीन गुरु दो बार तथा दो यगण अर्थात् आदि लघु वर्ण दो बार आये तो वैश्वदेवी छन्द निर्मित होता है। इसमें पाँचवें तथा सातवें वर्ण पर विराम (यति) होता है।।४४।।

विशेष—वैश्वदेवी छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथ दशमैकादशद्वादशस्थस्य सौरस्य फलमूर्मिमालयाऽऽह—

कर्मप्राप्तिर्दशमेऽर्थक्षयश्च
विद्याकीर्त्योः परिहानिश्च सौरे।
तैक्ष्ण्यं लाभे परयोषार्थलाभ-
श्चान्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम्।।४५।।

दशम, एकादश और द्वादश स्थानगत शनि का फल ऊर्मिमालाछन्द में कहते हैं—

जन्मराशि से दशम भाव में शनि हो तो कर्म का लाभ तथा धन, विद्या और यश का विनाश होता है। एकादश राशि में शनि हो तो कठोर स्वभाव तथा दूसरे की स्त्री तथा धन का लाभ होता है। द्वादश राशि में शनि हो तो शोक की ऊर्मियों (तरंगों) की माला (समूह) की प्राप्ति होती है। यह ऊर्मिमालाछन्द है।।४५।।

दशमे धर्मस्थानस्थे सौरे शनैश्चरे। कर्मणां प्राप्तिः सिद्धिः। अर्थस्य धनस्य च क्षयो विनाशो भवति। विद्या शास्त्रम्। कीर्तिर्यशः। एतयोःपरिहानिश्च भवति। लाभे एकादशे तैक्ष्ण्यमुग्रस्वभावता। परयोषार्थलाभः परेषामन्येषां संबन्धिन्यों या योषाः स्त्रियः। तासाम्; परार्थानां परधनानां च लाभः प्राप्तिर्भवति। अन्त्ये द्वादशस्थे सौरे। शोकोर्मिमालां प्राप्नोति। शोकानां दुःखानामूर्मयः कल्लोलास्तेषां या माला निचयस्तां प्राप्नोति। ऊर्मिमाला वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—

[१]म्भौ तो गौ चेत् कथिता सोर्मिमाला।

मस्त्रिगुरुः। भ आदिगुरुः। तोऽन्तलघुः। अन्ते गुरुद्वयम्।

न्यासः—	म	भ	त	गु
	ऽऽऽ	ऽ।।	ऽऽ।	ऽऽ

तथा च यवनेश्वरः—

बन्धाध्वशस्त्रानिलरुग्विषार्ति विडम्बनस्त्रीसुतवित्तनाशम्।
स्थाने विधते शशिनोऽर्कपुत्रस्ततो व्ययायासकरो द्वितीये।।
तृतीयगोऽरिक्षयमानहर्षसौभाग्यबह्वागमदोऽर्कसूनुः।

चतुर्थगो बन्धुवधावमानच्छायाविघाताध्वभयार्तिकारी।।
स्थितिक्रियारम्भसुतार्थनाशस्वबन्धुविद्वेषविवादकारी।
शनैश्चरः पञ्चमगोऽथ षष्ठे शत्रुक्षयामोदसुतार्थदाता।।
छायाविघातश्रमगुह्यरोगस्त्रीमित्रनाशाध्वकृदर्कसूनुः।
जामित्रसंस्थौऽष्टमगोऽथ शोकक्षुद्‌बन्धुभृत्यव्यसनार्तिकारी।।
व्याध्यध्ववैरश्रमवित्तनाशक्षुत्क्लेशदः स्यान्नवमर्क्षसंस्थः।
ऐश्वर्यचेष्टाफलसञ्चयघ्नो मेषूरणे व्याध्यपकीर्तिकृच्च।।
यशः परस्त्रीधनभृत्यलाभक्रियासमृद्धिस्थितिमानदस्तु।
एकादशे,द्वादशगस्तु चेष्टानैपुण्यकीर्तिद्युतिमानहर्ता।।इति।।४५।।

यदि दशमस्थान में शनि स्थित हो तब कार्य की प्राप्ति अर्थात् वृद्धि होती है। अर्थ अर्थात् धन का क्षय (विनाश) होता है। विद्या अर्थात् शास्त्र-ज्ञान, कीर्ति अर्थात् यश-प्रतिष्ठा; इन दोनों की हानि कराता है। एकादश भाव में स्थित शनि तीक्ष्णता अर्थात् उग्र स्वभाव, परयोषा अर्थात् अन्यों से सम्बन्धित स्त्रियों का और पराये धन का लाभ प्राप्त कराता है। अन्त्य अर्थात् द्वादशस्थ शनि के द्वारा शोक अर्थात् दुःखों की ऊर्मि अर्थात् तरंगों की माला-समूह को प्राप्त करता है। यह ऊर्मिमाला छन्द है।

ऊर्मिमाला छन्द का लक्षण—मगण अर्थात् तीन गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु, तगण अर्थात् अन्त्य लघु तथा अन्त में दो गुरु वर्ण हों तो ऊर्मिमालाछन्द समझना चाहिये।

विशेष—ऊर्मिमालाछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसा कि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है—

प्रथम स्थान में स्थित शनि बन्धु, यात्रा, शस्त्र, वायुविकार, विष, कष्ट, विकृति, स्त्री, सन्तान और धन का नाश करता है। द्वितीय स्थान का शनि अपव्यय तथा निरर्थक श्रम कराता है। तृतीय स्थान का शनि शत्रुनाश, सम्मान, प्रसन्नता, सौभाग्य, धनागम का प्रदाता होता है। चतुर्थ स्थान गत शनि के द्वारा बन्धु-विनाश, अवमानना, आश्रय का विनाश, मार्गभय तथा अपयश देता है। पञ्चमस्थ शनि स्थान, कार्यारम्भ, सन्तान तथा धन का विनाशक होता है, यह कुटुम्ब में विद्वेष और कलह कराता है। षष्ठस्थ शनि शत्रुनाश, प्रसन्नता, सन्तान तथा धन का दाता होता है। सप्तमस्थ शनि आश्रय का नाश, परिश्रम, गुप्तरोग देता है तथा स्त्री और मित्र की हानि तथा परिभ्रमणकारी होता है। अष्टमस्थ शनि दुःख, क्षुधा, बन्धु, सेवक और दुर्व्यसनों से कष्टकारक होता है। नवमस्थ शनि व्याधि, यात्रा, शत्रुता, श्रम, धननाश एवं क्षुधा से पीड़ित रखता है। दशमस्थ शनि समृद्धि, अभीष्टफल और धन संचय में विघ्नकारक तथा रोग व अपयश को उत्पन्न करता है। एकादशस्थ यश, स्त्री, धन, पद और सम्मान देता है। द्वादश स्थान गत शनि प्रयत्न, बुद्धि, यश और सम्मान का

अपहर्ता होता है॥४५॥

नन्वत्र यद् गोचरफलं ग्रहाणामुक्तं तत् कस्यचित् फलस्य निष्फलतां यात्यत्र किमिति विपर्ययो दृश्यत इत्येतदर्थं हेतूपन्यासं वितानेनाह–

अपि कालमपेक्ष्य च पात्रं शुभकृद्विदधात्यनुरूपम्।
न मधौ बहु कं कुडवे वा विसृजत्यपि मेघवितानः॥४६॥

यहाँ पर जो ग्रहों के गोचर फल कहे गये हैं। उनमें से किसी फल की निष्फलता भी देखी जाती है। इस निष्फलता का क्या कारण हो सकता है उसका समाधान वितान छन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार वसन्तकाल में मेघ समुदाय से बहुत जल की वृष्टि होने पर भी कुडव (पात्रविशेष) में बहुत जल नहीं होता है। उसी तरह शुभ करने वाला ग्रह भी काल और पात्र के अनुरूप फल देता है। यह वितान छन्द है॥४६॥

शुभकृच्छुभफलप्रदो ग्रहः। कालं शुभदशाकालं वर्तमानमपेक्ष्य यस्य पुरुषं वाप्यपेक्ष्य तदनुरूपं फलं विदधाति करोति। एतदुक्तं भवति-शोभना यस्य दशा वर्तते। तस्य ग्रहगोचरानुकूलाः शुभं फलं प्रयच्छन्ति। तथा च पुरुषस्य यत् फलं सम्भाव्यते तस्यैव शोभनं फलं प्रयच्छति, नापात्रस्य। अत्र दृष्टान्तमाह–न मधौ बहु कमिति। मधौ वसन्ते मेघवितानो घनसमूहः कं पयो विसृजत्युत्सृजत्यपि कुडवे भाण्डविशेषे पात्रे न बहु वर्षति। वाशब्दोऽत्र इवार्थे। यथा न तत्र प्रभूतं वर्षति। यतो मधौ तत्कालं जलं कुडवमापने तन्न पर्याप्तमिति। वृत्तमेतद्वितानम्। तल्लक्षणम्–

त्रिसगैरपि विद्धि वितानम्सोऽन्तगुरुः सकारत्रयम्। अन्ते गुरुः। एतद्विताने विद्धि जानीहि॥४६॥

न्यासः:–	स	स	स	गु
	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	ऽ

शुभकृत् अर्थात् शुभफलप्रदायक ग्रहों का विचार करते हैं। यदि किसी ग्रह की शुभदशा का समय चल रहा हो तब वर्तमान कालिक गोचरफल की उपेक्षा कर उस व्यक्ति को अनुकूलफल मिलता है। तात्पर्य यह है कि जिसकी शुभदशा चल रही हो उसको ग्रह गोचर के अनुकूल शुभफल मिलता है। यह भी समझना चाहिये कि जिस व्यक्ति में जिस फल की सम्भावना हो सकती है वही फल घटित होता है। अपात्र व्यक्ति में वे फल घटित नहीं होते हैं। उदाहरण के द्वारा कहते हैं–मधुमास अर्थात् वसन्त ऋतु में मेघों का समूह 'क' अर्थात् जल का वर्षण करता है, फिर भी कुडव अर्थात् एक विशेष प्रकार का पात्र उसमें वर्षा का जल पर्याप्त नहीं होता है। यहाँ पर 'वा' शब्द 'इव' (यथा) अर्थ में प्रयुक्त है। इस प्रकार वहाँ पर प्रचुर वर्षा नहीं होती है, क्योंकि वसन्त ऋतु में तात्कालिक वर्षा का जल उस कुडव के मापन हेतु पर्याप्त नहीं होता है। यह वितान नामक छन्द है।

वितान छन्द का लक्षण–तीन सगण अर्थात् अन्त्य गुरु तीन बार और

अन्तिम वर्ण गुरु होने पर वितानछन्द समझना चाहिये।।४६।।

विशेष—वितान छन्द का न्यास, विवृति में द्रष्टव्य है।

विशेष व्याख्या—'कुडव'—एक चौथाई प्रस्थ के बराबर या बारह मुट्ठी (अंजलि) अनाज की तौल को धारण करने वाला पात्र 'कुडव' कहा जाता है।

अथ गोचराशुभस्थानस्थितानां ग्रहाणां पूजनं भुजङ्गविजृम्भितेनाह—

रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः
कनकवृषबकुलकुसुमैर्दिवाकरभूसुतौ
भक्त्या पूज्याविन्दुर्धेन्वा
सितकुसुमरजतमधुरैः सितश्च मदप्रदैः।
कृष्णद्रव्यैःसौरिः सौम्यो
मणिरजततिलककुसुमैर्गुरुः परिपीतकैः
प्रीतैः पीडा न स्यादुच्चा-
द्यदि पतति विशति यदि वा भुजङ्गविजृम्भितम्।।४७।।

गोचर से अशुभस्थानस्थ ग्रहों का पूजन भुजङ्गविजृम्भितछन्द में कहते हैं—

रक्त पुष्प, सुगन्ध द्रव्य, ताँबा, सोना, बकुल पुष्पों और बैल से सूर्य तथा मंगल की, धेनु, सफेद पुष्प, चाँदी और मिष्ठान्न से चन्द्रमा की, कामोद्दीपक द्रव्यों से शुक्र की, काले द्रव्यों से शनि की, मणि, चाँदी और तिलक (चन्दन) के पुष्पों से बुध की और पीले द्रव्यों से बृहस्पति की भक्तिपूर्वक पूजा करे। यदि ऊँचे स्थान से गिरे अथवा क्रीडासक्त सर्पों में प्रवेश करे तो भी इस प्रकार की पूजा से परितुष्ट ग्रहों के द्वारा पीड़ा नहीं होती है। यह भुजङ्गविजृम्भित छन्द है।।४७।।

रक्तैः पुष्पैरिति। रक्तैर्लोहितवर्णैः पुष्पैः कुसुमैः। गन्धैः सुगन्धद्रव्यैश्च समालम्भनै रक्तचन्दनप्रभृतिभिः। ताम्रैस्ताम्रवर्णैः। कनकेन सुवर्णेन। वृषेण दान्तेन। बकुलसुकुमैर्बकुलपुष्पैः। दिवाकरभूसुतौ सूर्याङ्गारकौ भक्त्या पूज्यावर्च्यौ। इन्दुश्चन्द्रो धेन्वा हिरण्यगवा। सितकुसुमैः श्वेतपुष्पैः। रजतेन रौप्येण। मधुरैर्मधुरद्रव्यैर्दधिमधुघृतशर्करादिभिः। पूज्यः सितः शुक्रश्च मदप्रदैर्मन्मथोद्दीपनैर्गन्धकुसुमधूपवलिभिश्च पूज्यः। चशब्दात् श्वेतैश्च। सौरिः। शनैश्चरः। कृष्णद्रव्यैः सर्वैर्गन्धकुसुमोपहारैः पूज्यः। सौम्यो बुधः। मणिभिः। रजतेन रौप्येण। तिलक-कुसुमैस्तिलकपुष्पैः पूज्यः। गुरुवः परिपीतकैः पीतवर्णकुसुमगन्धोपहारैश्च। एतैर्ग्रहैः प्रीतैः परितुष्टैः पीडा न स्यान्न भवेत्। येन पुरुषेण ग्रहाः पूजिताः स यद्युच्चादुन्नतादध एव पतति। यदि वा भुजङ्गानां सर्पाणां विजृम्भितं विशति सर्पाणां क्रीडासक्तानां मध्ये प्रविशति तथाऽपि तस्य पीडा न स्यात्। वृत्तमेतद् भुजङ्गविजृम्भितम्, तल्लक्षणम्—

[१]मौतो ना रः ल्गाः प्राहुर्वसुमदनदहनमुनिभिर्भुजङ्गविजृम्भितम्।

---

१. छन्दोमञ्जर्याम् ''वस्वीशाश्वैश्छेदोपेतं ममतननयुगरसलगैर्भुजङ्गविजृम्भितम्''।

मस्त्रिगुरुः। द्वौ मकारौ। तोऽन्तलघुः। नस्त्रिलघुः। नकारत्रयम्। रलमध्यः। सोऽन्तगुरुः। लघुगुरू अन्ते। ते वसवोऽष्टौ। मदनदहना रुद्रा एकादश। मुनयः सप्त। एतैर्विरामैः प्राहुरुक्तवन्तः पिङ्गलादयः॥४७॥

न्यासः–	म	म	त	न	न	न	र	स	ल	गु
	ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽ।	।।।	।।।	।।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

रक्तपुष्पों, गन्ध अर्थात् सुगन्धित द्रव्यों के समवाय रक्तचन्दन आदि, ताम्रवर्ण के पदार्थों से, कनक अर्थात् सुवर्ण, वृषभ, बकुल के पुष्पों से सूर्य और भूमिपुत्र मंगल की अर्चना करनी चाहिये। चन्द्रमा की शान्ति के लिये धेनु (सुवर्ण मण्डित गाय), श्वेत पुष्प, रजत (चाँदी) मधुर द्रव्य अर्थात् दधि, मधु, घृत और शर्करादि के द्वारा पूजा करनी चाहिये। सित अर्थात् शुक्र मदप्रदायक अर्थात् कामोद्दीपक, गन्ध, पुष्प, धूप, बलि के द्वारा पूजित होता है। 'च' शब्द से श्वेत पदार्थों का भी ग्रहण करना चाहिये। सौरि अर्थात् शनि कृष्णवर्णीय सभी गन्ध, पुष्प, उपहारादि द्वारा पूजित होता है। सौम्य अर्थात् बुध ग्रह, मणि अर्थात् रत्नों से, रजत (चाँदी) से और तिलक अर्थात् तिलक पुष्प से पूजित होता है। गुरु ग्रह पीत वर्ण के कुसुम, गन्ध एवं उपहारों द्वारा पूजित होते हैं। इन पदार्थों से ग्रहों के सन्तुष्ट हो जाने पर पीड़ा (कष्ट) नहीं होती है। जिस व्यक्ति के द्वारा ये ग्रह पूजित होते हैं, वह यदि ऊँचे स्थान से नीचे गिर जाये तब भी कष्ट नहीं पाता है। यदि वह भुजङ्ग अर्थात् सर्पों से विजृम्भित अर्थात् क्रीडासक्त सर्पों के समूह में प्रविष्ट हो जाये, तब भी उसको पीड़ा नहीं होती है। यह भुजङ्गविजृम्भित छन्द है।

भुजङ्गविजृम्भितछन्द का लक्षण–दो मगण अर्थात् दो बार तीन गुरु, तगण अर्थात् अन्त्य लघु, तीन नगण अर्थात् तीन बार तीन लघु, रगण अर्थात् मध्य लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु तथा अन्त में लघु गुरु वर्ण आये तो भुजङ्गविजृम्भित छन्द की रचना होती है। इस छन्द में आठ, ग्यारह और सात वर्णों पर यति (विराम) होती है॥४७॥

विशेष–भुजङ्गविजृम्भित छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

विशेष व्याख्या–

१. तिलक पुष्प–सुन्दर श्वेत फूलों वाला एक वृक्ष

२. बकुलपुष्पं–मौलसिरी अर्थात् मौलश्री वृक्ष का सुगन्धित फूल, नागकेसर का पुष्प-अमरकोष २/४/६४.

अत्रैव ग्रहपूजाप्रशंसामुद्गतयाऽऽह–

शमयोद्गतामशुभदृष्टि–
मपि विबुधविप्रपूजया।
शान्तिजपनियमदानदमैः

सुजनाभिभाषणसमागमैस्तथा।।४८।।

ग्रह पूजा की प्रशंसा उद्‌गता छन्द में कहते हैं–

देवता और ब्राह्मणों की पूजा से, शान्ति, मन्त्र जप, नियम, दान और जितेन्द्रियता से तथा सुजनों के भाषण और उनके साथ समागम से अशुभ दृष्टि जन्य (गोचरोक्त सकल) दोषों का नाश होता है। यह उद्‌गताछन्द है।।४८।।

अशुभदृष्टिमप्युद्‌गतामुत्पन्नाम्। शमय शान्तिं नय। अशुभा चासौ दृष्टिरशुभदृष्टिः। ताम्। कथं शमय? विबुधविप्रपूजया, विबुधानां देवानां विप्राणां ब्राह्मणानां च पूजया पूजनेन। तथा शान्त्या जपेन मन्त्रजपेन। नियमेन नीत्या जिताहारत्वेन ब्रह्मचर्यत्वेन च। दानेन। दमेन जितेन्द्रियत्वेन। तथा सुजनानां प्रधानजनानामभिभाषणेन सम्भाषणेन। एतै सर्वैः। तथा सुजनानामपि समागमेनाशुभदृष्टिमुद्‌गतां शमय। एतदुक्तं भवति– एवंविधो यस्याचारः सर्वकालं भवति तस्य शुभो भवतीति। वृत्तमिदमुद्‌गता। तल्लक्षणम्–

प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनन्तरम्।
यद्यथ भनजलगाः स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्‌गता।।

इयमुद्‌गता नाम वृत्तजातिः। यस्याः प्रथमः पादः सजसलेषु भवति। सोऽन्तगुरुः। जो गुरुमध्यः। पुनरपि सकारः। अन्ते लघुः। एतेषु सत्सु विद्यमानेषु। अथ द्वितीये नसजगुरुकेष्वथैक्यतः सत्सु। नकारस्त्रिलघुः। सोऽन्तगुरुः। जो गुरुमध्यगतः। अन्ते गुरुः। ततस्तृतीयपादे भनजलगा भवन्ति। भ आदिगुरुः। नस्त्रिलघुः। जो गुरुमध्यः। लघुगुरू अन्ते। चतुर्थपादे सोऽन्तगुरुः। जो गुरु मध्यः। पुनः सकारः जो गुरुमध्यः। अन्ते गुरुः।।४८।।

न्यासः–	स	ज	स	ल	न	स	ज	गु		
	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।	।।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ		
	भ	न	ज	ल	गु	स	ज	स	ज	गु
	ऽ।।	।।।	।ऽ।	।	ऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	।ऽ।	ऽ

अशुभ दृष्टि उत्पन्न हो तो उसकी शान्ति करनी चाहिये। जो दृष्टि अशुभ-कारिणी हो, उसको अशुभ दृष्टि कहते हैं। ग्रहों की अशुभदृष्टि को किस प्रकार उपशमित किया जा सकता है? विबुध अर्थात् देवगण और विप्रजनों की पूजा के द्वारा तथा शान्ति कर्म, ग्रह मन्त्र का जप, नियम अर्थात् विचारपूर्वक नियमित आहार एवं ब्रह्मचर्य, दान, दम अर्थात् जितेन्द्रियता और सुजन अर्थात् श्रेष्ठजनों के आशीर्वादात्मक सदुपदेश से, सज्जन पुरुषों के आगमन (सत्कार) के द्वारा अशुभ दृष्टि से प्रादुर्भूत कुफलों का शमन करना चाहिये। कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार जिसका संयमित सदाचरण सदैव रहता है, उसका कल्याण होता है। यह उद्‌गताछन्द है।

उद्‌गताछन्द का लक्षण–यह उद्‌गता नामक छन्द है। इसका प्रथम चरण स, ज, स, ल गणों में होता है। सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, सगण और अन्त में लघु वर्ण; इन वर्णों से प्रथम चरण होता है। द्वितीय चरण में न, स,

ज, गुरु गणों में होता है। नगण अर्थात् तीन लघु, सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण और गुरु तथा तृतीय चरण में भ न ज ल गु गण होते हैं। भगण अर्थात् आदि गुरु, नगण अर्थात् तीन लघु, जगण अर्थात् मध्यगुरु तथा अन्त में लघु गुरु वर्ण होता है। चतुर्थ चरण में स ज स ज ग गण होते हैं। सगण अर्थात् अन्त्य गुरु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, पुनः सगण तथा जगण तथा अन्त में गुरु वर्ण होता है। इस प्रकार उद्गता छन्द समझना चाहिये।।४८।।

विशेष व्याख्या—बृहत्संहिता की विवृति में उद्गता के जो उपर्युक्त लक्षण दिये गये हैं। छन्दोमञ्जरी में उल्लिखित उद्गता से किञ्चित् भिन्न हैं। विवृतिकार ने इस छन्द के तृतीय पाद में "यद्यथ भनजलगाः" अर्थात् भगण, नगण, जगण, लघु, गुरु कहा है। जबकि छन्दोमञ्जरी में "यद्यथ भनभगा" अर्थात् भगण, नगण, भगण और गुरु कहा है। यह भेद द्रष्टव्य है। शेष सभी पाद दोनों ग्रन्थ में एक समान हैं।

अधुना गोचरोक्तस्य फलस्य रविभौमयोः शशिसौरयोश्च प्रधानकालं गीत्युपगीतिलक्षणं चाह—

रविभौमौ पूर्वार्धे शशिसौरौ कथयतोऽन्त्यगौ राशेः।
सदसल्लक्षणमार्यागीत्युपगीत्योर्यथासंख्यम्।।४९।।

रवि, मंगल, चन्द्र और शनि के गोचरोक्त फलकाल को गीति एवं उपगीतिछन्द में कहते हैं—

सूर्य, मंगल राशि के पूर्वार्ध में, चन्द्र और शनि राशि के अन्त में शुभाशुभफल देते हैं। जिस छन्द में आर्या के पूर्वार्ध सम दोनों अर्ध हों उसको गीति तथा जिसका उत्तरार्ध सम दोनों अर्ध हों उसको उपगीति छन्द कहते हैं। यह गीति और उपगीति छन्द है।।४९।।

रविरादित्यः। भौमः कुजः। एतौ रविभौमौ राशेः पूर्वार्धे स्थितौ सदसच्छुभमशुभं वा फलं कथयतः कुरुतः। यत् उक्तम्—

[१]दिनकररुधिरौ प्रवेशकाल इति।

शशिसौरौ चन्द्रशनैश्चरौ राशेरन्त्यगौ पश्चिमभागावस्थितौ सदसत् फलं कथयतः कुरुतः। यत उक्तम्—"[२]रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ" इति। एवमार्यागीत्युपगीत्योर्लक्षणं यथासङ्ख्यं यथाक्रमम्। एतदुक्तं भवति—यस्या आर्यायाः प्रथमार्धसदृशौ द्वावप्यर्धौ सा गीतिः। यस्या आर्याया आर्याद्वितीयार्धसदृशौ द्वावप्यर्धौ सा उपगीतिः। तल्लक्षणम्—

आर्यायाः पूर्वार्धे यदुक्तमितरत्र प्रथमतो लक्ष्म।
गीतिं गीतिविधिविदो वदन्ति संवीक्ष्य तदितरत्रापि।।

प्रथमतो यल्लक्ष्म लक्षणमार्यायाः पूर्वार्धे प्रथमदले उक्तं तदितरत्राप्यन्यस्मिन्नप्यर्धे

---

१. बृहज्जातके २३ अध्यायस्य ६ श्लोकः।

२. बृहज्जातके २३ अध्यायस्य ६ श्लोकः।

संवीक्ष्य दृष्ट्वा गीतिविधिविदो गीतिविधिं विदन्ति जानन्तीति गीतिविधिविदः। तां गीतिं गीत्यार्यां वदन्ति कथयन्ति। उपगीतिलक्षणम्–

आर्याद्वितीयदलतोर्धे लक्ष्म प्रतिनियतमवगम्य।
उभयत्राप्युपगीतिं वदन्ति यत्यंशकैर्गदितैः।।

आर्याया द्वितीयदले अपरार्धे यद्भवति लक्ष्म लक्षणं तत् प्रतिनियतं निश्चितमवगम्य दृष्ट्वा उभयत्राप्युपगीतिं वदन्ति कथयन्ति। यत्यंशकैर्गदितैः पूर्वोक्तैरिति। न्यासः प्रसिद्धः।।४९।।

रवि अर्थात् सूर्य, भौम अर्थात् मंगल, ये दोनों सूर्य और मंगल प्राप्त राशि के पूर्वार्ध काल में शुभ अथवा अशुभफल करते हैं। क्योंकि कहा गया है–

सूर्य और मंगल प्रवेशकाल में फल देते हैं।

शशि एवं सौर अर्थात् चन्द्रमा और शनि, राशि के अन्त्यभाव अर्थात् उत्तरार्ध में अवस्थित होकर शुभाशुभफल प्रदान करते हैं। जैसा कि कहा गया है–"शनि और चन्द्रमा अन्तिम अर्धभाग में फलदायक होते हैं।" इसी प्रकार आर्यागीति एवं उपगीतिछन्द का लक्षण यथाक्रम होता है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस आर्या में प्रथमार्ध के समान द्वितीयार्ध भी होता है। वह गीति छन्द है। जिस आर्या में द्वितीयार्ध के समान ही अन्य भी दोनों अर्ध होते हैं वह उपगीतिछन्द है।

गीति छन्द का लक्षण–आर्याछन्द के पूर्वार्ध के लिये जो लक्षण कहे गये हैं, वेही लक्षण द्वितीयार्ध में भी होने पर छन्दशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् उसको गीति-आर्या कहते हैं।

उपगीतिछन्द का लक्षण–आर्याछन्द के द्वितीयपद अर्थात् उत्तरार्ध में जो लक्षण कहे गये हैं। उसी को उभयभाग में नियत देखकर उसे उपगीतिछन्द कहा गया है यति अर्थात् विराम उसके निर्धारित पूर्वोक्त भागों में ही समझना चाहिये। इसका न्यास प्रसिद्ध है।।४९।।

अथ बुधस्य गोचरोक्तस्य फलप्रधानकालमुपगीत्यार्ययाऽऽह–

आदौ यादृक् सौम्यः पश्चादपि तादृशो भवति।
उपगीतेर्मात्राणां गणवत् सत्सम्प्रयोगो वा।।५०।।

बुध के गोचर फल का मुख्यकाल उपगीति आर्या छन्द में कहते हैं–

उपगीति की मात्राओं के गण की तरह या साधुओं के समागम की तरह बुध राशि के आदि और अन्त में समान फल देता है। अर्थात् जैसे उपगीति छन्द में दोनों अर्ध तुल्य लक्षण लक्षित होते हैं, तथा जैसे साधुओं का समागम सदा एक-सा रहता है, उसी तरह बुध राशि के आदि और अन्त में तुल्यफल देता है। यह उपगीति छन्द है।।५०।।

---

१. बृहज्जातके २३ अध्यायस्य ६ श्लोकः।

आदौ राशिप्रवेशकाले यादृक् शुभो वाऽशुभः सौम्यो बुधो भवति तादृशः पश्चाद्राश्यन्तेऽपि। यत उक्तम्–

[1]शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम्।इति।

एवं राश्याद्यन्तयोस्तुल्यफलमुपगीतिमात्राणां गणवत्। उपगीतिरार्या। तस्या मात्राणां ये गणाश्चतुर्भागास्तेषां यथाऽऽद्यन्तयोः समता तथा बुधस्य। अथवा यथा सत्सम्प्रयोगः सतां साधूनां सम्प्रयोगः समागमः। यादृगादौ भवति तादृगन्ते न कदाचिद्विरूपता। उपगीतिवृत्तमिदम्।

आर्याद्वितीयदलेत्याद्यस्या लक्षणम्। न्यासः प्रसिद्ध।।५०।।

आदि अर्थात् किसी राशि में प्रवेश के समय बुध ग्रह जिस प्रकार का शुभ अथवा अशुभफल को देता है, उसी प्रकार वह पश्चात् काल अर्थात् राशि के अन्तिमकाल में भी फल देता है। जैसाकि कहा गया है–

शशितनय बुध सम्पूर्ण समय एक समान फल देता है।

इस प्रकार राशि के आदि और अन्त में उपगीतिछन्द की मात्राओं के समान तुल्यफल देता है। उपगीति आर्याछन्द में उसकी मात्राओं में जो गण होते हैं, अर्थात् जो चार चरण रहते हैं। उनमें जिस प्रकार आदि और अन्त में समता रहती है, उसी प्रकार बुध ग्रह के फल में भी समानता समझनी चाहिये। अथवा जिस प्रकार सत्सम्प्रयोग अर्थात् साधुपुरुष का आगमन जिस प्रकार आरम्भ में होता है, उसी प्रकार अन्त में भी रहता है। अर्थात् आरम्भ और समाप्ति में कोई विभेद नहीं होता है। यह उपगीतिछन्द है।

इसका लक्षण 'आर्याद्वितीयदल' इत्यादि में वर्णित लक्षण के अनुसार है। इसका न्यास प्रसिद्ध है।।५०।।

अधुना जीवगोचरफलस्योपदेशेनार्यालक्षणमाह–

आर्याणमपि कुरुते विनाशमन्तर्गुरुर्विषमसंस्थः।
गण इव षष्ठे दृष्टः स सर्वलघुतां जनं नयति।।५१।।

अब गुरु के गोचरफल का कथन आर्याछन्द के लक्षण के द्वारा कहा जाता है–

जिस प्रकार विषम गण में स्थित अन्तर्गुरु वाला (मध्यगुरुवाला जगण) आर्याछन्द को और विषम स्थित (अप्रसन्न) गण में (देवताविशेष) उत्तम पुरुषों का भी नाश करता है। उसी तरह विषम स्थित गुरु राशि के मध्य भाग में उत्तम पुरुषों का भी नाश करता है। तथा जैसे आर्याछन्द के षष्ठ गण में स्थित जगण सर्वलघुत्व (चारों लघुता) को प्राप्त होता है। उसी तरह षष्ठ राशिस्थ गुरु, जन को सर्वलघुत्व (लोगों में गौरवहीन) करता है। यह आर्याछन्द है।।५१।।

---

१. बृहज्जातके २३ अध्यायस्य ६ श्लोकः।

२. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य ग्रहगोचराध्यायस्य, २ श्लोकटीका।

आर्याणां साधूनामपि गुरुर्जीवो विषमसंस्थोऽन्तर्मध्ये मध्यमराशौ मध्यभागे प्राप्तो विनाशं करोति, अशुभं फलं विदधाति। शुक्रोऽप्येवमेव वेदितव्यो गुरुग्रहणात्। यतः सोऽपि राशेर्मध्ये फलं ददाति। उक्तं च–

''गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ'' इति।

यथा गणो देवविशेषो यात्रायां गणयागविधावुक्तः–''अनर्चितास्ते नृपतिं सवाहनं विनाशयन्ति'' इत्यादि। स गणो विषमस्थोऽप्रसन्नः। आर्याणामपि विनाशं करोति। तद्वतिति। स एव गुरुः षष्ठे स्थाने गतो दृष्टः। जन्मराशेः षष्ठस्थानप्राप्तौ विलोकितश्च जनं पुरुषं सर्वलघुतां सर्वत्राल्पतां नयति। स पुरुषः सर्वत्र गौरवरहितो भवतीत्यर्थः। अथ द्वितीयोऽर्थो व्याख्यायते–आर्यावृत्तविशेषः। आर्याणामन्तर्गुरुर्जगणो दृष्टस्तत्र भवति। अथ तस्या गणे षष्ठे जकारः विषमसंस्थः प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमस्थानानामन्यतमस्थानस्थो विनाशं कुरुते। आर्या विनश्यति भज्यत इत्यर्थः। तदेतत् स्थानं सर्वलघुतां नयति। सर्वे तत्र चत्वार एव लघवो भवन्तीत्यर्थः। वृत्तमेतदार्या। तल्लक्षणम्–''द्व्यन्तान्तरादिगुरुभिः'' इति प्रागेव व्याख्यातम्।।५१।।

आर्य अर्थात् सज्जन पुरुषों को भी, विषम में स्थित, राशि के मध्य भाग में जाकर गुरु विनाश अर्थात् अशुभफल करता है। गुरु के साथ ही शुक्र का भी फल यह ही समझना चाहिये। क्योंकि वह भी राशि के मध्य में ही फल देता है। जैसाकि कहा गया है–

"गुरु और शुक्र किसी राशि के मध्य भाग में जाकर फलदायी होते हैं।"

जिस प्रकार गण अर्थात् देवता विशेष, जिनको यात्रा प्रकरण में गणयाग विधान के अन्तर्गत कहा गया है–"ये अपूजित होने पर वाहन सहित राजा का विनाश करते हैं" इत्यादि। वह गण विषमस्थ अर्थात् अप्रसन्न होने पर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ जनों का भी विनाश करता है। वही गुरु छठे स्थान में गया हुआ हो। अर्थात् जन्मराशि से षष्ठस्थान में जाकर जातक को सभी प्रकार से लघुता अर्थात् न्यूनता को प्राप्त कराता है। वह व्यक्ति सर्वत्र गौरवरहित अर्थात् अप्रतिष्ठित रहता है। उसका आर्याछन्द में द्वितीय अर्थ का निरूपण किया। जाता है। आर्याछन्द में अन्तर्गुरु अर्थात् जगण होता है। उसके छठे गण में विषमस्थ अर्थात् १,३,५,७ स्थानों में से किसी भी स्थान में होकर विनाश करते हैं। अर्थात् आर्याछन्द विनष्ट हो जाता है। वहाँ पर सभी स्थान सर्वत्र लघु होते हैं। अर्थात् वहाँ पर सभी मात्रायें लघु ही होती हैं। यह आर्या छन्द है। इसका लक्षण "द्वयन्तान्तरादि-गुरुभिः" इत्यादि में पहले ही कहा जा चुका है।।५१।।

अथ शुभाशुभग्रहयोः परस्परदर्शनाद् गोचरफलस्य निष्फलत्वं नर्कुटकेनाह–

अशुभनिरीक्षितः शुभफलो बलिना बलवा-
नशुभफलप्रदश्च शुभदृग्विषयोपगतः।
अशुभशुभावपि स्वफलयोर्व्रजतः समता–

मिदमपि गीतकं च खलु नर्कुटकं च यथा।।५२।।

शुभग्रह और अशुभग्रहों में परस्पर दृष्टि से गोचरफल का निष्फलत्व नर्कुटकछन्द में कहते हैं-

जैसे संस्कृत में नर्कुटक, प्राकृत में गीतक; ये दोनों छन्द समान प्रस्तार वाले हैं। उसी प्रकार बली शुभ फल देने वाला ग्रह, बली अशुभ फल देने वाले ग्रह से और बली अशुभ फल देने वाला ग्रह, बली शुभ फल देने वाले ग्रह से दृष्ट हो तो अपने-अपने शुभ और अशुभ फल की समता करते हैं। अर्थात् न शुभ न अशुभ किन्तु मध्यम फल देते हैं। यह नर्कुटक छन्द है।।५२।।

अशुभं गोचरफलं ददातीत्यशुभफलदः। तत्र शुभफलो ग्रहो बलवान् वीर्ययुक्तः सन् अशुभनिरीक्षतः। अशुभफलप्रदेन ग्रहेण बलिना वीर्ययुक्तेन निरीक्षितो दृष्टः। तथा च अशुभफलप्रदो ग्रहो बलवान् शुभफलप्रदस्यबलिनो दृग्विषये दर्शनगोचरे उपगतः प्राप्तः। तावशुभशुभप्रदावपि ग्रहौ स्वफलयोरात्मीयशुभाशुभफलयोः समतां तुल्यतां व्रजतो गच्छतः। न शुभं नाप्यशुभं फलं कुरुतः। शुभदर्शनादशुभफलस्य दुष्टं फलं विनश्यति, अशुभदर्शनाच्छुभस्य शोभनं फलं विनश्यति। यथा गीतकमिदं नर्कुटकं च छन्दसां समतां तुल्यतां व्रजतो गच्छतः। गीतकं प्राकृते। नर्कुटकं संस्कृते। तौ च तुल्यप्रस्तारौ तुल्यविरामावेव भवतः। खलुशब्दः पादपूरणे प्रकारार्थे वा। वृत्तमेतन्नर्कुटकम्। तल्लक्षणम्-

नजभजजा लगौ च यदि नर्कुटकं तु तदा।

नस्त्रिलघुः। जो मध्यगुरुः। भ आदिगुरुः। पुनर्जकारद्वयम्। अन्ते लघुगुरू।

न्यासः- न ज भ ज ज ल गु

---

१. मुहुरसौवपण्णवपअलालसोआपणहरवाणिसघपरिवथिअकोइलआ।
हुरसुधुददपाणणअणद्धणिक्खणिआमपीसअणाणपुस्तरहिमुहेखंणिआ।।

(इति क. पू.पाठः)

मुहुरसोवधणअपर्वरातसप्रलासिसामणहरयाणि सदपारेतर्ज्जिआ कोइलआ।
महुरसददमाणयद्वणिररकणिआसिसनपरणसापुणाहिआणमुहेखणिआ।।

(इति ग.पु. पाठः)

महुरशोववर्णे पलालितयामामाणहरवाणिसदपरितजीद्यकोपिलआ।
मिहरसवुण्णमाणपणदणिररकणिआशशिमअणपुरोहिअणमुहेकठणिआ।।

(इति घ. पु. पाठः)

महुरशौकपण्णपआलालसौआ मणहरबाणिसद्मपरिपथिअकौइवआ।
महुरसद्युन्नपाणणअणद्वरणणिरः खणिआ समिसअणाणपुष्णरहिआणमुहेःखणिश्रा।

(इति अ.पु. पाठः)

२. मधुराशोकपर्णप्रणयोज्ज्वलसौभगा मनोहरवाणिशब्दपरिपन्थिकोकिला।
मधुरसघूर्णमाननयनानार्द्धैर्निरीक्षणिका मयि शयनानां पुण्यरहितानां मुखेक्षणिका।।

||| |ऽ| ऽ|| |ऽ| |ऽ| | ऽ

एतदेव प्राकृते गीतकं ज्ञेयम्। यथा–

[१]महुरअसोअप्पणपणओज्जलसोहअआ

मणहरवाणिसद्दपरिपन्थिअकोइलआ।

महुरसघुण्णमाणणअणद्धणिरिक्खणिआ

मइ सअणाण पुण्णरहिआण मुहेक्खणिआ[२]।।इति।।५२।।

जो ग्रह गोचर का अशुभफल देता है उसको अशुभफलदायक कहा जाता है। वहाँ पर यदि शुभफलदायक ग्रह बलवान होता हुआ भी अशुभ ग्रह से देखा जाता हो। अर्थात् अशुभफलदायक बलवान ग्रह से दृष्ट हो, तथा अशुभफलप्रदायक किसी शुभफलप्रदायक ग्रह से दृष्ट हो रहा हो, तब ये दोनों शुभ एवं अशुभ फल प्रदायक ग्रह, अपने शुभाशुभ फलों में समतुल्य हो जाते हैं। अर्थात् न तो शुभ और न ही अशुभफल करते हैं। शुभग्रह से दृष्ट होने पर अशुभफलदायक दुष्ट फल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार अशुभग्रह के द्वारा देखे जाने पर शुभफल का विनाश हो जाता है। यथा यह गीतक एवं नर्कुटकछन्द एक समान तुल्यता को प्राप्त होते हैं। प्राकृत भाषा में गीतक छन्द और संस्कृत भाषा में नर्कुटक छन्द; इन दोनों में प्रस्तार एवं विराम समान ही होते हैं। मूल श्लोक का 'खलु' शब्द पादपूर्ति अथवा प्रकार अर्थ में प्रयुक्त है। यह नर्कुटकछन्द है।

नर्कुटकछन्द का लक्षण—नगण, जगण, भगण जगण, जगण तथा लघु और गुरु से नर्कुटक छन्द बनता है।

नगण अर्थात् तीन लघु, जगण अर्थात् मध्य गुरु, भगण अर्थात् आदि गुरु पुनः दो जगण अर्थात् दो बार मध्य गुरु तथा अन्त में लघु गुरु वर्ण हों तो नर्कुटक छन्द समझना चाहिये।

विशेष—नर्कुटक छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है। इस छन्द को प्राकृत भाषा का गीतक छन्द समझना चाहिये। जैसाकि–

मधुर अशोकपत्र के सदृश प्रणय से उज्ज्वल सौभाग्यशालिनी, कोयल के सदृश, मनोहर वाणी बोलने वाली मधुररस से परिपूर्ण अर्ध निमिलित नेत्रों से देखने वाली प्रियतमा, मुझ भाग्यहीन पुरुष के सो जाने पर, मेरे मुख को देखती रहती है।।५२।।

अधुना विबलस्य ग्रहस्य शुभगोचरफले नैष्फल्यं विलासेनाह–

नीचेऽरिभेऽस्ते चारिदृष्टस्य सर्वं वृथा यत् परिकीर्तितम्।

पुरतोऽन्धस्येव कामिन्याः सविलासकटाक्षनिरीक्षणम्।।५३।।

अब निर्बलग्रह के शुभगोचर फल की निष्फलता विलास छन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार अन्धे के सम्मुख कामयुक्ता स्त्री का विलास और कटाक्ष के साथ

देखना व्यर्थ होता है; उसी प्रकार नीच राशिगत, अस्त और शत्रुग्रह से दृष्ट ग्रह के जो शुभफल कहे गये है, वे सब निष्फल होते हैं। अर्थात् अशुभफल की वृद्धि होती है। यह विलासछन्द है।।५३।।

नीचे नीचराशौ स्थितस्य ग्रहस्य। अरिभे शत्रुक्षेत्रे वा स्थितस्य अस्ते सूर्यमण्डलेऽस्तं गतस्य। तथा यत्र तत्रावस्थितस्यारिदृष्टस्य शत्रुणावलोकितस्य। यत् फलं शुभं प्रकीर्तितमुक्तं तत् सर्वं वृथा निष्फलं भवति। अर्थादेवाशुभं फलं तत्रातिपुष्टं भवति। तथा च यवनेश्वरः–

द्विड्वेश्मगा नीचगृहस्थिता वा दुर्मार्गगाः सूर्यमनुप्रविष्टाः।
उक्तानि निघ्नन्ति शुभानि चैते फलान्यनिष्टान्यभिवर्धयन्ति।।

अत्रैव दृष्टान्तमाह–

पुरतोऽन्यस्येव कामिन्याः। यथा–कामिन्याः सञ्जातकामायाः स्त्रियाः। अन्धस्य नेत्रहीनस्य पुरतोऽग्रतः सविलासकटाक्षनिरीक्षणं वृथा। विलासो लावण्यम्। कटाक्षो नयनविभ्रमः। सह विलासकटाक्षाभ्यां यन्निरीक्षणमवलोकनं तत्। वृत्तमेतद्विलाससंज्ञम्। तल्लक्षणम्–

तो मो यगौ यस्याद्यपादे स्यात् तौ ज्गौ तथा यत्र च दृश्यते।
तदनु स्तौ मश्चतुर्थे स्यात् सससा ल्गु विलासमुदाहृतम्।।

यस्य प्रथमपादे तोऽन्तलघुः। मस्त्रिगुरुः। य आदिलघुः। अन्ते गुरुश्च। द्वितीये तोऽन्तलघुः। द्वौ तकारौ। जो मध्यगुरुः। अन्ते गुरुश्च। तृतीये सोऽन्तगुरुः। तोऽन्तलघुः। मस्त्रिगुरुः। चतुर्थे सकारत्रयमन्ते लघुगुरू।।५३।।

न्यासः–								
	त	म	य	गु	त	त	ज	गु
	ऽऽ।	ऽऽऽ	।ऽऽ	ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ
	स	त	म	स	स	स	ल	गु
	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽऽ	।।ऽ	।।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

नीच अर्थात् अपनी नीच राशि में स्थित ग्रह का तथा शत्रुराशि में स्थित अथवा सूर्य के द्वारा अस्तंगत ग्रह का तथा वहाँ पर स्थित शत्रु द्वारा अवलोकित ग्रह का, जो शुभफल कहा गया है, वह सभी व्यर्थ अर्थात् निष्फल हो जाता है। अर्थान्तर से यह समझना चाहिये कि उस ग्रह से प्राप्त होने वाला अशुभफल और भी अधिक परिपुष्ट हो जाता है। जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

शत्रुगृह में स्थित अथवा नीच राशिस्थ अथवा वक्री और सूर्य के द्वारा अस्तंगत ग्रह पूर्वकथित सभी शुभफलों का विनाश करते हैं, और वे अनिष्टफल की वृद्धि करते हैं।

इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कहा गया है–

जिस प्रकार कामोन्मत्ता कामिनी स्त्री का नेत्रहीन अन्धे के सम्मुख विलासपूर्ण कटाक्षपूर्वक देखना व्यर्थ होता है, विलास अर्थात् लावण्य (सौन्दर्य), कटाक्ष अर्थात् तिरछे नयनों से देखना। इस प्रकार से विलास और कटाक्ष के साथ अवलोकन करना व्यर्थ होता है। यह विलास संज्ञक छन्द है।

विलास छन्द का लक्षण–इसके प्रथम चरण में तगण, मगण, यगण और गुरु हो। द्वितीय चरण में दो तगण, जगण तथा गुरुवर्ण हो। तृतीय चरण में सगण, तगण, तथा मगण हो। और चतुर्थ चरण में तीन सगण तथा लघु, गुरु वर्ण हों तो विलास छन्द समझना चाहिये।

जिसके प्रथम चरण में तगण अर्थात् अन्त्य लघु, मगण अर्थात् तीन गुरु, यगण और लघु हो जिसके द्वितीय चरण में दो तगण अर्थात् अन्त्य लघु, तथा जगण और अन्त में गुरु वर्ण हो। जिसके तृतीय चरण में लघु तथा अन्त में मगण अर्थात् तीन गुरु वर्ण हों तथा जिसके चतुर्थ चरण में तीन सगण अर्थात् अन्त्य गुरु तीन बार तथा अन्त में लघु, गुरु वर्ण हों उसको विलास छन्द समझना चाहिये।।५३।।

विशेष–विलासछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

अथार्कसौम्ययोः फलं साम्यं संयोगवशेन। स्कन्धकस्यार्यागीत्या साम्यं वैतालीयस्य मागधिकया गाथाया आर्यया इत्येतदार्यागीत्याह–

सूर्यसुतोऽर्कफलसमश्चन्द्रसुतश्छन्दतः समनुयाति यथा।
स्कन्धकमार्यागीतिर्वैतालीयं च मागधी गाथाऽऽर्याम्।।५४।।

सूर्य और बुध के फलों की साम्यता, संयोग (युति) के कारण होती है स्कन्धकछन्द का आर्यागीतिछन्द के साथ साम्यता और वैतालीय छन्द का मागधिका छन्द के साथ तथा गाथा छन्द का आर्याछन्द के साथ साम्यता होती है यह कहते हैं–

शनि का फल सूर्य के समान होता है और बुध का फल संयुक्त ग्रह के अनुरूप जिस प्रकार से प्राप्त होता है, उसी प्रकार स्कन्धक का आर्या गीति छन्द के समान तथा वैतालीय छन्द का मागधी छन्द के साथ और गाथा छन्द की आर्या छन्द के साथ साम्यता होती है।।५४।।

आर्यागीति छन्द का विचार करते हैं–

सूर्यसुतः शनैश्चरः। अर्कफलसम आदित्यस्य गोचरफलेन सदृशः। येषु स्थानेषु तृतीयषष्ठदशमैकादशेषु शुभः सूर्यस्तेष्वेव सौरः। चन्द्रसुतो बुधश्छन्दन्तः समनुयाति। परचित्तग्रहणं लोके छन्द उच्यते। सौम्ययुक्तः सौम्यवत् पापयुक्तः पापवद्भवति। अथवा यत्र राशिगो भवति तत्र यावत् तिष्ठति तावच्छुभफलं करोति। यत्राशुभस्तत्राशोभनमेव फलं करोति। येन प्रकारेण स्कन्धकमार्यागीतिश्छन्दतः समनुयाति। संस्कृते याऽऽर्यागीतिः

स प्राकृते स्कन्धकः। एवं वैतालीयं मागधी छन्दतः समनुयाति। संस्कृते यद्वैतालीयं सा प्राकृते मागधी। गाथाऽऽर्यां छन्दतः समनुयाति। संस्कृते याऽऽर्या सा प्राकृते गाथा। आर्यागीतिनियमे तल्लक्षणम्–

गुर्वन्ताष्टमगणभागार्या पूर्वार्धसदृशसकलद्वितया।
आर्यैरार्यागीतिर्गीता सङ्गीतगीतिभिर्गीतविधौ।।

गुर्वन्तमष्टमं गणं भजते याऽऽर्या सा गुर्वन्ताष्टमगणभाक् तथोक्ता। पूर्वार्धेन प्रथमदलेन सदृशं तुल्यं द्वितयं शकलमपरमर्धं यस्याः सा पूर्वार्धसदृशशकलद्वितया। 'षष्ठोलो[1]लात् पदम्'' इत्यादि पूर्वस्मिन्नर्धे पथ्याया यदुक्तं तत् सर्वं यस्या आर्याया प्रथमेऽर्धे भवति। त्रिषु गणेषु पादः। द्वितीयेऽप्यर्धे षष्ठो गणो लघुरेको न भवति, किं च चतुर्मात्र एव। एवं भवति यस्यां साऽऽर्यैः पण्डितैरार्यागीतिरिति गीता कथिता। किंभूतैः? सङ्गीतगीतिभिः, सङ्गीता सम्यक् कथिता गीतिर्यैस्ते सङ्गीतगीतयः पण्डितास्तैः। गीतिविधौ गीतिविधाने। न्यासः प्रसिद्धः।

एतावदेव स्कन्धकलक्षणम्, यथा–

सअ ण विमद्दिअसिढिलं केसकलावं सुअन्धिअं अ वहमाणा।
ललणा कस्स ण हिअअं गिह्लसमअमलअपंक विइ हरइ तरुणि।।

वैतालीयलक्षणम्।

लाः षट् ल्गां नैधना अयुक्पादौऽष्टौ तु तथा समे च लाः।
न समोऽत्र परेण युज्यते नैते षट् च निरन्तरा युजोः।।

वैतालीयं नामेदं मात्रावृत्तमुच्यते। यस्य ला लघवः षट्। ते च किंभूताः? ल्गां नैधनाः। रलमध्यः। लघुगुरू। एतै ल्गां नैधनाः। निधने अन्ते भवाः। एषां षण्णां लघूनामन्ते। तथाभूतोऽयुक्पादः प्रथमस्तृतीयश्च। तथा युक्पादौ द्वितीयश्चतुर्थश्च समस्तस्मिन्। अष्टौ लाः। ते च ल्गां नैधना भवन्ति। न समोऽत्र परेण युज्यत इति। अत्रास्मिन् वैतालीयऽयुक्पादे प्रथमेषु षट्सु लघुषु। तथा युक्पादे प्रथमेष्वेवेवाष्टसु लघुषु समो द्वितीयचतुर्थादिको लघुः परेण तृतीयपञ्चमादिना सह न युज्यते न समस्यते न

---

१. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य गोचराध्याये २ श्लोकटीका।

२. तथा च प्राकृतपिङ्गलसूत्रे।

चउमत्ता अट्टगणा पुध्वद्धे उत्तद्ध होइ समरुश्रा।
सो खन्धश्रा विश्राणहु पिङ्गल पभणेइ मुद्धि बहुसंभेआ।।
चतुर्मात्रिका अष्टौ गणाः पूर्वार्धे उत्तरार्द्धे भवन्ति समरूपाः।
तं स्कन्धकं विजानीहि पिङ्गलः प्रमणति मुग्धे बहुसंभेदम्।।

३. शयनविमर्दितशिथिलं केशकलापं सुगन्धिन्तं च वहमाना।
तलना कस्य न हृदयं ग्रीष्मसमयमलयपङ्क इव हुरति तरुणी।।

तन्निमित्ता गुरुता सम्पद्यते इत्यर्थः। नैते षट् च निरन्तरा युजोः। एतेऽष्टौ लघवो युजोः पादयोर्द्वितीयचतुर्थयोरनियताः सन्ति। तेषां मध्ये षट् लघवो निरन्तरा गुरुणाद्रव्यवहिता न कर्तव्याः। सर्वे षट् लघव एव न रचनीया इत्यर्थः। युजोः पादयोर्नियमादयुजोरनियमः।

न्यासः–

ल	र	ल	गु
।।।।।।	ऽ।ऽ	।	ऽ
ल	र	ल	गु
।।।।।।।।	ऽऽ	।	ऽ

एतदेव मागधिकालक्षणम्। [१]किन्त्वत्र विशेषोऽयम् रेफलकारयोर्यथाक्रमं लकाररेफावादेशौ कार्याविति। यथा–

[२]परमागहिआ सुहासिणी कण्णाडी पिअकोइलालवा।
सुणअणरमणी अ मैढिली कलहोरू उकली मुहोण्णता।[३]।।

एवं गाथार्या। आर्याया यल्लक्षणं तद्गाथायाः। गाथालक्षणं [४]"द्वयन्तान्तरादिगुरुभिः" इत्युक्तम्। तदेव गार्थार्या। यथा–

[५]गाहाधिरूढकंठे मणहरसअणम्मि तुङ्गथोरथणी।
जण्णिद्दाअदि वाला सा णिद्दा मणसिता अवरा[६]।।इति।।५४।।

---

१. किन्त्वत्रेति प्रभृति कार्याविततीत्यन्तं केनचिदनभिज्ञेन प्रक्षिप्तमिति भाति।

२. परमाराहिआ सुहारिणी कल्हाजिअ कोइलालवा।
सुअणलमणीलमे इजौ कलाह सो कीलि मुहं उन्वत्रा।।(इति ग. पु. पाठः)।
परमा यदि आ सुहारिणी कण्हाडां जिअ कोइलालया।
वुअण लमिणी लमे इजा कहसो क्वालि गुह ए उ मूत्र।।
(इति विजयनगरसंस्कृतपुस्तकालयस्थपुस्तके पाठः)।
परमागहिआशुहारिणी काण्डाङिअकोइलालघांशु।
अनलमाणीलामेइजोकहणएकीलिस्त्रहम षडस्य।। (इति प्र. पु. पाठः)।

३. परमागाधिका सुभाषिणी कार्णाटी प्रियकोकिलालापा।
सुनयनरमणी च मैथिली कलभोरूरौत्कली मुखोन्नता।।

४. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य गोचरे- २ श्लोकस्य टीका।

५. गाहाधिरूणकणअठे मणहस्सअणस्मितुंगथोरथणी।
जंणिद्दायति वाला साणिद्दामणसउअपरम् ।। (इति प्र पुस्तके पाठः)।
गाहादिरूणकण्ठो मणहरसअणस्तिमतुंगयारौथणी।
जं णिद्दापति बाला साणिद्दामणि सत अपरं।। (अति क. पु पाठः)।
गाहा विजणकंचे मणहस्तसयणं मित्रयघोरयणी।
जणिद्वाययवालासाणिद्दामरणसअपरां ।। (इति ग. पु. पाठः)।

६. गाढाधिरूढकण्ठे मनोहरशयने तुङ्गस्थूलस्तनी।
यन्निद्राति बाला सा निद्रा मनस्विताऽपरा।।

सूर्यसुत अर्थात् शनि प्रायः सूर्य के फल के सदृश ही गोचर का फल देता है। जैसाकि तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश स्थानों में सूर्य शुभ होता है। उन्हीं स्थानों में सौर अर्थात् शनि भी शुभ फल देता है। चन्द्रसुत बुध छन्दतः अर्थात् दूसरे ग्रह के स्वभावानुसार फल देता है। छन्दशब्द को लोकभाषा में दूसरे के चित्त का ग्रहण करना अर्थात् दूसरे के मनोनुकूल होना कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि शुभग्रह से युक्त होने पर शुभ फल और पापग्रह युत होकर अशुभफल देता है। अथवा जिस राशि में शुभता को लिये हुए जब तक रहता है, तब तब तक शुभ फल करता है, और जब तक अशुभता के आश्रय में रहता है, तब तक अशुभफल विधायक होता है। जिस प्रकार स्कन्धक का आर्यागीति के साथ छन्दतः सादृश्य होता है। संस्कृतभाषा में जो आर्यागीति छन्द है वह प्राकृतभाषा में स्कन्धक कहा जाता है। इसी प्रकार वैतालीय छन्द का मागधी छन्द से सादृश्य होता है। संस्कृत भाषा में जो वैतालीय छन्द है, उसको प्राकृत भाषा में मागधी कहते हैं। इसीप्रकार गाथा छन्द का आर्या छन्द के साथ सादृश्य होता है। संस्कृत भाषा में जो आर्याछन्द है उसको प्राकृत भाषा में गाथा छन्द कहा गया है।

आर्यागीतिक छन्द का लक्षण–जिसका अष्टम गण गुर्वन्त हो उसको आर्या कहते हैं। जिसका पूर्वार्ध के समान द्वितीयार्ध हो, उसको छन्दःशास्त्र के विद्वानों ने आर्यागीति संज्ञा से सम्बोधित किया है।

आर्या उसको कहते हैं जिसका अष्टमगण गुर्वन्त होता है। पूर्वार्ध अर्थात् प्रथमार्ध के तुल्य द्वितीय शकल अर्थात् अपरार्ध हो उसको पूर्वार्ध सदृश द्वितीय शकल कहा गया है। पथ्या छन्द का जो लक्षण "षष्ठो लो लात् पदम्" इत्यादि पथ्याछन्द का पूर्वार्ध लक्षण कहा गया है। वह ही पूर्णतः जिस आर्या, के पूर्वार्ध में होता है। तीन गणों पर एक चरण होता है। द्वितीयार्ध में षष्ठ गण, लघु एक भी नहीं होता है। परञ्च चार मात्रा होती है। इस प्रकार से निर्मित छन्द को आर्या अर्थात् पण्डित जन आर्यागीति के नाम से कहते हैं। किस प्रकार के विद्वान्? संगीत अर्थात् सम्यक् प्रकार से जो गीति अर्थात् कथन करते हैं, इस प्रकार के गीतज्ञ पण्डितों के द्वारा इसको गीतिविधि अर्थात् गीति का विधान कहा गया है। इसका न्यास सुप्रसिद्ध है। स्कन्धकछन्द का लाक्षणिक उदाहरण इस प्रकार है–

शयन से विमर्दित होकर जो केश राशि शिथिल हो चुकी हो और जो सुगन्धित वायु को फैला रही हो, इस प्रकार की कामिनी नारी ग्रीष्मकालिक मलय चन्दन की भाँति तरुणी किसके हृदय का हरण नहीं कर लेती है?

वैतालीयछन्द का लक्षण–जिसमें छः लघु और जिसके अन्त में रगण और

---

१. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य गोचरे २ श्लोकस्य टीका।

लघु, गुरु हों जिसके विषम पाद में ८ लघु तथा उसके अन्त में लघु और गुरु होता है। इसमें समपाद से विषमपाद युक्त नहीं होता है। इसके मध्य का छः लघु निरन्तर अर्थात् गुरु से अव्यवहित नहीं करना चाहिए।

यह वैतालीय संज्ञकछन्द मात्रिक कहा गया है। जिसमें ला अर्तात् लघु मात्रा छः होती हैं। वे किस प्रकार से होती हैं? रगण अर्थात् लघु मध्य में और अन्त में लघु, गुरु रहेंगे। निधन अर्थात् अन्त में। इन छः लघुओं के अन्त में। इस प्रकार से अयुक् पाद अर्थात् प्रथम और तृतीयपाद, युक्पाद अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पाद जिसमें समान होते हैं। आठ लघु होते हैं और उनके निधन अर्थात् गुरु होते हैं। इसका समपाद विषम पाद से योजित नहीं होता है। इस वैतालीय छन्द के विषम पाद में प्रथम छः लघुओं में (समपाद अर्थात् २, ४), विषमपाद अर्थात् तृतीय, पञ्चम के साथ युक्त नहीं होता है। अर्थात् इनमें गुरुता का सम्पादन नहीं होता है। ये छः निरन्तर युक्त नहीं होते हैं। ये आठ लघु द्वितीय और चतुर्थपाद में नियत रहते हैं। इनके मध्य में छः लघु गणों की संरचना नहीं करनी चाहिये। युज् अर्थात् समपाद में जो नियम होता है वह अयुज् अर्थात् विषम पाद में नहीं रहता है।

विशेष—वैतालीयछन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

यही उपर्युक्त लक्षण मागधिका छन्द का भी होता है। परन्तु यहाँ पर यही विशेषता है कि रेफ और लकार को क्रमानुसार लकार और रेफ का आदेश होता है। यथा—

उदाहरण—मागधिका रमणी सुभाषिणी होती है। कर्णाटी अर्थात् कर्नाटक की नायिका की कोकिला ध्वनि होती है। मैथिली रमणी के नेत्र सुन्दर एवं विशाल होते हैं। मैथिली रमणी के नेत्र सुन्दर एवं विशाल होते हैं। उत्कल प्रदेशीया स्त्री की जांघे गज-शावक की सूँड़ के सदृश मांसल और चिकनी होती हैं।

आर्याछन्द का जो लक्षण विहित है वही लक्षण गाथाछन्द का भी समझना चाहिये। गाथा छन्द का लक्षण "द्वयन्तान्तरादिगुरुभिः" इत्यादिक सूत्र में कहा जा चुका है। इसी को गाथा-आर्या कहते हैं। यथा—

उदाहरण—उन्नत, पीन स्तनों वाली, नवयौवना, बाला, मनोहर शय्या पर प्रियतम के कण्ठ-प्रदेश का गाढ़ालिङ्गन कर जब सोती हो; उसी को निद्रा (शयन) कहते हैं। इससे भिन्न निद्रा तो केवल मन को समझाने के लिये होती है।।५४।।

अथास्तमितसौरस्यातिशयेनाशुभप्रतिपादनं फलं पथ्ययाऽऽर्ययाऽऽह—

सौरोऽर्करश्मियोगात् सविकारो लब्धवृद्धिरधिकतरम्।
पित्तवदाचरति नृणां पथ्यकृतां न तु तथाऽऽर्याणाम्।।५५।।

अस्तगत शनि के अशुभफल की अधिकता को पथ्या आर्याछन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार सूर्य की किरणों के संयोग से पित्त का प्रकोप बढ़ जाा है, उसी प्रकार सूर्य की किरणों के योग से अस्तगत शनि विकारयुक्त होकर अशुभफल देने में अधिक बढ़ता है तथा मनुष्यों को तापित करता है। किन्तु पथ्य भोजन करने वाले आर्यों को उस प्रकार अशुभ फल नहीं देता है। यह पथ्या आर्या छन्द है।।५५।।

सौरः शनैश्चरोऽर्कस्यादित्यस्य रश्मियोगात् किरणसङ्गतत्वादस्तमित्वाद्धेतोः सविकारो विकृतत्वं गतो भवति। सविकारो भूत्वा लब्धवृद्धिरशुभफलप्रदाने भवति। तदाधिकतरं नृणां पुंसां पित्तवदाचरति शरीरमुपतापयति। यथाऽर्करश्मिसंयोगात् सूर्यकिरणसन्तापनात् पित्तं धातुविशेषः सविकारो भवति। अधिकतरं प्रकोपमायाति। सविकारत्वाल्लब्धवृद्धि-र्भूत्वाऽधिकतरं भवति। आर्याणां साधूनां पथ्यकृतां पथ्याशिनां तु न, तथापि पीडा भवति। यतो मङ्गलाचारयुक्तानामित्यनेन ग्रहोपतापो न भवति, पथ्याशिना तु प्रकोपो न भवति। आर्येयं पथ्या। तल्लक्षणम्–

[१]द्वयन्तान्तरादिगुरुभिरित्यनेनार्याद्वयेन प्रागेव प्रदर्शितम्।इति।।५५।।

अस्तगत शनि के अशुभफल की अधिकता को पथ्या आर्याछन्द में कहते हैं–

सौर अर्थात् शनि सूर्य की किरणों के सामीप्य से अस्त हो जाता है। इसलिये वह सविकारअर्थात् विकारयुक्त हो जाता है और वह विकारयुक्त (अस्त) होने के कारण अशुभफल प्रदान करने में अधिक बलशाली होता है। वह मनुष्य को अधिकतर पित्त प्रकोप का विकार देता है। अर्थात् शरीर को संतप्त कर देता है। जिस प्रकार सूर्य-किरणों के संयोग से अर्थात् उसके ताप से पित्त धातु का प्रकोप बढ़ जाता है, और अधिक मात्रा में प्रकोप भोगना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि विकारयुक्त होने के कारण उसमें और अधिक अभिवृद्धि हो जाती है। तथा प्रकोप और अधिक मात्रा में प्रकट होता है। आर्य अर्थात् सज्जन पुरुष जो विचार-पूर्वक पथ्य भोजन का सेवन करते हैं उनको पित्त की पीड़ा नहीं होती है। क्योंकि पूर्व में कहा जा चुका है कि सदाचारयुक्त व्यक्तियों को ग्रहों का सन्ताप नहीं होता है। उसी प्रकार पथ्य भोजन करने वालों को पित्त-प्रकोप नहीं होता है। यह पथ्या आर्या छन्द है।

पथ्या आर्याछन्द का लक्षण–"द्वयन्तान्तरादि गुरुभिः" इत्यादि आर्याछन्द के दो कारिकाओं में पथ्या आर्याछन्द का लक्षण प्रस्तुत किया जा चुका है।।५५।।

अथ ग्रहसंयोगाच्चन्द्रफलविशेषं वक्त्रेणाह–

यादृशेन ग्रहणेन्दुर्युक्तस्तादृग्भवेत् सोऽपि।
मनोवृत्तिसमायोगाद्विकार इव वक्त्रस्य।।५६।।

---

१. बृहज्जातके २ अध्यायस्य १ श्लोकः।

ग्रहों के संयोग से चन्द्रमा के विशेष फल को वक्त्रछन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार मनोवृत्ति के संयोग से मुख का विकार, मनोवृत्ति के समान होता है। अर्थात् प्रसन्न मन रहने से प्रसन्नमुख तथा दुःखित मन रहने से उदास मुख रहता है, उसी प्रकार यादृश शुभाशुभ ग्रह मे युक्त चन्द्रमा होता है, तादृश शुभाशुभ फल करता है। अर्थात् शुभग्रह से युत चन्द्रमा शुभ फल तथा पापग्रह से युत चन्द्रमा पापफल करता है॥५६॥

इन्दुश्चन्द्रमा यादृशेन ग्रहेण शुभेन वाऽशुभेन युक्तस्तादृशः सोऽपि भवति। पापयुतः पापफलः, सौम्ययुतः शुभफल इत्यर्थः। मनोवृत्तिसमायोगाद्धेतोः। यतश्चन्द्रो मनः, उक्तं च–"[१]मनस्तुहिनगुः" इति। मनसो येन सह संयोगस्तादृगेव तदपि भवति। यथा मनोवृत्तिसमायोगाद्वक्त्रस्य मुखस्य विकारो भवति। वक्त्रस्य किल मनोवृत्ति-समायोगाद्विकार उच्यते। सुस्थिते मनसि प्रहृष्टं दृश्यते, दुःखिते दीनमिति। वृत्तमेतद्वक्त्रम्। तल्लक्षणम्–

रौ यदा गौ तु वक्त्रं स्याद् म्रौ गावन्य दृश्येते।
तृतीये चरणे य्सौ गौ जसौ गुरुरथो गः स्यात्॥

अस्य प्रथमपादे रौ गौ। रलमध्यः। द्वौ रेफौ। द्वौ गुरू। अन्यत्रं द्वितीये म्रौ गौ दृश्येते। मस्त्रिगुरुः। रलमध्यः। गुरुद्वयम्। तृतीये पादे य्सौ गौ। य आदिलघुः। सोऽन्तगुरुः। गुरुद्वयम्। चतुर्थे जसौ। जो गुरुमध्यः। सोऽन्तगुरुः। अन्ते गुरुद्वयम्॥५६॥

इन्दु अर्थात् चन्द्रमा जिस प्रकार के शुभ अथवा अशुभ ग्रह के साथ युत रहता है। वह तदनुसार ही फल प्रदान करता है। वह पापग्रह से युत होकर पापफल और शुभग्रह से युत होकर शुभफल देता है। इसमें मनोवृत्ति का संयोग ही कारण है। क्योंकि चन्द्रमा को मन कहा गया है। जैसाकि आचार्य ने श्रृहज्जातक के २/१ में उल्लेख किया है कि "चन्द्रमा मन" होता है। मन का जिसके साथ संयोग होता है। वह तदाकारकारित हो जाता है। मनोवृत्ति का जिस भाव के साथ संयोग होता है, तदनुसार ही उसके वक्त्र अर्थात् मुख की भाव-भङ्गिमा प्रकट होती है। मुख का निश्चित ही मनोवृत्ति के संयोग से जो भाव प्रकट होता है, उसको विकार कहते हैं। प्रसन्न मन में प्रसन्नता का भाव तथा दुःखित मन में दैन्यभाव दिखायी पड़ता है। यह वक्त्रछन्द है।

वक्त्रछन्द का लक्षण–इसके प्रथम चरण में र रगण, ल मध्य में दो अर्थात् रेफ और दो गुरु होते हैं। द्वितीय चरण में म्रौ गौ रहते हैं। मगण अर्थात् तीन गुरु, र ल मध्य और दो गुरु वर्ण होते हैं। तृतीयचरण में यसौ गौ। य (यगण) अर्थात् आदि लघु, स (सगण) अर्थात् अन्त्य गुरु, दो गुरु वर्ण होते हैं। चतुर्थचरण में जसौ अर्थात् ज (जगण) अर्थात् गुरु मध्य, स (सगण) अर्थात् अन्त्यगुरु तथा अन्तिम दो गुरु वर्ण

होते हैं।।५६।।

अथ दुःस्थितैर्ग्रहैर्नरस्य लघुता भवतीत्येतच्छ्लोकेनाह–

पञ्चमं लघु सर्वेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वल्लघुतां याति दुःस्थितैः।।५७।।

अशुभ ग्रहों से व्यक्ति की लघुता को श्लोकछन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार श्लोकछन्द के चारों पादों में पञ्चम तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में सप्तम अक्षर लघु होता है, उसी प्रकार प्रतिकूल ग्रहों से मनुष्य लघुता को प्राप्त करता है। यह श्लोकछन्द है।।५७।।

श्लोकाक्षरं श्लोकवृत्तस्य वर्णं यद्वद्येन प्रकारेण सर्वेषु चतुर्ष्वपि पादेषु पञ्चमं द्विचतुर्थयोः पादयोः सप्तमं च लघुता याति तद्वद्दुःस्थितैरननुकूलैर्ग्रहैर्लघुतां लघुत्वमगौरवभावं पुरुषो याति गच्छति। वृत्तमेतत् श्लोकाख्यम्। एतदेवोदाहरणम्।।५७।।

न्यासः–

ल		
ऽ।ऽ	।।ऽ	ऽऽ
ल		ल
ऽ।ऽ	।।ऽ	।ऽ
	ल	
ऽऽऽ	ऽ।ऽ	ऽऽ
	ल	ल
।।ऽ	ऽ।ऽ	।ऽ

श्लोकाक्षर अर्थात् श्लोक छन्द का वर्ण जिस प्रकार से सभी चारों चरणों में पञ्चम वर्ण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम वर्ण लघु अर्थात् लघुत्वयुक्त होता है। ठीक उसी प्रकार दुःस्थित अर्थात् प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा व्यक्ति लघुत्व अर्थात् अप्रतिष्ठा के भाव को प्राप्त करता है। यह श्लोकसंज्ञक छन्द है। इसका उदाहरण भी यही श्लोक है।।५७।।

विशेष व्याख्या–यहाँ पर प्रस्तुत श्लोकछन्द ही अनुष्टुप् छन्द के नाम से लक्षण ग्रन्थों में प्रचलित है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में प्रचलित छन्दों में इसका प्रथम स्थान माना गया है। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में "मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समा" इत्यादि के द्वारा इस छन्द को अवतरित किया है। इसी लिये प्राचीन आचार्यों ने कहा है–"शोकः श्लोकत्वमागतः"।

अथ सुस्थितैर्ग्रहैः पुरुषस्य सुस्थितत्वमाह–

प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्तबाह्ये व्यवस्थितः।
स याति गुरुतां लोके यदा स्युः सुस्थिता ग्रहाः।।५८।।

शुभस्थान में स्थित ग्रहों के द्वारा व्यक्ति की सुस्थिति को अनुष्टुपछन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार स्वभाव से लघु अक्षर भी वृत्तबाह्य (पादान्त) में व्यवस्थित होने से गुरु हो जाता है, उसी प्रकार जो पुरुष स्वभाव से लघु (दूषित कुल में उत्पन्न) और बृत्तबाह्य (बाह्येन्द्रिय) में व्यवस्थित है, अर्थात् दु:शील है। वह भी अनुकूल ग्रह आने पर लोगों में पूजित होता है। यह अनुष्टुप्छन्द है। इसका यही उदाहरण है।।५८।।

यः पुरुषः प्रकृत्या स्वभावेन लघु स्वल्पोऽसत्कुलप्रसूतः। तथा वृत्तबाह्ये बाह्येन्द्रिये व्यवस्थितो दु:शील इत्यर्थः। स तथाभूतोऽपि लोके गुरुतां पूज्यतां याति गच्छति। यदा सुस्थिताः शोभनस्थानस्था अनुकूला ग्रहाः स्युर्भवेयुः। छन्दसां प्रस्तारे परिभाषेयम्–यो वर्णः प्रकृत्यापि स्वभावत एव लघुरेकमात्रः। वृत्ताच्छन्दसो बाह्ये पादान्ते स्थितः स गुरुतां गुरुत्वं द्विमात्रत्वं याति। यदा सुस्थिता ग्रहा गणाश्चतुर्मात्रादिकाः स्युः येन प्रस्तारदोषो नोत्पद्यते तदा तस्य गुरुता कार्या, नान्यथेति। एकमात्रिक ऋजुरप्यन्ते वक्रो दीर्घो भवति। वृत्तमेतदपरमनुष्टुभं विन्द्यात्। एतदेवोदाहरणम्।।५८।।

जो व्यक्ति प्रकृति अर्थात् अपने स्वभाव से लघु अर्थात् हीन कुलोत्पन्न हो तथा वृत्तव्याह्य अर्थात् ऐन्द्रिक सदाचार से रहित हो अर्थात् शील रहित हो, ऐसा व्यक्ति भी लोक में गुरुता अर्थात् पूज्यता को प्राप्त कर लेता है, यदि उसका ग्रह शुभ स्थान में स्थित होकर अनुकूल हो। छन्दशास्त्र के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है– जो वर्ण, प्रकृत्या अर्थात् स्वाभाविक लघु अर्थात् एक मात्रिक होता है, वह भी वृत्त अर्थात् छन्द के वाह्य में अर्थात् चरण के अन्त में स्थित होकर गुरुत्व (द्विमात्रत्व) को प्राप्त कर लेता है। जब सुस्थित ग्रह हों अर्थात् चतुर्मात्रादि वर्ण व्यवस्थित हों, जिससे प्रस्तारदोष (लक्षण दोष) उत्पन्न न होते हों, तभी उसको गुरु करना चाहिये, अन्यथा नहीं। एकमात्रिक लघु वर्ण भी चरण के अन्त में वक्र अर्थात् दीर्घ होता है। यह अनुष्टुपछन्द का द्वितीय उदाहरण है।।५८।।

असुस्थितैर्यत् कर्म क्रियते तत् कर्तुश्चोपघातं करोतीत्येतद्वैतालीयेनाह–

प्रारब्धमसुस्थितैर्ग्रहैर्यत् कर्मात्मविवृद्धये बुधैः।
विनिहन्ति तदेव कर्म तान् वैतालीयमिवायथाकृतम्।।५९।।

अशुभस्थानस्थ ग्रहों के होने पर प्रारम्भ किये गये कार्य से कर्ता की हानि होती है, इसको वैतालीय छन्द में कहते हैं–

जिस प्रकार अविधान से वेताल सिद्धि के लिये किया हुआ कर्म साधकों का ही नाश करता है, उसी प्रकार पण्डित लोग असुस्थित दुष्ट ग्रहों के आने पर आत्म–

वृद्धि के लिये जिस कर्म का प्रारम्भ करते हैं, वह कर्म ही उनका नाश करता है। यह वैतालीय छन्द है॥५९॥

बुधैः पण्डितैः। यत् कर्म कार्यमात्मविवृद्धये आत्मनो वृद्ध्यर्थमसुस्थितैर्ग्रहैः प्रारब्धमाक्षिप्तम्।

[1]उदयसमये यःस्निग्धांशुर्महाप्रकृतिस्थितो
यदि च निहतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः।।
स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः।।इति।।

एतस्माद्विपरीतस्थिता असुस्थिता दुःस्थिताः। तैस्तथाभूतैर्यत् कर्म प्रारब्धं तदेव कर्म तान् बुधान् विनिहन्ति घातयति। आत्मविवृद्ध्यर्थमारब्धमात्मन एव हानिं करोति। यथा वैतालीयं वेतालनिमित्तं कर्म वैतालीयम्। अयथाकृतमविधानेन कृतं तानेव साधकान् हन्ति। यैरात्मविवृद्ध्यर्थं रसरसायनविधिविलासार्थं कृतमविधिना तानेव हन्ति। वृत्तमेतद्वैतालीयम्। तल्लक्षणम्–

[2]लाः षट् ल्गौ इत्यादि॥५९॥

बुध अर्थात् पण्डितजन आत्मोन्नति के लिये अर्थात् अपनी अभिवृद्धि के लिये जो कर्म अशुभस्थ ग्रहों के होने पर करते हैं, वह कर्म ही उनका विनाश करता है।

उदय समय में निर्मल, विपुल, स्वभाव स्थित, निर्घात, उल्का, धूलि तथा ग्रहयुद्ध से आहत, अपनी राशि में स्थित, उच्चगत या शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) से दृष्ट ग्रह जिनका स्वामी हो उनके लिये शुभ करने वाला होता है।

उपर्युक्त उद्धरण में शुभग्रह की सुस्थिति वर्णित है। इससे भिन्न अर्थात् इससे विपरीत स्थिति को अशुभस्थित अर्थात् दुःस्थित कहा जाता है। इस प्रकार की अवस्था आने पर जो कर्म आरम्भ किया जाता है वह कर्म ही उन कर्मसाधकों का विघात कर देता है। स्वयं की वृद्धि के लिये प्रारम्भ किया गया कर्म स्वयं को हानिकारक होता है। वेताल के निमित्त कृत् कर्म को वैतालीय कहते हैं। यह अयथाकृत अर्थात् विधिपूर्वक न किये जाने पर, उन साधकों का ही हनन करता है। जिनके द्वारा स्वयं के वर्धन हेतु रस-रसायन विधि का विलासपूर्वक प्रयोग अविधिपूर्वक किया जाता है, तब वह कर्ता का ही विनाश कर देता है। यह वैतालीयछन्द है।

वैतालीय छन्द का लक्षण–जिसमें छः लघु और जिसके अन्त में रगण और लघु गुरु हों। जिसके विषम पाद में आठ लघु तथा उसके अन्त में लघु और गुरु होता है। इसमें समपाद से विषमपाद युक्त नहीं होता है। इसके मध्य का छः लघु निरन्तर

---

१. द्रष्टव्योस्य ग्रन्थऽस्य १६ अध्याये ३९ श्लोकः।

२. द्रष्टव्यास्यैवाध्यास्य ५४ श्लोकटीका।

अर्थात् गुरु से अव्यवहित नहीं करना चाहिये॥५९॥

सुस्थितैर्ग्रहैर्यत् कर्म क्रियते तदल्पप्रयत्नेन सिद्ध्यतीत्येतदौपच्छन्दसिकेनाह–

सौस्थित्यमवेक्ष्य यो ग्रहेभ्यः काले प्रक्रमणं करोति राजा।
अणुनापि स पौरुषेण वृत्तस्यौपच्छन्दसिकस्य याति पारम्॥६०॥

शुभस्थानस्थ ग्रहों के होने पर जो कार्य किया जाता है वह अल्प प्रयत्न से सिद्ध होता है इसको औपच्छन्दसिक छन्द में कहते हैं–

सुस्थित ग्रहों को देखकर जो राजा शत्रु के ऊपर आक्रमण करता है, वह अल्प सैन्य से युत होने पर भी औपछन्दसिक वृत्त (वेदोक्त क्रिया) के पार जाता है। यह औपछन्दिसिक छन्द है॥६०॥

ग्रहाणां सुस्थितत्वमाचार्येणोक्तम्–

[१]उदयसमये यः स्निग्धांशुरित्यादि।

अमुमेवार्थं सिद्धार्थो यात्राकारः स्पष्टतरमाह–

स्वराशिं वा स्ववर्गं वा त्रिवर्गगृहाणि वा।
स्वोच्चं वा भवनं यातो विचरन् प्राकृतीं गतिम्॥
वपुष्मान् वर्णवान् भास्वान् बलैः सर्वैः समन्वितः।
बलिभिः कारकैर्मित्रैर्ग्रहैः समवलोकितः॥
दिवि भौमान्तरिक्षैश्च यश्चोत्पातैरपीडितः।
स्वजन्मस्थं च वर्गं च मार्गं चोपगतः शुभः॥
योऽनुकूलो विजेता वा स ज्ञेयः सुस्थितो ग्रहः।
यथोक्तविपरीतो यो विज्ञातव्यः सुदुःस्थितः॥

इत्येवं प्रकारं सौस्थित्यं ग्रहेभ्योऽवेक्ष्य निरूप्य काले यथोक्ते यात्राकाले प्रक्रमणं यात्रां करोति। यात्राकालोऽभिहित आचार्येणैव, तथा च–

यात्राऽजसिंहतुरगोपगता वरिष्ठा मध्या शनैश्चरबुधोशनसां गृहेषु।
भानौ कुलीरशशिवृश्चिकगेऽतिदीर्घा शस्ता तु देवलमतेऽध्वनि पृष्ठतोऽर्के॥

तथा–

यात्रा नृपस्य शरदीष्टफला मधौ च छिद्रे रिपोर्न नियमोऽत्र च केचिदाहुः।
छिद्रेऽप्यरेर्भवति दैवयुतस्य सिद्धिः सामान्यमामिषमिदं प्रतिभूमिपानाम्॥इति।

---

१. वृतरत्नाकरे ''पर्यन्तेर्यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्''।

२. चर्मोर्मिका इति पाठान्तरम्।

३. वन्यादीति पाठान्तरम्।

एवं यथोक्ते यात्राकाले यः प्रक्रमणं करोति राजा गमनमारभते, सोऽणुना स्वल्पेनापि पौरुषेण सैन्येन युक्तो भवति। तथाऽपि वृत्तस्यौपच्छन्दसिकस्य। वृत्तं क्रिया, औपच्छन्दसिकस्य वेदोक्तस्य वृत्तस्य पारं याति।

एतदुक्तं भवति—सर्वथा विजिगीषुणा सुस्थितैर्ग्रहैः स्वल्पतन्त्रेणापि यातव्यम्। तत्र गतो मानयशोवित्तं लभते। तथा च सिद्धार्थो यात्राकार आह—

मानमाज्ञायशोवित्तं सुस्थितैः प्रवसन् ग्रहैः।
विन्दते दुःस्थितैस्त्वेतैस्तद्विपर्ययमश्नुते।।

असुस्थितैस्तु पुनः पुष्टतन्त्रेणापि न यातव्यम्। अमुमेवार्थं नन्दी आह—

दैवोपहता यात्रा कथञ्चिदपि भवति यातुश्चेत्।
क्षितिपस्यानुपकारा सर्वस्य विनाशनीया स्यात्।।
तस्मादतिसामर्थ्ये प्रवर्तमानेऽपि दैवहीनेन।
यात्रोद्यमो न कार्यः स्वसुखोदयमिच्छता राज्ञा।।

वृत्तेमेतदौपच्छन्दसिकम्। तल्लक्षणम्—

[१]र्यावन्ते शेषमूर्धसाम्यादौपच्छन्दसिकं वदन्ति सन्तः।

रेफयकारावन्ते भवतः रलमध्यः। य आदिलघुः। शेषं लक्षणं वैतालीयसमम्। षण्मात्रा अयुकपादेष्टौ समे च। सन्तः पण्डिता वदन्ति कथयन्त्यौपच्छन्दसिकम्। न्यासः प्रसिद्धः।।६०।।

ग्रहों की स्थिति को आचार्य ने कहा है—

"उदय समय में निर्मल, विपुल स्वभाव स्थित" इत्यादि के द्वारा इस ग्रन्थ के अध्याय १६ श्लोक सं. ३९ में विस्तारपूर्वक कहा है।

इसी अर्थ को यात्राग्रन्थकार सिद्धार्थ ने सुस्पष्ट करते हुये कहा है—

अपनी राशि का, अथवा अपने वर्ग का, अथवा त्रिकोण स्थानगत, अथवा अपने उच्च का, अथवा अपने गृह का तथा अपनी स्वाभाविक मार्गी गति से चलता हुआ ग्रह, सुस्थित माना जाता है। पूर्ण बिम्ब का, वर्णयुक्त, तेजस्वी और सभी बलों से युक्त तथा बलीकारक ग्रहों एवं मित्र ग्रहों से अवलोकित दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष; इन तीनों उत्पातों से रहित, अपनी जन्मराशि का स्ववर्ग का और मार्गी होकर गमन करने वाला ग्रह शुभ कहा गया है। जो ग्रह अनुकूल हो, ग्रहों में विजेता हो, उसको सुस्थित ग्रह जानना चाहिये। इस कथन के विपरीत जो ग्रह हो, उसको दुःखित (अशुभ) जानना चाहिये।

इस प्रकार से सुस्थित ग्रहों को देख कर निर्धारित समय में यात्रा कालिक मुहूर्त में जो प्रयाण करता है, वह अनुकूलता प्राप्त करता है। आचार्य के द्वारा ही यात्राकाल

का निर्देश किया गया है। जैसा कि–

मेष, सिंह और धनु लग्न में यात्रा उत्तम होती है। शनि, बुध और शुक्र की राशि में मध्यम यात्रा होती है। जब सूर्य कर्क राशि में तथा चन्द्रमा वृश्चिक राशि में हो तब दीर्घकालिक यात्रा करनी चाहिये। आचार्य देवल के अनुसार सूर्य, यात्रा मार्ग के पृष्ठ भाग में शुभ होता है।

और भी कहा गया है–

राजा की यात्रा शरद् ऋतु तथा वसन्त ऋतु में शुभ होती है। कतिपय आचार्यों का कथन है कि शत्रु के वध में यात्रा का यह नियम नहीं रखना चाहिये। शत्रु के छिद्र अर्थात् दोषयुक्त होने पर सौभाग्यशाली राजा को सफलता मिलती है। यह शत्रु-राजा के साथ व्यवहार करने का सामान्य राजनैतिक सिद्धान्त है।

इस प्रकार निर्धारित यात्रामुहूर्त में जो राजा प्रक्रमण अर्थात् यात्रारम्भ (प्रयाण) करता है, वह अणु अर्थात् अल्पसंख्यक सैनिकों के द्वारा भी पराक्रमपूर्वक विजय प्राप्त करता है। वृत्त अर्थात् क्रिया, औपछन्दसिक अर्थात् वेदोक्त के फल को पूर्ण (प्राप्त) कर लेता है।

अधुनाऽऽदित्यदिने यानि कर्माणि कारयेत् तानि दण्डकपादेनाह–

उपचयभवनोपयातस्य भानोर्दिने कारयेद्धे-
मताम्राश्वकाष्ठास्थिचर्मौ[1]र्णिकाद्रिद्रुमत्वग्-
नखव्यालचौरायुधीयाटवीक्रूरराजोपसेवा-
भिषेकौषधक्षौम[2]पण्यादिगोपालकान्तार-
वैद्याश्मकूटावदाताभिविख्यातशूराहवश्लाघ्य-
याय्यग्निकर्माणि सिद्ध्यन्ति लग्नस्थिते वा रवौ।

अब रविवार को करणीय कर्मों को दण्डकछन्द के प्रथमपाद में कहते हैं–

जन्मराशि से उपचय (३,६,१०,११) भवन अथवा लग्न में, सूर्य स्थित हो तथा सूर्यवार (रविवार) हो तो सोना, ताँबा, घोड़ा, लकड़ी, हड्डी, चमड़ा, ऊनी वस्त्र, पर्वत, वृक्ष हड्डी, त्वचा, सीप, सर्प, चोर, खड्गसम्बन्धी, वन, क्रूर, राजा का आराधन, राजा आदि का अभिषेक, औषध, क्षौम, क्रय-विक्रय आदि, वन में उत्पन्न हुये, द्रव्यों के ग्रहण-पोषण आदि, गोपाल, मरुभूमि, वैद्य, पत्थर, दम्भ, सत्कुलोत्पन्न, कीर्तियुक्त, शूर, युद्ध में कथनीय, गमनशील, अग्निकर्म; इन सब वस्तुओं से सम्बन्धित कर्मों की सिद्धि होती है।

उपचयभवनोपयातस्येति। भानोरादित्यस्योपचयभवनोपयातस्य जन्मराशितस्त्रिषडेकादशदशमस्थानानामन्यतमस्थानस्थस्य दिने तद्वासरे कारयेद् विदध्यात्। हेम सुवर्णम्।

ताम्रमुडुम्बरम्। अश्वास्तुरगाः। काष्ठं प्रसिद्धं दारु। अस्थि प्रसिद्धम्। चर्म व्याघ्रादिचर्म। और्णिकः कम्बलः। चर्मोर्मिकेति पाठान्तरम्। ऊर्मिका जलधिवेला। अद्रिः प्रसिद्धः। द्रुमो वृक्षः। त्वक् प्रसिद्धो द्रव्यविशेषः, सुगन्ध द्रव्यम्। नखः शुक्तिः। व्यालः सर्पः। चौरस्तस्करः। आयुधः खड्गादिस्तस्मिन् हितमायुधीयम्। अटवी अरण्यम्। क्रूरं वञ्चनकर्म दुर्गादि। राजोपसेवा नृपाराधनम्। अभिषेको नृपादेः। औषधं भेषजम्। क्षौमः क्षुमासम्भवः। पण्यादि क्रयविक्रयम्। केचिद्वन्यादि पठन्ति। वने भवो वन्यः। तद्द्रव्याणां तज्जातानां वा प्राणिना ग्रहणपोषणादि। गोपालो गोरक्षकः। कान्तारो मरुभूमिः। वैद्यः कायचिकित्सकः। अश्मा पाषाणः। कूटं दम्भः। अवदातः सत्कुलजः। अभिविख्यातः कीर्तियुक्तः। शूरः संग्रामप्रियः। आहवश्लाघ्यः संग्रामे कथनीयः। यायी ग़मनशीलः। अग्निकर्माणि अग्न्याश्रितकार्याणि। एतेषां वस्तूनां संबन्धीनि यानि कार्याणि तानि रविदिने लग्नस्थिते प्रागलग्नगे वा रवौ सिद्ध्यन्ति। तथा च समाससंहितायाम्–

नृपाग्निपशुकर्माणि युद्धकार्याणि यानि च।
सूर्यस्य दिवसे प्राज्ञस्तानि सर्वाणि कारयेत्॥
तथा च यवनेश्वरः–
नृपप्रतिष्ठायुधयुद्धयोधहेमाग्निगोमूत्रभिषक्प्रयोगान्।
रवेर्दिने वन्यमृगार्दनादि प्रशस्यते द्विड्भयकृच्च कर्म॥
तथा च गर्गः–
क्रौर्यं शाठ्यं नृपाद्वेदं शत्रूणां चैव बन्धनम्।
अध्वानं च विवाहं च निधिकार्यं च कारयेत्॥
तनुशुद्धिसिराकर्म बडवाश्वविमोचनम्।
सर्वमेतद् यथोद्दिष्टं कारयेत् रविवासरे॥

भानु अर्थात् सूर्य उपचय स्थान अर्थात् जन्मराशि से ३,६,११,१० स्थानों में से किसी भी स्थान में स्थित हो तथा रविवार का दिन हो, तब निर्दिष्ट कार्यों को करें– हेम अर्थात् सुवर्ण, उडुम्बर अर्थात् ताँबा, अश्व, काष्ठ (लकड़ी), अस्थि अर्थात् हड्डी, व्याघ्रादि पशुओं का चमड़ा, और्णिक अर्थात् ऊनी कम्बल, ऊर्मिका अर्थात् समुद्र तटीय, अद्रि अर्थात् पर्वत, द्रुम (वृक्ष), त्वक् अर्थात् भोजपत्र आदि द्रव्य, सुगन्धित पदार्थ, नख अर्थात् सीप, व्याल अर्थात् सर्प, चोर (तस्कर), खड्ग आदि आयुधीय वस्तु, अटवी अर्थात् वन, क्रूर अर्थात् दुर्गादि से सम्बन्धित वञ्चनाकर्म, राजा की सेवा, राज्याभिषेक आदि, चिकित्साकर्म, क्षौम अर्थात् रेशमी वस्त्र, क्रय-विक्रय अर्थात् व्यापार सम्बन्धी कार्य, कुछ आचार्य वन्य अर्थात् जाङ्गल वस्तुओं को कहते हैं। अथवा जंगल में उत्पन्न द्रव्यों तथा वन्य प्राणियों का ग्रहण और पोषण कार्य, गोपाल अर्थात् गायों की रक्षा करने वाला, कान्तार अर्थात् मरुस्थल, वैद्य अर्थात्

कायचिकित्सक, अश्म अर्थात् पत्थर, कूट अर्थात् दम्भाभिमान, अवदात अर्थात् सुकुलीन, अभिविख्यात अर्थात् सुप्रसिद्ध, शूर अर्थात् युद्धप्रेमी, युद्ध में प्रशंसनीय, यायी अर्थात् यात्रा करने वाला, अग्निकर्म अर्थात् अग्नि से सम्बन्धी कार्य; इन वस्तुओं से सम्बन्धित जो भी कार्य हों उन्हें रविवार के दिन अथवा सूर्य के प्रथम लग्न में स्थित होने पर क्रियान्वित करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है–

राजा, अग्नि तथा पशु से सम्बन्धित कर्म और युद्ध से सम्बन्धित जो भी कार्य हो उनको बुद्धिमान पुरुष रविवार के दिन करे।

जैसा आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

राज्य-प्राप्ति, शस्त्र, युद्ध, सैन्य, सुवर्ण, अग्नि, गोमूत्र, चिकित्सा-कर्म तथा वन्य कर्म अर्थात् पशु-ग्रहण कर्म और शत्रुओं को भयभीत करने का उपक्रम रविवार को करना चाहिये।

इसी प्रकार आचार्य गर्ग ने भी कहा है–

क्रूरता, शठता, राजविग्रह, शत्रुबन्धन, यात्रा, विवाह और धन सञ्चय रविवार को करना चाहिये। शरीर संस्कार, शिरा मोक्षण कर्म (शिरावेधन कर्म), घोड़ी और घोड़े का मोक्षण इन सभी निर्दिष्ट कार्यों को रविवार में करना चाहिये।

अथ चन्द्रस्य दिने यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि द्वितीयदण्डकपादेनाह–

शिशिरकिरणवासरे तस्य वाप्युदगमे केन्द्र-
संस्थेऽथवा भूषणं शङ्खमुक्ताब्जरूप्याम्बु-
यज्ञेक्षुभोज्याङ्गनाक्षीरसुस्निग्धवृक्षक्षुपानूप-
धान्यद्रवद्रव्यविप्राध्वगीतक्रियाशृङ्गिकृष्यादि-
सेनाधिपाक्रन्दभूपालसौभाग्यनक्तञ्चर-
श्लैष्मिकद्रव्यमातुल्यपुष्पाम्बरारम्भसिद्धिर्भवेत्।

अब सोमवार को करणीय कर्मों को दण्डकछन्द के द्वितीय चरण में कहते हैं–

सोमवार को अथवा कर्क लग्न या केन्द्र में चन्द्रमा स्थित हो, तब भूषण, शङ्ख, कमल, चाँदी, जल, यज्ञ, इक्षु (गन्ना), भोज्य, स्त्री, दूध, सुस्निग्धवृक्ष (अखरोट आदि), तृण, जलप्रायदेश, धान्य, अवलेह, ब्राह्मण, मार्ग, गानकर्म, शृङ्गी (हरिण आदि), कृषि आदि, सेनाधिप, पार्ष्णिग्रह (पार्श्वरक्षक), राजा, जनप्रियता, रात्रिचर, कफ करने वाले द्रव्य, मामा का हित, फूल, वस्त्र; इन सब वस्तुओं से सम्बन्धित कर्मों की सिद्धि होती है।

शिशिरकिरणवासर इति। शिशिरकिरणश्चन्द्रस्तस्य वासरे दिने तस्य वाप्युदगमे

लग्नगते तस्मिन् लग्नगते तल्लग्ने कर्कटके वा केन्द्रसंस्थेऽथवा लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानामन्यतमस्थानस्थे। भूषणमलङ्करणम्। शङ्खः प्रसिद्धः। मुक्ता मुक्ताफलानि। अब्जं पद्मादि। रूप्यं रजतम्। अम्बु जलम्। यज्ञो यागः। इक्षुः प्रसिद्धः। भोज्यमशनम्। अङ्गना स्त्री। क्षीरं प्रसिद्धम्। सुस्निग्धवृक्षोऽक्षोटकादिः। क्षुपास्तृणानि। अनूपो बहूदकप्रदेशः। धान्यं शालयः। द्रवद्रव्यं लेह्यम्। विप्रो ब्राह्मणः। अध्वा पन्थाः। गीतक्रिया गानकर्म। शृङ्गिणो हरिणादयः। कृष्यादि वपनलवनादि। सेनाधिपश्चमूपतिः आक्रन्दो विजिगीषूणां पश्चात् पार्ष्णिग्राहः। पार्ष्णिग्राहस्य पश्चादाक्रन्दः। भूपालो राजा। सौभाग्यकरणं जनवाल्लभ्यम्। नक्तञ्चरो रात्रिचरः। श्लैष्मिकं द्रव्यं श्लेष्मिणो हितम्। मातुल्यं मातुलस्य हितं मातुल्यम्। पुष्पं कुसुमम्। अम्बरं वस्त्रम्। एतेषां संबन्धीनि यानि कार्याणि तेषां कार्याणामारम्भे सिद्धिर्भवेत्। तथा च समाससंहितायाम्—

जलस्त्रीराजकमार्णि मृदून्यन्यानि यानि च।
तानि चन्द्रदिने कुर्यात् शुक्लपक्षे विशेषतः।।

तथा च यवनेश्वरः—

स्त्रीसङ्गमालङ्करणाम्बरस्त्रग्रतिक्रियाहर्षसुखाश्रयांश्च।
कुर्वीत चन्द्रस्य दिने प्रदानयज्ञोत्सवान् रत्नरसार्जनं च।।

तथा च गर्गः—

उपभोगं तथा शय्यां नवमिश्रं गृहं चरेत्।
पचेद् घृतं च तैलं च संबन्धं चात्र कारयेत्।।
क्षुरकर्म तथा दानं गवां वेश्मप्रवेशनम्।
नृपसन्दर्शनं विन्द्यात् कुर्याच्चैव निवेशनम्।।
सर्वमेतद्यथोद्दिष्टं कुर्याच्चन्द्रदिने शुभे।।

शिशिर किरणवासर। शिशिरकिरण अर्थात् चन्द्रमा के वासर अर्थात् दिन में अथवा चन्द्रमा के लग्न में (कर्क) होने पर अथवा केन्द्र में स्थित होने पर अर्थात् १,४,७,१० स्थानों में से किसी भी स्थान में होने पर अलंकार, शङ्ख, मुक्ताफल अर्थात् मोती, अब्ज अर्थात् श्वेत कमल पुष्पादि, रुप्य अर्थात् रजत (चाँदी), अम्बु अर्थात् जल, यज्ञकर्म, इक्षु (गन्ना), भोज्य-पदार्थ, अङ्गना अर्थात् स्त्री-व्यवहार, क्षीर अर्थात् दुग्ध, सुस्निग्धवृक्ष अर्थात् अखरोट आदि के वृक्ष, क्षुप अर्थात् तृण (घास), अनूप अर्थात् दलदली भूमि, धान्य (धान) द्रवद्रव्य अर्थात् लेह्य पदार्थ (अवलेह), विप्र, मार्ग, गीतक्रिया अर्थात् गायन-वादन, हरिण आदि शृङ्गयुक्त पशु, कृषिकर्म अर्थात् बीज वपन और कर्तन, सेनाधिप अर्थात् सैन्यप्रमुख, आक्रन्द अर्थात् सैन्यप्रमुख, आक्रन्द अर्थात् विजयाभिलाषी राजा के पृष्ठभाग में सहायक मित्र राजा अथवा सैन्यदल, पार्ष्णिग्राह अर्थात् पृष्ठवर्ती सैन्यदल के पीछे आक्रन्द अर्थात् वह

राजा जो अपने मित्र राजा को दूसरे की सहायता करने से रोके, भूपाल अर्थात् राजा, सौभाग्यकरण अर्थात् जनप्रियता, नक्तचर अर्थात् रात्रिचर, श्लैष्मिकद्रव्य अर्थात् कफादि में हितकारी द्रव्य, मातुल्य अर्थात् मामा का हितसाधन, पुष्प और वस्त्र; इनसे सम्बन्धित जो भी कार्य हों, उन कार्यों को सोमवार को आरम्भ करने पर सफलता मिलती है। जैसा कि समाससंहिता में कहा गया है–

जल, स्त्री, राजकर्म और अन्य जो भी मृदु (कोमल) कर्म हों उन्हें सोमवार में करना चाहिये। शुक्लपक्ष का सोमवार विशेष सिद्धिदायक होता है।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने भी कहा है–

स्त्री-सहवास, अलंकरण, वस्त्र, माल्य, रतिकर्म, आनन्द, सुखभोग, दानकर्म, यज्ञ, उत्सव, रत्न और रसोत्पादन के कार्य सोमवार को करना चाहिये।

जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है–

किसी नये पदार्थ का उपभोग शय्या, नूतन पदार्थों का मिश्रण, गृहकर्म तेल और घी को पकाना तथा मैत्री कार्य सोमवार को करे। क्षौर कर्म, दान, पशुकर्म, गृह प्रवेश राजदर्शन, आवासीय कार्य; ये सभी संकेतित कार्य सोमवार के शुभ दिन में करने चाहिये।।

अथ भौमस्य दिने यानि कर्माणि तानि दण्डकतृतीयपादेनाह–

क्षितितनयदिने प्रसिद्ध्यन्ति धात्वाकरादीनि
सर्वाणि कार्याणि चामीकराग्निप्रवालायुध-
क्रौर्यचौर्याभिघाताटवीदुर्गसेनाधिकारास्तथा
रक्तपुष्पद्रुम रक्ता मन्यच्च तिक्तं कटुद्रव्यकूटा-
हिपाशार्जितस्वाः कुमारा भिषक्छाक्यभिक्षु-
क्षपावृत्ति१ कोशेशशाठ्यानि सिद्ध्यन्ति दम्भास्तथा।।

अब मंगलवार को करणीय कर्मों को दण्डकछन्द के तृतीयचरण में कहते हैं–

मंगलवार के दिन धातुओं के आकर (खदान) आदि से सम्बन्धित समस्त कार्य, सोना, अग्नि, मूँगा, शस्त्र, क्रूरता, चोरी, दूसरे के प्रति उपद्रव, वन, दुर्ग, सेनाधिप, रक्तपुष्प वाले वृक्ष, लाल पदार्थ, तिक्त (नीम आदि), कटुद्रव्य (मरीचादि), कूट, सर्प के बन्धन से उपार्जित धन वाले, कुमार, वैद्य, शाक्यभिक्षु (संन्यासी), रात्रि में कार्य करने वाले, कोषाध्यक्ष (खजानची), शठता, दम्भ; इन सब वस्तुओं से

---

१. कौशेय इति पाठान्तरम्।

सम्बन्धित कर्मों की सिद्धि होती है।

क्षितितनयदिन इति। क्षितितनयोऽङ्गारकस्तस्मिन् दिने प्रसिद्ध्यन्ति धात्वाकरादीनि धातूनामाकार उत्पत्तिस्थानम्। धात्वाकरादीनि सर्वाणि धातु द्रव्याणि। आदिग्रहणात् क्षालनं पाचनं च। चामीकरं सुर्वणम्। अग्निः प्रसिद्धः। प्रवालं विद्रुमम्। आयुधं खड्गादि। क्रौर्यं क्रूरत्वम्। चौर्यं स्तेयत्वम्। अभिघातः परोपद्रवः। अटवी अरण्यम्। दुर्गं गिरिजलदुर्गादि। सेनाधिकारास्तथा। तथा तेनैव प्रकारेण सेनाधिपत्यम्। रक्तपुष्पद्रुमा रक्तानि पुष्पाणि लोहितानि कुसुमानि येषां द्रुमाणां वृक्षाणाम्। रक्तं लोहितवर्णं यत्किञ्चित्। तिक्तं निम्बादि। कटुद्रव्यं मरिचादि। कूटैर्दम्भैः। अहिपाशैः सर्पबन्धैरर्जितं स्वं धनं यैः। कुमाराः प्रसिद्धाः। भिषग् वैद्यः। शाक्यभिक्षुः श्रमणकः। क्षपावृत्ती रात्रिवर्तनम्। कोशेशः, कोशो गञ्जस्तस्येशो नायकः केचित् कौशेयं पट्टमितीच्छन्ति। शाठ्यं शठभावः, परकार्यविमुखत्वम्। एतदाश्रितानि सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति संसिद्धिमायान्ति, तथा तैनैव प्रकारेण दम्भाः सिद्ध्यन्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

दुर्गग्रहणकर्माणि हेमकर्माणि यानि च।
तथा च पशुकमार्णि कुर्याद् भौमदिने नरः।।

तथा च यनवेश्वरः—

वधावरोधावृतडिम्बभेदाः स्तेयादिशस्त्रादिविषप्रयोगाः।
दिने कुजस्य ध्वजिनीनिवेशाः कार्याः सुवर्णाजपशुक्रियाश्च।।

तथा च गर्गः—

आयुधं कारयेत् प्राज्ञः पापकर्म तथैव च।
बन्धनाद्यानि कर्माणि लुण्ठनं तु क्षयादिकम्।।
षण्मुखस्यात्र कर्तव्या पूजा च शिखिकुक्कुटैः।
पूजयेदनलं चात्र यन्त्रकार्यं समारभेत।।
मन्त्रकर्म विवाहं च दिने भौमस्य वर्जयेत्।

क्षितितनय अर्थात् मंगल के दिन में ये कार्य सिद्ध होते हैं—धातुओं के आकर अर्थात् उद्‌भव स्थान, सभी प्रकार की धातुएँ, 'आदि' शब्द से शोधन और परिपाक संस्कार, चामीकर अर्थात् सुवर्ण, अग्निकर्म, प्रवाल अर्थात् मूँगा, तलवार आदि शस्त्र, क्रूरकर्म, चौरकर्म, अभिघात अर्थात् परपीडन, अटवी अर्थात् वन, दुर्ग अर्थात् पर्वतीय एवं जलीय राजप्रासाद, सेनाधिकरण तथा सेनाधिपत्य, रक्तपुष्प एवं रक्त पुष्प के वृक्ष, रक्तवर्णीय पदार्थ, निम्बादि तिक्त पदार्थ, मरिचादि कटु द्रव्य, कूट अर्थात् दाम्भिक कर्म, अहिपाश अर्थात् साँपों को पकड़ कर धन अर्जित करने वाले (सपेरे), कुमारों से सम्बन्धित कार्य, भिषक् अर्थात् चिकित्सक, शाक्यभिक्षु अर्थात् बौद्ध

संन्यासी, क्षपावृत्ति अर्थात् रात्रिसेवा, कोशेश अर्थात् कोषाध्यक्ष, कुछ लोगों के मत में कौशेय वस्त्र, शठता का भाव अर्थात् परोपकार रहित; इनसे आश्रित सभी कार्य सिद्ध अर्थात् सफल होते हैं। इस दिन अहंकार प्रवर्धक कार्य भी सिद्ध होते हैं। जैसाकि समास संहिता में कहा गया है–

इस कथन का अभिप्राय यह है कि विजय की कामना से सर्वथा ग्रहों के सुस्थित होने पर अल्प सैन्य बल रहने पर भी विजय प्रयाण करना चाहिये। सुभसमय में प्रयाण करने पर मान, यश और धन का लाभ होता है। जैसाकि यात्रा ग्रन्थकार आचार्य सिद्धार्थ ने कहा है–

मान, विजय, यश और धन का लाभ अनुकूल ग्रह स्थितियों में प्रयाण करने पर मिलता है। ग्रहों की दुःस्थिति होने पर इसके विपरीत परिणाम भोगने पड़ते हैं।

ग्रहों के अशुभ स्थान में स्थित होने पर प्रचुर सैन्य बल के होने पर भी प्रयाण नहीं करना चाहिये। इसी अभिप्राय को आचार्य नन्दी ने भी व्यक्त किया है–दैव से अर्थात् ग्रहयोग से बाधित होने पर किञ्चिद् यात्रा भी राजा के लिये अमंगलकारी और सर्वनाश करने वाली होती है। इसलिये पूर्ण सामर्थ्य होने पर भी दैवबल (ग्रहबल) नहीं रहने पर अपने सुख एवं विजय की कामना करने वाले राजा को प्रयाण (यात्रा) नहीं करना चाहिये।

यह औपछन्दिसिक नामक छन्द है।

औपछन्दिसिक छन्द का लक्षण–

रेफ और यकार अन्त में होते हैं। रेफ अर्थात् रगण अर्थात् मध्य लघु, यगण अर्थात् आदि लघु। शेष लक्षण वैतालीयछन्द के सदृश होते हैं। विषम पाद में छः मात्रा तथा समपाद में आठ मात्रा होने पर सन्त अर्थात् पण्डित प्रवर औपछन्दिसिक छन्द की रचना मानते हैं। इसका न्यास प्रसिद्ध है।।६०।।

दुर्ग का अधिग्रहण, सुवर्ण, संग्रह, पशु कर्मों को मंगलवार के दिन करना चाहिये।

इसी प्रकार, आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

हिंसा, घेरेबन्दी, झड़प, छोटे-मोटे झगड़े, चोरी, शस्त्र और विषप्रयोग, ध्वजारोहण, सुवर्ण तथा बकरे आदि पशु से सम्बन्धित कार्यों को मंगलवार में करे।

जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है–

शस्त्रकर्म, पापकर्म, बन्धन, लूट-पाट और विनाश कार्य, बुद्धिमान पुरुष

---

१. पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे ७ अध्यायस्य ३३ सूत्रानुसारेणास्य 'चण्डदृष्टिप्रपात' इति नाम।

२. पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे ७ अध्यायस्य ३४ सूत्रानुसारेण ''राजमाण्डव्यौ'' इति पाठःसाधुः।

मंगलवार को करे। इस दिन षड्मुख अर्थात् भगवान कार्तिकेय की पूजा मयूर और मुर्गे के द्वारा करे। इस दिन अग्नि की पूजा तथा यान्त्रिक कार्यों का आरम्भ करे। मंगलवार के दिन मन्त्रग्रहण तथा विवाह संस्कार कथमपि नहीं करने चाहिये।

अथ बुधस्य दिने यानि कार्याणि क्रियन्ते तानि दण्डकचतुर्थपादेनाह–

हरितमणिमहीसुगन्धीनि वस्त्राणि साधारणं
नाटकं शास्त्रविज्ञानकाव्यानि सर्वाः कलायुक्तयो
मन्त्रधातुक्रियावादनैपुण्यपुण्यव्रतायोगदूता-
स्तथाऽऽयुष्यमायानृतस्नानह्रस्वाणि दीर्घाणि
मध्यानि च च्छन्दतश्चण्डवृष्टिप्रयातानुकारीणि
कार्याणि सिद्ध्यन्ति सौम्यस्य लग्नेऽह्नि वा।।६१।।

अब बुधवार को करणीय कर्मों को दण्डकछन्द के चतुर्थचरण में कहते हैं–

बुधवार के दिन अथवा लग्न में हरितमणि (पन्ना), पृथ्वी, सुगन्धद्रव्य, वस्त्र, साधारण कार्य, नाटक, शास्त्र, विज्ञान, काव्य, समस्त कलाएँ, द्रव्यों का संयोग, मन्त्रक्रिया, धातुक्रिया किसी के साथ विवाद, निपुणता, पुष्य, व्रत ग्रहण, दूत, आयु के लिए हितकार्य, माया, मिथ्या, स्नान (पुण्यस्नान आदि) शीघ्र होने वाला कार्य, परचित्त ग्रहणपूर्वक प्रचण्ड वृद्धि में पदन्यास के अनुकरण करने वाला कार्य अर्थात् कोई ह्रस्व कोई दीर्घ और कोई मध्यम कार्य; इन सब वस्तुओं से सम्बन्धित कर्म की सिद्धि होती है।।६१।।

हरितमणीति। हरितमणीनां संबन्धः। अथवा हरितद्रव्याणां मणीनां च मही भूः। सुगन्धीनि सुगन्धद्रव्याणि। वस्त्राण्यम्बराणि। साधारणमुग्रं सौम्यं च। नाटकं नर्तनम्। शास्त्रं प्रसिद्धम्। विज्ञानमध्यात्मिकम्। काव्यानि प्रसिद्धानि। सर्वा निःशेषाः कला गीतवाद्यनृत्तचित्रलेपकर्मादि। युक्तयो द्रव्याणां योजनम्। मन्त्रक्रिया मन्त्रसाधनम्। धातुक्रिया धातुवादः। वादः परस्परं केनचित् सह वदनम्। नैपुण्यं निपुणता। पुण्यं धर्मक्रियानुसेवनम्। व्रतायोगो व्रतग्रहणम्। दूतो गमागमिकः। तथाऽऽयुष्यमायुषो हितं रसायनवाजीकरणनि। माया व्याजव्यवहरणम्। अनृतमसत्यम्। स्नानं मलापहं पुष्यस्नानादि वा। तथा यानि कार्याणि ह्रस्वाणि क्षिप्रकालकरणीयानि। दीर्घाणि चिरकालकरणीयानि। मध्यानि च शीघ्रं न चिरकालं करणीयानि। तथा छन्दतः परिचित्तग्रहणपूर्वकाणि चण्डवृष्टिप्रयातानुकारीणि कार्याणि। चण्डा चासौ वृष्टिः चण्डवृष्टिः। चण्डवृष्टौ प्रयातं गमनं यत् तदनुकारीणि तत्सदृशानि। तस्यां गमनं पदविन्यासः। कश्चिद्ध्रस्वः, कश्चिद् दीर्घः, कश्चिन्मध्यो भवति। मार्गस्य जलावृतत्वाच्छिथिलत्वात् पदविन्यासस्तथाविधो भवति। तदनुकारीणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति। सौम्यस्य बुधस्य लग्नेऽह्नि वा। तथा च समाससंहितायाम्–

स्वाध्यायशिल्पव्यायामकलाकर्मरतानि च।

तानि सौम्यदिने कुर्याद् यदि पापैर्न सङ्गतः।।

तथा च यवनेश्वरः–

स्वाध्यायसेवालिपिलेख्यशिल्पव्यायामनैपुण्यकलाविशेषाः।
इष्टिक्रियाः काञ्चनधातुयुक्तिवाग्युक्तिसन्धिप्रभुता बुधेऽह्नि।।

तथा च गर्गः–

बन्धयोधवधं सर्वं व्यायामं च विशेषतः।
नृपसेवा च यात्रा च तथैव क्रयविक्रयौ।।
वीरांश्च योजयेत् प्राज्ञो बद्धान् पाशांश्च मोचयेत्।
एवं मित्रं च शिष्यं च बन्धुभिः सह सङ्गमम्।।
आश्रमे च तथा भूमौ केदारे वपने तथा।
शिक्षेत रूपकर्माणि दिने चन्द्रसुतस्य च।।

आचार्येण चण्डवृष्टिप्रयातानुकारिणीत्यनेन चण्डवृष्टिप्रयातानां सर्वदण्डकानां लक्षणं प्रदर्शितम्। तथा च–

प्रथमक इह दण्डकश्चण्डवृष्टिप्रयातो भवेन्नद्वयेनाथ रैः सप्तभिः।
प्रतिपदमिह रेफवृद्धाः स्युरर्णार्णवव्यालजीमूतलीलाकरोद्दामशङ्खादयः।।

उत्कृतेरधिकाक्षरो दण्डकः। दण्डका नाम समासवृत्तविशेषा भवन्ति। येषां पादो द्वाभ्यां नकाराभ्यां सप्तभिश्च रेफैर्भवति। नस्त्रिलघुः। रलमध्यः। इहास्मिन् छन्दोलक्षणे प्रथमको दण्डकश्चण्डवृष्टिप्रयातसंज्ञः सप्तविंशत्यक्षरपादो भवति पिङ्गलादीनामाचार्याणां मतेन राजमाण्डव्यौ वर्जयित्वा। तयोस्तु मते एष सुवर्णाख्यः। तथा च तावूचतुः–

सुवर्णश्चण्डवेगश्च प्लवो जीमूत एव च।
बलाहको भुजङ्गश्च समुद्रश्चेति दण्डकाः।।

तथा च पाठान्तरम् –

अर्णोऽर्णवः प्लवश्चैव जीमूतोऽथ बलाहकः।
समुद्रश्च भुजङ्गश्च सप्तैते दण्डकाः स्मृताः।।

एवं नद्वयेन सप्तभिश्च रेफैश्चण्डवृष्टिप्रयातः। प्रतिपदमिह रेफवृद्धाः। इहास्मिन् लक्षणे पदं पदं प्रति प्रतिपदम्। रेफवृद्धा अन्ये स्युर्भवेयुः। एवं नद्वयेन अष्टभिश्च रेफैरर्णः। नवभिरवर्णवः। दशभिर्व्यालः। एकादशभिर्जीमूतः। द्वादशभिर्लीलाकरः। त्रयोदशभिरुद्दामः। चतुर्दशभिः शङ्खः। आदिग्रहणाद् रेफवृद्ध्याऽन्ये कल्पनीयाः। जलदं पद्मादि।

प्रचित इति कविभिवर्णितोऽस्मादिहोपान्तशेषात् त्रिकैरुत्तरैर्नद्वयाद्यैः।

इहास्मिन् लक्षणे प्रचित इति वर्णित उक्तः। अस्मात् पूर्वोक्ताल्लक्षणात् कविभिः

पण्डितैरिहास्मिन् प्रथमदण्डके उपान्ता गृहीता: त्रिका रेफा:। तैस्त्रिकै: शेषान्नकारद्वयादुत्तरै: परत: स्थित: सप्तभिर्यकारै:। अन्वर्थसंज्ञा चेयम्। प्रतिपदं रेफादिवृद्ध्योपचितत्वात् प्रचित इत्युच्यते। शेषरेफतोऽन्यैस्त्रिक: सप्तक:। आचार्येण नद्वयाद् रेफद्वात्रिंशता दण्डक उक्त:। अथ उपचयभवनोपयातस्येत्यस्य न्यास:। नद्वयं रेफा द्वात्रिंशत्।।६१।

हरितमणि अर्थात् रत्न सम्बन्धी कार्य अथवा हरित द्रव्यों और मणियों से सम्बन्धित भूमि, सुगन्ध द्रव्य, वस्त्र, सामान्यतया उग्र एवं सौम्य कार्य, नृत्य-नाटक, शास्त्राभ्यास, आध्यात्मिकज्ञान, काव्यशास्त्र, गीत-वाद्य नृत्य-चित्र-लेपनादि सम्पूर्ण कलाकर्म, युक्ति अर्थात् विविध द्रव्यों का संयोजन, मन्त्रसाधना, धातुकर्म, वाद अर्थात् परस्पर वार्तालाप, नैपुण्य अर्थात् किसी कार्य में महारथ प्राप्त करना, धार्मिक क्रियाओं से पुण्यार्जन, व्रतसंकल्प, गुप्तचरकर्म, आयुष्यवर्धक रसायन एवं वाजीकरण कर्म, माया अर्थात् धन प्रपञ्च, असत्य व्यवहार, स्नान अर्थात् शरीर शुद्ध्यर्थ पुष्यस्नानादि कार्य तथा जो कार्य ह्रस्व अर्थात् शीघ्र करने योग्य हों, दीर्घ अर्थात् अधिक काल में पूर्ण होने वाले कार्य, मध्यकार्य अर्थात् जो शीघ्र अथवा बहुत समय तक न चलने वाले कार्य हों तथा चण्डवृष्टि अर्थात् प्रचण्ड वर्षाकाल में यात्रा करने के सदृश, जिस स्थिति में गमन अथवा पदविन्यास विषम होता है। कुछ पर ह्रस्व कुछ दीर्घ तथा कुछ मध्यम पद प्रयुक्त होते हैं। अभिप्राय यह है कि मार्ग में पानी भर जाने से तथा पिच्छिल मार्ग के कारण पदविन्यास (पद संचरण) ह्रस्व, दीर्घ एवं मध्यम स्वरूप में होता है। इस प्रकार के कार्य बुधवार के दिन तथा बुध ग्रह के लग्न (३,६) में सिद्ध होते हैं। जैसाकि समास संहिता में कहा गया है–

स्वाध्याय, शिल्पकर्म, व्यायाम, कलाकारिता को बुधवार के दिन करना चाहिये। यह विचार लेना चाहिये कि उस समय बुध पापग्रह से युत न हो।

आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

स्वाध्याय, सेवाकार्य, लेखन, शिल्प, व्यायाम, नैपुण्य, विशिष्ट कला, यज्ञकर्म, सुवर्ण, धातु शोधन, वाणी का प्रयोग, सन्धि तथा राजकार्यों को बुधवार के दिन करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में आचार्य गर्ग ने कहा है–

बन्धन, युद्ध, बध, व्यायाम, राजसेवा, यात्रा, व्यापारकार्य बुधवार के दिन करना चाहिये। इस दिन शौर्यकर्म, बन्धनों का विमोचन, मित्रों, शिष्यों तथा बन्धुओं के साथ सम्मेलन आश्रम-भूमि तथा खेतों में बीजवपन और शृङ्गार कार्यों का अभ्यास; ये सभी कार्य बुधवार के दिन करने चाहिये।

आचार्य (वराहमिहिर) ने "चण्डवृष्टि-प्रयातानुकारिणी" इस वाक्य का प्रयोग कर दण्डक छन्द के सभी लक्षणों को प्रदर्शित किया है।

यदि दो नगण के पश्चात् सात रगण हों तो उसे "चण्डवृष्टि प्रयात" नामक दण्डकछन्द कहते हैं। सभी दण्डकों के आरम्भ में दो नगणों का होना आवश्यक है। उन दो नगणों के अनन्तर सात से अधिक एक-एक रगण बढ़ाते जायें तो क्रमशः अर्ण, आर्णव, व्याल, जीमूत, लीलाकर, उद्दाम और शङ्ख आदि संज्ञक दण्डकछन्द होते हैं। द्रष्टव्य छन्दोमञ्जरी द्वितीय स्तबक श्लोक संख्या १-२।

उत्कृतिछन्द से अधिक अक्षर दण्डकछन्द में होते हैं। दण्डकछन्द में सामासिक पद प्रयोग अधिक होते हैं। पाद में दो नगण तथा सात रगण होते हैं। नगण अर्थात् तीन लघु, रगण अर्थात् मध्य लघु। यहाँ पर दण्डकछन्द का प्रथम भेद चण्डवृष्टिप्रयात संज्ञक होता है। इसमें सत्ताइस अक्षरों का एक चरण होता है। पिङ्गलादि आचार्यों के मतानुसार राजमाण्डव्य छन्द इससे भिन्न होता है। उनके अनुसार यह सुवर्णसंज्ञक छन्द है। इनका कथन है–

सुवर्ण, चण्डवेग, प्लव, जीमूत, बलाहक, भुजङ्ग और समुद्र; ये दण्डकछन्द के भेद हैं।

इसमें पाठभेद निम्नलिखित मिलता है–

अर्ण, अर्णव, प्लव, जीमूत, बलाहक, समुद्र और भुजङ्ग नामक सात प्रकार के दण्डकछन्द होते हैं।

इस प्रकार दो नगण और सात रगण से चण्डवृष्टि प्रयात नामक दण्डकछन्द निर्मित होता है। प्रत्येक पद में रगण की वृद्धि होती है। इस लक्षण में पद-पद को प्रतिपद कहा गया है। रगण की वृद्धि से अन्य पद निर्मित होते हैं। इस प्रकार से दो नगण तथा आठ रगण से अर्ण, नौ रगण से अर्णव, दस रगण से व्याल, एकादश रगण से जीमूत, द्वादश रगण से लीलाकर, त्रयोदश रगण से उद्दाम तथा चतुर्दश रगण के द्वारा शङ्ख नामक दण्डक छन्द होता है। "आदि" शब्द के प्रयोग से रगण की वृद्धि होने पर अन्य जलज तथा पद्मादि दण्डकछन्दों की परिकल्पना करनी चाहिये।

इस लक्षण में प्रचित शब्द का अर्थ वर्णित है। पूर्वोक्त लक्षण में विद्वानों ने इस प्रथम दण्डक में उपान्त का ग्रहण किया है। तीन रगण के पूर्व दो नगण के पश्चात् स्थित सात यगण से छन्द निर्मित होता है। इनकी नामानुसार संज्ञा है। प्रत्येक पद में रगण की वृद्धि अर्थात् उपचित होने से इसको 'प्रचित' कहा गया है। शेष रगण से अन्य त्रिक अर्थात् सप्तक बनता है। आचार्य ने दो नगण के पश्चात् बत्तीस रगण के प्रयोग पर्यन्त दण्कछन्द कहा है। पूर्व में "उपचयभवनोपयातस्य" के कथन में इसका न्यास प्रदर्शित किया गया है। इसमें दो नगण तथा बत्तीस रगण प्रयुक्त है॥६१॥

अथ बृहस्पतिदिने यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि वर्णकदण्डकेनाह–

सुरगुरुदिवसे कनकं रजतं तुरगाः
करिणो वृषभा भिषगौषधयः।
द्विजपितृसुरकार्यपुरःस्थितघर्म-
निवारणचामरभूषणभूपतयः।।
विबुधभवनधर्मसमाश्रयमङ्गल-
शास्त्रमनोज्ञबलप्रदसत्यगिरः।
व्रतहवनधनानि च सिद्धिकराणि
तथा रुचिराणि च वर्णकदण्डकवत्।।६२।।

अब बृहस्पतिवार को करणीय कर्मों को वर्णक दण्डकछन्द के द्वारा कहते हैं–

बृहस्पतिवार के दिन सोना, चाँदी, घोड़ा, हाथी, बैल, वैद्य, औषधि, ब्राह्मणों का तर्पण, पितृश्राद्ध, देवताओं का कार्य, पुरःस्थित (पदाति), छत्र, चामर, भूषण, राजा, देवगृह, देव-प्रतिष्ठा, गृह प्रतिष्ठा धर्माश्रय, मंगल, शास्त्र, सुन्दर, बलप्रद, सत्यवचन, व्रत (चान्द्रायण आदि आकृति) हवन, धन; इन सभी वस्तुओं से सम्बन्धित कार्य वर्णक (सर्प आदि) से युत मनोहर दण्ड की तरह सिद्ध और सुन्दर होते हैं। यह वर्णकदण्डकछन्द है।।६२।।

सुरगुरुदिवस इति। सुरुगुरुदिवसे बृहस्पतिदिने कनकं सुवर्णम्। रजतं रौप्यम्। तुरगा अश्वाः। करिणो हस्तिनः। वृषभा दान्ताः। भिषग्वैद्यः। ओषधयः प्रसिद्धाः। अथवा भिषगोषधयो वैद्यप्रणीतानि द्रव्याणि। द्विजानां ब्राह्मणानां तपर्णम्। पितृणां श्राद्धम्। सुराणां देवानां च कार्याणि। पुरःस्थितोऽग्रस्थितः पदातिः। धर्मनिवारणं छत्रादिकम्। चामरं वालव्यजनम्। भूषणमलङ्करणम्। भूपतयो राजानः। विबुधभवनं देवगृहम्। अथवा विबुधानां प्रतिष्ठा। भवनानां गृहाणां च प्रतिष्ठा। धर्मसमाश्रयो धर्मश्रयणम्। मङ्गलं शुभकार्यम्। शास्त्रं प्रसिद्धम्। मनोज्ञश्चित्ताह्लादकः। बलप्रदं मांसाद्याहारः। सत्यगिरः सत्ययुक्ता वाचः। व्रतं चान्द्रायणादि। हवनमग्नौ। धनं वित्तम्।एवमादिकानि संबन्धीनि यानि कर्माणि सिद्धिकराणि सिद्धिप्रदानि। तथा रुचिराणि श्रेष्ठानि चान्यानि। कथं रुचिराणि? वर्णकदण्डकवत्। वर्णकेन नागादिना यथा रुचिरं स्फुटतरं दण्डकं तद्वद्यानि रुचिराणि। एतद्वर्णकदण्डकं नाम दण्डकं नद्वयेन सप्तभिर्भैर्गुरुणा च।

न्यासः–	न	न	भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	गु
	।।।	।।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ

तथा च समाससंहितायाम्–

शान्तिपौष्टिककर्माणि तथा ज्ञानाश्रितानि च।
तानि कृत्स्नं विधेयानि दिने देवगुरोः शुभे।।

तथा च यवनेश्वर:-

दिने गुरोर्धार्मिकपौष्टिकेज्याबोध्याभिधेयक्रतुमुण्डनादि।
क्रियाश्रिता धर्मसुवर्णवस्त्रदेहाश्रयाश्वाश्वरथाश्रयाश्च॥

तथा च गर्ग:-

यज्ञं च विविधं कुर्यात् तपांसि च विशेषत:।
यज्ञे यज्ञे तपस्तेपे छादयेत् कारयेद् गृहम् ॥
आरभेद् भारतं चेदं ज्यौतिष च विशेषत:।
ग्राहयेन्नववस्त्राणि यात्रां दद्यान्नृपस्य च।
आदिशेच्च व्रतं पुत्रे बीजान् सर्वांश्च वापयेत्।
योजयेच्छकटं चात्र दिने देवगुरो: शुभे॥इति॥६२॥

सुरगुरुदिवस अर्थात् बृहस्पतिवार के दिन सुवर्ण, रजत, अश्व, हाथी, बैल, चिकित्सक, औषधि अथवा वैद्य द्वारा निर्मित औषधीय द्रव्य, ब्राह्मणों का सत्कार, पितरों का श्राद्ध तथा देवता सम्बन्धी कार्य, पदसेना का प्रयाण, धार्मिक कार्य, छत्र, चँवर, अलंकरण, राजदर्शन, विबुधभवन अर्थात् देवालय अथवा देव-प्रतिष्ठा, गृह-प्रतिष्ठा, धार्मिक आयोजन मांगलिक शुभ कार्य, शास्त्र-स्वाध्याय, मनोरंजन, शक्तिवर्धक आहार, सत्यकथन, चान्द्रायणादि व्रतग्रहण, हवन कर्म और धन से सम्बन्धित कार्य; इन सभी वस्तुओं से सम्बन्धित कार्य गुरुवार के दिन सिद्ध होते हैं। तथा अन्य रुचिकर श्रेष्ठ कर्म सिद्ध होते हैं। किस प्रकार के रुचिकर वर्णकदण्डक के समान, वर्णक अर्थात् नागदन्तादि के द्वारा सुशोभित दण्ड के समान रुचिकर। यह वर्णकदण्डक नामक छन्द है। जिसमें दो नगण, सात भगण तथा अन्तिम गुरु वर्ण होता है।

विशेष—वर्णदण्डक छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है। जैसाकि समास संहिता में कहा गया है-

गुरुवार के दिन शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म तथा अध्ययन सम्बन्धी कार्य; इन सभी शुभकर्मों को करना चाहिये।

जैसा कि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है-

गुरुवार के दिन धार्मिक, पौष्टिक, यज्ञ, ज्ञानाभिधेय (ज्ञानविषयक), हवन, मुण्डन, कार्यारम्भ, धर्म, सुवर्ण, वस्त्र, शरीर-शोधन और घोड़ा तथा रथ से आश्रित कार्यों को सम्पादित करे।

जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है-

विविध प्रकार के यज्ञ तथा तपस्या कर्म, अनेक यज्ञ तथा तप:क्रिया और गृह का आच्छादन सम्बन्धी कार्य करे। महाभारत का पाठ, विशेष रूप से ज्योतिष शास्त्र

का कार्य आरम्भ करे। नतून वस्त्र धारण, यात्रा और राजदर्शन, पुत्रों का यज्ञोपवीत, सभी प्रकार के बीजों का वपन करे। साथ ही बृहस्पति के शुभ दिन में हवन सम्बन्धी कार्य करे॥६२॥

अथ शुक्रदिने यानि कार्याणि क्रियन्ते तानि समुद्रदण्डकप्रथमार्द्धेनाह–

भृगुसुतदिवसे च चित्रवस्त्रवृष्यवेश्य-
कामिनीविलासहासयौवनोपभोगरम्यभूमयः।
स्फटिकरजतमन्मथोपचारवाहनेक्षुशारद-
प्रकारगोवणिक्कृषीवलौषधाम्बुजानि च॥

भृगुसुतदिवस इति। भृगुसुतदिवसे शुक्रदिने च। चित्रं चित्रकर्म। वस्त्रमम्बरम्। वृष्यप्रयोगो रेतोवृद्धिकरः। वेश्या पण्यस्त्री। कामिनी कामसक्ताङ्गना। विलासः क्रीडनम्। हास उपहासः। यौवनोपभोगा रतादिः। रम्या रमणीया भूमय उपवनादि। स्फटिकः स्फटिकोपलम्। रजतं रौप्यम्। मन्मथोपचारः कामोपचरणम्। वाहनमश्वादि। इक्षुः प्रसिद्धः। शारदप्रकारो धान्यानि। वणिक्कर्माणि। कृषिकर्माणि। औषधं प्रसिद्धम्। अम्बुजं जलजं पद्मादि। एतानि कार्याणि। तथा च समाससंहितायाम्–

कलागन्धर्वकर्माणि रत्नकर्माणि यानि च।
तानि कार्याणि दिवसे सदा दैत्यगुरोः शुभे॥

तथा च यवनेश्वरः-

गान्धर्वविद्यामणिरत्नगन्धगोभूमिशय्याम्बरभूषणानाम्।
स्त्रीपण्यकोशोत्सवनन्दनानां क्रियाविधिः शुक्रदिने प्रशस्तः॥

तथा च गर्गः–

गजमश्वं प्रयुञ्जीत कर्णबन्धे नियोजयेत्।
पिबेत् सुरां च मद्यं च प्रचरेत् कुसुमाम्बरम्॥
गन्धांश्च विविधानद्यात् कामयेच्च वराङ्गनाः।
द्यूते च सहसा प्रीतिं तिलं तैलं च योजयेत्॥
मङ्गलं स्थापयेदेव रोपयेच्चैव पादपान्।
सर्वमेतद्यथोदिष्टं कुर्याच्छुक्रदिने शुभे॥

अब शुक्रवार को करणीय कर्मों को समुद्रदण्डक छन्द के प्रथमार्ध द्वारा कहते हैं–

शुक्रवार के दिन में चित्रकर्म, वस्त्र, वीर्यवृद्धि के लिए प्रयोग, वेश्या, कामासक्त स्त्री, विलास, उपहास, यौवनोपभोग (स्त्री प्रसङ्ग आदि), चाँदी, कामदेव का उपचार, वाहन, इक्षु (गन्ना), शारदीय धान्य, वाणिज्य, खेती, औषध, जलज

(कमल आदि); इन वस्तुओं से सम्बन्धित कार्य सिद्ध होते हैं॥

भृगुसुत अर्थात् शुक्र के दिन में चित्रकर्म, वस्त्र, वृष्यप्रयोग अर्थात् शुक्र वृद्धिकारक कर्म, वेश्या, स्त्री, हास-विलास, रति आदि यौवनोपभोग, उद्यान आदि रमणीय क्षेत्र, स्फटिक रत्न, रजत, कामोपचार, अश्वादि वाहन, इक्षु (गन्ना), शरद् ऋतु में उत्पन्न धान्य, व्यापार कर्म, कृषिकर्म, औषधि, अम्बुज अर्थात् जलीय उत्पाद कमल आदि; इनसे सम्बन्धित कार्यों को करे। जैसाकि समाससंहिता में कहा गया है–

कलाकर्म, गीत-वादन आदि गन्धर्वकर्म तथा रत्न सम्बन्धी कार्यों को शुक्रवार में करना चाहिये।

जैसा कि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है–

गन्धर्वविद्या, मणि, रत्न, गन्ध, गो, भूमि, शय्या, वस्त्र, आभूषण, स्त्री, व्यापार, कोषागार, जन्मोत्सव आदि कार्यों को शुक्रवार के दिन प्रशस्त कहा गया है।

जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है–

हाथी, घोड़े का प्रयोग एवं उनका कर्णबन्धन सुसज्जित करे। सुरा और मद्य का पान तथा पुष्प एवं वस्त्र को धारण करे। विविध प्रकार के गन्धों का अनुलेपन एवं कामिनी स्त्री का साहचर्य करे। द्यूतक्रीड़ा में आसक्ति और तिल के तेल का उपयोग करे। माङ्गलिक चिह्नों की स्थापना एवं वृक्षारोपण इत्यादि सभी कथित कार्यों को शुक्रवार के शुभ दिन में करे॥

अथ सौरस्य दिने यानि कर्माणि क्रियन्ते तानि समुद्रदण्कापरार्धेनाह–

सवितृसुतदिने च कारयेन्महिष्यजोष्टकृष्ण-
लोहदासवृद्धनीचकर्मपक्षिचौरपाशिकान् ।
च्युतविनयविशीर्णभाण्डहस्त्यपेक्षविघ्नकारणानि
चान्यथा न साधयेत् समुद्रगोऽप्यपां कणम् ।।६३।।

अब शनिवार को करणीय कर्मों को समुद्र दण्डकछन्द के अपरार्ध द्वारा कहते हैं–

शनिवार के दिन भैंस, बकरा, ऊँट, कृष्ण लोह (शस्त्र, आयुध आदि),भृत्य वृद्ध, नीच, पक्षी, बन्धन आदि को जानने वाले, नम्रता से रहित, खण्डित पात्र, हाथी का ग्रहण आदि, विघ्न के कारण; इनसे सम्बन्धित सभी कार्यों की सिद्धि होती है। इन पूर्वोक्त विषयों को छोड़कर समुद्र में जाने पर भी जल बिन्दु की प्राप्ति का प्रयास न करे यह समुद्र दण्डक छन्द है॥६३॥

सवितृसुतदिन इति। सवितृसुतदिने शनैश्चरदिवसे च कर्माणि कारयेत्। महिषी

---

१. द्रष्टव्यास्य ग्रन्थस्य १०३ अध्याये २ श्लोकस्य टीका।

प्रसिद्धा। अजश्छागः। उष्ट्रः करभः कृष्णलोहः शस्त्रायुधादि। दासः कर्मकरः। वृद्धो गतवयाः। नीचः कुलाधमकर्मकृत्। पक्षी श्येनादि। चौरस्तस्करः। पाशिकाः पाशबन्धनादिविदः। च्युतविनयो नीचः। विशीर्णभाण्डं भिन्नभाण्डम्। हस्त्यपेक्षा हस्तिनोऽपेक्षा। हस्त्यपेक्षा ग्रहणादि। विघ्नकारणानि यानि निमित्तानि च कार्याणि एतदाश्रितानि च सर्वाणि सिद्ध्यन्ति। एतानि वर्जयित्वाऽन्यथाऽन्येन प्रकारेण समुद्रगोऽपि सागरप्राप्तोऽप्यपां कणं जलबिन्दुमपि तस्मात् सागरान्न साधयेत्। समुद्रसंज्ञं दण्डकमेतत्।

अत्र नद्वयात् परतः पञ्च रेफा जकारान्तरिता भवन्त्यन्ते लघुगुरू।

न्यासः–

न	न	र	ज	र	ज	र	ज	र
।।।	।।।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ	।ऽ।	ऽ।ऽ

ज	र	ल	गु
।ऽ।	ऽ।ऽ	।	ऽ

तथा च समाससंहितायाम्–

शस्त्राणि पाशकर्माणि पशुकर्माणि यानि च।
तानि सौरदिने कुर्याल्लोहकर्माणि यानि च।।
संवत्सरे तथा मासे होरायामुदये तथा।
उक्तानि यानि कर्माणि तथा कुर्याद् ग्रहस्य च।।

तथा च यवनेश्वरः–

विषाश्मशस्त्रत्रपुसीसलोहप्राकारबन्धावृतमारणानि।
सर्वं च पापात्मकमर्कजाह्नि कार्पासवप्रव्रजितानि चेष्टम्।।

तथा च गर्गः–

नियोगान् विविधान् कुर्याद्वेश्म चापि प्रवेशयत्।
कर्म चौर्यं मृतिं चैवाश्वरथेष्वश्वयोजनम्।।
हस्त्यपेक्षा विघ्नकर्म द्रव्यं दम्भाश्रितं तथा।
वर्जयेच्चैव यात्रां च दिने सूर्यसुतस्य च।। इति।।६३।।

सवितृसुत अर्थात् शनि के दिन में अग्रकथित कार्यों को करना चाहिये–महिषी (भैंस), अज अर्थात् बकरा, करभ अर्थात् ऊँट, कृष्णलोह अर्थात् शस्त्रादि में प्रयुक्त होने वाला लौह, दास अर्थात् कार्य करने वाले सेवक, वृद्ध अर्थात् जिनकी अवस्था बीत चुकी हो, नीच अर्थात् अधमकर्म करने वाला, श्येन (बाज आदि पक्षी), चोर, पाशिक अर्थात् बन्धन कर्म का ज्ञाता, विनय से रहित नीच, विशीर्ण भाण्ड अर्थात् टूटे हुये भाण्ड, हस्त्यपेक्षा अर्थात् हाथी से अपेक्षितकार्य (हाथी का ग्रहण आदि), विघ्नकारण अर्थात् उपद्रवकारक, इन पूर्वोक्त सभी वस्तुओं से सम्बन्धित कार्य

शनिवार के दिन में करने चाहिए। इन कार्यों को छोड़कर यदि कोई अन्य कार्य इस दिन किया जाये तब समुद्र के पास गया हुआ व्यक्ति, जल का एक कण मात्र भी उस सागर से प्राप्त नहीं कर पाने जैसा होता है। यह समुद्र संज्ञक दण्डक छन्द है।

इस छन्द में दो नगण के पश्चात् पाँच रगण के मध्यवर्ती जगण होते हैं और अन्त में लघु और गुरु रहते हैं।

विशेष—समुद्रदण्डक छन्द का न्यास विवृति में द्रष्टव्य है।

जैसाकि समास संहिता में कहा गया है—

शस्त्रकर्म, पाश (बन्धन) कर्म, पशुकर्म तथा लौह कर्म से सम्बन्धित सभी कार्यों को शनिवार के दिन करे। शनि ग्रह के वर्षपति, मासपति, होरापति और लग्नेश होने पर पूर्वकथित सभी कर्मों को करना चाहिये।

जैसाकि आचार्य यवनेश्वर ने कहा है—

विषप्रयोग, पत्थर, शस्त्र, रांगा, सीसा, लोहा, खाई, बन्धन, आच्छादन, मारण; ये सभी तथा अन्य पापकर्म शनिवार के दिन करने चाहिये। कपास, आसव, सन्यासके कर्म; ये कार्य शनिवार के दिन अनुकूल रहते हैं।

जैसा कि आचार्य गर्ग ने कहा है—

विविध प्रकार के नियोग (निरोध), गृहप्रवेश, चौरकर्म, मारण, रथ में घोड़ों को जोतना, हाथी का ग्रहण, विघ्न कर्म, द्रव्यसंग्रह, दाम्भिक कार्य शनिवार के दिन सफल होते हैं। शनिवार को यात्रा न करे॥६३॥

अधुनात्र प्रशंसार्थं विपुलामार्यामाह—

विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत्।
श्रुतिसुखदवृत्तसंग्रहमिममाह वराहमिहिरोऽतः॥६४॥

छन्दःशास्त्र की प्रशंसा विपुलाआर्या छन्द में करते हैं—

बहुत विस्तृत छन्दों के प्रस्तारों को जान कर भी इतने ही व्यवहृत होते हैं। अत: आचार्य वरामिहिर ने कर्ण सुखजनक यह छन्द-संग्रह कहा है। यह विपुला आर्या छन्द है॥६४॥

विपुलां विस्तीर्णामपि छन्दोविचितिं छन्दसां प्रस्तारं बुद्ध्वा ज्ञात्वा एतावत् कार्यं भवति। यावन्ति छन्दांस्यत्र प्रदर्शितानि तावन्ति ज्ञायन्ते। अतोऽस्माद्धेतोर्वराहमिहिर इमं वृत्तसमुच्चयं श्रुतिसुखदं कर्णसुखजनकमाहोक्तवान्। बहुभिराचार्यैश्छन्दोलक्षणमुक्तं तच्च दुर्विज्ञेयमश्रव्यं च। वराहमिहिरेण पुनः श्रव्यं सुखबोधं व्यापकं संक्षिप्तमुक्तमिति। विपुलेयमार्या। अस्या लक्षणम्—

---

१. द्रष्टव्योऽस्य ग्रन्थस्य १०३ अध्याये २ श्लोकस्य टीका।

[1]विपुला तु यान्यथा पादभागित्यादि।
वराहमिहिरीयेऽस्मिन् छन्दसां सारसंग्रहे
उत्पलो गोचरे टीकां चक्रे शिष्यहितावहाम्।।६४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृत्तौ ग्रहोचरो
नाम त्र्यधिकशततमोऽध्याय:।।१०३।।

विपुल अर्थात् विस्तृत छन्दोविचिति अर्थात् छन्दों के विन्यास को जानकर आगे वर्णित कार्य होते हैं। जितने भी छन्दों को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है, उन सभी छन्दों का विशेषतया प्रयोग होता है। इसी कारण वराहमिहिर के इस छन्दसंग्रह को जो कर्णसुख को उत्पन्न करने वाले हैं, उनको कहा है। अन्य बहुत से आचार्यों ने छन्दों का लक्षण कहा है। परञ्च उनका कथन क्लिष्ट और कर्कश है। एतावता वराहमिहिर ने फिर से उन छन्दों को कर्णप्रिय, सुखप्रदायक और अव्यापक अर्थात् संक्षिप्त स्वरूप में कहा है। यह विपुला आर्या छन्द है।।६४।।

विपुला आर्याछन्द का लक्षण—इस छन्द का लक्षण इसी अध्याय के श्लोक संख्या २ में बतलाया गया है।

वराहमिहिर द्वारा रचित छन्दों के सारसंग्रह को गोचर प्रकरण में जो विचार किया गया है, उसको आचार्य उत्पल ने शिष्यों के कल्याणार्थ इसकी टीका रची है।।६४।।

।।श्री भट्टोत्पल विरचित संहिताविवृति में ग्रहगोचर नामक १०३ अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई १०३।।

❑❑

अथ रूपसत्रं व्याख्यायते। १०४ अध्यायः

आदौ नक्षत्रपुरुषस्याङ्गविभागं तन्नक्षत्रावस्थितिं चाह–

पादौ मूलं जङ्घे च रोहिणी जानुनी तथाश्विन्यः।
ऊरु चाषाढाद्वयमथ गुह्यं फल्गुनीद्वितयम्।।१।।
कटिरपि च कृत्तिका पार्श्वयोश्च यमला भवन्ति भद्रपदाः।
कुक्षिस्था रेवत्यो विज्ञेयमुरोऽनुराधा च।।२।।
पृष्ठं विद्धि धनिष्ठां भुजौ विशाखा स्मृतौ करौ हस्तः।
अङ्गुल्यश्च पुनर्वसुराश्लेषासंज्ञिताश्च नखाः।।३।।
ग्रीवा ज्येष्ठा श्रवणं श्रवणौ पुष्यो मुखं द्विजाः स्वातिः।
हसितं शतभिषगथ नासिका मघा मृगशिरो नेत्रे।।४।।
चित्रा ललाटसंस्था शिरो भरण्यः शिरोरुहाश्चार्द्रा।
नक्षत्रपुरुषकोऽयं कर्तव्यो रूपमिच्छद्भिः।।५।।

आरम्भ में नक्षत्र पुरुष के अङ्ग विभाग में नक्षत्रों की स्थिति बतलाते हैं–

नक्षत्रपुरुष के दोनों पाँव में मूल-नक्षत्र, दोनों जंघाओं में रोहिणी, दोनों जानुओं में अश्विनी, दोनों ऊरू में पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा, गुह्य (लिङ्ग और गुदा) में पूर्वफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी, कटिप्रदेश में कृत्तिका, दोनों पार्श्व में पूर्वभाद्रपदा एवं उत्तरभाद्रपदा, पेट में रेवती, छाती में अनुराधा, पीठ में धनिष्ठा, दोनों भुजाओं में विशाखा, दोनों हाथों में हस्त, अंगुलियों में पुनर्वसु, नखों में श्लेषा, ग्रीवा में ज्येष्ठा, दोनों कानों में श्रवण, मुख में पुष्य, दाँतों में स्वाती, हास्य में शतभिषा, नासिका में मघा, दोनों आँखों में मृगशिरा, ललाट में चित्रा, शिर में भरणी और केशों में आर्द्रा को स्थापित करे। सुन्दर रूप की इच्छा करने वाले पुरुषों को यह नक्षत्र चक्र बनाना चाहिये॥१-५॥

पादौ मूलमिति। नक्षत्रपुरुषस्य पादौ चरणौ मूलम्। एवं जंघे द्वे रोहिणी। जानुनी तथाऽश्विन्यः। ऊरु द्वावाषढाद्वयम्। पूर्वाषाढोत्तराषाढे। अथशब्दश्चार्थे। गुह्यं लिङ्गं गुदश्च फल्गुनीद्वितीयं पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीति।।१।।

कटिरपि चेति। कृत्तिका कटिर्जघनम्। पार्श्वयोश्च यमला भद्रपदा भवन्ति। पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदौ। रेवत्यः कुक्षिस्थाः। अनुराधा उरो वक्षो विज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।।२।।

पृष्ठमिति। धनिष्ठां पृष्ठं विद्धि जानीहि। विशाखा भुजौ द्वौ स्मृतावुक्तौ। हस्तौ द्वौ करौ हस्त एव। पुनर्वसुरङ्गुल्यः करशाखाः। आश्लेषासंज्ञिताश्च नखाः कररुहाः।।३।।

ग्रीवा ज्येष्ठेति। ग्रीवा शिरोधरा ज्येष्ठा। श्रवणं श्रवणौ द्वौ कर्णौ। पुष्यो मुखं वक्त्रम्। स्वातिर्द्विजा दशनाः। हसितं शतिभषगथ। अथशब्दश्चार्थे। नासिका मघा।

नेत्रे द्वे चक्षुषी मृगशिरः।।४।।

चित्रा ललाटसंस्थेति। ललाटे मुखपृष्ठे संस्था चित्रा। भरण्यः शिरः। आर्द्रा शिरोरुहाः केशाः। अयं नक्षत्रपुरुषको रूपमिच्छद्भिः शोभनं रूपमभिलषद्भिः पुंभिः कर्तव्यः।।५।।

इस अध्याय के आरम्भ में नक्षत्रपुरुष की परिकल्पना कर उसके विभिन्न अंगों में सत्ताइस नक्षत्रों की स्थापना की जा रही है। तात्पर्य यह है कि एक पुरुषाकृति की रचनाकर उसके पैर से लेकर शीर्ष पर्यन्त सभी अंगों में नक्षत्रों का विन्यासकर नक्षत्र पुरुष की रचना की गयी है।

मूलनक्षत्र नक्षत्रपुरुष के दोनों पैरों में एवं दोनों जंघे में रोहिणी, जानु अर्थात् घुटने पर अश्विनी, ऊरु (घुटने के उपरी भाग) पर पूर्वाषाढ़ एवं उत्तराषाढ़, गुप्तेन्द्रिय अर्थात् लिंग और गुदा प्रदेश पर पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी को स्थापित करे।।१।।

कटि प्रदेश पर कृत्तिका, दोनों पार्श्व भाग पर दोनों भद्रपदा अर्थात् पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद, कुक्षि (कोख) पर रेवती और वक्षस्थल पर अनुराधानक्षत्र को स्थापित करे।।२।।

पृष्ठभाग में धनिष्ठा नक्षत्र, दोनों भुजाओं में विशाखानक्षत्र, दोनों हाथों पर हस्त, हाथ की उङ्गलियों पर पुनर्वसु, हाथ के नखों पर आश्लेषानक्षत्र स्थापित करे।।३।।

ग्रीवा अर्थात् कण्ठ पर ज्येष्ठानक्षत्र, दोनों कानों पर श्रवण, मुख पर पुष्य, दाँतों पर स्वाती, हसित अर्थात् ओठों पर शतभिषा नाक पर मघा तथा दोनों नेत्रों पर मृगशीर्ष' नक्षत्र का न्यास करे।।४।।

चित्रानक्षत्र को ललाट अर्थात् मुखपृष्ठ पर। सिर पर भरणी, शिरोरुह अर्थात् केशों पर आर्द्रा को स्थापित करे। सुन्दर स्वरूप की कामना करने वाले पुरुषों के द्वारा इस नक्षत्रपुरुष की रचना करनी चाहिये।।५।।

अथ कस्मिन् काले रूपसत्राख्यं व्रतं गृहीतव्यमित्येतदाह–

चैत्रस्य बहुलपक्षे ह्यष्टम्यां मूलसंयुते चन्द्रे।
ह्युपवासः कर्तव्यो विष्णुं सम्पूज्य धिष्ण्यं च।।६।।

रूपसत्र नामक व्रत को आरम्भ करने का समय–

चैत्र कृष्ण अष्टमी में यदि मूल-नक्षत्र और चन्द्रवार हो तो उस दिन विष्णु और नक्षत्र की पूजा करके प्रथम उपवास आरम्भ करके जैसे-जैसे रोहिणी आदि आता जाये वैसे-वैसे आर्द्रा तक उपवास करना चाहिये।।६।।

चैत्रमासस्य बहुलपक्षे कृष्णपक्षे अष्टम्यां तिथौ मूलसंयुते चन्द्रे चन्द्रवासरे। मूलं नक्षत्रं तत्र यदि भवति तस्मिन् दिने प्रथमत उपवासः कर्तव्यः। विष्णुं नारायणं धिष्ण्यं नक्षत्रं च सम्पूज्याभ्यर्च्य, ततो यथा यथा रोहिण्यादीनि नक्षत्राणि भवन्ति तथा तथोपवासः कर्तव्यो यावदार्द्राम्। तथा च गर्गः—

अष्टम्यां मधुमासस्य कृष्णपक्षे तु नैर्ऋते।
नक्षत्रे चन्द्रवारे तु मुहूर्ते तु गुणान्विते।।
प्रारम्भेद्रूपसत्राख्यं व्रतं धर्मात्मकः पुमान्।
येन पूर्णेन मनुजो रूपशोभामवाप्नुयात्।।इति।।६।।

चैत्र मास के बहुलपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष में मूलनक्षत्र से युक्त चन्द्रमा हो और सोमवार हो अर्थात् उस दिन मूलनक्षत्र अवश्य हो, तब सर्वप्रथम उपवास (व्रत) करना चाहिये। उस समय विष्णु भगवान का और धिष्ण्य अर्थात् नक्षत्र (मूल) का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् रोहिणी आदि नक्षत्र से आर्द्रानक्षत्र पर्यन्त उपवास (व्रत) रखना चाहिये जैसाकि आचार्य गर्ग ने कहा है—

चैत्रमास के कृष्णपक्ष में मूलनक्षत्र युक्त सोमवार के दिन, इन शुभ गुणयुक्त मुहूर्त के प्राप्त होने पर धर्मनिष्ठ पुरुष रूपसत्र नामक व्रत का आरम्भ करे। व्रत को पूर्ण कर मनुष्य रूप और धन को प्राप्त करता है।।६।।

विशेष व्याख्या—१. मूल से आर्द्रापर्यन्त १५ नक्षत्र होते हैं। अतः यह व्रत १५ दिनों का मानना चाहिए। यद्यपि मूल नक्षत्र से आर्द्रा पर्यन्त नक्षत्र पुरुष का अंग-विन्यास किया है। परञ्च कितने दिनों का व्रत होगा, यह स्पष्ट नहीं है। विवृति से यह स्पष्ट होता है।

२. बहुला पक्ष का अर्थ कृष्ण पक्ष है। यथा, अमर कोश-३/३/१९९-

बहुलाः कृत्तिका गावो बहुलोऽग्नौ शितौ त्रिषु।"
बहुला नीलिकायां स्यादेलायां गवि योषिति।
कृत्तिकासु स्त्रियां भूम्नि विहायसि न पुंसकम्।।
पुंस्यग्नौ कृष्णपक्षे च वाच्यवत् प्राज्य कृष्णयोः"।

(—मेदिनी)

अथ व्रतार्थं यत् कर्तव्यं तदाह—

दद्याद् व्रते समाप्ते घृतपूर्णं भाजनं सुवर्णयुतम्।
विप्राय कालविदुषे सरत्नवस्त्रं स्वशक्त्या च ।।७।।

व्रत के लिए बतलाये गये नियम को कहते हैं—

व्रत समाप्त होने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार कालज्ञ ब्राह्मण के लिये

सुवर्ण, रत्न और वस्त्रों के साथ घृत से परिपूर्ण पात्र दान करे॥७॥

ततो व्रते रूपसत्राख्ये समाप्ते निष्पन्ने घृतपरिपूर्णं भाजनमाज्यपरिपूर्णं पात्रं सुवर्णयुक्तं काञ्चनसंयुक्तं विप्राय ब्राह्मणाय कालविदुषे कालज्ञाय दद्यात् प्रतिपादयेत्। सरत्नवस्त्रं रत्नवस्त्रसहितम्, स्वशक्त्याऽऽत्मीयशक्त्या विभवानुसारेण दद्यात्॥७॥

तत्पश्चात् रूपसत्रनामक व्रत के समाप्त होने पर घृत से परिपूर्ण भाजन अर्थात् पात्र तथा सुवर्ण के साथ कालविदुष अर्थात् कालज्ञ ज्योतिषी ब्राह्मण को रत्नसहित वस्त्र का अपनी शक्ति-सामर्थ्य और वैभव के अनुरूप दान करे॥७॥

अन्यत् किं कुर्यादित्याह–

अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः, सह गुडैर्विप्रान् समभ्यर्चयेद्
दद्यात् तेषु सुवर्णवस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः।
पादर्क्षात् प्रभृति क्रमादुपवसन्नङ्गर्क्षनामस्वपि
कुर्यात् केशवपूजनं स्वविधिना धिष्ण्यस्य पूजां तथा॥८॥

और क्या करना चाहिये? यह बतलाते हैं–

लावण्य की इच्छा करने वाला मनुष्य दूध, घृत और गुड़ से मिश्रित अन्नों से ब्राह्मणों की पूजा करे तथा उन ब्राह्मणों को सोना, वस्त्र और चाँदी देवे। पाँव के नक्षत्र से आरम्भ करके उपवास करता हुआ विष्णु तथा अङ्ग के नक्षत्रों की पूजा करे॥८॥

अन्नैर्भोजनविशेषैः। क्षीरघृतोत्कटैः, क्षीरेण दुग्धेन घृतेनाज्येन चोत्कटैराधिक्येन सहितैस्तैश्च सह गुडैः, गुडेनेक्षुविकारेण युक्तैः, विप्रान् ब्राह्मणान् समभ्यर्चयेत् पूजयेत्। तेषु च ब्राह्मणेषु, सुवर्णं कनकम्, वस्त्रमम्बरम्, रजतं रूप्यम्, नरो मनुष्यो लावण्यमिच्छन् रूपमभिलषन् दद्यात् प्रतिपादयेत्। पादर्क्षाच्चरणनक्षत्राद् मूलाद् प्रभृत्यारभ्य क्रमादनुक्रमेणोपवसन् भुञ्जन् अङ्गर्क्षनामस्वपि स्वविधिनाऽऽत्मीयविधानेन वैष्णव्येन पञ्चरात्रविहितेन पूजाक्रमेण वैदिकेन वा केशवपूजनं नारायणार्चनं कुर्याद्विदध्यात्। तथा तेनैव प्रकारेण धिष्ण्यस्य नक्षत्रस्य। यथा भगवतो हरेस्तथा नक्षत्रस्यापि पूजां कुर्यात्॥८॥

अन्न अर्थात् विशेष प्रकार के भोजन द्वारा, क्षीर अर्थात् दुग्ध और घृत अर्थात् आज्य (घी) की उत्कटता अर्थात् आधिक्य पूर्वक गन्ने के रस से निर्मित गुड़ के साथ ब्राह्मणों की अभ्यर्थना अर्थात् पूजा करे। उन ब्राह्मणों को सुवर्ण (कनक), वस्त्र (अम्बर), रजत (चाँदी) को, लावण्य अर्थात् सुन्दर रूप की अभिलाषा करता हुआ मनुष्य दान दे। नक्षत्र पुरुष के पादस्थ मूलनक्षत्र से आरम्भ कर क्रमानुसार अङ्गों पर स्थित अन्य नक्षत्रों की भी अपनी परम्परागत विधि से पञ्चरात्रादि वैष्णव विधानानुसार अथवा वैदिक विधि से केशव अर्थात् भगवान विष्णु को, जिस प्रकार भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है उसी प्रकार नक्षत्र की भी पूजा करे॥८॥

अथ चरितव्रतः पुरुषः कीदृगन्यजन्मनि भवतीत्याह–

प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः क्षपाकरास्य, सितचारुदन्तः।
गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यमूर्तिः।।९।।

इस प्रकार व्रत करने से अन्य जन्म में कैसा होता है–

पूर्व कथित पूजा करने से मनुष्य लम्बी भुजाओं से युत, विस्तीर्ण और पुष्ट छाती वाला, चन्द्र के समान मुख वाला, सफेद सुन्दर दाँतों से युत, गजेन्द्र के समान गति वाला, कमल के समान विस्तीर्ण नेत्र वाला, स्त्री के चित्त को हरने वाला और कामदेव के समान स्वरूप वाला होता है।।९।।

मनुष्यः पुरुषः कृतरूपसत्रव्रत ईदृग् भवति–प्रलम्बवाहुः, प्रलम्बौ दीर्घौ बाहु भुजौ यस्य। आजानबाहुरित्यर्थः। पृथुपीनवक्षाः, पृथु विस्तीर्ण पीनं मांसलं च वक्ष उरो यस्य। क्षपाकरास्यश्चन्द्रवदनः। सिताचारुदन्तः शुक्लशोभनदन्तः। गजेन्द्रगामी, गजेन्द्रों मत्तहस्तीव सविलासं गच्छति। कमलायताक्षः, कमलं पद्मं तद्वद् आयते विस्तीर्णे चाक्षिणी नेत्रे यस्य। स्त्रीचित्तहारी, स्त्रीणां योषितां चित्तं मनो हरति तच्छीलः। स्मरतुल्यमूर्त्तिः, कामसदृशदेहः।।९।।

रूपसत्र व्रत करने वाला मनुष्य व्रत के प्रभाव से इस प्रकार का हो जाता है– प्रलम्बबाहु अर्थात् लम्बी भुजाओं वाला (आजानुबाहु), पृथु अर्थात् विस्तृत, पीन अर्थात् मांसल वक्षस्थल, क्षपाकर अर्थात् चन्द्रमा के समान मुखवाला, श्वेत सुन्दर दाँतों वाला, गजेन्द्रगामी अर्थात् मतवाले हाथी के समान विलासपूर्वक गतिवाला, कमल के समान विस्तृत दोनों नेत्रों वाला, स्त्रियों के चित्त अर्थात् मन का हरण करने वाला और स्मर अर्थात् कामदेव के सदृश शरीर वाला हो जाता है।।९।।

अथ स्त्री कीदृशी भवति–

शरदमलपूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी सरोजदलनेत्रा।
रुचिरदशना सुकर्णा भ्रमरोदरसन्निभैः केशैः।।१०।।
पुंस्कोकिलसमवाणी ताम्रोष्ठी पद्मपत्रकरचरणा।
स्तनभारानतमध्या प्रदक्षिणावर्तया नाभ्या।।११।।
कदलीकाण्डनिभोरुः सुश्रोणी वरकुकुन्दरा सुभगा।
सुश्लिष्टाङ्गुलिपादा भवति प्रमदा मनुष्यश्च।।१२।।

पूर्वोक्त व्रत करने से स्त्री कैसी होती है–

यदि पूर्वोक्त व्रत को स्त्री करती है तो वह शारदीय चन्द्र के समान मुखकान्ति, कमलदल के समान नेत्र, सुन्दर दाँत, सुन्दर कान, भ्रमरोदर के समान केश, पुंस्कोकिल के समान वाणी, ताम्रवर्ण के ओंठ, कमल के समान हाथ और पाँव, स्तनों

के भार से नत मध्यभाग, दक्षिणावर्त नाभि से युत, केले के खम्भे के समान ऊरु, सुन्दर, नितम्ब कूप, स्वामिप्रिया और मिली हुई अँगुलियों से युत पाँव वाली होती है। इसी तरह इस व्रत को करने से पुरुष, भी होता है॥१०-१२॥

शरदमलपूर्णचन्द्रेति। स्त्री कृतरूपसत्रव्रता कीदृशी भवति? शरदमलपूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी, शरत्काले योऽसावमलो निर्मलः पूर्णचन्द्रः शशी। तस्य द्युतिः कान्तिः। तत्सदृशं मुखं वदनं यस्याः। सरोजदलनेत्रा पद्मपत्रसदृशाक्षी। रुचिरदशना सुशोभनशुक्लदन्ता। सुकर्णा शोभनकर्णा। केशैर्मूर्धजैर्भ्रमरोदरसन्निभैर्द्विरेफजठरकान्तिभिः। अतिनीलवर्णैरित्यर्थः॥१०॥

पुंस्कोकिलेति। पुंस्ककोकिलस्य। पुमांश्चासौ कोकिलः पुंस्कोकिलः प्रधानकोकिलस्य समा तुल्या वाणी स्वरो यस्याः। ताम्रोष्ठी लोहितदन्तच्छदा। पद्मपत्रकरचरणा पद्मपत्राभौ करौ हस्तौ चरणौ पादौ च यस्याः। स्तनभारानतमध्या, स्तनभारेण कुचयुगलोद्वहनेन नतं विनतं मध्यं यस्याः। तथा नाभ्या प्रदक्षिणावर्ततया संयुक्ता। प्रदक्षिणेनावर्तो यस्याः॥११॥

कदलीकाण्डनिभोरूः, कदली रम्भा तस्याः काण्डं शाखा, तन्निभो तत्सदृशावुरू यस्याः। सुश्रोणी शोभनवराङ्गा, वरकुकुन्दरा, वरौ शोभनौ कुकुन्दरौ नितम्बरूपकौ यस्याः। यथा च–

नितम्बरूपकौ यौ तु तौ कुकुन्दरसंज्ञितौ।

सुभगा सौभाग्योपेता। भर्तृबल्लभेत्यर्थ, सुश्लिष्टाङ्गुलिपादा। सुश्लिष्टाः संहिता अङ्गुलयो ययोस्तादृशौ पादौ यस्याः। एवंविधा प्रमदा स्त्री। मनुष्यः पुरुषश्च भवति॥१२॥

रूपसत्रव्रत को करने वाली स्त्री किस प्रकार की होती है? शरद्कालिक जो अमल अर्थात् निर्मल, पूर्ण चन्द्रमा होता है। उसकी द्युति अर्थात् कान्ति के समान सुन्दर मुख वाली, सरोजदल अर्थात् कमलपत्र के सदृश नेत्रों वाली, रुचिरदशना अर्थात् सुशोभित श्वेत दाँतोंवाली, सुन्दर कानोंवाली, भ्रमरोदर अर्थात् भँवरे के उदर के सदृश कृष्ण केशोंवाली अर्थात् अत्यन्त नीलवर्णी केशोंवाली स्त्री होती है॥१०॥

पुंस्कोकिल अर्थात् नर–कोकिल (प्रधान कोकिल) के समान मधुर स्वरवाली, ताम्रोष्ठी अर्थात् रक्तिम ओठोंवाली, पद्मपत्र के सदृश होठों और पैरों वाली, स्तन के भार से झुके हुये मध्यभागवाली तथा प्रदक्षिणावर्ती नाभि प्रदेश वाली स्त्री होती है॥११॥

कदली अर्थात् केले के काण्ड अर्थात् शाखा के समान उरू प्रदेश अर्थात् जंघेवाली, सुन्दर नितम्बोंवाली तथा शोभित कुकुन्दर अर्थात् नितम्बगर्तों वाली स्त्री होती है। जैसाकि कहा गया है–

नितम्ब के दोनों पार्श्वों में जो रूपक (निम्न भाग) होते हैं उनकी कुकुन्दर संज्ञा

है।

सुभगा अर्थात् वह सौभाग्ययुक्ता, पति की प्रियतमा, सुश्लिष्ट अर्थात् सघन अङ्गुलियों से युक्त चरणोंवाली स्त्री होती है। भावार्थ यह है कि इस व्रत को करने वाले पुरुष अथवा स्त्री वर्णित लक्षणों से सम्पन्न हो जाते हैं॥१२॥

अथ रूपसत्राचरितस्य प्रशंसार्थमाह–

यावन्नक्षत्रमाला विचरति गगने भूषयन्तीह भासा
तावन्नक्षत्रभूतो विचरति सह तैर्ब्रह्मणोऽह्नोऽवशेषम्।
कल्पादौ चक्रवर्ती भवति हि मतिमांस्तत्क्षयाच्चापि भूयः
संसारे जायमानो भवति नरपतिर्ब्राह्मणो वा धनाढ्यः॥१३॥

रूपसत्रव्रत करने वाले की प्रशंसा–

इस लोक में अपनी कान्ति से शोभा पैदा करती हुई नक्षत्रमाला जब तक आकाश में रहती है, तब तक स्त्री या पुरुष नक्षत्ररूप होकर नक्षत्रों के समान कल्पान्त तक विचरण करता है। फिर दूसरे कल्प के आदि में बुद्धिमान चक्रवर्ती राजा होता है। चक्रवर्तित्व का नाश होने के पश्चात् संसार में जन्म लेकर राजा या धनाढ्य ब्राह्मण होता है॥१३॥

गगने नभसि नक्षत्राणामृक्षाणां माला पंक्तिर्यावद्विचरति तिष्ठति। इहास्मिन् लोके भासा कान्त्या भूषयन्ती शोभामुत्पादयन्ती। तावत् पुरुषः स्त्री वा तैरेव नक्षत्रैः सह साकं नक्षत्रभूतस्तारकरूपो विचरति तिष्ठति। ब्रह्मणः पितामहस्याह्नो दिनस्यावशेषं कल्पान्तं यावत्। अन्यस्मिन् कल्पादौ पुन कल्पप्रारम्भे चक्रवर्ती सार्वभौमो राजा मतिमान् पण्डितश्च भवति। भूयः पुनस्तत्क्षयाच्चक्रवर्त्तिविनाशात् संसारे मनुष्यो जायमान उत्पद्यमानो नरपती राजा भवति, अथवा ब्राह्मणो द्विजो धनाढ्यो बहुवित्तो भवति॥१३॥

इति रूपसत्रम्

गगन अर्थात् आकाश में नक्षत्रों की माला अर्थात् नक्षत्रपंक्ति जब तक विचरण करती रहती है तथा स्थित रहती है और इस लोक में प्रभाकान्ति से विभूषित करती है अर्थात् शोभा उत्पन्न करती है। तब तक पुरुष अथवा स्त्री उन्हीं नक्षत्रों के साथ अर्थात् नक्षत्र का रूप धारण कर विचरण करते हैं। ब्रह्मा अर्थात् पितामह के दिन के अवशेष भाग अर्थात् कल्पान्त पर्यन्त नक्षत्र रूप में रहते हैं। पुनः जब दूसरे कल्प का प्रारम्भ होता है तब सार्वभौम चक्रवर्ती राजा और बुद्धिमान पण्डित के रूप में जन्म लेते हैं। तत्पश्चात् चक्रवर्त्तित्व के विनष्ट हो जाने पर वह मनुष्य संसार में उत्पन्न होकर राजा होता है अथवा धन-धान्य से सम्पन्न ब्राह्मण होता है॥१३॥

रूपसत्रव्रतविधान सम्पूर्ण हुआ।

अथ द्वादशमासनामानि व्याख्यायन्ते।

तत्र मार्गशीर्षमासात् प्रभृति द्वादशमासानां नामान्याह–

मृगशीर्षाद्याः केशवनारायणमाधवाः सगोविन्दाः।
विष्णुमधुसूदनाख्यौ त्रिविक्रमो वामनश्चैव।।१४।।
श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च पद्मनाभश्च।
दामोदर इत्येते १मासाः प्रोक्ता यथासंख्यम्।।१५।।

मार्गशीर्ष आदि बारह मासों के नाम–

केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर; ये क्रम से मार्गशीर्ष आदि बारह मासों के नाम हैं। जैसे मार्गशीर्ष का केशव, पौष का नारायण इत्यादि ॥१४-१५॥

मृगशीर्षाद्या इति। मार्गशीर्षमासात् प्रभृति। द्वादशानां मासानां द्वादश नामानि। तद्यथा–केशवो मार्गशीर्षः। नारायणः पौषः। माधवो माघः। गोविन्दः फाल्गुनः। विष्णुश्चैत्रः। मधुसूदनाख्यो वैशाखः। त्रिविक्रमो ज्येष्ठः, वामन आषाढः।।१४।।

तस्मादुत्तरः श्रीधरनामा श्रावणः। हृषीकेशो भाद्रपदः। पद्मनाभ आश्वयुजः। चकारः समुच्चये। दामोदरः कार्तिकः। इत्येवंप्रकारा यथासंख्यं यथाक्रमं मासाः प्रोक्ताः कथिताः। भगवन्नाम्ना मासाः क्रमेणैते ज्ञेया इति।। केचित् पठन्ति "मासेशाः स्युर्यथासङ्ख्यम्" इति। यथासङ्ख्यं यथाक्रममेते द्वादशानां मासानामीशाः स्वामिनः स्युर्भवेयुः।।१५।।

मार्गशीर्ष मास से आरम्भकर द्वादश मासों के नाम इस प्रकार हैं–(१) केशव-मार्गशीर्ष (२) नारायण-पौष (३) माधव-माघ (४) गोविन्द-फाल्गुन (५) विष्णु-चैत्र (६) मधुसूदन-वैशाख (७) त्रिविक्रम-ज्येष्ठ (८) वामन-आषाढ़॥१४॥

तत्पश्चात् (९) श्रीधर-श्रावण (१०) हृषिकेश भाद्रपद (११) पद्मनाभ-आश्विन। चकार का प्रयोग समुच्चयवाचक है। (१२) दामोदर-कार्तिक। इस प्रकार क्रमानुसार मास कहे गये हैं। मासों के ये नाम क्रमशः भगवान के नाम पर अभीष्ट हैं। कतिपय आचार्य कहते हैं कि "ये यथाक्रम से मासपति कहे गये हैं।" अर्थात् क्रमशः बारहमासों के अधिपति होते हैं॥१५॥

अथ द्वादशीप्रशंसार्थमाह–

मासनामसमुपोषितो नरो द्वादशीषु विधिवत् प्रकीर्तयन्।
केशवं समभिपूज्य तत्पदं याति यत्र नहि जन्मजं भयम्।।१६।।

द्वादशी की प्रशंसा–

---

१. मासेशाः स्युर्यथासङ्ख्यमिति पाठान्तरम्।

मनुष्य विधिपूर्वक द्वादशी में मास के नाम के साथ व्रत रख कर केशव, नारायण आदि की पूजा के बाद उनके नाम का संकीर्तन करता हुआ, उनके पद को प्राप्त होता है, जहाँ पर पुनर्जन्म का भय नहीं है॥१६॥

नरो मनुष्यो मासनाम्ना समुपोषितः कृतोपवासो द्वादशीषु विधिवद्विधानेन प्रकीर्तयन् स्मरन् केशवं नारायणमित्यादि। यथा मार्गशीर्षद्वादश्यां केशवम्। पौषस्य द्वादश्यां नारायणम्। एवमन्येष्वपि। तथा च समभिपूज्य समभ्यर्च्य तस्य पदं स्थानं याति प्राप्नोति। यत्र पुनर्नहि जन्मजं भयं भवति, संसारे भूयो न जायते। परमेश्वरसायुज्यतां गच्छतीति।।१६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ रूपसत्रद्वादश-
नामानुकीर्तनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

मनुष्य को इन मासों के नामानुसार समुपोषित अर्थात् उपवास कर, द्वादशीतिथि में विधिपूर्वक कीर्तन अर्थात् केशव, नारायण आदि का स्मरण करना चाहिए। जैसा कि मार्गशीर्ष मास की द्वादशी तिथि में केशव को, पौष की द्वादशी में नारायण को तथा इसी प्रकार अन्य मासों में भी अभ्यर्चना कर, उनके पद अर्थात् देवलोक को प्राप्त करता है, जहाँ पर पुनर्जन्म का भय नहीं रहता है। वह संसार में जन्म न लेकर, परमेश्वर की सायुज्यता प्राप्त कर लेता है॥१६॥

श्री भट्टोत्पल विरचित संहिताविवृति में रूपसत्र द्वादशनामानुकीर्तन नामक १०४ अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥१०४॥

❑❑

अथोपसंहाराध्यायो व्याख्यायते।।१०५।।

तत्रादावेव शास्त्रमत्योर्माहात्म्यमाह–

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाऽथ मया।
लोकस्यालोककरः शास्त्रशशाङ्कः समुत्क्षिप्तः।।१।।

आरम्भ में ज्योतिषशास्त्र एवं बुद्धि के माहात्म्य को कहते हैं–

मेरे द्वारा ज्योतिष शास्त्र रूपी समुद्र को बुद्धि रूपी मन्दराचल के द्वारा भली भाँति मथकर, संसार में प्रकाश करने वाला, बृहत्संहिता रूपी चन्द्रमा स्थापित किया गया है॥१॥

ज्योतिःशब्देन प्रधाननक्षत्राण्युच्यन्ते। ज्योतिषां शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रम्। तदेव दुर्विज्ञेयत्वात् समुद्रं सागरम्। मतिमन्दराद्रिणा, मतिर्बुद्धिरेव मन्दरः पर्वतः, तेन मतिमदराद्रिणा प्रमथ्य निर्मथ्य लोकस्य जगतः आलोककरः प्रकाशकरः, शास्त्रशशाङ्कः शास्त्रचन्द्रः समुत्क्षिप्त उद्धृतः।।१।।

ज्योति: शब्द प्रधान नक्षत्रों का बोध कराता है। ज्योतिष का शास्त्र अर्थात् प्रमुख नक्षत्रों से सम्बन्धित शास्त्र ही ज्योति:शास्त्र कहलाता है। यह बहुत कठिनाई से ज्ञेय होने के कारण समुद्र अर्थात् सागर के समान विस्तृत और गहन है। मति अर्थात् बुद्धिरूपी मन्दरपर्वत के द्वारा मन्थन कर संसार के लिये प्रकाश करने वाला, यह चन्द्रमा के सदृश शास्त्र निकाला गया है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सृष्टि के आदि में मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर देव-दानवों के द्वारा क्षीरसागर का मंथन किया गया था। तथा उसमें से चौदह रत्न (१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभमणि (३) पारिजात वृक्ष (४) सुरा (मदिरा) (५) रम्भा (अप्सरा) (६) वाजिश्रवा (सप्तमुख अश्व) (७) विष (कालकूट) (८) धन्वन्तरी (११) चन्द्रमा (१२) कामधेनु (१३) ऐरावत हाथी (१४) अमृत; निकले थे। उसी प्रकार आचार्य वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र रूपी समुद्र में अपनी बुद्धिरूपी मथानी से मथकर बृहत्संहिता रूपी चन्द्रमा को प्रकट किया, जो कि सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करने में समर्थ है॥१॥

अन्यत् प्रतिपादयितुमाह–

पूर्वाचार्यग्रन्था नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम्।
तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः।।२।।

अन्य भी प्रतिपादित करते हैं–

इस शास्त्र को बनाते हुये मैंने पूर्वाचार्यकृत ग्रन्थों के आशयों को नहीं छोड़ा है। अत: उन पूर्वाचार्यकृत ग्रन्थों को और इस शास्त्र को यत्नपूर्वक देखकर पण्डितों को प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् जो अच्छा हो उसको ग्रहण करना चाहिये॥२॥

पूर्वोक्तानि यानि शास्त्राणि तानि न सन्त्यक्तानि। तान्येव दृष्ट्वा सर्वथा संक्षेपेण सुवृत्तैः कृतम्। तान् पूर्वाचार्योक्तान् इदं मदीयं च शास्त्रमवलोक्य दृष्ट्वा कामतो यथेच्छं सुजनाः साधवो बुधाः प्रयतध्वम्। यच्छोभनं तदेव ग्राह्यमित्यर्थः॥२॥

इस ग्रन्थ में इससे पूर्ववर्ती सभी शास्त्रों के अभिमत का परित्याग नहीं किया गया है। उन सभी को देखकर अर्थात् आलोडन कर संक्षिप्त एवं सुन्दर छन्दों में यह ग्रन्थ ग्रथित है। उन सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के कथन और मेरे (वराहमिहिर के) इस शास्त्र (बृहत्संहिता) का सम्यक् अवलोकन कर सुजन अर्थात् सुपण्डित जन अपनी इच्छानुसार अर्थ ग्रहण करने का प्रयत्न करें। अभिप्राय यह है कि जो समुचित हो उसी का ग्रहण करें॥२॥

अधुना सज्जनानां दुर्जनानां च चेष्टितमाह–

अथवा कृशमपि सुजनः प्रथयति दोषार्णवाद् गुणं दृष्ट्वा
नीचस्तद्विपरीतः प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम्।।३।।

सज्जन और दुर्जन के कृत्य को कहते हैं–

सुजन मनुष्य दोषरूपी समुद्र में भी थोड़ा-सा गुण देखकर उसका विस्तार करते हैं। परन्तु नीच पुरुष इससे विपरीत स्वभाव के होते हैं। अर्थात् गुणों को छिपाते हैं तथा स्वल्प दोष का भी विस्तार करते हैं। यही साधु और असाधु का लक्षण है।।३।।

अथवा सुजनः प्रधानजनो दोषार्णवाद् दोषसागरात् कृशमपि स्वल्पमपि गुणं दृष्ट्वा तमेव प्रथयति प्रख्यापयति, दोषान् प्रच्छादयति, नीचस्तद्विपरीत इति। नीचो गुणसागरात् स्वल्पं दोषं दृष्ट्वा गुणान् प्रच्छाद्य तमेव दोषं प्रख्यापयति। इयं साध्वसाधूनां सज्जनदुर्जनानां प्रकृतिः स्वभाव इति।।३।।

सुजन अर्थात् सम्मानीय व्यक्ति, दोष रूपी समुद्र में कृश अर्थात् स्वल्प गुण को भी देखकर उसका भी गुणगान करता है। वह दोषों को ढक देता है। परञ्च नीच पुरुष इसके विपरीत स्वभाव का होता है। नीच पुरुष गुणों के सागर में थोड़ा भी दोष देखकर गुणों को ढककर दोष का ही प्रकाशन करता है। यह साधु और असाधु अर्थात् सज्जन एवं दुर्जन लोगों का स्वभाव (प्रकृति) होता है।।३।।

काव्यमभिनवं सर्वथा दुर्जनानां प्रदर्शयितव्यमित्येतत् प्रतिपादयितुमाह–

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति।
श्रावयितव्यं तस्माद् दुष्टजनस्य प्रयत्नेन।।४।।

नवीन काव्य दुर्जनों को दिखाना चाहिये–

काव्य रूप सुवर्ण, दुर्जन रूप अग्नि में तपाये जाने पर विशुद्धि को प्राप्त होता है। इसलिये दुर्जन मनुष्य को यत्नपूर्वक शास्त्र सुनाना चाहिये।।४।।

दुर्जनहुताशेन दुर्जनाग्निना काव्यसुवर्णं काव्यमेव सुवर्णं तप्तं तापितं विशुद्धिं निर्मलतामायाति प्राप्नोति। यथा कनकं वह्नितप्तं शुद्धं भवत्येवं दुर्जनमुखपतितं काव्यं शुद्धं भवति। यतः स दोषतत्परो भवति, न गुणग्राही। तस्मात् प्रयत्नेन दुष्टजनस्य दुर्जनस्य काव्यं श्रावयितव्यं प्रदर्शनीयमिति।।४।।

दुर्जनहुताश अर्थात् दुर्जन रूपी अग्नि के द्वारा काव्य रूपी सुवर्ण को परितप्त करने से विशुद्धि अर्थात् निर्मलता आ जाती है। जिस प्रकार अग्नि से परितप्त सुवर्ण शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार दुर्जन के मुख में गया हुआ काव्य भी शुद्ध हो जाता है। क्योंकि वह दोषान्वेषण में तत्पर होता है न कि गुणों के ग्रहण में। अतएव प्रयत्नपूर्वक दुष्ट लोगों को अपना काव्य सुनाना चाहिये।।४।।

अधुना विदुषः प्रार्थयन्नाह–

ग्रन्थस्य यत् प्रचरतोऽस्य विनाशमेति
लेख्याद् बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण।

यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा
कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम्।।५।।

विद्वानों से आत्मनिवेदन—प्रचारोन्मुख इस ग्रन्थ में लेखन दोष से जो अशुद्धियाँ रह जायें, अथवा जो मुझसे आगम विरुद्ध किया गया हो अथवा छूट गया हो, वे सब दुराग्रहों को छोड़कर, बहुश्रुत मनुष्यों के मुख से सुनकर, पण्डितों को यहाँ पर ठीक कर लेना चाहिये।।५।।

अस्य ग्रन्थस्य प्रचरतः प्रचरमाणस्य यद्विनाशमेत्यपशब्दतां गच्छति। लेख्याद् लेखकदोषाद् बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण बहुश्रुता ये जनास्तन्मुखेभ्योऽधिगमः प्राप्तिस्तस्य क्रमेण परिपाट्या पूर्वापरपर्यालोचनयाऽर्थासङ्गोत्पत्तेर्येऽपशब्दं जानन्ति तदत्रास्मिन् शास्त्रे विदुषा रागं परिहृत्य कार्यम्। तन्मुखेभ्योऽधिगम्य विदुषा पण्डितेन रागं मात्सर्यं परिहृत्य त्यक्त्वा कार्यं कर्तव्यम्। तथा यद्वा मया कुकृतं कुत्सितमनागमेन कृतं विरचितमल्पं वा परिमितव्यापकं कृतं वा इहास्मिन् शास्त्रे मूलादेवाकृतं यन्न कृतं तदत्रास्मिन् शास्त्रे विदुषा रागं परिहृत्य कार्यमिति।।५।।

इस ग्रन्थ के प्रचार क्रम में जो विनाश अर्थात् अपशब्दों का समावेश हो जाये अथवा लेखनकर्ता के दोष से अशुद्धियाँ रह जायें, बहुश्रुतमुखाधिगम अर्थात् बहुश्रुत लोगों के मुख से सुनकर जो सदोष ज्ञान प्राप्त हो। उसको क्रम अर्थात् परम्परा द्वारा पूर्वापर का विचार करते हुये समुचित संगति पूर्वक अपशब्दों के ज्ञाता विद्वान द्वेष एवं राग छोड़कर अर्थ का ग्रहण करें। अर्थात् उनके मुख से जानकर विद्वज्जन ईर्ष्याद्वेष से रहित होकर समुचित अर्थ ग्रहण करे। अथवा मेरे द्वारा कोई कुकृत अर्थात् अशास्त्रीय अनुचित बात कही गयी है, अथवा अल्प अर्थात् न्यून मात्रा में संक्षिप्त कर दी गयी हो, अथवा इस ग्रन्थ में मूल विषय को ही न कहा गया हो; इन सभी का विद्वान् पुरुष द्वेष रहित होकर समुचित परिहार (संशोधन) करेंगे।।५।।

सतां प्रमाणपूर्वकाणि शास्त्राणि प्रमाणितानि भवन्त्येतदेव प्रदर्शयन्नाह—

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम्।
शास्त्रमुपसङ्गृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः।।६।।

पूर्वाचार्यों के नमस्कारपूर्वक ग्रन्थ की पूर्णता को कहते हैं—

सूर्य, मुनिगण और गुरुजनों के चरणों में नमस्कारजन्य अनुग्रह से उत्पन्न बुद्धि के द्वारा इस ग्रन्थ का संग्रह मैंने किया है। अतः पूर्वाचार्यों के लिए मेरा कृतज्ञता पूर्वक नमस्कार है।।६।।

दिनकर आदित्यः। ताराभाः सर्व एव ग्रहाः। मुनयो वसिष्ठादयः।

गुरुरादित्यदासाख्यः स्वपिता। दिनकरमुनिगुरूणां चरणाः पादाः। तेषां प्रणिपातो नमस्कारः। तत्कृतात् तत्करणाज्जातः प्रसादोऽनुग्रहो यस्ततो मतिर्बुद्धिर्यस्य तेन दिनकरमुनिगुरुचरणप्रतिपातकृत-प्रसादमतिना मयेदं शास्त्रं ज्यौतिषग्रन्थमुपसङ्गृहीतं संक्षिप्तीकृतम्। तस्मात् तेभ्यः पूर्वप्रणेतृभ्यः पूर्वाचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमस्कारो भवतु।।६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावुपसंहारो नाम
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।।१०५।।

दिनकर अर्थात् सूर्य और तारा सदृश प्रकाशमान सभी ग्रह, वशिष्ठादि मुनिगण, गुरु अर्थात् आदित्यदास नामक अपने पिता; उन सभी के चरणों में प्रणिपातपूर्वक प्रणाम करता हूँ। उनके लिये किये गये प्रणाम से जो अनुग्रह प्राप्त हुआ उससे उत्पन्न बुद्धि के कारण मेरे द्वारा यह ज्योतिष शास्त्र अर्थात् बृहत्संहिता नामक ज्योतिषग्रन्थ का संग्रह कर संक्षिप्त स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। अतएव उन सभी प्रणेता अर्थात् पूर्वाचार्यों को मेरा नमस्कार हो।।६।।

श्रीभट्टोत्पलविरचित संहिता विवृति में उपसंहार नामक १०५ अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१०५।।

❑❑

अथ शास्त्रानुक्रमणी व्याख्यायते।।१०६।।

कदाचिदादर्शदोषाल्लेखदोषाच्चाध्यायव्यत्ययो भवत्यतोऽनुक्रमणी सद्भिः क्रियते। तत्रादावेवाध्यायसंग्रार्थमाह–

शास्त्रोपनयः पूर्वं सांवत्सरसूत्रमर्कचारश्च।
शशिराहुभौमबुधगुरुसितमन्दशिखिग्रहाणां च।।१।।

कदाचित् दृष्टिदोष अथवा लेखन दोषों के कारण अध्यायों में व्यतिक्रम हो जाता है, इसलिए सज्जन पुरुष अनुक्रमणिका बनाते हैं–

आरम्भ में (१) उपनयनाध्याय (२) साम्वत्सरसूत्राध्याय (३) आदित्यचाराध्याय (४) चन्द्रचाराध्याय (५) राहुचाराध्याय (६) भौमचाराध्याय (७) बुधचाराध्याय (८) बृहस्पतिचाराध्याय (९) शुक्रचाराध्याय (१०) शनैश्चरचाराध्याय तथा (११) केतुचाराध्याय है।।१।।

गतार्थेयमार्या। शिखिग्रहाः केतवः। चारशब्दोऽत्र सम्बध्यते।।१।।

यह आर्याछन्द है। गतार्थ अर्थात् पूर्व में इसका विचार किया जा चुका है। शिखिग्रह अर्थात् केतु समझना चाहिये। यहाँ पर चार शब्द से ग्रह चार का सम्बन्ध

है॥१॥

अन्दयप्याह–

चारश्चागस्त्यमुनेः सप्तर्षीणां च कूर्मयोगश्च।
नक्षत्राणां व्यूहो ग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च॥२॥

और भी कहते हैं–

(१२) अगस्त्यचाराध्याय (१३) सप्तर्षिचाराध्याय (१४) नक्षत्र कूर्माध्याय (१५) नक्षत्रव्यूहाध्याय (१६) ग्रहभक्तियोगाध्याय तथा (१७) ग्रहयुद्धाध्याय है॥२॥

सप्तर्षीणां चारो ग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दो ग्रहयुद्धम्। गतार्थेयमार्या॥२॥

सप्तर्षिचार, ग्रहभक्ति और ग्रहविमर्द अर्थात् ग्रहयुद्ध समझना चाहिये। यह भी पूर्व वर्णित आर्याछन्द है॥४२॥

अन्यदप्याह–

ग्रहशशियोगः सम्यग्ग्रहवर्षफलं ग्रहाणां च।
शृङ्गाटसंस्थितानां मेघानां गर्भलक्षणं चैव॥३॥

और भी कहते हैं–

(१८) शशिग्रहसमागमाध्याय (१९) ग्रवहर्षफलाध्याय (२) ग्रहशृङ्गाटकाध्याय तथा (२१) गर्भलक्षणाध्याय है॥३॥

ग्रहशशियोगः समागमः। ग्रहाणां शृङ्गाटसंस्थितानां ग्रहशृङ्गाटकफलम्। गतार्थेयमार्या॥३॥

ग्रहशशियोग अर्थात् चन्द्रमा की अन्य ग्रहों से युति, ग्रह शृङ्गाटसंस्थित का तात्पर्य है, ग्रहशृङ्गाटफल। यह आर्या छन्द है॥३॥

अन्यदप्याह–

धारणवर्षणरोहिणिवायव्याषाढभद्रपदयोगाः।
क्षणवृष्टिः कुसुमलताः सन्ध्याचिह्नं दिशां दाहः॥४॥

और भी कहते हैं–

(२२) गर्भधारणाध्याय (२३) प्रवर्षणाध्याय (२४) रोहिणीयोगाध्याय (२५) स्वातियोगाध्याय (२६) आषाढ़ीयोगाध्याय (२७) वातचक्राध्याय (२८) सद्योवर्षणाध्याय (२९) कुसुमलताध्याय (३०) सन्ध्यालक्षणाध्याय (३१) दिग्दाहलक्षणाध्याय है॥४॥

क्षणवृष्टिः सद्योवर्षः। गतार्थेयमार्या॥४॥

क्षणवृष्टि से सद्योवर्षणाध्याय अभिप्रेत है। यह आर्याछन्द है॥४॥

अन्यदप्याह–

भूकम्पोल्कापरिवेषलक्षणं शक्रचापखपुरं च।
प्रतिसूर्यो निर्घातः सस्यद्रव्यार्घकाण्डं च।।५।।

और भी कहते हैं–

(३२) भूकम्प लक्षणाध्याय (३३) उल्कालक्षणाध्याय (३४) परिवेषलक्षणाध्याय (३५) इन्द्रायुधलक्षणाध्याय (३६) गन्धर्वनगरलक्षणाध्याय (३६) प्रतिसूर्यलक्षणाध्याय (३८) निर्घातलक्षणाध्याय (३९) सस्यजातकाध्याय (४०) द्रव्यनिश्चयाध्याय तथा (४१) अर्घकाण्डाध्याय है।।५।।

खपुरं गन्धर्वपुरम्। गतार्थेयमार्या।।५।।

खपुर अर्थात् गन्धर्वपुर (गन्धर्वनगर) का बोध अपेक्षित है। यहाँ पर आर्याछन्द है।।५।।

अन्यदप्याह–

इन्द्रध्वजनीराजनखञ्जनकोत्पातबर्हिचित्रं च।
पुष्याभिषेकपट्टप्रमाणमसिलक्षणं वास्तु।।६।।

और भी कहते हैं–

(४२) इन्द्रध्वजसम्पदध्याय (४३) नीराजनाध्याय (४४) खञ्जनलक्षणाध्याय (४५) उत्पाताध्याय (४६) मयूरचित्रकाध्याय (४७) पुष्यस्नानाध्याय (४८) पट्टलक्षणाध्याय (४९) खड्गलक्षणाध्याय तथा (५०) अंगविद्याध्याय (५१) पिटकलक्षणाध्याय (५२) वास्तुविद्याध्याय।।६।।

बर्हिचित्रं मयूरचित्रकम्। असिलक्षणं खड्गलक्षणम्। गतार्थेयमार्या।।६।।

बर्हिचित्र से अभिप्राय है मयूरचित्रकाध्याय। असिलक्षण अर्थात् खड्गलक्षण। यह आर्याछन्द है।।६।।

अन्यदप्याह–

उदकार्गलमारामिकममरालयलक्षणं कुलिशलेपः।
प्रतिमा वनप्रवेशः सुरभवनानां प्रतिष्ठा च।।७।।

और भी कहते हैं–

(५३) दकार्गलाध्याय (५४) वृक्षायुर्वेदाध्याय (५५) प्रासादलक्षणाध्याय (५६) वज्रलेप लक्षणाध्याय (५७) प्रतिमालक्षणाध्याय (५८) वनसम्प्रवेशाध्याय तथा (५९) प्रतिमा प्रतिष्ठापनाध्याय।।७।।

आरामिकं वृक्षायुर्वेदः। कुलिशलेपो वज्रलेपः। गतार्थेयमार्या।।७।।

आरामिक शब्द का प्रयोग वृक्षायुर्वेदक के लिये तथा कुलिशलेप वज्रलेप के

लिये अभीष्ट है। यहाँ आर्याछन्द है॥७॥

अन्यदप्याह–

चिह्नं गवामथ शुनां कुक्कुटकूर्माजपुरुषचिह्नं च।
पञ्चमनुष्यविभागः स्त्रीचिह्नं वस्त्रविच्छेदः॥८॥

और भी कहते हैं–

(६०) गोलक्षणाध्याय (६१) श्वलक्षणाध्याय (६२) कुक्कुट लक्षणाध्याय (६३) कूर्मलक्षणाध्याय (६४) छाग लक्षणाध्याय (६५) अश्व लक्षणाध्याय (६६) हस्तिलक्षणाध्याय (६७) पुरुषलक्षणाध्याय (६८) पञ्चमनुष्य विभागाध्याय (६९) कन्यालक्षणाध्याय तथा (७०) वस्त्रविच्छेदलक्षणाध्याय॥८॥

चिह्नं लक्षणम्। गतार्थेयमार्या॥९॥

चिह्न अर्थात् शारीरिक लक्षण। यह पूर्ववर्णित आर्याछन्द है॥८॥

अन्यदप्याह–

चामरदण्डपरीक्षा स्त्रीस्तोत्रं चापि सुभगकरणं च।
कान्दर्पिकानुलेपनपुंस्त्रीकाध्यायशयनविधिः॥९॥

और भी कहते हैं–

(७१) चामरलक्षणाध्याय (७२) दण्ड (छत्र) लक्षणाध्याय (७३) स्त्री प्रशंसाध्याय (७४) सौभाग्यकरणअध्याय (७५) कान्दर्पिकाध्याय (७६) गन्धयुक्त्यध्याय (७७) स्त्रीपुरुषसंयोगाध्याय तथा (७८) शयनविध्याध्याय॥९॥

स्त्रीस्तोत्रं स्त्रीप्रशंसा। अनुलेपनं गन्धयुक्तिः। गतार्थेमार्या॥९॥

स्त्रीस्तोत्र अर्थात् स्त्रीप्रशंसाध्याय, अनुलेपन अर्थात् गन्धयुक्त्याध्याय। यहाँ आर्याछन्द है॥९॥

अन्यदप्याह–

वज्रपरीक्षा मौक्तिकलक्षणमथ पद्मरागमरकतयोः।
दीपस्य लक्षणं दन्तधावनं शाकुनं मिश्रम्॥१०॥

और भी कहते हैं–

(७९) रत्नपरीक्षाध्याय (वज्रपरीक्षाध्याय) (८०) मुक्तालक्षणाध्याय (८१) पद्मरागलक्षणम् (८२) मरकतलक्षणाध्याय (८३) दीपलक्षणाध्याय (८४) दन्तकटलक्षणअध्याय (८५) शाकुनाध्याय है॥१०॥

गतार्थेयमार्या॥१०॥

यह पूर्ववर्णित आर्या छन्द है॥१०॥

अन्यदप्याह–

अन्तरचक्रं विरुतं श्वचेष्टितं विरुतमथ शिवायाश्च।
चरितं मृगाश्वकरिणां वायसविद्योत्तरं च ततः।।११।।

और भी कहते हैं–

(८६) शाकुनेन्तरचक्राध्याय (८७) विरुताध्याय (८८) श्वचक्राध्याय (८९) शिवारुताध्याय (९०) मृगचेष्टिताध्याय (९१) गवेङ्गिताध्याय (९२) अश्वेङ्गिताध्याय (९३) हस्तिचेष्टिताध्याय (९४) वायसविरुताध्याय तथा (९५) शाकुनोत्तराध्याय है।।११।।

श्वेचष्टितं शिवारुते चान्तर्लीनम्। तथा गोचेष्टितमध्ये उष्ट्रीव्याघ्रीसिंहीप्रधानप्राणिनां सर्वमेवान्तर्लीनम्। तथा मृगजातीनां मध्ये विडालव्याघ्रवराहसूकरोष्ट्रादीनां शृगालवच्चेष्टितलक्षणं कथितम्। अन्तर्लीनं सर्वत्र परिज्ञेयम्। एषां श्ववल्लक्षणं चेष्टितं च सर्वं परिज्ञेयम्।।११।।

श्वचेष्टित तथा शिवारुत अध्याय परस्पर सम्बद्ध हैं। गोचेष्टित अध्याय के अन्तर्गत उष्ट्री, व्याघ्री और सिंही आदि मुख्य पशुओं का भी इसी अध्याय में अन्तर्भाव समझना चाहिये। मृगजाति (पशुजाति) के अन्तर्गत विडाल, व्याघ्र, वराह (जंगली सूअर), सूकर, ऊँट, आदि का शृंगाल के समान लक्षण बतलाया गया है। यहाँ पर अन्तर्वर्ती का अभिप्राय सर्वत्र जानना चाहिये। इनका श्वान लक्षण के चेष्टानुसार फल का ज्ञान करे।।११।।

अथान्यदप्यध्यायसंग्रहविधिमाह–

पाको नक्षत्रगुणास्तिथिकरणगुणाः सधिष्ण्यजन्मगुणाः।
गोचरमथ ग्रहाणां कथितो नक्षत्रपुरुषश्च।।१२।।

अन्य अध्यायों के क्रम को कहते हैं–

(९६) पाकाध्याय (९७) नक्षत्रकर्मगुणाध्याय (९८) तिथिकर्मगुणाध्याय (९९) करणगुणाध्याय (१००) नक्षत्रजातकाध्याय (१०१) राशि विभागाध्याय (१०२) विवाहपटलाध्याय (१०३) ग्रहगोचराध्याय (१०४) रूपसत्राध्याय; इस ग्रन्थ के अन्तर्गत हैं।।१२।।

पाकाध्यायः। नक्षत्रगुणाः। तिथिगुणाः। करणगुणाः। अत्रैव मध्ये राशिगुणाः। पुंसां क्षुरकर्मकर्णवेधनविवाहादिकं रक्षोपतापशान्तिकर्म च तत्रैवोक्तम्। सह नक्षत्रजन्मगुणश्च ग्रहगोचराध्यायः। नक्षत्रपुरुषो रूपसत्रं चोक्तं कथितम्।।१२।।

पाकाध्याय, नक्षत्रकर्मगुणाध्याय, तिथिकर्म गुणाध्याय, करणगुणाध्याय तथा इसी के अनन्तर राशिविभागाध्याय। पुरुषों के क्षौर कर्म, कर्णवेध, विवाहादि तथा रक्षा, उपद्रव शान्ति कर्म का अभिकथन उसी में किया गया है। इसके साथ ही नक्षत्रजन्मगुणाध्याय अर्थात् नक्षत्राजातकाध्याय और ग्रहगोचराध्याय क्रमशः कहे गये

हैं। नक्षत्रपुरुष का विचार रूपसत्राध्याय में किया गया है॥१२॥

अन्यदप्याह–

शतमिदमध्यायानमनुपरिपाटिक्रमादनुक्रान्तम्।
अत्र श्लोकसहस्राण्याबद्धानिन्यूनचत्वारि॥१३॥

और भी कहते हैं–

यहाँ पर जिस क्रम से पठित किये गये हैं उसी क्रम से इस ग्रन्थ में एक सौ अध्याय बनाये गये हैं। इसमें एक सौ कम चार हजार श्लोक दिये गये हैं॥१३॥

इदं शतमध्यायानामनुपरिपाटिक्रमादनुक्रान्तं रचितम्। येनैव प्रकारेण परिपठितं तेनैव रचितम्। अत्रास्यां संहितायां श्लोकानामनुष्टुप्छन्दसामूनचत्वारि सहस्राणि। एकोनचत्वारिंशच्छतानि। आबद्धानि रचितानि। वातचक्राङ्गविद्यापिटकाश्वगज-लक्षणरहितमेतत्प्रमाणम्। तैश्च सह परिपूर्णानि चत्वारि सहस्राणि भवन्तीति॥१३॥

यह ग्रन्थ बृहत्संहिता, सौ अध्यायों में इस उपसंहाराध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत क्रमानुसार विरचित है। तात्पर्य यह है कि उपसंहाराध्याय में जो क्रम कहा गया है, उसी क्रम से ग्रन्थ में अध्यायों की रचना है। इस बृहत्संहिता ग्रन्थ में १०० न्यून चार हजार श्लोक अर्थात् अनुष्टुपछन्द लिखे गये हैं। तात्पर्य यह है कि कि ३९०० श्लोकों में यह ग्रन्थ आबद्ध (रचित) है। यह श्लोक संख्या वातचक्र, अङ्गविद्या, पिटकलक्षण, अश्वलक्षण, गजलक्षण; इन पाँच अध्यायों को छोड़कर कही गयी है। इन पाँच अध्यायों के श्लोकों की सम्मिलित संख्या १०० हैं। इनके सहित श्लोकों की सम्पूर्ण संख्या ४००० हो जाती है॥१३॥

अन्यदप्याह–

अत्रैवान्तर्भूतं परिशेषं निगदितं च यात्रायाम्।
बह्वाश्चर्यं जातकमुक्तं करणं च बहुचोद्यम्॥१४॥

और भी कहते हैं–

इसी के अन्तर्भूत परिशेष सभी विषय यात्रा (योगयात्रा) नामक ग्रन्थ में कहे गये हैं, तथा मैंने बहुत आश्चर्य करने वाला जातक और बहुत प्रशस्त करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) भी कहा है॥१४॥

अत्रैवान्तर्भूतं जातकं यात्राविधानकरणं सर्वमन्तर्लीनं परिशेषं प्रकाशीकरणाय

---

१. करणं पञ्चसद्धिान्तिका बहुचोद्यं बहुशस्तमुक्तं निगदितिमिति वि.पु. पाठः।

२. (१३-१४) एतौ श्लोकौ प्र. पुस्तके एव वर्तते नान्येषु।

यात्रायां सर्वं निगदितम्। तथैव प्रकाशीकरणाय बह्वाश्चर्यं प्रभूतविस्मयजननं जातकमुक्तं विस्तृतम्। तथा[1] बहुचोद्यं करणं पञ्चसिद्धान्तिकायां शिष्यहितार्थं प्रकाशितम्।।१४।।

[2]आचार्यप्रवरस्य बोधजलधेः पारं तितीर्षुर्जनो
व्यामुह्यन्नभिदेयरत्ननिचयैः कांक्षंस्तरीं भ्राम्यति।
इत्येवंविधमाकलय्य करुणामालम्ब्य भट्टोत्पल-
श्चक्रे तत्कृतिसंहिताविवरणं स्थैर्यं प्लवं कीर्तये।।
यदत्राधिकमूनं वा भ्रान्त्या त्वज्ञानतोऽपि वा।
विपर्ययेण वा यत् तत्सर्वं संशोध्यतां बुधाः।।इति।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शास्त्रानुक्रमणी नाम षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

शुभम्

इस ग्रन्थ के साथ ही ज्योतिषशास्त्र के प्रयोजनार्थ यात्रा विधान को सम्पूर्णतया प्रकट करने के लिये यात्रा ग्रन्थ (योग यात्रा) का निर्माण मैंने (वराह मिहिर) किया है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र को प्रकाशित करने के लिये सर्वाधिक आश्चर्योत्पादक बृहज्जातक, लघुजातक आदि जातक ग्रन्थों का विस्तृत प्रणयन मैंने (वराहमिहिर) किया है। अतीव महत्वपूर्ण पञ्चसिद्धान्तिका नामक करण ग्रन्थ को शिष्यों के कल्याणार्थ मैंने (वराहमिहिर) प्रकाशित किया है॥१४॥

आचार्य प्रवर श्रीमान् वराहमिहिर के शास्त्रज्ञान रूपी समुद्र के पार जाने के इच्छुक व्यक्ति उस समुद्र में निहित रत्नराशि को प्राप्त करने के लिये व्यामोह वश छोटी नौका से प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के लघु प्रयत्न का आकलन कर करुणा के साथ आचार्य भटोत्पल ने उनकी कृति बृहत्संहिता का अर्थ स्पष्ट करने हेतु विस्तृत नौका सदृश विवृति नाम टीका का निर्माण किया है। इस बृहत्संहिता ग्रन्थ की विवृति टीका में भ्रमवश अथवा अज्ञानवश अथवा विपरीत बोधवश जो भी अधिक अथवा न्यून कहा गया हो, उन सबको विद्वज्जन संशोधित करने की कृपा करें।

श्री भट्टोत्पल विरचित संहिता विवृति में शास्त्रानुक्रमणी नामक, १०६ अध्याय की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई॥१०६॥ आचार्य नागेन्द्र पाण्डेय कृत हिन्दी व्याख्या के साथ बृहत्संहिता का चतुर्थ भाग सम्पूर्ण हुआ। इति शम्।

परिशिष्ट-१

ग्रहानुसार प्रभावित राज्यों का परिचय[1]

१. चोल

भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिणी छोर, जो कृष्णा नदी के दक्षिण में पड़ता है, वह तीन राज्यों में विभक्त था–चोल, पाण्ड्य और चेर या केरल।

चोल राज्य मध्य काल के आरम्भ में चोलमण्डलम् (कोरोमंडल) कहलाता था। यह पेन्नार और वेलार नदियों के बीच में पाण्ड्य राज्य क्षेत्र के पूर्वोत्तर कोण में था। हमें संगम साहित्य से चोलों के राजनीतिक इतिहास का कुछ आभास मिलता है। उनकी राजनीतिक सत्ता का केन्द्र उरैयूर था, जो सूती कपड़े के व्यापार के लिए मशहूर था। लगता है कि ईसा पूर्व दूसरी सदी के मध्य थें एलारा नामक चोल राजा ने श्रीलंका पर विजय की ओर ५० वर्षों तक वहाँ शासन किया। चोलों का अधिक सुनिश्चित इतिहास ईसा की दूसरी सदी में उनके प्रख्यात राजा कारैकाल से आरम्भ होता है। उसने पुहार की स्थापना की और कावेरी नदी के किनारे १६० किलोमीटर लम्बा बाँध बनाया। इसका निर्माण १२,००० गुलामों से कराया गया, जिन्हें श्रीलंका से बन्दी बना कर लाया गया था। पुहार की पहचान कावेरीपट्टनम से की गई है, जो चोलों की राजधानी थी। यह व्यापार और वाणिज्य का बहुत वहा केन्द्र था और उत्खननों से पता चलता है कि उसका गोदीबाड़ा (डॉक) बहुत विशाल था। चोलों के वैभव का मुख्य स्रोत सूती कपड़े का व्यापार था। उनके पास कुशल नौ सेना भी था।

कारैकाल के उत्तराधिकारियों के समय चोल सत्ता का तेजी से ह्रास हुआ। उनकी राजधानी पर चढ़ाई कर उसे ध्वस्त कर दिया गया। चेरों और पाण्ड्यों ने चोलों के राज्य में घुसकर अपना-अपना राज्य फैलाया। चोलों की जो भी बची-खुची सत्ता रह गई उसे उत्तर से पल्लवों ने हमला कर समाप्त कर दिया। ईसा की चौथी सदी से ९वी सदी तक के दक्षिण भारतीय इतिहास में चोलों की भूमिका नगण्य रह गयी। और पहाड़ों के बीच की एक सँकरी-सी पट्टी पड़ती थी, जिसमें आधुनिक केरल राज्य का और तमिलनाडु का अंश था। ईसा की आरम्भिक सदियों में चेर क्षेत्र का बहुत महत्व था।

---

१. बृहत्संहिता में अनेक स्थलों पर विविध भौगोलिक क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर ग्रहभक्तियोगाध्याय (१६) में वर्णित कतिपय राज्यों का विशद परिचय प्रस्तुत है।

रोमनों ने अपने हित की रक्षा के लिए सेना की दो टुकड़ियों को मुजिरीस में स्थापित की थी, जिसकी पहचान चेर क्षेत्र में क्रागनोर से की जाती है। कहा जाता है कि उन्होंने वहाँ ऑगस्टस का मन्दिर भी बनवाया।

चेरों का इतिहास पाण्ड्यों और चोलों के साथ निरन्तर युद्ध का इतिहास है। यद्यपि चेरों ने चोल नरेश कारैकाल के पिता का वध कर दिया, लेकिन चेर नरेश को भी अपनी जान गँवानी बड़ी। बाद में दोनों राज्य कुछ समय के लिए मित्र बन गए और अंततः दोनों वैवाहिक सम्बन्धों से भी जुड़ गये। आगे चलकर चेर राजा ने चोलों के खिलाफ पाण्ड्य शासकों से गठजोड़ किया। लेकिन चोलों ने दोनों को हरा दिया। कहा जाता है कि चेर राजा ने पीठ में घाव लगने के कारण लज्जावश आत्महत्या कर ली।

चेर कवियों के अनुसार उनका सबसे बड़ा राजा सेंगुट्टुवन था, जिसे लाल या भला चेर भी कहा जाता था। उसने अपने शत्रुओं का संहार किया और अपने भाई को सुरक्षित रूप से सिंहासन पर बैठा दिया। कहा जाता है कि उसने उत्तर दिशा में चढ़ाई की ओर गंगा को पार किया। ईसा की दूसरी शती के बाद चेर शक्ति का ह्रास हुआ और उसके बाद ईसा की आठवी सदी तक उनके इतिहास के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

२. द्रविड (सुदूर दक्षिण)

इस क्षेत्र के अन्तर्गत तुंग भद्रा नदी के दक्षिण का समस्त भूभाग सम्मिलित था। इस भाग को द्रविड़ अथवा तमिल देश कहा जाता था। अति प्राचीन काल से यहाँ चोल, चेर तथा पाण्ड्य राज्यों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। पेरीप्लस में इस भाग को 'दमिरिका' (दमिलकम्) कहा गया है। इस तिकोने भूभाग में कृष्णा, तुंगभद्रा, कावेरी तथा उसकी सहायक नदिया बहती है।

३. स्थानेश्वर या थानेश्वर

प्राचीन स्थानेश्वर या थानेश्वर आधुनिक हरियाणा प्रान्त के करनाल जिले में स्थित थानेश्वर ही है। इसी क्षेत्र में छठीं शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ में पुष्यभूति ने वर्द्धन राजवंश की स्थापना की।

४. कोशल

कोशल, राज्य प्रायः आधुनिक अवध के बराबर था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर में इसकी सीमा नेपाल की पहाड़ियों के नीचे तक फैली हुई थी। पूर्व में सदा नीरा नदी इसे विदेह से अलग करती थी। यह नदी एक समय में आर्य जगत की पूर्वी सीमा थी। इसके दूसरी ओर विस्तृत जंगल था। ब्राह्मण लोग इस प्रदेश में नहीं जाते थे, परन्तु माधव विदेह द्वारा इस प्रदेश को जीतने की घटना के पश्चात् यहाँ विदेह के

समृद्ध राज्य की स्थापना हुई थी। माधव विदेह की कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कौशल राज्य पर ब्राह्मणों का आधिपत्य सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों के बाद, किन्तु विदेह से पूर्व हुआ था। कौशल के दक्षिण में सर्पिका अथवा स्पन्दिका नामक नदी थी और पश्चिम में गोमती जो प्रसिद्ध नैमिषारण्य से होकर बहती थी और कौशल तथा पांचाल सहित दो अन्य राज्यों के बीच सीमा रेखा का काम करती थी।

५. पुण्ड्र

ऐतरेय ब्राह्मण में दक्षिण में रहने वाली आन्ध्र, पुण्ड्र, मुतिब, पुलिन्द एवं शबर जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्हें विश्वामित्र की शापित संताने अथवा असंस्कारित जातियाँ कहा गया है।

६. कम्बोज

कम्बोज छठी शताब्दी ईसा पूर्व का एक महाजनपद था। जिसका उल्लेख गान्धार के साथ मिलता है। सामान्यत: इस राज्य का विस्तार दक्षिणी-पश्चिमी कश्मीर से लेकर हिन्दूकुश तक था जिसकी राजधानी राजपुर अथवा हाटक थी। रामायण तथा महाभारत में कई स्थानों पर इस राज्य का उल्लेख हुआ है। रामायण में यहाँ के श्रेष्ठ घोड़ों का वर्णन मिलता है। कालिदास ने रघु द्वारा कम्बोजों को जीते जाने का उल्लेख किया है। पहले यहाँ राजतंत्र था किन्तु बाद में संघ राज्य स्थापित हो गया। कौटिल्य ने कम्बोजों को 'वार्ताशस्त्रोपजीवी संघ' अर्थात् कृषि पशुपालन, वाणिज्य तथा शस्त्रादि से जीविका चलाने वाला कहा है। कनिंघम का विचार है कि राजपुर से तात्पर्य कश्मीर के राजौरी नामक स्थान से है। वराहमिहिर ने कश्मीर और कम्बोज का एक साथ उल्लेख किया है। अत: सिद्ध है कि कश्मीर का पामीर क्षेत्र ही कम्बोज है।

७. गान्धार

पाकिस्तान के पेशावर तथा रावलपिण्डी जिलों की भूमि में प्राचीन गन्धार राज्य बसा हुआ था। इसका उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलता है। ऋग्वेद में यहाँ के निवासियों को गान्धारी कहा गया है तथा इस प्रदेश की भेड़ों की प्रशंसा की गई है। रामायण तथा महाभारत में भी इसका उल्लेख है। महात्मा बुद्ध के कुछ पूर्व हम गन्धार का उल्लेख एक महाजनपद के रूप में अंगुत्तर निकाय में पाते हैं। ईसा पूर्व छठी शताब्दी के मध्य यहाँ पुक्कुसाति अथवा पुष्करसारिन नामक राजा राज्य करता था। उसने मगध नरेश बिम्बिसार के पास अपना दूत भेजकर उससे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था। उसने अवन्तिराज प्रद्योत पर आक्रमण कर उसे पराजित किया था। कुषाण काल में गंधार प्रदेश में कला की एक विशेष शैली का जन्म हुआ जिसे गन्धार कला कहा जाता है।

गन्धार राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। यह शिक्षा एवं साहित्य का एक प्रमुख केन्द्र थी।

८. चम्पा

बिहार के भागलपुर जिले की भूमि में प्राचीनकाल का अंग महाजनपद था। चम्पा इसी की राजधानी थी। पुराणों में इसका एक नाम मालिनी भी मिलता है। जातक ग्रन्थों से पता चलता है कि यह एक समृद्धशाली नगरी थी जहाँ अनेक सम्पन्न व्यापारी निवास करते थे। रेशम के वस्त्र बुनने का यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र था जहाँ के बने हुये रेशमी वस्त्र दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों तक पहुँचते थे। यहाँ के व्यापारियों ने हिन्द-चीन में जाकर चम्पा नामक उपनिवेश स्थापित किया था। जैनग्रन्थ विविधतीर्थकल्प में चम्पा को एक तीर्थ बताया गया है, जहाँ तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म हुआ था। तीर्थङ्कर महावीर ने भी इस नगर में निवास किया था।

बुद्धकाल में चम्पा ब्रह्मदत्त नामक राजा की राजधानी थी। मगध के राजा बिम्बिसार ने इसे जीत लिया तथा अपने पुत्र को चम्पा का अधिपति बनाया। जैन साहित्य में चम्पा का अजातशत्रु की राजधानी के रूप में भी वर्णन मिलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस नगर का वर्णन किया है।

९. तक्षशिला

वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित तक्षशिला प्राचीन समय में गान्धार राज्य की राजधानी थी। रामायण के अनुसार भरत ने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर इस नगर की स्थापना की थी। महाभारत से पता चलता है कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने इसे जीता तथा यहीं अपना प्रसिद्ध नागयज्ञ किया था। तक्षशिला की इतिहास में प्रसिद्धि का कारण उसका ख्याति प्राप्त शिक्षा केन्द्र होना था। यहाँ अध्ययन करने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे जिनमें राजा तथा सामान्य जन दोनों ही सम्मिलित थे। सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता था। कोशल के राजा प्रसेनजित, मगध का राजवैद्य जीवक, सुप्रसिद्ध राजनीतिविद् चाणक्य, बौद्ध विद्वान वसुबन्धु आदि ने यहीं शिक्षा प्राप्त की थी। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि यह धनुर्विद्या तथा वैद्यक की शिक्षा के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी सैनिक शिक्षा यहीं पर ग्रहण की थी। चाणक्य यहाँ का प्रमुख आचार्य भी बन गया था।

पश्चिमोत्तर भारत में स्थित होने के कारण तक्षशिक्षा विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा आक्रान्त होता रहा। सिकन्दर के समय यहाँ का राजा आम्भी था जिसने स्वेदश के विरुद्ध उसकी मदद की थी। यूनानी लेखक इस देश की समृद्धि का उल्लेख करते हैं। मौर्यकाल में यहाँ उत्तरापथ की राजधानी थी। मौर्यकाल के बाद यहाँ इण्डो-यूनानी

शक तथा कुषाण राजाओं का शासन रहा। तक्षशिला पर चतुर्थ शती से गुप्त राजाओं का प्रभाव रहा। तत्पश्चात् हूणों के बर्बर आक्रमण ने यहाँ की प्राचीन समृद्धि एवं सभ्यता को नष्ट कर दिया। सातवीं शती के चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय में यह नगर उजाड़ हो चुका था। तत्पश्चात् तक्षशिला का इतिहास अन्धकार पूर्ण हो गया। १८६३ ई. में कनिंघम इस स्थान के खण्डहरों का पता लगाया। १९१२ से १९२९ तक मार्शल ने यहाँ व्यापक पैमाने पर खुदाइयाँ करके पुरातात्विक महत्व की अनेक वस्तुएँ प्राप्त की। तीन प्राचीन नगरों के अवशेष खुदाई में मिलते हैं, जिनके आधुनिक नाम भीर का टीला, सिरकप तथा सिरमुख है। इसके अतिरिक्त अनेक भवनों, विहारों तथा स्तूपों के अवशेष भी खुदाई में मिलते हैं। इससे पता चलता है कि तक्षशिला बौद्ध सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा होगा। कुषाणयुगीन सिक्के भी यहाँ मिलते हैं।

एक विशेष प्रकार के काले-चमकीले मृदभाण्ड यहाँ से मिलते हैं जिन्हें एन. बी. पी. (Northen Black Polished) कहा जाता है। इस प्रकार के २२ बर्तनों के टुकड़े यहाँ से मिलते हैं, जिनका काल ई. पू. ५००-२०० निर्धारित किया गया है। तक्षशिला से रोमन उत्पत्ति की कई प्राचीन सामग्रियाँ जैसे धातु के बर्तन, काँच के कटोरे मनके, रत्न आदि प्राप्त होते हैं। वे भारत तथा रोम के बीच प्राचीन समय में होने वाले व्यापारिक सम्बन्धों की सूचना देते हैं। पश्चिम के कई देशों के व्यापारी स्थल-मार्ग द्वारा अपना माल लेकर तक्षशिला पहुँचते थे तथा यहाँ से उसे देश के अन्य भागों में पहुँचाया जाता था।

इस प्रकार तक्षशिला प्राचीन भारत का प्रसिद्ध सांस्कृतिक एवं व्यापारिक स्थल था।

तक्षशिला जैन धर्म का भी तीर्थस्थल कहा गया है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में यहाँ के १०५ जैन स्थलों का विवरण प्राप्त होता है।

१०. पुष्कलावती

इस स्थान की पहचान पेशावर (पाकिस्तान) से १७ मील उत्तर-पूर्व में रिजत 'चारसड्डा' नामक स्थान से की जाती है। यह गान्धार राज्य के पश्चिमी भाग की राजधानी थी। रामायण के अनुसार यह नगर भरत के पुत्र पुष्कल के नाम पर बसाया गया था। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह एक स्वतंत्र राज्य था। जहाँ का राजा अस्टक (हस्ति) था। उसने युनानी सेना का प्रबल प्रतिरोध किया और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

पुष्कलावती धर्म और कला का प्रमुख केन्द्र था। अशोक ने यहाँ एक स्तूप बनवाया था। कुषाण काल में गन्धार कला के अन्तर्गत यहाँ कई सुन्दर मूर्तियों का निर्माण हुआ। नगर के पश्चिमी द्वार पर शिव का विशाल मन्दिर था। हुएनसंग ने

पुष्कलावती को बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र बताया है। यहाँ अनेक बिहार थे तथा भिक्षु निवास करते थे। यहाँ के खण्डहरों में आज भी नगर के प्राचीन गौरव की स्मृति सुरक्षित है।

११. पुण्ड्रवर्धन (पुण्ड्र)

गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम (४१५-४५५ ई.) के समय में उत्तरी बंगाल में 'पुण्ड्रवर्धन' नामक गुप्तों का एक प्रदेश था। आधुनिक बाँगला देश के दीनाजपुर जिले में स्थित दामोदरपुर में उसका ताम्रपत्र मिला है, जिसमें इस प्रान्त (भुक्ति) का उल्लेख है। इसी में कोटिवर्ष नामक जिला (विषय) भी था। इसी स्थान से दानपत्र प्रचलित हुए थे। लेख में 'कोटिवर्ष अधिष्ठानाधिकरणस्य' अंकित है। कुमार गुप्त के समय यहाँ का शासक चिरादत्त था। बुद्धगुप्त के समय में यहाँ का शासक ब्रह्मदत्त बना। लगभग १ शती तक यह प्रान्त गुप्त साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहा।

१२. कलिंग

आधुनिक उड़ीसा प्रान्त में प्राचीन काल का कलिंग राज्य बसा हुआ था। मोटे तौर से यह दक्षिणी उड़ीसा का नाम था। उत्तरी उड़ीसा को उत्कल कहा गया है। महाभारत में कलिंग के राजा का नाम चित्रांगद मिलता है। कालिदास ने रघुवंश में कलिंग के वीरों का उल्लेख किया है जिनके पास विशाल गजसेना थी। रघुवंश में वहाँ के राजा का नाम हेमांगद मिलता है। अर्थशास्त्र में कलिंग के हाथियों को श्रेष्ठ बताया गया है। मौर्य सम्राट् अशोक ने २६१ ई. पू. में एक भीषण युद्ध के पश्चात् कलिंग पर अपना आधिपत्य जमाने में सफलता पाई थी। मौर्य साम्राज्य का यहां एक प्रान्त था, जिसकी राजधानी तौषलि में थी। मौर्यकाल के बाद प्रथम शताब्दी ईस्वी में खारवेल ने कलिंग में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। उसने कलिंग नगर को भव्य-भवनों एवं मार्गों से अलंकृत करवाया था।

१३. मथुरा

भगवान कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा प्राचीन भारत की प्रसिद्ध नगरी थी। रामायण के अनुसार 'मधु' नामक दैत्य ने इस नगर को स्थापित किया, जिससे इसे 'मधुपुर' कहा गया। महाभारत के समय 'मथुरा' शूरसेन महाजनपद की राजधानी थी। इस राज्य का उल्लेख ईसा. पूर्व छठी शताब्दी के महाजनपदों में भी है। इस काल में यहाँ का शासक अवन्तिपुत्र (अवंतिपुत्तो) था जिसने यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया था। मौर्यकाल में यह नगर कृष्णोपासना का केन्द्र था। मेगस्थनीज इसे 'मेथोरा' कहता था। जैन साहित्य में भी इस नगर की समृद्धि का वर्णन है।

शुगों के समय मे यह प्रसिद्ध नगर था। गार्गीसंहिता के अनुसार यवनों ने इसे जीता। तत्पश्चात् यहाँ शक-क्षत्रपों ने शासन किया महाक्षत्रप षोडास का लेख यहाँ से

मिलता है। उसने यहाँ एक सिंह शीर्ष स्तम्भ निर्मित करवाया था। कुषाणकाल में यहाँ कला की एक स्वतन्त्र शैली विकसित हुई जिसके अन्तर्गत बुद्ध तथा बोधिसत्व मूर्तियों का निर्माण हुआ। कनिष्क के शासन का पश्चिमी केन्द्र यहाँ था। जहाँ का शासक महाक्षत्रप खरपल्लान था। विम कडफिसेस तथा कनिष्क की मूर्तियाँ भी मथुरा से मिलती हैं। गुप्तकाल में मथुरा प्रसिद्ध स्थान रहा। यहाँ हिन्दू तथा बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। फाहियान के अनुसार यहाँ २० विहार थे। जिनमें ३ हजार भिक्षु निवास करते थे। मथुरा से गुप्तकाल की एक सुन्दर बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह विदेशी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त है। गुप्तकाल के पश्चात् इस नगर का गौरव समाप्त हो गया। ह्वेनसांग ने यहाँ के स्मारकों को उजड़ा हुआ पाया था। मुस्लिम आक्रमण से इस नगर को विशेष क्षति पहुँची तथा मन्दिरों को ध्वस्त किया गया। सम्प्रति मथुरा हिन्दू श्रद्धालुओं की भक्ति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।

१४. भृगुकच्छ या भरुकच्छ

इस स्थान की पहचान आधुनिक गुजरात प्रान्त के भड़ौच से की जाती है। यह पश्चिमी भारत का प्रसिद्ध नगर एवं समुद्री बन्दरगाह था। साहित्य में इसका नाम भरुकच्छ, भृगुपुर, भृगुतीर्थ, आदि मिलते हैं। विदेशी लेखक इसे बैरीगाजा, बैरूगाजा, बैगोंसा आदि कहते हैं। पुराणों में इसे महर्षि भृगु का क्षेत्र बताया गया है तथा इसे तीर्थस्थल कहा गया है। नासिक के एक गुहालेख से पता चलता है कि नहपान उषावदात के दामाद ने यहाँ यात्रियों की सुविधा के निमित्त आवासगृह, कुएं, तालाब आदि बनवाये थे। व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में यह नगर अत्यधिक प्रसिद्ध था। पश्चिमी तट का यहाँ सबसे बड़ा बन्दरगाह था। ईसा की प्रथम शती में उत्तरी तथा मध्य भारत का समस्त आयात-निर्यात यहीं से होता था। जातक ग्रन्थों में इस स्थान से जाने वाले व्यापारियों का उल्लेख हुआ है। सुप्पारक जातक में भरुकच्छ के समुद्री व्यापारियों की साहसिक यात्राओं के रोचक विवरण हैं। सुस्सोदि जातक के अनुसार यहाँ के व्यापारी सुवर्णभूमि को जलमार्गों द्वारा जाते थे।

यूनानी-रोमन लेखकों ने भृगुकच्छ के व्यापारिक महत्व का संकेत दिया है। पेरीप्लस से ज्ञात होता है कि यहाँ पहुँचने वाले जहाजों को संकट का सामना करना पड़ता था। पश्चिमी देशों से इस नगर में मदिरा, सीसा-स्वर्ण-रजत मुद्रायें बर्तन, अनुलेप आदि पहुँचते थे। यहाँ से निर्यातित होने वाली वस्तुओं में हाथीदाँत, रेशमी तरल, मलमल, मिर्च बहुमूल्य पत्थर आदि थी। प्लिनी लिखता है कि इस बन्दगाह से रोम के लिये विलासिता की सामग्रियाँ एवं रेशमी वस्त्र निर्यातित किये जाते थे। इनके बदले में रोम से एक करोड़ मुद्रायें प्रतिवर्ष भारत पहुँचती थीं। ह्वेनसांग भी इस बन्दरगाह की प्रसिद्धि का वर्णन करता है।

उत्तरी भारत के प्रमुख नगर भृगुकच्छ से जुड़े हुए थे। उज्जयिनी से यहाँ मलमल आदि जाते थे। दक्षिण के व्यापारी इसी बन्दरगाह, से अपनी सामग्रियाँ पश्चिमी देशों को भेजते थे। हर्ष के समय में भृगुकच्छ में गुर्जर वंश की राजधानी थी, जिसका शासक दक्ष द्वितीय था। यह राज्य संभवत: नर्मदा था। मही नदियों के बीच की भूमि में स्थित था।

१५. मालवा (मालव)

मध्य प्रदेश के आधुनिक उज्जैन विदिशा तथा सागर जिलों की भूमि पर प्राचीन काल का मालवा प्रदेश स्थित था। इसके दो भाग थे। (१) पूर्वी मालवा जिसकी राजधानी विदिशा थी। इसे आकर कहा जाता था। गौतमी पुत्र के नासिक लेख में इसका उल्लेख है। २. पश्चिमी मालवा इसे अवन्ति कहा जाता था तथा इसकी राजधानी उज्जयिनी में थी। गौतमीपुत्र ने इन दोनों ही राज्यों को जीता था। जैन ग्रन्थ कालकाचार्य कथानक से सूचित होता है कि प्रथम शती ई. पू. में यहाँ पर विक्रमादित्य का शासन था। उसने शकों को पराजित कर यहाँ से खदेड़ा तथा अपनी विजय की स्मृति में मालव अथवा विक्रम संवत् (५७ ई. पू.) का प्रवर्तन किया था। कालान्तर में यहाँ के लेखों में इसी संवत् का प्रयोग मिलने लगा।

१६. प्राग्ज्योतिषपुर

असम के गौहाटी के समीप स्थित इस स्थान में प्राचीन काल के कामरूप राज्य की राजधानी थी। पौराणिक मान्यता के अनुसार यहाँ प्राचीन काल में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर नक्षत्रों की रचना की थी। अत: इस स्थान का नाम प्राग्ज्योतिषपुर पड़ गया।

महाभारत में यहाँ के शासक नरकासुर का श्रीकृष्ण द्वारा वध किये जाने का विवरण है।

कालिदास ने रघुवंश में प्राग्ज्योतिष के शासक के ऊपर रघु की विजय का उल्लेख किया है। यह नगर लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी के पूर्वी तट पर बसा हुआ था।

समुद्रगुप्त के प्रयाग लेख में कामरूप का उल्लेख मिलता है। गुप्तों के बाद यहाँ वर्मन वंश का शासन था। जिसका प्रसिद्ध शासक भास्करवर्मन हर्ष का मित्र एवं सहायक था।

हेमचन्द्र कृत 'अभिधानचिन्तामणि' में प्राग्ज्योतिष का कामरूप द्वितीय नाम बताया गया है। वराहमिहिर ने इसकी गणना पूर्वी देशों के अन्तर्गत की है। कालिकापुराण में इसका नाम कामाख्या मिलता है। यहाँ आज भी देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है।

१७. कौशाम्बी

इलाहाबाद के दक्षिण-पश्चिम में लगभग ३३ मील की दूरी पर स्थित कोसम

नामक स्थान ही प्राचीन काल का कौशाम्बी था। यह नगर यमुना नदी के तट पर बसा हुआ था। पुराणों के अनुसार हस्तिनापुर के राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा के प्रवाह में बह जाने के बाद इस नगर की स्थापना करवाई थी। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में कौशाम्बी वत्सराज्य की राजधानी थी जहाँ का राजा उदयन था। इस नगर में जाकर बुद्ध ने कई बार धर्मोपदेश दिया तथा लोगों को अपना शिष्य बनाया था। बौद्ध धर्म का केन्द्र होने के साथ-साथ कौशाम्बी एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर भी था। जहाँ अनेक धनी व्यापारी निवास करते थे। मौर्य शासक अशोक ने यहाँ अपने स्तम्भ लेख उत्कीर्ण करवाये थे। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र का महत्व बढ़ने से कौशाम्बी का गौरव घट गया। गुप्त युग तक इस नगर का अस्तित्व सुरक्षित रहा।

सातवीं शती में जब ह्वेनसांग ने भारत की यात्रा की तब उसने इस नगर को उजड़ा हुआ पाया था।

सर्वप्रथम १८६१ में कनिंघम महोदय ने इस स्थान की यात्रा कर इसके पुरातात्विक महत्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था। तत्पश्चात् १९३६-३७ में एन. जी. मजुमदार ने यहाँ उत्खनन कार्य करवाया, किन्तु दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में वह मारे गये। जिसके फलस्वरूप कुछ समय तक उत्खनन कार्य रूका रहा। १९४९ से लेकर १९६५-६६ ई. तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जी. आर. शर्मा के नेतृत्व में यहाँ पर व्यापक स्तर पर खुदाइयाँ करवायी गयीं जिसके परिणाम, स्वरूप पुरातात्विक महत्व की अनेक वस्तुएँ प्रकाश में आयीं।

कौशाम्बी के उत्खनन से सिद्ध होता है कि ई.पू. बारहवीं शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी ईस्वी (गुप्त युग) तक यहाँ लोग निवास करते थे। गुप्त काल तक यह नगर वीरान हो चुका था।

१८. पुष्कर

राजस्थान प्रान्त के अजमेर जिले में यह प्राचीन तीर्थ स्थित है। रामायण महाभारत तथा पुराणों में इसकी महिमा का वर्णन मिलता है। रामायण से पता चलता है कि यह विश्वामित्र की तपोभूमि थी। महाभारत में इसे महान् तीर्थ बताया गया है (पितामहसरः पुण्यं पुष्करं नाम)। विष्णुपुराण भी इसके माहात्म्य का वर्णन करता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के लिए यहीं यज्ञ किया था। यहाँ ब्रह्मा का मन्दिर है। इसके द्वार पर हंस की मूर्ति खुदी हुई है। जो ब्रह्मा का वाहन है। सावित्री का मन्दिर भी निकट की पहाड़ी पर मिलता है। यहाँ एक पवित्र सरोवर भी हैं, जिसके विषय में अनेक अलौकिक कथायें प्रचलित हैं।

पुष्कर से ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के आहत सिक्के तथा हिन्द-यवन राजाओं के सिक्के भी मिलते हैं। कुछ समय तक यह स्थान बौद्ध धर्म का भी केन्द्र रहा।

१९. मत्स्य

मत्स्य राज्य बड़ा विस्तृत था तथा चम्बल की पहाड़ियों से सरस्वती नदी के समीपवर्ती जंगलों तक फैला हुआ था। विराट नगर (जयपुर राज्य का बैराट) मत्स्य राज्य का केन्द्र था। मगध के बिम्बिसार से पूर्व मत्स्य राज्य पर कैसे-कैसे संकट आये इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। अर्थशास्त्र में मत्स्य को उन राज्यों में नहीं रखा गया है, जहाँ पर राजतंत्र के स्थान पर गणतन्त्र बने थे। सम्भवत: मत्स्य की स्वतन्त्रता छिनने के समय तक यहाँ राज्यतंत्र ही बना रहा। एक बार मत्स्य राज्य चेदि राज्य में मिला लिया गया था। महाभारत में ऐसा उल्लेख है कि सहज नाम का एक राजा कभी मत्स्य तथा चेदि दोनों राज्यों पर राज्य करता था। अन्त में इसे मगध साम्राज्य में मिला लिया गया था। अशोक के कुछ प्रसिद्ध शिलालेख बैराट में भी मिलते हैं।

मध्यकाल में मत्स्य-राजवंश की एक शाखा विजगापट्टम में जा बसी। यह भी पता चलता है कि उत्कल देश के राजा जयंतसेन ने मत्स्य वंश के सत्यमार्तण्ड को अपनी कन्या प्रभावती का ब्याह कर उन्हें ओड्डवादि देश का शासक नियुक्त किया था। २३ पीढ़ियों के बाद सन् १२६९ ई. में हुए यहाँ के राजा का नाम अर्जुन था।

२०. कम्बोज

कम्बोज को पाकिस्तान के आधुनिक हजारा जिले में स्थित बताया गया है। इस प्रकार गान्धार और कम्बोज उत्तर-पश्चिम में स्थित महाजनपद थे।

२१. पुरु

यह ऋग्वेदकालीन एक प्रमुख जनपद (क्षेत्र) था। यह राजतंत्र सम्भवत: झेलम और चिनाब नदियों के बीच स्थित था। ऋग्वेदकालीन एक प्रमुख जन का नाम भरत जन था।

उत्तर-वैदिक काल तक आते-आते पुरु और भरतों के संयोग से कुर जन का निर्माण हुआ, जो उत्तर वैदिक काल में सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतीत होते हैं।

२२. भरत

भरत भी ऋग्वेदकालीन एक प्रमुख जनपद था। इसके प्रमुख शासक दिवोदास एवं सुदास हुए।

आगे चल कर यह जन पुरू जन में मिलकर कुरु से जाना गया।

२३. आनर्त

पश्चिम-उत्तरी गुजरात का हिस्सा आनर्त नाम से जाना जाता है।

२४. सुराष्ट्र

सुराष्ट्र से तात्पर्य दक्षिणी काठियावाड़ क्षेत्र से है। यह क्षेत्र सातवहान वंश के गौतमीपुत्र शातकर्णी के अधीन था।

❑❑

परिशिष्ट- २

बृहत्संहिता में वर्णित प्रमुख देशों का परिचय

१. अङ्ग—मत्स्यपुराण (४८.२५) के अनुसार बलि राजा के पुत्र अंग ने इस राज्य को स्थापित किया था। महाभारत में कर्ण को अंगराज कहा गया है। यह मगध और बंग क्षेत्र का मध्यवर्ती प्रदेश है। वर्तमान झारखंड राज्य के वैद्यनाथ धाम से उड़ीसा के भुवनेश्वर पर्यन्त अंग प्रदेश माना गया है।

२. अपरान्त—कुछ विद्वानों का कथन है कि कोंकण प्रदेश ही अपरान्त जनपद है। सह्यपर्वत और पश्चिम समुद्रतट के मध्यभाग को अपरान्त. जनपद माना गया है। इसके दक्षिण भाग में केरल राज्य है शूर्पारकनगर (वर्तमान नालासोपारा) इसकी राजधानी थी। महाभारत सभापर्व ५१ : २८ में शूर्पारक प्रदेश अपरान्त जनपद का ही भाग कहा गया है।

३. अवन्ती—वर्तमान समय में उज्जयिनी के नाम से प्रसिद्ध है। ग्वालियर राज्य से दक्षिण नर्मदा नदी तक विस्तृत मालव प्रदेश प्राचीन अवन्ती जनपद के अन्तर्गत था। १८१० ई. के पश्चात् सिन्धिया वंश के राजाओं ने इसके उत्तरी भाग की राजधानी ग्वालियर में कर दिया। अवन्ती भारतीय संस्कृति में सुप्रसिद्ध राजधानी रही है। महाकाल का प्रसिद्ध ज्योर्तिर्लिंग शिवमन्दिर अवन्ती में ही स्थित है।

४. अश्मक—अश्मक जनपद को पुराणों में दक्षिण भारत का एक क्षेत्र माना गया है। गोदावरी नदी के किनारे इसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में थी। महाभारत में कहा गया है कि राजा कल्माषपाद के पुत्र अश्मक ने इस जनपद का निर्माण कराया। बौद्ध साहित्य में गोदावरी नदी के समीप स्थित अश्मक सोलह महाजनपदों में एक था।

५. आन्ध्र—यह दक्षिण भारत का क्षेत्र है। ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र जाति का उल्लेख है। इसी के नाम पर आन्ध्र जनपद प्रसिद्ध है। वर्तमान तेलंगाना प्रदेश ही प्राचीन आन्ध्र जनपद का क्षेत्र है। गोदावरी व कृष्णा नदी के मध्य इसकी सीमा है। यह गोदावरी नदी की सात धाराओं से घिरा हुआ क्षेत्र है। यहाँ पर भीमेश्वर शिव का विशाल मन्दिर प्रसिद्ध है।

६. उत्कल—इसको औड्रजनपद के नाम से भी जानते हैं। वर्तमान उड़ीसा

प्रदेश ही उत्कल है। महाभारत (सभापर्व ५१ : ३०) में कहा गया है कि सुद्युम्न के पुत्र उत्कल के नाम पर यह जनपद प्रसिद्ध हुआ। स्कन्द पुराण के अनुसार यह स्वर्ण-रेखा, और महानदी नामक नदियों का मध्यवर्ती भाग है।

७. **उत्तरकुरु**—कुरु जनपद का एक भाग उत्तरकुरु के नम से प्रसिद्ध था। इन्द्रप्रस्थ के दक्षिणी भाग से हिमालयपर्यन्त समतल भू-भाग को कुरुजनपद कहते थे। हिमालय का पर्वतीय प्रदेश उत्तरकुरु के नाम से प्रसिद्ध है। महाकवि भास ने कहा है कि उत्तरकुरु में विद्याधर और अप्सरायें रहती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इसको वैराग्य जनपद कहा गया है। रामायण व महाभारत में भी इसका वर्णन है। हिमालय के सघन वनों से आच्छादित उत्तरी भाग को कुरु जंगल कहा जाता था।

८. **कर्पाट**—वर्तमान कर्नाटक राज्य ही प्राचीन काल का कर्पाट जनपद है। मैसूर नगर और कुर्गा तथा बेंग्लूर इसी राज्य के अन्तर्गत है। दक्षिण भारत का यह प्रसिद्ध क्षेत्र माना जाता है। महीपाल देव इसके प्राचीन राजा हुए हैं। प्राकृत भाषा में इसको "कण्णद" कहा गया है।

९. **कारूष**—बिहार प्रदेश के शाहाबाद जनपद को कारूष माना जाता है। यहाँ के माल्दा वा मलद के पूर्व प्रदेश को कारूष समझना चाहिये। रामायण में कारूष और मलदा का एक साथ ही वर्णन है।

इतिहासकार पर्जीटर ने काशी एवं वत्स राज्य से दक्षिण तथा चेदि और मगध जनपद का मध्यवर्ती पर्वतीय प्रदेश को कारुष माना है, जिसका केन्द्र रीवां (म. प्र.) था।

१०. **काशी**—यह वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ का द्वादश ज्यतिर्लिंगों में विश्वेश्वर शिवलिंग प्रख्यात है। यह कोशल जनपद के दक्षिण में स्थित है। अथर्ववेद के पैप्पलाद संहिता में कोशल और विदेह राज्य के साथ ही काशी का उल्लेख मिलता है। मनु के वंश का सातवाँ राजा 'काश' नामक था, जिसने काशी की स्थापना की थी।

महाभारत के अनुसार भीष्म ने अपने विचित्रवीर्यादि भाईयों के विवाह हेतु काशी नरेश की तीन कन्याओं का स्वयंवर से अपहरण किया था। प्रसिद्ध चीनीयात्री **ह्वेनसाँग** ने भी काशी की यात्रा का वृत्तान्त लिखा है। उस समय काशी की समृद्धि और उसका वैभव शीर्ष पर था। परन्तु मुसलमानों के बर्बर आक्रमण से इस नगर के बहुत से प्रसिद्ध मन्दिरों का विध्वंस कर दिया गया, जिसके खण्डहर तथा अवशेष अब भी विद्यमान हैं।

काशी को भारत की सांस्कृतिक राजधानी कहा जाता है। पवित्र गंगा के तट पर स्थित यह नगर धार्मिक एवं शैक्षणिक केन्द्र के रूप में मान्य है। इसको

मोक्षदायिका नगरी कहा गया है। अस्सी एवं वरूणा के मध्य होने के कारण इसकी वाराणसी संज्ञा है।

वैदिक काल में इसको काशी कहा जाता था, एवं पौराणिक काल में वाराणसी कहा जाने लगा। विश्व में प्राचीनतम नगर के रूप में यह मान्य है। वाराणसी का वरुणापार उत्तरी भाग सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ पर महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम धर्मोपदेश किया था।

११. काश्मीर–पुराणों में कहा गया है काश्मीर द्रोणी महासरोवर के रूप में स्थित थी। कश्यपमुनि ने उसके जल को निकालकर उस द्रोणी को मनुष्य के निवास योग्य बनाया। इसी कारण इसका प्राचीन नाम कश्यप मेरु अथवा कश्यप मीरा प्रसिद्ध था। तदनन्तर काल में यह काश्मीर जनपद के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। कहा जाता है कि काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से दो कोश की दूरी पर हरी पर्वत पर कश्यप मुनि का निवास था। महाकवि बिल्हण ने काश्मीर की समृद्धि, विद्वत्ता तथा केसर की विशेषताओं का वर्णन किया है। महाकवि राजशेखर ने भी इसके वैशिष्ट्य का उल्लेख किया है। आद्यशंकराचार्य ने कश्मीर की यात्रा की थी और उनके नाम से शङ्कराचार्यपर्वत प्रसिद्ध है।

दुर्भाग्यवश १३वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप मूल निवासी हिन्दू, मुसलमान बना दिये गये अथवा मार डाले गये। आजकल काश्मीर का क्षेत्र मुस्लिम बाहुल्य हो चुका है।

काश्मीर को भारत का शीर्ष मुकुट माना जाता है यह पंजाब राज्य से उत्तर-पश्चिम दिशा में उत्तुंग पर्वत श्रृंखलाओं से परिवेष्टित है।

१२. कुलूत–कुलूत जनपद का प्रथम उल्लेख महाभारत में मिलता है, यह हिमाचल प्रदेश के एक भाग में स्थित जनपद है। सम्भवत: इसी को कुल्लू क्षेत्र कहा जाता है। इसके उत्तरी भाग से व्यास नदी निकल कर पंजाब में प्रवेश करती है। यह स्थान हिमालय की श्रृंखला में अवस्थित है।

१३. कुशस्थली–इतिहासकार विजयेन्द्र कुमार माथुर ने महाभारत के **सभापर्व १४-५१** के अनुसार वर्तमान द्वारका को ही कुशस्थली माना है। जरासन्ध के आक्रमण से उत्पीड़ित होकर कृष्ण ने रैवतक पर्वत पर कोशावती अर्थात् द्वारका दुर्ग की रचना की थी।

१४. गौड–यह पुण्ड्रक नाम से भी उल्लिखित है। इसको बंग प्रदेश का उत्तरी भाग माना जाता है। गुड (ईक्षुरस) की प्रधानता के कारण सम्भवत: इसे गौड कहा गया है। संस्कृत काव्य शास्त्र में "गौडी रीति" की प्रमुख चर्चा है। इस काव्य-कला में कठोर वर्णों और सुदीर्घ समास बहुल वाक्यों का प्रयोग पाया जाता है।

कुछ विद्वान् उत्तरप्रदेश के गोंडा जनपद को तथा कुछ मध्यप्रदेश के गोंडवाना जनपद को गौड मानते हैं। परञ्च यह धारणा युक्तियुक्त नहीं है। सातवीं शताब्दी में गौड राजा शशांक का नाम आता है, जो मालवनरेश का मित्र था।

गौड जनपद शिक्षा का मुख्य केन्द्र रहा है। यहाँ का विक्रमशीला विश्वविद्यालय विश्व में प्रसिद्ध था। देवमन्दिरों की भव्यता दर्शनीय थी। बारहवीं शताब्दी के अंतिम काल में मुसलमानों ने मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया था। गौडराज्य की राजधानी लक्ष्मणावती (लखनौति) नगर में 'सोनामसजिद' इसका प्रमाण है, जो हिन्दू मंदिरों के भग्नावशेषों से ही निर्मित है।

१५. दाशेरक—वामनपुराण १३/४१ तथा बृ.सं. ५/६७ में इसको उत्तरापथवर्ती कहा गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने इसे मरुप्रदेश में स्वीकार किया है। यथा–

अस्ति दाशेरको नाम तेषां भागे तु पश्चिमे।
अस्ति राजन् मरुर्देशः सर्वसत्वभयङ्करः।।

–विष्णु ध. पु. १/१६२/२

आधुनिक मन्दसौर को ही प्राचीन दाशेरक जनपद कहा जाता है। वामन शिवराम आप्टे के शब्दकोश में आधुनिक धौलपुर को दाशेरक माना गया है।

१६. नेपाल—वर्तमान नेपाल राष्ट्र ही प्राचीन नेपाल जनपद है। भारत के उत्तर में हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र है, नेपाल। कहा जाता है कि मध्य युग में मुसलमानों के आक्रमण से संत्रस्त मेवाड़ी राजपूतों की एक शाखा नेपाल में जाकर बस गयी और उनका वहाँ पर शासन स्थापित हो गया। नेपाल का उल्लेख महाभारत, पुराणों, महाकाव्यों तथा संहिता ग्रन्थों में प्राप्त होता है। लुम्बिनी और पशुपति नाथ यहाँ पर प्रमुख तीर्थ हैं।

१७. पञ्चाल—यहाँ के राजा द्रुपद थे। महाभारत में द्रौपदी को पञ्चाली भी कहा गया। यह उत्तर और दक्षिण नाम से दो भागों में विभक्त हैं। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र एवं दक्षिण पञ्चाल की राजधानी कम्पिल नगर था। वर्तमान में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बरेली, पीलीभीत, बदायूँ, फर्रुखाबाद और फतहगढ़ के जनपद इसमें सम्मिलित थे। इसका विस्तार कान्यकुब्ज (कन्नौज) तक था। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती इस क्षेत्र को "रूहेल खण्ड" भी कहा जाता है।

१८. पाण्ड्य—यह दक्षिण भारत का क्षेत्र है। मदुरै और तीने-वेल्ली जनपद इसके अन्तर्भूत हैं। इसके उत्तर में कावेरीनदी, पश्चिम में केरल, मलयाद्रि, पूरब में बंगसागर और दक्षिण में हिन्दमहासागर है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के इन्दुमती-स्वयंवर वर्णन में पाण्ड्यनरेश का सुन्दर चित्रण किया है। कर्पूरमञ्जरी में भी इस क्षेत्र की पर्याप्त प्रशंसा की गयी है।

१९. बंग–भागवत पुराण ९.३२.५ के अनुसार बलि के पुत्र बङ्ग के नाम पर यह प्रदेश बना। वायुपुराण, मत्स्यपुराण गरुणपुराण तथा बृहत्संहिता १४/८ में इसका वर्णन मिलता है। यह भारत का पूर्वी भाग है। पूर्व बंगाल, जो स्वतंत्र बांग्ला-देश है, वही प्राचीन बङ्गक्षेत्र के रूप में प्राचीनों द्वारा निर्दिष्ट है। यहाँ का चटगाँव, मैमन सिंह, ढाका आदि क्षेत्र प्राचीन काल के नगर हैं। वर्तमान त्रिपुरा राज्य से पश्चिम का भाग बंगक्षेत्र है।

२०. बाह्लीक–अफगानिस्तान के पश्चिमोत्तरदिशा में वर्तमान कालिक बल्ख (बैक्ट्रिया) जनपद को बाह्लीक माना जाता है। काम्बोजजनपद से पश्चिम और हिन्दूकुशपर्वत से पश्चिमोत्तर में इसकी स्थिति थी। स्कन्दपुराण १.२.३९.१५५ में इसका वर्णन है। कालिदास के रघुवंश ४.६,७ में भी वर्णन है। कामसूत्र ३/६/४३ में इसे स्त्रीराज्य कहा गया है।

२१. मगध–इसका उल्लेख वैदिक साहित्य, महाभारत, पुराण एवं बौद्धसाहित्य में प्रचुरता से है। अथर्ववेद (५-२२-१४) में मागध को वाह्य-आर्य कहा है। महाभारत में जरासन्ध को मगधनरेश और इसकी राजधानी राजगृह बतलाया गया है। यह महाशक्तिशाली एवं समृद्ध राज्य था। ई.पू ६०० में बिम्बसार यहाँ का राजा था। संभवत: नन्दवंश के विस्तार से इसकी राजधानी पाटलीपुत्र पटना हो गयी। यह वाराणसी से पूरब मुंगेर तक एवं गंगा से दक्षिण सिंह भूमि तक विस्तृत था। इसमें ५ पर्वत–विपुलगिरि, रत्नगरि, उदयगिरि, शोणगिरि और वैभार (व्याहार) सम्मिलित थे। कुछ जगह इसे "कीकट" भी कहा गया है।

२२. मत्स्य–इसकी राजधानी विराटनगर थी। ऋग्वेद ७-१८-६, शतपथ ब्राह्मण-१३.५.४.९, गोपथ ब्राह्मण-१-२-९, कौषीतकी उपनिषद् १४.१ में इस जनपद का उल्लेख है। पाण्डवों का अज्ञातवास यहीं पर हुआ था। आधुनिक धौलपुर (राजस्थान) का पश्चिमीक्षेत्र प्राचीन मत्स्य जनपद था। जयपुर से ४० कि.मी. उत्तर 'वैरत" नगर को ही विराट नगर कहा जाता है। मत्स्य जनपद के लिये मनुस्मृति (२.१९) में कहा गया है–

कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पाञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः।।

२३. मद्र–इस प्राचीन जनपद का महाभारत में वर्णन है। नकुल-सहदेव के मामा मद्रनरेश शल्य ने कौरवपक्ष से युद्ध किया था। पुराणों में प्रसिद्ध सती सावित्री भी मद्राधिप अश्वपति की पुत्री थी। यह चन्द्रभागा-इरावती तथा वितस्ता (झेलम) नदियों से आवृत था। सम्भवत: यह बाह्लीक क्षेत्र का भाग था। इसकी राजधानी शाकलनगर, वर्तमान स्यालकोट में रही थी।

२४. महिषक—महिष्मती कर्णाटक का मैसूर राज्य ही प्राचीन काल का महिषक जनपद का दक्षिणी भाग माना जाता है। इसको प्राचीन काल में महिष्मती जनपद भी कहा जाता था।

२५. रमठ—महाभारत के अनुसार यह जनपद भारतवर्ष के पश्चिम उत्तर सीमा में स्थित था। इतिहासकार सरकार ने गजनी तथा वर्तमान जनपद के मध्यवर्ती भाग को रमठ जनपद माना है।

रोहीतक—वर्तमान कालिक हरियाणा प्रदेश के अन्तर्गत विद्यमान रोहतक जनपद ही प्राचीन रोहीतक था।

२७. लाट—प्राचीन काल में पश्चिम समुद्र तट पर इसकी स्थिति थी। पुराने समय में यहाँ के निवासी पिशाच, लम्पट व असभ्य माने जाते थे। राजशेखर ने बाल रामायण में इनको शिक्षित व सभ्य माना है। यह दक्षिण गुजरात का एक भाग है जो माही तथा यमताती नदियों का मध्यवर्ती भाग है। वर्तमान सूरत, भडौज, और बड़ौदा जनपद का भाग माना गया है।

विदर्भ—यह महाराष्ट्र का एक विभाग है। आप्टे महोदय ने विदर्भ जनपद को वरदा नदी का समीपवर्ती माना है। इसकी राजधानी अमरावती कहा गया है।

२९. विदेह—वर्तमान मिथिला अंचल में भगवती सीता की जन्मभूमि विदेह जनपद में मान्य है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (१.९.३) तथा वायु पुराण (४५.१३०) तथा मत्स्पुराण (११४:४५) में विदेह को प्राच्य कहा गया है।

यह स्थान भारत के पूर्वोत्तर दिशा में विद्यमान है। नेपाल राष्ट्र का कुछ दक्षिणी भाग तथा सीतामढ़ी और तिरहुत जनपद का उत्तरी भू-भाग इसमें सम्मिलित है।

३०. सिन्धुसौविर—सिन्धु और सौवीर अलग-अलग जनपद हैं, परन्तु संनिकट होने के कारण इनका उल्लेख एक साथ ही होता रहा है। भारत के पश्चिमोत्तर भाग में सिन्धु नदी से दक्षिण दिशा में सिन्धु जनपद तथा पूर्व दिशा में सौवीर जनपद था। महाभारत के सभापर्व अध्याय ५१ में उल्लेख है कि जयद्रथ जो दुर्योधन का बहनोई था, वह सिन्धु जनपद का नरेश रहा। सौवीर जनपद को सिन्धु और तीस्ता नदियों के मध्य माना गया है। मुल्तान जनपद को सौविर जनपद कहा जाता है। मुल्तान में स्थित प्रसिद्ध सूर्यमन्दिर और भगवान विष्णु की मूर्ति एक साथ स्थापित है।

३१. अम्बष्ठ—भरतखण्ड के उत्तरभागस्थ एक जनपद। इसका उल्लेख वराहपुराण अ. २५ में शाकल, हूण पारसिक के साथ मिलता है।

३२. चीन—भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत के पार प्राचीन देश। यह पूर्व में प्रशान्त सागर तक फैला है। रामायण के किष्किन्धा काण्ड (४३.१३) तथा महाभारत (सभापर्व-२३.१९) में इसका उल्लेख है। तत्कालीन राजा भगदत्त ने

दुर्योधन के पक्ष से महाभारत का युद्ध लड़ा था। भद्राश्ववर्ष और केतुमालवर्ष इस समय चीन के अधीन हैं।

३३. हूण—महाभारत में हूण प्रदेश को पारसिक क्षेत्र का निकटवर्ती कहा गया है। शक्तिसंगमतंत्र में इसे कामगिरि से दक्षिण और मरुदेश से उत्तर कहा गया है। यथा—

कामगिरेर्दक्षभागे मरुदेशात् तथोत्तरे।

हूणदेशः समाख्यातो हूणास्तत्र वसन्ति हि।।३.७.४४

३४. शक—इस प्रदेश का उल्लेख रामायण (बालकाण्ड-५४.११), महाभारत (सभा-३१.७२) तथा मनुस्मृति-१०-४४ में मिलता है। ऐतिहासिक परम्परानुसार ई.पू. प्रथम शताब्दी में इनका भारतवर्ष पर साम्राज्य था। जम्बूद्वीप का समीपस्थ शाक-द्वीप इनका मूल स्थान था। वर्तमान फारस देश का पश्चिमोत्तर भूभाग ही शाकद्वीप के अन्तर्गत माना जाता है। ये आर्यपरम्परा के अनुयायी और पोषक थे। उज्जैन तक इनका प्रभूत प्रभाव रहा है।

३५. खश/खस—महाभारत के द्रोण पर्व (१२१.४२) में तथा मार्कण्डेय पुराण (३४५) और भागवतमहापुराण (२.४.१८) में खस नागरिकों का वर्णन प्राप्त होता है। सामान्यतया इनका मूल स्थान हिमालय पर्वत का मध्यभाग माना जाता है। समझा जाता है कि यह पूर्वांचल और नेपाल राज्य का मध्यवर्ती क्षेत्र है। डी.सी. सरकार का अभिमत है कि कश्मीर का पर्वतीय क्षेत्र ही खश जाति का मूल स्थान था। वर्तमान समय में यहाँ के नागरिकों को "खबक" कहा जाता है। सम्भवतः यहीं से खश नागरिक पूर्व दिशा के पर्वतीय क्षेत्रों में फैलते हुए चले गये। खश जाति में क्षत्रिय वर्ण की बहुलता रही है। इनमें से ब्राह्मण वर्ण के भी बहुत से परिवार थे। यह भी माना जाता है कि भारत पर मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित होकर बहुत से राजवंश हिमालय के मध्यक्षेत्र में अपना राज्य स्थापित कर लिये। उनके साथ आये सैनिकों को 'खश' नाम से जाना जाता था।

३६. आभीर—आभीर राज्य पश्चिम भारत के जनपदों में मान्य था। महाभारत (९.३७.१) में यह राजस्थान का पश्चिमी भाग माना गया है। महाभारत के वर्णन से ज्ञात होता है कि इस जाति के लोग सोमनाथ से सरस्वती नदी तक रहते थे।

३७. किन्नर—प्राचीन साहित्य में किन्नरों को गान विद्या में प्रवीण माना जाता था। महाकवि भवभूति ने महावीर चरित के अन्तर्गत किन्नरों का उल्लेख किया है।

वर्तमान समय में हिमांचल प्रदेश का उत्तरी भाग किन्नौर जनपद के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की स्थानीय भाषा को किन्नरी भाषा कहा जाता है।

३८. किरात—किरात एक वन्य जाति मानी जाती है, जो अपनी वीरता के

लिए प्रसिद्ध है इनकी आजीविका आखेट के द्वारा चलती थी। महाभारत (सभापर्व-२६.९) तथा विष्णुपुराण (२.३.८) के वर्णन से ज्ञात होता है कि भारत का पूर्वी क्षेत्र सिलहट जनपद इनका मुख्य निवास स्थल था। रघुवंश (४.७६) में महाकवि द्वारा इनको ब्रह्मपुत्र नदी के पर्वतीय क्षेत्र में किरातों का निवास बताया गया है। मुद्राराक्षस नाटक में इनको बहादुर योद्धा तथा विशेष सैनिक के रूप में स्वीकार किया गया है।

३९. गन्धर्व—गन्धर्व जाति को संगीत विद्या में निपुण माना जाता था। गन्धमादन और सुमेरु पर्वत का मध्यवर्ती भाग गन्धर्व प्रदेश कहा जाता था। बदरी क्षेत्र से कैलाश पर्वत तक का भूभाग गन्धर्व-प्रदेश रहा है। गन्धर्व राज चित्ररथ को देवराज इन्द्र का प्रमुख पारिषद् माना जाता है। महाकवि बाणभट्ट के कादम्बरी की कथा में कादम्बरी और महाश्वेता नामक दोनों प्रमुख नारी पात्र गान्धर्व जाति की राजकुमारियाँ थीं।

प्राचीन वर्णनों से ज्ञात होता है कि वर्तमान पाकिस्तान का रावल-पिण्डी तथा तक्षशिला सम्भाग से आरम्भ कर सिन्धु नदी के पार पेशावर के "चारसंगा" पर्यन्त विस्तृत भूभाग गान्धर्व क्षेत्र रहा है।

४०. तुषार—महाभारत (सभापर्व-२७-२५) में तुषारों का उल्लेख मिलता है जिसमें विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१.९.८) तथा गरुड़पुराण (५५.१६) में तुषारों का उल्लेख किया गया है। पश्चिमोत्तर भारत में इनकी स्थिति कल्पित है। सम्भवतः तुषार सम्राट कनिष्क इनमें से प्रसिद्ध राजा था। यह ईशापूर्व प्रथम शताब्दी में पुष्पपुर अर्थात् पेशावर को अपनी राजधानी बनाया था। तुषार और कुषाण परस्पर सम्मिलित जाति के थे।

वर्तमान समय तुखारिस्थान (चीनीतुर्किस्तान, सिक्यांग) के रूप में जाना जाता है। यह भी अनुमान किया जाता है कि कश्मीर जनपद के उत्तर-भाग में मद्धेशिया पर्यन्त इनका निवास था।

४१. निषाद—प्राचीन संस्कृत साहित्य में निषाद जाति को नौकाजीवी माना जाता था। निषादराज गुह की सहायता से भगवान राम ने वनवास गमन के समय नदी पार किया था। वर्तमान समय के कोल, भील और मुण्ड आदि जनजातियाँ निषादों की संतान थीं। गुप्तकाल में निषादों का स्वतंत्र राज्य था। रामायण के अनुसार शृंगवेरपुर इनकी राजधानी थी। कोशलजनपद के दक्षिण-पश्चिम भाग में गंगातटवर्ती क्षेत्रों में इनका साम्राज्य था।

४२. लङ्का/सिंहल—यह द्वीप स्थल है। भारतीय परम्परा में लंका और सिंहल द्वीप को एक ही माना गया है। यह दक्षिण भारत के रामेश्वर क्षेत्र से ७० मील दूर सागर में विद्यमान है। रामायण (३.४७.२९/३.५५.१९) में कहा गया है कि लंका समुद्र

से घिरा हुआ एक द्वीप है, जिसका राजा रावण था और वह श्रीराम द्वारा युद्ध में मारा गया। "लंक-आसादने," लाक्यते सुखमस्याम् (अ. को ३/५/७)।

वर्तमान में लंका और सिंहल के संयुक्त भाग को सिलोन द्वीप कहा जाता है। इसे उत्तर-दक्षिण अक्षांश ६°-१०'' तथा पूर्व-पश्चिम देशान्तर ७९°, ४५'' माना गया है। ज्योतिष सिद्धान्तगणित में वर्णित लंका नगरी को मध्यरेखा पर शून्य अक्षांश का माना गया है जो वर्तमान लंका से दक्षिण-पूर्व समुद्र में कल्पित स्थान होगा।

४३. अयोध्या/साकेत—प्राचीन अयोध्या जनपद को ही साकेत कहा जाता है। इसको उत्तर कोशल की राजधानी माना जाता है। रामायण (बालकाण्ड ५-७) में इसका विस्तृत वर्णन है। सरयू तट पर स्थित अयोध्या की सीमा १२ योजन की परिधि में होने का उल्लेख है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के अन्तर्गत अयोध्या और साकेत को पर्यायवाची माना है। यह अयोध्या नरेश राजा दशरथ के पुत्रों की जन्मस्थली के रूप में प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के फैज़ाबाद जनपद के सरयू नदी के तट पर यह स्थित है। गरुणपुराण (२.३८) में इसको मोक्षदायिका नगरी माना गया है। गुप्त-काल तक अयोध्या समृद्ध तथा शक्ति सम्पन्न नगर था। मुसलमानों के आक्रमण से इसकी शक्ति क्षीण हो गयी और अनेक महत्वपूर्ण मन्दिरों का विध्वंश हो गया। मुगलशासक बाबर का एक सेनाध्यक्ष अयोध्या में प्रसिद्ध राम मन्दिर को तोड़कर मस्ज़िद का स्वरूप दे दिया था। अयोध्या का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है।

४४. पारियात्र—इसको कुल पर्वत माना जाता है। यह विन्ध्य पर्वत का एक भाग है। संभवत: आरावली की पर्वतश्रेणी को ही पारियात्र कहा जाता था। रामायण (किष्किन्धा काण्ड (४१-१९) में इसको पश्चिम दिशा का पर्वत कहा गया है।

४५. सह्य—दक्षिण भारत में एक पर्वत है। पश्चिम समुद्र तक इसका विस्तार है। सह्य पर्वत-शृङ्खला का वर्णन कालिदास ने रघुवंश (४.५२) में सुन्दर वर्णन किया है।

४६. मलय—यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध पर्वत है। कोयटम्बूर प्रदेश से कन्या-कुमारी तक विस्तृत पर्वतश्रेणी को मलयगिरि के नाम से जान जाता है।

४७. मेरु—मेरुपर्वत को सुमेरु भी कहा जाता है। इसको कनकाद्रि भी कहा जाता है। महाभारत (शान्तिपर्व ३३५) में गंगोत्री क्षेत्र को कहा गया है। गोमुख के चारों ओर विद्यमान पर्वतशृंखला को मेरुपर्वत माना गया है जो गढ़वाल मण्डल का उत्तरी भाग है। मत्स्यपुराण अध्याय ११३ में कहा गया है कि सुमेरु क्षेत्र उत्तर कुरु में स्थित है। उत्तर कुरु का विस्तार गढ़वाल क्षेत्र से आरंभ होकर शतद्रु तथा व्यास नदी की घाटी पर्यन्त माना जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक (१,७) में इसको महामेरु

कहा गया है। ज्योतिष सिद्धान्तगणित में उत्तर-ध्रुव प्रदेश को, नब्बे अक्षांश पर स्थित क्षेत्र को, मेरु कहा जाता है। कुछ समीक्षक साइबेरिया क्षेत्र में मेरु का स्थान बतलाते हैं।

४८. पारसिक-महाभारत (सभापर्व-९) में इनका वर्णन है। प्राचीन ग्रंथों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि आधुनिक ईरान देश ही पारसिक क्षेत्र था। इसमें बलूचिस्तान तथा अफगानिस्तान के भी कुछ भाग मिले हुए थे।

४९. यवन—प्राचीन साहित्य में वर्णित यवनों का सन्दर्भ यूनानी लोगों से मिलता है। यवनों का निवास पश्चिमोत्तर भारत में था। वराहमिहिर ने यवनों को (बृ.सं. २/३०) म्लेच्छ कहा है। महाभारत (सभापर्व ३१/७२) में कहा गया है–

अन्ताखीं चैव रोमां च यवनानां पुरं तथा।
दूतैरेव वशं चक्रे करं चैनामदापयत्।।

अर्थात् पाण्डवनन्दन सहदेव ने यवनपुर को जीत कर उनसे कर प्राप्त किया था। यवन क्षेत्र के समीप ही अन्तारखी और रोम जनपद थे। आधुनिक इतिहासकार मिस्त्र राज्य के अलेकजेन्ड्रिया नगर को यवनों का मूलस्थान मानते हैं।

५०. अमरावती—संस्कृत साहित्य में अमरावती को स्वर्ग की राजधानी कहा गया है। दक्षिणभारत की कृष्णानदी के तट पर यह स्थित है। सातवाहन राजा शातकर्णी ने १८० ई. में इसको अपनी राजधानी बनाया था। आन्ध्रराज्य में स्थित यह अमरावती क्षेत्र व्यापारिक केन्द्र के रूप में अतिशय प्रसिद्ध था।

५१. अलका—पुराण साहित्य में यह कुबेर की राजधानी है। कालिदास के मेघदूत-६६, में मानसरोवर के निकट कैलास पर्वत की उपत्यका में अलका को बतलाया गया है। यह स्थान बदरीनाथ धाम के निकट समुद्र तल से बारह हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

कुछ विद्वान् चमोली के गुप्त काशी, जो मन्दाकिनीतट पर है, के कालीमठ को अलकापुरी मानते हैं। कहा जाता है कि कविकालिदास का यहीं पर जन्म हुआ था, जिसको कविल्ठा ग्राम कहा जाता है। यहाँ की कालीमाता के आशीर्वाद से उन्हें चमत्कारी काव्य प्रतिभा प्राप्त हुई थी।

५२. इन्द्रप्रस्थ/हस्तिनापुर—महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र ने कुरु राज्य का दो भाग कर दिया था। हस्तिनापुर से दूर दक्षिण भाग के खाण्डव वन को पाण्डवों को दिया गया। इसमें यमुना तट पर पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम की राजधानी बनाई थी। इन्द्रप्रस्थ जनपद उत्तर में मेरठ तथा दक्षिण में गोदावरी तक तथा पूरब में मथुरा एवं पश्चिम में द्वारका तक विस्तृत था। दिल्ली के पुराने दुर्गों को पाण्डव दुर्ग कहा जाता है।

५३. काञ्ची–यह द्रविड़ जनपद की राजधानी थी। इसका धार्मिक और राजनैतिक महत्व रहा है। गरुण पुराण (३८/५) में कहा गया है–

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः।।

अर्थात् मोक्षप्रदायक सात नगरों में काञ्ची का भी प्रमुख स्थान है। शिवकाञ्ची और विष्णु काञ्ची के नाम से यह दो भागों में विभक्त है। शिव काञ्ची में शैवमतावलम्बी लोगों का प्राधान्य है। यहाँ पर कृष्णदेव राजा ने एकेश्वरशिव मन्दिर का निर्माण कराया था। विष्णुकाञ्ची का विष्णु मन्दिर एक सौ मण्डपों वाला है, जो कलाकृति में अनुपम है। स्कन्दपुराण (१.३.३-३९) में इसका मनोहारी वर्णन है। काञ्ची, चेन्नई राज्य के अन्तर्गत है, जो चेन्नई नगर से ५८ कि.मी. पश्चिम में है।

५४. कान्यकुब्ज नगर–सम्राट् हर्षवर्धन ने सातवीं शताब्दी में इसको अपनी राजधानी बनाया था। स्कन्दपुराण (३-२. ६-२०) में इसको राजा भोज द्वारा शासित राज्य कहा गया है–

कान्यकुब्जे महाक्षेत्रे राजा भोजेति विश्रुतः।

राजा कुशनाभ ने महोदयपुर के नाम से इसको बसाया था, यह विवरण रामायण (बालकण्ड ३२.६) में मिलता है। प्राचीन काल का कान्यकुब्ज नगर इस समय वर्तमान फर्रुखाबाद जनपद का कन्नौज नगर माना जाता है। यह गंगा तथा काली नदी के संगम पर उत्तर प्रदेश राज्य में अवस्थित है।

५५. काम्पिल्य–इस नगर का वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व १३९.५ में मिलता है। यह दक्षिण पञ्चाल जनपद का मुख्य केन्द्र था। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद में कम्पिला ग्राम ही प्राचीन काम्पिल्य था।

५६. कुसुमपुर/पटना–मुद्राराक्षस नाटक में कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) नगर का महत्त्व आख्यायित है। महाभाष्यकार (२.१.१६ सूत्र) ने इसको गंगा और सोन नदी के संगम पर स्थित कहा है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य (६.२४) में इसे मगधराज की राजधानी कहा है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपने संस्मरण में इसकी महिमा कही है।

पाटलिपुत्र की स्थापना मगध सम्राट् अजातशत्रु ने ४८० ई.पू. में की थी। पाटली ग्राम जो पाटल बहुल (गुलाब पुष्पवाला) था, उसी का विस्तार पाटलीपुत्र नगर हुआ। प्राचीन वर्णन से यह गंगा-सोन के संगम पर स्थित था, परन्तु वर्तमान में पटना नगर संगम स्थल से ६० मील दूर पश्चिम भाग में विद्यमान है। ज्योतिषशास्त्र के गणितज्ञ आर्भट्ट, (चतुर्थ शताब्दी) यहीं के रहने वाले थे।

❑❑

परिशिष्ट- ३

बृहत्संहिता में वर्णित प्रमुख नदियों का परिचय

१. कावेरी–दक्षिण भारत के कर्णाटक से निकल कर ४७५ कि.मी. की दूरी पर पूरब में बंगसागर में मिलती है। इसे दक्षिण भारत की गंगा कहते हैं। मूल उद्गम स्थान कुर्ग क्षेत्र का चन्द्रतीर्थसर है।

२. गोदावरी–सह्याद्रि से निकल कर महाराष्ट्र के नासिक होती हुई आन्ध्र प्रदेश से होकर पूरब में बंगसागर से मिलती है।

३. गोमती–उत्तर प्रदेश के पीलीभीत (बीसलपुर) से निकलकर सीतापुर नैमिषारण्य, लखनऊ होती हुई जौनपुर जनपदान्त के पास गंगा से मिलती है।

४. चन्द्रभागा–पंजाब क्षेत्र में चिनाब नाम से उत्तरापथ की नदी। इस नाम से कोणार्क (उत्कल) और सौराष्ट्र (गुजरात) में भी नदियाँ हैं।

५. तापी/ताप्ती–यमुना नदी की सहायिका ताप्ती नदी। ताप्ती सूरत, गुजरात की नदी है जो पश्चिम अरब सागर, खम्बात में मिलती है।

६. ताम्रपर्णी–यह दक्षिण भारत के मलयगिरी से निकली है। वर्तमान में इसका नाम 'ताम्बरवरी'' है, जो मलयाद्रि के अगस्त्यकुण्ड से निकलकर बंगसागर में मन्नारा-खाड़ी के पास मिलती है।

७. तुङ्गभद्रा–दक्षिण भारत के सह्यादि से निकली है। यह भद्रधारा की एक शाखा है।

८. नर्मदा–इसकी व्युत्पत्ति है–नर्म = रतिसुखम्, दा=दायिका, इति नर्मदा। ''रेवा नदी'' इसकी अपर संज्ञा है। यह विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के अमरकंटक से निकल कर ८०० किमी पश्चिम सागर के भड़ौच (खम्वात) में मिलती है। यह उत्तर और दक्षिण भारत की विभाजिका नदी है।

९. पयोष्णी–दक्षिण भारत के कुन्तल जनपद में बहने वाली नदी। वायुपुराण (४५/१०४) के अनुसार विन्ध्य पर्वत से निकल कर विदर्भ जनपद में प्रवाहित है।

१०. तमसा–इसके तट पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। अयोध्या नगर से १३ कि.मी. दूर तमसा तट पर रामचौरा घाट है। इसको ''टोंस'' के नाम से भी जानते हैं। मध्यप्रदेश के रीवाँ में तथा मध्य हिमालय से काशीपुर–देहरादून होती हुई सिरमौर नामक स्थान पर यमुना में मिलने वाली नदी भी तमसा कही जाती है।

११. भागीरथी/गंगा–विष्णु भगवान के पैर के अंगूठे को प्रक्षालित कर ब्रह्मा ने अपने कमण्डल में संचित किया था और उसी को राजा भगीरथ की तपस्यापूर्ण याचना पर गंजाजल के नाम से पृथ्वी पर अवतरित किया। शिव की जटा से होती हुई हिमालय पर भागीरथी के नाम से प्राप्त हुई। गंगोत्री से इसका निस्सरण है। समुद्र तल से चौदह हजार कि.मी. ऊँचाई पर गंगोत्री है। यह ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, प्रयाग, काशी, पटना, हुगली होती हुई बंगाल की खाड़ी (गंगा सागर) में समुद्र से मिलती है। गोमुख से गंगासागर तक का मार्ग १५५० मील का होता है। भारतीय संस्कृति में इसे परम पुनीत और मोक्षदायिनी कहा गया है–

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो मुक्तिलोकं स गच्छति।।

१२. यमुना–यह गंगा की मुख्य सहायिका नदी है। पुराणों के अनुसार यमुना नदी सूर्य की पुत्री एवं यम की बहन है। हिमालय में यमुनोत्री नामक स्थल इसका उद्‌गम स्थान है। यह समुद्र तल से १३००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है यह भी माना जाता है कि कलिन्दगिरि से निकलने के कारण इसको कालिन्दी भी कहा जाता है। मथुरा में श्रीकृष्ण के सान्निध्य से इसका महत्व और भी बढ़ा हुआ है भारतीय संस्कृति में इस नदी को अतिशय पवित्र माना गया है। यमुना प्रयाग में आकर गंगा से मिलती है।

१३. क्षिप्रा/शिप्रा–यह नदी मालव प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी नगरी में प्रसिद्ध है। उज्जयिनी से आगे जाकर यह चम्बल नदी में मिल जाती है इसी को क्षिप्रा के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

१४. शोण–इस नदी को पुँलिङ्ग वाचक शोणनद के नाम से जाना जाता है बिहार की राजधानी पटना, गंगा एवं शोण नदी के तट पर स्थित है। विन्ध्यपर्वत से निकलकर पर्वतीय लाल बालू के साथ प्रवाहित होने के कारण इसे शोण नद कहा जाता है। बिहार में इसको सोन नद कहा जाता है। अमरकण्टक पर्वत इसका उद्‌गम स्थल है। नर्मदा के उद्‌गम स्थल से पाँच मील की दूरी पर उत्तर दिशा में बहती हुई यह पटना के समीप पाँच सौ मीलकी यात्रा कर गंगा में मिलती है।

१५. सरयू–इस नदी का मूल उद्‌गम ब्रह्म सरोवर है। पिथौरागढ़ के जनपद के पर्वतीय प्रदेशों में बहती हुयी यह कालीगंगा के नाम से भारत और नेपाल की सीमा का विभाजन करती है। यह उत्तर-प्रदेश की समतल भूमि में बहती हुई बिहार-प्रदेश के छपरा के निकट गंगा में मिलती है। यह घाघरा नदी के नाम से भी प्रसिद्ध है। श्रीरामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या नगरी इसी सरयू के तट पर विराजमान है।

ऋग्वेद में इसका उल्लेख है, इसको शतुद्री और विपाशा की संयुक्त जलधारा भी कहा जाता है।

१६. सिन्धु–हिमालय पर्वत शृंखला पर स्थित मानस-सरोवर इसका उद्गम स्थल है। यह पश्चिमोत्तर दिशा में बहती हुयी लद्दाख जनपद को पार कर वहाँ से दक्षिणोत्तर दिशा में जाकर पुनः पश्चिमोत्तर क्षेत्र में चलती हुई कराँची (पाकिस्तान) के निकट पश्चिम समुद्र में मिलती है। यह नदी **१८००** मील लंबी है। सिन्धु नदी को पार कर ही मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया और 'सकार' का उच्चारण 'हकार' करते हुए सिन्धुस्थान को हिन्दुस्थान या हिन्दुस्तान कहते रहे।

ऋग्वेद की नदी स्तुति (१०.६४.९) में सिन्धु और उसकी सहायिका सरस्वती, सरयू आदि १९ नदियों का वर्णन है। प्राप्त नामों में शतद्रु को सतलज, परुष्णी को रावी तथा विपाशा को व्यास समझा जाता है।

१७. मन्दाकिनी–शब्दकोशों मे इसको गंगा नदी का पर्याय माना गया है। "मन्दयति विनाशयति अकान् दुःखान् पापानिति–मन्दाकिनी। "चित्रकूट की समीपवर्ती एक नदी महावीरचरित तथा रघुवंशमहाकाव्य (१३/४८) में मन्दाकिनी का वर्णन प्राप्त होता है। कहा जाता है कि भगवती सीता के स्नानार्थ गंगा की एक धारा मन्दाकिनी के रूप में प्रकट हुई थी।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है कि गंगा का पर्वतीय भाग मन्दाकिनी है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में गन्धमादन के पर्वतीय क्षेत्र में मन्दाकिनी का उल्लेख किया है। उत्तराखण्ड में गढवाल मण्डल की मन्दाकिनी सुप्रसिद्ध नदी है। केदारनाथ धाम के सन्निकट वासुकीकुण्ड से निकल कर चमोली जनपद की यह प्रमुख नदी रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा नदी से मिलती है। बालरामायण (४.१०) में मन्दाकिनी को स्वर्गवर्तिनी नदी कहा गया है।

१८. भीमा/भीमरथी–यह पूना (महाराष्ट्र) की समीपवर्ती नदी। मुरला अथवा मुलमुथा इसकी सहायिका नदी है।

१९. पारा/मालतीपारा–महाकवि भवभूति ने मालतीमाधव में पद्मावती नगरी के आसन्न पारा नदी का उल्लेख किया है, जो केरल राज्य में है। केरल प्रदेश में पेरियार" नामक जो नदी विद्यमान है, संभवतः वही नदी पारा वा मालतीपारा है।

वैदिक काल की नदियाँ-

नर्मदा, शोण, इक्षुमती, भीमरथी, निर्विन्ध्या, वेजावती, शिप्रा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, सिन्धु, मालतीपारा, लोहित, सन्धिुनद, सरयू, गाम्भीरिका, रथा, गङ्गा,

कौशिकी, वेदस्मृति, विपाशा, सरस्वती, चन्द्रभागा, शतद्रु, वितस्ता, ऐरावती, इत्यादि नदियों के नाम हैं।

ऋग्वेद के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय आर्य किन-किन भारतीय एवं विदेशी प्रदेशों में प्रभावी थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे सर्वप्रथम सप्तसैन्धव प्रदेश में विकसित हुए थे और यही कारण है कि ऋग्वेद में इस प्रदेश की सातों नदियों सिन्धु, सरस्वती, शतुद्रि (सतलज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी), असिकनी (चिनाव) और वितस्ता (झेलम) का वर्णन मिलता है।

सरस्वती—ऋग्वेद में सरस्वती का पवित्रतम् नदी के रूप में उल्लेख हुआ है और उसे सिन्धु जैसी ही बड़ी नदी माना गया है, जिसका बाद में भटनायर के रेगिस्तान में लोप हो गया ऐसा माना जाता है।

कौशिकी नदी—प्राचीन कुरु राज्य वर्तमाम थानेश्वर, दिल्ली तथा गंगा के दोआब के उत्तरी भाग में फैला हुआ था। कुरु राज्य में (पिहोआ के समीप सरस्वती से मिलने वाली) अरुणा, अंशुमती, हिण्यवती, आपया तथा **कौशिकी** और साथ ही सरस्वती तथा दृशद्वती नदियाँ प्रवाहित होती थी।

लोहित-लोहित आसाम में बहने वाली ब्रह्मपुत्र नदी का प्राचीन नाम है।

वैदिक काल की प्रमुख नदियाँ

१. सरस्वती
२. कौशिकी
३. कावेरी
४. गोदावरी
५. गोमती
६. चन्द्रभागा
७. तापी
८. ताम्रपर्णी
९. तुंगभद्रा
१०. नर्मदा
११. पयोष्णी
१२. तमसा
१३. भागीरथी गंगा
१४. यमुना
१५. क्षिप्रा
१६. शोण
१७. सरयू
१८. मन्दाकिनी

परिशिष्ट-४

ग्रहों के प्रभावक्षेत्र

१. सूर्य ग्रह

१. नर्मदा जनपद एवं वर्मा के पूर्व आधे भाग, २. सोन, ३. उड़ीसा, ४. वङ्ग, ५. सुह्य, ६. कलिङ्ग, ७. बाह्लीक, ८. शक, ९. यवन १०. मगध, ११. शबर १२. प्राग्ज्योतिष, १३. चीन १४. कम्बोज १५. मेकल, १६. किरात, १७. विटका, १८. शैल पर्वत के अन्दर और बाहर, १९. पुलिन्द, २०. द्रविड़ के आधा पूर्व की ओर, २१. यमुना के तट के दक्षिण, २२. चम्पा, २३. उडुम्बर, २४. कौशाम्बी, २५. चेदि, २६. विन्ध्य वन, २७. पुण्ड्रा, २८. गोलाङ्गूल, २९. श्रीपर्वत, ३०. बर्द्धमान, ३१. इक्षुमती नदी, ३२. तस्कर, ३३. पारत, ३४. उजाड़स्थान (वीरान भूमि), ३५. चरवाहा (गड़ेरिया), ३६. बीज, ३७. छिलका वाला अनाज, ३८. कड़ुआ, ३९. वृक्ष, ४०. सोना, ४१. अग्नि, ४२. विष, ४३. शूरवीर, ४४. औषधि, ४५. चिकित्सक, ४६. चौपाया, ४७. किसान, ४८. राजा, ४९. दुष्ट, ५०. चोर, ५१. सर्प, ५२. लकड़ी, ५३. प्रसिद्ध व्यक्ति।

२. चन्द्र ग्रह

१. पर्वत, २. जल, ३. दुर्ग, ४. कोसल, ५. भरुकच्छ, ६. समुद्र, ७. रोम, ८. कतुषार, ९. वनवासी, १०. तङ्गण, ११. हल, १२. स्त्रीराज्य, १३. महार्णव द्वीप, १४. मधुर रस, १५. फूल, १६. फल, १७. जल, १८. लवण, १९. मणि, २०. शंख, २१. मोती, २२. जल में उगने वाला, २३. चावल, २४. जौ, २५. औषधि, २६. गेहूँ, २७. सोमरस पीने वाला, २८. आक्रन्द, २९. ब्राह्मण, ३०. निम्न व्यक्ति, ३१. घोड़ा ३२. प्रेमी, ३३. युवती, ३४. सेनापति, ३५. वस्त्र सींग वाले पशु, ३६. निशाचर, ३७. कृषक, ३८. याज्ञिक।

३. मंगल ग्रह

१. सोन, २. नर्मदा, ३. भीमरथ, ४. निर्विन्ध्य, ५. वेत्रवती, ६. शिप्रा, ७. गोदावरी, ८. वेणा, ९. गंगा, १०. पयोष्णी, ११. महानदी, १२. सिन्धु,

१३. मालती, १४. पारा, १५. उत्तरपाण्ड्य, १६. महेन्द्र पर्वत, १७. विन्ध्य, १८. मलय, १९. चोल, २०. द्रविड, २१. विदेह, २२. आन्ध्र, २३. अश्मक, २४. भासापर, २५. कौङ्कणा, २६. समन्त्रिषिका, २७. कुन्तल, २८. केरल, २९. दण्डक, ३०. कान्तिपुर, ३१. म्लेच्छ, ३२. नासिक, ३३. भोगवर्धन, ३४. विराट, ३५. विन्ध्य पर्वत के निकट देश, ३६. ताप्ती और गोमती के किनारे रहने वाले, ३७. नगर में रहने वाले लोग, ३८. कृषक, ३९. पारत, ४०. अग्नि, ४१. योद्धा (वीर) ४२. जंगल में रहनेवाले, ४३. किला, ४४. कर्वट, ४५. हत्यारा, ४६. घमण्डी, ४७. पतित, ४८. राजा, ४९. बालक, ५०. हाथी, ५१. दाम्भिक, ५२. डिम्भ, ५३. चरवाहा, ५४. रक्तपुष्प, ५५. फल, ५६. मूँगा, ५७. सामान्य, ५८. जुआरी, ५९. ताड़ी, ६०. झगड़ालू आदमी, ६१. कोषागार, ६२. अग्निहोत्रिक, ६३. धातु, ६४. बौद्ध भिक्षु, ६५. चोर, ६६. शठ, ६७. दीर्घवैरी।

४. बुध ग्रह

१. लोहित्य, २. सिन्धु नद, ३. सरयू, ४. गाम्भीरिका, ५. रथ, ६. गंगा, ७. कौशिकी और अन्य नदी, ८. विदेह, ९. कम्बोज, १०. आधा पूर्व मथुरा, ११. हिमालय के पास रहने वाले लोग, १२. गोमन्त, १३. चित्रकूट, १४. सौराष्ट्र, १५. सेतु, १६. जलमार्ग, १७. व्यापार का माल (पण्य), १८. बिल, १९. पर्वत पर रहने वाले, २०. नदी का जल पीने वाले, २१. यन्त्र, २२. गायक, २३. लेखक, २४. खेल के विशेषज्ञ, २५. पेन्टर, २६. वैयाकरण (व्याकरण के पण्डित), २७. गणितज्ञ, २८. साज-सज्जा विशेषज्ञ, २९. शिल्पज्ञ, ३०. कलाकार, ३१. जादूगर, ३२. शिशु, ३३. कवि, ३४. शठ, ३५. सूचक, ३६. व्यभिचारी, ३७. दूत, ३८. नपुंसक, ३९. हास्यज्ञ, ४०. भॉड़, ४१. जन, ४२. भूत, प्रेत, ४३. ऐन्द्रजालिक, ४४. पुलिस, ४५. नट, ४६. नर्तक, ४७. ४८. घी, ४९. तेल, ५०. तेल-बीज, ५१. तिक्त, ५२. व्रतचारी, ५३. रसायन, ५४. वेसर।

५. बृहस्पति ग्रह

१. सिन्धुनद के पूर्वभाग, २. मथुरा के पश्चिम आधा, ३. भरत, ४. सौवीर, ५. श्रुधनस, ६. उत्तरीभाग, ७. विपासा नदी, ८. शतद्रु, ९. रमठ, १०. शाल्वा, ११. त्रिगर्त, १२. पौरव, १३. अम्बष्ठ, १४. पारता, १५. वाटधान, १६. योधेय, १७. सारस्वत, १८. अर्जुनायन, १९. मत्स्य आधा, २०. हाथी, २१. घोड़ा, २२.

पुरोहित, २३. राजा, २४. मन्त्री, २५. माङ्गल्य, २६. पौष्टिकासक्त, २७. कारुण्य, २८. सत्य, २९. शौच, ३०. व्रत, ३१. विद्वान्, ३२. धर्मयुक्त, ३३. पौर, ३४. महाधनी, ३४. वैयाकरण, ३५. अर्थ, ३६. वेद, ३७. शिक्षक, ३८. अभिचार, ३९. नीतिज्ञ ४०. मनुजेश्वर उपकरण, ४१. छाता, ४२. ध्वज, ४३. शैलेय, ४४. जटामासी, ४५. बहरा, ४६. तगर, ४७. समुद्रीनमक, ४८. मधुररस, जूठामधु, ४९. चोरक, ५०. जीव।

६. शुक्र ग्रह

१. तक्षशिला, २. मार्थी, ३. कावत, ४. बहुगिरि, ५. गान्धार, ६. पुष्कलावतक, ७. प्रस्थल, ८. मालव, ९. कैकय, १०. दशार्ण, ११. कुसीनरा, १२. शिबि, १३. वितस्ता, १४. इरावती, १५. चन्द्रभाग, १६. रथ, १७. चाँदी, १८. हाथी, १९. घोड़ा, २०. महावत, २१. धनी व्यक्ति, २२. सुरभि, २३. पुष्प, २४. अनुलेपन, २५. खेल, २६. हीरा, २७. आभूषण, २८. कमल, २९. शय्या, ३०. वर, ३१. युवा, ३२. युवती, ३३. कामोपकरण, ३४. उद्यान, ३५. मृष्टान्न, ३६. मधुर, ३७. जल, ३८. कामुक, ३९. यश, ४०. सुख, ४१. औदार्य, ४२. रूपसम्पन्न, ४३. विद्वान्, ४४. मन्त्री, ४५. वणिक् जन, ४६. कुम्भकार, ४७. रंगीन पक्षी, ४८. त्रिफला, ४९. रेशम, ५०. ऊन, (कम्बल) ५१. रोध्र, ५२. पत्र, ५३. चोचा, ५४. जातीफल, ५५. गुरुवचन, ५६. पीपल, ५७. चन्दन।

७. शनि ग्रह

१. आनर्त, २. अर्बुद, ३. पुष्कर, ४. सौराष्ट्र, ५. आभीर, ६. शूद्र, ७. रैवतक, ८. सरस्वती नदी के पश्चिम जो देश नष्ट हो गया, ९. थानेश्वर, १०. प्रभास, ११. विदिशा, १२. वेदस्मृति के नदी तट, १३. मही के तट, १४. दुष्ट, १५. मलिन, १६. नीच, १७. तेली, १८. कायर, १९. कैद करके रखनेवाला, २०. बहेलिया, २१. दर्जी, २२. मल्लाह, ३३. कुरूप व्यक्ति, २४. वृद्ध, २५. सुअर पालने वाला, २६. गणपूज्य, २७. स्खलित व्रत, २८. शबर, २९. पुलिन्द, ३०. निर्धन, ३१. कड़वा, ३२. तींता, ३३. रसायन, ३४. विधवा, ३५. सर्प, ३६. तस्कर ३७. भैंस, ३८. गदहा, ३९. ऊँट, ४०. चना, ४१. वातल, ४२. निष्पाव।

८. राहु ग्रह

१. पर्वत शिखर, २. गुफा, ३. नदी, ४. म्लेच्छ जाति, ५. शूद्र, ६. सियार

भक्षक, ७. शूलिक, ८. वोक्काणा, ९. अश्वमुख, १०. विकलांग, ११. कृतघ्न, १२. चोर, १३. सत्य, १४. शौच, १५. दान, १६. गदहा, १७. जासूस, १८. मल्ल योद्धा, १९. तेज गुस्सावाला, २०. गर्त्ताश्रय, २१. नीच, २२. उपहत, २३. दाम्भिक, २४. राक्षस, २५. निद्रा, २६. जन्तु, २७. धर्म, २८. माष, २९. तिल, ३०. सूर्य और चन्द्रमा के शत्रु।

९. केतु ग्रह

१. पर्वत, २. दुर्ग, ३. पहलव, ४. श्वेत, ५. हूण, ६. चोल, ७. अफगान, ८. मरुभूमि, ९. चीन, १०. गुफा में रहने वाला, ११. धनी व्यक्ति, १२. बड़े व्यापारी, १३. पराक्रमी, १४. दूसरी स्त्री के विवाद में लगा, १५. परन्ध्र, १६. कूतुहल, १७. मूर्ख, १८. धार्मिक व्यक्ति।

ग्रह भक्ति योगाध्याय-१६ में वर्णित।

❑❑

परिशिष्ट-५

भूगर्भस्थ जलस्रोत ज्ञापक-चक्र

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
१. पश्चिमी शिरा	७.१/२ हाथ नीचे	वेतस वृक्ष जलरहित प्रदेश का	३ हाथ वृक्ष से पश्चिम	२.१/२ हाथ गहराई पर श्वेत मेढ़क उसके नीचे क्रमसे पीली मिट्टी और कठोर पत्थर।
२. पूर्वी शिरा	१० हाथ नीचे	जम्बू वृक्ष जलरहित प्रदेश का	३ हाथ वृक्ष से उत्तर	५ हाथ मिट्टी के नीचे लोहे जैसी सुगन्ध, हलकी सफेद जैसी मिट्टी और साथ में मेढ़क।
३. मीठा जल	१० हाथ नीचे	जम्बू वृक्ष के नीचे पूर्व में	३ हाथ दक्षिण वृक्ष के	२.१/२ हाथ गहराई पर मछली, नीली मिट्टी, कबूतर के वर्ण का पत्थर, पर्याप्त जल।
४. शीतल जल	१२.१/२ हाथ नीचे	उदुम्बर वृक्ष जलरहित प्रदेश	३ हाथ वृक्ष से पश्चिम	५ हाथ गहराई पर सफेद साँप और काला पत्थर

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
५. अधिक जल	१७.१/२	अर्जुनवृक्ष, बांबी के उत्तर में	३ हाथ पश्चिम वृक्ष के	२.१/२ हाथ सफेद गोहा ५ सी. गहराई में मिट्टी (पीली, सफेद, भूरी और, काली)।
६. अधिक मात्रा में मीठा जल	११.१/२	निरगुन्डी वृक्ष के पास बांबी	३ हाथ दक्षिण वृक्ष से	२.१/२ हाथ गहराई में लाल मछली, लाल-भूरे, रंग की मिट्टी, बालू, कन्कड़ के साथ)।
७. स्वच्छ जल शुद्ध जल	१५	बेर वृक्ष के पूर्व में बांबी	३ हाथ पश्चिम	२.५ हाथ पर सफेद छिपकली
८. मीठा जल	१६.१/२	बेर वृक्ष और पलास वृक्ष-जल रहित प्रदेश का	३ हाथ वृक्ष से पश्चिम में	५ हाथ गहराई में साँप (बिना विष का)

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
९. मीठा जल	१५हाथ	गूलर और बेल एक साथ	३ हाथ वृक्ष के दक्षिण	२.५ हाथ गहराई में काला मेढ़क
१०. पश्चिमी शिरा	१६.१/४ हाथ	फल्गु वृक्ष और बांबी	३ हाथ पश्चिम बांबी से	पीली मिट्टी और सफेद पत्थर २.१/२ हाथ गहराई में सफेद चूहा।
११. दक्षिणी दिशा	१६.१/२ हाथ	कम्पिल्लक वृक्ष जलरहित प्रदेश में	३ हाथ वृक्ष का पूर्व	नीली मिट्टी, कबूतर के रंग की मिट्टी, १ हाथ गहराई में मछली (बकरी की तरह गन्ध गहराई में थोड़ा काला जल)
१२. कुमुदा शिरा	१५हाथ	शोड़क वृक्ष जलरहित प्रदेश	२ हाथ वृक्ष का वायुकोण	
१३. ,,	७.१/२हाथ	बहेड़ा वृक्ष से दक्षिण	२ हाथ वृक्ष का पूर्व	-

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
१४. पश्चिमी शिरा (जो ३ साल बाद समाप्त हो जायेगी	२२.१/२ हाथ	बहेड़ा वृक्ष से दक्षिण	१हाथ वृक्ष के उत्तर	५ हाथ गहराई में सफेद विश्वम्भरक (Scorpion) केसर के रंग का पत्थर, उसके नीचे पानी।
१५. अत्यधिक जल	२२.१/२ हाथ	सप्तपर्ण वृक्ष के पास कुश ईशान कोण में बांबी	वृक्ष और बांबी के बीच	५ हाथ गहराई में कमल के रंग का सर्प, लाल मिट्टी, कुरुविन्द पत्थर
१६. जल उत्तर शिरा स्वच्छ	२५ हाथ	सप्तपर्ण वृक्ष बांबी से घिरा	१ हाथ वृक्ष, उत्तर	२१/२ हाथ गहराई में हरा मेढ़क, काली मिट्टी, पत्थर।
१७. जल	२२.१/२ हाथ	मेढ़क किसी भी वृक्ष के नीचे	१ हाथ वृक्ष के उत्तर	५ हाथ गहराई में नेवला, नीली मिट्टी, पीली-सफेद मिट्टी, मेंढक जैसा पत्थर।
१८. पहले पूर्वी शिरा फिर उत्तरी, स्वच्छ मीठा पानी	१७.१/२ हाथ	करन्ज वृक्ष के दक्षिण	२ हाथ वृक्ष के दक्षिण	२१/२ हाथ गहराई में छोटा कछुआ, पहले पूर्वी शिरा फिर उत्तरी शिरा गहराई में हरा पत्थर उसके नीचे जल।
१९. पूर्वी शिरा	३७.१/२ हाथ	महुआ वृक्ष के उत्तर	५ हाथ वृक्ष के पश्चिम	५ हाथ गहराई में बड़ा साँप, धुयें के रंग की मिट्टी, काला पत्थर, फेनिल जल

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
२०. पूर्वी शिरा	२५ हाथ	तिलक वृक्ष, दक्षिण में कूआँ, दूब से घिरा हुआ	५ हाथ, वृक्ष के पश्चिम	-
२१. उत्तरी शिरा अत्यधिक जल (जिसकी गन्ध लोहे जैसी)	२३.३४ हाथ	कदम्ब वृक्ष पश्चिम	३ हाथ वृक्ष से दक्षिण	५ हाथ गहराई में सुनहरा मेढ़क और पीली मिट्टी
२२. दक्षिणी शिरा	२० हाथ	(नारियल वृक्ष) ताड़ वृक्ष बांबी से घिरा	६ हाथ वृक्ष के पश्चिम	–
२३. पहले पश्चिमी शिरा फिर उत्तरी शिरा	२५ हाथ	कैथ वृक्ष के उत्तर की बांबी	७ हाथ वृक्ष के उत्तर	५ हाथ गहराई में चितकबरा, सर्प काली मिट्टी, कठोर, पत्थर, सफेद मिट्टी
२४. पहले दक्षिणी शिरा फिर उत्तरी शिरा	१७.५हाथ	बेर वृक्ष, अथवा असमन्तक वृक्ष से उत्तर बांबी	६ असमन्तक वृक्ष के उत्तर में	५ हाथ गहराई में कछुआ, श्याम पत्थर रेतीली मिट्टी, दक्षिण शिरा ईशान शिरा

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
२५. पहले पश्चिमी शिरा उसके नीचे दक्षिणी	२८.३४ हाथ	दारु हल्दी वृक्ष के उत्तर बांबी	३ हाथ वृक्ष का पूर्वी	नीला साँप ५ हाथ गहराई में, पीली मिट्टी, पश्चिमी शिरा और फिर दक्षिणी शिरा, हरा पत्थर, काली मिट्टी
२६. जल	५ हाथ	जलरहित में जलीय तथा जलीय में निर्जल चिह्न		–
२७. ,,	१५ हाथ	दूब, भंगरया, निशोत इन्द्रदन्ती शुक्रपर्णी, लक्ष्मणा	२ हाथ दक्षिण दिशा	–
२८. ,,	पास में	लंबी डालियों वाले फैले हुए वृक्ष	–	रूखे वृक्ष से जलाभाव, पीले पत्ते
२९. ,,	२२.५ हाथ	तिलक, आम्रातक (आमड़ा) वरुणक, भिलावा, बेल तेन्दू अंकोल,	३ हाथ वृक्ष के उत्तर	–
३०. जल शिरा	२२.५ हाथ	सूखे प्रदेश में घास तथा हरे-भरे प्रदेश में बिना घास का स्थान	–	–

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
३१. जल शिरा	१८.३४ हाथ	कँटीले वृक्षों में बिना काँटे का तथा बिना काँटे वाले वृक्षों के साथ काँटे वाला वृक्ष हो	३ हाथ वृक्ष का पश्चिम	–
३२. उत्तरी शिरा	१७.५ हाथ	पैर पटकने से गम्भीर शब्द होने पर	३ हाथ जगह पर	–
३३. जल	१५ हाथ	पैर पटकने से गम्भीर शब्द होने पर	३ हाथ शाखा में	–
३४. जल	२० हाथ	अस्वाभाविक नीचे की ओर झुकी, पीली डाली हो।	३ हाथ पूर्वी का	पीली मिट्टी और पत्थर
३५. ,,	१७.५हाथ	कटेरी वृक्ष साथ में सफेद फूल	कटेरी बिना काँटे की	
३६. जल	१५ हाथ	जल रहित प्रदेश में दो शीर्षवाला खजूर का पेड़	२ हाथ पश्चिम में	–
३७. प्रचुर जल	१० हाथ	भाँप या धुआँ जमीन से निकले	–	–
३८. ,, ,,	१० हाथ			

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
३९. उत्तरी शिरा	२५ हाथ		४.५ हाथ पीलू वृक्ष के पश्चिम वल्मीक	५ हाथ गहराई में मेढ़क पत्थर
४०. दक्षिणी शिरा	३५ हाथ	वल्मीक	४.५ हाथ पीलू वृक्ष के दक्षिण	सफेद और काला
४१. मीठा जल दक्षिण शिरा	५० हाथ	वल्मीक	४.५ हाथ कटीर वृक्ष के	साँप १ हाथ लंबा ५ हाथ गहराई पीला
४२. पश्चिम शिरा	६० हाथ	खारा जल रोहितक	उत्तर वृक्ष के पश्चिम ३ हाथ वृक्ष दक्षिण	मेढ़क –
४३. जल पश्चिम शिरा	७० हाथ	इन्द्र वृक्ष के पूर्व वल्मीक	वल्मीक १ हाथ वृक्ष का पश्चिम	५ हाथ गहराई पर सफेद गोध
४४. दक्षिणी शिरा	७५ हाथ नीचे	सुवर्णतरु के बाँए	२ हाथ वृक्ष का	२.५ हाथ गहराई पर

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
४५. पहले दक्षिणी शिरा फिर उत्तरी शिरा	८० हाथ पर जल	बदरी और रोहित वृक्ष एक साथ में	३ हाथ वृक्ष का पश्चिम	सफेद मिट्टी २.५ गहराई में बिच्छू।
४६. पूर्वोत्तर शिरा प्रभूत जल	९० हाथ	करीर और बेर साथ में	३ हाथ वृक्ष से पश्चिम	–
४७. अधिक जल	१०० हाथ	पीलू वृक्ष के साथ में बदरी	३ हाथ वृक्ष का पूर्व	
४८. जल	१२५ हाथ नीचे	कुंकुम के साथ करीर वृक्ष अथवा कुंकुम और बेल साथ हों	२ हाथ वृक्ष के पूरब	
४९. जल	१०५ हाथ २१ पोरसा गहरा	वल्मीकि के ऊपर दूब जमा हो कुश पीतवर्ण का।	गहरा जल कूप	–
५०. शुद्ध जल	१२५ हाथ २५ पोरसा नीचे	कदम्ब, कुश, बांबी	दक्षिण दो हाथ	–
५१. शुद्ध जल	२०० हाथ ४० पोरसा नीचे	३ बांबी के मध्य ३ वृक्ष तथा लाल करंज का पेड़		उत्तर ४ हाथ १६ अं.

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
५२. शुद्धजल	२५० हाथ ५० पोरसा नीचे	शमी वृक्ष से उत्तर बांबी	५ हाथ से पश्चिम	–
५३. शुद्ध जल	२७५ हाथ ५५ पोरसा नीचे	५ हाथ पर बॉबी हो, मध्य श्वेत बॉबी	श्वेत बॉबी के नीचे	-
५४. शुद्ध जल	३०० हाथ ६० पोरसा नीचे	पलास के साथ शमी वृक्ष -	५ हाथ पश्चिम -	ढ़ाई हाथ गहराई में साँप, पीली मिट्टी, बालू
५५. मीठा जल	३५० हाथ ७० पोरसा नीचे	वापी से युक्त श्वेत रोहितक १ हाथ १ हाथ पूरब	–	
५६. मीठा जल	३७५ हाथ ७५ पोरसा नीचे	सफेद कंटकी के बाहुल्य में वृक्ष से १ हाथ दक्षिण शमी	२१/२ हाथ	गहराई में साँप
५७. ,, ,,	१५ हाथ नीचे	बांबी के ऊपर जामुन, निसोत, ३ हाथ उत्तर शिशुमारी आदि पौधे हों		

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
५८. ,, ,,	२५ हाथ पर	चिकनी, बलूई, नीची भूमि	-	-
५९. अत्यधिक जल	२० हाथ	चिकने वृक्ष, बहुतों के मध्य कोई विकार युक्त वृक्ष दक्षिण वृक्ष	-	-
६०. अत्यधिक जल	,,	जमीन में पैर धँसे, बिना घर के बहुत कीड़े हों		
६१.	७.५ हाथ पर	गर्म एवं ठंडी भूमि एक साथ इन्द्रधनुष या बांबी	-	
६२.	१७.१/२ हाथ	बहुत सी बांम्बियों में एक उन्नत हो वा सस्य का विकास न हो	-	-
६३. उत्तर शिरा	३ हाथ नीचे	वट, पीपर, गूलर एक साथ	-	-
६४. उत्तरी शिरा	तीन पोरसा नीचे	वट, पीपर एक साथ	-	-
६५. जल-शिरा	१५ हाथ पर	वृक्ष, लता, गुल्म, काश कुश हों		

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
६६. जल शिरा	१५ हाथ नीचे पर्वत के ऊपर	विभीतक, मदयन्ती पर्वत मूल में	-	-
६७. शुद्ध जल	पर्वत हों, ३ पोरसा नीचे			
६८. अत्यधिक मीठा जल		मूँज, काश, कुश नीली, काली, लाल भूमि	-	-
६९. भूमि क्षार जल- नमकीन जल	लाल, बालुई, भूरी पीली, श्वेत भूमि	- -	- -	-
७०. मीठा जल जल की गहराई में पत्थर	नीली (काली) काला या पीला पत्थर	शीघ्र जल		

जलशिरा दिशा	गहराई	पहचान	दिशा एवं दूरी	लक्षण तथा परिमाप
७१. अत्यधिक जल	कबूतर, मधु या घी के समान पत्थर हैं।	बादल, अथवा पके, अंजीर के समान पाषाण		
७२. जलाभाव	विविध बिन्दुओं वाले पत्थर हों	ताम्बा भस्म, पीला रंग हो	-	-
७३. प्रचुर जल	चन्द्र, स्फटिक, मोती सुवर्ण हरिताल के वर्ण की शिलाएँ हों।	शुभ लक्षण युक्त जल	-	

❑❑

अकारादि श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
अकारणे क्रोशति चेदनर्थ	९१	२	२२२
अक्रियमाणककरणं	९६	५	३४१
अक्षोभ: श्रवणं चेष्टम्	८९	९	२१४
अग्निभयं च चतुर्थे	८६	३१	१५५
अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठा	८४	२	६६
अण्डार कष्टीति रूतेन पूर्ण	८७	२६	१७८
अत: परं लोक निरूपितानि	८५	१	७४
अतसीकुसुमश्याम:	८०	७	३८
अतीव ह्रेषन्ति किरन्ति बालान्	९२	११	२३३
अत्यन्तविरुद्धानां	९६	१२	३४५
अथवा कृशमपि सुजन:	१०५	३	५३१
अत्रैवान्तर्भूतं	१०६	१४	५३९
अथ पञ्चमे नृपभयं	८६	३३	५३८
अथ विषतरुकण्टकी काष्ट	८८	१	१९२
अनिमित्त संहतै ग्रामे	९४	८	२५२
अन्त: पुरं नाशमुपैति मेदे	९२	२	२२६
अन्तर चक्रं विरुतं श्वचेष्टित	१०६	११	५३८
अन्तरमणि संयुक्ता	८०	३५	५१
अन्तेगुरुर्धनवति	१०२	१२	४१९
अन्नै: क्षीर धृतोत्कटै: सह गुडै	१०४	८	५२५
अन्य: जन्मान्तरकृतं	८५	५	७५
अन्य प्रतिरुता याम्या	८९	८	२१४
अपरस्यां दशि योऽर:	८६	२३	१५२

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
अपरे तु कर्मिणां भयं	८६	४४	१६२
अपसव्यास्तु शकुना	८५	५७	११९
अपहरति विषमलक्ष्मीं	८०	२७	४९
अपि कालमपेक्ष्य च पात्रं	१०३	४६	४८१
अप्रसिद्धिं भयं वापि	८५	६१	१२१
अब्जेषु मूर्धषु च वाजिगजोरगाणां	८७	२०	१७४
अभयाश्च तुण्डपक्षैः	९४	९	२५३
अभिमुखपतितं प्रशान्तदिक्स्थं	८४	९	७२
अभ्यन्तरे तु नाभ्यां	८६	२८	१५४
अम्बस्पन्दनचन्दन वृक्षाणां	७८	१८	०९
अर्धपलस्य द्वादस	८१	८	५७
अर्धमतोऽ ष्टांशों	७८	१०	०६
अवाक् प्रदानेऽपि हितार्थसिद्धिः	८७	४६	१८८
अशनिजलानिलहस्ति	७८	३	०२
अशुभनिरीक्षतः शुभफलो	१०३	५२	४८८
अश्विनीपित्र्यमूलाद्या	१०१	७	४११
अश्विनोऽथ भरण्यो	१०१	१	४०८
अश्वियमदहनकमलज	९७	४	३५१
असनस्पन्दनचन्दन	७८	२	०२
असिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयौ	८५	६२	१२२
अहुताशप्रज्वलनं	९६	१०	३४४
आ			
आकारमाद्येऽम्बुगते घकार	९५	१७	३१७
आकाररावी समृगः कुरङ्गः	८७	३३	१८२
आग्नेयदिग्लनमुहूर्तदेशे	९५	०६	२९२
आग्नेय कौलिमतक्ष	८६	२०	१५०
आग्नेय्यामनलाजी	९४	२१	२६२
आज्ञार्थमानास्पदभूतिवस्त्र	१०३	३४	४६८
आदिशेदुभयभङ्गदर्शनात्	९३	१०	२४३

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
आदौ यादृक् सौम्य:	१०३	५०	४८६
आधूम्रं व्रणबहुलम्	८१	११	५७
आपण्डुरस्य वर्षत	८७	१३	१७०
आपृच्छेऽद्य गमिष्यामि	८७	४३	१८७
आप्योदयर्क्षक्षण दिग्जलेषु	९५	५	२९१
आयेरविर्बहुसुतां सधनां शशाङ्क:	१०२	११	४१८
आरोग्यमायुर्बदरीबृहत्यो:	८४	५	६८
आरोहणमन्यवाजिनाम्	९२	६	२३०
आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्न:	९२	१३	२३५
आर्याणामपि कुरुते	१०३	५१	४८७
	इ		
इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगाया	८७	४५	१८८
इन्द्रध्वजनीराजन्	१०६	६	५३६
इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि	८७	३९	१८६
इष्टानन्दकलत्रो	१००	११	४०४
	ई		
ईर्षुर्लुब्धो द्युतिमान्	१००	९	४०२
ईषत्ताम्रं हिमवति	७९	२५	
ईषायोगे दारु	७८	२७	१४
	उ		
उकारवर्णेविरुतेऽर्थ सिद्धि:	८८	१५	२०४
उक्तमिदं हयचेष्टितम्	९२	१५	२३६
उग्राणि पूर्वभरणी	९७	३५४	
उच्चै: स्वरा: स्युस्तृणकूट संस्था:	८८	६	१९८
उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्यपूर्वम्	८९	१५	२१७
उदकार्गलमारामिक	१०६	७	५३६
उदङ् मुख: प्राङ्मुख	८४	८	७२
उद्बद्धसङ्ग्रहणभोजनचौरवह्नि	९५	३	२८९

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
उपचय भवनोपयातस्य	१०३	६१	५०४
उपान्त्यगो भृगोः सुतः	१०३	३८	४७१
ऊ			
ऊकारमाहूर्बृषभे जलेख	९५	२४	३२४
ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्त	८६	७	१४३
ऊर्ध्वमुखाश्वपलपक्षाः	९४	११	२५४
ए			
एकद्रुमेण धन्यम्	७९	३८	२०
एक स्थाने रूवन् दीप्तः	८५	६४	१२३
एकेनाक्ष्णा साश्रुणा दीनदृष्टिः	८८	१०	२०१
एकेनावाक् शिरसा	७८	२८	१५
एको निशिथे ऽनलदिक्स्थितश्च	८७	४१	१८६
एतानि सर्वाणि	८०	३०	५०
एवं देशे तद् विद्भ्यः	८७	१०	१६९
एवं रवेः क्षेत्रनवांशलग्ने	९५	१०	२९५
एवं विकल्पोऽक्षर संग्रहोऽयं	९५	३०	३३०
ऐ			
ऐन्द्रं षडश्रिशुक्लम्	८९	८	२६
ऐन्द्रनलदिशोर्मध्ये	८५	२९	९८
ऐन्द्र्यांदशिं शान्तयाम्	८६	१	१४०
ऐन्द्र्यादिदिगवलोकि	९४	१९	२६०
ऐरावत कुलजानाम्	८०	२०	४५
ऐशानस्यासन्ने	८६	४०	१६०
ऐशाने व्रतयुक्ता	८६	२६	१५३
ऐशान्यां देवलकोप	८६	१६	१४८
ऐशान्यां सम्प्राप्तिः	९४	२४	२६३
औ			
ओजाः प्रादक्षिणं शस्ता	८५	४३	१०९
क			

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
कटिरपि च कृत्तिका	१०४	०२	५२२
कडिति फलाप्तिः फलदा	९४	५५	२८१
कण्टकिनो ये च स्यु	७८	०४	०३
कण्टकिमिश्रे सौम्ये	९४	३७	२७०
कदलीकाण्ड निभोरुः	१०४	१३	५२६
कपोतकी च श्यामा	८७	०५	१६६
कमलजविधातृहरियमशशाङ्क	९८	०१	३६८
करगौ विरुते वर्ष	९४	५४	२८०
करेति कलहं कुरु कुरु च	९४	५१	२७८
कर्पूरस्फटिकनिभं	८०	२८	४९
कर्मप्राप्तिदर्शनेऽर्थक्षयश्च	१०३	४५	४७९
कर्मसङ्गमयुद्धेषु	८५	४७	११३
कर्माङ्गुलं यवाष्टक	७८	०८	०५
कलत्रकलहाक्षिरुग्	१०३	१६	४४६
कलहः स्वरदिप्तेषु	८५	६३	१२३
कलहो नैऋतभागे	८६	३५	१५७
कलुषा मन्दद्युतयो	८१	०४	५६
कल्पादौ चक्रवर्ती भवति	१०४	१३	५२८
कवर्गपूर्वान् कुजशुक्रचान्द्रि	९५	३	३०१
का इति काकस्य रूतम्	९४	५०	२७८
काकद्वयस्यापि समानमेतत्	९४	५७	२८२
काकपदमक्षिकाकेश	७९	१५	३१
काकेति विघातः काकटीति	९४	५३	२७९
काणेनाक्ष्णा दक्षिणेनैति सूर्ये	९५	१२	२९७
काद्यास्तु वर्गाः कुजशुक्रसौम्य	९५	१५	३३५
कार्यं तु मूलशकुनेऽन्तरजे तदह्नि	९४	६०	२८४
कार्यं पौष्टिकमौषधादिशकुनौ	९९	०५	३८४
कालकधुन्धुकसंज्ञम्	७८	३७	१९
कालकसंज्ञं कृष्णम्	७८	३५	१८

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
किलिकिल्किलितित्तिरस्वन	८७	२१	१७५
किलिकिलिवरुतं कपेः प्रदीप्तं	८७	२२	१७५
किष्किषिशब्दः पूर्णः	८७	१६	१७२
कीटाखुमक्षिकोरग	९६	०७	३४३
कुक्टुटेभपिरिल्यश्च	८५	२०	९१
कुजेऽभिधातः प्रथमे द्वितीये	१०३	११	४४१
कुड्यमुत्किरति वेश्मनो यदा	८८	०९	२००
कुम्भाधस्ताज्जङ्घा	७८	३०	१६
कुम्भोऽन्त्यधनिष्ठार्ध	१०१	०६	४१०
कुरुविन्दभवाः शबलाः	८१	०२	५४
कुर्याद् बवेशुभचरस्थिरपौष्टिकानि	९९	०३	३८२
कुर्वन्ति भास्करशनैश्चरराहुभौमाः	१०२	०२	४१३
कृकलासकपिभुजङ्गेषु	७८	२४	१२
कृकलासकपिभुजङ्गेष्वशुभ	९३	०५	२३९
कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे	९९	०४	३८२
कृष्णचतुर्दश्यर्धाद्	९९	०२	३८१
कृष्णश्वेतकपीतक	८०	१९	४४
कृष्णाः श्वेताः पीताः	८०	४	३६
केकेति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे	८७	२५	१७८
केचित् तु शकुनद्वारम्	८५	५३	११७
केन्द्राणि वा केन्द्रगतांशेकैः स्वैः	९५	३१	३३०
केन्द्रे यथास्थानबलप्रकर्षम्	९५	१३	३१३
केवलचन्दनरचितम्	७८	१४	०७
कोटुक्लीति क्षेम्यः	८७	१७	१७२
कोणाच्चतुर्थखण्डे	८६	०५	१४२
कौबेर्यां दिशि योऽरः	८६	२५	१५३
क्रक्रेति च सारिका	८७	३०	१८०
क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो	९५	१३	२९७
क्रूरोग्रदोषदुष्टैश्च	८५	६८	१२६

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
क्रोशादूर्ध्व शकुनिविरुतम्	९४	६२	२८६
क्रौष्टुकोलूकहारीत	८५	२१	९२
क्रोञ्चवद्रिपुवधाय ह्रेषितम्	९२	०७	२३०
क्षणतिथ्युडुवातार्के	८५	१५	८५
क्षितितनयदिने प्रसिद्ध्यन्ति	१०३	६१	५०८
क्षीरमृष्टफलपुष्पपादपे	९३	११	२४४
क्षेत्रेश्वरे क्षीणबलेऽशके च	९५	१२	३१२
क्ष्वेडास्फोटितपुण्याह	८५	३९	१०६
ख			
खं खेति चौच्चैश्च मुहुर्मुहुर्ये	८८	१६	२०५
खरे खरे पथिकागममाह	९४	५२	२७९
खुरदेशे यो ग्रन्थि:	७८	३१	१६
ग			
गच्छतस्तिष्ठतो वापि	८५	३५	१०२
गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च	१०३	४४	४७८
गजदन्त: सर्वेषाम्	७८	१९	१०
गन्धर्वपुरं मासाद्	९६	१३	३४६
गमनमुखमुपानहम्	८८	०१	१९३
गमने कर्णसमश्चेत्	९४	२५	२६४
गर्ताकुक्कुटकाकस्य प्रथितम्	८७	०८	१६७
गावो दीना: पार्थिवस्याशिवाय	९१	०१	२२२
गुञ्जात्रयस्य मूल्यम्	८०	१२	३९
गोपुच्छेस्थे वल्मी	९४	३५	२६९
गौपेर्यष्ट्याहतानां	१०२	१३	४१९
गोमायुगृध्रसङ्घा	९६	०९	३४४
गोशशक्रोंचलोमाश	८५	३३	१०२
गोहरणशस्त्रघाता	८६	३९	१६०
ग्रन्थस्य यत् प्रचरतो	१०५	०५	५३२
ग्रामस्य मध्ये यदि वा पुरस्य	८८	१८	२०६

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
ग्रामाण्य प्रचाराद्यम्	८५	१०	७८
ग्रामारण्याम्बुभूव्योम	८५	०६	७६
ग्रामे भषित्वा च बहिः श्मशाने	८८	१४	२०३
ग्रामौ मध्यमषढजौ	८५	१४	१०७
ग्राम्यः प्रदीप्तः स्वरचेष्टिताभ्यां	९५	०७	२९२
ग्रीवा ज्येष्ठा श्रवणं श्रवणौ	१०४	०४	५२२
घ			
घटवत् सुषिरं मध्ये	७८	३३	१७
च			
चतुर्थं गृहं सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते	१०३	४२	४७६
चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बबृद्धयो	१०३	३१	४५२
चपलश्चतुरो भीरुः	१००	०३	३९७
चामर दण्ड परीक्षा	१०६	०९	५३७
चारवशाद् द्वितीयगृहगे	१०३	४०	४७४
चारश्चागस्त्यमुनेः	१०६	०२	५३५
चाषस्य काकेन विरुध्यतश्चेत	८७	२४	१७७
चिचिदितिशब्दः पूर्णः	८७	१४	१७१
चितिकेशकपालेषु	८५	६०	१२१
चित्राम्बरमाल्यधरः	१००	०८	४०१
चित्रा ललाट संस्था	१०४	०५	५२२
चिरिल्विरिल्वितिस्वरैः	८७	३८	१८५
चिह्नं गवामथ शुनां	१०६	८	५३७
चिह्नं ध्वजो दग्धमथ श्मशानम्	८५	७८	१३६
चैत्रस्य बहुलपक्षे	१०४	०६	५२३
चौरकवर्णैश्चौरा	९४	०७	२५२
छ			
छत्रचितियूपहुतवह	९६	११	३४५
छिक्करः कूटपूरी च	८५	४४	११०
छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः	९४	३८	२७०

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
	ज		
जनयति च तनयभवनमुपगतः	१०३	२७	४५९
जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो	१०३	३५	४६८
जन्मन्यायासदोऽर्कः	१०३	०५	४३१
जवजातिबल स्थान	८५	१९	९१
जालश्वचरणौ नैष्टो	८५	४६	११२
जाहकाहिशश क्रोड	८५	४२	१०८
जीमूतध्वनिदीप्तेषु	८५	५९	१२०
जीवे जन्मन्यपगतधनधीः	१०३	२५	४५७
जेष्ठासु न बहुमित्रः	१००	१०	४०३
ज्योतिः शास्त्रेसमुद्रं	१०५	०१	५३०
ज्योतिषमत्यः शुभ्राः	८०	०५	३६
	त		
तक्षकवासुकिकुलजाः	८०	२५	४८
तत्पञ्चमदिशा तुल्यं	८५	१३	८२
तत्रादिराश्यादिचतुर्विलग्न	९५	१४	३१४
तदनन्तरदिशि कनका	८६	०२	१४०
तदन्तरदिशिनाशः	८६	३०	१५५
तनूरस्कशिरोग्रीवाः	८५	०९	७७
तरुताली विदलाम्बर	८५	७६	१३३
तानि दृष्ट्वा चकारेमम्	८५	०४	७४
तावेव तु यथाभागम्	८५	५२	११६
तिथिवाय्वर्कभस्थान	८५	५८	१२०
तृतीयगश्चौरकुमारकेभ्यो	१०३	१२	४४२
ते ग्राम्यसत्वैरनुवाश्यमानाः	९०	०२	२२०
तेषां किल जायन्ते	८०	२१	४५
तौलिनि चित्रान्त्यार्धं स्वातिः	१०१	०४	४०९
त्रिंशत्सप्ततिमूल्यम्	८०	१५	४१
त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोग	१३	२९	४६२

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
त्रिभिरेव धूमकेतोर्मासैः	९६	०३	३३९
त्रीण्युत्तराणि तेभ्योरोहिण्यश्च	९७	०६	३५२
	द		
दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभम्	८०	२३	४७
दक्षिणविरुतं कृत्वा वामे	९४	२९	२६६
दद्याद् व्रते समाप्ते घृतपूर्णं	१०४	०७	५२४
दधितण्डुललाजानाम्	८६	१४	१४७
दन्तभङ्गफलमत्र दक्षिणे	९३	०९	२४२
दन्तस्य मूलपरिधिम्	७८	२०	११
दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते	९९	०८	३८८
दशधैवं प्रशान्तोऽपि	८५	१६	८८
दशमगृहगते समं महीजे	१०३	१७	४४७
दान्तः सुखी सुशीलो	१००	०४	३९८
दारुणनादस्तरुकोटरोपगम	९४	१७	२५९
दिग्देशचेष्टा स्वरवासरर्क्ष	९५	०१	२८८
दिङ्मण्डलेऽभ्यन्तरबाह्य भागे	८७	४७	१८९
दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपात	१०५	०६	५३३
दिनान्तसन्ध्यासमये निवासम्	८७	४०	१८६
दिवा प्रस्थानवद् ग्राह्याः	८५	४८	११४
दिव्यो धन्वन उक्तः	८७	०९	१६७
दीपः संहतमूर्तिरायततनु	८३	०२	६३
दीप्तोद्विग्नो विटपे	९४	१८	२६०
द्रेष्काणवृद्ध्या प्रवन्ति नाम	९५	०४	३०२
द्वन्द्वरोगार्दितत्रस्ताः	८५	२५	९४
द्वात्रिंशत् प्रविभक्ते	९४	४९	२७७
द्वात्रिंशता तु गुच्छः	८०	३३	५१
द्वात्रिशत् प्रविभक्तम्	८६	१८	१४९
द्वारे शिरो न्यस्त बहिः	८८	०८	२००
द्वित्रिचतुःशावत्वम्	९४	०६	२५१

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
द्विपभुजगशुक्तिशङ्खाभ्र	८०	१	३४
द्विपहयवनितादीनाम्	७९	०२	२२
द्विमूर्तिसंज्ञे तु वदेद् द्विनाम	९५	०६	३०५
द्विमूर्तिसंज्ञे मिथुने जकारः	९५	२५	३२५
द्विविधं कथयन्ति संस्थिताना	९५	०२	२८८
द्व्यक्षरं चरगृहांशकोदये	९५	१४	३३४
	ध		
धनसुतसुखयोषित्मित्रवाहाप्तितुष्टि	१०३	२४	४५५
धर्मे स्थिता भृगुदिवाकरभूमिपुत्रा	१०२	०९	४१७
धारणवर्षणरोहिणि	१०६	०४	५३५
धीवरशाकुनिकानाम्	८६	३४	१५७
	न		
नक्षत्रजमुद्वाहे	९७	०३	३४९
न ग्राम्योऽरण्यगो ग्राह्यः	८५	२४	९४
न तु भाद्रपदे ग्राह्याः	८५	२७	९६
नवकैकाष्ठदशकैकषट्	९६	१४	३४६
नवतिः सैव षडूना	७८	०९	०५
नवमगृहगो बन्धोद्वेगश्रमोदररोगकृद्	१०३	१०	४३८
नवमे तु धर्मविनितासुखभाग्	१०३	३७	४७०
नष्टात्मजा रविकुजौ	१०२	०५	४१४
न सखीवदनं तिलकोज्ज्वलं	१०३	२८	४६०
न स्नातमात्रगमनोन्मुखभूषिताना	९७	१३	३६१
नानानाविधानि विरुतानि	८७	३५	१८३
नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते	१०३	१८	४४८
नाभिस्थे बन्धुसुहृत्	८६	१९	१५०
नामानि चाग्न्यम्बुकुमार विष्णु	९५	१६	३३५
नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपात	९२	०४	२२७
निगदितसमये न दृश्यते चे	९६	१७	३४८
निष्कुटमथ कोलाक्षं	७८	३२	१७

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
निष्कुटसंज्ञे द्रव्यक्षयस्तु	७८	३६	१९
नीचेऽरिभेऽस्ते चारिदृष्टस्य	१०३	५३	४९०
नीडे प्राक्शाखायाम्	९४	०३	२४९
नीपेऽर्थाप्तिः करवीरेऽन्नलब्धिः	८४	०६	६९
नृतुरगकरिकुम्भपर्याण	८८	०१	१९१
नृपसन्दर्शने ग्राह्यः	८५	५०	११५
नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते	९७	१४	३६५
नेमीभागं बुद्ध्वा	८६	२१	१५१
नैर्ऋतीवारूणीमध्ये	८५	३१	९९
नैर्ऋत्यां हृताश्वोपकरण	९४	२२	२६२
नैर्ऋत्यां स्त्रीलाभः	८६	०८	१४४
नैव दारुणतामर्के	८९	०७	२१२
नैषामर्घः कार्यो	८०	२२	४५
पक्षाद् भानोः सोमस्य	९६	०१	३३९
पञ्चविंशं शतामिति	८०	११	३९
पञ्चमं लघु सर्वेषु	१०३	५७	४९९
पञ्चवनस्पतिरचिते	७८	३९	२०
पथ्यात्मानं नृपं सैन्ये	८५	११	७९
परतोऽपि दर्शनं वातरोगिणां	८६	११	१४५
परतो वित्तविनाशः	८६	३८	१५९
परयोनिषु गच्छन्तः	८५	६६	१२४
परिणतदाडिमगुलिका	८०	०८	३८
परिभवो धनगते धनलब्धिः	१०३	२०	४५१
पलदशभागो धरणं	८०	१३	४१
पश्चिमे शर्बरीभागे	८५	४९	११४
पाको नक्षत्रगुणास्तिथिकरण	१०६	१२	५३८
पाद त्र्यंशार्धोनं	७९	१३	२८
पादौ मूलं जङ्घे च रोहिणी	१०४	०१	५२२
पाशेऽथवा कबन्धे	७८	२५	१२

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
पाशेऽथवा कबन्धे	९३	६	२४०
पिक्कापिच्चार्घार्धा	८०	१७	४३
पितरोऽमावश्यायां	९८	०२	३६८
पित्र्यान् मासः षट् षट्	९६	१५	३४७
पीडाः स्युः पंचमस्थेसवितरि	१०३	०६	४३२
पीनोन्नतविकृष्टासाः	८५	०८	७७
पुंराशिलग्ने विषमे तिथौ च	९५	०९	२९४
पुंस्कोकिल समवाणी	१०४	११	५२६
पूर्णपात्रदधिविप्रदेवता	९२	०८	२३१
पूर्णाननः कृमिपतङ्गपिपीलकाद्यैः	८७	२३	१७६
पूर्णाननेऽर्थलाभः	९४	१३	२५६
पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा	८५	५५	११८
पूर्वाच्छिन्नं यदि वा	७८	०६	०४
पूर्वाचार्यग्रन्था नोत्सृष्टाः	१०५	०२	५३१
पूर्वोदीच्योः शिवा शस्ता	८९	०३	२१०
पृच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां	८५	८०	१३८
पृष्ठं विद्धि धनिष्ठां	१०४	०३	५२२
प्रकाश्य दन्तान् यदि लेढ़ि सृक्विणी	८८	१७	२०५
प्रकृत्यापि लघुर्यश्च	१०३	५८	५००
प्रचोदयाम्यहं यत् त्वाम्	८७	४४	१८७
प्रतिवाश्य पृष्ठतो	९४	३०	२६६
प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः	१०३	३२	४६५
प्रथमे रविजे विषवह्निहतः	१०३	३९	४७३
प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनं	९२	५	२२९
प्रमदागर्भविनाशः	८६	३२	१५६
प्रमदाशिरउपगतपूर्ण	९४	४४	२७४
प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः	१०४	९	५२६
प्रविशद्भिः सैन्यादीन्	९४	४६	२७५
प्रवेशनं वारिणि वारणस्य	९३	१४	२४७

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
प्रसवः शुनामरण्ये वन्यानां	९६	८	३४३
प्रहरणसदृशेषु जयो	७८	२२	१२
प्राग्लग्नगे नं	९५	२८	३२८
प्राग्लग्नतोयास्तनभः स्थितेषु	९५	१०	३११
प्राच्यानां दक्षिणतः शुभदाः	९४	१	२४८
प्रायेण गोचरो	१०३	२	४२३
प्रायेण सूत्रेण विनाकृतानि	१०३	१	४२२
प्रारब्धमसुस्थितैर्ग्रहैर्यत्	१०३	५९	५००
प्रारम्भमाणेषु च सर्वकार्ये	९५	११	२९६
प्रावृट्कालेऽग्रहेऽम्भोऽग्राह्य	८८	७	१९९
प्रियभूषणः स्वरूपः सुभगो	१००	१	३९५
प्रोक्तस्यैवासन्ने	८६	४१	१६१
फ			
फणिनोऽभिमुखागमोऽरिसङ्ग	८७	१९	१७३
फलमासप्तमादेतदग्राह्यं	८९	१०	२१४
फेण्टकस्य वामतः	८७	३१	१८१
ब			
बन्ध व्याधि चाष्टमे	१०३	३०	४६२
बन्धः सूकरसंस्थे	९४	४७	२७६
बन्धघातभयानि स्युः	८५	६७	१२५
बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी	१००	२	३९६
बहुभृत्यधनी भोगी सुरपितृभक्तो	१००	६	३९९
भ			
भक्ष्यपानखलिनाभिनन्दिनः	९२	९	२३२
भयं च शय्यासु तदीश्वणां	८८	२०	२०७
भवति धरिणजे चतुर्थगे	१०३	१३	४४३
भषकूटपूरिकुबककरायिकाः	८७	४	१६६
भस्मास्थिकेशपत्राणि	९४	१२	२५५
भारद्वाजमतं दृष्ट्वा	८५	२	७४

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
भारवहतक्षभिक्षुकसन्दर्शन	८६	२४	१५२
भिन्नभैरवदीनार्त	८५	३६	१०३
भीता रुवन्ति कुकुकुक्विति	८७	३४	१८३
भूकम्पोल्कापरिवेषलक्षणं	१०६	५	५३६
भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंश्चचेति	९७	२	३४९
भृगुसुतदिवसे च चित्रवस्त	१०३	६३	५१७
भभेति शिवा भयङ्करी	८९	१३	२१६
भ्रमरशिखिखण्ठवर्णः	८१	५	५६
मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः	८०	३४	५१
माण्डव्यगिरं श्रुत्वा न मदीया	१०३	३	४२७
मात्रादियुक् स्याद् ग्रहयुक्तत्रिकोणे	९५	८	३०८
मारुत्यां शस्त्रायुध	९४	२३	२६३
माषकचतुष्टयधृतस्यै	८०	९	३९
माषकचतुष्टयं	८१	९	५७
माषकदलहान्यातो	८०	१०	३९
मासनाम समुपोषितो नरो	१०४	१६	५२९
मुक्ताप्राप्तैष्यदर्काशु	८५	१२	८०
मुक्ताशीत्या त्रिशत्	८०	१६	४१
मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति	९२	१४	२३५
मूर्तौ करोति दिनकृद्	१०२	०१	४१२
मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिताः	९३	०८	२४१
मूलमषाढ़ा पूर्वा	१०१	०५	४१०
मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि	९७	०७	३५३
मृगशिरसोर्धं रौद्रं	१०१	०२	४०९
मृगशीर्षाद्याः केशवानरायणमाधवाः	१०४	१४	५२९
मृतपुरुषाङ्गोवयस्थितः	९४	३९	२७१
मृदुवर्गोऽनुराधा चित्रा पौष्णैन्दवानि	९७	१०	३५७
मेषे ककारो हिबुके यकार	९५	१५	३१४
मेषे टकारो हिबुके ठकार	९५	१६	३१६

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
मौनं गता प्रतिरुते	८९	१२	२१६
	य		
यः केवलशिंशिपया	७८	१२	०७
यः पद्मकपर्यङ्क	७८	१३	०७
यः सर्वः श्रीपर्ण्यापर्यङ्का	७८	११	०७
यच्छक्रशुकवागीश	८५	०१	७४
यत् कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु	९८	०३	३६८
यदि वाम एवं विरुवन्	९४	२७	२६५
यदि शृङ्खला वरत्रा	९४	४२	२७३
यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य	८१	०६	५७
यात्रासिद्धिः समदक्षिणेन	८६	०६	१४२
यादृशेन ग्रहणेन्दुर्युक्त	१०३	५६	४९७
यानासनशय्यानिलयनं	८७	१२	१७०
याम्येनाद्ये नृपपुत्रदर्शनं	८६	०४	१४१
याम्येऽष्टांशे पश्चात्	८६	२७	१५४
या रोमाञ्चं मनुष्याणां	८९	११	२१५
यावन्नक्षत्रमाला विचरति	१०४	१३	५२८
याहीत्यग्निभयं शास्ति	८९	०६	२१२
युद्धाय टाकुटाक्विति	९४	५६	२८१
	र		
रक्तं पीतं च शुभं	७९	११	२७
रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः	१०३	४७	४८२
रजकेन समायोगः	८६	१७	१४९
रज्जवस्थकाष्टकण्टकि	९४	४०	२७१
रत्नानि बलाद्दैत्यात्	७९	०३	२३
रत्नेन शुभेन शुभं	७९	०१	२२
रवावापद्दैन्यं रुगिति नवमे	१०३	०७	४३३
रविभौमौ पूर्वार्धे शशिसौरो	१०३	४९	४८५
राजा कुमारो नेता च	८५	३४	१०१

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
राहुर्नभ: स्थलगतो विधवां	१०२	१०	४१७
रिपुभयकलहैर्विवर्जित:	१०३	१५	४४५
रोहिण्युत्तररेवती	९९	०७	३८८
रोहिताश्वाजवालेया:	८५	२६	९५
	ल		
लक्ष्मी: शिरीषे च तथा करञ्जे	८४	०४	६७
लग्नाम्बुसंस्थास्तनभ: स्थितेषु	९५	०२	३०१
लग्ने घकारो हिबुके	९५	२६	३२६
लग्ने जमोकारमथाम्बु संस्थे	९५	२९	३२९
लग्ने ञकारो हिबुके मकार:	९५	१८	३१८
लग्नेऽथवेन्दोर्भृगुभांशससंस्थे	९५	०८	२९३
लग्ने नकारो हिबुके तकार	९५	१९	३१९
लग्ने मकारो हिबुके ङकार	९५	२७	३२७
लघु हस्ताश्विनपुष्या:	९७	०९	३५६
लाभे तृतीये च शुभै: समेते	९९	०६	३८७
लोमाशिका पिङ्गलछिप्पिकाख्यौ	८७	०२	१६५
लोमाशिकाया: खलु कुक्कशब्द:	८९	०२	११०
	व		
वक्ता सुखी प्रजावान्	१००	१४	४०७
वञ्जुलकरुतं तित्तिडिति	८७	११	१६९
वज्रं न किञ्चिदपि	७९	१७	३२
वज्रेन्दनीलमरकत	७९	०४	२४
वन्ये सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य	९०	०३	२२०
वर्गोत्तमे द्वयक्षरकं चरांशे	९५	०५	३०३
वर्णन्यूनस्यार्द्ध तेजोहीनस्य	८१	१०	५७
वर्षोपलवजातं	८०	२४	४७
वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरूं	९३	१३	३४६
वल्लीलतागुल्मतरुप्रभेदै:	८४	०१	६५
वयांसि तेषां स्तनपानबाल्य	९५	१७	३३७

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
ववबालवकौलवतैतिलाख्य	९९	०९	३८१
वानरभिक्षुश्रवणावलोकनं	८६	०९	१४४
वामं जिघ्रेज्जानुवित्तागमाय	८८	११	२०१
वाम: प्रतिलोमगतिर्विरुवन्	९४	२८	२६५
वामदक्षिणगौ शस्तौ	८५	५१	११५
वामसव्यगतो मध्य:	८५	७२	१२९
वामावर्तो मलिनकिरण:	८३	०१	६२
वामे वासित्वादौ	९४	२६	२६४
वामैश्च पादैरभितायन्तो	९२	१०	२३३
वायव्याच्च तृतीये मित्रेण	८६	१३	१४७
वायव्ये फेनकचामर	८६	१२	१४६
वायुग्रस्त विनाश:	८६	१०	१५८
वाहनलाभोऽश्वगते	९४	४८	२७६
वाहनशस्त्रोपानच्छत्र	९४	१४	२५६
विघ्नकरो नवम: शशिपुत्र:	१०३	२३	४५४
विदिक्स्थ: शकुनो दीप्त:	८५	७०	१२८
विद्धि भद्रे मया यत्	८७	४२	१८७
विनिक्षपन्त्य: सलिलेऽण्डकानि	९४	५९	२८३
विपुलामपि बुद्ध्वा छन्दोविचितिं	१०३	६४	५२०
विषघातकगोस्वामि	८५	३२	१००
विषमं कृष्णश्वेतं	८०	०६	३६
विसर्जयति यद्येक	८५	५४	११७
विसर्ज्य शकुन: पूर्वं	८५	५६	११९
वृक्षाग्रमध्यमूलेषु	८५	७३	१३०
वृक्षोपगे क्रोशति तोयपात:	८८	१९	२०७
वृषे घकारो हिबुके शकार:	९५	२२	३२२
वृषे फकारो हिबुके खकार:	९५	२०	३२०
वेणातटे विशुद्धं	७९	०६	२५
वेश्यावटुदाससमागम:	८६	१५	१४८

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु	८४	०३	६६
वैशाखे निरुपहतेवृक्षे	९४	०२	२४९
वैष्णवश्चरकश्चैव	८५	३३	१०१
व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिमहिषा:	८५	२८	९६
व्यायामशिखिनिकूजित	८५	७७	१३४
	श		
शकटेनोन्नतस्थे वा	८५	७४	१३०
शक्रो निर्ऋतिस्तोयं	९७	०५	३५१
शङ्खतिमिवेणुवारणवराह	८०	२९	५०
शतपत्रकुरङ्गाखु	८५	२३	९३
शतमष्टयुतं हार:	८०	३२	५१
शतमिदमध्यायानाम्	१०६	१३	५३९
शमयोद्‌गतमशुभदृष्टि	१०३	४८	४८३
शरदमलपूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी	१०४	१०	५२६
शरदर्भगुल्मवल्ली	९४	०५	२५०
शशी जन्मन्यन्नप्रवरशयनाच्छादनकरो	१०३	०८	४३६
शस्तेऽवनिप्रदेशे	८०	२६	४८
शस्त्रं वामे दर्शनं दिव्यकस्य	८७	१८	१७२
शस्त्रानलप्रकोपौ	८६	४३	१६२
शान्त: पञ्चमदीप्तेन	८५	७१	१२८
शान्तात्मा सुभग: पण्डितो	१००	०५	३९८
शान्तात्ववर्णात् परमारुवन्ती	८९	१४	२१७
शान्तामैन्द्रीमवलोकयन्	९४	२०	२६१
शान्तासु दिक्षु फलमिद	८६	२९	१५४
शालेऽश्वकर्णे च वदन्ति गौरव	८४	०७	७१
शास्त्रोपनय: पूर्वं	१०६	०१	५३४
शखिगुणरसेन्द्रियानल	९७	०१	३४९
शिखिदिशि मण्डल वृष्टिर	९४	०४	२४९
शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा	८५	३०	९९

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
शिवा श्यामा रला चुच्छः	८५	३७	१०४
शिशिरकिरणवासरे	१०३	६१	५०६
शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्	८५	१४	८४
शीतोष्ण विपर्यासः	९६	०४	३४१
शीर्षोदयेषूर्ध्वमुशन्ति मात्रा	९५	०९	३०९
शुकवंशपत्रकदली	८२	०१	६०
शुक्रे द्वितीयगृहगे	१०३	३३	४६७
शुक्लः समः सुगन्धिः	७८	२६	१४
शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैः	९७	१६	३६७
शुभं दशापाकमविघ्नसिद्धिं	९४	६१	२८५
शुभग्रहस्तूर्जितवीर्यभागी	९५	११	३१२
शुभदौ तु शालशाकौ	७८	१६	०९
श्यामाश्येनशशघ्नवञ्जुलशिखि	८७	०१	१६४
श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे	८७	२७	१७९
श्रीधरनामा तस्मात्	१०४	१५	५२९
श्रीमान् श्रवणे श्रुतवानुदार	१००	१२	४०५
श्रीवत्सवधर्मान	९३	०२	२३८
श्री वृक्षवर्धमान्	७८	२१	१२
श्रेष्ठं खरं स्थास्नुमुशन्ति नाम	८७	३२	१८१
श्रेष्ठे हयसिते प्राच्यां	८५	४५	१११
श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन	८९	०१	२०९

ष

षड्भिः सितस्य मासै	९६	०२	३३९
षड्विंशतिः सहस्राण्येकस्य	८१	०७	५७
षष्ठाश्रिता शनिदिवाकरराहुजीवा;	१०२	०६	४१५
षष्ठो भृगुः परिभवरोगतापदः	१०३	३६	४६९
षोडशकस्य द्विशती	८०	१४	४१

स

संयोगमादौ बहुलेषु विन्द्यात्	९५	०७	३०५
सक्षीरार्जुनवञ्जुलकूल	९४	१६	२५८

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
सञ्चिन्तितार्थित निर्गतेषु	९५	३२	३३३
सप्तर्षीणां मतं यच्च	८५	०३	७४
सप्ताष्टावध्यर्द्धं त्रयस्त्रय:	९६	१६	३४७
समुद्गवद्दक्षिणपार्श्वशायिन:	९२	१२	२३४
सर्व: स्पन्दनरचितो	७८	१७	९
सर्वदिक्ष्वशुभा दीप्ता	८९	०५	२११
सर्वद्रव्याभेद्यं लब्ध्वम्भसि	७९	१४	३०
सर्वस्य सर्वकालं	७८	०१	०१
सर्वे दुर्भिक्षकर्त्तार:	८५	६५	१२४
सवितृसुतदिवने च कारयेन्	१०३	६३	५१८
सव्येन खे भ्रमद्भि:	९४	१०	२५४
सस्योपेते क्षेत्रे विरुवति	९४	३२	२६७
सारसकूजितमिष्टफलं	८७	३७	१८५
सावित्रपौष्णानिलमैत्रतिष्य	९७	१५	३६६
सिंहलपारलौकिक	८०	०२	३४
सिंहोऽथ मघा पूर्वा	१०१	०३	४०९
सितकुसुममत्तवारण	७८	०७	०४
सितकुसुमाशुचिमासानने	९४	४१	२७२
सितसर्षपाष्टकं	७९	१२	२८
सीमागता वन्यमृगा रुवन्त:	९०	०१	२१९
सुतधनपरिहीण: पञ्चमस्थे	१०३	४३	४७७
सुरगुरुदिवसे कनकं रजतं तुरगा:	१०३	६२	५१५
सुरपतिहुतवहयम् निर्ऋति	८५	७५	१३१
सुरभूषणं लतानाम्	८०	३१	५१
सुषिरेऽथवा विवर्णे	७८	२९	१६
सुस्निग्धपत्रपल्लव	९४	३३	२६८
सूकरनयनं विषमं	७८	३४	१८
सूर्य:षट्त्रिदश:स्थितस्त्रिदशषट्	१०३	०४	४२९
सूर्यसुते तृतीयगृहगे	१०३	४१	४७५
सूर्यसुतोऽर्कफलसमश्चन्द्रसुतश्छन्दत:	१०३	५४	४९२

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रबुधास्तृतीये	१०२	०३	४१३
सूर्योदयेऽर्काभिमुखो विरौति	८८	०२	१९६
सूर्योन्मुखः श्वानलदिक् स्थितश्च	८८	०३	१९६
सौगन्दिककुरूविन्द	८१	०१	५४
सौगिन्दकगोमेदक	७९	०५	२४
सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे	१०३	२२	४५३
सौरारजीवबुद्धराहुरवीन्द्रशुक्राः	१०२	०७	४१५
सौरोऽर्क रश्मियोगात्	१०३	५५	४९६
सौस्थित्यमवेक्ष्य यो गृहेभ्यः	१०३	६०	५०२
स्कन्धावारादीनां	९४	४५	२७४
स्कन्धासनासंज्वलनं जयाय	९२	०३	२२७
स्खलितगतिरकस्मात्	९३	१२	२४५
स्तम्भकुसूलार्चाना	९६	०६	३४२
स्त्रीणां विकल्पा बृहती कुमारी	८५	७९	१३७
स्त्रीरूपे धननाशो	७८	२३	१२
स्त्रीरूपेऽश्वविनाशो	९३	०४	२३९
स्त्रीसंज्ञा भासभषक	८५	३८	१०५
स्थळसलिलचराणां	९४	५८	२४३
स्थानकल्यधनहा दसर्क्षग	१०३	३१	४६३
स्थानभ्रंशात् कार्यविघाताच्च	१०३	२६	४५८
स्थानेऽष्टमे गुरुबुधौ	१०२	०८	४१६
स्थिरप्रदेशोपलमन्दिरेषु	९५	०४	२९०
स्निग्धः प्रभानुलेपी	८१	०३	५५
स्निग्धद्विजस्य सन्दर्शन	८६	०३	१४१
स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः	१००	१३	४०६
स्त्रोतस्तडागभेद्यैकपुत्रकः	८७	०६	१६६
स्वकाले गिरितोयस्थाः	८५	१८	८९
स्वजन विभवजीवितक्षयं	७९	१८	३३
स्वल्पं पयः स्रवति	१०२	०४	४१४

श्लोक	अध्याय सं.	श्लोक सं.	पृ.सं.
	ह		
हयनरभुजगोष्ट्रदीपिसिंहर्क्षगोधा	८७	०३	१६५
हरितमणिमहीसुगन्धीनि वस्त्राणि	१०३	६१	५११
हर्म्यप्रासादमङ्गल्य	८५	१७	८९
हस्तत्रयं मृगशिराः श्रवणत्रयं च	९७	१२	३५९
हस्त्यारोहभयं स्याद्	८६	४२	१६१
हारीतस्य तु शब्दो	८७	१५	१७१
हुंहुंग्गुलुगिति प्रियामभिलषन्	८७	३६	१८४
हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं	९७	११	३५८

❑❑

पञ्चम शताब्दी के महान गणितज्ञ, खगोलशास्त्री आचार्य वराहमिहिर की बृहत्संहिता ज्योतिषशास्त्र की एक महनीय कृति है। यह ग्रन्थ प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का विश्वकोष कहा जाता है।

भाग चतुष्टयात्मक इस ग्रन्थ का यह चतुर्थभाग विषय वैविध्य के साथ ही मानवोपयोगी विशिष्ट विषयों से सम्पूर्णतया समावेष्टित है। आचार्य भटोत्पल की संस्कृत विवृति के साथ हिन्दी व्याख्या सहित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की यह सारस्वत प्रस्तुति, सर्वोपयोगी तथा सरलतया बोधगम्य है।

३० अध्यायों की इस ज्ञान-मञ्जूषा में शय्या लक्षण, रत्नों के प्रकार तथा परीक्षण विधि, शकुनों का शुभाशुभत्व निरूपण एवं पक्षियों के स्वरानुसार फलोपलब्धि का विस्तृत विवेचन है।

श्वान, लोमड़ी, काक और मृग की चेष्टाओं से शुभाशुभ का विचार किया गया है। घोड़े की संरचना तथा उसके विविध लक्षण, गाय एवं हाथी द्वारा प्रदर्शित लक्षणों से मानव पर पड़ने वाले प्रभावों का गंभीर अनुसंधान किया गया है। ग्रहगोचराध्याय में गोचरफल के साथ ही साहित्यशास्त्र के ६२ प्रकार के दुर्लभ छन्दों का सोदाहरण रचनामृत है। स्त्री-पुरुष दोनों के व्यक्तित्वविकास तथा सौन्दर्यवृद्धि के लिए रूपसत्राध्याय परमोपयोगी एवं आचरणीय है।

आचार्य-काल के स्वर्णयुग का परिचायक यह ग्रन्थ भारतीय शास्त्रों के अध्येताओं के लिए सर्वथा पठनीय एवं संग्रहणीय है।

SAMPURNANAND SANSKRIT UNIVERSITY
SHRUTAM ME GOPAY

Published by :
Dr. Padmakar Mishra
Director
Institute of Academic, Research & Publication
Sampurananand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi-221 002

ISBN 978-93-87890-00-8
978-93-87890-00-8